॥श्रीगणेशाय नमः॥

कूर्मपुराणम्

पूर्वभागः

प्रथमोऽध्यायः

(इन्द्रद्युम्न ब्राह्मण का मोक्ष)

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्॥१॥

श्रीनारायण को, नरों में उत्तम श्री नर को, तथा श्री देवी सरस्वती को प्रथम नमस्कार करने के पश्चात् जय ग्रन्थ का आरंभ करना चाहिए।

नमस्कृत्याप्रमेयाय विष्णवे कूर्मरूपिणे।
पुराणं संप्रवक्ष्यामि यदुक्तं विश्वयोनिना॥१॥

मैं अप्रमेय (अमाप), कूर्मरूपधारी विष्णु को नमन करके समस्त विश्व की उत्पत्तिस्थान ब्रह्मा (अथवा कूर्मरूपधारी विष्णु) द्वारा कथित इस (कूर्म) पुराण का वर्णन करूँगा।

सत्रान्ते सूतमनघं नैमिषेया महर्षयः।
पुराणसंहितां पुण्यां पप्रच्छु रोमहर्षणम्॥२॥

अपने यज्ञानुष्ठान की समाप्ति पर नैमिषारण्यवासी महर्षियों ने निष्पाप रोमहर्षण नामक सूत से इस पुण्यमयी पुराणसंहिता के विषय में पूछा।

त्वया सूत महाबुद्धे भगवान् ब्रह्मवित्तमः।
इतिहासपुराणार्थं व्यासः सम्यगुपासितः॥३॥
तस्य ते सर्वरोमाणि वचसा हृषितानि यत्।
द्वैपायनस्य तु भवांस्ततो वै रोमहर्षणः॥४॥

हे महान् बुद्धिसम्पन्न सूतजी! आपने इतिहास और पुराणों के ज्ञान के लिए, ब्रह्मज्ञानियों में अतिश्रेष्ठ भगवान् व्यास की सम्यक् उपासना की है। द्वैपायन व्यासजी के वचन से आपके सभी रोम हर्षित हो उठे थे, इसीलिए आप रोमहर्षण नाम से प्रसिद्ध हुए।

भवन्तमेव भगवान् व्याजहार स्वयं प्रभुः।
मुनीनां संहितां वक्तुं व्यासः पौराणिकीं पुरा॥५॥

प्राचीन समय में स्वयं प्रभु भगवान् व्यासदेव ने आपको ही मुनियों की इस पौराणिक संहिता को कहने के लिए कहा था।

त्वं हि स्वायम्भुवे यज्ञे सुत्याहे वितते सति।
संभूतः संहितां वक्तुं स्वांशेन पुरुषोत्तमः॥६॥

स्वयम्भू ब्रह्मा के यज्ञ में विश्रान्ति पश्चात् स्नान हो जाने पर कहा था कि इस पुराणसंहिता को कहने के लिए स्वयं पुरुषोत्तम भगवान् के ही अंशरूप में आप उत्पन्न हुए हैं।

तस्माद्भवन्तं पृच्छामः पुराणं कौर्ममुत्तमम्।
वक्तुमर्हसि चास्माकं पुराणार्थविशारद॥७॥

इसलिए हम आपसे श्रेष्ठ कूर्मपुराण के विषय में पूछते हैं। हे पुराणों का अर्थ करने में विशारद! आप ही हमें यह कहने के लिए योग्य हैं।

मुनीनां वचनं श्रुत्वा सूतः पौराणिकोत्तमः।
प्रणम्य मनसा प्राह गुरुं सत्यवतीसुतम्॥८॥

पौराणिकों में उत्तम सूतजी ने मुनियों का वचन सुनकर सत्यवती के पुत्र व्यासदेव को मन ही मन प्रणाम करके कहा।

रोमहर्षण उवाच

नमस्कृत्य जगद्योनिं कूर्मरूपधरं हरिम्।
वक्ष्ये पौराणिकीं दिव्यां कथां पापप्रणाशिनीम्॥९॥
यां श्रुत्वा पापकर्मापि गच्छेत परमां गतिम्।
न नास्तिके कथां पुण्यामिमां ब्रूयात्कदाचन॥१०॥

रोमहर्षण ने कहा— जगत् के उत्पत्तिस्थान, कूर्मरूपधारी विष्णु को नमस्कार करके मैं इस पापनाशिनी दिव्य पुराण-कथा को कहूँगा, जिस कथा को सुनकर, पापकर्म करने वाला भी परम गति को प्राप्त करेगा। परन्तु इस पुण्य कथा को नास्तिकों के सामने कभी भी न कहें।

श्रद्धानाय शान्ताय धार्मिकाय द्विजातये।
इमां कथामनुब्रूयात्साक्षान्नारायणेरिताम्॥ ११॥

इस पुराण कथा को श्रद्धावान्, शान्त, धार्मिक, द्विजाति को ही सुनाना चाहिए, जोकि साक्षात् नारायण के द्वारा कही गयी है।

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितञ्चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥ १२॥

सर्ग (सृष्टि-उत्पत्ति), प्रतिसर्ग (पुनः रचना या पुनः सृष्टि), वंश (राजकुलों का वर्णन या महापुरुषों की वंश परम्परा का वर्णन), मन्वन्तर (मनु के समय की अवधि), वंशानुचरित (राजकुल या महापुरुषों के इतिहास का निरूपण)— ये पुराण के पाँच लक्षण हैं।

ब्राह्मं पुराणं प्रथमं पाद्मं वैष्णवमेव च।
शैवं भागवतञ्चैव भविष्यं नारदीयकम्॥ १३॥
मार्कण्डेयमथाग्नेयं ब्रह्मवैवर्त्तमेव च।
लैङ्गं तथा च वाराहं स्कान्दं वामनमेव च॥ १४॥
कौर्मं मात्स्यं गारुडञ्च वायवीयमनन्तरम्।
अष्टादशं समुद्दिष्टं ब्रह्माण्डमिति संज्ञितम्॥ १५॥
अन्यान्युपपुराणानि मुनिभिः कथितानि तु।
अष्टादश पुराणानि श्रुत्वा संक्षेपतो द्विजाः॥ १६॥

१. ब्रह्मपुराण, २. पद्मपुराण, ३. विष्णु पुराण, ४. शिवपुराण, ५. भागवत पुराण, ६. भविष्य पुराण, ७. नारदीय पुराण, ८. मार्कण्डेय पुराण, ९. अग्निपुराण, १०. ब्रह्मवैवर्त पुराण, ११. लिङ्ग पुराण, १२. वराह पुराण, १३. स्कन्द पुराण, १४. वामन पुराण, १५. कूर्मपुराण, १६. मत्स्य पुराण, १७. गरुड़ पुराण, १८. वायु पुराण— इस प्रकार ये अष्टादश पुराण ब्रह्माण्डसंज्ञक[1] कहे गये हैं। हे द्विजगण! इन्हीं अठारह पुराणों को संक्षेप से सुनकर मुनियों ने अन्य उपपुराण कहे हैं।

आद्यं सनत्कुमारोक्तं नारसिंहमतः परम्।
तृतीयं स्कान्दमुद्दिष्टं कुमारेण तु भाषितम्॥ १७॥

प्रथम उपपुराण सनत्कुमार के द्वारा कहा गया है। अनन्तर नरसिंह उपपुराण है और तीसरा स्कन्द उपपुराण कुमार कार्तिकेय द्वारा कथित है।

चतुर्थं शिवधर्माख्यं साक्षान्नन्दीशभाषितम्।
दुर्वाससोक्तमाश्चर्यं नारदीयमतः परम्॥ १८॥

चतुर्थ शिवधर्म नामक उपपुराण है, जो साक्षात् नन्दीश्वर द्वारा कहा गया है। इसके बाद दुर्वासा द्वारा कथित आश्चर्यमय नारदीय पुराण है।

कापिलं वामनञ्चैव तथैवोशनसेरितम्।
ब्रह्माण्डं वारुणञ्चैव कालिकाह्वयमेव च॥ १९॥
माहेश्वरं तथा साम्बं सौरं सर्वार्थसञ्चयम्।
पराशरोक्तं मारीचं तथैव भार्गवाह्वयम्॥ २०॥

इसके बाद कापिल और वामन उपपुराण हैं, जो उशना (शुक्राचार्य) द्वारा कथित हैं। फिर क्रमशः ब्रह्माण्ड, वारुण, तथा कालिका नामक हैं तथा माहेश्वर, साम्ब, सर्वार्थसंचय सौर पुराण और फिर पराशर द्वारा कहे गये मारीच एवं भार्गव नाम वाले उपपुराण हैं।

(कूर्मकथा वर्णन)

इदन्तु पञ्चदशकं पुराणं कौर्ममुत्तमम्।
चतुर्द्धा संस्थितं पुण्यं संहितानां प्रभेदतः॥ २१॥
ब्राह्मी भागवती सौरी वैष्णवी च प्रकीर्त्तिताः।
चतस्रः संहिताः पुण्या धर्मकामार्थमोक्षदाः॥ २२॥

यह पन्द्रहवाँ उत्तम कूर्मपुराण है। संहिताओं के प्रभेद से यह पुण्य पुराण चतुर्धा संस्थित है। ये ब्राह्मी, भागवती, सौरी और वैष्णवी नाम से प्रसिद्ध हैं। ये चारों संहिताएँ धर्म, काम, अर्थ और मोक्ष को प्रदान करने वाली और पवित्र हैं।

इयन्तु संहिता ब्राह्मी चतुर्वेदैस्तु सम्मिता।
भवन्ति षट् सहस्राणि श्लोकानामत्र संख्यया॥ २३॥

यह जो ब्राह्मी संहिता है, वह चारों वेदों के तुल्य है। इसमें छः हजार श्लोक हैं।

यत्र धर्मार्थकामानां मोक्षस्य च मुनीश्वराः।
माहात्म्यमखिलं ब्रह्मन् ज्ञायते परमेश्वरः॥ २४॥

हे मुनीश्वरो! इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का अखिल माहात्म्य है। इसके द्वारा परमेश्वर ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त होता है।

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं पुण्या दिव्या प्रासङ्गिकी कथा॥ २५॥
ब्राह्मणाद्यैरियं धार्या धार्मिकैर्वेदपारगैः।
तामहं वर्णयिष्यामि व्यासेन कथितां पुरा॥ २६॥

1. यहाँ यदि ब्रह्माण्डसंज्ञा से ब्रह्माण्डपुराण को लिया जाता है, तो पुराणों की कुल संख्या १९ होती है। अन्यथा अष्टादश की गणना में ब्रह्माण्डपुराण रह जाता है।

इसमें सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, वंशानुचरित तथा प्रसंगतः प्राप्त दिव्य पुण्य कथा का वर्णन है। वेदों में पारंगत एवं धर्मपरायण ब्राह्मण आदि द्विजाति द्वारा यह कथा धारण करनी चाहिए। पूर्वकाल में व्यासजी द्वारा कथित इस कथा का मैं वर्णन करूँगा।

पुरामृतार्थं दैतेयदानवैः सह देवताः।
मन्थानं मन्दरं कृत्वा ममन्थुः क्षीरसागरम्॥ २७॥
मथ्यमाने तदा तस्मिन्कूर्मरूपी जनार्दनः।
बभार मन्दरं देवो देवानां हितकाम्यया॥ २८॥

पूर्वकाल में अमृत प्राप्ति के लिए देवताओं ने दैत्य और दानवों के साथ मिलकर मन्दराचल को मथानी बनाकर क्षीरसागर का मंथन किया। उस मंथनकाल में कूर्मरूपधारी जनार्दन विष्णु ने देवताओं के कल्याण की कामना से मन्दराचल को अपनी पीठ पर धारण किया था।

देवाश्च तुष्टुवुर्देवं नारदाद्या महर्षयः।
कूर्मरूपधरं दृष्ट्वा साक्षिणं विष्णुमव्ययम्॥ २९॥

कूर्मरूपधारी, अविनाशी, साक्षी, भगवान् विष्णु को देखकर नारद आदि महर्षि और देवता उनकी स्तुति करने लगे।

तदन्तरेऽभवद्देवी श्रीर्नारायणवल्लभा।
जग्राह भगवान् विष्णुस्तामेव पुरुषोत्तमः॥ ३०॥

उसी मंथन के बीच नारायण की अतिप्रिया देवी भी उत्पन्न हुई। पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु ने उन्हीं को ग्रहण किया था।

तेजसा विष्णुमव्यक्तं नारदाद्या महर्षयः।
मोहिताः सह शक्रेण श्रेयोवचनमब्रुवन्॥ ३१॥
भगवन् देवदेवेश नारायण जगन्मय।
कैषा देवी विशालाक्षी यथावद्ब्रूहि पृच्छताम्॥ ३२॥

इन्द्र सहित नारद आदि महर्षिगण उनके तेज से मोहित हो गए थे। वे अव्यक्त विष्णु से इस प्रकार कल्याणकारी वचन बोले— हे देव! देवेश! जगन्मय! भगवन्! नारायण! ये दीर्घ नेत्रों वाली देवी कौन हैं? हम पूछते हैं आप यथावत् बताने की कृपा करें।

श्रुत्वा तेषां तदा वाक्यं विष्णुर्दानवमर्दनः।
प्रोवाच देवीं संप्रेक्ष्य नारदादीनकल्मषान्॥ ३३॥
इयं सा परमा शक्तिर्मन्मयी ब्रह्मरूपिणी।
माया मम प्रियानन्ता ययेदं धार्यते जगत्॥ ३४॥

तब देवों का यह वचन सुनकर दानवों का मर्दन करने वाले विष्णु ने देवी की ओर देखकर निष्पाप नारद आदि ऋषियों से कहा— ये ब्रह्मस्वरूपा, परमा शक्ति और मत्स्वरूपा माया मेरी अनन्त प्रिया है, जिसके द्वारा यह जगत् धारण किया हुआ है।

अनयैव जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम्।
मोहयामि द्विजश्रेष्ठा ग्रसामि विसृजामि च॥ ३५॥

हे द्विजश्रेष्ठ! इसी माया के द्वारा मैं देव, असुर और मनुष्यों के इस संपूर्ण जगत् को मोहित करता हूँ, ग्रसित करता हूँ और विसर्जित करता हूँ।

उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामागतिं गतिम्।
विद्यया वीक्ष्य चात्मानं तरन्ति विपुलामिमाम्॥ ३६॥

सृष्ट्युत्पत्ति और प्रलय, प्राणियों का जन्म एवं मृत्यु की प्रवर्तक इस विपुल माया को ज्ञान द्वारा आत्मा का दर्शन करके जीव तर जाते हैं।

अस्यास्त्वंशानधिष्ठाय शक्तिमन्तोऽभवन् सुराः।
ब्रह्मेशानादयः सर्वे सर्वशक्तिरियं मम॥ ३७॥

यह माया मेरी सम्पूर्ण शक्ति है। इसीके अंश को धारण करके ब्रह्मा-शङ्कर आदि देवगण शक्तिसम्पन्न हुए हैं।

सैषा सर्वजगत्सूतिः प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका।
प्रागेव मत्तः संजाता श्रीःकल्पे पद्मवासिनी॥ ३८॥

वही सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न करने वाली त्रिगुणात्मिका प्रकृति है। यह कमलवासिनी लक्ष्मी कल्प में मुझ से पूर्व ही उत्पन्न हुई थी।

चतुर्भुजा शङ्खचक्रपद्महस्ता स्रगन्विता।
कोटिसूर्यप्रतीकाशा मोहिनी सर्वदेहिनाम्॥ ३९॥

यह चतुर्भुजा है, जिसने शङ्ख, चक्र, पद्म धारण किये हुए हैं और करोड़ों सूर्य के समान दीप्तियुक्त माला से युक्त है। यह सभी प्राणियों को मोहित करने वाली है।

नालं देवा न पितरो मानवा वसवोऽपि च।
मायामेतां समुत्तर्तुं ये चान्ये भुवि देहिनः॥ ४०॥

देवगण, पितर, मानव और वसुगण तथा सम्पूर्ण पृथ्वी पर अन्य देहधारी भी जो हैं, वे इस माया को पार करने में समर्थ नहीं हैं।

इत्युक्तो वासुदेवेन मुनयो विष्णुमब्रुवन्।
ब्रूहि त्वं पुण्डरीकाक्ष यदि कालत्रयेऽपि वा॥ ४१॥

इस प्रकार वासुदेव के कहने पर मुनियों ने भगवान् विष्णु से कहा— हे पुण्डरीकाक्ष! पूर्व व्यतीत काल के विषय में भी आप हमें बतावें।

अथोवाच हृषीकेशो मुनीन्मुनिगणार्चितः।
अस्ति द्विजातिप्रवर इन्द्रद्युम्न इति श्रुतः॥४२॥
पूर्वजन्मनि राजासावधृष्यः शङ्करादिभिः।
दृष्ट्वा मां कूर्मसंस्थानं श्रुत्वा पौराणिकीं स्वयम्॥४३॥

तदनन्तर मुनिगण द्वारा पूजित भगवान् हृषीकेश ने उन मुनियों से कहा — इन्द्रद्युम्न नाम से प्रसिद्ध एक श्रेष्ठ ब्राह्मण हुआ था। पूर्वजन्म में वह राजा था, जो शङ्कर आदि देवों से भी वह अपराजेय था। मुझ कूर्मरूपधारी को देखकर स्वयं मेरे मुख से उसने इस पुराण-कथा को सुना था।

संहितां मन्मुखाद्दिव्यां पुरस्कृत्य मुनीश्वरान्।
ब्रह्माणञ्च महादेवं देवांश्चान्यान् स्वशक्तिभिः॥४४॥
मच्छक्तौ संस्थितान् बुद्ध्वा मामेव शरणं गतः।
संभाषितो मया चाथ विप्रयोनिं गमिष्यति॥४५॥

पुनः मुनीश्वरों, ब्रह्मा, महादेव और अन्य देवों को अपनी शक्ति से मेरे आगे करके मेरे मुख से इस दिव्य पुराण संहिता को सुना। तब उन सबको मेरी शक्ति के अन्तर्गत स्थित जानकर वह मेरी ही शरण में आ गया। अनन्तर मैंने उससे कहा— 'तुम ब्राह्मणयोनि को प्राप्त करोगे'।

इन्द्रद्युम्न इति ख्यातो जातिं स्मरसि पौर्विकीम्।
सर्वेषामेव भूतानां देवानामप्यगोचरम्॥४६॥
वक्तव्यं यद्गुह्यतमं दास्ये ज्ञानं तवानघ।
लब्ध्वा तन्मामकं ज्ञानं मामेवान्ते प्रवेक्ष्यसि॥४७॥

तुम्हारा नाम इन्द्रद्युम्न होगा और तुम अपनी पूर्व जाति का ज्ञान भी प्राप्त करोगे। हे निष्पाप! जो सभी प्राणियों तथा देवताओं के लिए भी दुर्लभ एवं अत्यन्त गुह्यतम है, ऐसा ज्ञान मैं तुम्हें दूँगा। ऐसे मेरे ज्ञान को प्राप्त करके अन्त में तुम मुझमें ही प्रवेश कर जाओगे।

अंशान्तरेण भूम्यां त्वं तत्र तिष्ठ सुनिर्वृतः।
वैवस्वतेऽन्तरेऽतीते कार्यार्थं मां प्रवेक्ष्यसि॥४८॥

तुम अपने दूसरे अंश से पृथ्वी पर सुनिश्चिन्त होकर स्थित रहो। अनन्तर वैवस्वत मन्वन्तर बीत जाने पर तुम पुनः मुझमें प्रवेश कर जाओगे।

मां प्रणम्य पुरीं गत्वा पालयामास मेदिनीम्।
कालधर्मं गतः कालाच्छ्वेतद्वीपे मया सह॥४९॥
भुक्त्वा तान्वैष्णवान् भोगान्योगिनामप्यगोचरान्।
मदाज्ञया मुनिश्रेष्ठा जज्ञे विप्रकुले पुनः॥५०॥

तब वह मुझे प्रणाम करके अपनी नगरी में जाकर पृथ्वी का अच्छी प्रकार पालन करने लगा। समय आने पर वह श्वेतद्वीप में मेरे साथ ही कालधर्म को प्राप्त हो गया। हे मुनिश्रेष्ठो! उसने वहां योगियों के लिए भी अगोचर विष्णुलोक के भोगों को भोगा और पुनः मेरी ही आज्ञा से वह ब्राह्मणकुल में उत्पन्न हुआ।

ज्ञात्वा मां वासुदेवाख्यं तत्र द्वे निहितेऽक्षरे।
विद्याविद्ये गूढरूपं यद्ब्रह्म परमं विदुः॥५१॥
सोऽर्च्चयामास भूतानामाश्रयं परमेश्वरम्।
व्रतोपवासनियमैर्होमैर्ब्राह्मणतर्पणैः॥५२॥

द्व्यक्षर—विद्या और अविद्या दोनों में निहित वासुदेव नामक गूढरूप, जिसे लोग परम ब्रह्म जानते हैं, ऐसे मुझको जानकर इन्द्रद्युम्न ने व्रत, उपवास, होम तथा ब्राह्मणों के तर्पण आदि नियमों द्वारा समस्त प्राणियों के आश्रयभूत परमेश्वर की पूजा की।

तदाशीस्तन्नमस्कारस्तन्निष्ठस्तत्परायणः।
आराधयन् महादेवं योगिनां हृदि संस्थितम्॥५३॥

उन्हीं के आशीर्वाद, उन्हीं के नमस्कार, उन्हीं के प्रति निष्ठा एवं ध्यान-परायण होकर योगियों के हृदय में स्थित महादेव की उसने आराधना की थी।

तस्यैवं वर्तमानस्य कदाचित्परमा कला।
स्वरूपं दर्शयामास दिव्यं विष्णुसमुद्भवम्॥५४॥

उस राजा के द्वारा इस प्रकार वर्तमान होने पर कभी परमा कला ने विष्णु से उत्पन्न अपने दिव्य स्वरूप का दर्शन कराया।

दृष्ट्वा प्रणम्य सिरसा विष्णोर्भगवतः प्रियाम्।
संस्तूय विविधैः स्तोत्रैः कृताञ्जलिरभाषत॥५५॥

भगवान् विष्णु की प्रिया को देखकर सिर झुकाकर प्रणाम करके उसने अनेक प्रकार से स्तोत्रों द्वारा स्तुति करके हाथ जोड़कर कहा।

इन्द्रद्युम्न उवाच

का त्वं देवि विशालाक्षि विष्णुचिह्नाङ्किते शुभे।
याथातथ्येन वै भावं तवेदानीं ब्रवीहि मे॥५६॥

इन्द्रद्युम्न बोला— हे देवि! हे विशालाक्षि! विष्णु के चिह्न से अंकित हे शुभलक्षणे! आप कौन हैं? अपने इस भाव को इस समय यथार्थत: मुझसे कहें।

तस्य तद्वाक्यमाकर्ण्य सुप्रसन्ना सुमङ्गला।
हसन्ती संस्मरन्विष्णुं प्रियं ब्राह्मणमब्रवीत्॥५७॥

उसका यह वाक्य सुनकर सुप्रसन्ना, मंगलमयी देवी हँसते हुए प्रियतम विष्णु का स्मरण करके ब्राह्मण से बोली।

श्रीरुवाच

न मां पश्यन्ति मुनयो देवा: शक्रपुरोगमा:।
नारायणात्मिकामेकां मायाहं तन्मयी परा॥५८॥

लक्ष्मी बोली— मुझे मुनि तथा इन्द्रादि देवगण नहीं देख पाते हैं। मैं नारायणरूपा अकेली, विष्णुमयी, परा माया हूँ।

न मे नारायणाद्भेदो विद्यते हि विचारत:।
तन्मय्यहं परं ब्रह्म स विष्णु परमेश्वर:॥५९॥

विचारपूर्वक देखो तो मेरा नारायण से कोई भेद नहीं है। मुझमें ही नारायण विद्यमान हैं और मैं ही वह परब्रह्म परमेश्वर विष्णु हूँ।

येऽर्च्चयन्तीह भूतानामाश्रयं पुरुषोत्तमम्।
ज्ञानेन कर्मयोगेन न तेषां प्रभवाम्यहम्॥६०॥

जो लोग इस संसार में प्राणियों के आश्रयभूत पुरुषोत्तम की अर्चना ज्ञानयोग या कर्मयोग के द्वारा करते हैं, उन पर मैं कोई प्रभाव नहीं डालती।

तस्मादनादिनिधनं कर्मयोगपरायण:।
ज्ञानेनाराधयानन्तं ततो मोक्षमवाप्स्यसि॥६१॥

इसलिए कर्मयोग के आश्रित होकर ज्ञान के द्वारा आदि-अन्त से रहित अनन्त विष्णु की आराधना करो। उससे तुम मोक्ष को प्राप्त करोगे।

इत्युक्त: स मुनिश्रेष्ठ इन्द्रद्युम्नो महामति:।
प्रणम्य शिरसा देवीं प्राञ्जलि: पुनरब्रवीत्॥६२॥
कथं स भगवानीश: शाश्वतो निष्कलोऽच्युत:।
ज्ञातुं हि शक्यते देवि ब्रूहि मे परमेश्वरि॥६३॥

हे मुनिश्रेष्ठ! ऐसा कहने पर परम बुद्धिमान् इन्द्रद्युम्न ने देवी को सिर झुकाकर प्रणाम करके पुन: हाथ जोड़कर कहा— हे देवि, परमेश्वरि! शाश्वत विशुद्ध, अच्युत भगवान् विष्णु को कैसे जाना जा सकता है, वह बतायें।

एवमुक्ताथ विप्रेण देवी कमलवासिनी।
साक्षान्नारायणो ज्ञानं दास्यतीत्याह तं मुनिम्॥६४॥

ब्राह्मण के द्वारा ऐसा पूछे जाने पर कमलवासिनी देवी ने उस मुनि से कहा— साक्षात् नारायण तुम्हें यह ज्ञान ही देंगे।

उभाभ्यामथ हस्ताभ्यां संस्पृश्य प्रणतं मुनिम्।
स्मृत्वा परात्परं विष्णुं तत्रैवान्तरधीयत॥६५॥

अनन्तर प्रणाम करते हुए, मुनि को दोनों हाथोंसे स्पर्श करके वह देवी परात्पर विष्णु का स्मरण करके वहीं अन्तर्धान हो गई।

सोऽपि नारायणं द्रष्टुं परमेण समाधिना।
आराधयद्धृषीकेशं प्रणतार्त्तिप्रभञ्जनम्॥६६॥

वह ब्राह्मण भी नारायण का दर्शन करने के लिए उत्कृष्ट समाधि लगाकर भक्तों का दु:ख दूर करने वाले हृषीकेश भगवान् की आराधना करने लगा।

ततो बहुतिथे काले गते नारायण: स्वयम्।
प्रादुरासीन्महायोगी पीतवासा जगन्मय:॥६७॥

अनन्तर अनेक मास व्यतीत हो जाने पर महायोगी, पीताम्बरधारी जगन्मय नारायण स्वयं प्रकट हुए।

दृष्ट्वा देवं समायान्तं विष्णुमात्मानमव्ययम्।
जानुभ्यामवनिं गत्वा तुष्टाव गरुडध्वजम्॥६८॥

उन आत्मस्वरूप एवं अविनाशी भगवान् विष्णु को समीप आते हुए देखकर घुटने टेककर गरुडध्वज विष्णु की वह स्तुति करने लगा।

इन्द्रद्युम्न उवाच

यज्ञेशाच्युत गोविन्द माधवानन्त केशव।
कृष्ण विष्णो हृषीकेश तुभ्यं विश्वात्मने नम:॥६९॥
नमोऽस्तु ते पुराणाय हरये विश्वमूर्त्तये।
सर्गस्थितिविनाशानां हेतवेऽनन्तशक्तये॥७०॥
निर्गुणाय नमस्तुभ्यं निष्कलाय नमोनम:।
पुरुषाय नमस्तेऽस्तु विश्वरूपाय ते नम:॥७१॥

इन्द्रद्युम्न ने (स्तुति करते हुए) कहा— हे यज्ञेश, अच्युत, गोविन्द, माधव, अनन्त, केशव, कृष्ण, विष्णु, हृषीकेश, आप विश्वात्मा को मेरा नमस्कार है। पुराणपुरुष, हरि, विश्वमूर्ति, उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के कारणभूत तथा अनन्त शक्तिसम्पन्न आप के लिए मेरा प्रणाम है। निर्गुण आपको नमस्कार है। विशुद्ध रूप वाले आपको बार-बार नमस्कार है। पुरुषोत्तम को नमस्कार है। विश्वरूपधारी आपको मेरा प्रणाम।

नमस्ते वासुदेवाय विष्णवे विश्वयोनये।
आदिमध्यान्तहीनाय ज्ञानगम्याय ते नमः॥७२॥
नमस्ते निर्विकाराय निष्प्रपञ्चाय ते नमः।
भेदाभेदविहीनाय नमोऽस्त्वानन्दरूपिणे॥७३॥
नमस्ताराय शान्ताय नमोऽप्रतिहतात्मने।
अनन्तमूर्तये तुभ्यममूर्ताय नमो नमः॥७४॥

वासुदेव, विष्णु, विश्वयोनि, आदि-मध्य और अन्त से रहित तथा ज्ञान के द्वारा जानने योग्य आपको नमस्कार है। निर्विकार, प्रपञ्च रहित आप के लिए मेरा नमस्कार है। भेद और अभेद से विहीन तथा आनन्दस्वरूप आपको मेरा नमस्कार है। तारकमय तथा शान्तस्वरूप आप को नमस्कार है। अप्रतिहतात्मा आप को नमस्कार। आपका रूप अनन्त और अमूर्त है, आपको बार-बार नमस्कार है।

नमस्ते परमार्थाय मायातीताय ते नमः।
नमस्ते परमेशाय ब्रह्मणे परमात्मने॥७५॥
नमोऽस्तुते सुसूक्ष्माय महादेवाय ते नमः।
नमस्ते शिवरूपाय नमस्ते परमेष्ठिने॥७६॥

हे परमार्थस्वरूप! आपको नमस्कार है। हे मायातीत! आपको नमस्कार है। हे परमेश! हे ब्रह्मन्! तथा हे परमात्मन्! आपको नमस्कार है। अति सूक्ष्मरूपधारी आपको नमस्कार है। महादेव! आपको नमस्कार है। शिवरूपधारी को नमस्कार है और परमेष्ठी को नमस्कार है।

त्वयैव सृष्टमखिलं त्वमेव परमा गतिः।
त्वं पिता सर्वभूतानां त्वं माता पुरुषोत्तम॥७७॥

आपने ही इस सम्पूर्ण संसार को रचा है। आप ही इसकी परम गति हैं। हे पुरुषोत्तम! समस्त प्राणियों के आप ही पिता और माता हैं।

त्वमक्षरं परं धाम चिन्मात्रं व्योम निष्कलम्।
सर्वस्याधारमव्यक्तमनन्तं तमसः परम्॥७८॥

आप अक्षर, अविनाशी परम धाम, चिन्मात्र अर्थात् ज्ञानस्वरूप और निष्कल व्योम हैं। आप सबके आधारभूत, अव्यक्त, अनन्त और तम से परे हैं।

प्रपश्यन्ति महात्मानं ज्ञानदीपेन केवलम्।
प्रपद्यन्ते ततो रूपं तद्विष्णोः परमं पदम्॥७९॥

महात्मा योगी ज्ञान-रूपी दीपक से ही केवल देख पाते हैं। तब जिस रूप को प्राप्त करते हैं, वही विष्णु का परम पद है।

एवं स्तुवन्तं भगवान् भूतात्मा भूतभावनः।
उभाभ्यामथ हस्ताभ्यां पस्पर्श प्रहसन्निव॥८०॥

इस प्रकार स्तुति किये जाने पर भूतात्मा, भूतभावन भगवान् विष्णु ने मुस्कराते हुए अपने दोनों हाथों से उसका स्पर्श किया।

स्पृष्टमात्रो भगवता विष्णुना मुनिपुङ्गवः।
यथावत्परमं तत्त्वं ज्ञातवांस्तत्प्रसादतः॥८१॥

भगवान् विष्णु द्वारा स्पर्श प्राप्त करते ही वह मुनिश्रेष्ठ उनकी कृपा से परम तत्त्व को यथार्थतः जान गया।

ततः प्रहृष्टमनसा प्रणिपत्य जनार्दनम्।
प्रोवाचोन्निद्रपद्माक्षं पीतवाससमच्युतम्॥८२॥

तदनन्तर अत्यन्त प्रसन्न मन से जनार्दन को प्रणाम करके इन्द्रद्युम्न ने विकसित कमल के समान नेत्र वाले पीताम्बरधारी अच्युत से कहा।

त्वत्प्रसादादसन्दिग्धमुत्पन्नं पुरुषोत्तम।
ज्ञानं ब्रह्मैकविषयं परमानन्दसिद्धिदम्॥८३॥

हे पुरुषोत्तम! आपकी कृपा से संशयरहित तथा परमानन्द की सिद्धि देने वाला ब्रह्मविषयक एकमात्र ज्ञान मुझे उत्पन्न हो गया।

नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय वेधसे।
किं करिष्यामि योगेश तन्मे वद जगन्मय॥८५॥

भगवान् वेधा वासुदेव के लिए नमस्कार है। हे योगेश्वर, हे जगन्मय! अब मैं क्या करूँ? यह भी मुझे बतायें।

श्रुत्वा नारायणो वाक्यमिन्द्रद्युम्नस्य माधवः।
उवाच सस्मितं वाक्यमशेषं जगतो हितम्॥८५॥

इन्द्रद्युम्न की बात सुनकर नारायण माधव ने मुस्कराते हुए सम्पूर्ण जगत् के लिए हितकारी वचन कहे।

श्रीभगवानुवाच

वर्णाश्रमाचारवतां पुंसां देवो महेश्वरः।
ज्ञानेन भक्तियोगेन पूजनीयो न चान्यथा॥८६॥

श्रीभगवान् बोले— वर्णाश्रमधर्म के अनुचर मनुष्यों के लिए ही ज्ञान एवं भक्तियोग द्वारा देव महेश्वर पूजा के योग्य हैं, अन्य प्रकार से नहीं।

विज्ञाय तत्परं तत्त्वं विभूतिं कार्यकारणम्।
प्रवृत्तिञ्चापि मे ज्ञात्वा मोक्षार्थीश्वरमर्च्चयेत्॥८७॥

मुझ परमतत्त्व, ऐश्वर्यमय, कार्य-कारण को जानकर तथा मेरी प्रवृत्ति को भी समझकर मोक्षार्थी ईश्वर की अर्चना करे।

सर्वसंगान्परित्यज्य ज्ञात्वा मायामयं जगत्।
अद्वैतं भावयात्मानं द्रक्ष्यसे परमेश्वरम्॥८८॥

सब प्रकार के संगों को छोड़कर और जगत् को मायामय जानकर, आत्मा को अद्वैत की भावना युक्त करे। इससे तुम परमेश्वर को देखोगे।

त्रिविधां भावनां ब्रह्मन्प्रोच्यमानां निबोध मे।
एका मद्विषया तत्र द्वितीया व्यक्तसंश्रया॥८९॥
अन्या च भावना ब्राह्मी विज्ञेया सा गुणातिगा।
आसामन्यतमाश्रित्य भावनां भावयेद्बुधः॥९०॥
अशक्तः संश्रयेदाद्यामित्येषा वैदिकी श्रुतिः।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तन्निष्ठस्तत्परायणः॥९१॥
समाराधय विश्वेशं ततो मोक्षमवाप्स्यसि।

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! मेरे द्वारा कही जाने वाली तीन प्रकार की भावनाएँ जान लो। उनमें से एक मेरे विषय की है तथा द्वितीय संसार से सम्बन्धित है। अन्य तीसरी भावना ब्रह्म से सम्बद्ध है। इसे गुणों से परे जानना चाहिए। विद्वान् इनमें से किसी एक का आश्रय लेकर ध्यान करे। यदि समर्थ न हो तो, इसमें से पहली भावना का आश्रय लें, ऐसी वैदिकी श्रुति है। इसलिए सब प्रकार से यत्नपूर्वक निष्ठा और तन्मयता के साथ भगवान् विश्वेश्वर की आराधना करे। उसी से मोक्ष की प्राप्ति होगी।

इन्द्रद्युम्न उवाच

किन्तत्परतरं तत्त्वं का विभूतिर्जनार्दन॥९२॥
किङ्कार्यं कारणं कस्त्वं प्रवृत्तिश्चापि का तव।

इन्द्रद्युम्न बोले— हे जनार्दन! वह परम तत्त्व क्या है और विभूति क्या है? कार्य क्या है? कारण क्या है? आप कौन हैं? आपकी प्रवृत्ति क्या है?

श्रीभगवानुवाच

परात्परतरं तत्त्वं परं ब्रह्मैकमव्ययम्॥९३॥
नित्यानन्दमयं ज्योतिरक्षरं तमसः परम्।
ऐश्वर्यं तस्य यन्नित्यं विभूतिरिति गीयते॥९४॥
कार्यं जगदथाव्यक्तं कारणं शुद्धमक्षरम्।
अहं हि सर्वभूतानामन्तर्यामीश्वरः पुरः॥९५॥

श्रीभगवान् बोले— सम्पूर्ण चराचर से परे परमतत्त्व एक अविनाशी ब्रह्म है। वह अखण्ड, आनन्दमय, तम से परे और परमज्योति स्वरूप है। इसका जो नित्य ऐश्वर्य है उसे विभूति कहते हैं। जगत् इसका कार्य है एवं शुद्ध, अविनाशी, अव्यक्त इसका कारण है। मैं ही समस्त प्राणियों का अन्तर्यामी, ईश्वर हूँ।

सर्गस्थित्यन्तकर्तृत्वं प्रवृत्तिर्मम गीयते।
एतद्विज्ञाय भावेन यथावदखिलं द्विज॥९६॥
ततस्त्वं कर्मयोगेन शाश्वतं सम्यगर्च्चय।

सर्ग, स्थिति एवं प्रलय करना मेरी प्रवृत्ति कही गयी है। हे द्विज! इन सभी बातों को विचारपूर्वक यथावत् जानकर ही तुम कर्मयोग के द्वारा शाश्वत ब्रह्म की सम्यग् अर्चना करो।

इन्द्रद्युम्न उवाच

के ते वर्णाश्रमाचारा यैः समाराध्यते परः॥९७॥
ज्ञानञ्च कीदृशं दिव्यं भावनात्रयमिश्रितम्।
कथं सृष्टमिदं पूर्वं कथं संह्रियते पुनः॥९८॥

इन्द्रद्युम्न ने पूछा — वे आपके वर्णाश्रम के आचार क्या हैं जिनसे परतत्त्व की आराधना की जाती है? तीनों भावनाओं से मिश्रित दिव्य ज्ञान कैसा है? पूर्व काल में इस संसार की सृष्टि कैसे हुई और पुनः इसका संहार कैसे किया जाता है?

कियत्यः सृष्टयो लोके वंशा मन्वन्तराणि च।
कानि तेषां प्रमाणानि पावनानि व्रतानि च॥९९॥
तीर्थान्यर्कादिसंस्थानं पृथिव्यायामविस्तरम्।
कति द्वीपाः समुद्राश्च पर्वताश्च नदीनदाः॥१००॥
ब्रूहि मे पुण्डरीकाक्ष यथावदधुना पुनः।

लोक में सृष्टियां कितनी हैं? वंश और मन्वन्तर कितने हैं? इनके प्रमाण कितने हैं? और पवित्र व्रत कौन-कौन से हैं। तीर्थ, सूर्यादिग्रहों के संस्थान एवं पृथ्वी का विस्तार क्या है? द्वीप, समुद्र, पर्वत, नदी और नद कितने हैं? हे पुण्डरीकाक्ष! इस समय पुनः मुझे यथावत् कहने की कृपा करें।

श्रीकूर्म उवाच

एवमुक्तोऽथ तेनाहं भक्तानुग्रहकाम्यया॥१०१॥
यथावदखिलं सम्यगवोचं मुनिपुंगवाः।
व्याख्यायाशेषमेवेदं यत्पृष्टोऽहं द्विजेन तु॥१०२॥

अनुगृह्य च तं विप्रं तत्रैवान्तर्हितोऽभवम्।

श्रीकूर्म बोले—उसके द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर, भक्त पर अनुग्रह की इच्छा से हे मुनिश्रेष्ठो! मैंने सब वृत्तान्त यथावत् कह दिया। द्विज ने जैसा मुझसे पूछा था, उसको भली-भाँति व्याख्या कर दी। उस ब्राह्मण पर अनुकम्पा करके मैं वहीं अन्तर्धान हो गया।

सोऽपि तेन विधानेन मदुक्तेन द्विजोत्तमाः॥ १०३॥
आराधयामास परं भावपूतः समाहितः।
त्यक्त्वा पुत्रादिषु स्नेहं निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः॥ १०४॥

हे द्विजवर! वह भी मेरे बताये हुए उस विधान से भक्ति-भाव से पवित्र एवं स्थिरचित्त होकर आराधना करने लगा। वह पुत्र आदि में स्नेहभाव को छोड़कर, द्वन्द्वरहित एवं परिग्रहशून्य हो गया।

संन्यस्य सर्वकर्माणि परं वैराग्यमाश्रितः।
आत्मन्यात्मानमन्वीक्ष्य स्वात्मन्येवाखिलं जगत्॥ १०५॥

वह समस्त कर्मों को त्यागकर परम वैराग्य के आश्रित हो गया। वह स्वयं में ही आत्मा को तथा अपनी आत्मा में सम्पूर्ण जगत् को देखने लगा (अनुभव करने लगा)।

संप्राप्य भावनामन्त्यां ब्राह्मीमक्षरपूर्विकाम्।
अवाप परमं योगं येनैकं परिपश्यति॥ १०६॥

उसने अक्षरपूर्विका ब्रह्मसम्बन्धिनी अन्तिम भावना को प्राप्त करके उस परम योग को प्राप्त किया, जिससे एक अद्वैत ब्रह्म ही दिखाई देता है।

यं विनिद्रा जितश्वासाः काङ्क्षन्ते मोक्षकाङ्क्षिणः।
ततः कदाचिद्योगीन्द्रो ब्रह्माणं द्रष्टुमव्ययम्॥ १०७॥
जगामादित्यनिर्देशान्मानसोत्तरपर्वतम्।
आकाशेनैव विप्रेन्द्रो योगैश्वर्यप्रभावतः॥ १०८॥

मोक्ष चाहने वाले व्यक्ति निद्रा (आलस्य) रहित एवं (योग द्वारा) प्राणवायु को जीतकर उस ब्रह्म को पाने की इच्छा करते हैं। अनन्तर वह योगीराज किसी समय अविनाशी ब्रह्म को देखने के लिए सूर्य के निर्देशानुसार मानसरोवर के उत्तर में स्थित (मेरु) पर्वत पर गया। वह अपने योगैश्वर्य के प्रभाव से आकाशमार्ग से ही गया था।

विमानं सूर्यसङ्काशं प्रादुर्भूतमनुत्तमम्।
अन्वगच्छन्देवगणा गन्धर्वाप्सरसां गणाः॥ १०९॥

उनके लिए सूर्य सदृश तेजस्वी एक उत्तम विमान प्रकट हुआ। देवों का समुदाय, गन्धर्व और अप्सराओं का समूह भी उनके पीछे-पीछे गया।

दृष्ट्वान्ये पथि योगीन्द्रं सिद्धा ब्रह्मर्षयो ययुः।
ततः स गत्वानुगिरिं विवेश सुरवन्दितम्॥ ११०॥

मार्ग में योगीन्द्र को जाते देखकर अन्य सिद्ध ब्रह्मर्षि भी उनका अनुगमन करने लगे। अनन्तर वह पर्वत के मध्य गमन करते हुए देववन्दित स्थान में पहुँच गया।

स्थानं तद्योगिभिर्जुष्टं यत्रास्ते परमः पुमान्।
संप्राप्य परमं स्थानं सूर्यायुतसमप्रभम्॥ १११॥
विवेश चान्तर्भवनं देवानाञ्च दुरासदम्।
विचिन्तयामास परं शरण्यं सर्वदेहिनाम्॥ ११२॥

वह योगियों द्वारा सेवित स्थान था, जहाँ परम पुरुष विराजमान रहते हैं। दस हजार सूर्य के समान प्रभावाले उस उत्कृष्ट स्थान को प्राप्त कर उसने देवदुर्लभ अन्तर्भवन में प्रवेश किया। अनन्तर वह समस्त प्राणियों के आश्रय स्थान भगवान् के चिन्तन में लग गया।

अनादिनिधनं चैव देवदेवं पितामहम्।
ततः प्रादुरभूत्तस्मिन् प्रकाशः परमाद्भुतः॥ ११३॥

वे भगवान् जन्म-मरण से रहित, देवों के देव तथा पितामह हैं। तदनन्तर वहाँ परम अद्भुत तेजोपुञ्ज प्रकट हुआ।

तन्मध्ये पुरुषं पूर्वमपश्यत् परमं पदम्।
महान्तं तेजसो राशिमगम्यं ब्रह्मविद्विषाम्॥ ११४॥

उसके मध्य परम पद, महान् तेजोराशिस्वरूप तथा ब्रह्मद्वेषियों के लिए अगम्य पुरातन पुरुष को देखा।

चतुर्मुखमुदाराङ्गमर्चिर्भिरुपशोभितम्।
सोऽपि योगिनमन्वीक्ष्य प्रणमन्तमुपस्थितम्॥ ११५॥

वे चतुर्मुख और सुन्दर शरीर वाले और चारों ओर से ज्वालाओं से सुशोभित थे। उन्होंने भी प्रणाम करते हुए उपस्थित योगी को देखा।

प्रत्युद्गम्य स्वयं देवो विश्वात्मा परिषस्वजे।
परिष्वक्तस्य देवेन द्विजेन्द्रस्याथ देहतः॥ ११६॥
निर्गत्य महती ज्योत्स्ना विवेशादित्यमण्डलम्।
ऋग्यजुःसामसंज्ञं तत्पवित्रममलं पदम्॥ ११७॥
हिरण्यगर्भो भगवान् यत्रास्ते हव्यकव्यभुक्।
द्वारं तद्योगिनामाद्यं वेदान्तेषु प्रतिष्ठितम्॥ ११८॥

उन विश्वात्मा देव ने स्वयं आगे बढ़कर योगी का आलिंगन किया। तब भगवान् के द्वारा आलिङ्गित द्विजेन्द्र के शरीर से एक महान् ज्योति निकलकर सूर्य मण्डल में प्रविष्ट हो गई। वह ऋक्, यजु और साम नाम वाला परम पवित्र और शुद्ध पद था, जहाँ हव्य-कव्यभोजी ऐश्वर्यवान् हिरण्यगर्भ विद्यमान थे, वही योगियों का आदि द्वार वेदान्तों में प्रतिष्ठित है।

ब्रह्मतेजोमयं श्रीमद्द्रष्टा चैव मनीषिणाम्।
दृष्टमात्रो भगवता ब्रह्मणार्चिर्मयो मुनिः॥ ११९॥
अपश्यदैश्वरं तेजः शान्तं सर्वत्रगं शिवम्।
स्वात्मानमक्षरं व्योम यत्र विष्णोः परं पदम्॥ १२०॥
आनन्दमचलं ब्रह्म स्थानं तत्परमेश्वरम्।
सर्वभूतात्मभूतस्थः परमैश्वर्यमास्थितः॥ १२१॥
प्राप्तवानात्मनो धाम यत्तन्मोक्षाख्यमव्ययम्।

वह ब्रह्म तेजोमय, श्रीयुक्त तथा मनीषियों का द्रष्टा था। भगवान् ब्रह्मा के देखने मात्र से ही ज्योतिर्मय मुनि ने शान्त, सर्वत्रगामी, कल्याणकारी, आत्मस्वरूप, अक्षर व्योममय, विष्णु के परम धाम, आनन्दमय, अचल तथा परमेश्वर ब्रह्मस्थान, ईश्वरीय तेज को देखा। समस्त प्राणियों में आत्मरूप से विद्यमान, परम ऐश्वर्य में स्थित उस मुनि ने मोक्ष नामक अविनाशी आत्मधाम को प्राप्त किया।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वर्णाश्रमविधौ स्थितः॥ १२२॥
समाश्रित्यान्तिमं भाव मायां लक्ष्मीं तरेद्बुधः।

इसलिए विद्वान् पुरुष सब प्रकार से यत्नपूर्वक वर्णाश्रम के नियमों का पालन करता हुआ परम गतिरूप इस अन्तिम भाव को आश्रित करके मायारूप लक्ष्मी का अतिक्रमण करे।

सूत उवाच

व्याहृता हरिणा त्वेवं नारदाद्या महर्षयः॥ १२३॥
शक्रेण सहिताः सर्वे पप्रच्छुर्गरुडध्वजम्।

सूतजी बोले— इस प्रकार हरि ने नारदादि ऋषियों से कहा। तब इन्द्र सहित सब ने गरुडध्वज भगवान् से पूछा।

ऋषय ऊचुः

देवदेव हृषीकेश नाथ नारायणाव्यय॥ १२४॥
तद्वदाशेषमस्माकं यदुक्तं भवता पुरा।
इन्द्रद्युम्नाय विप्राय ज्ञानं धर्मादिगोचरम्॥ १२५॥

ऋषियों ने कहा— हे देवाधिदेव, हृषीकेश, नारायण, अविनाशी! आपने पूर्वकाल में ब्राह्मण इन्द्रद्युम्न को जिस धर्मादि विषय का ज्ञान दिया था, उसे पूर्णरूप से हमें कहें।

शुश्रूषुश्चाप्ययं शक्रः सखा तव जगन्मय।
ततः स भगवान् विष्णुः कूर्मरूपी जनार्दनः॥ १२६॥
रसातलगतो देवो नारदाद्यैर्महर्षिभिः।
पृष्टः प्रोवाच सकलं पुराणं कौर्ममुत्तमम्॥ १२७॥

हे जगन्मय! आपके सखा ये इन्द्र भी सुनने के इच्छुक हैं। तत्पश्चात् नारद आदि महर्षियों के पूछने पर रसातलगत कूर्मरूपी जनार्दन भगवान् विष्णु ने उत्तम (कौर्म) कूर्मपुराण का सम्पूर्ण वर्णन किया था।

सन्निधौ देवराजस्य तद्वक्ष्ये भवतामहम्।
धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं मोक्षप्रदं नृणाम्॥ १२८॥

देवराज इन्द्र के सम्मुख ही मैं आप लोगों को मनुष्यों के लिए धन, यश, आयु, पुण्य और मोक्षप्रद पुराण को कहूँगा।

पुराणश्रवणं विप्राः कथनञ्च विशेषतः।
श्रुत्वा चाध्यायमेवैकं सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ १२९॥

हे विप्रो! इस पुराण के श्रवण तथा इसकी कथा का विशेष महत्त्व है। उसके एक अध्याय को भी सुनकर मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है।

उपाख्यानमथैकं वा ब्रह्मलोके महीयते।
इदं पुराणं परमं कौर्मं कूर्मस्वरूपिणा॥ १३०॥
उक्तं वै देवदेवेन श्रद्धातव्यं द्विजातिभिः॥ १३१॥

अथवा पुराण में कथित एक उपाख्यान को श्रवण करने पर भी ब्रह्मलोक में पूजित होता है। कूर्मस्वरूप अथवा कूर्मावतार धारणकर्ता देवाधिदेव विष्णु ने इस उत्तम कूर्म पुराण को कहा था, इसीलिए यह कौर्म (पुराण) कहा गया। द्विजातियों के लिए यह श्रद्धा करने योग्य है।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे इन्द्रद्युम्नमोक्षवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

द्वितीयोऽध्याय:

(वर्ण तथा आश्रमों का वर्णन)

कूर्म उवाच

शृणुध्वमृषय: सर्वे यत्पृष्टोऽहं जगद्धितम्।
वक्ष्यमाणं मया सर्वमिन्द्रद्युम्नाय भाषितम्॥ १॥

कूर्म बोले— आपने जगत् का हित-विषयक जो प्रश्न मुझसे पूछा है, आप सब ऋषिगण उसे सुनें। उस सबका वर्णन मैं कर रहा हूँ, जो इन्द्रद्युम्न को कहा गया था।

भूतैर्भव्यैर्भवद्भिश्च चरितैरुपबृंहितम्।
पुराणं पुण्यदं नृणां मोक्षधर्मानुवर्त्तिनाम्॥ २॥

भूत, भविष्य और वर्तमान के चरित्रों से उपबृंहित यह कूर्मपुराण मोक्षधर्मानुयायी मनुष्यों के लिए पुण्यदायक है।

अहं नारायणो देव: पूर्वमासीन्न मे परम्।
उपास्य विपुलां निद्रां भोगिशय्यां समाश्रित:॥ ३॥

मैं नारायण देव हूँ। मुझसे पूर्व अन्य कोई नहीं था। मैं विपुल निद्रा का आश्रय लेकर शेष-शय्या पर विराजमान था।

चिन्तयामि पुन: सृष्टिं निशान्ते प्रतिबुध्य तु।
ततो मे सहसोत्पन्न: प्रसादो मुनिपुंगवा:॥ ४॥
चतुर्मुखस्ततो जातो ब्रह्मा लोकपितामह:।
तदन्तरेऽभवत्क्रोध: कस्माच्चित्कारणात्तदा॥ ५॥

पुन: रात्रि के अन्त में जागकर सृष्टि के विषय में सोचता हूँ तभी हे मुनिश्रेष्ठो! मुझ में सहसा आनन्द उत्पन्न हुआ। उससे चतुर्मुख लोक-पितामह ब्रह्मा उत्पन्न हुए। तत्पश्चात् मुझमें किसी कारणवश क्रोध आ गया।

आत्मनो मुनिशार्दूलास्तत्र देवो महेश्वर:।
रुद्र: क्रोधात्मको जज्ञे शूलपाणिस्त्रिलोचन:॥ ६॥
तेजसा सूर्यसङ्काशस्त्रैलोक्यं संदहन्निव।
तदा श्रीरभवद्देवी कमलायतलोचना॥ ७॥

हे मुनिश्रेष्ठो! तब वहाँ मुझसे रौद्ररूपधारी क्रोधयुक्त महेश्वर देव उत्पन्न हुए। उनके हाथ में त्रिशूल था और तीन नेत्र थे। सूर्य सदृश तेज से वे मानो त्रैलोक्य को जला रहे थे। अनन्तर कमल के समान विशाल नेत्रों वाली देवी लक्ष्मी उत्पन्न हुई।

सुरूपा सौम्यवदना मोहिनी सर्वदेहिनाम्।
शुचिस्मिता सुप्रसन्ना मङ्गला महिमास्पदा॥ ८॥
दिव्यकान्तिसमायुक्ता दिव्यमाल्योपशोभिता।
नारायणी महामाया मूलप्रकृतिरव्यया॥ ९॥

वह सुन्दर रूप वाली, सौम्य मुखाकृतिवाली, समस्त देहधारियों को मोहित करने वाली, शुचिस्मिता, सुप्रसन्ना, सुमंगला और महिमायुक्त थी। वही दिव्य कान्ति से युक्त, दिव्य माला से उपशोभित, नारायणी, महामाया और अविनाशिनी मूल प्रकृति थी।

स्वधाम्ना पूरयन्तीदं मत्पार्श्वं समुपाविशत्।
तां दृष्ट्वा भगवान् ब्रह्मा मामुवाच जगत्पतिम्॥ १०॥

अपने तेज से जगत् को व्याप्त करती हुई वह मेरे पास आकर बैठ गयी। उसे देखकर भगवान् ब्रह्मा ने मुझ जगत्पति से कहा।

मोहायाशेषभूतानां नियोजय सुरूपिणीम्।
येनेयं विपुला सृष्टिर्वर्द्धते मम माधव॥ ११॥

हे माधव! संपूर्ण प्राणियों को मोह में फँसाने के लिए इस सुन्दरी को नियुक्त कीजिए, जिससे यह मेरी विपुल सृष्टि बढ़ती रहे।

तथोक्तोऽहं श्रियं देवीमब्रवं प्रहसन्निव।
देवीदमखिलं विश्वं सदेवासुरमानुषम्॥ १२॥
मोहयित्वा ममादेशात्संसारे विनिपातय।

ब्रह्मा के ऐसा कहने पर मैंने देवी लक्ष्मी से मुस्कराते हुए कहा— हे देवि! देवता, असुर और मनुष्य सहित इस सम्पूर्ण विश्व को मोह में डालकर मेरे आदेश से संसार में गिरा दो।

ज्ञानयोगरतान्दान्तान् ब्रह्मिष्ठान् ब्रह्मवादिन:॥ १३॥
अक्रोधनान् सत्यपरान्दूरत: परिवर्जय।
ध्यायिनो निर्ममान् शान्तान्धार्मिकान्वेदपारगान्॥ १४॥
याजिनस्तापसान्विप्रान्दूरत: परिवर्ज्जय।
वेदवेदान्तविज्ञानसंछिन्नाशेषसंशयान्॥ १५॥
महायज्ञपरान्विप्रान्दूरत: परिवर्ज्जय।

परन्तु ज्ञानयोग में निरत, दान्त (इन्द्रियों को दमन करने वाला), ब्रह्मनिष्ठ, ब्रह्मवादी, क्रोधरहित एवं सत्यपरायण व्यक्तियों को दूर से ही छोड़ दो। ध्यान करने वाले, निर्मल, शान्त, धार्मिक, वेदों में पारंगत, यज्ञकर्त्ता, तपस्वियों और ब्राह्मणों को दूर से ही छोड़ दो। वेद और वेदान्त के विज्ञान से जिनके समस्त संशय दूर हो गये हैं ऐसे, तथा नित्य बड़े-बड़े यज्ञ करने वाले ब्राह्मणों को दूर से ही छोड़ दे।

ये यजन्ति जपैर्होमैर्देवदेवं महेश्वरम्॥ १६॥
स्वाध्यायेनेज्यया दूरात्तान् प्रयत्नेन वर्जय।
भक्तियोगसमायुक्तानीश्वरार्पितमानसान्॥ १७॥
प्राणायामादिषु रतान्दूरात्परिहरामलान्।

जो लोग जप, होम, स्वाध्याय तथा यज्ञ के द्वारा देवाधिदेव महेश्वर का यजन करते हैं, उन्हें यत्नपूर्वक दूर से ही छोड़ दें। भक्तियोग से समाहित चित्तवाले और ईश्वर के प्रति समर्पित मन वाले, तथा शुद्ध चित्त वालों को दूर से ही त्याग दो।

प्रणवासक्तमनसो रुद्रजप्यपरायणान्॥ १८॥
अथर्वशिरसो वेत्तृन् धर्मज्ञान्परिवर्ज्जय।

प्रणव जप में आसक्त मन वाले, रुद्र का जप करने में तत्पर, अथर्ववेद के सम्पूर्ण ज्ञाता तथा धर्मज्ञों को छोड़ दो।

बहुनात्र किमुक्तेन स्वधर्मपरिपालकान्॥ १९॥
ईश्वराराधनरतान्मन्नियोगान्न मोहय।
एवं मया महामाया प्रेरिता हरिवल्लभा॥ २०॥

यहाँ बहुत अधिक क्या कहा जाय? अपने धर्म का परिपालन करने वाले तथा ईश्वर की आराधना में निरत लोगों को मेरे आदेश से मोहित न करो। इस प्रकार हरिवल्लभा महामाया मेरे द्वारा ही प्रेरित हुई थीं।

यथादेशं चकारासौ तस्माल्लक्ष्मीं समर्च्चयेत्।
श्रियं ददाति विपुलां पुष्टिं मेधां यशो बलम्॥ २१॥
अर्चिता भगवत्पत्नीं तस्माल्लक्ष्मी समर्चयेत्।
ततोऽसृजत्स भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः॥ २२॥

उसने मेरे आदेशानुसार कार्य किया। इसलिए लक्ष्मी की पूजा करनी चाहिए। पूजित होने पर वह लक्ष्मी विपुल धन, समृद्धि, बुद्धि, यश तथा बल प्रदान करती है। इसलिए विष्णुपत्नी लक्ष्मी की अर्चना करनी चाहिए। अनन्तर लोक पितामह भगवान् ब्रह्मा ने सृष्टि प्रारम्भ की थी।

चराचराणि भूतानि यथापूर्वं ममाज्ञया।
मरीचिभृग्वङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्॥ २३॥
दक्षमत्रिं वसिष्ठञ्च सोऽसृजद्योगविद्यया।
नवैते ब्रह्मणः पुत्रा ब्राह्मणा ब्राह्मणोत्तमाः॥ २४॥
ब्रह्मवादिन एवैते मरीच्याद्यास्तु साधकाः।
ससर्ज ब्राह्मणान्वक्त्रात् क्षत्रियांश्च भुजाद्विभुः॥ २५॥
वैश्यानूरुद्वयाद्देवः पद्भ्यां शूद्रान् पितामहः।
यज्ञनिष्पत्तये ब्रह्मा शूद्रवर्जं ससर्ज्ज ह॥ २६॥

पूर्ववत् मेरी आज्ञा से ब्रह्मा ने स्थावर-जंगम तथा नानाविध प्राणियों की सृष्टि की। तत्पश्चात् योगविद्या से मरीचि, भृगु, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, अत्रि और वसिष्ठ की सृष्टि की। ये नौ ब्रह्मा के पुत्र ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं। ये मरीचि आदि साधक ब्रह्मवादी ही थे। ब्रह्मा ने ब्राह्मणों को मुख से और क्षत्रियों को भुजा से उत्पन्न किया। पितामह ब्रह्मा ने वैश्यों को दोनों जंघाओं से तथा शूद्रों को देव ने पैरों से उत्पन्न किया।[1] तदनन्तर यज्ञ के सम्पादन हेतु ब्रह्माजी ने शूद्ररहित (तीनों वर्णों की) सृष्टि की।

गुप्तये सर्वदेवानां तेभ्यो यज्ञो हि निर्बभौ।
ऋचो यजूंषि सामानि तथैवाथर्वणानि च॥ २७॥
ब्रह्मणः सहजं रूपं नित्यैषा शक्तिरव्यया।
अनादिनिधना दिव्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा॥ २८॥

सभी देवों की रक्षा के लिए उन्होंने यज्ञ की सृष्टि की। तदनन्तर ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद की रचना की। ये सब ब्रह्मा के सहज रूप हैं। यह नित्य एवं अविनाशी शक्ति है। ब्रह्मा ने आदि और अन्त रहित (वेदमयी) दिव्यवाणी की सृष्टि की।

आदौ वेदमयी भूता यतः सर्वाः प्रवृत्तयः।
अतोऽन्यानि हि शास्त्राणि पृथिव्यां यानि कानिचित्॥ २९॥
न तेषु रमते धीरः पाषण्डी रमते बुधः।
वेदार्थवित्तमैः कार्यं यत्स्मृतं मुनिभिः पुरा॥ ३०॥
स ज्ञेयः परमो धर्मो नान्यशास्त्रेषु संस्थितः।
या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः॥ ३१॥
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः।
पूर्वकल्पे प्रजा जाताः सर्वबाधाविवर्जिताः॥ ३२॥

आदि में यह वेदमयी वाणी ही थी, जिससे सभी प्रवृत्तियाँ हुई हैं। इससे अन्य पृथ्वी पर जो कोई शास्त्र हैं उनमें धीर विद्वान् रमण नहीं करते, पाषण्डी विद्वान् ही रमण करता है। पूर्वकाल में वेदार्थविद् मुनियों ने जिस कार्य का स्मरण किया था उसे परम धर्म समझना चाहिए, जो अन्य शास्त्रों में है उसे नहीं। जो वेद-विरुद्ध स्मृतियाँ हैं और जो कोई कुदृष्टियाँ हैं मरणोपरान्त उसका कोई फल नहीं मिलता

1. ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः। ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत (यजु० ३१.११)

क्योंकि वे सभी तामसी कही गयी हैं। कल्प के प्रारंभ में सभी प्रकार की बाधाओं से रहित प्रजायें उत्पन्न हुई थीं।

शुद्धान्त:करणा: सर्वा: स्वधर्मपरिपालका:।
तत: कालवशात्तासां रागद्वेषादिकोऽभवत्॥ ३३॥

ये सभी शुद्ध चित्त वाली तथा अपने धर्म का पालन करने में तत्पर थीं। तदनन्तर काल के वशीभूत होने पर उनमें राग-द्वेष आदि उत्पन्न हुए।

अधर्मो मुनिशार्दूला: स्वधर्मप्रतिबन्धक:।
तत: सा सहजा सिद्धिस्तासां नातीव जायते॥ ३४॥

हे मुनिश्रेष्ठो! यह अधर्म ही अपने धर्म का प्रतिबन्धक होता है अतएव उनमें सहज सिद्धियाँ अधिक प्राप्त नहीं होतीं।

रजोमात्रात्मिकास्तासां सिद्धयोऽन्यास्तदाभवन्।
तासु क्षीणास्वशेषासु कालयोगेन ता: पुन:॥ ३५॥

अतएव अन्य रजोगुणमयी सिद्धियाँ उनको हुईं। तत्पश्चात् कालयोग से वे सब क्षीण हो जाने पर पुन: उत्पन्न हुईं।

वार्त्तोपायं पुनश्चक्रुर्हस्तसिद्धिञ्च कर्मजाम्।
ततस्तासां विभुर्ब्रह्मा कर्माजीवमकल्पयत्॥ ३६॥

पुन: कालक्रम से जीविकोपार्जन के उपाय (कृषि आदि) तथा कर्मज हस्त-सिद्धि की रचना की। अनन्तर सर्वव्यापी ब्रह्मा ने उत्तम कर्मोत्पन्न आजीविका की सृष्टि।

स्वायम्भुवो मनु: पूर्वं धर्मान्प्रोवाच सर्वदृक्।
साक्षात्प्रजापतेर्मूर्तिर्निसृष्टा ब्रह्मणो द्विजा:॥ ३७॥
भृग्वादयस्तद्वदनाच्छ्रुत्वा धर्मानथोचिरे।
यजनं याजनं दानं ब्राह्मणस्य प्रतिग्रह:॥ ३८॥
अध्यापनं चाध्ययनं षट्कर्माणि द्विजोत्तमा:।
दानमध्ययनं यज्ञो धर्म: क्षत्रियवैश्ययो:॥ ३९॥
दण्डो युद्धं क्षत्रियस्य कृषिर्वैश्यस्य शस्यते।
शुश्रूषैव द्विजातीनां शूद्राणां धर्मसाधनम्॥ ४०॥
कारुकर्म तथाजीव: पाकयज्ञादिधर्मत:।
तत: स्थितेषु वर्णेषु स्थापयामास चाश्रमान्॥ ४१॥

सर्वप्रथम सर्वद्रष्टा एवं प्रजापति की साक्षात् प्रतिमूर्ति स्वायम्भुव मनु ने धर्म को कहा। इस प्रकार ब्रह्मा से भृगु आदि ब्राह्मणों की सृष्टि हुई। हे द्विजश्रेष्ठो! उन्होंने स्वायंभुव मनु के मुख से सुनकर (प्राणियों के लिए) भिन्न-भिन्न धर्मों और कर्मों का वर्णन किया। यज्ञ करना- यज्ञ कराना और दान देना-दान लेना, पढ़ना-पढ़ाना ये छ: कर्म ब्राह्मण के लिए बताये। दान देना, अध्ययन और यज्ञ करना— ये क्षत्रिय और वैश्यों का धर्म कहा गया। उनमें भी दण्ड देना और युद्ध करना क्षत्रिय का तथा कृषि करना वैश्य का विशेष धर्म है और ब्राह्मणादि की सेवा करना शूद्रों का धर्म-साधन है। पाक यज्ञादि धर्म से शिल्प कर्म उनकी आजीविका है। इस प्रकार चारों वर्णों की प्रतिष्ठा हो जाने पर उन्होंने आश्रमों की स्थापना की।

गृहस्थञ्च वनस्थं च भिक्षुकं ब्रह्मचारिणम्।
अग्नयोऽतिथिशुश्रूषा यज्ञो दानं सुरार्च्चनम्॥ ४२॥
गृहस्थस्य समासेन धर्मोऽयं मुनिपुंगवा:।
होमो मूलफलाशित्वं स्वाध्यायस्तप एव च॥ ४३॥
संविभागो यथान्यायं धर्मोऽयं वनवासिनाम्।
भैक्षाशनञ्च मौनित्वं तपो ध्यानं विशेषत:॥ ४४॥
सम्यग्ज्ञानञ्च वैराग्यं धर्मोऽयं भिक्षुके मत:।
भिक्षाचर्या च शुश्रूषा गुरो: स्वाध्याय एव च॥ ४५॥
सन्ध्या कर्माग्निकार्यञ्च धर्मोऽयं ब्रह्मचारिणाम्।
ब्रह्मचारिवनस्थानां भिक्षुकाणां द्विजोत्तमा:॥ ४६॥
साधारणं ब्रह्मचर्यं प्रोवाच कमलोद्भव:।
ऋतुकालाभिगामित्वं स्वदारेषु न चान्यत:॥ ४७॥

गृहस्थ, वानप्रस्थ, भिक्षुक—संन्यासाश्रम और ब्रह्मचारियों का ब्रह्मचर्य — ये चार आश्रम स्थापित किये गये। हे श्रेष्ठ मुनिगण! अग्निरक्षण, अतिथि-सेवा, यज्ञ करना, दान देना और देवपूजन करना— यह संक्षेपत: गृहस्थ का धर्म कहा गया है। होम, फल-मूल का भक्षण, स्वाध्याय, तप तथा न्यायपूर्वक संविभाग यह वनवासियों का धर्म है। भिक्षा से प्राप्त अन्न ग्रहण करना, मौन रहना, तप और विशेष रूप से ध्यान लगाना, यथार्थ ज्ञान और वैराग्य— यह भिक्षुक का धर्म माना गया है। भिक्षाटन, गुरुसेवा, वेदाध्ययन, सन्ध्याकर्म तथा अग्निहोम ब्रह्मचारियों का धर्म है। हे द्विजश्रेष्ठो! ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी और संन्यासियों के लिए भी ब्रह्मचर्य पालन सामान्य धर्म है, ऐसा ब्रह्मा ने कहा है। केवल ऋतुकाल प्राप्त होने पर ही अपनी भार्या का अनुगमन करें, अन्य समय में नहीं।

पर्ववर्ज्जं गृहस्थस्य ब्रह्मचर्यमुदाहृतम्।
आगर्भधारणादाज्ञा कार्या तेनाप्रमादत:॥ ४८॥

पर्व को छोड़कर स्त्री-सहवास करना गृहस्थ के लिए ब्रह्मचर्य कहा गया है। इसलिए प्रमादवश न होकर पत्नी के गर्भ-धारण तक ऐसा करने की आज्ञा है।

अकुर्वांस्तु विप्रेन्द्रा भ्रूणहा तूपजायते।
वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्त्या श्राद्धञ्चातिथिपूजनम्॥४९॥
गृहस्थस्य परो धर्मो देवताभ्यर्चनं तथा।
वैवाह्यमग्निमिन्धीत सायं प्रातर्यथाविधि॥५०॥
देशान्तरगतो वाथ मृतपत्नीक एव च।
त्रयाणामाश्रमाणान्तु गृहस्थो योनिरुच्यते॥४९-५१॥

हे विप्रेन्द्रो! ऐसा न करने पर भ्रूण हत्या का दोष लगता है। नियमित वेदाध्ययन, शक्ति के अनुकूल श्राद्ध करना, अतिथिसेवा तथा देवार्चन गृहस्थ का परम धर्म है। सायंकाल और प्रात:काल विधिपूर्वक वैवाहिक अग्नि को प्रज्वलित करते रहे चाहे वह परदेश गया हो अथवा मृतपत्नीक (जिसकी पत्नी का देहावसान हो गया हो) हो। इस प्रकार इन तीनों आश्रमों का मूल गृहस्थाश्रम है।

अन्य तमुपजीवन्ति तस्माच्छ्रेयान् गृहाश्रमी।
एकाश्रम्यं गृहस्थस्य चतुर्णां श्रुतिदर्शनात्॥५२॥
तस्माद्गार्हस्थ्यमेवैकं विज्ञेयं धर्मसाधनम्।
परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ॥५३॥

अन्य तीनों आश्रम इसी गृहस्थाश्रम पर निर्भर हैं। अतएव गृहस्थाश्रमी सर्वश्रेष्ठ है। श्रुति की दृष्टि से भी चारों आश्रमों का एकाश्रमत्व गृहस्थाश्रम ही है। अतएव केवल गृहस्थाश्रम को ही धर्म का साधन जानना चाहिए। जो धर्म से वर्जित अर्थ और काम हो, उसका परित्याग करना चाहिए।

सर्वलोकविरुद्धञ्च धर्ममप्याचरेन्न तु।
धर्मात्संजायते ह्यर्थो धर्मात्कामोऽभिजायते॥५४॥

सर्वलोक विरुद्ध धर्म का आचरण भी नहीं करना चाहिए। धर्म से अर्थ की प्राप्ति होती है और धर्म से काम की अभिवृद्धि होती है।

धर्म एवापवर्गाय तस्माद्धर्मं समाश्रयेत्।
धर्मश्चार्थश्च कामश्च त्रिवर्गस्त्रिगुणो मत:॥५५॥

धर्म ही मोक्ष का कारण है, अतएव धर्म का ही आश्रय लेना चाहिए। धर्म, अर्थ, काम— यह त्रिवर्ग तीन गुणों वाला कहा गया है।

सत्त्वं रजस्तमश्चेति तस्माद्धर्मं समाश्रयेत्।
ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसा:॥५६॥
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसा:।
यस्मिन्धर्मसमायुक्तौ ह्यर्थकामौ व्यवस्थितौ॥५७॥
इह लोके सुखी भूत्वा प्रेत्यानन्त्याय कल्पते।
धर्मात्संजायते मोक्षो ह्यर्थात्कामोऽभिजायते॥५८॥

वे तीन गुण सत्त्व, रज और तम हैं। इसलिए धर्म के आश्रित रहना चाहिए। सत्त्व गुणाश्रित ऊर्ध्वलोक को जाते हैं, रजो गुण युक्त मध्य लोक में वास करते हैं, तमो गुण वाले जघन्य (निम्न) वृत्ति में रहते हुए निम्न अधम लोक को प्राप्त करते है। जिस व्यक्ति में अर्थ और काम धर्म से युक्त होकर रहते हैं वह इस लोक में सुखी होकर मरणोपरान्त अनन्त सुख को प्राप्त करता है। धर्म से मोक्ष की प्राप्ति होती है और अर्थ से काम की अभिवृद्धि होती है।

एवं साधनसाध्यत्वं चातुर्विध्ये प्रदर्शितम्।
य एवं वेद धर्मार्थकाममोक्षस्य मानव:॥५९॥
माहात्म्यं चानुतिष्ठेत स चानन्त्याय कल्पते।
तस्मादर्थञ्च कामञ्च त्यक्त्वा धर्मं समाश्रयेत्॥६०॥

इस प्रकार चतुर्विध (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) के विषय में साधन की सार्थकता दिखाई देती है। जो मनुष्य इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के इस माहात्म्य को जानता है और इसका वैसा ही अनुष्ठान करता है उसे अनन्त सुख की प्राप्ति होती है। इसलिए अर्थ और काम को त्याग कर धर्म के आश्रित रहना चाहिए।

धर्म्मात्संजायते सर्वमित्याहुर्ब्रह्मवादिन:।
धर्मेण धार्यते सर्वं जगत्स्थावरजंगमम्॥६१॥

धर्म से सब कुछ प्राप्त होता है ऐसा ब्रह्मवादी कहते हैं। धर्म के द्वारा स्थावर-जंगम रूप संपूर्ण जगत् धारण किया जाता है।

अनादिनिधना शक्ति: सैषा ब्राह्मी द्विजोत्तमा:।
कर्मणा प्राप्यते धर्मो ज्ञानेन च न संशय:॥६२॥

हे द्विजश्रेष्ठो! यही आद्यन्तरहिता कूटस्थ ब्राह्मी शक्ति है। कर्म और ज्ञान से ही धर्म की प्राप्ति होती है, इसमें संशय नहीं।

तस्माज्ज्ञानेन सहितं कर्मयोगं समाश्रयेत्।
प्रवृत्तञ्च निवृत्तञ्च द्विविधं कर्म वैदिकम्॥६३॥
ज्ञानपूर्वं निवृत्तं स्यात्प्रवृत्तं यदतोऽन्यथा।
निवृत्तं सेवमानस्तु याति तत्परमं पदम्॥६४॥

अतएव ज्ञानसहित कर्म का आश्रय करें। प्रवृत्तिपरक एवं निवृत्तिपरक रूप से वैदिक कर्म दो प्रकार से हैं— ज्ञानयुक्त जो कर्म है वह निवृत्तिमूलक है। उससे भिन्न जो अज्ञानाश्रित

कर्म है वह प्रवृत्तिमूलक है। निवृत्त-कर्म का सेवन करने वाला परम-पद को प्राप्त होता है।

तस्मान्निवृत्तं संसेव्यमन्यथा संसरेत्पुन:।
क्षमा दमो दया दानमलोभस्त्याग एव च॥६५॥
आर्जवं चानसूया च तीर्थानुसरणं तथा।
सत्यं सन्तोषमास्तिक्यं श्रद्धा चेन्द्रियनिग्रह:॥६६॥
देवताभ्यर्चनं पूजा ब्राह्मणानां विशेषत:।
अहिंसा प्रियवादित्वमपैशुन्यमकल्कता॥६७॥
सामासिकमिमं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनु:।
प्राजापत्यं ब्राह्मणानां स्मृतं स्थानं क्रियावताम्॥६८॥

इसलिए निवृत्त कर्म का ही सेवन करना चाहिए, अन्यथा संसार में पुन: भ्रमण करना पड़ता है। क्षमा, इन्द्रियों का दमन, दया, दान, लोभ का अभाव, त्याग, सरलता, अनसूया, तीर्थगमन, सत्य, सन्तोष, आस्तिकता, श्रद्धा, इन्द्रियनिग्रह, देवार्चन विशेषत: ब्राह्मण की पूजा, अहिंसा, प्रियवादिता, पिशुनता (चुगलखोरी) न करना, निष्पाप दोनों ये चारों वर्णों के लिए सामान्य धर्म हैं, ऐसा मनु ने कहा है। कर्मनिरत ब्राह्मणों के लिए प्राजापत्य (ब्रह्मा का) स्थान कहा गया है।

स्थानमैन्द्रं क्षत्रियाणां संग्रामेष्वपलायिनाम्।
वैश्यानां मारुतं स्थानं स्वधर्ममनुवर्त्तताम्॥६९॥
गान्धर्वं शूद्रजातीनां परिचारेण वर्त्तताम्।
अष्टाशीतिसहस्राणामृषीणामूर्ध्वरेतसाम्॥७०॥
स्मृतं तेषान्तु यत्स्थानं तदेव गुरुवासिनाम्।
सप्तर्षीणान्तु यत्स्थानं स्मृतं तद्वै वनौकसाम्॥७१॥

संग्राम में न भागने वाले क्षत्रियों के लिए ऐन्द्र (इन्द्र सम्बन्धी) स्थान और अपने धर्म का आचरण करने वाले वैश्यों के लिए मारुत (मरुत् सम्बन्धी) स्थान निर्दिष्ट है। द्विजातियों की सेवा करने वाले शूद्रों का गान्धर्व (गन्धर्वों का) स्थान कहा गया है। अट्ठासी हजार उर्ध्वरेता ऋषियों के लिए जो स्थान कहा गया है वही स्थान गुरु के समीप अध्ययन करने वाले के लिए बताया गया है। सप्तर्षियों का जो स्थान कहा गया है, वही वानप्रस्थों को प्राप्त होता है।

प्राजापत्यं गृहस्थानां स्थानमुक्तं स्वयंभुवा।
यतीनां जितचित्तानां न्यासिनामूर्ध्वरेतसाम्॥७२॥
हैरण्यगर्भं तत्स्थानं यस्मान्नावर्त्तते पुन:।
योगिनाममृतं स्थानं व्योमाख्यं परमक्षरम्॥७३॥
आनन्दमैश्वरं धाम सा काष्ठा सा परा गति:।

स्वयम्भू ब्रह्मा ने गृहस्थों का स्थान प्राजापत्य कहा है। जितेन्द्रिय यतियों तथा ऊर्ध्वरेता संन्यासियों का स्थान हैरण्यगर्भ है। यह वह स्थान है जहाँ से पुन: संसार में आना नहीं पड़ता। योगियों के लिए अमृतमय नित्य अक्षर ऐश्वर्य सम्पन्न आनन्दमय व्योम नामक धाम है। वही पराकाष्ठा और वही परमगति है।

ऋषय ऊचु:

भगवन्देवतारिघ्न हिरण्याक्षनिषूदन॥७४॥
चत्वारो ह्याश्रमा: प्रोक्ता योगिनामेक उच्यते।

ऋषियों ने कहा— हे भगवन्! देवशत्रुओं को मारने वाले! हिरण्याक्ष का वध करने वाले! (समान रूप में) आपने आश्रम चार कहे हैं किन्तु योगियों के लिए केवल एक आश्रम ही बताया है।

कूर्म उवाच

सर्वकर्माणि संन्यस्य समाधिमचलं श्रित:॥७५॥
य आस्ते निश्चलो योगी स संन्यासी च पञ्चम:।
सर्वेषामाश्रमाणान्तु द्वैविध्यं श्रुतिदर्शितम्॥७६॥

कूर्म बोले— जो सभी कर्मों को त्याग कर नित्य समाधि के आश्रित रहता है वही निश्चल योगी है और वही पञ्चम संन्यासी भी है। श्रुति के अनुसार सभी आश्रम दो प्रकार के दिखाये गये हैं।

ब्रह्मचार्युपकुर्वाणो नैष्ठिको ब्रह्मतत्पर:।
योऽधीत्य विधिवद्वेदान् गृहस्थाश्रममाव्रजेत्॥७७॥
उपकुर्वाणको ज्ञेयो नैष्ठिको मरणान्तिक:।
उदासीन: साधकश्च गृहस्थो द्विविधो भवेत्॥७८॥

ब्रह्मचारी के दो प्रकार बताये गये हैं— एक उपकुर्वाण और दूसरा ब्रह्मलीन नैष्ठिक। जो विधिवत् वेदों का अध्ययन करके गृहस्थाश्रम में आता है उसे उपकुर्वाण जानना चाहिए। मरणपर्यन्त ब्रह्मचर्य धारण करने वाला नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहा गया है। उदासीन और साधक के भेद से गृहस्थी भी दो प्रकार का है।

कुटुम्बभरणायत्त: साधकोऽसौ गृही भवेत्।
ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य त्यक्त्वा भार्याधनादिकम्॥७९॥
एकाकी यस्तु विचरेदुदासीन: स मौक्षिक:।
तपस्तप्यति योऽरण्ये यजेद्देवान् जुहोति च॥८०॥

स्वाध्याये चैव निरतो वनस्थस्तापसो मतः।
तपसा कर्षितोऽत्यर्थं यस्तु ध्यानपरो भवेत्॥८१॥
सांन्यासिकः स विज्ञेयो वानप्रस्थाश्रमे स्थितः।
योगाभ्यासरतो नित्यमारुरुक्षुर्जितेन्द्रियः॥८२॥
ज्ञानाय वर्त्तते भिक्षुः प्रोच्यते पारमेष्ठिकः।
यस्त्वात्मरतिरेव स्यान्नित्यतृप्तो महामुनिः॥८३॥
सम्यग्दर्शनसम्पन्नः स योगी भिक्षुरुच्यते।
ज्ञानसंन्यासिनः केचिद्वेदसंन्यासिनोऽपरे॥८४॥

कुटुम्ब के भरण-पोषण में तत्पर रहने वाला गृहस्थ साधक होता है और जो तीन प्रकार के ऋणों को दूर करके पत्नी और धन आदि का त्याग कर मोक्ष के इच्छुक जो एकाकी विचरता है उसे उदासीन कहते है। जो वन में तपस्या करता है, देवों की पूजा तथा यज्ञ करता है और स्वाध्याय में तत्पर रहता है, उस तपस्वी को वानप्रस्थी कहते हैं। जो तप के द्वारा क्षीणकाय होकर ध्यानमग्न रहता है उसे वानप्रस्थ आश्रम में रहने वाला संन्यासी समझना चाहिए। जो सदा योगाभ्यास में निरत, जितेन्द्रिय, अपने लक्ष्य पर आरोहण के इच्छुक और ज्ञान प्राप्ति के लिए प्रयत्नरत भिक्षुक पारमेष्ठिक कहा जाता है। जो आत्मा में ही रमण करने वाला, सदा आनन्दमग्न, अत्यन्त मननशील और सम्यग् दर्शन-सम्पन्न है वह योगी भिक्षु कहलाता है। उनमें भी कोई ज्ञानसंन्यासी हुआ करते हैं और कोई वेदसंन्यासी होते हैं।

कर्मसंन्यासिनः केचित्त्रिविधाः पारमेष्ठिकाः।
योगी च त्रिविधो ज्ञेयो भौतिकः सांख्य एव च॥८५॥
तृतीयो ह्याश्रमी प्रोक्तो योगमुत्तममाश्रितः।
प्रथमा भावना पूर्वे सांख्ये त्वक्षरभावना॥८६॥
तृतीय चान्तिमा प्रोक्ता भावना पारमेश्वरी।
तस्मादेतद्विजानीध्वमाश्रमाणां चतुष्टयम्॥८७॥

कुछ कर्म संन्यासी होते हैं। इस प्रकार से पारमेष्ठिक भिक्षुक तीन प्रकार के हुआ करते हैं। योगी भी तीन प्रकार के माने गये हैं। उसमें एक भौतिक, दूसरा सांख्य (तत्त्वदर्शी) और तीसरा उत्तम योगाश्रित आश्रमी कहा गया है। पहले योगी में प्रथम भावना होती है। दूसरे सांख्य योगी में अक्षर भावना और तीसरे में अन्तिम पारमेश्वरी भावना कही गई है। इस प्रकार आश्रमों का चतुष्टयत्व जान लेना चाहिए।

सर्वेषु वेदशास्त्रेषु पञ्चमो नोपपद्यते।
एवं वर्णाश्रमान् सृष्ट्वा देवदेवो निरञ्जनः॥८८॥
दक्षादीन्प्राह विश्वात्मा सृजध्वं विविधाः प्रजाः।
ब्रह्मणो वचनात्पुत्रा दक्षाद्या मुनिसत्तमाः॥८९॥
असृजन्त प्रजाः सर्वे देवमानुषपूर्वकाः।
इत्येवं भगवान् ब्रह्मा स्रष्टृत्वे संव्यवस्थितः॥९०॥
अहं वै पालयामीदं संहरिष्यति शूलभृत्।
तिस्रस्तु मूर्तयः प्रोक्ता ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥९१॥
रजःसत्त्वतमोयोगात्परस्य परमात्मनः।
अन्योन्यमनुरक्तास्ते ह्यन्योन्यमुपजीविनः॥९२॥
अन्योन्यप्रणताश्चैव लीलया परमेश्वराः।
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव तथैवाक्षरभावना॥९३॥
तिस्रस्तु भावना रुद्रे वर्त्तन्ते सततं द्विजाः।
प्रवर्तते मय्यजस्रमाद्या त्वक्षरभावना॥९४॥
द्वितीया ब्रह्मणः प्रोक्ता: देवस्याक्षरभावना।
अहं चैव महादेवो न भिन्नः परमार्थतः॥९५॥

समस्त वेदशास्त्रों में पंचम आश्रम की गणना नहीं है। इस प्रकार देवाधिदेव, निरंजन, विश्वात्मा प्रभु ने वर्णाश्रमों की सृष्टि करके दक्ष आदि ऋषियों से कहा— आप लोग अब विविध प्रजाओं का सृजन करें। ब्रह्मा के वचन सुनकर उनके पुत्र दक्ष आदि मुनिवरों ने सब देवता, मनुष्य आदि विविध प्रजा की सृष्टि की। इस प्रकार सृष्टि के कार्य में संव्यवस्थित होकर भगवान् ब्रह्मा ने कहा— मैं ही सृष्टि का पालन करूंगा और शंकर इनका संहार करेंगे। सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण के योग से उस परम पिता परमात्मा की तीन मूर्तियां हैं जिन्हें ब्रह्मा, विष्णु और महेश कहते हैं। ये एक दूसरे में अनुरक्त और परस्पर उपजीवी हैं। परमेश्वर की लीला से ये एक-दूसरे की ओर प्रणत रहते हैं। ब्राह्मी, माहेश्वरी और अक्षरभावना— ये तीनों निरन्तर रुद्र में विराजमान रहती हैं। आद्या जो अक्षरभावना है वह मुझमें निरन्तर प्रवर्तित होती रहती है। द्वितीय अक्षरभावना ब्रह्मा की कही गई है। वस्तुतः मैं और महादेव भिन्न नहीं हैं।

विभज्य स्वेच्छयात्मानं सोऽन्तर्यामीश्वरः स्थितः।
त्रैलोक्यमखिलं स्रष्टुं सदेवासुरमानुषम्॥९६॥
पुरुषः परतोऽव्यक्तः ब्रह्मत्वं समुपागमत्।
तस्माद्ब्रह्मा महादेवो विष्णुर्विश्वेश्वरः परः॥९७॥
एकस्यैव स्मृतास्तिस्रस्तनवस्तत्कार्यवशात्प्रभोः।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वन्द्याः पूज्या विशेषतः॥९८॥

देव, असुर और मानव सहित सम्पूर्ण त्रैलोक्य का सृजन करने के लिए वह अन्तर्यामी ईश्वर स्वेच्छा से स्वयं को विभक्त करके स्थित है। वह अव्यक्त परम पुरुष ब्रह्मरूप को प्राप्त हुआ। इसलिए ब्रह्मा, महादेव और विश्वेश्वर विष्णु— ये तीनों एक ही परमात्मा के कार्यवश तीन रूपों में वर्णित हैं। अतएव तीनों ही सब प्रकार से विशेषरूप से वन्दनीय और पूज्य हैं।

यदीच्छेदचिरात्स्थानं यत्तन्मोक्षाख्यमव्ययम्।
वर्णाश्रमप्रयुक्तेन धर्मेण प्रीतिसंयुत:॥ ९९॥
पूजयेद्भावयुक्तेन यावज्जीवं प्रतिज्ञया।
चतुर्णामाश्रमाणान्तु प्रोक्तोऽयं विधिवद् द्विजा:॥ १००॥

यदि शीघ्र ही मोक्षनामक अविनाशी स्थान को पाने की इच्छा हो तो प्रीतियुक्त होकर वर्णाश्रमप्रयुक्त धर्म से तथा भक्तिभाव से जीवनपर्यन्त प्रतिज्ञापूर्वक इसकी पूजा करनी चाहिए। हे ब्राह्मणो! इस प्रकार चारों आश्रमों का वर्णन मैंने विस्तारपूर्वक कर दिया है।

आश्रमो वैष्णवो ब्राह्मो हराश्रम इति त्रय:।
तल्लिङ्गधारी नियतं तद्भक्तजनवत्सल:॥ १०१॥
ध्यायेदथार्चयेदेतान् ब्रह्मविद्यापरायण:।
सर्वेषामेव भक्तानां शम्भोर्लिङ्गमनुत्तमम्॥ १०२॥

वैष्णव, ब्राह्म और हराश्रम ये तीन प्रकार का आश्रम है। उन-उन के नियत लिङ्गों को धारण करने वाले, उनके भक्तजनों के प्रति वत्सलता का भाव रखने वाले और ब्रह्मविद्या में निरत रहने वाले उनका ध्यान और अर्चन करें। सभी भक्तों के लिए शम्भु के चिह्न उत्तम होते हैं।

सितेन भस्मना कार्यं ललाटे तु त्रिपुंड्रकम्।
यस्तु नारायणं देवं प्रपन्न: परमं पदम्॥ १०३॥
धारयेत्सर्वदा शूलं ललाटे गन्धवारिभि:।
प्रपन्ना ये जगद्बीजं ब्रह्माणं परमेष्ठिनम्॥ १०४॥
तेषां ललाटे तिलकं धारणीयन्तु सर्वदा।
योऽसावनादिर्भूतादि: कालात्मासौ धृतो भवेत्॥ १०५॥
उपर्यधोभागयोगात्त्रिपुंड्रस्य तु धारणात्।
यत्तत्प्रधानं त्रिगुणं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम्॥ १०६॥
धृतन्तु शूलधरणाद्भवत्येव न संशय:।
ब्रह्मतेजोमयं शुक्लं यदेतन्मण्डलं रवे:॥ १०७॥
भवत्येव धृतं स्थानमैश्वरं तिलके कृते।
तस्मात्कार्यं त्रिशूलांकं तथा च तिलकं शुभम्॥ १०८॥

ललाट में श्वेत भस्म से त्रिपुण्ड्र लगाना चाहिए। जो परम पद नारायण देव के शरणागत है, उसे ललाट में सदा गन्ध-जल द्वारा शूल को धारण करना चाहिए। जो जगत् के बीजरूप परमेष्ठी ब्रह्मा की शरण को प्राप्त हो, उसे ललाट में सर्वदा तिलक धारण करना चाहिए। ऊपरी और अधोभाग के योग से त्रिपुण्ड्र धारण करने से वह अनादि, भूतों का आदि जो कालात्मा है, वह धृत हो जाता है। और जो ब्रह्मा-विष्णु-शिवात्मक त्रिगुणात्मक प्रधान है वह शूल के धारण करने से धृत हो जाता है, इसमें संशय नहीं। तिलक धारण करने पर ब्रह्म के तेज से युक्त, शुक्ल और ऐश्वर्य का स्थानरूप जो सूर्यमण्डल है, वही धारण किया हुआ होता है। अतएव त्रिशूल के चिह्न को तथा शुभकारी तिलक को धारण करना चाहिए।

आयुष्यञ्चापि भक्तानां त्रयाणां विधिपूर्वकम्।
यजेत जुहुयादग्नौ जपेद्दद्याज्जितेन्द्रिय:॥ १०९॥
शान्तो दान्तो जितक्रोधी वर्णाश्रमविधानवित्।
एवं परिचरेद्देवान् यावज्जीवं समाहित:॥ ११०॥
तेषां स्वस्थानमचलं सोऽचिरादधिगच्छति॥ १११॥

यह सब विधिपूर्वक करने से तीनों प्रकार के भक्तों की आयु वृद्धि होती है। जितेन्द्रिय, वर्णाश्रम के विधान का ज्ञाता, शान्त, दान्त एवं क्रोध को जीतने वाला यजन करे, अग्नि में होम करे तथा जप और दान करे। इस प्रकार जीवनपर्यन्त समाहित चित्त से देवों की परिचर्या करे। ऐसा करने पर वह शीघ्र ही देवों के अचल स्थान को प्राप्त कर लेता है।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे वर्णाश्रमवर्णनं नाम
द्वितीयोऽध्याय:॥ २॥

तृतीयोऽध्याय:

(आश्रमों का क्रम)

ऋषय ऊचु:

वर्णा भगवतोद्दिष्टाश्चत्वारोऽप्याश्रमास्तथा।
इदानीं क्रममस्माकमाश्रमाणां वद प्रभो॥ १॥

ऋषियों ने पूछा— आप प्रभु ने चारों वर्ण तथा चारों आश्रमों के विषय में उपदेश दिया। हे प्रभु! अब हमारे लिए आश्रमों का क्रम वर्णन करें।

कूर्म उवाच

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा।
क्रमेणैवाश्रमा: प्रोक्ता: कारणादन्यथा भवेत्॥ २॥

कूर्मरूप विष्णु बोले- ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास ये चार आश्रम ही क्रमश: कहे गए हैं। कुछ कारण से इनमें क्रमभेद हो सकता है।

उत्पन्नज्ञानविज्ञानी वैराग्यं परमं गत:।
प्रव्रजेद्ब्रह्मचर्यात्तु यदीच्छेत्परमां गतिम्॥ ३॥

जिसमें ज्ञान उत्पन्न हो गया है, ऐसा विवेकी और परम वैराग्य को प्राप्त मनुष्य यदि परम गति (मोक्ष) की इच्छा करता है, तो वह ब्रह्मचर्य से संन्यास ग्रहण कर ले।

दारानाहृत्य विधिवदन्यथा विविधैर्मखै:।
यजेदुत्पादयेत्पुत्रान् विरक्तो यदि संन्यसेत्॥ ४॥
अनिष्ट्वा विधिवद्यज्ञैरनुत्पाद्य तथात्मजान्।
न गार्हस्थ्यं गृही त्यक्त्वा संन्यसेद्बुद्धिमान् द्विज:॥ ५॥

अन्यथा (गृहस्थ को चाहिए) विधिवत् पत्नी से विवाह करके अनेक यज्ञों का यजन करे और पुत्रों को उत्पन्न करें। यदि विरक्त हो गया हो तो संन्यास ग्रहण कर ले। परन्तु विधिवत् यज्ञों का यजन किये बिना तथा पुत्रों को जन्म दिये बिना बुद्धिमान् गृहस्थ द्विज गार्हस्थ्य धर्म को छोड़कर संन्यास ग्रहण न करे।

अथ वैराग्यवेगेन स्थातुं नोत्सहते गृहे।
तत्रैव संन्यसेद्विद्वाननिष्ट्वापि द्विजोत्तम:॥ ६॥

पश्चात् यदि वह वैराग्याधिक्य के कारण घर में स्थित रहने का उत्सुक न हो, तो वह द्विजश्रेष्ठ बिना यज्ञादि अनुष्ठान के ही तत्काल संन्यास ले ले।

तथापि विविधैर्यज्ञैरिष्ट्वा वनमथाश्रयेत्।
तपस्तप्त्वा तपोयोगाद्विरक्त: संन्यसेद्बहि:॥ ७॥

और भी, वह अनेक प्रकार के यज्ञों का यजन करके वानप्रस्थ का आश्रय ले ले। वहाँ तपादि करके तपोबल से विरक्त होकर बाहर ही संन्यास धारण कर ले।

वानप्रस्थाश्रमं गत्वा न गृहं प्रविशेत्पुन:।
न संन्यासी वनञ्चाथ ब्रह्मचर्यञ्च साधक:॥ ८॥

वानप्रस्थ में जाकर पुन: घर में प्रवेश न करे। उसी प्रकार साधक संन्यासी भी वानप्रस्थ और गृहस्थ में पुन: प्रवेश न करे।

प्राजापत्यान्निरूप्येष्टिमाग्नेयीमथवा द्विज:।
प्रव्रजेत्तु गृही विद्वान् वनाद्वा श्रुतिचोदनात्॥ ९॥
प्रकर्तुमसमर्थोऽपि जुहोति यजति क्रिया:।
अन्ध: पङ्गुर्दरिद्रो वा विरक्त: संन्यसेद्द्विज:॥ १०॥

विद्वान् गृही प्राजापत्य अथवा आग्नेयी यज्ञों का यजन करके श्रुतिवचन से वानप्रस्थ से संन्यास का प्रव्रजन करे। करने में असमर्थ होता हुआ भी वह सब क्रियाओं का होम और यजन करता रहता है। अन्धा, लंगड़ा या दरिद्र द्विज भी विरक्त होकर संन्यास ग्रहण कर ले।

सर्वेषामेव वैराग्यं संन्यासे तु विधीयते।
पतत्येवाविरक्तो य: संन्यासं कर्तुमिच्छति॥ ११॥

संन्यास ग्रहण करने में सभी के लिए वैराग्य का विधान है। जो अविरक्त पुरुष संन्यास की इच्छा करता है, वह गिर जाता है।

एकस्मिन्नथवा सम्यग्वर्तेतामरणान्तिकम्।
श्रद्धावानाश्रमे युक्त: सोऽमृतत्वाय कल्पते॥ १२॥

अथवा एक ही आश्रम में आजीवन सम्यक् प्रकार से आचरण करता रहे। इस प्रकार अपने आश्रम में श्रद्धावान् होकर जो रहता है, वह अमृतत्व के लिए नियुक्त होता है।

न्यायागतधन: शान्तो ब्रह्मविद्यापरायण:।
स्वधर्मपालको नित्यं ब्रह्मभूयाय कल्पते॥ १३॥

न्यायपूर्वक धन कमाने वाला, परम शान्त, ब्रह्मविद्यापरायण और स्वधर्मपालक सदा ब्रह्म के लिए कल्पित होता है।

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि नि:सङ्ग: कामवर्जित:।
प्रसन्नेनैव मनसा कुर्वाणो याति तत्पदम्॥ १४॥

जो समस्त कर्मों को ब्रह्म में निहित करके नि:सङ्ग और कामरहित होकर प्रसन्न मन से कर्म करता है, वह उस ब्रह्मपद को पाता है।

ब्रह्मणा दीयते देयं ब्रह्मणे संप्रदीयते।
ब्रह्मैव दीयते चेति ब्रह्मार्पणमिदं परम्॥ १५॥

जो कुछ देय है, वह ब्रह्म के द्वारा ही दिया जाता है, अतएव ब्रह्म के लिए ही वह सब समर्पित किया जाता है। ब्रह्म ही दिया जाता है, इसलिए यही परम ब्रह्मार्पण है।

नाहं कर्ता सर्वमेतद्ब्रह्मैव कुरुते तथा।
एतद्ब्रह्मार्पणं प्रोक्तमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभि:॥ १६॥

में कर्ता नहीं हूँ। यह सब कुछ ब्रह्म ही करता है। तत्त्वदर्शी ऋषियों के द्वारा यही ब्रह्मार्पण कहा गया है।

प्रीणातु भगवानीशः कर्मणानेन शाश्वतः।
करोति सततं बुद्ध्या ब्रह्मार्पणमिदं परम्॥ १७॥

इस कर्म से नित्य, भगवान् ईश प्रसन्न हों। जो निरंतर बुद्धिपूर्वक ऐसा करता है, यही उसका परम ब्रह्मार्पण है।

यद्वा फलानां संन्यासं प्रकुर्यात्परमेश्वरे।
कर्मणामेतदप्याहुर्ब्रह्मार्पणमनुत्तमम्॥ १८॥

अथवा, जो कर्मफलों को परमेश्वर के प्रति समर्पित कर देता है, उन करमों का भी यही उत्तम ब्रह्मार्पण कहा गया है।

कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं सङ्गवर्जितम्।
क्रियते विदुषा कर्म तद्भवेदपि मोक्षदम्॥ १९॥

जो विद्वान् अनासक्त होकर शास्त्रविहित कर्मों को यह मेरा कर्तव्य है- ऐसा मानकर, नियत रूप से करता है, उसका वह कर्म भी मोक्ष देने वाला होता है।

अथवा यदि कर्माणि कुर्यान्नित्यान्यपि द्विजः।
अकृत्वा फलसंन्यासं बध्यते तत्फलेन तु॥ २०॥

अथवा यदि द्विज फल का त्याग किये बिना नित्य कर्मों को करता है, तो भी उस कर्मफल से वह बँधता नहीं है।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन त्यक्त्वा कर्माश्रितं फलम्।
अविद्वानपि कुर्वीत कर्माप्नोति चिरात्पदम्॥ २१॥

इस कारण सब प्रकार से यत्नपूर्वक कर्माश्रित फल का त्याग करके अविद्वान् भी यदि कर्म करता है, तो भी वह चिरकाल में उत्तम अभीष्ट पद को प्राप्त करता है।

कर्मणा क्षीयते पापमैहिकं पौर्विकं तथा।
मनःप्रसादमन्वेति ब्रह्मविज्ज्ञायते नरः॥ २२॥

कर्म के द्वारा ऐहिक और पौर्विक अर्थात् पहले जन्म के पापों का नाश होता है। तब मनुष्य मन से प्रसन्न हो जाता है और ब्रह्मवेत्ता जाना जाता है।

कर्मणा सहिताज्ज्ञानात् सम्यग्योगोऽभिजायते।
ज्ञानं च कर्मसहितं जायते दोषवर्जितम्॥ २३॥

कर्म सहित ज्ञान से सम्यक् योग की प्राप्ति होती है। कर्म सहित ज्ञान दोषवर्जित उत्पन्न होता है।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन यत्र तत्राश्रमे रतः।
कर्माणीश्वरतुष्ट्यर्थं कुर्यान्नैष्कर्म्यमाप्नुयात्॥ २४॥

इस कारण सब प्रकार से यत्नपूर्वक जिस किसी आश्रम में रहते हुए (आसक्ति रहित) ईश्वर की तुष्टि के लिए कर्मों को करें। इससे निष्काम भाव की प्राप्ति होती है।

संप्राप्य परमं ज्ञानं नैष्कर्म्यं तत्प्रसादतः।
एकाकी निर्ममः शान्तो जीवन्नेव विमुच्यते॥ २५॥

उनकी परम कृपा से नैष्कर्म्य भाव को तथा परम ज्ञान को प्राप्त करके वह एकाकी, मोहरहित, शांत जीवन-यापन करते हुए विमुक्त हो जाता है।

वीक्षते परमात्मानं परं ब्रह्म महेश्वरम्।
नित्यानन्दी निराभासस्तस्मिन्नेव लयं व्रजेत्॥ २६॥

अनन्तर वह परब्रह्म महेश्वर परमात्मा का दर्शन करता है तथा नित्य आनन्दमय होकर एवं निराभास होकर ब्रह्म में लीन हो जाता है।

तस्मात्सेवेत सततं कर्मयोगं प्रसन्नधीः।
तृप्तये परमेशस्य तत्पदं याति शाश्वतम्॥ २७॥

इसलिए प्रसन्नचित्त मनुष्य निरंतर परमेश्वर की तुष्टि के लिए कर्मयोग का आश्रय ग्रहण करें। ऐसा करने से शाश्वत पद को प्राप्त करता है।

एतद्वः कथितं सर्वं चातुराश्रम्यमुत्तमम्।
न ह्येतत्समतिक्रम्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥ २८॥

इस प्रकार सभी चारों आश्रमों का अत्युत्तम वर्णन मैंने कर दिया है। इनका अतिक्रमण करके मनुष्य कभी भी सिद्धि तो प्राप्त नहीं करता।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे चातुराश्रम्यकथनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

चतुर्थोऽध्यायः

(प्राकृत-सर्ग कथन)

सूत उवाच

श्रुत्वाश्रमविधिं कृत्स्नमृषयो हृष्टचेतसः।
नमस्कृत्य हृषीकेशं पुनर्वचनमब्रुवन्॥ १॥

सूत ने **कहा**– चारों आश्रमों की पूर्ण विधि को श्रवण करके ऋषिगण प्रसन्नचित्त हो गये। वे पुनः भगवान् हृषीकेश (सर्व-इन्द्रियनियन्ता) को नमस्कार कर इस प्रकार वचन बोले।

मुनय ऊचु:

भाषितं भवता सर्वं चातुराश्रम्यमुत्तमम्।
इदानीं श्रोतुमिच्छामो यथा सम्भवते जगत्॥ २॥

मुनियों ने कहा– आपने चारों आश्रमों का उत्तम प्रकार से वर्णन कर दिया। अब हम संसार कैसे उत्पन्न होता है, इस विषय में सुनना चाहते हैं।

कुत: सर्वमिदं जातं कस्मिंश्च लयमेष्यति।
नियन्ता कश्च सर्वेषां वदस्व पुरुषोत्तम॥ ३॥

हे पुरुषोत्तम! यह सम्पूर्ण जगत् कहाँ से उत्पन्न हुआ है और किसमें जाकर यह लय को प्राप्त होगा? इन सबका नियंता कौन है? यह आप कहें।

श्रुत्वा नारायणो वाक्यमृषीणां कूर्मरूपधृक्।
प्राह गम्भीरया वाचा भूतानां प्रभवोऽव्यय:॥ ४॥

कूर्मरूपधारी अविनाशी एवं भूतों के उत्पादक भगवान् नारायण ने ऋषियों के वचन सुनकर गंभीर वाणी में कहा।

कूर्म उवाच

महेश्वर: परोऽव्यय: चतुर्व्यूह: सनातन:।
अनन्तश्चाप्रमेयश्च नियन्ता सर्वतोमुख:॥ ५॥

कूर्म उवाच– महेश्वर परम अविनाशी, चतुर्व्यूह, सनातन, अनंत, अप्रमेय, सब प्राणियों के मुखरूप और सब पर नियंत्रण करने वाले हैं।

अव्यक्तं कारणं यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम्।
प्रधानं प्रकृतिश्चेति यमाहुस्तत्त्वचिन्तका:॥ ६॥

तत्त्ववेत्ताओं ने उन्हीं को अव्यक्त, कारण, नित्य, सत् और असत्‌रूप, प्रधान तथा प्रकृति कहा है।

गन्धवर्णरसैर्हीनं शब्दस्पर्शविवर्जितम्।
अजरं ध्रुवमक्षय्यं नित्यं स्वात्मन्यवस्थितम्॥ ७॥

वह (परमात्मा) गन्ध, वर्ण तथा रस से हीन, शब्द और स्पर्श से वर्जित, अजर, ध्रुव, अक्षय, नित्य और अपनी आत्मा में अवस्थित रहते हैं।

जगद्योनिर्महाभूतं परब्रह्म सनातनम्।
विग्रह: सर्वभूतानामात्मनाधिष्ठितं महत्॥ ८॥
अनाद्यन्तमजं सूक्ष्मं त्रिगुणं प्रभवाव्ययम्।
असाम्प्रतमविज्ञेयं ब्रह्माग्रे समवर्त्तत॥ ९॥

वही जगत् के उत्पत्तिस्थान, महाभूत, परब्रह्म, सनातन, सभी भूतों के विग्रहरूप, आत्मा से अधिष्ठित, सर्वकाजी, अनादि, अनन्त, अजन्मा, सूक्ष्म, त्रिगुण, प्रभव, अव्यय, असाम्प्रत और अविज्ञेय ब्रह्म सर्वप्रथम विद्यमान था।

गुणसाम्ये तदा तस्मिन् पुरुषे चात्मनि स्थिते।
प्राकृत: प्रलयो ज्ञेयो यावद्विश्वसमुद्भव:॥ १०॥

उस समय आत्मा में अधिष्ठित पुरुष में गुण साम्य होने पर जब तक विश्व की उत्पत्ति नहीं होती है उसे प्राकृत प्रलय जानना चाहिए।

ब्राह्मी रात्रिरियं प्रोक्ता ह्यह: सृष्टिरुदाहृता।
अहर्न विद्यते तस्य न रात्रिर्ह्युपचारत:॥ ११॥

इस प्रलय को ही ब्रह्मा की रात्रि कहा गया है और सृष्टि उसका दिन कहा गया है। उपचारत: ब्रह्मा का न तो दिन होता है और न रात ही होती है।

निशान्ते प्रतिबुद्धोऽसौ जगदादिरनादिमान्।
सर्वभूतमयोऽव्यक्तादन्तर्यामीश्वर: पर:॥ १२॥
प्रकृतिं पुरुषं चैव प्रविश्याशु महेश्वर:।
क्षोभयामास योगेन परेण परमेश्वर:॥ १३॥

निशा के अन्त में जागृत होने पर जगत् के आदि, अनादि, सर्वभूतमय, अव्यक्त, अन्तर्यामी ईश्वर और परमात्मारूप महेश्वर ने प्रकृति और पुरुष ने शीघ्र प्रवेश करके परमयोग से क्षुभित कर दिया।

यथा मदो नरस्त्रीणां यथा वा माधवोऽनिल:।
अनुप्रविष्ट: क्षोभाय तथासौ योगमूर्तिमान्॥ १४॥

जैसे कामदेव अथवा वसंतऋतु की वायु नर और स्त्री में प्रविष्ट होकर उन्हें क्षुब्ध कर देती है। उसी तरह योगमूर्ति ब्रह्म ने दोनों को क्षुभित कर दिया।

स एव क्षोभको विप्रा: क्षोभ्यश्च परमेश्वर:।
स संकोचविकासाभ्यां प्रधानत्वे व्यवस्थित:॥ १५॥

हे विप्रगण! वही परमेश्वर क्षोभक है और स्वयं क्षुब्ध होने वाला भी है। वह संकोच और विकास द्वारा प्रधानत्व के रूप में व्यवस्थित हो जाता है।

प्रधानात्क्षोभ्यमानाच्च तथा पुंस: पुरातनात्।
प्रादुरासीन्महद्बीजं प्रधानपुरुषात्मकम्॥ १६॥

क्षुब्धता को प्राप्त हुई प्रकृति से और पुरातन पुरुष से एक प्रधान पुरुषात्मक महान् बीज का प्रादुर्भाव हुआ।

महानात्मा मतिर्ब्रह्मा प्रबुद्धि: ख्यातिरीश्वर:।
प्रज्ञा धृति: स्मृति: संविदेतस्मादिति तत्स्मृतम्॥ १७॥

महान् आत्मा, मति, ब्रह्मा, प्रबुद्धि, ख्याति, ईश्वर, प्रज्ञा, धृति, स्मृति और संवित् की उत्पत्ति उसी से हुई है ऐसा स्मृति वाक्य है।

वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्चैव तामसः।
त्रिविधोऽयमहंकारो महतः संबभूव ह॥ १८॥

वैकारिक, तेजस् और भूतादि तामस यह तीन प्रकार का अहंकार महत् से उत्पन्न हुआ था।

अहंकारोऽभिमानश्च कर्ता मन्ता च स स्मृतः।
आत्मा च मत्परो जीवो यतः सर्वाः प्रवृत्तयः॥ १९॥

वह अहंकार, अभिमान, कर्ता, मन्ता कहा गया। आत्मा मत्परायण जीव बना जिसमें सभी प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हुई।

पञ्चभूतान्यहंकारात्तन्मात्राणि च जज्ञिरे।
इन्द्रियाणि च सर्वाणि सर्वं तस्यात्मजं जगत्॥ २०॥

उस अहंकार से पञ्चमहाभूत, पञ्चतन्मात्रा और समस्त इन्द्रियाँ उत्पन्न हुईं। उसी से आत्मरूप सम्पूर्ण जगत् भी उत्पन्न हुआ।

मनस्त्वव्यक्तजं प्रोक्तं विकारः प्रथमः स्मृतः।
येनासौ जायते कर्ता भूतादींश्चानुपश्यति॥ २१॥

मन की सृष्टि अव्यक्त से कही गई है वही प्रथम विकार है इसी कारण वह सबका कर्ता है और सभी भूतों का अनुद्रष्टा है।

वैकारिकादहंकारात्सर्गो वैकारिकोऽभवत्।
तैजसानीन्द्रियाणिस्युर्देवा वैकारिका दश॥ २२॥
एकादशं मनस्तत्र स्वगुणेनोभयात्मकम्।
भूततन्मात्रसर्गोऽयं भूतादेरभवद्द्विजाः॥ २३॥

उस वैकारिक अहंकार से वैकारिक सर्ग की उत्पत्ति हुई। इन्द्रियाँ तैजस् है और दस देवता वैकारिक हैं। ग्यारहवाँ मन हुआ जो अपने गुण से उभयात्मक होता है। हे द्विजगण! यह भूततन्मात्र की सृष्टि भूतादि से हुई है।

भूतादिस्तु विकुर्वाणः शब्दमात्रं ससर्ज ह।
आकाशो जायते तस्मात्तस्य शब्दो गुणो मतः॥ २४॥

भूतादि (तामस अहंकार) ने विकृति को प्राप्त करके शब्दतन्मात्रा का सृजन किया। उससे आकाश उत्पन्न हुआ जिसका गुण शब्द माना गया है।

आकाशस्तु विकुर्वाणः स्पर्शमात्रं ससर्ज ह।
वायुरुत्पद्यते तस्मात्तस्य स्पर्शं गुणं विदुः॥ २५॥

आकाश ने भी विकार को प्राप्त करके 'स्पर्श तन्मात्रा' की सृष्टि की। उससे वायु की उत्पत्ति हुई जिसका गुण 'स्पर्श' कहा गया है।

वायुश्चापि विकुर्वाणो रूपमात्रं ससर्ज ह।
ज्योतिरुत्पद्यते वायोस्तद्रूपगुणमुच्यते॥ २६॥

वायु ने भी विकार को प्राप्त करके रूपतन्मात्रा की सृष्टि की। वायु से ज्योति की उत्पत्ति हुई जिसका गुण रूप है।

ज्योतिश्चापि विकुर्वाणं रसमात्रं ससर्ज ह।
सम्भवन्ति ततोऽम्भांसि रसाधाराणि तानि च॥ २७॥

ज्योति ने विकार को प्राप्त करके रसतन्मात्रा की सृष्टि की। उससे जल उत्पन्न हुआ जो रस का आधार है अर्थात् रसगुण वाला है।

आपश्चापि विकुर्वाणा गन्धमात्रं ससर्जिरे।
सङ्घातो जायते तस्मात्तस्य गन्धो गुणो मतः॥ २८॥

जल ने भी विकृति को प्राप्त होकर गन्धतन्मात्रा की सृष्टि की। उससे गुणसंघातमयी पृथ्वी उत्पन्न हुई। उसका गुण गन्ध माना गया है।

आकाशं शब्दमात्रं तु स्पर्शमात्रं समावृणोत्।
द्विगुणस्तु ततो वायुः शब्दस्पर्शात्मकोऽभवत्॥ २९॥

शब्दतन्मात्र आकाश ने स्पर्शमात्रा को समावृत किया था। उससे द्विगुण शब्दस्पर्शात्मक वायु की उत्पत्ति हुई।

रूपं तथैवाविशतः शब्दस्पर्शौ गुणावुभौ।
त्रिगुणः स्यात्ततो वह्निः स शब्दस्पर्शरूपवान्॥ ३०॥

शब्द और स्पर्श दोनों गुणों ने रूप में प्रवेश कर लिया था। उससे शब्द-स्पर्श-रूप त्रिगुणात्मक अग्नि की सृष्टि हुई।

शब्दः स्पर्शश्च रूपञ्च रसमात्रं समाविशत्।
तस्माच्चतुर्गुणा आपो विज्ञेयास्तु रसात्मिकाः॥ ३१॥

शब्द, स्पर्श और रूप ने रस-तन्मात्र में प्रवेश किया। इसीसे रसात्मक जल चार गुणों से युक्त हुआ।

शब्दः स्पर्शश्च रूपञ्च रसो गन्धं समाविशत्।
तस्मात्पञ्चगुणा भूमिः स्थूला भूतेषु शब्द्यते॥ ३२॥

शब्द, स्पर्श, रूप तथा रस ने गन्ध में प्रवेश किया। इससे पृथिवी पंचगुणात्मिका हुई। अतएव वह पञ्चमहाभूतों में स्थूल कही जाती है।

शान्ता घोराश्च मूढाश्च विशेषास्तेन ते स्मृताः।
परस्परानुप्रवेशाद्धारयन्ति परस्परम्॥३३॥

शान्त, घोर और मूढ सभी भूत विशेष नाम से कहे गये हैं। ये परस्पर अनुप्रवेश करके एक-दूसरे को धारण करते हैं।

एते सप्त महात्मानो ह्यन्योन्यस्य समाश्रयात्।
नाशक्नुवन् प्रजाः स्रष्टुमसमागम्य कृत्स्नशः॥३४॥

ये सातों महान् आत्मा वाले एक दूसरे के आश्रित होकर ही रहते हैं। फिर भी वे पूर्णतः प्रजा की सृष्टि करने में समर्थ नहीं है।

पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च अव्यक्तानुग्रहेण च।
महदादयो विशेषान्ता ह्यण्डमुत्पादयन्ति ते॥३५॥

पुरुष के अधिष्ठित होने से तथा अव्यक्त के अनुग्रह से वही महदादि से लेकर विशेष पर्यन्त सभी मिलकर इस ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करते हैं।

एककालसमुत्पन्नं जलबुद्बुदवच्च तत्।
विशेषेभ्योऽण्डमभवद्बृहत्तदुदकेशयम्॥३६॥

एक काल में समुत्पन्न वह (अण्ड) जल के बुलबुले के समान था। (उपर्युक्त) विशेषों से मिलकर वह बृहत् अण्ड हो गया और जल में शयन करने वाला (उसके ऊपर) था।

तस्मिन् कार्यस्य करणं संसिद्धं परमेष्ठिनः।
प्रकृतेऽण्डे विवृद्धे तु क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञितः॥३७॥

उसमें कार्य का कारणरूप परमेष्ठी का प्राकृत अण्ड में वृद्धि होने पर 'ब्रह्म' नाम की संज्ञा को प्राप्त क्षेत्रज्ञ की सिद्धि हो गई।

स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते।
आदिकर्त्ता स भूतानां ब्रह्माग्रे समवर्त्तत॥३८॥

वही प्रथम शरीरधारी प्रथम पुरुष कहा गया जाता है। वह भूतों का आदिकर्ता ब्रह्मरूप ब्रह्मा सबके आगे वर्तित थे।

यमाहुः पुरुषं हंसं प्रधानात्परतः स्थितम्।
हिरण्यगर्भं कपिलं छन्दोमूर्तिं सनातनम्॥३९॥

जिसे प्रधान-प्रकृति से पर (श्रेष्ठ) पुरुष तथा हंस कहते हैं। उसे हिरण्यगर्भ, कपिल, सनातन छन्दोमूर्ति (वेदमूर्ति) कहते हैं।

मेरुरुल्बमभूत्तस्य जरायुश्चापि पर्वताः।
गर्भोदकं समुद्राश्च तस्यासन्परमात्मनः॥४०॥

मेरु पर्वत उस परमात्मा उल्ब (गर्भवेष्टनचर्म) हुआ। समस्त पर्वत जरायु (खेड़ी) तथा समुद्र उनके गर्भोदक बने।

तस्मिन्नण्डेऽभवद्विश्वं सदेवासुरमानुषम्।
चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रौ सग्रहौ सह वायुना॥४१॥

उस अण्ड से सत्कर्म करने वाले देव, असुर और मनुष्य सहित यह विश्व तथा नक्षत्र, ग्रह और वायु सहित चन्द्र और सूर्य की सृष्टि हुई।

अद्भिर्दशगुणाभिश्च बाह्यतोऽण्डं समावृतम्।
आपो दशगुणेनैव तेजसा बाह्यतो वृताः॥४२॥
तेजोदशगुणेनैव बाह्यतो वायुना वृतम्।
आकाशेनावृतो वायुः खं तु भूतादिनावृतम्॥४३॥
भूतादिर्महता तद्वदव्यक्तेनावृतो महान्।
एते लोका महात्मानः सर्वे तत्त्वाभिमानिनः॥४४॥
वसन्ति तत्र पुरुषास्तदात्मनो व्यवस्थिताः।
ईश्वरा योगधर्माणो ये चान्ये तत्त्वचिन्तकाः॥४५॥
सर्वज्ञाः शान्तरजसो नित्यं मुदितमानसाः।
एतैरावरणैरण्डं प्राकृतैः सप्तभिर्वृतम्॥४६॥

दस गुने जल से उस अण्ड का बाहरी भाग समावृत हुआ। दस गुने तेज द्वारा जल का बाह्य भाग आवृत हुआ, दस गुने वायु द्वारा तेज आवृत हुआ। इसी प्रकार आकाश के द्वारा वायु आवृत हुआ, भूतादि द्वारा आकाश आवृत हुआ, भूतादि महत् द्वारा आवृत हुआ एवं महत् अव्यक्त द्वारा आवृत हुआ। ये सभी लोक उस स्थान में तदात्मवान् होकर महात्मा तथा तत्त्वाभिमानी पुरुष रूप में वास करने लगे। प्रभुत्वशाली योगपरायण, तत्त्वचिन्तक, सर्वज्ञ, रजोगुण रहित एवं नित्य प्रसन्नचित्त— इन सात प्राकृत आवरणों से अण्ड समावृत था।

एतावच्छक्यते वक्तुं मायैषा गहना द्विजाः।
एतत्प्राधानिकं कार्यं यन्मया बीजमीरितम्॥४७॥

हे द्विजगण! इतना ही कह सकते हैं कि यह माया अति गहन है। यह सब प्रधान (प्रकृति) का कार्य है, जिसे मैंने बीज कहा है।

प्रजापतेः परा मूर्तिरितीयं वैदिकी श्रुतिः।
ब्रह्माण्डमेतत्सकलं सप्तलोकबलान्वितम्॥४८॥
द्वितीयं तस्य देवस्य शरीरं परमेष्ठिनः।
हिरण्यगर्भो भगवान् ब्रह्मा वै कनकाण्डजः॥४९॥

यह प्रजापति की परामूर्ति है, यही वैदिकी श्रुति है। सातों लोकों के बल से युक्त यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड है जो उस परमेष्ठी का द्वितीय शरीर है। सुवर्ण के अंड से उत्पन्न भगवान् ब्रह्मा हिरण्यगर्भ नाम से प्रसिद्ध हैं।

तृतीयं भगवद्रूपं प्राहुर्वेदार्थवेदितः।
रजोगुणमयं चान्यद्रूपं तस्यैव धीमतः॥५०॥

यह भगवान् का तीसरा रूप है ऐसा वेदार्थ के ज्ञाता कहते हैं। उसी धीमान् का अन्य रूप रजोगुणमय हैं।

चतुर्मुखस्तु भगवान् जगत्सृष्टौ प्रवर्त्तते।
सृष्टं च पाति सकलं विश्वात्मा विश्वतोमुखः॥५१॥
सत्त्वं गुणमुपाश्रित्य विष्णुर्विश्वेश्वरः स्वयम्।

चतुर्मुख भगवान् ब्रह्मा जगत् की सृष्टि में प्रवृत्त होते हैं और विश्वात्मा, विश्वमुख, विश्वेश्वर, स्वयं विष्णु सत्त्वगुण का आश्रय लेकर सृष्टि का पालन करते हैं।

अन्तकाले स्वयं देवः सर्वात्मा परमेश्वरः॥५२॥
तमोगुणमाश्रित्य रुद्रः संहरते जगत्।
एकोऽपि सन्महादेवस्त्रिधासौ समवस्थितः॥५३॥
सर्गरक्षालयगुणैर्निर्गुणोऽपि निरञ्जनः।
एकधा स द्विधा चैव त्रिधा च बहुधा गुणैः॥५४॥

अन्तकाल में सर्वात्मा परमेश्वर स्वयं रुद्रदेव तमोगुण का आश्रय लेकर जगत् का संहार करते हैं। निरञ्जन एक निर्गुण महादेव होते हुए भी सृष्टि, पालन और संहार रूप तीनों गुणों द्वारा तीनों रूपों में अवस्थित हैं। वे विभिन्न गुणों के आश्रय से कभी एकरूप, द्विरूप तो कभी तीन रूप में विभक्त हो जाते हैं।

योगेश्वरः शरीराणि करोति विकरोति च।
नानाकृतिक्रियारूपनामवन्ति स्वलीलया॥५५॥

वे योगेश्वर भगवान् अपनी लीला से नानाकृति-क्रिया-रूप तथा नाम वाले शरीरों को बनाते हैं तथा उसे विकृत भी करते हैं।

हिताय चैव भक्तानां स एव ग्रसते पुनः।
त्रिधा विभज्य चात्मानं त्रैलोक्ये संप्रवर्तते॥५६॥

भक्तों के कल्याण की इच्छा से वह पुनः उन्हें ग्रस लेते हैं। वह स्वयं को तीनों रूपों में विभक्त करके त्रैलोक्य में प्रवर्तित करते हैं।

सृजते ग्रसते चैव वीक्षते च विशेषतः।
यस्मात्सृष्ट्वानुगृह्णाति ग्रसते च पुनः प्रजाः॥५७॥
गुणात्मकत्वात्त्रैकाल्ये तस्मादेकः स उच्यते।
अग्रे हिरण्यगर्भः स प्रादुर्भूतः सनातनः॥५८॥

विशेष सृष्टि करते हैं, संहार करते हैं और रक्षा करते हैं। जिस कारण वे सृष्टि करके प्रजाओं का संहार कर डालते हैं, उसी गुणात्मकता के कारण तीनों काल में वे एक कहे जाते हैं। वे सनातन हिरण्यगर्भ ब्रह्मा सर्वप्रथम प्रादुर्भूत हुआ था।

आदित्वादादिदेवोऽसावजातत्वादजः स्मृतः।
पाति यस्मात्प्रजाः सर्वाः प्रजापतिरिति स्मृतः॥५९॥

सबसे आदि में होने के कारण वह आदिदेव है और अजन्मा होने के कारण 'अज' कहा गया है। उनसे सभी प्रजाओं का पालन होता है अतएव उन्हें प्रजापति कहा गया।

देवेषु च महादेवो महादेव इति स्मृतः।
बृहत्वाच्च स्मृतो ब्रह्मा परत्वात्परमेश्वरः॥६०॥

समस्त देवों में वे महान् देव हैं, इसलिए महादेव नाम से कहा गया है और सबसे बृहद् होने के कारण ब्रह्मा नाम हुआ तथा सबसे पर होने के कारण वे परमेश्वर हुए।

वशित्वादप्यवश्यत्वादीश्वरः परिभाषितः।
ऋषिः सर्वत्रगत्वेन हरिः सर्वहरो यतः॥६१॥

वशित्व (वश में करना) और अवश्यत्व (वश में न होना) गुण के कारण उन्हें ईश्वर नाम दिया गया है। सर्वत्र गमन करने से उन्हें ऋषि और सबका हरण करने के कारण हरि कहा गया है।

अनुत्पादाच्च पूर्वत्वात्स्वयंभूरिति स स्मृतः।
नराणामयनं यस्मात्तेन नारायणः स्मृतः॥६२॥

उत्पत्तिरहित (अजन्मा) होने से एवं सबसे पुरातन होने के कारण वे स्वयंभू जाने गये हैं। उसी प्रकार नरों का आश्रय स्थान होने के कारण उन्हें 'नारायण' कहा गया है।

हरः संसारहरणाद्विभुत्वाद्विष्णुरुच्यते।
भगवान्सर्वविज्ञानादवनादोमिति स्मृतः॥६३॥

संसार को हर लेने के कारण हर तथा विभु (अनन्त) होने के कारण विष्णु कहा जाता है। सम्पूर्ण पदार्थों के ज्ञाता होने के कारण उन्हें भगवान् और रक्षण क्रिया के कारण 'ओम्' कहा जाता है।

सर्वज्ञः सर्वविज्ञानात्सर्वः सर्वमयो यतः।
शिवः स्यान्निर्मलो यस्माद्विभुः सर्वगतो यतः॥६४॥

सम्पूर्ण ज्ञान होने के कारण उन्हें 'सर्वज्ञ' और सर्वमय होने से 'सर्व' भी कहते हैं। निर्मल होने से शिव और सर्वव्यापी होने से विभु कहे जाते हैं।

तारणात्सर्वदुःखानां तारकः परिगीयते।
बहुनाऽत्र किमुक्तेन सर्वं ब्रह्ममयं जगत्॥ ६५॥
अनेकभेदभिन्नस्तु क्रीडते परमेश्वरः।

समस्त दुःखसमूह का तारण करने के कारण वे 'तारक' कहे जाते हैं। अधिक कहने से क्या लाभ? वस्तुतः सम्पूर्ण जगत् ही ब्रह्ममय है। वह परमेश्वर अनेक रूप धारण करके क्रीड़ा करता है।[1]

इत्येष प्राकृतः सर्गः संक्षेपात्कथितो मया।
अबुद्धिपूर्विका विप्रा ब्राह्मीं सृष्टिं निबोधत॥ ६६॥

इसी प्रकार प्राकृत (प्रकृतिजन्य) सृष्टि का संक्षेप में मैंने वर्णन कर दिया। हे मुनिगण! अब अबुद्धिपूर्विका जो ब्राह्मी सृष्टि है उसके विषय में सुनो।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे प्राकृतसर्गवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

पञ्चमोऽध्यायः

(कालसंख्या का विवरण)

कूर्म उवाच

अनुत्पादाच्च पूर्वस्मात् स्वयंभूरिति स स्मृतः।
नराणामयनं यस्मात्तेन नारायणः स्मृतः॥ १॥
हरः संसारहरणाद्विभुत्वाद्विष्णुरुच्यते।
भगवान् सर्वविज्ञानादवनादोमिति स्मृतः॥ २॥
सर्वज्ञः सर्वविज्ञानात्सर्वः सर्वमयो यतः।
स्वयम्भुवो निवृत्तस्य कालसंख्या द्विजोत्तमाः॥ ३॥
न शक्यते समाख्यातुं बहुवर्षैरपि स्वयम्।
कालसंख्या समासेन परार्द्धद्वयकल्पिता॥ ४॥

कूर्मरूपी भगवान् बोले— पूर्व अनुत्पाद होने से ही इनको स्वयम्भू कहा गया है और नरों का ही अयन होता है इसी कारण से नारायण कहा जाता है। संसार का हरण करने का हेतु होने से हर कहे जाते हैं तथा विभुत्व होने से इन्हें विष्णु कहा जाता है। सर्वविज्ञाता होने से भगवान् और सबका रक्षण करने के कारण ओम् कहा गया है। सब का विज्ञान रहने के कारण सर्वज्ञ तथा सर्वमय होने से सर्व कहा जाता है। हे द्विजोत्तमो! अनेक वर्षों में भी स्वयंभू परमात्मा ब्रह्मा की कालसंख्या का वर्णन नहीं किया जा सकता। संक्षेपतः वह कालसंख्या दो परार्ध मानी गई है।

स एव स्यात्परः कालस्तदन्ते सृज्यते पुनः।
निजेन तस्य मानेन चायुर्वर्षशतं स्मृतम्॥ ५॥

वही पर काल है। उसके अन्त में पुनः सृजन किया जाता है। उन स्वायंभुव के अपने ही मान से आयु सौ वर्ष की कही गई है।

तत्पराद्धं तदर्द्धं वा परार्द्धमभिधीयते।
काष्ठा पञ्चदश ख्याता निमेषा द्विजसत्तमाः॥ ६॥

वह परार्ध अथवा उसका ही अर्ध 'परार्ध' नाम से कहा जाता है। हे द्विजश्रेष्ठो! पन्द्रह निमेष (पलक झपकने का समय) की एक काष्ठा कही गई है।

काष्ठा त्रिंशत्कला त्रिंशत्कला मौहूर्त्तिकी गतिः।
तावत्संख्यैरहोरात्रं मुहूर्त्तैर्मानुषं स्मृतम्॥ ७॥

तीस काष्ठाओं की एक कला और तीस कलाओं का एक मुहूर्त समय होता है उतनी ही संख्या वाले (तीस) मुहूर्तों से मनुष्यों का एक अहोरात्र माना गया है।

अहोरात्राणि तावंति मासः पक्षद्वयात्मकः।
तैः षड्भिरयनं वर्षं द्वेऽयने दक्षिणोत्तरे॥ ८॥

तीस अहोरात्र का दो पक्ष (शुक्ल और कृष्ण) वाला एक मास होता है एवं छः मासों का एक अयन होता है। दक्षिणायन और उत्तरायण नाम वाले दो अयनों का एक वर्ष होता है।

अयनं दक्षिणं रात्रिर्देवानामुत्तरं दिनम्।
दिव्यैर्वर्षसहस्रैस्तु कृतत्रेतादिसंज्ञितम्॥ ९॥
चतुर्युगं द्वादशभिस्तद्विभागं निबोधत।
चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगम्॥ १०॥

दक्षिणायन देवताओं की रात्रि है और उत्तरायण उनका दिन है। बारह हजार दिव्य वर्षों से सत्य, त्रेता आदि नाम वाले चार युग होते हैं। उनका विभाग सुनो। उनमें चार हजार वर्षों का कृतयुग होता है।

तस्य तावच्छतीसन्ध्या सन्ध्यांशश्च कृतस्य तु।
त्रिशती द्विशती सन्ध्या तथा चैकशती क्रमात्॥ ११॥

---

1. लीलावत्तु कैवल्यम् (ब्रह्मसूत्र)

उस सतयुग का चार सौ वर्ष का सन्ध्या काल है और उतना ही सन्ध्यांश। क्रमश: वह सन्ध्या तीन सौ, दो सौ और एक सौ वर्षों की होती है।

अंशकं षट्शतं तस्मात्कृतसन्ध्यांशकैर्विना।
त्रिद्व्येकधा च साहस्रं विना सन्ध्यांशकेन तु॥ १२॥
त्रेताद्वापरतिष्याणां कालज्ञाने प्रकीर्त्तितम्।
एतद्द्वादशसाहस्रं साधिकं परिकल्पितम्॥ १३॥

उससे सत्ययुग का सन्ध्यांश छोड़कर अन्य सन्ध्यांश काल कुल छह सौ वर्ष का था। सन्ध्यांश के बिना दो एवं एक सहस्र वर्ष त्रेता, द्वापर तथा कलि के कालज्ञान में परिकीर्तित हुआ है। यही बारह हजार वर्ष अधिक परिकल्पित है।

तदेकसप्ततिगुणं मनोरन्तरमुच्यते।
ब्रह्मणो दिवसे विप्रा मनवश्च चतुर्दश॥ १४॥

उसका सात गुना अर्थात् इकहत्तर दिव्य युगों का एक मन्वन्तर होता है। हे विप्रगण! ब्रह्मा के एक दिन में चौदह मन्वन्तर माने जाते हैं।

स्वायम्भुवादय: सर्वे तत: सावर्णिकादय:।
तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपर्वता॥ १५॥
पूर्णं युगसहस्रं वै परिपाल्या नरेश्वरै:।
मन्वन्तरेण चैकेन सर्वाण्येवान्तराणि वै॥ १६॥
व्याख्यातानि न सन्देह: कल्पे कल्पे न चैव हि।
ब्राह्ममेकमह: कल्पस्तावती रात्रिरिष्यते॥ १७॥

स्वायंभुव आदि सभी मनु, तदनन्तर सावर्णिक आदि राजाओं द्वारा सप्त द्वीपों वाला पर्वत सहित यह सात पूर्ण पृथिवी पूरे सहस्र युगपर्यंत परिपालित होती है। एक मन्वन्तर द्वारा कल्प कल्प में सभी मन्वन्तर व्याख्यात होते हैं, इसमें सन्देह नहीं। ब्रह्मा का एक दिन एक कल्प होता है और उतने ही परिमाण की एक रात्रि मानी गई है।

चतुर्युगसहस्रं तु कल्पमाहुर्मनीषिण:।
त्रीणि कल्पशतानि स्युस्तथा षष्टिर्द्विजोत्तमा:॥ १८॥
ब्रह्मणो वत्सरस्तज्ज्ञै: कथितो वै द्विजोत्तमा:।
स च काल: शतगुण: परार्द्धं चैव तद्विदु:॥ १९॥

विद्वानों ने एक हजार चतुर्युग को एक कल्प कहा है। हे द्विजगण! उसी प्रकार तीन सौ साठ कल्प पूरे होते हैं, तब काल विशेषज्ञों ने उसे ब्रह्मा का एक वर्ष कहा है। वही परिमाण काल सौ गुना होने पर परार्ध कहा जाता है।

तस्यान्ते सर्वसत्त्वानां सहेतौ प्रकृतौ लय:।
तेनायं प्रोच्यते सद्भि: प्राकृत: प्रतिसंचर:॥ २०॥

उसके अन्त में सभी प्राणियों की उत्पत्ति की हेतुभूता प्रकृति में लय हो जाता है। इसलिए सज्जनों द्वारा इसे प्राकृत प्रतिसंचर कहा जाता है।

ब्रह्मनारायणेशानां त्रयाणां प्रकृतौ लय:।
प्रोच्यते कालयोगेन पुनरेव च सम्भव:॥ २१॥

ब्रह्मा, नारायण और महेश— इन तीनों का प्रकृति में लय हो जाता है और समय आने पर पुन: उनका जन्म कहा जाता है।

एवं ब्रह्मा च भूतानि वासुदेवोऽपि शङ्कर:।
कालेनैव तु सृज्यन्ते स एव ग्रसते पुन:॥ २२॥

इस प्रकार ब्रह्मा, समस्त भूत, वासुदेव और शंकर— ये सभी कालयोग से सृष्टि और संहार को प्राप्त करते हैं।

अनादिरेष भगवान् कालोऽनन्तोऽजरोऽमर:।
सर्वगत्वात्स्वतन्त्रत्वात्सर्वात्मत्वान्महेश्वर:॥ २३॥

यही अनादि कालरूप भगवान् अनन्त, अजर, अमर, सर्वगामी, स्वतन्त्र और सर्वात्मा होने के कारण महेश्वर हैं।

ब्रह्माणो बहवो रुद्रा ह्यन्ये नारायणादय:।
एको हि भगवानीश: काल: कविरिति श्रुति:॥ २४॥

अनेक ब्रह्मा, अनेक रुद्र और नारायण आदि भी अनेक हैं, केवल कालस्वरूप, सर्वज्ञ, भगवान् ईश ही एक हैं, ऐसी श्रुति है।

एकमत्र व्यतीतं तु परार्द्धं ब्रह्मणो द्विजा:।
साम्प्रतं वर्तते त्वर्द्धं तस्य कल्पोऽयमग्रज:॥ २५॥

हे द्विजो! यहाँ ब्रह्मा का एक परार्ध बीत चुका है। सम्प्रति दूसरा परार्ध चल रहा है जो उसका यह अग्रज कल्प है।

योऽतीत: सोऽन्तिम: कल्प: पाद्म इत्युच्यते बुधै:।
वाराहो वर्तते कल्पस्तस्य वक्ष्यामि विस्तरम्॥ २६॥

जो अतीत (बीता हुआ) है, उसे ही विद्वानों ने अन्तिम पाद्म कल्प कहा है। सम्प्रति वाराह कल्प चल रहा है, उसे विस्तारपूर्वक कहूँगा।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे कालसंख्याकथनं नाम
पञ्चमोऽध्याय:॥ ५॥

षष्ठोऽध्यायः

(जल से पृथिवी का उद्धार)

कूर्म उवाच

आसीदेकार्णवं घोरमविभागं तमोमयम्।
शान्तवातादिकं सर्वं न प्राज्ञायत किञ्चन॥ १॥

कूर्मरूपधारी भगवान् बोले— प्रारम्भ में घोर, विभागशून्य अन्धकारमय एक ही अर्णव था, जो वायु आदि से रहित होने से शांत था और कुछ भी जान नहीं पड़ता था।

एकार्णवे तदा तस्मिन्नष्टे स्थावरजङ्गमे।
तदा समभवद्ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात्॥ २॥

उस एकार्णव में स्थावर-जंगम के नष्ट हो जाने पर सहस्र नेत्रों और सहस्रपाद युक्त ब्रह्मा हुए।

सहस्रशीर्षा पुरुषो रुक्मवर्णो ह्यतीन्द्रियः।
ब्रह्मा नारायणाख्यस्तु सुष्वाप सलिले तदा॥ ३॥

सुवर्णवर्ण, अतीन्द्रिय, सहस्र शिर वाले, पुरुष, नारायण नामक ब्रह्मा उस समय जल में शयन करने लगे।

इमं चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति।
ब्रह्मस्वरूपिणं देवं जगतः प्रभवाव्ययम्॥ ४॥

यहां ब्रह्मस्वरूप, सृष्टि के प्रभव, अविनाशी, नारायण देव के सम्बन्ध में यह श्लोक उदाहरण रूप में कहा जाता है।

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
अयनं तस्य ता यस्मात्तेन नारायणः स्मृतः॥ ५॥

अप् (जल) नारा नाम से कहे गये हैं, अप् (जल) नर-भगवान का पुत्ररूप है। वही नार (जल) जिसका अयन (आश्रयस्थान) है, अर्थात् प्रलयकाल में योगनिद्रा का निवास स्थान है, इसलिए उन्हें नारायण कहा गया है।

तुल्यं युगसहस्रस्य नैशं कालमुपास्य सः।
शर्वर्यन्ते प्रकुरुते ब्रह्मत्वं सर्गकारणात्॥ ६॥

उन्होंने एक हजार युग के तुल्य निशाकाल का भोग करके सृष्टि के निमित्त रात्रि के अन्त में ब्रह्मत्व प्राप्त किया।

ततस्तु सलिले तस्मिन्विज्ञायान्तर्गतां महीम्।
अनुमानात्तदुद्धारं कर्तुकामः प्रजापतिः॥ ७॥

तदनन्तर पृथ्वी उस जल के भीतर ही स्थित है, ऐसा अनुमान से जानकर प्रजापति ने उसका उद्धार करने की इच्छा की।

जलक्रीडासु रुचिरं वाराहं रूपमास्थितः।
अधृष्यं मनसाप्यन्यैर्वाङ्मयं ब्रह्मसंज्ञितम्॥ ८॥

तब जल क्रीडाओं में रुचि रखने वाले वराह के रूप को धारण किया, वह सुन्दर रूप दूसरों द्वारा मन से भी पराजित करना शक्य नहीं था। वह वाणीरूप होने के कारण ब्रह्मसंज्ञक था।

पृथिव्युद्धरणार्थाय प्रविश्य च रसातलम्।
दंष्ट्रयाभ्युज्जहारैनामात्माधारो धराधरः॥ ९॥

पृथिवी का उद्धार करने के लिए रसातल में प्रवेश करके अपने दीर्घ दाढ़ से उसे ऊपर उठा लिया। इसीसे वे आत्माधार तथा धराधर भी कहलाये।

दृष्ट्वा दंष्ट्राग्रविन्यस्तां पृथ्वीं प्रथितपौरुषम्।
अस्तुवञ्जनलोकस्था सिद्धा ब्रह्मर्षयो हरिम्॥ १०॥

वाराह के दंष्ट्राग्र भाग पर अवस्थित पृथ्वी को देखकर सिद्ध एवं ब्रह्मर्षिगण, प्रसिद्ध पौरुष वाले जनलोक में स्थित हरि की स्तुति करने लगे।

ऋषय ऊचुः

नमस्ते देवदेवाय ब्रह्मणे परमेष्ठिने।
पुरुषाय पुराणाय शाश्वताय जयाय च॥ ११॥

ऋषियों ने कहा— देवों के देव, ब्रह्मस्वरूप, परमेष्ठी (परम पद में स्थित रहने वाले) पुराण पुरुष, शाश्वत और जयस्वरूप, आपके लिए नमस्कार है।

नमः स्वयम्भुवे तुभ्यं स्रष्ट्रे सर्वार्थवेदिने।
नमो हिरण्यगर्भाय वेधसे परमात्मने॥ १२॥

स्वयंभू, सृष्टि रचयिता और सर्वार्थ को जानने वाले आपको नमस्कार है। हिरण्यगर्भ, वेधा और परमात्मा को नमस्कार है।

नमस्ते वासुदेवाय विष्णवे विश्वयोनये।
नारायणाय देवाय देवानां हितकारिणे॥ १३॥

वासुदेव, विष्णु, विश्वयोनि, नारायण, देवों के हितकारी देवरूप के लिए नमस्कार है।

नमोऽस्तु ते चतुर्वक्त्र शार्ङ्गचक्रासिधारिणे।
सर्वभूतात्मभूताय कूटस्थाय नमोनमः॥ १४॥

चतुर्मुख, शार्ङ्ग, चक्र तथा असि धारण करने वाले आपको नमस्कार है। समस्तभूतों के आत्मस्वरूप तथा कूटस्थ को नमस्कार है।

नमो वेदरहस्याय नमस्ते वेदयोनये।
नमो बुद्धाय शुद्धाय नमस्ते ज्ञानरूपिणे॥ १५॥

वेदों के रहस्यरूप के लिए नमस्कार है। वेदयोनि को नमस्कार है। बुद्ध और शुद्ध को नमस्कार है। ज्ञानरूपी के लिए नमस्कार है।

नमोऽस्त्वानन्दरूपाय साक्षिणे जगतां नमः।
अनन्तायाप्रमेयाय कार्याय कारणाय च॥ १६॥

आनन्दरूप और जगत् के साक्षीरूप को नमस्कार है। अनन्त, अप्रमेय, कार्य तथा कारणरूप को नमस्कार है।

नमस्ते पञ्चभूताय पञ्चभूतात्मने नमः।
नमो मूलप्रकृतये मायारूपाय ते नमः॥ १७॥

पञ्चभूतरूप आपको नमस्कार। पञ्चभूतात्मा को, मूलप्रकृतिरूप मायारूप आपको नमस्कार है।

नमोऽस्तु ते वराहाय नमस्ते मत्स्यरूपिणे।
नमो योगाधिगम्याय नमः संकर्षणाय ते॥ १८॥

वराह रूपधारी को नमस्कार है। मत्स्यरूपी को नमस्कार है। योग के द्वारा ही जानने योग्य को नमस्कार है तथा संकर्षण! आपको नमस्कार है।

नमस्त्रिमूर्त्तये तुभ्यं त्रिधाम्ने दिव्यतेजसे।
नमः सिद्धाय पूज्याय गुणत्रयविभागिने॥ १९॥

त्रिमूर्ति के लिए नमस्कार है। दिव्य तेज वाले त्रिधामा, सिद्ध, पूज्य और तीनों गुणों का विभाग करने वाले आपको नमस्कार है।

नमोस्त्वादित्यरूपाय नमस्ते पद्मयोनये।
नमोऽमूर्त्ताय मूर्त्ताय माधवाय नमो नमः॥ २०॥

आदित्यरूप को नमस्कार है। पद्मयोनि को नमस्कार है। अमूर्त, मूर्त तथा माधव को नमस्कार है।

त्वयैव सृष्टमखिलं त्वय्येव सकलं स्थितम्।
पालयैतज्जगत्सर्वं त्राता त्वं शरणं गतिः॥ २१॥

आपने ही अखिल जगत् की सृष्टि की है। आप में ही सकल विश्व स्थित है। आप इस सम्पूर्ण जगत् का पालन करें। आप ही रक्षक एवं शरणागति हैं।

इत्थं स भगवान् विष्णुः सनकाद्यैरभिष्टुतः।
प्रसादमकरोत्तेषां वराहवपुरीश्वरः॥ २२॥

सनकादि मुनियों द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने पर वराहशरीरधारी भगवान् विष्णु उनसे अति प्रसन्न हुए।

ततः स्वस्थानमानीय पृथिवीं पृथिवीधरः।
मुमोच रूपं मनसा धारयित्वा धराधरः॥ २३॥

तदनन्तर पृथिवीधर वराह ने पृथिवी को अपने स्थान पर लाकर रख दिया और धराधर ने मन से वराहरूप को छोड़ दिया।

तस्योपरि जलौघस्य महती नौरिव स्थिता।
विततत्वाच्च देहस्य न मही याति संप्लवम्॥ २४॥

उस महान् जल-समूह के ऊपर नौका के समान पृथ्वी स्थित हो गई। शरीर के अति विस्तृत होने के कारण वह पृथ्वी जलसंप्लव को प्राप्त नहीं हुई।

पृथिवीं स समीकृत्य पृथिव्यां सोऽचिनोद्गिरीन्।
प्राक् सर्गदग्धानखिलान् ततः सर्गेऽदधन्मनः॥ २५॥

भगवान् ने पृथ्वी को समतल बनाकर पूर्व सृष्टि में जलाये गये सारे पर्वतों को पुनः लाकर स्थापित कर दिया। तत्पश्चात् पुनः सृष्टि करने का मन बनाया।

इति श्री कूर्मपुराणे पूर्वभागे पृथिव्युद्धारे षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

सप्तमोऽध्यायः

(सर्ग अर्थात् सृष्टि का वर्णन)

कूर्म उवाच

सृष्टिं चिन्तयतस्तस्य कल्पादिषु यथा पुरा।
अबुद्धिपूर्वकः सर्गः प्रादुर्भूतस्तमोमयः॥ १॥

कूर्मावतारी भगवान् बोले— जब प्रजापति ने पहले के समान कल्प सृष्टि का चिन्तन किया तब अबुद्धिपूर्वक एक तमोमय सृष्टि प्रादुर्भूत हुई।

तमोमोहो महामोहस्तामिस्त्रश्चान्धसंज्ञितः।
अविद्या पञ्चमी तेषां प्रादुर्भूता महात्मनः॥ २॥

तम, मोह, महामोह, तामिस्र और अन्धतामिस्र इन पाँच पर्वों वाली अविद्या उस महान् आत्मा प्रजापति से प्रादुर्भूत हुई है।

पञ्चधावस्थितः सर्गो ध्यायतः सोऽभिमानिनः।
संवृतस्तमसा चैव बीजकुम्भवदावृतः॥ ३॥

उस प्रकार सृष्टिरचना के अभिमान से ध्यान से उत्पन्न वह सर्ग पाँच भागों में अवस्थित हो गया और वह बीजकुम्भ के समान केवल तमस अर्थात् अज्ञान से आवृत होकर स्थित है।

बहिरन्तश्चाप्रकाशस्तब्धो निःसंग एव च।
मुख्या नगा इति प्रोक्ता मुख्यसर्गस्तु स स्मृतः॥४॥

वह सर्ग बाहर और भीतर प्रकाशशून्य, स्तब्ध और निःसंग था। उसके जो मुख्य पर्वत, वृक्ष आदि कहे थे, वही मुख्य सृष्टि मानी गई।

तं दृष्ट्वाऽसाधकं सर्गममन्यदपरं प्रभुः।
तस्याभिध्यायतः सर्गं तिर्यक् स्रोतोऽभ्यवर्त्तत॥५॥

प्रभु उस सृष्टि को असाधक अर्थात् किसी भी कार्य की सिद्धि न करने वाली जानकर दूसरी सृष्टि का ध्यान करने लगे। उससे तिर्यक् स्रोत प्रवाहित हुआ।

यस्मात्तिर्यक् प्रवृत्तः स तिर्यक्स्रोतः ततः स्मृतः।
पश्वादयस्ते विख्याता उत्पथग्राहिणो द्विजाः॥६॥

क्योंकि वह तिरछा प्रवाहित हुआ था, इसीलिए उसे 'तिर्यक्स्रोतस्' नाम से जाना गया, क्योंकि हे द्विजो! वे पशु आदि उत्पथग्राही अर्थात् तिरछे मार्ग को अपनाने वाले नाम से विख्यात हुए।

तमप्यसाधकं ज्ञात्वा सर्गमन्यं ससर्ज ह।
ऊर्ध्वस्रोत इति प्रोक्तो देवसर्गस्तु सात्त्विकः॥७॥

उसको भी असाधक समझकर उन्होंने अन्य सृष्टि का सम्पादन किया। वह सात्त्विक (सत्त्वगुणप्रधान) देवसृष्टि थी, जिसे ऊर्ध्वस्रोतस् कहा गया।

ते सुखप्रीतिबहुला बहिरन्तस्त्वनावृताः।
प्रकाशा बहिरन्तश्च स्वभावाद्देवसंज्ञिताः॥८॥

वे सभी अधिक सुखमय एवं प्रीति वाले थे और बाहर-भीतर से अनावृत एवं स्वभावतः बाहर और भीतर प्रकाशित होने वाले थे। वे देवसंज्ञा को प्राप्त हुए।

ततोऽभिध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्तदा।
प्रादुरासीत्तदा व्यक्तादर्वाक्स्रोतस्तु साधकः॥९॥

तदनन्तर सत्य का चिन्तन करते हुए वे उस समय ध्यान करने लगे। तब व्यक्त से अर्वाक् स्रोतः साधक सृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ था।

तत्र प्रकाशबहुलास्तमोद्रिक्ता रजोऽधिकाः।
दुःखोत्कटाः सत्त्वयुता मनुष्याः परिकीर्त्तिताः॥१०॥

वहाँ उत्पन्न हुए प्रकाशबहुल, तम-उद्रिक्त, रज की अधिकता वाले, दुःखोत्कट, (फिर भी कुछ) सत्त्वयुक्त होने से मनुष्य नाम से कहे गये।

तं दृष्ट्वा चापरं सर्गममन्यद्भगवानजः।
तस्याभिध्यायतः सर्गं सर्गो भूतादिकोऽभवत्॥११॥
ते परिग्रहिणः सर्वे संविभागरताः पुनः।
खादनश्चाप्यशीलाश्च भूताद्याः परिकीर्त्तिताः॥१२॥

भगवान् अज ने उस सर्ग को देखकर (उससे भिन्न) दूसरी सृष्टि का ध्यान किया। ऐसा करने पर भूतादि का सर्ग उत्पन्न हुआ। वे सब परिग्रह से युक्त, अपने अनुकूल अच्छे विभाग को चाहने वाले, खाने की इच्छा करने वाले तथा शील अर्थात् सदाचारादि गुणों से रहित कहे गये।

इत्येते पञ्च कथिताः सर्गा वै द्विजपुंगवाः।
प्रथमो महतः सर्गो विज्ञेयो ब्रह्मणस्तु सः॥१३॥

द्विजश्रेष्ठो! ये पाँच प्रकार की प्रमुख सर्ग कहे गये हैं। उनमें महत् से उत्पन्न प्रथम सृष्टि (सर्ग) है, उसीको ब्रह्मा का सर्ग जानना चाहिए।

तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गो हि संस्मृतः।
वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्ग ऐन्द्रियकः स्मृतः॥१४॥

तन्मात्र की द्वितीय सृष्टि है, जिसे भूतसर्ग कहा गया है। तीसरी वैकारिक सृष्टि ऐन्द्रियक नाम से कही गई है।

इत्येष प्राकृतः सर्गः संभूतो बुद्धिपूर्वकः।
मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः॥१५॥

यह प्राकृत सर्ग बुद्धिपूर्वक संभूत है। वह चतुर्थ मुख्यसर्ग है। वे मुख्य ही स्थावर कहे गये हैं।

तिर्यक्स्रोतस्तु यः प्रोक्तस्तिर्यग्योन्यः स पञ्चमः।
तथोर्ध्वस्रोतसां षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृतः॥१६॥

जो तिर्यक् स्रोत कहा गया है, वह तिर्यक् योनि (पशुपक्षी आदि) वाली पंचम सृष्टि है। उसी प्रकार उर्ध्वस्रोत वालों का छठा देवसर्ग कहा गया है।

ततोऽर्वाक्स्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः।
अष्टमो भौतिकः सर्गो भूतादीनां प्रकीर्तितः॥१७॥

उसके बाद अर्वाक् स्रोत वालों की सातवीं मानुषी सृष्टि है। अष्टम भूतादियों की भौतिक सृष्टि कही गई है।

नवमश्चैव कौमारः प्राकृता वैकृतास्त्विमे।
प्राकृतास्तु त्रयः पूर्वे सर्गास्ते बुद्धिपूर्वकाः॥१८॥

नवम कौमार सृष्टि है जो प्राकृत और वैकृत दोनों हैं। पूर्व में तीनों प्राकृत सर्ग बुद्धिपूर्वक सम्पन्न हुए हैं।

बुद्धिपूर्वं प्रवर्त्तन्ते मुख्याद्या मुनिपुंगवाः।
अग्रे ससर्ज्ज वै ब्रह्मा मानसानात्मनः समान्॥ १९॥
सनकं सनातनं चैव तथैव च सनन्दनम्।
क्रतुं सनत्कुमारं च पूर्वमेव प्रजापतिः॥ २०॥

हे श्रेष्ठ मुनिगण! मुख्य आदि सृष्टियाँ बुद्धिपूर्व प्रवर्तित हैं। अनन्तर सर्वप्रथम ब्रह्मा ने अपने समान मानसपुत्रों की सृष्टि की। सनक, सनातन, सनन्दन, क्रतु और सनत्कुमार को प्रजापति ने पहले ही उत्पन्न कर दिया था।

पञ्चैते योगिनो विप्राः परं वैराग्यमाश्रिताः।
ईश्वरासक्तमनसो न सृष्टौ दधिरे मतिम्॥ २१॥

ये पाँचों योगी ब्राह्मणों ने परम वैराग्य को प्राप्त किया था जिससे ईश्वरासक्त मन वाले होकर इन्होंने पुनः सृष्टि करने में अपनी बुद्धि नहीं लगायी।

तेष्वेवं निरपेक्षेषु लोकसृष्टौ प्रजापतिः।
मुमोह मायया सद्यो मायिनः परमेष्ठिनः॥ २२॥

इस प्रकार लोकसृष्टि में उन योगियों के ऐसा निरपेक्ष हो जाने पर मायावी परमेष्ठी की माया से प्रजापति तत्क्षण मोहित हो गये।

संबोधयामास च तं जगन्मायो महामुनिः।
नारायणो महायोगी योगिचित्तानुरञ्जनः॥ २३॥

जगत्‌रूप माया वाले, फिरभी महायोगी, तथा योगियों के चित्त के अनुरंजन करने वाले महामुनि नारायण ने ब्रह्मा को बोधित (उपदेश) किया।

बोधितस्तेन विश्वात्मा तताप परमं तपः।
स तप्यमानो भगवान्न किञ्चित्प्रत्यपद्यत॥ २४॥

उनसे उपदिष्ट हुए विश्वात्मा ने परम तप का अनुष्ठान किया। किन्तु तप करते हुए भी भगवान् ने कुछ भी प्राप्त नहीं किया।

ततो दीर्घेण कालेन दुःखात्क्रोधोऽभ्यजायत।
क्रोधाविष्टस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुबिन्दवः॥ २५॥
भ्रुकुटीकुटिलात्तस्य ललाटात्परमेष्ठिनः।
समुत्पन्नो महादेवः शरण्यो नीललोहितः॥ २६॥

तब लम्बा समय निकल जाने पर उन्हें दुःख से क्रोध उत्पन्न हो गया। क्रोधाविष्ट हुए उनके नेत्रों से आँसुओं की बूँदें गिरने लगीं। उस टेढ़ी भृकुटी वाले परमेष्ठी के ललाट से सब के लिए शरण योग्य, नीललोहित महादेव उत्पन्न हुए।

स एव भगवानीशस्तेजोराशिः सनातनः।
यं प्रपश्यन्ति विद्वांसः स्वात्मस्थं परमेश्वरम्॥ २७॥

वही भगवान् तेजोराशिस्वरूप सनातन ईश हैं, जिन्हें विद्वान् अपने आत्मा में स्थित परमेश्वर के रूप में देखते हैं।

ओंकारं समनुस्मृत्य प्रणम्य च कृताञ्जलिः।
तमाह भगवान् ब्रह्मा सृजेमा विविधाः प्रजाः॥ २८॥

तब ओंकार का स्मरण कर, हाथ जोड़कर प्रणाम करके भगवान् ब्रह्मा उनसे बोले— आप विविध प्रजा की सृष्टि करें।

निशम्य भगवद्वाक्यं शंकरो धर्मवाहनः।
आत्मना सदृशान् रुद्रान् ससर्ज मनसा शिवः।
कपर्दिनो निरातङ्कांस्त्रिनेत्रान्नीललोहितान्॥ २९॥

ब्रह्मा के वचन सुनकर धर्मरूप वाहन वाले शिव शंकर ने मन से अपने ही स्वरूप जैसे जटाजूट-धारी, आतंकरहित, त्रिनेत्रधारी एवं नीललोहित रुद्रों की सृष्टि की।

तं प्राह भगवान् ब्रह्मा जन्ममृत्युयुताः प्रजाः।
सृजेति सोऽब्रवीदीशो नाहं मृत्युजरान्विताः॥ ३०॥
प्रजाः स्रक्ष्ये जगन्नाथ सृजत्वमशुभाः प्रजाः।
निवार्य स तदा रुद्रं ससर्ज कमलोद्भवः॥ ३१॥

उनसे भगवान् ब्रह्मा ने कहा— जन्म-मरण से युक्त प्रजाओं की सृष्टि करो। तब शिव ने कहा— हे जगन्नाथ! मैं जरा-मरण से युक्त प्रजाओं की सृष्टि नहीं करूँगा। आप इस अशुभ प्रजा की सृष्टि करें। तब कमलोद्भव ब्रह्मा ने रुद्र को रोककर स्वयं सृष्टि की।

स्थानाभिमानिनः सर्वान् गदतस्तान्निबोधत।
आपोऽग्निरन्तरिक्षं च द्यौर्वायुः पृथिवी तथा॥ ३२॥
नद्यः समुद्राः शैलाश्च वृक्षा वीरुध एव च।
लवाः काष्ठाः कलाश्चैव मुहूर्ता दिवसाः क्षपाः॥ ३३॥
अर्द्धमासाश्च मासाश्च अयनाब्दयुगादयः।
स्थानाभिमानिनः सृष्ट्वा साधकानसृजत्पुनः॥ ३४॥

तब ब्रह्माजी ने स्थानाभिमानी सब को उत्पन्न किया था, उसे मैं कहता हूँ, आप सुनें— जल, अग्नि, अन्तरिक्ष, द्यौः, वायु, पृथिवी, नदी, समुद्र, पर्वत, वृक्ष, लता, लव, काष्ठा, कला, मुहूर्त, दिन, रात्रि, पक्ष, मास, अयन, वर्ष और युग आदि स्थानाभिमानियों की सृष्टि करके पुनः साधकों की सृष्टि की।

मरीचिभृग्वङ्गिरसः पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
दक्षमत्रिं वसिष्ठं च धर्मं संकल्पमेव च॥ ३५॥

उन्होंने मरीचि, भृगु, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, अत्रि, वसिष्ठ, धर्म और संकल्प की सृष्टि की।

प्राणाद्ब्रह्मासृजद्दक्षं चक्षुर्भ्यां च मरीचिनम्।
शिरसोऽङ्गिरसं देवो हृदयाद्भृगुमेव च॥३६॥

ब्रह्माजी ने प्राण से दक्ष की सृष्टि की और चक्षुओं से मरीचि को उत्पन्न किया, मस्तक से अंगिरा को और हृदय से भृगु को उत्पन्न किया।

नेत्राभ्यामत्रिनामानं धर्मं च व्यवसायत:।
संकल्पं चैव संकल्पात्सर्वलोकपितामह:॥३७॥

सर्वलोकपितामह ने नेत्रों से अत्रि नामक महर्षि को, व्यवसाय से धर्म को और संकल्प से संकल्प की सृष्टि की।

पुलस्त्यं च तथोदानाद्व्यानाच्च पुलहं मुनिम्।
अपानात् क्रतुमव्यग्रं समानाच्च वसिष्ठकम्॥३८॥

उदान वायु से पुलस्त्य को, व्यान वायु से पुलह मुनि को, अपान वायु से व्यग्रतारहित क्रतु को और समानवायु से वसिष्ठ की सृष्टि की।

इत्येते ब्रह्मणा सृष्टा: साधका गृहमेधिन:।
आस्थाय मानवं रूपं धर्मस्तै: संप्रवर्त्तित:॥३९॥

ब्रह्मा द्वारा सृष्ट ये साधक गृहस्थ थे। इन्होंने मानवरूप को ग्रहण करके धर्म को प्रवर्तित किया।

ततो देवासुरपितॄन् मनुष्यांश्च चतुष्टयम्।
सिसृक्षुर्भगवानीश: स्वमात्मानमयोजयत्॥४०॥

तदनन्तर देवों असुरों, पितरों और मनुष्यों— इन चारों का सर्जन करने की इच्छा से भगवान् ईश ने अपने आपको नियुक्त किया।

युक्तात्मनस्तमोमात्रा ह्युद्रिक्ताभूत्प्रजापते:।
ततोऽस्य जघनात्पूर्वमसुरा जज्ञिरे सुता:॥४१॥

तब युक्तात्मा प्रजापति की तमोमात्रा अधिक बढ़ गई। तब सर्वप्रथम उनकी जांघ से असुर पुत्र पैदा हुए।

उत्ससर्जासुरान् सृष्ट्वा तां तनुं पुरुषोत्तम:।
सा चोत्सृष्टा तनुस्तेन सद्यो रात्रिरजायत॥४२॥

असुरों की सृष्टि करके पुरुषोत्तम ने उस शरीर को त्याग दिया। उनसे उत्सृष्ट वह शरीर रात्रि बन गया।

सा तमोबहुला यस्मात्प्रजास्तस्यां स्वपन्त्यत:।
सत्त्वमात्रात्मिकां देवस्तनुमन्यां गृहीतवान्॥४३॥

वह रात्रि तमो बहुला थी, इसी कारण से प्रजा उस रात्रि में सो जाती है। अनन्तर प्रजापति ने सत्त्वमात्रात्मक दूसरा शरीर धारण कर लिया।

ततोऽस्य मुखतो देवा दीव्यत: संप्रजज्ञिरे।
त्यक्ता सापि तनुस्तेन सत्त्वप्रायमभूद्दिनम्॥४४॥

तत्पश्चात् उनके देदीप्यमान मुख से देवता उत्पन्न हुए। जब उस शरीर का भी त्याग कर दिया तब वह सत्त्वप्रधान दिन हो गया।

तस्मादहो धर्मयुक्ता देवता: समुपासते।
सत्त्वमात्रात्मिकामेव ततोऽन्यां जगृहे तनुम्॥४५॥

इसलिए धर्मयुक्त देवता दिन की उपासना करते हैं। पुन: उन्होंने सत्त्वमात्रात्मिक अन्य शरीर को धारण किया।

पितृवन्मन्यमानस्य पितर: संप्रजज्ञिरे।
उत्ससर्ज पितॄन् सृष्ट्वा ततस्तामपि विश्वदृक्॥४६॥

उस शरीर से पिता पितर उत्पन्न हुए। इस प्रकार विश्वद्रष्टा ब्रह्मा ने पितरों की सृष्टि करके उस शरीर को भी त्याग दिया।

सापविद्धा तनुस्तेन सद्य: सन्ध्या: व्यजायत।
तस्मादहर्दैवतानां रात्रि: स्याद्देवविद्विषाम्॥४७॥

उनके द्वारा त्यक्त वह शरीर शीघ्र ही संध्यारूप में परिणत हो गया। अत: वह संध्या देवताओं के लिए, दिन और देवशत्रुओं के लिए रात्रि हो गई।

तयोर्मध्ये पितृणां तु मूर्त्ति: सन्ध्या गरीयसी।
तस्माद्देवासुरा: सर्वे मुनयो मानवास्तदा॥४८॥
उपासते सदा युक्ता रात्र्यह्नोर्मध्यमां तनुम्।
रजोमात्रात्मिकां ब्रह्मा तनुमन्यां ततोऽसृजत्॥४९॥

उन दोनों के मध्य पितरों की मूर्तिरूप सन्ध्या अत्यन्त श्रेष्ठ थी, इसलिए सभी देव, असुर, मुनि और मानव योगयुक्त होकर रात और दिन के मध्य शरीर-संध्या की सदा उपासना करते हैं। तदनन्तर ब्रह्मा ने रजोमात्रात्मक अन्य शरीर की सृष्टि की।

ततोऽस्य जज्ञिरे पुत्रा मनुष्या रजसावृता:।
तामथाशु स तत्याज तनुं सद्य: प्रजापति:॥५०॥
ज्योत्स्ना सा चाभवद्विप्रा: प्राक्सन्ध्या याभिधीयते।
तत: स भगवान्ब्रह्मा संप्राप्य द्विजपुंगवा:॥५१॥
मूर्तिं तमोरज:प्रायां पुनरेवाभ्ययूजयत्।
अन्धकारे क्षुधाविष्टा राक्षसास्तस्य जज्ञिरे॥५२॥

उससे रजोगुणयुक्त मानवपुत्र उत्पन्न हुए। अनन्तर उस शरीर को भी प्रजापति ने शीघ्र ही त्याग दिया। हे विप्रो! तत्पश्चात् वह शरीर ज्योत्स्नारूप में परिणत हो गया। उसी को पूर्वकालिक (प्रात:) सन्ध्या कहा जाता है। हे द्विजश्रेष्ठगण! वह अनन्तर भगवान् ब्रह्मा ने तम और रजोगुण विशिष्ट को प्राप्त करके उसका पुन: पूजन किया। तब अन्धकार में भूख से आविष्ट राक्षसगण उत्पन्न हुए।

पुत्रास्तमोरज:प्राया बलिनस्ते निशाचरा:।
सर्पा यक्षास्तथा भूता गन्धर्वा: संप्रजज्ञिरे॥५३॥

तम और रजोगुण विशिष्ट निशाचर पुत्र बलवान् हुए। वैसे ही सर्प, भूत तथा यक्ष तथा गन्धर्व आदि उत्पन्न हुए।

रजस्तमोभ्यामाविष्टांस्ततोऽन्यानसृजत्प्रभु:।
वयांसि वयस: सृष्ट्वा अवीन्वै वक्षसोऽसृजत्॥५४॥

अनन्तर प्रभु ने रजोगुण तथा तमोगुण से आविष्ट अन्य प्राणियों की सृष्टि की। वयस्-आयु से पक्षियों तथा वक्ष:स्थल से भेड़ों की सृष्टि की।

मुखतोऽजान् ससर्जान्यान् उदराद्गाश्च निर्ममे।
पद्भ्यां चाश्वान्समातंगान्रासभान् गवयान्मृगान्॥५५॥
उष्ट्रानश्वतरांश्चैव अरत्नेश्च प्रजापति:।
ओषध्य: फलमूलानि रोमभ्यस्तस्य जज्ञिरे॥५६॥

मुख से बकरों और अन्य की सृष्टि की तथा पेट से गौओं को बनाया। पैरों से घोड़ों, हाथियों, गधों, गवयों (नीलगायों) तथा मृगों को उत्पन्न किया। प्रजापति ने कहुनी से ऊँटों तथा खच्चरों को बनाया। उसके रोमों से औषधियों तथा फल-मूलों की सृष्टि हुई।

गायत्रं च ऋचश्चैव त्रिवृत्स्तोमं रथन्तरम्।
अग्निष्टोमं च यज्ञानां निर्ममे प्रथमान्मुखात्॥५७॥

चतुर्मुख में आपने प्रथम मुख से गायत्री, ऋचायें, त्रिवृत्स्तोम, रथन्तर और यज्ञों में अग्निष्टोम की रचना की।

यजूंषि त्रैष्टुभं छन्दस्तोमं पञ्चदशं तथा।
बृहत्साम तथोक्थञ्च दक्षिणादसृजन्मुखात्॥५८॥

यजुष, त्रिष्टुभ् आदि पन्द्रह छन्दस्तोम, बृहत्साम तथा उक्थ ये सब ब्रह्मा के दक्षिण मुख से उत्पन्न हुए।

सामानि जागतं छन्दस्तोमं सप्तदशं तथा।
वैरूपमतिरात्रं च पश्चिमादसृजन्मुखात्॥५९॥

साम, जगती नामक सत्रह छन्दस्तोम, वैरूप, अतिरात्र प्रभृति की सृष्टि पश्चिम मुख से हुई।

एकविंशमथर्वाणमाप्तोर्यामाणमेव च।
अनुष्टुभं सवैराजमुत्तरादसृजन्मुखात्॥६०॥

इक्कीसवां अथर्ववेद का विभाग आप्तोर्यामन, अनुष्टुप् छन्द तथा विराट् ब्रह्मा के उत्तर मुख से उत्पन्न हुए।

उच्चावचानि भूतानि गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे।
ब्रह्मणो हि प्रजासर्गं सृजतस्तु प्रजापते:॥६१॥
यक्षान् पिशाचान् गन्धर्वांस्तथैवाप्सरस: शुभा:।
सृष्ट्वा चतुष्टयं सर्गं देवर्षिपितृमानुषम्॥६२॥
ततोऽसृजच्च भूतानि स्थावराणि चराणि च।
नरकिन्नररक्षांसि वय: पशुमृगोरगान्॥६३॥

उनके अंगों से छोटे-बड़े सभी भूत उत्पन्न हुए। प्रजा की सृष्टि करते हुए प्रजापति ब्रह्मा ने यक्षों, पिशाचों, गन्धर्वों तथा सुन्दर अप्सराओं की सृष्टि की। देव, ऋषि, पितर और मनुष्य सभी चार प्रकार की सृष्टि करने के पश्चात् स्थावर, जंगम रूप प्राणियों की सृष्टि की। पुन: नर, किन्नर, राक्षस, पक्षी, पशु, मृग और सर्पों की सृष्टि की।

अव्ययं च व्ययं चैव द्वयं स्थावरजङ्गमम्।
तेषां ये यानि कर्माणि प्राक् सृष्टे: प्रतिपेदिरे॥६४॥
तान्येव ते प्रपद्यन्ते सृज्यमाना: पुन: पुन:।
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते॥६५॥
तद्भाविता: प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते।
महाभूतेषु नानात्वमिन्द्रियार्थेषु मूर्तिषु॥६६॥
विनियोगं च भूतानां धातैव व्यदधात्स्वयम्।
नामरूपं च भूतानां प्राकृतानां प्रपञ्चनम्॥६७॥

स्थावरजंगमरूप नित्य और अनित्य दोनों प्रकार की सृष्टि थी। सृष्टि के पूर्व जो कर्म उनके थे, वे ही बार-बार सृष्टि के समय उन्हें प्राप्त हो जाते थे। हिंसा, अहिंसा, मृदुता क्रूरता, धर्म, अधर्म, सत्य और असत्य आदि उन्हीं के द्वारा किये हुए होने से उन्हीं को प्राप्त होते थे। अतएव उन्हें अच्छे प्रतीत होते थे। इन्द्रियों के विषय रूप महाभूतरूप के शरीरों में अनुभव तथा उनमें भूतों का विनियोग, प्राकृत भूतों का नाम-रूप और पदार्थों का प्रपञ्च स्वयं विधाता ने रचा था।

वेदशब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेश्वर:।
आर्षाणि चैव नामानि याश्च वेदेषु सृष्टय:॥६८॥

महेश्वर ने सर्वप्रथम वेदवाणी से ही ऋषियों के नाम तथा वेदोक्त सृष्टियों का निर्माण किया।

शर्वर्यन्ते प्रसूतानां तान्येवैभ्यो ददात्यज:।
यावन्ति प्रतिलिङ्गानि नानारूपाणि पर्यये॥६९॥

दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा भावायुगादिषु॥७०॥

अज प्रजापति ने रात्रि के अन्त में प्रसूत भूतों को भी वे ही नाम दिये। जितने लिङ्ग पर्यायक्रम से नाना रूप और युग-युग में जो भाव थे वे सब दे दिये।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे सप्तमोऽध्याय:॥७॥

अष्टमोऽध्याय:

(मुख्यादिसर्ग-कथन)

कूर्म उवाच

एवं भूतानि सृष्टानि स्थावराणि चराणि च।
यदास्य ता: प्रजा: सृष्टा न व्यवर्द्धन्त धीमत:॥१॥

कूर्म बोले— इस प्रकार स्थावर और चररूप भूतों की सृष्टि हुई। परन्तु धीमान् प्रजापति द्वारा उत्पन्न उन प्रजाओं की वृद्धि नहीं हुई।

तमोमात्रावृतो ब्रह्मा तदाशोचत दु:खित:।
तत: स विदधे बुद्धिमर्थनिश्चयगामिनीम्॥२॥

तब तमोगुण से आवृत ब्रह्मा दु:खी होकर शोक करने लगे। अनन्तर उन्होंने प्रयोजन को पूर्ण करने में समर्थ बुद्धि का अनुसरण किया।

अथात्मनि समद्राक्षीत्तमोमात्रां नियामिकाम्।
रज: सत्त्वं च संवृत्तं वर्तमानं स्वधर्मत:॥३॥

अनन्तर उन्होंने नियामिका तमोमात्रा को अपनी आत्मा में देखा और अपने धर्म से संवृत रजोगुण और सत्त्वगुण को भी वर्तमान देखा।

तमस्तु व्यनुदत्पश्चाद्रज: सत्त्वेन संयुत:।
ततम: प्रतिनुत्रं वै मिथुनं समजायत॥४॥

पश्चात् तम का परित्याग कर दिया। रजस् सत्त्व से संयुक्त हुआ। तम के क्षीण हो जाने पर वह मिथुन रूप में प्रकट हुआ।

अधर्माचरणो विप्रा हिंसा चाशुभलक्षणा।
स्वां तनुं स ततो ब्रह्मा तामपोहत भास्वराम्॥५॥

हे द्विजगण! वह हिंसा अधर्म आचरण वाली और अशुभलक्षणा थी। तत्पश्चात् ब्रह्मा ने अपनी उस भास्वर देह को ढँक लिया।

द्विधाकरोत्पुनर्देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत्।
अर्द्धेन नारी पुरुषो विराजमसृजत् प्रभु:॥६॥

पुन: उन्होंने अपनी देह को दो भागों में कर दिया। उसके आधे भाग से पुरुष हुआ और आधे से नारी। उस पुरुषरूप प्रभु ने विराट् को उत्पन्न किया।

नारीं च शतरूपाख्यां योगिनीं ससृजे शुभाम्।
सा दिवं पृथिवीं चैव महिम्ना व्याप्य संस्थिता॥७॥

शतरूपा नामवाली शुभलक्षणा योगिनी नारी को जन्म दिया। वह अपनी महिमा से द्युलोक और पृथ्वी लोक को व्याप्त करके अवस्थित हुई।

योगैश्वर्यबलोपेता ज्ञानविज्ञानसंयुता।
योऽभवत्पुरुषात्पुत्रो विराडव्यक्तजन्मन:॥८॥
स्वायंभुवो मनुर्देव: सोऽभवत्पुरुषो मुनि:।
सा देवी शतरूपाख्या तप: कृत्वा सुदुश्चरम्॥९॥
भर्तारं दीप्तयशसं मनुमेवान्वपद्यत।
तस्माच्च शतरूपा सा पुत्रद्वयमसूयत॥१०॥

वह नारी योग के ऐश्वर्य तथा बल से युक्त थी और ज्ञान विज्ञान से भी युक्त थी। अव्यक्तजन्मा पुरुष से जो विराट् पुत्र हुआ, वही देवपुरुष मुनि स्वायंभुव मनु हुए। शतरूपा नामवाली उस देवी ने कठोर दुश्चर तप करके प्रदीप्त यश वाले मनु को ही पति के रूप में प्राप्त किया। उस मनु से शतरूपा ने दो पुत्रों को जन्म दिया।

प्रियव्रतोत्तानपादौ कन्याद्वयमनुत्तमम्।
तयो: प्रसूतिं दक्षाय मनु: कन्यां ददे पुन:॥११॥

उन दोनों के नाम प्रियव्रत और उत्तानपाद थे और दो उत्तम कन्यायें भी हुईं। उनमें से प्रसूति नामक कन्या को मनु ने दक्ष को प्रदान कर दी।

प्रजापतिराकूतिं मानसो जगृहे रुचि:।
आकूत्यां मिथुनं जज्ञे मानसस्य रुचे: शुभम्॥१२॥
यज्ञं च दक्षिणां चैव याभ्यां संवर्धितं जगत्।
यज्ञस्य दक्षिणायां च पुत्रा द्वादश जज्ञिरे॥१३॥

इसके बाद ब्रह्मा के मानसपुत्र प्रजापति रुचि ने आकूति नाम वाली (दूसरी) कन्या को ग्रहण किया। रुचि के आकूति से मानससृष्टिरूप एक शुभलक्षण मिथुन का जन्म हुआ। उनका नाम यज्ञ और दक्षिणा था, जिन दोनों से यह संपूर्ण संसार संवर्धित हुआ। दक्षिणा में यज्ञ के बारह पुत्रों ने जन्म लिया।

यामा इति समाख्याता देवाः स्वायंभुवेऽन्तरे।
प्रसूत्यां च तथा दक्षश्चक्रे विंशतिं तथा॥ १४॥

स्वायंभुव मनु के समय में वे देव 'याम' नाम से विख्यात हुए। उसी प्रकार दक्ष प्रजापति ने प्रसूति से चौबीस कन्याओं को उत्पन्न किया था।

ससर्ज कन्या नामानि तासां सम्यक् निबोधत।
श्रद्धा लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिर्मेधा क्रिया तथा॥ १५॥
बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिः सिद्धिः कीर्तिस्त्रयोदशी।
पत्न्यर्थं प्रतिजग्राह धर्मो दाक्षायणीः शुभाः॥ १६॥

जिन कन्याओं का जन्म हुआ उनके नामों को ध्यान से सुनो— श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, सान्ति, सिद्धि और तेरहवीं कीर्ति— इन कल्याणी परम शुभलक्षणा दक्ष-पुत्रियों को धर्म ने पत्नीरूप में ग्रहण किया था।

ताभ्यः शिष्टा यवीयस्य एकादश सुलोचनाः।
ख्यातिः सत्यथ संभूतिः स्मृतिः प्रीतिः क्षमा तथा॥ १७॥
सन्नतिश्चानसूया च ऊर्जा स्वाहा स्वधा तथा।

इनसे शेष जो ग्यारह सुलोचना कन्याएँ थीं, उनके नाम— ख्याति, सती, संभूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, सन्तति, अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा तथा स्वधा इस प्रकार हैं।

भृगुर्भवो मरीचिश्च तथा चैवाङ्गिरा मुनिः॥ १८॥
पुलस्त्यः पुलहश्चैव क्रतुः परमधर्मवित्।
अत्रिर्वसिष्ठो वह्निश्च पितरश्च यथाक्रमम्॥ १९॥
ख्यात्याद्या जगृहुः कन्या मुनयो ज्ञानसत्तमाः।
श्रद्धाया आत्मजः कामो दर्पो लक्ष्मीसुतः स्मृतः॥ २०॥

भृगु, भव, मरीचि, अंगिरा मुनि, पुलस्त्य, पुलह, परम धर्मवेत्ता क्रतु, अत्रि, वसिष्ठ, वह्नि तथा पितृगण— इन ग्यारह श्रेष्ठज्ञानी मुनियों ने क्रमशः ख्याति आदि कन्याओं को ग्रहण किया। श्रद्धा का पुत्र काम हुआ और लक्ष्मी का पुत्र दर्प कहा गया।

धृत्यास्तु नियमः पुत्रस्तुष्ट्याः सन्तोष उच्यते।
पुष्ट्या लाभः सुतश्चापि मेधापुत्रः शमस्तथा॥ २१॥

धृति का पुत्र नियम और तुष्टि का पुत्र सन्तोष कहा जाता है। पुष्टि का पुत्र लाभ तथा मेधा पुत्र शम कहलाया।

क्रियायाश्चाभवत्पुत्रो दण्डश्च नय एव च।
बुद्ध्या बोधः सुतस्तद्वत्प्रमादोऽप्यजायत॥ २२॥

क्रिया का पुत्र दण्ड और नय हुआ। बुद्धि का पुत्र बोध और उसी प्रकार प्रमाद भी उत्पन्न हुआ।

लज्जाया विनयः पुत्रो वपुषो व्यवसायकः।
क्षेमः शान्तिसुतश्चापि सिद्धिः सिद्धेरजायत॥ २३॥

लज्जा का पुत्र विनय, वपु का पुत्र व्यवसाय, शान्ति का पुत्र क्षेम और सिद्धि का पुत्र सिद्ध हुआ।

यशः कीर्त्तिसुतस्तद्वदित्येते धर्मसूनवः।
कामस्य हर्षः पुत्रोऽभूद्देवानन्दोऽप्यजायत॥ २४॥

कीर्ति का पुत्र यश हुआ था। इसी तरह ये सब धर्म के पुत्र हुए थे। काम के पुत्र हर्ष और देवानन्द हुए।

इत्येष वै सुखोदर्कः सर्गो धर्मस्य कीर्त्तितः।
जज्ञे हिंसा त्वधर्माद्वै निकृतिं चानृतं सुतम्॥ २५॥

इस तरह धर्म की यह सुखपर्यन्त सृष्टि बता दी गई है। हिंसा ने अधर्म से निकृति और अनृत नामक सुत को उत्पन्न किया।

निकृतेस्तनयो जज्ञे भयं नरकमेव च।
माया च वेदना चैव मिथुनं त्विदमेतयोः॥ २६॥

निकृति के भय और नरक नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। माया और वेदना क्रमशः इन दोनों का मिथुन था।

भयाज्जज्ञेऽथ वै माया मृत्युं भूतापहारिणम्।
वेदना च सुतं चापि दुःखं जज्ञेऽथ रौरवात्॥ २७॥

माया ने भय से प्राणियों के संहारक मृत्यु को उत्पन्न किया था। रौरव नामक नरक से वेदना ने दुःख नामक पुत्र को जन्म दिया।

मृत्योर्व्याधिर्जराशोकौ तृष्णा क्रोधश्च जज्ञिरे।
दुःखोत्तराः स्मृता ह्येते सर्वे चाधर्मलक्षणाः॥ २८॥

मृत्यु की व्याधि नामक पत्नी ने जरा, शोक, तृष्णा और क्रोध उत्पन्न किये। ये सभी अधर्मलक्षण वाले दुःख-परिणामी कहे गये हैं।

नैषां भार्यास्ति पुत्रो वा सर्वे ते ह्यूर्ध्वरेतसः।
इत्येष तामसः सर्गो जज्ञे धर्मनियामकः॥ २९॥
संक्षेपेण मया प्रोक्ता विसृष्टिर्मुनिपुङ्गवाः॥ ३०॥

न इनकी कोई पत्नी थी और न पुत्र था। ये सब ऊर्ध्वरेता (बालब्रह्मचारी) थे। इस तामस सृष्टि को धर्मनियामक ने उत्पन्न किया था। हे मुनिश्रेष्ठो! मैंने संक्षेप में इस सृष्टि का वर्णन कर दिया है।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे मुख्यादिसर्गकथनेऽष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

नवमोऽध्यायः

(ब्रह्माजी का प्रादुर्भाव)

सूत उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं नारदाद्या महर्षयः।
प्रणम्य वरदं विष्णुं पप्रच्छुः संशयान्विताः॥ १॥

सूत बोले— यह वचन सुनकर नारद आदि महर्षियों ने संशययुक्त होकर वरदायक विष्णु को प्रणाम करके पूछा।

मुनय ऊचुः

कथितो भवता सर्गो मुख्यादीनां जनार्दन।
इदानीं संशयं चेयमस्माकं छेत्तुमर्हसि॥ २॥

मुनियों ने कहा— हे जनार्दन! आपने मुख्य आदि सर्ग तो कह दिया, अब जो हमारा सन्देह है, उसे दूर करने में आप समर्थ हैं।

कथं स भगवानीशः पूर्वजोऽपि पिनाकधृक्।
पुत्रत्वमगमच्छंभुर्ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः॥ ३॥
कथं च भगवाञ्जज्ञे ब्रह्मा लोकपितामहः।
अण्डतो जगतामीशस्तन्नो वक्तुमिहार्हसि॥ ४॥

वे भगवान् पिनाकधारी ईश (शंकर) पूर्वज होने पर भी अव्यक्त जन्मा ब्रह्मा के पुत्र कैसे हुए? और जगत् के अधिपति लोक-पितामह भगवान् ब्रह्मा अण्ड से कैसे उत्पन्न हुए? यह आप ही कहने योग्य हैं।

कूर्म उवाच

शृणुध्वमृषयः सर्वे शंकरस्यामितौजसः।
पुत्रत्वं ब्रह्मणस्तस्य पद्मयोनित्वमेव च॥ ५॥

कूर्म बोले— हे ऋषिगण! अमित तेजस्वी भगवान् शंकर का ब्रह्मा के पुत्ररूप में होना और ब्रह्मा का कमल से उत्पन्न होना कैसे हुआ? यह आप सब लोक सुनें।

अतीतकल्पावसाने तमोभूतं जगत्त्रयम्।
आसीदेकार्णवं घोरं न देवाद्या न चर्षयः॥ ६॥

बीते हुए कल्प के अन्त में ये तीनों लोक अन्धकारमय थे तथा परम घोर एक समुद्र ही था। वहां न देवता ही थे और न ऋषि आदि ही।

तत्र नारायणो देवो निर्जने निरुपप्लवे।
आश्रित्य शेषशयनं सुष्वाप पुरुषोत्तमः॥ ७॥

वहाँ केवल पुरुषोत्तम नारायणदेव उस उपद्रवशून्य निर्जन अर्णव में शेषशय्या के आश्रित होकर सो रहे थे।

सहस्रशीर्षा भूत्वा स सहस्राक्षः सहस्रपात्।
सहस्रबाहुः सर्वज्ञश्चिन्त्यमानो मनीषिभिः॥ ८॥

वे सहस्र शिर वाले, सहस्र नेत्र वाले, सहस्र पाद और सहस्रबाहु एवं सर्वज्ञरूप में होकर मनीषियों द्वारा ध्यान किये जाते हैं।

पीतवासा विशालाक्षो नीलजीमूतसन्निभः।
ततो विभूतियोगात्मा योगिनां तु दयापरः॥ ९॥

पीतवस्त्रधारी, विशाल नेत्र वाले, काले मेघ के समान आभा वाले वे पुनः ऐश्वर्यमय, योगात्मा और योगियों के लिए परम दयापरायण थे।

कदाचित्तस्य सुप्तस्य लीलार्थं दिव्यमद्भुतम्।
त्रैलोक्यसारं विमलं नाभ्यां पंकजमुद्बभौ॥ १०॥

किसी समय सुप्तावस्था में उनकी नाभि में अनायास ही एक दिव्य, अद्भुत, तीनों लोकों का साररूप, स्वच्छ कमल प्रकाशित हुआ था।

शतयोजनविस्तीर्णं तरुणादित्यसन्निभम्।
दिव्यगन्धमयं पुण्यं कर्णिका केसरान्वितम्॥ ११॥

वह कमल सौ योजन की दूरी तक फैला हुआ और तरुण (मध्याह्न समय के) सूर्य की आभा वाला था। वह दिव्य गन्धयुक्त, पवित्र और केसर से युक्त कर्णिका वाला था।

तस्यैवं सुचिरं कालं वर्त्तमानस्य शार्ङ्गिणः।
हिरण्यगर्भो भगवांस्तं देशमुपचक्रमे॥ १२॥

इस प्रकार शार्ङ्गपाणि के दीर्घकाल तक वर्तमान रहते हुए भगवान् हिरण्यगर्भ उस स्थान के समीप आ पहुँचे थे।

स तं करेण विश्वात्मा समुत्थाप्य सनातनम्।
प्रोवाच मधुरं वाक्यं मायया तस्य मोहितः॥ १३॥

उस विश्वात्मा ने अपने एक हाथ से सनातन सर्वात्मा को उठा लिया, फिर उसकी माया से मोहित होकर ये मधुर वचन कहे।

अस्मिन्नेकार्णवे घोरे निर्जने तमसावृते।
एकाकी को भवांछेति ब्रूहि मे पुरुषर्षभ॥ १४॥

इस अन्धकार से घिरे हुए निर्जन भयानक एकार्णव में एकाकी आप कौन हैं? हे पुरुषर्षभ! मुझे आप बताने की कृपा करें।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा विहस्य गरुडध्वजः।

उवाच देवं ब्रह्माणं मेघगम्भीरनि:स्वन:॥ १५॥

उनके यह वचन सुनकर गरुडध्वज विष्णु ने कुछ हँसकर मेघ के समान गंभीर स्वर वाले होकर ब्रह्मदेव से कहा।

भो भो नारायणं देवं लोकानां प्रभवाव्ययम्।
महायोगीश्वरं मां वै जानीहि पुरुषोत्तमम्॥ १६॥

हे ब्रह्मन्! आप मुझे लोकों की उत्पत्ति का स्थान, अविनाशी, महायोगीश्वर पुरुषोत्तम नारायण जानें।

मयि पश्य जगत्कृत्स्नं त्वं च लोकपितामह।
सपर्वतमहाद्वीपं समुद्रै: सप्तभिर्वृतम्॥ १७॥

आप लोकपितामह हैं। इस सारा जगत् जो पर्वत और महाद्वीपों से युक्त तथा सात समुद्रों से घिरा हुआ है, उसे मुझमें ही देखें।

एवमाभाष्य विश्वात्मा प्रोवाच पुरुषं हरि:।
जानन्नपि महायोगी को भवानिति वेधसम्॥ १८॥

इस प्रकार कहकर विश्वात्मा हरि ने जानते हुए भी पुराण-पुरुष ब्रह्माजी से पूछा- आप महायोगी कौन हैं?

तत: प्रहस्य भगवान् ब्रह्मा वेदनिधि: प्रभु:।
प्रत्युवाचाम्बुजाभासं सस्मितं श्लक्ष्णया गिरा॥ १९॥

तब कुछ हँसते हुए वेदनिधि प्रभु भगवान् ब्रह्मा ने मधुर वाणी में कमल की आभा के समान सस्मित विष्णु को उत्तर दिया।

अहं धाता विधाता च स्वयम्भू: प्रपितामह:।
मय्येव संस्थितं विश्वं ब्रह्माहं विश्वतोमुख:॥ २०॥

मैं ही धाता, विधाता और स्वयंम्भू प्रपितामह हूँ। मुझमें ही यह विश्व संस्थित है। मैं ही सर्वतोमुख ब्रह्मा हूँ।

श्रुत्वा वाचं च भगवान्विष्णु: सत्यपराक्रम:।
अनुज्ञाप्याथ योगेन प्रविष्टो ब्रह्मणस्तनुम्॥ २१॥

सत्यपराक्रमी भगवान् विष्णु ने यह वचन सुनकर पुन: उनसे आज्ञा लेकर योग द्वारा ब्रह्मा के शरीर में प्रवेश कर लिया।

त्रैलोक्यमेतत्सकलं सदेवासुरमानुषम्।
उदरे तस्य देवस्य दृष्ट्वा विस्मयमागत:॥ २२॥

उन ब्रह्मदेव के उदर में देव, असुर और मानव सहित इस सारे त्रैलोक्य को देखकर वे विस्मित हो उठे।

तदास्य वक्त्रान्निष्क्रम्य पन्नगेन्द्रनिकेतन:।
अथापि भगवान्विष्णु: पितामहमथाब्रवीत्॥ २३॥

उस समय शेषशायी भगवान् विष्णु ने उनके मुख से बाहर निकलकर पितामह से इस प्रकार कहा।

भवानप्येवमेवाद्य शाश्वतं हि ममोदरम्।
प्रविश्य लोकान्पश्यैतान्विचित्रान्पुरुषर्षभ॥ २४॥

हे पुरुषर्षभ! आज आप भी मेरे इस शाश्वत उदर में प्रवेश करके इन विचित्र लोकों का अवलोकन करो।

तत: प्रह्लादिनीं वाणीं श्रुत्वा तस्याभिनन्द्य च।
श्रीपतेरुदरं भूय: प्रविवेश कुशध्वज:॥ २५॥

तदनन्तर मन को प्रसन्न करने वाली वाणी सुनकर और उनका अभिनन्दन करके पुन: कुशध्वज ने लक्ष्मीपति के उदर में प्रवेश किया।

तानेव लोकान्गर्भस्थानपश्यत्सत्यविक्रम:।
पर्यटित्वाथ देवस्य ददृशेऽन्तं न वै हरे:॥ २६॥

सत्यपराक्रमी ने उनके अन्दर स्थापित सब लोकों को देखा। अनन्तर भ्रमण करते हुए उन्हें भगवान् हरि का अन्त नहीं दिखाई पड़ा।

ततो द्वाराणि सर्वाणि पिहितानि महात्मना।
जनार्दनेन ब्रह्मासौ नाभ्यां द्वारमविन्दत॥ २७॥

अनन्तर महात्मा जनार्दन ने सारे द्वार बन्द कर दिये। तब ब्रह्माजी को नाभि में द्वार प्राप्त हुआ।

तत्र योगबलेनासौ प्रविश्य कनकाण्डज:।
उज्जहारात्मनो रूपं पुष्कराच्चतुराननः॥ २८॥

वहाँ हिरण्यगर्भ चतुर्मुख ब्रह्मा ने योग के बल से अपने स्वरूप को पुष्कर से बाहर निकाला।

विरराजारविन्दस्थ: पद्मगर्भसमद्युति:।
ब्रह्मा स्वयंभूर्भगवाञ्जगद्योनि: पितामह:॥ २९॥

उस समय कमल के भीतर वर्तमान जगद्योनि, स्वयम्भू, पितामह भगवान् ब्रह्मा पद्म के अन्दर की कान्ति के समान ही सुशोभित हुए।

समन्यमानो विश्वेशमात्मानं परमं पदम्।
प्रोवाच विष्णुं पुरुषं मेघगम्भीरया गिरा॥ ३०॥

उस समय स्वयं को परम पद विश्वात्मा का मान देते हुए उन्होंने मेघ के समान गंभीर वाणी में पुरुषोत्तम विष्णु से कहा।

कृतं किं भवतेदानीमात्मनो जयकाङ्क्षया।
एकोऽहं प्रबलो नान्यो मा वै कोपि भविष्यति॥ ३१॥

आपने अपनी जय की अभिलाषा से यह क्या कर दिया? मैं ही अकेला शक्तिमान् हूँ और मेरे अतिरिक्त दूसरा कोई होगा भी नहीं।

श्रुत्वा नारायणो वाक्यं ब्रह्मणोक्तमतन्द्रित:।
सान्त्वपूर्वमिदं वाक्यं बभाषे मधुरं हरि:॥ ३२॥

ब्रह्मा द्वारा कहे गये इस वाक्य को सुनकर सावधान होते हुए नारायण हरि ने सान्त्वनापूर्ण ये मधुर वचन कहे।

भवान्धाता विधाता च स्वयंभू: प्रपितामह:।
न मात्सर्याभियोगेन द्वाराणि पिहितानि मे॥ ३३॥
किन्तु लीलार्थमेवैतन्न त्वां बाधितुमिच्छया।
को हि बाधितुमन्विच्छेद्देवदेवं पितामहम्॥ ३४॥

आप ही धाता विधाता स्वयंभू और प्रपितामह हैं। मैंने किसी ईर्ष्यावश द्वार बन्द नहीं किये थे। किन्तु मैंने तो केवल लीला के लिए ही ऐसा किया था, आपको बाधित करने की इच्छा से नहीं।

न हि त्वं बाध्यसे ब्रह्मन् मान्यो हि सर्वथा भवान्।
मम क्षमस्व कल्याण यन्मयापकृतं तव॥ ३५॥

हे ब्रह्मन्! आप किसी प्रकार बाधित नहीं हैं। आप तो सर्वथा हमारे लिए मान्य हैं। हे कल्याणकारी! जो मैंने आपका अपकार किया है, मुझे क्षमा करेंगे।

अस्माच्च कारणाद्ब्रह्मन्पुत्रो भवतु मे भवान्।
पद्मयोनिरिति ख्यातो मत्प्रियार्थं जगन्मय॥ ३६॥

हे ब्रह्मन्! इसी कारण से आप मेरे पुत्र हो जायँ। हे जगन्मय! मेरा प्रिय करने की इच्छा से पद्मयोनि नाम से विख्यात हों।

तत: स भगवान्देवो वरं दत्त्वा किरीटिने।
प्रहर्षमतुलं गत्वा पुनर्विष्णुमभाषत॥ ३७॥

अनन्तर भगवान् ब्रह्मदेव किरीटधारी विष्णु को वर प्रदान करके और अत्यन्त प्रसन्न होकर पुन: विष्णु से बोले।

भवान्सर्वात्मकोऽनन्त: सर्वेषां परमेश्वर:।
सर्वभूतान्तरात्मा वै परं ब्रह्म सनातनम्॥ ३८॥

आप सब के आत्मस्वरूप, अनन्त, परमेश्वर, समस्तभूतों की अन्तरात्मा तथा सनातन परब्रह्म हैं।

अहं वै सर्वलोकानामात्मालोको महेश्वर:।
मन्मयं सर्वमेवेदं ब्रह्माहं पुरुष: पर:॥ ३९॥

मैं ही समस्त लोकों के भीतर रहने वाला प्रकाशरूप महेश्वर हूँ। यह समस्त चराचर मेरा अपना है। मैं ही परम पुरुष ब्रह्मा हूँ।

नावाभ्यां विद्यते ह्यन्यो लोकानां परमेश्वर:।
एका मूर्तिर्द्विधा भिन्ना नारायणपितामहौ॥ ४०॥

हम दोनों के अतिरिक्त इन लोकों का परमेश्वर दूसरा कोई नहीं है। नारायण और पितामहरूप में द्विधा विभक्त एक ही मूर्ति है।

तेनैवमुक्तो ब्रह्माणं वासुदेवोऽब्रवीदिदम्।
इयं प्रतिज्ञा भवतो विनाशाय भविष्यति॥ ४१॥

उनके द्वारा ऐसा कहने पर वासुदेव ने ब्रह्माजी से कहा- आपकी यह प्रतिज्ञा विनाश के लिए होगी।

किं न पश्यसि योगेन ब्रह्माधिपतिमव्ययम्।
प्रधानपुरुषेशानं वेदाहं परमेश्वरम्॥ ४२॥

क्या आप योग द्वारा अविनाशी ब्रह्माधिपति को नहीं देखते हैं? प्रधान और पुरुष के ईश उस परमेश्वर को मैं जानता हूँ।

यं न पश्यन्ति योगीन्द्रा: सांख्या अपि महेश्वरम्।
अनादिनिधनं ब्रह्म तमेव शरणं व्रज॥ ४३॥

जिस महेश्वर को योगीन्द्र और सांख्यवेत्ता भी नहीं देख पाते हैं, उस अनादिनिधन ब्रह्म की शरण में जाओ।

तत: क्रुद्धोऽम्बुजाभाक्षं ब्रह्मा प्रोवाच केशवम्।
भगवन्नूनमात्मानं वेद्मि तत्परमाक्षरम्॥ ४४॥
ब्रह्माणं जगतामेकमात्मानं परमं पदम्।
आवाभ्यां विद्यते त्वन्यो लोकानां परमेश्वर:॥ ४५॥

इस बात से क्रुद्ध होकर अम्बुज की आभा-तुल्य नेत्र वाले ब्रह्मा ने केशव से कहा- भगवन्! मैं अवश्य ही परम अविनाशी आत्मतत्त्व को जानता हूँ, जो ब्रह्मस्वरूप, जगत् की आत्मा और परमपद है। हम दोनों के अतिरिक्त लोकों का परमेश्वर कोई दूसरा नहीं है।

संत्यज्य निद्रां विपुलां स्वमात्मानं विलोकय।
तस्य तत्क्रोधजं वाक्यं श्रुत्वापि स तदा प्रभु:॥ ४६॥

इस दीर्घ योगनिद्रा का परित्याग करके अपनी आत्मा में देखो। इस प्रकार उनके क्रोधभरे वचन सुनकर भी, उस समय प्रभु ने कहा-।

मामैवं वद कल्याण परिवादं महात्मन:।
न मे ह्यविदितं ब्रह्मन् नान्यथाहं वदामि ते॥ ४७॥

हे कल्याणकर! इस प्रकार उन महात्मा के विषय में निन्दा की बात मुझ से मत कहो। हे ब्रह्मन्! मेरे लिए

अविदित कुछ नहीं है और मैं आपको अन्यथा भी नहीं कहता हूँ।

किन्तु मोहयति ब्रह्मन्ननन्ता पारमेश्वरी।
मायाशेषविशेषाणां हेतुरात्मसमुद्भवा॥४८॥

किन्तु हे ब्रह्मन्! परमेश्वर की वह अनन्त माया जो समस्त पदार्थों की हेतु और आत्मसमुद्भवा है, आपको मोहित कर रही है।

एतावदुक्त्वा भगवान्विष्णुस्तूष्णीं बभूव ह।
ज्ञात्वा तत्परमं तत्त्वं स्वमात्मानं सुरेश्वरः॥४९॥

इस प्रकार कहकर भगवान् विष्णु चुप हो गये। उन सुरेश्वर ने अपनी आत्मा में उस परम तत्त्व को जानकर ही ऐसा कहा था।

कुतो ह्यपरिमेयात्मा भूतानां परमेश्वरः।
प्रसादं ब्रह्मणे कर्तुं प्रादुरासीत्ततो हरः॥५०॥

तदनन्तर कहीं से अपरिमेयात्मा, भूतों के परमेश्वर शिवजी ब्रह्मा का कल्याण करने की इच्छा से प्रादुर्भूत हुए।

ललाटनयनो देवो जटामण्डलमण्डितः।
त्रिशूलपाणिर्भगवांस्तेजसां परमो निधिः॥५१॥

वे भगवान् शिव सिर पर जटाओं से मंडित थे और ललाट में (तृतीय) नेत्रधारी थे। उनके हाथ में त्रिशूल था और वे तेजसमूह के परमनिधि थे।

दिव्यां विलासग्रथितां ग्रहैः सार्केन्दुतारकैः।
मालामत्यद्भुताकारां धारयन्पादलम्बिनीम्॥५२॥

सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रगणों के समूह के साथ विद्याविलासपूर्वक ग्रथित पैरों तक लटकने वाली एक अद्भुत माला को उन्होंने धारण किया हुआ था।

तं दृष्ट्वा देवमीशानं ब्रह्मा लोकपितामहः।
मोहितो माययात्यर्थं पीतवाससमब्रवीत्॥५३॥

लोकपितामह ब्रह्मा ने उन ईशानदेव को देखकर माया से अत्यधिक मोहित होते हुए पिताम्बरधारी विष्णु से कहा।

क एष पुरुषो नीलः शूलपाणिस्त्रिलोचनः।
तेजोराशिरमेयात्मा समायाति जनार्दन॥५४॥

हे जनार्दन! यह नीलवर्ण, शूलपाणि, त्रिलोचन और अपरिमित तेज राशि वाला यह पुरुष कौन है।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा विष्णुर्दानवमर्दनः।
अपश्यदीश्वरं देवं ज्वलन्तं विमलेऽम्भसि॥५५॥

उनके यह वचन सुनकर असुरों का मर्दन करने वाले विष्णु ने भी स्वच्छ आकाश में उस जाज्वल्यमान देवेश्वर को देखा।

ज्ञात्वा तं परमं भावमैश्वरं ब्रह्मभावनः।
प्रोवाचोत्थाय भगवान्देवदेवं पितामहम्॥५६॥

ब्रह्मभाव को प्राप्त विष्णु ने उन परमभावरूप ईश्वर को जानकर और उठकर देवाधिदेव पितामह से कहा।

अयं देवो महादेवः स्वयंज्योतिः सनातनः।
अनादिनिधनोऽचिन्त्यो लोकानामीश्वरो महान्॥५७॥
शंकरः शम्भुरीशानः सर्वात्मा परमेश्वरः।
भूतानामधिपो योगी महेशो विमलः शिवः॥५८॥
एष धाता विधाता च प्रधानः प्रभुरव्ययः।
यं प्रपश्यन्ति यतयो ब्रह्मभावेन भाविताः॥५९॥

ये देव महादेव हैं, जो स्वयंज्योति, सनातन, अनादिनिधन, अचिन्त्य और लोकों का महान् स्वामी हैं। वही शंकर, शंभु, ईशान, सर्वात्मा, परमेश्वर, भूतों के अधिपति, योगी, महेश, विमल और शिव हैं। वही धाता, विधाता, प्रभु, प्रधान, अव्यय हैं। ब्रह्मभाव से भावित होकर यतिगण जिसे देखते हैं।

सृजत्येष जगत्कृत्स्नं पाति संहरते तथा।
कालो भूत्वा महादेवः केवलो निष्कलः शिवः॥६०॥

यही सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करते हैं, पालन करते हैं तथा काल होकर संहार करते हैं। वे महादेव केवल निष्कल और कल्याणमय हैं।

ब्रह्माणं विदधे पूर्वं भवन्तं यः सनातनः।
वेदांश्च प्रददौ तुभ्यं सोऽयमायाति शंकरः॥६१॥

जिन्होंने ब्रह्मा जी को सर्व प्रथम निर्मित किया था, जो सनातन हैं और जिसने आपको वेद प्रदान किये थे, वे ही शंकर आ रहे हैं।

अस्यैव चापरां मूर्तिं विश्वयोनिं सनातनीम्।
वासुदेवाभिधानां मामवेहि प्रपितामह॥६२॥

हे पितामह! उन्हीं का दूसरा स्वरूप वासुदेव नाम वाला मुझे समझो। मैं ही विश्वयोनि और सनातन हूँ।

किं न पश्यसि योगेशं ब्रह्माधिपतिमव्ययम्।
दिव्यं भवतु ते चक्षुर्येन द्रक्ष्यसि तत्परम्॥६३॥

क्या आप उस योगेश्वर अविनाशी ब्रह्माधिपति को नहीं देख रहे हैं? आपके ये चक्षु दिव्य हो जाये तभी उससे देख सकोगे।

लब्ध्वा चैवं तदा चक्षुर्विष्णोर्लोकपितामहः।
बुबुधे परमं ज्ञानं पुरतः समवस्थितम्॥६४॥

तदनन्तर विष्णु से लोकपितामह ब्रह्मा ने दिव्य चक्षु पाकर अपने समक्ष अवस्थित परमतत्त्व को जान लिया।

स लब्ध्वा परमं ज्ञानमैश्वरं प्रपितामहः।
प्रपेदे शरणं देवं तमेव पितरं शिवम्॥६५॥

पितामह ब्रह्मा उस परम ईश्वरीय ज्ञान को पाकर उन्हीं देव पिता शिव की शरण में चले गये।

ओंकारं समनुस्मृत्य संस्तभ्यात्मानमात्मना।
अथर्वशिरसा देवं तुष्टाव च कृताञ्जलिः॥६६॥

उन्होंने ओंकार का स्मरण करके और स्वयं आत्मा द्वारा अपने को स्थिर किया। उसके बाद कृताञ्जलि होकर अथर्वशिरस् उपनिषद्-मंत्रों से देव की स्तुति की।

संस्तुतस्तेन भगवान् ब्रह्मणा परमेश्वरः।
अवाप परमां प्रीतिं व्याजहार स्मयन्निव॥६७॥

ब्रह्मा जी के द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने पर भगवान् परमेश्वर ने परम प्रीति को प्राप्त किया और मन्द-मन्द हँसते हुए से कहा।

मत्समस्त्वं न सन्देहो वत्स भक्तश्च मे भवान्।
मयैवोत्पादितः पूर्वं लोकसृष्ट्यर्थमव्ययः॥६८॥

हे वत्स! तुम मेरे समान ही हो इसमें सन्देह नहीं। आप मेरे भक्त भी हैं। पहले आप अविनाशी को लोकसृष्टि के लिए मैंने ही उत्पन्न किया था।

त्वमात्मा ह्यादिपुरुषो मम देहसमुद्भवः।
परं वरय विश्वात्मन्वरदोऽहं तवानघ॥६९॥

तुम्हीं आत्मा, आदिपुरुष और मेरी देह से उत्पन्न हो। हे विश्वात्मन्! हे अनघ! मैं तुम्हारे लिए वर देता हूँ उस श्रेष्ठ वर को ग्रहण करो।

स देवदेववचनं निशम्य कमलोद्भवः।
निरीक्ष्य विष्णुं पुरुषं प्रणम्योवाच शंकरम्॥७०॥

उन कमलयोनि ब्रह्मा ने देवाधिदेव के वचन सुनकर उस विष्णु को ध्यानपूर्वक देखकर प्रणाम करके परम पुरुष शिव से कहा।

भगवन्भूतभव्येश महादेवाम्बिकापते।
त्वामेव पुत्रमिच्छामि त्वया वा सदृशं सुतम्॥७१॥

हे भगवन्! हे भूत और भविष्य के ईश्वर! हे महादेव! हे अम्बिकापते! मैं आपको ही पुत्ररूप में अथवा आप सदृश ही पुत्र को चाहता हूँ।

मोहितोऽस्मि महादेव मायया सूक्ष्मया त्वया।
न जाने परमं भावं याथातथ्येन ते शिव॥७२॥

हे महादेव! मैं आपकी सूक्ष्म माया से मोहित हो गया हूँ। हे शिव! मैं आपके परम भाव को अच्छी प्रकार नहीं जान पाया।

त्वमेव देव भक्तानां माता भ्राता पिता सुहृत्।
प्रसीद तव पादाब्जं नमामि शरणागतः॥७३॥

आप ही भक्तों के देव, माता, भ्राता, पिता और मित्र हैं। मैं आपकी शरणागत हूँ। आपके चरणकमलों में प्रणाम करता हूँ। आप प्रसन्न हो।

स तस्य वचनं श्रुत्वा जगन्नाथो वृषध्वजः।
व्याजहार तदा पुत्रं समालोक्य जनार्दनम्॥७४॥

इस प्रकार जगत्पति वृषध्वज ने उनके वचन सुनकर तथा पुत्र जनार्दन को देखकर इस प्रकार वचन कहे।

यदर्थितं भगवता तत्करिष्यामि पुत्रक।
विज्ञानमैश्वरं दिव्यमुत्पत्स्यति तवानघम्॥७५॥

हे पुत्र! आप द्वारा जो इच्छित है वह मैं करूँगा। आप में निष्पाप दिव्य ईश्वरीय ज्ञान उत्पन्न होगा।

त्वमेव सर्वभूतानामादिकर्ता नियोजितः।
कुरुष्व तेषु देवेश मायां लोकपितामह॥७६॥

आप ही सब भूतों के आदिकर्ता नियोजित है। हे देवेश! हे लोकपितामह! उनमें माया का स्थापन करें।

एष नारायणो मत्तो ममैव परमा तनुः।
भविष्यति तवेशान योगक्षेमवहो हरिः॥७७॥

यह नारायण भी मुझसे ही है। यह मेरा परम शरीर है। हे ईशान! हरि आपका योगक्षेम का वहन करने वाले होंगे।

एवं व्याहृत्य हस्ताभ्यां प्रीतः स परमेश्वरः।
संस्पृश्य देवं ब्रह्माणं हरिं वचनमब्रवीत्॥७८॥

इस प्रकार कहकर परमेश्वर ने दोनों हाथों से प्रीतिपूर्वक ब्रह्मदेव को स्पर्श करते हुए हरि से ये वचन कहे।

तुष्टोऽस्मि सर्वथाहं ते भक्तस्त्वं च जगन्मय।
वरं वृणीष्व नावाभ्यामन्योऽस्ति परमार्थतः॥७९॥

मैं सर्वथा तुमसे प्रसन्न हूँ और हे जगन्मय! तुम मेरे भक्त भी हो। वर ग्रहण करो, परमार्थत: हम दोनों से भिन्न अन्य कुछ नहीं है।

श्रुत्वाथ देववचनं विष्णुर्विश्वजगन्मय:।
प्राह प्रसन्नया वाचा समालोक्य च तन्मुखम्॥८०॥

अनन्तर महादेव का वचन सुनकर संपूर्ण जगत् के आत्मा विष्णु ने उनके मुख की ओर देखकर प्रसन्नतापूर्वक ये वचन कहे।

एष एव वर: श्लाघ्यो यदहं परमेश्वरम्।
पश्यामि परमात्मानं भक्तिर्भवतु मे त्वयि॥८१॥

यही एक वर मेरे लिए प्रशंसनीय होगा कि मैं आप परमात्मा परमेश्वर को देखता रहूँ और आप में ही मेरी भक्ति हो।

तथेत्युक्त्वा महादेव: पुनर्विष्णुमभाषत।
भवान् सर्वस्य कार्यस्य कर्ताहमधिदैवतम्॥८२॥

'वैसा ही हो' इस प्रकार कहकर महादेव ने पुन: विष्णु से कहा- आप समस्त कार्यों के कर्ता हैं और मैं उसका अधिदेवता हूँ।

त्वन्मयं मन्मयं चैव सर्वमेतन्न संशय:।
भवान् सोमस्त्वहं सूर्यो भवान्रात्रिरहं दिनम्॥८३॥

यह सबकुछ तुम्हारे अन्दर है और मेरे अन्दर है, इसमें संशय नहीं। आप चन्द्र हैं तो मैं सूर्य हूँ, आप रात्रि तो मैं दिन हूँ।

भवान् प्रकृतिरव्यक्तमहं पुरुष एव च।
भवान् ज्ञानमहं ज्ञाता भवान्मायाहमीश्वर:॥८४॥

आप अव्यक्त प्रकृति हैं, तो मैं पुरुष हूँ। आप ज्ञान हैं, मैं ज्ञाता हूँ। आप माया हैं, मैं ईश्वर हूँ।

भवान्विद्यात्मिका शक्ति: शक्तिमानहमीश्वर:।
योऽहं स निष्कलो देव: सोऽसि नारायण: प्रभु:॥८५॥

आप विद्यात्मिका शक्ति हैं, तो मैं शक्तिमान् ईश्वर हूँ। जो मैं निष्कल देव हूँ तो आप प्रभु नारायण हैं।

एकीभावेन पश्यन्ति योगिनो ब्रह्मवादिन:।
त्वामनाश्रित्य विश्वात्मन्न योगी मामुपैष्यति॥
पालयैतज्जगत्कृत्स्नं सदेवासुरमानुषम्॥८६॥

ब्रह्मवादी योगीजन अभेदभाव से ही देखते हैं। हे विश्वात्मन्! तुम्हारा आश्रय ग्रहण किये बिना योगी मुझे प्राप्त नहीं कर पायेगा। आप देव-असुर-मानव सहित इस संपूर्ण जगत् का पालन करें।

इतीदमुक्त्वा भगवाननादि: स्वमायया मोहितभूतभेद:।
जगाम जन्मर्द्धिविनाशहीनं धामैकमव्यक्तमनन्तशक्ति:॥

इस प्रकार कहकर अपनी माया से प्रणिसमूह को मोहित करने वाले, अनन्तशक्तिसंपन्न अनादि भगवान् जन्म-वृद्धि-नाशरहित अपने अक्षरधाम को चले गये।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे पद्मोद्भवप्रादुर्भाववर्णनं नाम नवमोऽध्याय:॥९॥

दशमोऽध्याय:
(रुद्रसृष्टि का वर्णन)

कूर्म उवाच

गते महेश्वरे देवे भूय एव पितामह:।
तदेव सुमहत्पद्मं भेजे नाभिसमुत्थितम्॥१॥

भगवान् कूर्म बोले- उन महेश्वरदेव के चले जाने पर पुन: पितामह ब्रह्मा ने नाभि से समुत्पन्न (स्वोत्पत्तिस्थान-रूप) उसी विशाल कमल का आश्रय लिया।

अथ दीर्घेण कालेन तत्राप्रतिमपौरुषौ।
महासुरौ समायातौ भ्रातरौ मधुकैटभौ॥२॥

अनन्तर चिरकाल पश्चात् वहाँ अपरिमित पौरुषसम्पन्न मधु और कैटभ नामधारी महासुर दो भाई आ पहुँचे।

क्रोधेन महताविष्टौ महापर्वतविग्रहौ।
कर्णान्तरसमुद्भूतौ देवदेवस्य शार्ङ्गिण:॥३॥

वे दोनों महान् क्रोध से आविष्ट और महापर्वत के समान शरीरधारी थे। वे शार्ङ्गधनुषधरी देवाधिदेव विष्णु के कानों के अन्दर से उत्पन्न हुए थे।

तावागतौ समीक्ष्याह नारायणमजो विभु:।
त्रैलोक्यकण्टकावेतावसुरौ हन्तुमर्हसि॥४॥

उनको आया हुआ देखकर पितामह ब्रह्मा ने नारायण से कहा- ये दोनों असुर तीनों लोकों के लिए कण्टकरूप हैं, अत: इनका वध करना योग्य है।

तदस्य वचनं श्रुत्वा हरिर्नारायण: प्रभु:।
आज्ञापयामास तयोर्वधार्थं पुरुषावुभौ॥५॥

उनके वचन सुनकर प्रभु नारायण हरि ने उनके वध के लिए दो पुरुषों को आज्ञा दी।

तदाज्ञया महद्युद्धं तयोस्ताभ्यामभूद्द्विजाः।
व्यजयत्कैटभं जिष्णुः विष्णुश्च व्यजयन्मधुम्॥६॥

हे द्विजो! उनकी आज्ञा से उन दोनों का उन असुरों से महान् युद्ध छिड़ गया। जिष्णु ने कैटभ को जीता और विष्णु ने मधु को जीत लिया।

ततः पद्मासनासीनं जगन्नाथः पितामहम्।
बभाषे मधुरं वाक्यं स्नेहाविष्टमना हरिः॥७॥

तब जगत् के स्वामी हरि ने अत्यन्त प्रसन्न मन होकर कमलासन पर विराजमान पितामह से मधुर वचन कहे।

अस्मान्मयोह्यमानस्त्वं पद्मादवतर प्रभो।
नाहं भवन्तं शक्नोमि वोढुं तेजोमयं गुरुम्॥८॥

हे प्रभु! मेरे द्वारा ढोये जाते हुए आप इस कमल से नीचे उतरें। अत्यन्त तेजस्वी और बहुत भारी आपको वहन करने में मैं समर्थ नहीं हूँ।

ततोऽवतीर्य विश्वात्मा देहमाविश्य चक्रिणः।
अवाप वैष्णवीं निद्रामेकीभूतोऽथ विष्णुना॥९॥

तदनन्तर विश्वात्मा ने उतरकर विष्णु के देह में प्रवेश कर लिया और विष्णु के साथ एकाकार होकर वैष्णवी निद्रा को प्राप्त हो गये।

सह तेन तथाविश्य शङ्खचक्रगदाधरः।
ब्रह्मा नारायणाख्योऽसौ सुष्वाप सलिले तदा॥१०॥

तब शंख-चक्र-गदाधारी वे नारायण नाम वाले ब्रह्मा उन्हीं के साथ जल में प्रवेश करके सो गये।

सोऽनुभूय चिरं कालमानन्दं परमात्मनः।
अनाद्यनन्तमद्वैतं स्वात्मानं ब्रह्मसंज्ञितम्॥११॥
ततः प्रभाते योगात्मा भूत्वा देवश्चतुर्मुखः।
ससर्ज सृष्टिं तद्रूपां वैष्णवं भावमाश्रितः॥१२॥

उन्होंने चिर काल तक आदि और अन्त रहित, अनन्त, स्वात्मभूत ब्रह्म संज्ञा वाले परमात्मा के आनन्द का अनुभव किया और फिर योगात्मा ने प्रभात में चतुर्मुख देव होकर वैष्णवभाव को आश्रित करके उसी स्वरूप वाली सृष्टि का सर्जन किया।

पुरस्तादसृजद्देवः सनन्दं सनकं तथा।
ऋभुं सनत्कुमारं च पूर्वजं तं सनातनम्॥१३॥
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ताः परं वैराग्यमास्थिताः।
विदित्वा परमं भावं ज्ञाने विदधिरे मतिम्॥१४॥

सर्वप्रथम देव ने सनन्द तथा सनक, ऋभु और सनत्कुमार की सृष्टि की जो सनातन पूर्वज हैं। वे सब शीतोष्णादि द्वन्द्व और मोह से निर्मुक्त और परम वैराग्य को प्राप्त थे। उन्होंने परम भाव को जानकर अपनी बुद्धि को ज्ञान में स्थित किया।

तेष्वेवं निरपेक्षेषु लोकसृष्टौ पितामहः।
बभूव नष्टचेता वै मायया परमेष्ठिनः॥१५॥

इस प्रकार लोकसृष्टि में उनके निरपेक्ष होने पर पितामह परमेष्ठी की माया से किंकर्तव्यविमूढ हो गये।

ततः पुराणपुरुषो जगन्मूर्त्तिः सनातनः।
व्याजहारात्मनः पुत्रं मोहनाशाय पद्मजम्॥१६॥

तब पुराणपुरुष, जगन्मूर्ति, सनातन विष्णु ने अपने पुत्र के मोह को नष्ट करने के लिए ब्रह्माजी से कहा।

विष्णुरुवाच
कच्चिन्न विस्मृतो देवः शूलपाणिः सनातनः
यदुक्तो वै पुरा शम्भुः पुत्रत्वे भव शङ्कर॥१७॥
प्रयुक्तवान् मनो योऽसौ पुत्रत्वेन तु शङ्करः।
अवाप संज्ञां गोविन्दात्पद्मयोनिः पितामहः॥१८॥

विष्णु ने कहा- क्या आप शूलपाणि सनातन देव शंभु को भूल गये? जो कि पहले कहा था कि शंकर! पुत्र के रूप में आप होइए। तब जिस शंकर ने पुत्रत्व की इच्छा से मन बनाया था। इस प्रकार पद्मयोनि पितामह को गोविन्द से यह बोध हो गया।

प्रजाः स्रष्टुं मनश्चक्रे तपः परमदुस्तरम्।
तस्यैवं तप्यमानस्य न किञ्चित्समवर्त्तत॥१९॥

उन्होंने प्रजा की सृष्टि के लिए मन बनाया और परम दुस्तर तप किया। इस प्रकार तप करते हुए उन्हें कुछ भी प्राप्त न हुआ।

ततो दीर्घेण कालेन दुःखात्क्रोधोऽभ्यजायत।
क्रोधाविष्टस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुबिन्दवः॥२०॥

तब चिर काल के बाद दुःख से उनमें क्रोध उत्पन्न हो गया। क्रोध भरे नेत्रों से आँसूओं की बूँदें गिरने लगीं।

ततस्तेभ्यः समुद्भूताः भूताः प्रेतास्तदाभवन्।
सर्वांस्तानग्रतो दृष्ट्वा ब्रह्मात्मानमविन्दत॥२१॥
जहौ प्राणांश्च भगवान् क्रोधाविष्टः प्रजापतिः।
तदा प्राणमयो रुद्रः प्रादुरासीत्प्रभोर्मुखात्॥२२॥

तब उनसे समुद्भूत भूत और प्रेत हुए। अपने आगे उन सब को देखकर ब्रह्मा अपनी आत्मा से संयुक्त हुए और तब प्रजापति ब्रह्मा ने क्रोध के आवेश में प्राण त्याग दिये। तदनन्तर प्रभु के मुख से प्राणमय रुद्र का प्रादुर्भाव हुआ।

सहस्रादित्यसङ्काशो युगान्तदहनोपम:।
रुरोद सुस्वरं घोरं देवदेव: स्वयं शिव:॥ २३॥

वह रुद्र सहस्र आदित्यों के समान तेजस्वी और प्रलयकालीन अग्नि की भाँति लग रहे थे। वे महादेव अत्यन्त भयानक उच्चस्वर में रोने लगे।

रोदमानं ततो ब्रह्मा मारोदीरित्यभाषत।
रोदनाद्रुद्र इत्येवं लोके ख्यातिं गमिष्यसि॥ २४॥

तदनन्तर ब्रह्मा ने रोते हुए शिव को कहा- मत रोओ। इस प्रकार रोने से तुम लोक में रुद्र नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त करोगे।

अन्यानि सप्त नामानि पत्नी: पुत्रांश्च शाश्वतान्।
स्थानानि तेषामष्टानां ददौ लोकपितामह:॥ २५॥

पुन: लोकपितामह ने अन्य सात नाम उन्हें दिये और आठ प्रकार की शाश्वत पत्नियां, पुत्र तथा स्थान प्रदान किये।

भव: शर्वस्तथेशान: पशूनां पतिरेव च।
भीमश्चोग्रो महादेवस्तानि नामानि सप्त वै॥ २६॥

उनके वे सात नाम हैं- भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र और महादेव।

सूर्यो जलं मही वह्निर्वायुराकाशमेव च।
दीक्षितो ब्राह्मणश्चन्द्र इत्येता अष्टमूर्तय:॥ २७॥

सूर्य, जल, मही, वह्नि, वायु, आकाश, दीक्षा प्राप्त ब्राह्मण और चन्द्र- ये उनकी अष्टधा मूर्तियां हैं।

स्थानेष्वेतेषु ये रुद्राम्ध्यायन्ति प्रणमन्ति च।
तेषामष्टतनुर्देवो ददाति परमं पदम्॥ २८॥

जो लोग इन स्थानों में आश्रय लेकर इन रुद्रों का ध्यान करते हैं और प्रणाम करते हैं, उनके लिए ये अष्टधा शरीर वाले देव परम पद को प्राप्त कराते हैं।

सुवर्च्चला तथैवोमा विकेशी च शिवा तथा।
स्वाहा दिगश्च दीक्षा च रोहिणी चेति पत्नय:॥ २९॥

सुवर्चला, उमा, विकेशी, शिवा, स्वाहा, दिग्, दीक्षा, और रोहिणी- इनकी (आठ) पत्नियां हैं।

शनैश्चरस्तथा शुक्रो लोहिताङ्गो मनोजव:।
स्कन्द: सर्गोऽथ सन्तानो बुधश्चैषां सुता: स्मृता:॥ ३०॥

शनैश्चर, शुक्र, लोहिताङ्ग, मनोजव:, स्कन्द:, सर्ग, सन्तान और बुध- ये (आठ) नाम उनके पुत्रों के कहे गये हैं।

एवम्प्रकारो भगवान्देवदेवो महेश्वर:।
प्रजा धर्मञ्च कामं च त्यक्त्वा वैराग्यमाश्रित:॥ ३१॥

इस प्रकार भगवान् देवदेव महेश्वर ने प्रजा, धर्म और काम का परित्याग करके वैराग्य प्राप्त कर लिया था।

आत्मन्याधाय चात्मानमैश्वरं भावमास्थित:।
पीत्वा तदक्षरं ब्रह्म शाश्वतं परमामृतम्॥ ३२॥

वे आत्मा में ही आत्मा को स्थापित करके और परम अमृतरूप शाश्वत उस अक्षर ब्रह्म का पान करके ईश्वरीय भाव को प्राप्त हो गये।

प्रजा: सृजति चादिष्टो ब्रह्मणा नीललोहित:।
स्वात्मना सदृशान्रुद्रान् ससर्ज्ज मनसा शिव:॥ ३३॥

पुन: ब्रह्मा के द्वारा आदेश मिलने पर वे प्रजा की सृष्टि करते हैं। नीललोहित शिव ने अपने ही रूप के सदृश मन से रुद्रों की सृष्टि की।

कपर्दिनो निरातङ्कान्नीलकण्ठान् पिनाकिन:।
त्रिशूलहस्तानुद्रिक्तान् सदानन्दांस्त्रिलोचनान्॥ ३४॥

वे सब कपर्दी, निरातङ्क, नीलकण्ठ, पिनाकधारी, हाथ में त्रिशूल लिये हुए, उद्रिक्त, सदानन्द और त्रिनेत्रधारी थे।

जरामरणनिर्मुक्तान् महावृषभवाहनान्॥
वीतरागांश्च सर्वज्ञान् कोटिकोटिशतान्प्रभु:॥ ३५॥

वे जरामरण से निर्मुक्त, बड़े-बड़े वृषभों को वाहन बनाये हुए, वीतराग और सर्वज्ञ थे। प्रभु ने करोड़ों की संख्या में उत्पन्न किया था।

तान्दृष्ट्वा विविधान्रुद्रान्निर्मलान्नीललोहितान्।
जरामरणनिर्मुक्तान् व्याजहार हरं गुरु:॥ ३६॥

नीललोहित निर्मल शिव से जरामरण से निर्मुक्त उन विविध प्रकार के रुद्रों को देखकर ब्रह्मा जी हर से बोले-।

मास्राक्षीरीदृशीर्देव प्रजा मृत्युविवर्जिता:।
अन्या: सृजस्व जन्ममृत्युसमन्विता:॥ ३७॥

हे देव! मृत्यु-विवर्जित ऐसी प्रजा की सृष्टि मत करो। तुम दूसरी सृष्टि करो जो जन्म-मृत्यु से युक्त हो।

ततस्तमाह भगवान् कपर्दी कामशासनः।
नास्ति मे तादृशः सर्गः सृज त्वं विविधाः प्रजाः॥३८॥

तब व्याघ्रचर्मधारी भगवान् कामजयी ने उनसे कहा- मेरे पास उस प्रकार की सृष्टि नहीं है अतः आप ही विविध प्रजा का सर्जन करें।

ततःप्रभृति देवोऽसौ न प्रसूते शुभाः प्रजाः।
स्वात्मजैरेव तै रुद्रैर्निवृत्तात्मा ह्यतिष्ठत॥३९॥

तब से लेकर वे देव शुभकारक प्रजा को उत्पन्न नहीं करते हैं। अपने उन मानस-पुत्रों के साथ ही निवृत्तात्मा होकर वे स्थिर हो गये।

स्थाणुत्वं तेन तस्यासीद्देवदेवस्य शूलिनः।
ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं तपः सत्यं क्षमा धृतिः॥४०॥
द्रष्टृत्वमात्मसंबोधो ह्यधिष्ठातृत्वमेव च।
अव्ययानि दशैतानि नित्यं तिष्ठन्ति शंकरे॥४१॥
एवं स शंकरः साक्षात्पिनाकी परमेश्वरः।

उसी कारण देवाधिदेव शूलपाणि का स्थाणुत्व हुआ अर्थात् स्थाणु नाम पड़ा। ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, तप, सत्य, क्षमा, धैर्य, द्रष्टृत्व, आत्मसंबोध और अधिष्ठातृत्व ये दश कूटस्थरूप में सदा उन भगवान् शंकर में रहते हैं। इस प्रकार पिनाकधारी शंकर साक्षात् परमेश्वर हैं।

ततः स भगवान् ब्रह्मा वीक्ष्य देवं त्रिलोचनम्॥४२॥
सहैव मानसै रुद्रैः प्रीतिविस्फारलोचनः॥
ज्ञात्वा परतरं भावमैश्वरं ज्ञानचक्षुषा॥४३॥
तुष्टावजगतामीशं कृत्वा शिरसि चाञ्जलिम्।

तदनन्तर मानस रुद्र-पुत्रों के साथ त्रिलोचन महादेव को देखकर भगवान् ब्रह्मा के नेत्र प्रेम से प्रफुल्लित हो उठे। अपने ज्ञानचक्षु से परमोत्कृष्ट ऐश्वरभाव को जानकर शिर पर अञ्जलि रखते हुए (नमस्कारपूर्वक) वे जगत्पति की स्तुति करने लगे।

ब्रह्मोवाच

नमस्तेऽस्तु महादेव नमस्ते परमेश्वर॥४४॥
नमः शिवाय देवाय नमस्ते ब्रह्मरूपिणे।
नमोऽस्तु ते महेशाय नमः शान्ताय हेतवे॥४५॥
प्रधानपुरुषेशाय योगाधिपतये नमः।
नमः कालाय रुद्राय महाग्रासाय शूलिने॥४६॥

हे महादेव! आपको नमस्कार है। हे परमेश्वर आपको नमस्कार है। शिव को नमन, ब्रह्मरूपी देव के लिए नमस्कार है। आप महेश के लिए नमस्कार है। शान्ति के हेतुभूत आपको नमस्कार। प्रधान पुरुष के ईश, योगाधिपति, कालरूप, रुद्र, महाग्रास और शूली को नमस्कार।

नमः पिनाकहस्ताय त्रिनेत्राय नमोनमः।
नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं ब्रह्मणो जनकाय ते॥४७।
ब्रह्मविद्याधिपतये ब्रह्मविद्याप्रदायिने।
नमो वेदरहस्याय कालकालाय ते नमः॥४८॥

पिनाकधारी को नमन। त्रिलोचन के लिए बार-बार प्रणाम। त्रिमूर्ति और ब्रह्मा के जनक आपको नमस्कार है। ब्रह्मविद्या के अधिपति और ब्रह्मविद्या के प्रदाता, वेदों के रहस्यस्वरूप, कालाधिपति आपको नमस्कार है।

वेदान्तसारसाराय नमोवेदात्ममूर्तये।
नमो बुद्धाय रुद्राय योगिनां गुरवे नमः॥४९॥
प्रहीणशोकैर्विविधैर्भूतैः परिवृताय ते।
नमो ब्रह्मण्यदेवाय ब्रह्माधिपतये नमः॥५०॥

वेदान्त के सार के अंशभूत तथा वेदात्म की मूर्ति आपको नमस्कार। प्रबुद्ध रुद्र के लिए नमस्कार योगियों के गुरु को नमस्कार है। जिनका शोक विनष्ट हो गया है ऐसे प्राणियों से घिरे हुए आप ब्रह्मण्यदेव के लिए नमस्कार। ब्रह्माधिपति को नमस्कार है।

त्र्यम्बकायादिदेवाय नमस्ते परमेष्ठिने।
नमो दिग्वाससे तुभ्यं नमो मुण्डाय दण्डिने॥५१॥
अनादिमलहीनाय ज्ञानगम्याय ते नमः।
नमस्ताराय तीर्थाय नमो योगर्द्धिहेतवे॥५२॥

त्र्यम्बक आदिदेव परमेष्ठी के लिए नमस्कार। नग्नशरीर, मुण्ड और दण्डधारी आपको नमस्कार है।

नमो धर्माधिगम्याय योगगम्याय ते नमः।
नमस्ते निष्प्रपञ्चाय निराभासाय ते नमः॥५३॥
ब्रह्मणे विश्वरूपाय नमस्ते परमात्मने।
त्वयैव सृष्टमखिलं त्वय्येव सकलं स्थितम्॥५४॥

धर्म आदि के द्वारा प्राप्तव्य को नमस्कार। योग के द्वारा गम्य आपको नमस्कार है। प्रपञ्चरहित तथा निराभास आपको नमस्कार है। विश्वरूप ब्रह्म के लिए नमस्कार है। परमात्मस्वरूप आपको नमस्कार। यह सब आप द्वारा ही सृष्ट है और सब आप में ही स्थित है।

त्वया संहियते विश्वं प्रधानाद्यं जगन्मय।
त्वमीश्वरो महादेवः परं ब्रह्म महेश्वरः॥५५॥

हे जगन्मय! प्रधान-प्रकृति से लेकर इस सम्पूर्ण विश्व का आप ही संहार करते हैं। आप ईश्वर, महादेव, परब्रह्म और महेश्वर हैं।

परमेष्ठी शिवः शान्तः पुरुषो निष्कलो हरः।
त्वमक्षरं परं ज्योतिस्त्वं कालः परमेश्वरः॥५६॥

आप परमेष्ठी, शिव, शान्त, पुरुष, निष्कल, हर, अक्षर, परम ज्योतिः और कालरूप परमेश्वर हैं।

त्वमेव पुरुषोऽनन्तः प्रधानं प्रकृतिस्तथा।
भूमिरापोऽनलो वायुर्व्योमाहङ्कार एव च॥५७॥
यस्य रूपं नमस्यामि भवन्तं ब्रह्मसंज्ञितम्।
यस्य द्यौरभवन्मूर्द्धा पादौ पृथ्वी दिशो भुजाः॥५८॥
आकाशमुदरं तस्मै विराजे प्रणमाम्यहम्।

आप ही अविनाशी पुरुष, प्रधान और प्रकृति हैं और भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश और अहंकार जिनका रूप है, ऐसे ब्रह्मसंज्ञक आपको नमस्कार करता हूँ। जिनका मस्तक द्यौ है तथा पृथ्वी दोनों पैर हैं और दिशायें भुजाएँ हैं। आकाश जिसका उदर है, उस विराट् को मैं प्रणाम करता हूँ।

सन्तापयति यो नित्यं स्वभाभिर्भासयन् दिशः॥५९॥
ब्रह्मतेजोमयं विश्वं तस्मै सूर्यात्मने नमः।
हव्यं वहति यो नित्यं रौद्री तेजोमयी तनुः॥६०॥
कव्यं पितृगणानां च तस्मै वह्न्यात्मने नमः।

जो सदा अपनी आभाओं से दिशाओं को उद्भासित करते हुए ब्रह्मतेजोमय विश्व को सन्तप्त करते हैं, उन सूर्यात्मा को नमस्कार है। जो तेजोमय रौद्र शरीरधारी नित्य हव्य को तथा पितरों के लिए कव्य के वहन करते हैं, उस वह्निस्वरूप पुरुष को नमस्कार है।

आप्याययति यो नित्यं स्वधाम्ना सकलं जगत्॥६१॥
पीयते देवतासंघैस्तस्मै चन्द्रात्मने नमः।
बिभर्त्यशेषभूतानि यान्तश्चरति सर्वदा॥६२॥
शक्तिर्माहेश्वरी तुभ्यं तस्मै वाय्वात्मने नमः।
सृजत्यशेषमेवेदं यः स्वकर्मानुरूपतः॥६३॥
आत्मन्यवस्थितस्तस्मै चतुर्वक्त्रात्मने नमः।
यः शेते शेषशयने विश्वमावृत्य मायया॥६४॥
स्वात्मानुभूतियोगेन तस्मै विष्ण्वात्मने नमः।

जो अपने तेज से सम्पूर्ण जगत् को नित्य आलोकित करते हैं तथा देवसमूह द्वारा जिनकी रश्मियों का पान किया जाता है, उस चन्द्ररूप को नमस्कार है। जो माहेश्वरी शक्ति सर्वदा अन्दर विचरण करके अशेष भूतसमूह को धारण करती है, उस वायुरूपी पुरुष को नमस्कार है। जो अपने कर्मानुरूप इस सम्पूर्ण जगत् का सृजन करता है, आत्मा में अवस्थित उस चतुर्मुखरूपी पुरुष को नमस्कार है। जो आत्मानुभूति के योग से माया द्वारा विश्व को आवृत करके शेषशय्या पर शयन करते हैं उन विष्णुमूर्ति स्वरूप को नमस्कार है।

बिभर्ति शिरसा नित्यं द्विसप्तभुवनात्मकम्॥६५॥
ब्रह्माण्डं योऽखिलाधारस्तस्मै शेषात्मने नमः।
यः परान्ते परानन्दं पीत्वा देव्यैकसाक्षिकम्॥६६॥
नृत्यत्यनन्तमहिमा तस्मै रुद्रात्मने नमः।
योऽन्तरा सर्वभूतानां नियन्ता तिष्ठतीश्वरः॥६७॥
यस्य केशेषु जीमूता नद्यः सर्वाङ्गसन्धिषु।
कुक्षौ समुद्राश्चत्वारस्तस्मै तोयात्मने नमः॥६८॥

जो चतुर्दश भुवनों वाले इस ब्रह्माण्ड को सर्वदा अपने मस्तक द्वारा धारण करते हैं और जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के आधाररूप हैं, उन शेषरूपधारी आपको नमस्कार है। जो महाप्रलय के अन्त में परमानन्द का पान कर दिव्य, एकमात्र साक्षी तथा अनन्त महिमायुक्त होकर नृत्य करते हैं, उन रुद्रस्वरूप को नमस्कार है। जो सब प्राणियों के भीतर नियन्ता होकर ईश्वररूप में स्थित है। जिनके केशों में मेघसमूह, सर्वाङ्गसन्धियों में नदियाँ तथा कुक्षि में चारों समुद्र रहते हैं उन जलरूप परमेश्वर को नमस्कार है।

तं सर्वसाक्षिणं देवं नमस्ये विश्वतस्तनुम्।
यं विनिद्रा जितश्वासाः सन्तुष्टाः समदर्शिनः॥६९॥
ज्योतिः पश्यन्ति युञ्जानास्तस्मै योगात्मने नमः।
यया सन्तरते मायां योगी संक्षीणकल्मषः॥७०॥
अपारतरपर्यन्तां तस्मै विद्यात्मने नमः।
यस्य भासा विभात्यर्को महो यत्तमसः परम्॥७१॥
प्रपद्ये तत्परं तत्त्वं तद्रूपं पारमेश्वरम्।
नित्यानन्दं निराधारं निष्कलं परमं शिवम्॥७२॥
प्रपद्ये परमात्मानं भवन्तं परमेश्वरम्।

उन सर्वसाक्षी और विश्व में व्याप्त शरीर वाले देव को नमस्कार करता हूँ। जिन्हें निद्रारहित, श्वासजयी, सन्तुष्ट और समदर्शी योग के साधक ज्योतिरूप में देखते हैं, उन योग-स्वरूप को नमस्कार है। जिसके द्वारा योगीजन निष्पाप होकर अत्यन्त अपारपर्यन्त मायारूप समुद्र को तर जाते हैं, उन विद्यारूप परमेश्वर को नमस्कार है। जिनके प्रकाश से

सूर्य चमकता है और जो महान् (तमोगुणरूप) अन्धकार से परे है, उस एक (अद्वैतरूप) परमतत्त्व स्वरूप परमेश्वर के शरणागत होता हूँ। जो नित्य आनन्दरूप, निराधार, निष्कल, परम कल्याणमय, परमात्मस्वरूप है, उस परमेश्वर की शरण में आता हूँ।

एवं स्तुत्वा महादेवं ब्रह्मा तद्भावभावितः॥७३॥
प्राञ्जलिः प्रणतस्तस्थौ गृणन् ब्रह्म सनातनम्।
ततस्तस्य महादेवो दिव्यं योगमनुत्तमम्॥७४॥
ऐश्वरं ब्रह्म सद्भावं वैराग्यं च ददौ हरः।
कराभ्यां कोमलाभ्यां च संस्पृश्य प्रणतार्त्तिहा॥७५॥
व्याजहार स्मयन्नेव सोऽनुगृह्य पितामहम्।
यत्त्वयाभ्यर्थितं ब्रह्मन् पुत्रत्वे भवता मम॥७६॥
कृतं मया तत्सकलं सृजस्व विविधं जगत्।
त्रिधा भिन्नोऽस्म्यहं ब्रह्मन् ब्रह्मविष्णुहराख्यया॥७७॥

इस प्रकार महादेव का स्तवन करके उनके भाव से भावित होकर ब्रह्मा सनातन ब्रह्म की स्तुति करते हुए हाथ जोड़कर प्रणाम करके खड़े हो गये। तदुपरान्त महादेव ने ब्रह्मा को दिव्य, परम श्रेष्ठ, ईश्वरीय योग, ब्रह्म-सद्भाव तथा वैराग्य दिया। प्रणतजनों की पीड़ा हरने वाले शिव ने अपने कोमल हाथों से ब्रह्मा का स्पर्श करते हुए मुस्कुराकर कहा— ब्रह्मन्! आपने मुझे अपना पुत्र बनने के लिए जो प्रार्थना की थी, उसे मैंने पूर्ण कर दिया। इसलिए अब तुम विविध प्रकार के जगत् को उत्पन्न करते रहो। हे ब्रह्मन्! मैं ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव नामों से तीन प्रकार से विभक्त हूँ।

सर्गरक्षालयगुणैर्निष्कलः परमेश्वरः।
स त्वं ममाग्रजः पुत्रः सृष्टिहेतोर्विनिर्मितः॥७८॥

सृष्टि, पालन और प्रलयरूपी गुणों से मैं निष्कल (अंशरहित) परमेश्वर हूँ। सृष्टि के लिए निर्मित हुए तुम मेरे वह ज्येष्ठ पुत्र हो।

ममैव दक्षिणादंगाद्वामाङ्गात्पुरुषोत्तमः।
तस्य देवाधिदेवस्य शम्भोर्हृदयदेशतः॥७९॥
सम्बभूवाथ रुद्रो वा सोऽहं तस्य परा तनुः।
ब्रह्मविष्णुशिवा ब्रह्मन् सर्गस्थित्यन्तहेतवः॥८०॥

तुम मेरे दक्षिण अंग से और विष्णु वामांग से उत्पन्न हुए हो। उन्हीं देवाधिदेव शंभु के हृदयदेश से रुद्र उत्पन्न हुए। अथवा वही मैं उनका परा तनु हूँ। हे ब्रह्मन्! ब्रह्मा, विष्णु और शिव सृष्टि, स्थिति और संहार के कारण हैं।

विभज्यात्मानमेकोऽपि स्वेच्छया शंकरः स्थितः।
तथान्यानि च रूपाणि मम मायाकृतानि च॥८१॥

शंकर एक होने पर भी स्वेच्छा से अपने को विभक्त करके अवस्थित हैं। उनके अन्यान्य रूप मेरी माया द्वारा रचे गये हैं।

अरूपः केवलः स्वस्थो महादेवः स्वभावतः।
य एभ्यः परतो देवस्त्रिमूर्त्तिः परमा तनुः॥८२॥
माहेश्वरी त्रिनयना योगिनां शान्तिदा सदा।
तस्या एव परां मूर्तिं मामवेहि पितामह॥८३॥

वह महादेव ही स्वभावतः अमूर्त, अद्वितीय और आत्मस्थ हैं, जो इन सब से परे त्रिमूर्तिरूप हैं। उनका त्रिनयना माहेश्वरीरूप उत्कृष्ट शरीर योगियों के लिए सदा शान्ति प्रदान करने वाला है। हे पितामह! मुझे उसी महेश्वर को श्रेष्ठ मूर्ति जानो।

शाश्वतैश्वर्यविज्ञानं तेजो योगसमन्वितम्।
सोऽहं ग्रसामि सकलमधिष्ठाय तमोगुणम्॥८४॥
कालो भूत्वा न मनसा मामन्योऽभिभविष्यति।

जो मूर्ति सदा ऐश्वर्य, विज्ञान और तेज से समन्वित होकर कालरूप है, वही मैं तमोगुण का आश्रय लेकर समस्त विश्व को ग्रस लेता हूँ। अन्य कोई मेरा मन से (स्वप्न में) भी अभिभव नहीं कर सकता।

यदा यदा हि मां नित्यं विचिन्तयसि पद्मज॥८५॥
तदा तदा मे सान्निध्यं भविष्यति तवानघ।
एतावदुक्त्वा ब्रह्माणं सोऽभिवन्द्य गुरुं हरः॥८६॥
सहैव मानसैः पुत्रैः क्षणादन्तरधीयत।
सोऽपि योगं समास्थाय ससर्ज विविधं जगत्॥८७॥
नारायणाख्यो भगवान्यथापूर्वं प्रजापतिः।
मरीचिभृग्वङ्गिरसः पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्॥८८॥
दक्षमत्रिं वसिष्ठञ्च सोऽसृजद्योगविद्यया।
नव ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयो मतः।
सर्वे ते ब्रह्मणा तुल्याः साधका ब्रह्मवादिनः॥८९॥
सङ्कल्पञ्चैव धर्मञ्च युगधर्मांश्च शाश्वतान्।
स्थानाभिमानिनः सर्वान्यथा ते कथितं पुरा॥९०॥

हे पद्मज! तुम जब-जब तुम मेरा नित्य चिन्तन करोगे तब-तब हे निष्पाप! तुम्हें मेरा सान्निध्य प्राप्त होगा। इतना कहकर शिव गुरु ब्रह्मा का अभिवादन करके अपने मानस पुत्रों के साथ ही क्षणभर में अन्तर्हित हो गये। तदनन्तर नारायण नाम से विख्यात भगवान् प्रजापति भी योग का

आश्रय लेकर पूर्वानुरूप विविध जगत् की सृष्टि करने लगे। योगविद्या के द्वारा उन्होंने मरीचि, भृगु, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, अत्रि और वसिष्ठ का सृजन किया। पुराण में ये नौ ब्रह्मा निश्चित करके बताये गये हैं। ये सभी साधक होने पर भी ब्रह्मा के तुल्य ब्रह्मवादी हैं। ब्रह्मा ने संकल्प, धर्म और शाश्वत युगधर्मों को तथा सभी स्थानाभिमानियों को पूर्व में जैसे उत्पन्न किया था, यह सब यथावत् बता दिया है।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे रुद्रसृष्टिर्नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

एकादशोऽध्यायः

(देवी अवतार-वर्णन)

कूर्म उवाच

एवं सृष्ट्वा मरीच्यादीन्देवदेवः पितामहः।
सहैव मानसैः पुत्रैस्तताप परमं तपः॥ १॥

कूर्मरूप विष्णु ने कहा— इस प्रकार मरीचि आदि प्रजापतियों की सृष्टि करके देवदेव पितामह ब्रह्मा उन मानस पुत्रों के साथ ही परम तपस्या करने लगे।

तस्यैवं तपतो वक्त्राद्रुद्रः कालाग्निसम्भवः।
त्रिशूलपाणिरीशानः प्रादुरासीत्त्रिलोचनः॥ २॥
अर्द्धनारीनरवपुः दुष्प्रेक्ष्योऽतिभयंकरः।
विभजात्मानमित्युक्त्वा ब्रह्मा चान्तर्दधे भयात्॥ ३॥

इस प्रकार तप करते हुए ब्रह्मा के मुख से रुद्र प्रादुर्भूत हुए जिससे प्रलयकाल की अग्नि उत्पन्न हो रही थी, हाथ में त्रिशूलधारण किया था और जो त्रिनेत्रधारी थे। उनका शरीर आधा नारी और आधा नर का था। उनके सामने देखना भी कठिन था। वे अतिभयंकर थे। तब भय के मारे ब्रह्मा 'अपनी आत्मा का विभाग करो' ऐसा कहकर अन्तर्हित हो गये।

तथोक्तोऽसौ द्विधा स्त्रीत्वं पुरुषत्वं तथाकरोत्।
बिभेद पुरुषत्वञ्च दशधा चैकधा पुनः॥ ४॥

इतना कहने पर उन्होंने स्त्री और पुरुष रूप में स्वयं को दो भागों में विभक्त कर दिया। पुनः उन्होंने पुरुष को एकादश भागों में बांट दिया।

एकादशैते कथिता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वराः।
कपालीशादयो विप्रा देवकार्ये नियोजिताः॥ ५॥

हे विप्रो! वे ही एकादश रुद्र त्रिभुवन के ईश्वर कहे गये। वे कपाली, ईशान आदि नामों से प्रसिद्ध ब्राह्मण हैं जो देवों के कार्य में नियुक्त हैं।

सौम्यासौम्यैस्तथा शान्ताशान्तैः स्त्रीत्वञ्च स प्रभुः।
बिभेद बहुधा देवः स्वरूपैरसितैः सितैः॥ ६॥

इसके बाद प्रभु रुद्रदेव ने अपने सौम्य तथा असौम्य, शान्त तथा अशान्त एवं श्वेत तथा अश्वेत स्वरूपों द्वारा स्त्रीरूप के भी अनेक विभाग किये।

ता वै विभूतयो विप्रा विश्रुताः शक्तयो भुवि।
लक्ष्म्यादयो यद्वपुषा विश्वं व्याप्नोति शांकरी॥ ७॥

हे ब्राह्मणो! वे सभी विभूतियाँ पृथ्वी पर लक्ष्मी आदि नामों से प्रसिद्ध शक्तियां कही गई। वे शंकर की ही प्रतिमूर्ति होने से विश्व को व्याप्त करती हैं।

विभज्य पुनरीशानी स्वात्मांशमकरोद्द्विजाः।
महादेवनियोगेन पितामहमुपस्थिता॥ ८॥

हे ब्राह्मणो! ईशानी (शिवशक्ति) ने महादेव की आज्ञा से अपने स्वरूपांश को दो भागों में विभक्त किया और फिर वह पितामह के समीप गई।

तामाह भगवान् ब्रह्मा दक्षस्य दुहिता भव।
सापि तस्य नियोगेन प्रादुरासीत्प्रजापतेः॥ ९॥

तब भगवान् ब्रह्मा ने उस ईशानी शक्ति से कहा- 'तुम दक्ष-प्रजापति की पुत्री बनो'। इस प्रकार प्रजापति की आज्ञा से वह भी दक्ष-प्रजापति की पुत्रीरूप में प्रादुर्भूत हुई।

नियोगाद्ब्रह्मणो देवीं ददौ रुद्राय तां सतीम्।
दाक्षीं रुद्रोऽपि जग्राह स्वकीयामेव शूलभृत्॥ १०॥

तदनन्तर ब्रह्मा की आज्ञा से उनमें प्रमुख सती देवी को रुद्र के लिए अर्पित की। शूलपाणि रुद्र ने भी उस दक्ष-पुत्री को अपनी पत्नी रूप में स्वीकार किया।

प्रजापतिविनिर्देशात्कालेन परमेश्वरी।
विभज्य पुनरीशानी आत्मानं शंकराद्द्विजाः॥ ११॥
मेनायामभवत्पुत्री तदा हिमवतः सती।
स चापि पर्वतवरो ददौ रुद्राय पार्वतीम्॥ १२॥
हिताय सर्वदेवानां त्रैलोक्यस्यात्मनो द्विजाः।

कुछ समय बाद वही परमेश्वरी सती देवी ब्रह्मा की आज्ञा से (दक्ष-यज्ञ में) अपने पुनः विभक्त कर (शरीर छोड़कर) हिमालय द्वारा मेनका में उसकी पुत्री रूप में उत्पन्न हुई। तब पर्वतश्रेष्ठ हिमालय ने अपनी पुत्री पार्वती को समस्त देवों

के, तीनों लोकों के तथा अपने हित के लिए शिवजी को अर्पित की।

सैषा माहेश्वरी देवी शंकरार्द्धशरीरिणी॥ १३॥
शिवा सती हैमवती सुरासुरनमस्कृता।
तस्याः प्रभावमतुलं सर्वे देवाः सवासवाः॥ १४॥
वदन्ति मुनयो वेत्ति शंकरो वा स्वयं हरिः।
एतद्व कथितं विप्राः पुत्रत्वं परमेष्ठिनः॥ १५॥
ब्रह्मणः पद्मयोनित्वं शङ्करस्यामितौजसः॥ १६॥

वही शंकर के अर्ध शरीर को धारण करने वाली देवी माहेश्वरी, शिवा, तथा सती हेमवती नामों से प्रसिद्ध और देवों तथा असुरों द्वारा नमस्कृत है। उस देवी के अतुल प्रभाव को इन्द्र सहित सभी देव, मुनिगण, स्वयं शंकर तथा श्रीहरि विष्णु भी जानते हैं। हे विप्रो! इस प्रकार जिस रूप में रुद्रदेव ब्रह्मा के पुत्रत्व को प्राप्त हुए और ब्रह्मा की कमल से उत्पत्ति के विषय में तथा अमित तेजस्वी शिव के प्रभाव का वर्णन मैंने किया है।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे देव्यवतारे एकादशोऽध्यायः॥ ११॥

॥अथ द्वादशोऽध्यायः॥

(देवी-माहात्म्य)

सूत उवाच

इत्याकर्ण्याथ मुनयः कूर्मरूपेण भाषितम्।
विष्णुना पुनरेवेमं पप्रच्छुः प्रणता हरिम्॥ १॥

सूतजी बोले- कूर्मावतार धारण करने वाले भगवान् विष्णु द्वारा कथित इस वृत्तान्त को सुनकर पुनः मुनियों ने हरि को प्रणाम करते हुए पूछा।

ऋषय ऊचुः

कैषा भगवती देवी शङ्करार्द्धशरीरिणी।
शिवा सती हैमवती यथावद्ब्रूहि पृच्छताम्॥ २॥

ऋषियों ने कहा- वह शंकर की अर्धांगिनी देवी भगवती कौन है, जिनके अपर नाम शिवा, सती और हेमवती हैं, आप यथावत् कहें हम आपसे पूछते हैं।

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा मुनीनां पुरुषोत्तमः।
प्रत्युवाच महायोगी ध्यात्वा स्वं परमं पदम्॥ ३॥

उन मुनिगण के वचन सुनकर महायोगी पुरुषोत्तम ने अपने परम पद का ध्यान करके उत्तर दिया।

कूर्म उवाच

पुरा पितामहेनोक्तं मेरुपृष्ठे सुशोभने।
रहस्यमेतद्विज्ञानं गोपनीयं विशेषतः॥ ४॥

पुरा काल में अति सुन्दर मेरुपर्वत के पृष्ठभाग पर विराजमान पितामह ने विशेषतः गोपनीय इस रहस्यमय विज्ञान को कहा था।

साङ्ख्यानां परमं साङ्ख्यं ब्रह्मविज्ञानमुत्तमम्।
संसारार्णवमग्नानां जन्तूनामेकमोचनम्॥ ५॥

यह सांख्यवादियों का परम सांख्यतत्त्व और उत्तम ब्रह्मविज्ञान है। यह संसाररूप समुद्र में डूबे हुए प्राणियों का उद्धारक है।

या सा माहेश्वरी शक्तिर्ज्ञानरूपातिलालसा।
व्योमसंज्ञा परा काष्ठा सेयं हैमवती मता॥ ६॥

वह जो माहेश्वरी शक्ति है, अतिलालसा और ज्ञानरूपा है। यही परा काष्ठा और व्योमसंज्ञा वाली हैमवती कही गई है।

शिवा सर्वगतानन्ता गुणातीतातिनिष्कला।
एकानेकविभागस्था ज्ञानरूपातिलालसा॥ ७॥

वही कल्याणकारिणी, सब में स्थित, गुणों से परे और अति निष्कल है। एक तथा अनेक रूपों में विभक्त, ज्ञानरूपा और अतिलालसा है।

अनन्या निष्कले तत्त्वे संस्थिता तस्य तेजसा।
स्वाभाविकी च तन्मूला प्रभा भानोरिवामला॥ ८॥

उस ईश्वर के तेज से निष्कल तत्त्व में संस्थित अनन्या और स्वाभाविकी तन्मूला प्रभा भानु के समान अत्यन्त निर्मल है।

एका माहेश्वरी शक्तिरनेकोपाधियोगतः।
परावरेण रूपेण क्रीडते तस्य सन्निधौ॥ ९॥

एक माहेश्वरी शक्ति ही अनेक उपाधियों के मेल से पर-अवर रूप से उस ईश्वर के साथ क्रीडा करती है।

सेयं करोति सकलं तस्याः कार्यमिदं जगत्।
न कार्यं नापि करणमीश्वरस्येति सूरयः॥ १०॥

वही शक्ति सब कुछ करती है, उसका ही कार्य यह जगत् है। विद्वानों का कहना है कि ईश्वर का न तो कार्य है और न करण।

चतस्रः शक्तयो देव्याः स्वरूपत्वेन संस्थिताः।
अधिष्ठानवशात्तस्याः शृणुध्वं मुनिपुङ्गवाः॥ ११॥

हे मुनिश्रेष्ठ! उस देवी की चार शक्तियां हैं, जो अधिष्ठानवश अपने स्वरूप में संस्थित हैं, उसे सुनो।

शान्तिर्विद्या प्रतिष्ठा च निवृत्तिश्चेति ताः स्मृताः।
चतुर्व्यूहस्ततो देवः प्रोच्यते परमेश्वरः॥ १२॥

वे शान्ति, विद्या, प्रतिष्ठा और निवृत्ति नाम से कही गई हैं। इसी कारण महादेव परमेश्वर को चतुर्व्यूह कहा जाता है।

अनया परया देवः स्वात्मानन्दं समश्नुते।
चतुर्ष्वपि च वेदेषु चतुर्मूर्तिर्महेश्वरः॥ १३॥

इसी परा स्वरूपा के द्वारा देव स्वात्मानन्द का अनुभव करते हैं। वे महेश्वर चारों वेदों में भी चतुर्मूर्ति रूप में स्थित हैं।

अस्यास्त्वनादिसंसिद्धमैश्वर्यमतुलं महत्।
तत्सम्बन्धादनन्तैषा रुद्रेण परमात्मना॥ १४॥

इसका महान् अतुल ऐश्वर्य अनादि काल से सिद्ध है। परमात्मा रुद्र के सम्बन्ध से ही यह अनन्ता है।

सैषा सर्वेश्वरी देवी सर्वभूतप्रवर्तिका।
प्रोच्यते भगवान् कालो हरिः प्राणो महेश्वरः॥ १५॥

वही सर्वेश्वरी देवी समस्त भूतों की प्रवर्तिका है। भगवान् हरि ही काल कहे जाते हैं और महेश्वर प्राण।

तत्र सर्वमिदं प्रोतमोतञ्चैवाखिलं जगत्।
स कालाग्निर्हरो देवो गीयते वेदवादिभिः॥ १६॥

उसीमें यह दृश्यमान सारा जगत् ओतप्रोत है। वेदवादियों द्वारा उसी कालाग्नि महादेव की स्तुति की जाती है।

कालः सृजति भूतानि कालः संहरति प्रजाः।
सर्वे कालस्य वशगा न कालः कस्यचिद्वशः॥ १७॥

काल ही समस्त भूतों का सृजन करता है और काल ही प्रजा का संहार करता है। सभी चराचर काल के वशवर्ती हैं, परन्तु काल किसी के वश में नहीं है।

प्रधानं पुरुषस्तत्त्वं महानात्मा त्वहंकृतिः।
कालेनान्यानि तत्त्वानि समाविष्टानि योगिना॥ १८॥

प्रधान, पुरुष, महत्तत्त्व और अहंकार और अन्य तत्त्व भी योगी द्वारा काल के माध्यम से ही समाविष्ट किये गये हैं।

तस्य सर्वजगन्मूर्तिः शक्तिर्मायेति विश्रुता।
तदेयं भ्रामयेदीशो मायावी पुरुषोत्तमः॥ १९॥

उसकी सारे संसार की मूर्तिरूपा शक्ति माया नाम से प्रसिद्ध है। मायावी पुरुषोत्तम ईश इसीको घूमाते हैं।

सैषा मायात्मिका शक्तिः सर्वाकारा सनातनी।
विश्वरूपं महेशस्य सर्वदा सम्प्रकाशयेत्॥ २०॥

वही मायारूपा सर्वाकारा सनातनी शक्ति नित्य ही महादेव के विश्वरूप को प्रकाशित करती है।

अन्याश्च शक्तयो मुख्यास्तस्य देवस्य निर्मिताः।
ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिः प्राणशक्तिरिति त्रयम्॥ २१॥

अन्य भी प्रमुख शक्तियां उस देव द्वारा निर्मित हैं, जो ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति और प्राणशक्ति नाम से तीन प्रकार की हैं।

सर्वासामेव शक्तीनां शक्तिमन्तो विनिर्मिताः।
माययैवाथ विप्रेन्द्राः सा चानादिरनश्वरा॥ २२॥

हे विप्रश्रेष्ठो! इन समस्त शक्तियों का शक्तिमान् भी माया के द्वारा ही विनिर्मित है। वह माया अनादि और अनश्वर है।

सर्वशक्त्यात्मिका माया दुर्निवारा दुरत्यया।
मायावी सर्वशक्तीशः कालः कालकरः प्रभुः॥ २३॥

सर्वशक्तिस्वरूपा माया दुर्निवारा और दुरत्यया होती है। सर्वशक्तियों का स्वामी मायावी प्रभु काल ही काल का रचयिता है।

करोति कालः सकलं संहरेत्काल एव हि।
कालः स्थापयते विश्वं कालाधीनमिदं जगत्॥ २४॥

काल ही सबका सृजन करता है और वही संहार भी करता है। काल ही पूरे विश्व को स्थापित करता है। यह जगत् काल के ही अधीन है।

लब्ध्वा देवाधिदेवस्य सन्निधिं परमेष्ठिनः।
अनन्तस्याखिलेशस्य शम्भोः कालात्मनः प्रभोः॥ २५॥
प्रधानं पुरुषो माया माया चैव प्रपद्यते।
एकासर्वगतानन्ता केवला निष्कला शिवा॥ २६॥

देवाधिदेव, परमेष्ठी, अनन्त, अखिलेश, कालात्मा प्रभु शिव की सन्निधि को प्राप्त करके प्रधान, पुरुष और माया उसी माया को प्राप्त करते हैं जो एक, सर्वगत, अनन्त, केवल निष्कला और शिवा है।

एका शक्तिः शिवैकोऽपि शक्तिमानुच्यते शिवः।
शक्तयः शक्तिमन्तोऽन्ये सर्वशक्तिसमुद्भवाः॥ २७॥

वह शक्ति एक है और शिव भी एक हैं। शिव शक्तिमान् कहे जाते हैं। अन्य सभी शक्तियां और शक्तिमान् उसी शिवा शक्ति से समुद्भूत हैं।

शक्तिशक्तिमतोर्भेदं वदन्ति परमार्थतः।
अभेदञ्चानुपश्यन्ति योगिनस्तत्त्वचिन्तकाः॥ २८॥

परमार्थतः शक्ति और शक्तिमान् में भेद कहा जाता है, परंतु तत्त्वचिन्तक योगीजन उनमें अभेद ही देखते हैं।

शक्तयो गिरिजा देवी शक्तिमानथ शङ्करः।
विशेषः कथ्यते चायं पुराणे ब्रह्मवादिभिः॥ २९॥

ये शक्तियां देवी पार्वती हैं और शंकर शक्तिमान् हैं। ब्रह्मवादी पुराणों में इसका विशेष कथन करते हैं।

भोग्या विश्वेश्वरी देवी महेश्वरपतिव्रता।
प्रोच्यते भगवान्भोक्ता कपर्दी नीललोहितः॥ ३०॥

उस महेश्वर की पतिव्रता विश्वेश्वरी देवी भोग्या है और कपर्दी नीललोहित शिव को भोक्ता कहा जाता है।

मन्ता विश्वेश्वरो देवः शङ्करो मन्मथान्तकः।
प्रोच्यते मतिरीशानी मन्तव्या च विचारतः॥ ३१॥

कामदेव के अन्तक विश्वेश्वर देव शंकर मन्ता (सब जानने वाले) हैं और विचारपूर्वक देखा जाय तो यही ईशानी मति—मनन करने योग्य है।

इत्येतदखिलं विप्राः शक्तिशक्तिमदुद्भवम्।
प्रोच्यते सर्ववेदेषु मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥ ३२॥

हे विप्रो! यह सारा विश्व शक्ति और शक्तिमान् का उद्भव है, यह तत्त्वज्ञानी मुनियों द्वारा सब वेदों में कहा गया है।

एतत्प्रदर्शितं दिव्यं देव्या माहात्म्यमुत्तमम्।
सर्ववेदान्तवादेषु निश्चितं ब्रह्मवादिभिः॥ ३३॥

इस प्रकार देवी का दिव्य और उत्तम माहात्म्य बताया गया है, जो ब्रह्मवादियों द्वारा समस्त वेदान्त शास्त्रों में निश्चित किया गया है।

एकं सर्वगतं सूक्ष्मं कूटस्थमचलं ध्रुवम्।
योगिनस्तत्प्रपश्यन्ति महादेव्याः परं पदम्॥ ३४॥

इस प्रकार सर्वव्यापी, सूक्ष्म, कूटस्थ, अचल और नित्य महादेवी के परम पद को योगीगण देखा करते हैं।

आनन्दमक्षरं ब्रह्म केवलं निष्कलं परम्।
योगिनस्तत्प्रपश्यन्ति महादेव्याः परं पदम्॥ ३५॥

जो आनन्दरूप, अक्षर ब्रह्मरूप, केवल और परम निष्कल है, महादेवी के उस परम पद को योगीगण देखते हैं।

परात्परतरं तत्त्वं शाश्वतं शिवमच्युतम्।
अनन्तप्रकृतौ लीनं देव्यास्तत्परमं पदम्॥ ३६॥

पर से भी परतर, शाश्वत, तत्त्वस्वरूप, शिव, अच्युत और अनन्त प्रकृति में लीन देवी का वह परम पद है।

शुभं निरञ्जनं शुद्धं निर्गुणं द्वैतवर्जितम्।
आत्मोपलब्धिविषयं देव्यास्तत्परमं पदम्॥ ३७॥

देवी का वह परम पद शुभ, निरञ्जन, शुद्ध, निर्गुण और भेदरहित है तथा आत्मप्राप्ति का विषय है।

सैषा धात्री विधात्री च परमानन्दमिच्छताम्।
संसारतापानखिलान्निहन्तीश्वरसंश्रयात्॥ ३८॥

परमानन्द की इच्छा रखने वालों की यही धात्री और विधात्री है। वही ईश्वर के सान्निध्य से संसार के समस्त तापों को नष्ट करती है।

तस्माद्विमुक्तिमन्विच्छन् पार्वतीं परमेश्वरीम्।
आश्रयेत्सर्वभूतानामात्मभूतां शिवात्मिकाम्॥ ३९॥

इसलिए मुक्ति की इच्छा करते हुए समस्त भूतों की आत्मरूपा शिवस्वरूपा परमेश्वरी पार्वती का आश्रय ग्रहण करना चाहिए।

लब्ध्वा च पुत्रीं शर्वाणीं तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम्।
सभार्यः शरणं यातः पार्वतीं परमेश्वरीम्॥ ४०॥

शर्वाणी को पुत्री रूप में प्राप्त कर और कठोर तपश्चर्या करके भार्या सहित हिमवान् परमेश्वरी पार्वती की शरण में आ गये थे।

तां दृष्ट्वा जायमानाञ्च स्वेच्छयैव वराननाम्।
मेना हिमवतः पत्नी प्राहेदं पर्वतेश्वरम्॥ ४१॥

पुत्री रूप में स्वेच्छा से उत्पन्न उस सुमुखी पार्वती को देखकर हिमवान् की पत्नी मेना ने पर्वतराज से इस प्रकार कहा–।

मेनोवाच

पश्यबालामिमां राजन् राजीवसदृशाननाम्।
हिताय सर्वभूतानां जाता च तपसावयोः॥ ४२॥

हे राजन्! इस बाला को देखो, जिसका मुख कमल सदृश है। जो हम दोनों के तप से समस्त प्राणियों के कल्याण के लिए उत्पन्न हुई है।

सोऽपि दृष्ट्वा ततो देवीं तरुणादित्यसन्निभाम्।
कपर्दिनीं चतुर्वक्त्रां त्रिनेत्रामतिलालसाम्॥ ४३॥
अष्टहस्तां विशालाक्षीं चन्द्रावयवभूषणाम्।
निर्गुणां सगुणां साक्षात्सदसद्व्यक्तिवर्जिताम्॥ ४४॥
प्रणम्य शिरसा भूमौ तेजसा चातिविह्वलः।
भीतः कृताञ्जलिस्तस्याः प्रोवाच परमेश्वरीम्॥ ४५॥

तब (मेना का वचन सुनकर) हिमालय ने भी उस देवी को देखा और बाल सूर्य के समान कान्तिवाली, जटाधारिणी, चार मुख वाली, तीन नेत्रों वाली, अत्यन्त लालसा-प्रेमभाव युक्ता, अष्टभुजा वाली, विशाल नेत्रों से युक्त, चन्द्रकला को आभूषणरूप में धारण करने वाली, निर्गुण और सगुण दोनों रूप वाली होने से साक्षात् सत् अथवा असत् की अभिव्यक्ति से रहित उस पार्वती देवी को दंडवत् प्रणाम करके अतिव्याकुलता के साथ दोनों हाथ जोड़कर भय सहित हिमालय ने उस परमेश्वरी से कहा-।

हिमवानुवाच

का त्वं देवी विशालाक्षि शशाङ्कावयवाङ्किते।
न जाने त्वामहं वत्से यथावद्ब्रूहि पृच्छते॥४६॥

हिमालय ने कहा— हे विशालाक्षि, देवि! आप कौन हैं? चन्द्रकला से युक्त आप कौन हैं? हे पुत्रि, मैं तुम्हें अच्छी प्रकार नहीं जानता हूँ, अतः तुमसे पूछ रहा हूँ।

गिरीन्द्रवचनं श्रुत्वा ततः सा परमेश्वरी।
व्याजहार महाशैलं योगिनामभयप्रदा॥४७॥

तदनन्तर गिरीन्द्र के वचन सुनकर योगियों को अभय देने वाली वह परमेश्वरी पर्वतराज हिमालय से बोली।

श्रीदेव्युवाच

मां विद्धि परमां शक्तिं महेश्वरसमाश्रयाम्॥४८॥
अनन्यामव्ययामेकां यां पश्यन्ति मुमुक्षवः।
अहं हि सर्वभावानामात्मा सर्वात्मना शिवा॥४९॥

श्रीदेवी ने कहा— मुझे आप महेश्वर के आश्रित परमा शक्ति जानो। मैं अनन्या, अव्यया एवं अद्वितीया हूँ, जिसे मोक्ष की इच्छा वाले देखते हैं। मैं सभी पदार्थों की आत्मा तथा सब प्रकार से शिवा अर्थात् मंगलमयी हूँ।

शाश्वतैश्वर्यविज्ञानमूर्तिः सर्वप्रवर्तिका।
अनन्तानन्तमहिमा संसारार्णवतारिणी॥५०॥

मैं नित्य ऐश्वर्य की विज्ञानमयी मूर्ति और सबकी प्रवर्तिका हूँ। मैं अनन्त और अनन्त महिमायुक्त तथा संसार सागर से तारने वाली हूँ।

दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे रूपमैश्वरम्।
एतावदुक्त्वा विज्ञानं दत्वा हिमवते स्वयम्॥५१॥
स्वं रूपं दर्शयामास दिव्यं तत्पारमेश्वरम्।

मैं तुम्हें दिव्य चक्षु प्रदान करती हूँ, मेरे ईश्वरीय रूप को देखो। इतना कहकर स्वयं उन्होंने हिमालय को विशेष ज्ञान प्रदान करके अपने दिव्य परमेश्वर रूप को दिखा दिया।

कोटिसूर्यप्रतीकाशं तेजोबिम्बं निराकुलम्॥५२॥
ज्वालामालासहस्राढ्यं कालानलशतोपमम्।
दंष्ट्राकरालं दुर्धर्षं जटामण्डलमण्डितम्॥५३॥
किरीटिनं गदाहस्तं शङ्खचक्रधरं तथा।
त्रिशूलवरहस्तञ्च घोररूपं भयानकम्॥५४॥
प्रशान्तं सौम्यवदनमनन्ताश्चर्यसंयुतम्।
चन्द्रावयवलक्ष्माणं चन्द्रकोटिसमप्रभम्॥५५॥
किरीटिनं गदाहस्तं नूपुरैरुपशोभितम्।
दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम्॥५६॥
शङ्खचक्रधरं काम्यं त्रिनेत्रं कृत्तिवाससम्।
अण्डस्थं चाण्डबाह्यस्थं बाह्यमाभ्यन्तरं परम्॥५७॥
सर्वशक्तिमयं शुभ्रं सर्वाकारं सनातनम्।
ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रयोगीन्द्रैर्वन्द्यमानपदाम्बुजम्॥५८॥
सर्वतः पाणिपादान्तं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वमावृत्य तिष्ठन्ती ददर्श परमेश्वरीम्॥५९॥

उनका वह रूप करोड़ों सूर्य के समान भास्वर, तेजो बिम्बस्वरूप, निराकुल, सहस्रों ज्वाला की मालाओं से युक्त सैकड़ों कालाग्नि के समान, दंष्ट्राओं से भयंकर, दुर्धर्ष, जटामंडल से सुशोभित, मुकुटधारी, हाथ में गदा लिए, शंख-चक्रधारी, त्रिशूलवरहस्त, घोररूप, भयानक अत्यन्त शान्त, सौम्यमुख, अनन्त-आश्चर्य संयुक्त, चन्द्रशेखर, करोड़ों चन्द्रमा के समान प्रभाशाली किरीटधारी, गदाहस्त, नूपुर द्वारा उपशोभित, दिव्य माला तथा वस्त्रधारी, दिव्य गन्ध से अनुलिप्त, शंखचक्रधारी, कमनीय, त्रिनेत्र, व्याघ्रचर्मपरिधायी, ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत तथा ब्रह्माण्ड के बहिर्भूत, सबके बहिःस्थ एवं आभ्यन्तरस्थ, सर्वशक्तिमय, शुभ्रवर्ण, सर्वाकार एवं सनातन, ब्रह्मा, इन्द्र, उपेन्द्र और योगिन्द्रों द्वारा वन्दनीय चरणकमलवाला, सब ओर हाथ-पैर वाला और सब ओर नेत्र, शिर एवं मुख वाला था। ऐसे रूप को धारण करने वाली और सबको आवृत करके स्थित परमेश्वरी को देखा।

दृष्ट्वा तदीदृशं रूपं देव्या माहेश्वरं परम्।
भयेन च समाविष्टः स राजा हृष्टमानसः॥६०॥

देवी के इस श्रेष्ठ माहेश्वरी रूप को देखकर पर्वतराज भययुक्त तथा प्रसन्न मन हो गये।

आत्मन्याधाय चात्मानमोङ्कारं समनुस्मरन्।
नाम्नामष्टसहस्रेण तुष्टाव परमेश्वरीम्॥६१॥

वे आत्मा में ही आत्मा का आधान करके और ओंकार उच्चारण पूर्वक आठ हजार नामों से परमेश्वरी की स्तुति करने लगे।

हिमवानुवाच

शिवोमा परमा शक्तिरनन्ता निष्कलामला।
शान्ता माहेश्वरी नित्या शाश्वती परमाक्षरा॥६२॥
अचिन्त्या केवलानन्त्या शिवात्मा परमात्मिका।
अनादिरव्यया शुद्धा देवात्मा सर्वगाचला॥६३॥

हिमवान् ने कहा— आप शिवा हैं तथा उमा एवं परमाशक्ति अनन्ता और निष्कला एवं अमला हैं। आप शान्ता, माहेश्वरी, नित्या, शाश्वती एवं परमाक्षरा हैं। आप अचिन्त्या केवला-अनन्त्या-शिवात्मा-परमात्मिका अनादि, अव्यया, शुद्धा, देवात्मा, सर्वगा और अचला भी हैं।

एकानेकविभागस्था मायातीता सुनिर्मला।
महामाहेश्वरी सत्या महादेवी निरञ्जना॥६४॥
काष्ठा सर्वान्तरस्था च चिच्छक्तिरतिलालसा।
नन्दा सर्वात्मिका विद्या ज्योतीरूपामृताक्षरा॥६५॥
शान्ति: प्रतिष्ठा सर्वेषां निवृत्तिरमृतप्रदा।
व्योममूर्त्तिर्व्योमलया व्योमाधाराच्युतामरा॥६६॥
अनादिनिधनामोघा कारणात्माकलाकुला।
स्वत: प्रथमजा नाभिरमृतस्यात्मसंश्रया॥६७॥

एक और अनेक विभाग में स्थित, मायातीत, अत्यन्त निर्मल, महामाहेश्वरी, सत्या, महादेवी, निरञ्जना, काष्ठा, सबके भीतर विद्यमान, चित् शक्ति, अतिलालसा, नन्दा, सर्वात्मिका, विद्या, ज्योतिरूपा, अमृता, अक्षरा, शान्ति, प्रतिष्ठा, निवृत्ति, अमृतप्रदा, व्योममूर्ति, व्योमलया, व्योमाधारा, अच्युता, अमरा। अनादिनिधना, अमोघा, कारणात्मा, कलाकुला, स्वत: प्रथमोत्पन्न, अमृतनाभि, आत्मसंश्रया।

प्राणेश्वरप्रिया माता महामहिषवासिनी।
प्राणेश्वरी प्राणरूपा प्रधानपुरुषेश्वरी॥६८॥
महामायाऽथ दुष्पुरा मूलप्रकृतिरीश्वरी।
सर्वशक्तिकलाकारा ज्योत्स्ना द्यौर्महिमास्पदा॥६९॥
सर्वकार्यनियंत्री च सर्वभूतेश्वरेश्वरी।
संसारयोनि: सकला सर्वशक्तिसमुद्भवा॥७०॥
संसारपोता दुर्वारा दुर्निरीक्ष्या दुरासदा।
प्राणशक्ति: प्राणविद्या योगिनी परमा कला॥७१॥

प्राणेश्वरप्रिया, माता, महामहिषवासिनी, प्राणेश्वरी, प्राणरूपा, प्रधान पुरुषेश्वरी, महामाया, सुदुष्पूला, मूलप्रकृति, ईश्वरी, सर्वशक्ति, कलाकारा, ज्योत्स्ना, द्यौ:, महिमास्पदा, सर्वकामनियन्त्री, सर्वभूतेश्वरेश्वरी, संसारयोनि, सकला, सर्वशक्तिसमुद्भवा, संसारपोता, दुर्वारा, दुर्निरीक्ष्या, दुरासदा, प्राणशक्ति, प्राणविद्या, योगिनी, परमा, कला।

महाविभूतिर्दुर्धर्षा मूलप्रकृतिसम्भवा।
अनाद्यनन्तविभवा परमाद्यापकर्षिणी॥७२॥
सर्गस्थित्यन्तकारिणी सुदुर्वाच्या दुरत्यया।
शब्दयोनि: शब्दमयी नादाख्या नादविग्रहा॥७३॥
अनादिरव्यक्तगुणा महानन्दा सनातनी।
आकाशयोनिर्योगस्था महायोगेश्वरेश्वरी॥७४॥
महामाया सुदुष्पारा मूलप्रकृतिरीश्वरी।
प्रधानपुरुषातीता प्रधानपुरुषात्मिका॥७५॥

महाविभूति, दुर्धर्षा, मूलप्रकृतिसम्भवा, अनाद्यनन्तविभवा, परमाद्यापकर्षिणी, सृष्टि-स्थिति-लयकारिणी, सुदुर्वाच्या, दुरत्यया, शब्द-योनि, शब्दमयी, नादाख्या, नादविग्रहा, अनादि, अव्यक्तगुणा, महानन्दा, सनातनी, आकाशयोनि, योगस्था, महायोगेश्वर की ईश्वरी हैं। महामाया, सुदुष्पारा, मूलप्रकृति, ईश्वरी, प्रधानपुरुष से अतीत, प्रधानपुरुषस्वरूपा।

पुराणा चिन्मयी पुंसामादिपुरुषरूपिणी।
भूतान्तरस्था कूटस्था महापुरुषसंज्ञिता॥७६॥
जन्ममृत्युजरातीता सर्वशक्तिसमन्विता।
व्यापिनी चानवच्छिन्ना प्रधानानुप्रवेशिनी॥७७॥
क्षेत्रज्ञशक्तिरव्यक्तलक्षणा मलवर्जिता।
अनादिमायासम्भिन्ना त्रितत्त्वा प्रकृतिग्रहा॥७८॥
महामायासमुत्पन्ना तामसी पौरुषी ध्रुवा।
व्यक्ताव्यक्तात्मिका कृष्णा रक्ता शुक्लप्रसूतिका॥७९॥

पुराणा, चिन्मयी, पुरुषों की आदिपुरुषरूपा, भूतान्तरस्था, कूटस्था, महापुरुष संज्ञिता, जन्म, मृत्यु और जरावस्था से परे, सर्वशक्तियुता, व्यापिनी, अनवच्छिन्ना, प्रधानानुप्रवेशिनी, क्षेत्रज्ञशक्ति, अव्यक्तलक्षणा, मलवर्जिता, अनादिमाया-सम्भिन्ना, त्रितत्त्वा, प्रकृतिग्रहा, महामायासमुत्पन्ना, तामसी, पौरुषी, ध्रुवा, व्यक्त-अव्यक्तस्वरूपा, कृष्णा, रक्ता, शुक्ला, प्रसूतिका।

अकार्या कार्यजननी नित्यं प्रसवधर्मिणी।
सर्गप्रलयनिर्मुक्ता सृष्टिस्थित्यन्तधर्मिणी॥८०॥
ब्रह्मगर्भा चतुर्विंशा पद्मनाभाच्युतात्मिका।
वैद्युती शाश्वती योनिर्जगन्मातेश्वरप्रिया॥८१॥
सर्वाधारा महारूपा सर्वैश्वर्यसमन्विता।
विश्वरूपा महागर्भा विश्वेशेच्छानुवर्तिनी॥८२॥
महीयसी ब्रह्मयोनिः महालक्ष्मीसमुद्भवा।
महाविमानमध्यस्था महानिद्रात्महेतुका॥८३॥

अकार्या, कार्यजननी, नित्यप्रसवधर्मिणी, सर्गप्रलयनिर्मुक्ता, सृष्टिस्थित्यन्तधर्मिणी, ब्रह्मगर्भा, चतुर्विंशा, पद्मनाभा, अच्युतात्मिका, वैद्युती, शाश्वती, योनि, जगन्माता, ईश्वर प्रिया, सर्वाधारा, महारूपा, सर्वेश्वर्यसमन्विता, विश्वरूपा, महागर्भा, विश्वेशेच्छानुवर्तिनी, महीयसी, ब्रह्मयोनि, महालक्ष्मीसमुद्भवा, महाविमान के मध्य में स्थित, महानिद्रा, आत्महेतुका।

सर्वसाधारणी सूक्ष्माह्यविद्या पारमार्थिका।
अनन्तरूपानन्तस्था देवी पुरुषमोहिनी॥८४॥
अनेकाकारसंस्थाना कालत्रयविवर्जिता।
ब्रह्मजन्मा हरेर्मूर्तिब्रह्मविष्णुशिवात्मिका॥८५॥
ब्रह्मेशविष्णुजननी ब्रह्माख्या ब्रह्मसंश्रया।
व्यक्ता प्रथमजा ब्राह्मी महती ब्रह्मरूपिणी॥८६॥
वैराग्यैश्वर्यधर्मात्मा ब्रह्ममूर्ति हृदिस्थिता।
अपां योनिः स्वयम्भूतिर्मानसी तत्त्वसम्भवा॥८७॥

सर्वसाधारणी, सूक्ष्मा, अविद्या, पारमार्थिका, अनन्तरूपा, अनन्तस्था, पुरुषमोहिनी, अनेक आकारों में अवस्थिता, कालत्रयविवर्जिता, ब्रह्मजन्मा हरि की मूर्ति, ब्रह्म-विष्णुशिवात्मिका, ब्रह्मेश-विष्णु-जननी, ब्रह्माख्या, ब्रह्मसंश्रया, व्यक्ता, प्रथमजा, ब्राह्मी, महती ब्रह्मरूपिणी, वैराग्यैश्वर्यधर्मात्मा, ब्रह्ममूर्ति, हृदिस्थिता, अपांयोनि, स्वयम्भूति, मानसी, तत्त्वसंभवा।

ईश्वराणी च शर्वाणी शंकरार्धशरीरिणी।
भवानी चैव रुद्राणी महालक्ष्मीरथाम्बिका॥८८॥
महेश्वरसमुत्पन्ना भुक्तिमुक्तिफलप्रदा।
सर्वेश्वरी सर्ववन्द्या नित्यं मुदितमानसा॥८९॥
ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रनमिता शंकरेच्छानुवर्तिनी।
ईश्वरार्धासनगता महेश्वरपतिव्रता॥९०॥
सकृद्विभाता सर्वार्तिसमुद्रपरिशोषिणी।
पार्वती हिमवत्पुत्री परमानन्ददायिनी॥९१॥

ईश्वराणी, शर्वाणी, शंकरार्धशरीरिणी, भवानी, रुद्राणी, महालक्ष्मी, अम्बिका। महेश्वरसमुत्पन्ना, भुक्तिमुक्तिफलप्रदा, सर्वेश्वरी, सर्ववन्द्या, नित्यमुदितमानसा, ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रनमिता, शंकरेच्छानुवर्तिनी, ईश्वरार्धासनगता, महेश्वरपतिव्रता। सकृद्विभाता, सर्वार्तिसमुद्रपरिशोषिणी, पार्वती, हिमवत्पुत्री, परमानन्ददायिनी।

गुणाढ्या योगजा योग्या ज्ञानमूर्तिर्विकाशिनी।
सावित्री कमला लक्ष्मीः श्रीरनन्तोरसि स्थिता॥९२॥
सरोजनिलया गंगा योगनिद्रा सुरार्दिनी।
सरस्वती सर्वविद्या जगज्ज्येष्ठा सुमंगला॥९३॥
वाग्देवी वरदा वाच्या कीर्तिः सर्वार्थसाधिका।
योगीश्वरी ब्रह्मविद्या महाविद्या सुशोभना॥९४॥
गुह्यविद्यात्मविद्या च धर्मविद्यात्मभाविता।
स्वाहा विश्वम्भरा सिद्धिः स्वधा मेधा धृतिःश्रुतिः॥९५॥

गुणाढ्या, योगजा, योग्या, ज्ञानमूर्ति, विकासिनी, सावित्री, कमला, लक्ष्मी, श्री, अनन्ता, उरसिस्थिता, सरोजनिलया, गंगा, योगनिद्रा, सुरार्दिनी, सरस्वती, सर्वविद्या, जगज्ज्येष्ठा, सुमंगला। वाग्देवी, वरदा, वाच्या, कीर्ति, सर्वार्थसाधिका, योगीश्वरी, ब्रह्मविद्या, महाविद्या, सुशोभना, गुह्यविद्या, आत्मविद्या, धर्मविद्या, आत्मभाविता, स्वाहा, विश्वम्भरा, सिद्धि, स्वधा, मेधा, धृति, श्रुति।

नीतिः सुनीतिः सुकृतिर्माधवी नरवाहिनी।
पूज्या विभावती सौम्या भोगिनी भोगशायिनी॥९६॥
शोभा च शंकरी लोला मालिनी परमेष्ठिनी।
त्रैलोक्यसुन्दरी नम्या सुन्दरी कामचारिणी॥९७॥
महानुभावा सत्त्वस्था महामहिषमर्दिनी।
पद्मनाभा पापहरा विचित्रमुकुटांगदा॥९८॥
कान्ता चित्राम्बरधरा दिव्याभरणभूषिता।
हंसाख्या व्योमनिलया जगत्सृष्टिविवर्धिनी॥९९॥

नीति, सुनीति, सुकृति, माधवी, नरवाहिनी, पूज्या, विभावती, सौम्या, भोगिनी, भोगशायिनी, शोभा, शंकरी, लोला, मालिनी, परमेष्ठिनी, त्रैलोक्यसुन्दरी, नम्या, सुन्दरी, कामचारिणी, महानुभावा, सत्त्वस्था, महामहिषमर्दिनी, पद्मनाभा, पापहरा, विचित्रमुकुटांगदा, कान्ता, चित्राम्बरधरा, दिव्याभरणभूषिता, हंसाख्या, व्योमनिलया, जगत्सृष्टि विवर्धिनी।

नियन्त्री यन्त्रमध्यस्था नंदिनी भद्रकालिका।
आदित्यवर्णा कौबेरी मयूरवरवाहना॥१००॥

वृषासनगता गौरी महाकाली सुरार्चिता।
अदितिर्नियता रौद्रा पद्मगर्भा विवाहना॥ १०१॥
विरूपाक्षी लेलिहाना महासुरविनाशिनी।
महाफलानवद्यांगी कामरूपा विभावरी॥ १०२॥
विचित्ररत्नमुकुटा प्रणतार्तिप्रभञ्जनी।
कौशिकी कर्षणी रात्रिस्त्रिदशार्तिविनाशिनी॥ १०३॥

नियन्त्री, यन्त्रमध्यस्था, नन्दिनी, भद्रकालिका, आदित्यवर्णा, कौबेरी, मयूर-वरवाहना, वृषासनगता, गौरी, महाकाली, सुरार्चिता, अदिति, नियता, रौद्रा, पद्मगर्भा, विवाहना, विरूपाक्षी, लेलिहाना, महासुरविनाशिनी, महाफला, अनवद्यांगी, कामरूपा, विभावरी, विचित्ररत्नमुकुटा, प्रणतार्तिप्रभञ्जनी, कौशिकी, कर्षणी, रात्रि, त्रिदशार्तिविनाशिनी।

बहुरूपा स्वरूपा च विरूपा रूपवर्जिता।
भक्तार्तिशमनी भव्या भवतापविनाशिनी॥ १०४॥
निर्गुणा नित्यविभवा निःसारा निरपत्रपा।
तपस्विनी सामगीतिर्भवाङ्कनिलयालया॥ १०५॥
दीक्षा विद्याधरी दीप्ता महेन्द्रविनिपातिनी।
सर्वातिशायिनी विश्वा सर्वसिद्धिप्रदायिनी॥ १०६॥
सर्वेश्वरप्रियाभार्या समुद्रान्तरवासिनी।
अकलंका निराधारा नित्यसिद्धा निरामया॥ १०७॥

बहुरूपा, स्वरूपा, विरूपा, रूपवर्जिता, भक्तार्तिशमनी। भव्या, भवतापविनाशिनी, निर्गुणा, नित्यविभवा, निःसारा, निरपत्रपा, तपस्विनी, सामगीति, भवांगनिलयालया, दीक्षा, विद्याधरी, दीप्ता, महेन्द्रविनिपातिनी, सर्वातिशायिनी, विश्वा, सर्वसिद्धिप्रदायिनी। सर्वेश्वरप्रियाभार्या, समुद्रान्तरवासिनी, अकलंका, निराधारा, नित्यसिद्धा, निरामया।

कामधेनु बृहद्गर्भा श्रीमती मोहनाशिनी।
निःसंकल्पा निरातङ्का विनया विनयप्रिया॥ १०८॥
ज्वालामालासहस्राढ्या देवदेवी मनोमयी।
महाभगवती भर्गा वासुदेवसमुद्भवा॥ १०९॥
महेन्द्रोपेन्द्रभगिनी भक्तिगम्या परावरा।
ज्ञानज्ञेया जरातीता वेदान्तविषया गतिः॥ ११०॥
दक्षिणा दहती दीर्घा सर्वभूतनमस्कृता।
योगमाया विभागज्ञा महामोहा गरीयसी॥ १११॥

कामधेनु, बृहद्गर्भा, श्रीमती, मोहनाशिनी, निःसंकल्पा, निरातङ्का, विनया, विनयप्रिया, ज्वालामालासहस्राढ्या, देवदेवी, मनोमयी, महाभगवती, भर्गा, वासुदेवसमुद्भवा, महेन्द्रोपेन्द्रभगिनी, भक्तिगम्या, परावरा, ज्ञान-ज्ञेया, जरातीता, वेदान्तविषया, गतिरूपा, दक्षिणा, दहती, दीर्घा, सर्वभूतनमस्कृता, योगमाया, विभागज्ञा, महामोहा, गरीयसी।

सन्ध्या सर्वसमुद्भूतिर्ब्रह्मविद्याश्रयादिभिः।
बीजांकुरसमुद्भूतिर्महाशक्तिर्महामतिः॥ ११२॥
क्षान्तिः प्रज्ञा चितिः सच्चिन्महाभोगीन्द्रशायिनी।
विकृतिः शाङ्करी शास्तिर्गणगन्धर्वसेविता॥ ११३॥
वैश्वानरी महाशाला महासेना गुहप्रिया।
महारात्रिः शिवानन्दा शची दुःस्वप्ननाशिनी॥ ११४॥
इज्या पूज्या जगद्धात्री दुर्विनेया सुरूपिणी।
तपस्विनी समाधिस्था त्रिनेत्रा दिवि संस्थिता॥ ११५॥

सन्ध्या, ब्रह्मविद्याश्रयादि द्वारा सबकी उत्पत्ति का कारण, बीजाङ्कुरसमुद्भूति, महाशक्ति, महामति, क्षान्ति, प्रज्ञा, चिति, सत्‌चित्, महाभोगीन्द्र-शायिनी, विकृति, शाङ्करी, शास्ति, गणगन्धर्वसेविता, वैश्वानरी, महाशाला महासेना, गुहप्रिया, महारात्रि, शिवानन्दा, शची, दुःस्वप्न-नाशिनी, इज्या, पूज्या, जगद्धात्री, दुर्विनेया सुरूपिणी, तपस्विनी, समाधिस्था, त्रिनेत्रा, दिवि, संस्थिता।

गुहाम्बिका गुणोत्पत्तिर्महापीठा मरुत्सुता।
हव्यवाहान्तरागादिः हव्यवाहसमुद्भवा॥ ११६॥
जगद्योनिर्जगन्माता जन्ममृत्युजरातिगा।
बुद्धिर्महाबुद्धिमती पुरुषान्तरवासिनी॥ ११७॥
तरस्विनी समाधिस्था त्रिनेत्रा दिवि संस्थिता।
सर्वेन्द्रियमनोमाता सर्वभूतहृदि स्थिता॥ ११८॥
संसारतारिणी विद्या ब्रह्मवादिमनोलया।
ब्रह्माणी बृहती ब्राह्मी ब्रह्मभूता भवारिणी॥ ११९॥

गुहाम्बिका, गुणोत्पत्ति, महापीठा, मरुत्सुता, हव्यवाहान्तरागादि, हव्यवाहसमुद्भवा, जगद्योनि, जगन्माता, जन्ममृत्युजरातिगा, बुद्धि, महाबुद्धिमती, पुरुषान्तरवासिनी, तरस्विनी, समाधिस्था, त्रिनेत्रा, दिविसंस्थिता, सर्वेन्द्रियमनोमाता, सर्वभूतहृदिस्थिता, संसारतारिणी, विद्या, ब्रह्मवादिमनोलया, ब्रह्माणी, बृहती, ब्राह्मी, ब्रह्मभूता, भवारिणी।

हिरण्मयी महारात्रिः संसारपरिवर्तिका।
सुमालिनी सुरूपा च भाविनी हारिणी प्रभा॥ १२०।
उन्मीलनी सर्वसहा सर्वप्रत्ययसाक्षिणी।
सुसौम्या चन्द्रवदना ताण्डवासक्तमानसा॥ १२१॥
सत्त्वशुद्धिकरी शुद्धिर्मलत्रयविनाशिनी।

जगत्प्रिया जगन्मूर्तिस्त्रिमूर्तिरमृताश्रया॥ १२२॥
निराश्रया निराहारा निरंकुशपदोद्भवा।
चन्द्रहस्ता विचित्राङ्गी स्रग्विणी पद्मधारिणी॥ १२३॥

हिरण्मयी, महारात्रि, संसारपरिवर्तिका, सुमालिनी, सुरूपा, भाविनी, हारिणी, प्रभा, उन्मीलनी, सर्वसहा, सर्वप्रत्ययसाक्षिणी, सुसौम्या, चन्द्रवदना, ताण्डवासक्त-मानसा, सत्त्वशुद्धिकरी, शुद्धि, मलत्रय-विनाशिनी, जगत्प्रिया, जगन्मूर्ति, त्रिमूर्ति, अमृताश्रया, निराश्रया, निराहारा, निरंकुशपदोद्भवा, चन्द्रहस्ता, विचित्राङ्गी, स्रग्विणी, पद्मधारिणी।

परावरविधानज्ञा महापुरुषपूर्वजा।
विश्वेश्वरप्रिया विद्युत् विद्युज्जिह्वा जितश्रमा॥ १२४॥
विद्यामयी सहस्राक्षी सहस्रवदनात्मजा।
सहस्ररश्मि: सत्वस्था महेश्वरपदाश्रया॥ १२५॥
क्षालिनि मृण्मयी व्याप्ता तैजसी पद्मबोधिका।
महामायाश्रया मान्या महादेवमनोरमा॥ १२६॥
व्योमलक्ष्मी: सिंहरथा चेकितानामितप्रभा।
वीरेश्वरी विमानस्था विशोका शोकनाशिनी॥ १२७॥

परावरविधानज्ञा, महापुरुषपूर्वजा, विश्वेरप्रिया, विद्युत, विद्युज्जिह्वा, जितश्रमा, विद्यामयी, सहस्राक्षी, सहस्रवदनात्मजा, सहस्ररश्मि, सत्त्वस्था, महेश्वरपदाश्रया, क्षालिनी, मृण्मयी, व्याप्ता, तैजसी, पद्मबोधिका, महामायाश्रया, मान्या, महादेवमनोरमा, व्योमलक्ष्मी, सिंहरथा, चेकिताना, अमितप्रभा, वीरेश्वरी, विमानस्था, विशोका, शोकनाशिनी।

अनाहता कुण्डलिनी नलिनी पद्मभासिनी।
सदानन्दा सदाकीर्ति: सर्वभूताश्रयस्थिता॥ १२८॥
वाग्देवता ब्रह्मकला कलातीता कलारणी।
ब्रह्मश्री ब्रह्महृदया ब्रह्मविष्णु शिवप्रिया॥ १२९॥
व्योमशक्ति: क्रियाशक्तिर्ज्ञानशक्ति: परा गति:।
क्षोभिका बन्धिका भेद्या भेदाभेदविवर्जिता॥ १३०॥
अभिन्ना भिन्नसंस्थाना वशिनी वंशहारिणी।
गुह्यशक्तिर्गुणातीता सर्वदा सर्वतोमुखी॥ १३१॥

अनाहता, कुण्डलिनी, नलिनी, पद्मभासिनी, सदानन्दा, सदाकीर्ती, सर्वभूताश्रयस्थिता, वाग्देवता, ब्रह्मकला, कलातीता, कलारणी, ब्रह्मश्री, ब्रह्महृदया, ब्रह्मविष्णु-शिवप्रिया, व्योमशक्ति, क्रियाशक्ति, ज्ञानशक्ति, परागति, क्षोभिका, भेद्या, भेदाभेदविवर्जिता, अभिन्ना, भिन्नसंस्थाना, वशिनी, वंशहारिणी, गुह्यशक्ति, गुणातीता, सर्वदा, सर्वतोमुखी।

भगिनी भगवत्पत्नी सकला कालहारिणी।
सर्ववित् सर्वतोभद्रा गुह्यातीता गुहावलि:॥ १३२॥
प्रक्रिया योगमाता च गङ्गा विश्वेश्वरेश्वरी।
कलिला कपिला कान्ता कमलाभा कलान्तरा॥ १३३॥
पुण्या पुष्करिणी भोक्त्री पुरन्दरपुरस्सरा।
पोषिणी परमैश्वर्यभूतिदा भूतिभूषणा॥ १३४॥
पञ्चब्रह्मसमुत्पत्ति: परमार्थार्थविग्रहा।
धर्मोदया भानुमती योगिज्ञेया मनोजवा॥ १३५॥

भगिनी, भगवत्पत्नी, सकला, कालहारिणी, सर्ववित्, सर्वतोभद्रा, गुह्यातीता, गुहावलि, प्रक्रिया, योगमाता, गंगा, विश्वेश्वरेश्वरी, कलिला, कपिला, कान्ता, कमलाभा, कलान्तरा, पुण्या, पुष्करिणी, भोक्त्री, पुरन्दरपुरःसरा, पोषिणी, परमैश्वर्यभूतिदा, भूतिभूषणा, पञ्चब्रह्मसमुत्पत्ति, परमार्थार्थविग्रहा, धर्मोदया, भानुमती, योगिज्ञेया, मनोजवा।

मनोरमा मनोरस्का तापसी वेदरूपिणी।
वेदशक्तिर्वेदमाता वेदविद्याप्रकाशिनी॥ १३६॥
योगेश्वरेश्वरी माता महाशक्तिर्मनोमयी।
विश्वावस्था वियन्मूर्तिर्विद्युन्माला विहायसी॥ १३७॥
किन्नरी सुरभी विद्या नन्दिनी नन्दिवल्लभा।
भारती परमानन्दा परापरविभेदिका॥ १३८॥
सर्वप्रहरणोपेता काम्या कामेश्वरेश्वरी।
अचिन्त्यानन्तविभवा भूलेखा कनकप्रभा॥ १३९॥

मनोरमा, मनोरस्का, तापसी, वेदरूपिणी, वेदशक्ति, वेदमाता, वेदविद्या-प्रकाशिनी, योगेश्वरेश्वरी, माता, महाशक्ति, मनोमयी, विश्वावस्था, वियन्मूर्ति, विद्युन्माला, विहायसी, किन्नरी, सुरभी, विद्या, नन्दिनी, नन्दिवल्लभा, भारती, परमानन्दा, परापरविभेदिका, सर्वप्रहरणोपेता, काम्या, कामेश्वरेश्वरी, अचिन्त्या, अनन्तविभवा, भूलेखा, कनकप्रभा।

कूष्माण्डी धनरत्नाढ्या सुगन्धा गन्धदायिनी।
त्रिविक्रमपदोद्भूता धनुष्पाणि: शिवोदया॥ १४०॥
सुदुर्लभा धनाध्यक्षा धन्या पिंगललोचना।
शान्ति: प्रभावती दीप्ति: पङ्कजायतलोचना॥ १४१॥
आद्या भू: कमलोद्भूता गवां माता रणप्रिया।
सत्क्रिया गिरिशा शुद्धिर्नित्यपुष्टा निरन्तरा॥ १४२॥
दुर्गा कात्यायनी चंडी चर्चितांगा सुविग्रहा।

हिरण्यवर्णा जगती जगद्यंत्रप्रवर्तिका॥ १४३॥

कूष्माण्डी, धनरत्नाढ्या, सुगन्धा, गन्धदायिनी, त्रिविक्रमपदोद्भूता, धनुष्पाणि, शिवोदया, सुदुर्लभा, धनाध्याक्षा, धन्या, पिंगललोचना, शान्ति, प्रभावती, दीप्ति, पंकज के समान दीर्घ नेत्रवाली, आद्या, भू, कमलोद्भूता, गोमाता, रणप्रिया, सत्क्रिया, गिरिशा, शुद्धि, नित्यपुष्टा, निरन्तरा, दुर्गा, कात्यायनी, चंडी, चर्चितांगा, सुविग्रहा, हिरण्यवर्णा, जगती, जगद्यंत्रप्रवर्तिका।

मन्दराद्रिनिवासा च गरहा स्वर्णमालिनी।
रत्नमाला रत्नगर्भा पुष्टिर्विश्वप्रमाथिनी॥ १४४॥
पद्मनाभा पद्मनिभा नित्यरुष्टामृतोद्भवा।
धुन्वती दुष्प्रकम्प्या च सूर्यमाता दृषद्वती॥ १४५॥
महेन्द्रभगिनी सौम्या वरेण्या वरदायिका।
कल्याणी कमलावासा पञ्चचूडा वरप्रदा॥ १४६॥
वाच्यामरेश्वरी विद्या दुर्जया दुरतिक्रमा।
कालरात्रिर्महावेगा वीरभद्रप्रिया हिता॥ १४७॥

मन्दराचलनिवासा, गरहा, स्वर्णमालिनी, रत्नमाला, रत्नगर्भा, पुष्टि, विश्वप्रमाथिनी, पद्मनाभा, पद्मनिभा, नित्यरुष्टा, अमृतोद्भवा, धुन्वती, दुष्प्रकम्पा, सूर्यमाता, दृषद्वती, महेन्द्रभगिनी, सौम्या, वरेण्या, वरदायिका, कल्याणी, कमलावासा, पञ्चचूडा, वरप्रदा, वाच्या, अमरेश्वरी, विद्या, दुर्जया, दुरतिक्रमा, कालरात्रि, महावेगा, वीरभद्रप्रिया, हिता।

भद्रकाली जगन्माता भक्तानां भद्रदायिनी।
कराला पिंगलाकारा कामभेदा महास्वना॥ १४८॥
यशस्विनी यशोदा च षडध्वपरिवर्त्तिका।
शङ्खिनी पद्मिनी सांख्या सांख्ययोगप्रवर्त्तिका॥ १४९॥
चैत्रा संवत्सरारूढा जगत्सम्पूरणी ध्वजा।
शुंभारिः खेचरी स्वस्था कंबुग्रीवाकलिप्रिया॥ १५०॥
खगध्वजा खगारूढा वाराही पूगमालिनी।
ऐश्वर्यपद्मनिलया विरक्ता गरुडासना॥ १५१॥

भद्रकाली, जगन्माता, भक्तमंगलदायिनी, कराला, पिंगलाकारा, कामभेदा, महास्वना, यशस्विनी, यशोदा, षडध्वपरिवर्तिका, ध्वजा, शंखिनी, पद्मिनी, सांख्या, सांख्ययोगप्रवर्तिका, चैत्रा, संवत्सरारूढा, जगत्सम्पूरणी, ध्वजा, शुंभारि, खेचरी, स्वस्था, कंबुग्रीवा, कलिप्रिया, खगध्वजा, खगारूढा, वाराही, पूगमालिनी, ऐश्वर्य-पद्मनिलया, विरक्ता, गरुडासना।

जयन्ती हृद्गुहागम्या गह्वरेष्ठा गणाग्रणीः।
सङ्कल्पसिद्धा साम्यस्था सर्वविज्ञानदायिनी॥ १५२॥
कलिः कल्कविहन्त्री च गुह्योपनिषदुत्तमा।
निष्ठा दृष्टिः स्मृतिर्व्याप्तिः पुष्टिस्तुष्टिः क्रियावती॥ १५३
विश्वामरेश्वरेशाना भुक्तिर्मुक्तिः शिवामृता।
लोहिता सर्पमाला च भीषणा वनमालिनी॥ १५४॥
अनन्तशयनानन्ता नरनारायणोद्भवा।
नृसिंही दैत्यमथनी शङ्खचक्रगदाधरा॥ १५५॥

आप जयन्ती, हृद्गुहागम्या, गह्वरेष्ठा, गणाग्रणी, संकल्पसिद्धा, साम्यस्था, सर्वविज्ञानदायिनी, कलि, कल्कविहन्त्री, गुह्योपनिषदुत्तमा, निष्ठा, दृष्टि, स्मृति, व्याप्ति, पुष्टि, तुष्टि, क्रियावती, समस्त देवेश्वरों की शासिका, भुक्ति, मुक्ति, शिवा, अमृता, लोहिता, सर्पमाला, भीषणी, वनमालिनी, अनन्तशयना, अनन्ता, नरनारायणोद्भवा, नृसिंही, दैत्यमथनी, शंखचक्रगदाधरा हैं।

सङ्कर्षणी समुत्पत्तिरम्बिका पादसंश्रया।
महाज्वाला महाभूतिः सुमूर्त्तिः सर्वकामधुक्॥ १५६॥
शुभ्रा च सुस्तना सौरी धर्मकामार्थमोक्षदा।
भ्रूमध्यनिलया पूर्वा पुराणपुरुषारणिः॥ १५७॥
महाविभूतिदा मध्या सरोजनयना समा।
अष्टादशभुजानाद्या नीलोत्पलदलप्रभा॥ १५८॥
सर्वशक्त्यासनारूढा धर्माधर्मविवर्जिता।
वैराग्यज्ञाननिरता निरालोका निरिन्द्रिया॥ १५९॥

आप संकर्षणी, समुत्पत्ति, अम्बिका, पादसंश्रया, महाज्वाला, महाभूति, सुमूर्ति, सर्वकामधुक्, शुभ्रा, सुस्तना, सौरी, धर्मकामार्थमोक्षदा, भ्रूमध्यनिलया, पूर्वा, पुराण-पुरुषारणि, महाविभूतिदा, मध्या, सरोजनयना, समा, अष्टादशभुजा, अनाद्या, नीलोत्पलदलप्रभा, सर्वशक्त्या-सनारूढा, धर्माधर्मविवर्जिता, वैराग्यज्ञाननिरता, निरालोका, निरिन्द्रिया।

विचित्रगहनाधारा शाश्वतस्थानवासिनी।
स्थानेश्वरी निरानन्दा त्रिशूलवरधारिणी॥ १६०॥
अशेषदेवतामूर्त्तिर्देवता वरदेवता।
गणाम्बिका गिरेः पुत्री निशुम्भविनिपातिनी॥ १६१॥
अवर्णा वर्णरहिता त्रिवर्णा जीवसम्भवा।
अनन्तवर्णानन्यस्था शङ्करी शान्तमानसा॥ १६२॥
अगोत्रा गोमती गोप्त्री गुह्यरूपा गुणोत्तरा।
गौर्गीर्गव्यप्रिया गौणी गणेश्वरनमस्कृता॥ १६३॥

विचित्रगहनाधारा, शाश्वतस्थानवासिनी, स्थानेश्वरी, निरानन्दा, त्रिशूलवरधारिणी, अशेषदेवतामूर्ति, देवता, वरदेवता, गणाम्बिका, गिरे:पुत्री, निशुम्भविनिपातिनी, अवर्णा, वर्णरहिता, त्रिवर्णा, जीवसंभवा, अनन्तवर्णा, अनन्यस्था, शंकरी, शान्तिमानसा, अगोत्रा, गोमती, गोप्त्री, गुह्यरूपा, गुणोत्तरा, गो, गो:, गव्यप्रिया, गौणी, गणेश्वरनमस्कृता (ये नाम भी आपके हैं)।

सत्यभामा सत्यसन्धा त्रिसन्ध्या सन्धिवर्जिता।
सर्ववादाश्रया सांख्या सांख्ययोगसमुद्भवा॥ १६४॥
असंख्येयाप्रमेयाख्या शून्या शुद्धकुलोद्भवा।
बिन्दुनादसमुत्पत्तिः शम्भुवामा शशिप्रभा॥ १६५॥
पिशङ्गा भेदरहिता मनोज्ञा मधुसूदनी।
महाश्रीः श्रीसमुत्पत्तिस्तम:पारे प्रतिष्ठिता॥ १६६॥
त्रितत्त्वमाता त्रिविधा सुसूक्ष्मपदसंश्रया।
शान्ता भीता मलातीता निर्विकारा शिवाश्रया॥ १६७॥

आप सत्यभामा, सत्यसन्धा, त्रिसन्ध्या, सन्धिवर्जिता, सर्ववादाश्रया, सांख्या, सांख्ययोगसमुद्भवा, असंख्येया, अप्रमेयाख्या, शून्या, शुद्धकुलोद्भवा, बिन्दुनादसमुत्पत्ति, शम्भुवामा, शशिप्रभा, पिशङ्गा, भेदरहिता, मनोज्ञा, मधुसूदनी, महाश्री: श्रीसमुत्पत्ति और तम से परे प्रतिष्ठित हैं। आप त्रितत्त्वमाता, त्रिविधा, सुसूक्ष्मपदसंश्रया, शान्ता, भीता, मलातीता, निर्विकारा, शिवाश्रया हैं।

शिवाख्या चित्तनिलया शिवज्ञानस्वरूपिणी।
दैत्यदानवनिर्माथी काश्यपी कालकर्णिका॥ १६८॥
शास्त्रयोनि: क्रियामूर्तिश्चतुर्वर्गप्रदर्शिका।
नारायणी नरोत्पत्तिः कौमुदी लिङ्गधारिणी॥ १६९॥
कामुकी कलिताभावा परावरविभूतिदा।
पराङ्गजातमहिमा बडवा वामलोचना॥ १७०॥
सुभद्रा देवकी सीता वेदवेदाङ्गपारगा।
मनस्विनी मन्युमाता महामन्युसमुद्भवा॥ १७१॥

आप शिवा नाम से प्रसिद्ध, चित्तनिलया, शिवज्ञानस्वरूपिणी, दैत्यदानवनिर्माथी, काश्यपी, कालकर्णिका हैं। आप ही शास्त्र की योनिरूपा, क्रियामूर्ति, चतुर्वर्गप्रदर्शिका, नारायणी, नरोत्पत्ति, कौमुदी, लिंगधारिणी, कामुकी, कलिताभावा, परावरविभूतिदा, पराङ्गजातमहिमा, बडवा, वामलोचना, सुभद्रा, देवकी, सीता, वेदवेदांगपारगा, मनस्विनी, मन्युमाता, महामन्युसमुद्भवा हैं।

अमन्युरमृतास्वादा पुरुहूता पुरुष्टुता।
अशोच्या भिन्नविषया हिरण्यरजतप्रिया॥ १७२॥
हिरण्यरजनी हेमा हेमाभरणभूषिता।
विभ्राजमाना दुर्ज्ञेया ज्योतिष्टोमफलप्रदा॥ १७३॥
महानिद्रासमुद्भूतिरनिद्रा सत्यदेवता।
दीर्घा ककुद्मिनी हृद्या शांतिदा शांतिवर्द्धिनी॥ १७४॥
लक्ष्म्यादिशक्तिजननी शक्तिचक्रप्रवर्तिका।
त्रिशक्तिजननी जन्या षडूर्मिपरिवर्जिता॥ १७५॥

आप अमन्यु, अमृतास्वादा, पुरुहूता, पुरुष्टुता, अशोच्या, भिन्नविषया, हिरण्यरजतप्रिया, हिरण्यरजनी, हैमा, हेमाभरणभूषिता, विभ्राजमाना, दुर्ज्ञेया, ज्योतिष्टोमफलप्रदा। महानिद्रासमुद्भूति, अनिद्रा, सत्यदेवता, दीर्घा, ककुद्मिनी, हृद्या, शान्तिदा, शान्तिवर्धिनी, लक्ष्म्यादिशक्तियों की जननी, शक्तिचक्र की प्रवर्तिका, त्रिशक्तिजननी, जन्या और षडूर्मिपरिवर्जिता हैं।

सुधौता कर्मकरणी युगान्तदहनात्मिका।
संकर्षणी जगद्धात्री कामयोनि: किरीटिनी॥ १७६॥
ऐन्द्री त्रैलोक्यनमिता वैष्णवी परमेश्वरी।
प्रद्युम्नदयिता दात्री युग्मदृष्टिस्त्रिलोचना॥ १७७॥
मदोत्कटा हंसगति: प्रचण्डा चण्डविक्रमा।
वृषावेशा वियन्माता विन्ध्यपर्वतवासिनी॥ १७८॥
हिमवन्मेरुनिलया कैलासगिरिवासिनी।
चाणूरहन्तृतनया नीतिज्ञा कामरूपिणी॥ १७९॥

सुधौता, कर्मकरणी, युगान्तदहनात्मिका, संकर्षणी, जगद्धात्री, कामयोनि, किरीटिनी, ऐन्द्री, त्रैलोक्यनमिता, वैष्णवी, परमेश्वरी, प्रद्युम्नदयिता, दात्री, युग्मदृष्टि, त्रिलोचना, मदोत्कटा, हंसगति, प्रचण्डा, चण्डविक्रमा, वृषावेषा, वियन्माता, विन्ध्यपर्वतवासिनी, हिमवन्मेरुनिलया, कैलास-गिरिवासिनी, चाणूरहन्तृतनया, नीतिज्ञा, कामरूपिणी (आप ही हैं)।

वेदविद्या व्रतस्नाता ब्रह्मशैलनिवासिनी।
वीरभद्रप्रजा वीरा महाकामसमुद्भवा॥ १८०॥
विद्याधरप्रिया सिद्धा विद्याधरनिराकृति:।
आप्यायनी हरंती च पावनी पोषणी कला॥ १८१॥
मातृका मन्मथोद्भूता वारिजा वाहनप्रिया।
करीषिणी सुधावाणी वीणावादनतत्परा॥ १८२॥
सेविता सेविका सेव्या सिनीवाली गरुत्मती।
अरुन्धती हिरण्याक्षी मृगाङ्का मानदायिनी॥ १८३॥

आप ही वेदविद्या, व्रतस्नाता, ब्रह्मशैलनिवासिनी, वीरभद्रप्रजा, वीरा, महाकामसमुद्भवा, विद्याधरप्रिया, सिद्धा, विद्याधरनिराकृति, आप्यायनी, हरन्ती, पावनी, पोषणी, कला, मातृका, मन्मथोद्भूता, वारिजा, वाहनप्रिया, करीषिणी, सुधावाणी, वीणावादनतत्परा, सेविता, सेविका, सेव्या, सिनीवाली, गरुत्मती, अरुन्धती, हिरण्याक्षी, मृगांका, मानदायिनी हैं।

वसुप्रदा वसुमती वसोर्धारा वसुंधरा।
धाराधरा वरारोहा परावाससहस्रदा॥ १८४॥
श्रीफला श्रीमती श्रीशा श्रीनिवासा शिवप्रिया।
श्रीधरा श्रीकरी कल्या श्रीधरार्द्धशरीरिणी॥ १८५॥
अनंतदृष्टिरक्षुद्रा धात्रीशा धनदप्रिया।
निहंत्री दैत्यसङ्घानां सिंहिका सिंहवाहना॥ १८६॥
सुवर्चला च सुश्रोणी सुकीर्तिश्छिन्नसंशया।
रसज्ञा रसदा रामा लेलिहानामृतस्रवा॥ १८७॥

आप वसुप्रदा वसुमती, वसोर्धारा, वसुन्धरा, धाराधरा, वरारोहा, परावाससहस्रदा, श्रीफला, श्रीमती, श्रीशा, श्रीनिवासा, शिवप्रिया, श्रीधरा, श्रीकरी, कल्या, श्रीधरार्धशरीरिणी, अनन्तदृष्टि, अक्षुद्रा, धात्रीशा, धनदप्रिया, दैत्यसंघनिहन्त्री, सिंहिका, सिंहवाहना, सुवर्चला, सुश्रोणी, सुकीर्ति, छिन्नसंशया, रसज्ञा, रसदा, रामा, लेलिहाना, अमृतस्रवा हैं।

नित्योदिता स्वयंज्योतिरुत्सुका मृतजीवना।
वज्रदण्डा वज्रजिह्वा वैदेही वज्रविग्रहा॥ १८८॥
मङ्गल्या मङ्गला माला निर्मला मलहारिणी।
गान्धर्वी करुका चान्द्री कम्बलाश्वतरप्रिया॥ १८९॥
सौदामिनी जनानन्दा भ्रुकुटीकुटिलानना।
कर्णिकारकरा कक्षा कंसप्राणापहारिणी॥ १९०॥
युगन्धरा युगावर्त्ता त्रिसन्ध्या हर्षवर्द्धिनी।
प्रत्यक्षदेवता दिव्या दिव्यगन्धा दिव: परा॥ १९१॥

नित्योदिता, स्वयंज्योति, उत्सुका, मृतजीवना, वज्रदण्डा, वज्रजिह्वा, वैदेही, वज्रविग्रहा, मङ्गल्या, मङ्गला, माला, मलहारिणी, गान्धर्वी, करुका, चान्द्री, कम्बलाश्वतरप्रिया, सौदामिनी, जनान्दा, भ्रुकुटी, कुटिलानना, कर्णिकारकरा, कक्षा, कंसप्राणापहारिणी, युगन्धरा, युगावर्ता, त्रिसन्ध्या, हर्षवर्धनी, प्रत्यक्षदेवता, दिव्या, दिव्यगन्धा, दिव:परा (भी आप हैं)।

शक्रासनगता शाक्री साध्या चारुशरासना।
इष्टा विशिष्टा शिष्टेष्टा शिष्टाशिष्टप्रपूजिता॥ १९२॥
शतरूपा शतावर्त्ता विनता सुरभि: सुरा।
सुरेन्द्रमाता सुद्युम्ना सुषुम्ना सूर्यसंस्थिता॥ १९३॥
समीक्ष्या सत्प्रतिष्ठा च निवृत्तिर्ज्ञानपारगा।
धर्मशास्त्रार्थकुशला धर्मज्ञा धर्मवाहना॥ १९४॥
धर्माधर्मविनिर्मात्री धार्मिकाणां शिवप्रदा।
धर्मशक्तिर्धर्ममयी विधर्मा विश्वधर्मिणी॥ १९५॥

आप शक्रासनगता, शाक्री, साध्या, चारुशरासना, इष्टा, विशिष्टा, शिष्टेष्टा, शिष्टाशिष्टप्रपूजिता, शतरूपा, शतावर्ता, विनता, सुरभि, सुरा, सुरेन्द्र-माता, सुद्युम्ना, सुषुम्ना, सूर्यसंस्थिता, समीक्ष्या और सत्प्रतिष्ठा, निवृत्ति, ज्ञानपारगा, धर्मशास्त्रार्थकुशला, धर्मज्ञा, धर्मवाहना, धर्माधर्म की निर्मात्री, धार्मिकशिवप्रदा, धर्मशक्ति, धर्ममयी, विधर्मा, विश्वधर्मिणी हैं।

धर्मान्तरा धर्ममयी धर्मपूर्वा धनावहा।
धर्मोपदेष्ट्री धर्मात्मा धर्मगम्या धराधरा॥ १९६॥
कापाली शकला मूर्ति: कलाकलितविग्रहा।
सर्वशक्तिविनिर्मुक्ता सर्वशक्त्याश्रयाश्रया॥ १९७॥
सर्वा सर्वेश्वरी सूक्ष्मा सूक्ष्मज्ञानस्वरूपिणी।
प्रधानपुरुषेशेशा महादेवैकसाक्षिणी॥ १९८॥

आप धर्मान्तरा, धर्ममयी, धर्मपूर्वा, धनावहा, धर्मोपदेष्ट्री, धर्मगम्या, धराधरा, कापाली, शकला, मूर्ति, कलाकलित-विग्रहा, सर्वशक्तिविनिर्मुक्ता, सर्वशक्त्याश्रयाश्रया, सर्वा सर्वेश्वरी, सूक्ष्मा, सूक्ष्मज्ञानस्वरूपिणी, प्रधानपुरुष की स्वामिनी, महादेव की एकमात्र साक्षिरूपा हैं।

सदाशिवा वियन्मूर्त्तिर्वेदमूर्त्तिरमूर्त्तिका।
एवं नाम्ना सहस्रेण स्तुत्वाऽसौ हिमवान्गिरि:॥ १९९॥
भूय: प्रणम्य भीतात्मा प्रोवाचेदं कृताञ्जलि:।
यदेतदैश्वरं रूपं घोरं ते परमेश्वरी॥ २००॥
भीतोऽस्मि साम्प्रतं दृष्ट्वा रूपमन्यत्प्रदर्शय।
एवमुक्ताथ सा देवी तेन शैलेन पार्वती॥ २०१॥
संहृत्य दर्शयामास स्वरूपमपरं पुन:।
नीलोत्पलदलप्रख्यं नीलोत्पलसुगन्धि च॥ २०२॥

आप ही सदाशिवा, वियन्मूर्ति, वेदमूर्ति, और अमूर्तिका हैं— इस प्रकार एक हजार नामों से स्तुति करके वे हिमवान् गिरि पुन: प्रणाम करके भयभीत हो हाथ जोड़कर यह बोले— 'हे परमेश्वरी! तुम्हारा यह ईश्वरीय स्वरूप भयानक

है जिसे देखकर मैं भयभीत हूँ। सम्प्रति दूसरा रूप दिखाओ। उन पर्वतराज के ऐसा कहने पर देवी पार्वती ने उस रूप को समेटकर पुन: दूसरे रूप को दिखाया जो नीलकमल के समान और नीलकमल जैसी सुगन्ध से युक्त था।

द्विनेत्रं द्विभुजं सौम्यं नीलालकविभूषितम्।
रक्तपादाम्बुजतलं सुरक्तकरपल्लवम्॥ २०३॥
श्रीमद्विलाससद्वृत्तं ललाटतिलकोज्ज्वलम्।
भूषितं चारुसर्वाङ्गं भूषणैरतिकोमलम्॥ २०४॥
दधानमुरसा मालां विशालां हेमनिर्मिताम्।
ईषत्स्मितं सुबिम्बोष्ठं नूपुरारावसंयुतम्॥ २०५॥
प्रसन्नवदनं दिव्यमनन्तमहिमास्पदम्।
तदीदृशं समालोक्य स्वरूपं शैलसत्तम:॥ २०६॥
भीतिं सन्त्यज्य हृष्टात्मा बभाषे परमेश्वरीम्।

उसके दो नेत्र तथा दो भुजाएँ थीं। अत्यन्त सौम्य तथा काले केशपाशों से विभूषित था। रक्तकमल के समान लाल उनके पादतल थे और हथेलियाँ भी अत्यन्त रक्तवर्ण की थीं। वह शोभासम्पन्न, विलासमय तथा सद्वृत्त से युक्त था। ललाट पर उज्ज्वल तिलक था। विविध आभूषणों द्वारा उनका वह अति कोमल और सुन्दर शरीराङ्ग विभूषित था। उन्होंने वक्ष:स्थल पर स्वर्णनिर्मित अत्यन्त विशाल माला धारण की हुई थी। उनका स्वरूप मन्दहास्य युक्त, सुन्दर बिम्बफल के समान ओष्ठ एवं नूपुर की ध्वनि से युक्त था। वह रूप प्रसन्नमुख, दिव्य और अनन्त महिमा का आश्रय था। उनका ऐसा स्वरूप देखकर श्रेष्ठ शैलराज भययुक्त होकर प्रसन्नचित्त होते हुए परमेश्वरी से बोले।

हिमवानुवाच

अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तप:॥ २०७॥
यन्मे साक्षात्त्वमव्यक्ता प्रपन्ना दृष्टिगोचरम्।
त्वया सृष्टं जगत् सर्वं प्रधानाद्यं त्वयि स्थितम्॥ २०८॥
त्वय्येव लीयते देवी त्वमेव परमा गति:।
वदन्ति केचित्त्वामेव प्रकृतिं प्रकृते: पराम्॥ २०९॥
अपरे परमार्थज्ञा: शिवेति शिवसंश्रयात्।
त्वयि प्रधानं पुरुषो महान्ब्रह्मा तथेश्वर:॥ २१०॥

हिमवान् बोले— आज मेरा जन्म सफल है और आज मेरा तप भी सफल हुआ जो आप साक्षात् अव्यक्तरूपा मुझे दृष्टिगोचर हुई हैं। आपने ही सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि की है और प्रधान आदि आप में ही हैं। हे देवि! सम्पूर्ण जगत् तुममें ही लीन होता है। तुम ही परमा गति हो। कोई तुम्हें प्रकृति कहते हैं और कोई प्रकृति से परे भी कहते हैं। अन्य परमार्थ के ज्ञाता आपको शिव के संश्रय के कारण शिवा कहते हैं। प्रकृति, पुरुष, महत्तत्त्व, ब्रह्मा और ईश्वर आप में ही स्थित हैं।

अविद्या नियतिर्माया कलाद्या: शतशोऽभवन्।
त्वं हि सा परमा शक्तिरनन्ता परमेष्ठिनी॥ २११॥
सर्वभेदविनिर्मुक्ता सर्वभेदाश्रयाश्रया।
त्वमधिष्ठाय योगेशि महादेवो महेश्वर:॥ २१२॥
प्रधानाद्यं जगत्सर्वं करोति विकरोति च।
त्वयैव सङ्गतो देव: स्वात्मानन्दं समश्नुते॥ २१३॥

अविद्या, नियति, माया, कला आदि सैकड़ों पदार्थ आप से उत्पन्न हुए हैं। आप ही अनन्त परमा शक्ति तथा परमेष्ठिनी हो। आप ही सब भेदों से युक्त और सब भेदों के आश्रयों का आश्रय हो। हे योगेश्वरी! तुम्हें अधिष्ठित करके महेश्वर महादेव प्रधान आदि सम्पूर्ण जगत् को रचते हैं तथा संहार करते हैं। तुमसे संयोग पाकर महादेव अपने आत्मानन्द का अनुभव करते हैं।

त्वमेव परमानन्दस्त्वमेवानन्ददायिनी।
त्वमक्षरं परं व्योम महज्ज्योतिर्निरञ्जनम्॥ २१४॥
शिवं सर्वगतं सूक्ष्मं परं ब्रह्म सनातनम्।
त्वं शक्र: सर्वदेवानां ब्रह्मा ब्रह्मविदामसि॥ २१५॥
वायुर्बलवतां देवि योगिनां त्वं कुमारक:।
ऋषीणाञ्च वसिष्ठस्त्वं व्यासो वेदविदामसि॥ २१६॥
सांख्यानां कपिलो देवो रुद्राणाञ्चापि शंकर:।
आदित्यानामुपेन्द्रस्त्वं वसूनाञ्चैव पावक:॥ २१७॥

आप ही परमानन्दस्वरूपा, आप ही आनन्ददायिनी हो। आप अक्षर हो, महाकाश हो, महाज्योति:स्वरूप एवं निरञ्जन हो। आप शिवस्वरूप, सभी पदार्थों में स्थित, सूक्ष्म, सनातन परब्रह्मरूपा हो। आप सभी देवताओं के बीच इन्द्र समान हैं और ब्रह्मवेत्ताओं में ब्रह्मा हैं। हे देवि! आप बलवानों में वायु, योगियों में कुमार (सनत्कुमार), ऋषियों में वसिष्ठ और वेदवेत्ताओं में व्यास हो। सांख्यवेत्ताओं में देवस्वरूप कपिल तथा रुद्रों में शंकर हो। आदित्यों में उपेन्द्र तथा वसुओं में पावक आप ही हो।

वेदानां सामवेदस्त्वं गायत्रीच्छन्दसामसि।
अध्यात्मविद्या विद्यानां गतीनां परमा गति:॥ २१८॥

माया त्वं सर्वशक्तीनां काल: कलयतामसि।
ओंकार: सर्वगुह्यानां वर्णानाञ्च द्विजोत्तम:॥ २१९॥
आश्रमाणां गृहस्थस्त्वमीश्वराणां महेश्वर:।
पुंसां त्वमेक: पुरुष: सर्वभूतहृदि स्थित:॥ २२०॥
सर्वोपनिषदां देवि गुह्योपनिषदुच्यसे।
ईशानश्चापि कल्पानां युगानां कृतमेव च॥ २२१॥

वेदों में सामवेद, छन्दों में गायत्री, विद्याओं में अध्यात्मविद्या और गतियों में आप परम गतिरूपा हो। आप समस्त शक्तियों की माया और विनाशकों की कालरूपा हो। सभी गुह्य पदार्थों में ओंकार और वर्णों में (उत्तम) ब्राह्मण हो। तुम आश्रमों में गार्हस्थ्य और ईश्वरों में महेश्वर हो। तुम पुरुषों में सभी प्राणियों के हृदय-स्थित अद्वितीय पुरुष हो। देवि! आप सभी उपनिषदों में गुह्य उपनिषद् कही जाती हो। आप कल्पों में ईशान कल्प तथा युगों में सत्ययुग हो।

आदित्य: सर्वमार्गाणां वाचां देवी सरस्वती।
त्वं लक्ष्मीश्चारुरूपाणां विष्णुर्मायाविनामसि॥ २२२॥
अरुन्धती सतीनां त्वं सुपर्ण: पततामसि।
सूक्तानां पौरुषं सूक्तं साम ज्येष्ठं च सामसु॥ २२३॥
सावित्री चापि जाप्यानां यजुषां शतरुद्रियम्।
पर्वतानां महामेरुरनन्तो भोगिनामपि॥ २२४॥
सर्वेषां त्वं परं ब्रह्म त्वन्मयं सर्वमेव हि॥ २२५॥

आप सभी मार्गों में आदित्यस्वरूपा और वाणियों में देवी सरस्वती हो। आप सुन्दर रूपों में लक्ष्मी तथा मायावियों में विष्णु हो। आप सतियों में अरुन्धती और पक्षियों में गरुड़ हो। सूक्तों में पुरुषसूक्त तथा सामों में ज्येष्ठ साम हो। जाप्य मन्त्रादि में आप सावित्री हो और यजुषों में शतरुद्रीय हो। पर्वतों में महामेरु तथा सर्पों के मध्य अनन्त नाग हो। सबमें आप ही परब्रह्मरूपा हैं और यह सभी कुछ आप से अभिन्न है।

रूपं तवाशेषविकारहीनमगोचरं निर्मलमेकरूपम्।
अनादिमध्यान्तमनन्तमाद्यं नमामि सत्यं तमस: परस्तात्॥
यदेव पश्यन्ति जगत्प्रसूतिं वेदान्तविज्ञानविनिश्चितार्था:।
आनन्दमात्रं प्रणवाभिधानं तदेव रूपं शरणं प्रपद्ये॥ २२७॥

अशेषभूतान्तरसन्निविष्टं
प्रधानपुंयोगवियोगहेतुम्।
तेजोमयं जन्मविनाशहीनं
प्राणाभिधानं प्रणतोऽस्मि रूपम्॥ २२८॥

हे देवि? आपका रूप समस्त विकारों से रहित, अगोचर, निर्मल, एक रूपवाला, आदि, मध्य और अन्त से शून्य, आद्य, तम से भी परे सत्य स्वरूप वाला है उसको मैं प्रणाम करता हूँ। वेदान्त के विशेष ज्ञान से अर्थ का निश्चय करने वाले लोग जिसको इस जगत् की जननीरूप में देखा करते हैं उस प्रणव नाम वाले आनन्दमात्र की मैं शरण को मैं प्राप्त होता हूँ। सभी प्राणियों के भीतर सन्निविष्ट, प्रकृति-पुरुष के संयोग-वियोग के हेतुरूप, तेजोमय, जन्म-मरण से रहित प्राण नामक रूप को मैं नमन करता हूँ।

आद्यन्तहीनं जगदात्मरूपं
विभिन्नसंस्थं प्रकृते: परस्तात्।
कूटस्थमव्यक्तवपुस्तथैव
नमामि रूपं पुरुषाभिधानम्॥ २२९॥
सर्वाश्रयं सर्वजगद्विधानं
सर्वत्रगं जन्मविनाशहीनम्।
सूक्ष्मं विचित्रं त्रिगुणं प्रधानं
नतोऽस्मि ते रूपमरूपभेदम्॥ २३०॥
आद्यं महान्तं पुरुषाभिधानं
प्रकृत्यवस्थं त्रिगुणात्मबीजम्।
ऐश्वर्यविज्ञानविरोधधर्मै:
समन्वितं देवि नतोऽस्मि रूपम्॥ २३१॥

आदि और अन्त से हीन, जगत् के आत्मास्वरूप, विभिन्न रूपों में संस्थित, प्रकृति से परे, कूटस्थ, अव्यक्तशरीर तथा पुरुष नाम वाले आपके रूप को नमस्कार करता हूँ। सबके आश्रय, सम्पूर्ण जगत् के विधायक, सर्वत्रगामी, जन्म-मरण से रहित, सूक्ष्म, विचित्र, त्रिगुण, प्रधान, तथा रूपभेदरहित आपके रूप को नमन करता हूँ। देवि! आदिभूत, महत्, पुरुषसंज्ञक, प्रकृति में अवस्थित, सत्त्व, रज एवं तमोगुण के बीज, ऐश्वर्य, विज्ञान एवं विरोधी धर्मों से समन्वित आप के रूप को नमस्कार है।

द्विसप्तलोकात्मककम्बुसंस्थं
विचित्रभेदं पुरुषैकनाथम्।
अनेकभेदैरधिवासितं ते
नतोऽस्मि रूपं जगदण्डसंज्ञम्॥ २३२॥
अशेषवेदात्मकमेकमाद्यं
त्वत्तेजसा पूरितलोकभेदम्।
त्रिकालहेतुं परमेष्ठिसंज्ञं
नमामि रूपं रविमंडलस्थम्॥ २३३॥

सहस्रमूर्द्धानमनन्तशक्तिं
सहस्रबाहुं पुरुषं पुराणम्।
शयानमन्तःसलिले तथैव
नारायणाख्यं प्रणतोऽस्मि रूपम्॥ २३४॥
दंष्ट्राकरालं त्रिदशाभिवन्द्यं
युगान्तकालानलकर्तृरूपम्।
अशेषभूताण्डविनाशहेतुं
नमामि रूपं तव कालसंज्ञम्॥ २३५॥

विचित्र भेदों वाले चौदह भुवन जो जल में संस्थित हैं और जिनका एक ही पुरुष स्वामी है तथा अनेक भेदों से अधिवासित जगत् जिसकी अण्ड संज्ञा है ऐसे आपके रूप को मैं नमस्कार करता हूँ। समस्त वेदों के स्वरूप वाले अपने तेज से लोकभेद को पूरित करने वाले, एकाकी, आद्य, तीनों कालों का हेतु और परमेष्ठी संज्ञा वाले, रविमण्डल में स्थित आपके रूप के लिये मैं नत होता हूँ। सहस्रमूर्द्धा वाले, अनन्त शक्ति से समन्वित, सहस्रों भुजाओं से युक्त पुराण-पुरुष, जल के भीतर शयन करने वाले नारायण नाम से प्रसिद्ध रूप को मैं नमस्कार करता हूँ। दाढ़ों से महान कराल, देवों के द्वारा अभिवन्दनीय-युगान्त काल में अनल रूप को मैं नमस्कार करता हूँ। जो अशेष भूतों के अण्ड का विनाश कारक हेतु है ऐसे आपके काल संज्ञक रूप को मैं प्रणाम करता हूँ।

फणासहस्रेण विराजमानं
भोगीन्द्रमुख्यैरपि पूज्यमानम्।
जनार्दनारूढतनुं प्रसुप्तं
नतोऽस्मि रूपं तव शेषसंज्ञम्॥ २३६॥
अव्याहतैश्वर्यमयुग्मनेत्रं
ब्रह्मामृतानन्दरसज्ञमेकम्।
युगान्तशेषं दिवि नृत्यमानं
नतोऽस्मि रूपं तव रुद्रसंज्ञम्॥ २३७॥
प्रहीणशोकं प्रविहीनरूपं
सुरासुरैरर्चितपादपद्मम्।
सुकोमलं देवि विभासि शुभ्रं
नमामि ते रूपमिदं भवानि॥ २३८॥
ओं नमस्तेऽस्तु महादेवि नमस्ते परमेश्वरि।
नमो भगवतीशानि शिवायै ते नमो नमः॥ २३९॥

एक सहस्र फणों से विराजमान तथा प्रमुख भोगीन्द्रों द्वारा पूज्यमान और जनार्दन जिसके शरीर पर आरूढ़ हैं, ऐसे निद्रागत शेष नाम वाले आपके रूप आगे मैं नत होता हूँ। अप्रतिहत ऐश्वर्य से युक्त, अयुग्म नेत्रों वाले ब्रह्मामृत के आनन्दरस के ज्ञाता, युगान्त में भी शेष रहने वाले तथा द्युलोक में नृत्य करने वाले रुद्र संज्ञक आपके रूप को मैं प्रणाम करता हूँ। हे देवि! प्रहीण-शोक वाले, रूपहीन, सुरों और असुरों के द्वारा समर्चित चरण कमल वाले और सुकोमल शुभ्र दीप्तियुक्त आपके इस रूप को हे भवानी! मैं प्रणाम करता हूँ। हे महादेवि! आपको नमस्कार है। हे परमेश्वरी! आपकी सेवा में प्रणाम है। हे भगवति! हे ईशानि! शिवा के लिये बारम्बार नमस्कार है।

त्वन्मयोऽहं त्वदाधारस्त्वमेव च गतिर्मम।
त्वामेव शरणं यास्ये प्रसीद परमेश्वरि॥ २४०॥
मया नास्ति समो लोके देवो वा दानवोऽपि वा।
जगन्मातैव मत्पुत्री सम्भूता तपसा यतः॥ २४१॥
एषा तवाम्बिके देवि किलाभूत्पितृकन्यका।
मेनाशेषजगन्मातुरहो मे पुण्यगौरवम्॥ २४२॥

मैं आपके ही स्वरूप से पूर्ण हूँ और आप ही मेरा आधार हो तथा आप ही मेरी गति हो। हे परमेश्वरि! प्रसन्न हों। मैं आपकी ही शरणागति में जाऊँगा। इस लोक में मेरे समान देव या दानव कोई भी नहीं है कारण यह है कि मेरी तपश्चर्या का ही यह प्रभाव है कि आप जगत् की माता हो और मेरी पुत्री होकर उत्पन्न हुई हो। हे अम्बिके! हे देवि! यह तुम्हारी पितृ-कन्यका मेना अशेष जगत् की माता हुई है, यह मेरे पुण्य का गौरव है।

पाहि माममरेशानि मेनया सह सर्वदा।
नमामि तव पादाब्जं व्रजामि शरणं शिवम्॥ २४३॥

हे देवस्वामिनि! तुम मेना सहित सर्वदा मेरी रक्षा करो। मैं आपके चरणकमल को नमन करता हूँ और शिव की शरण में जाता हूँ।

अहो मे सुमहद्भाग्यं महादेवीसमागमात्।
आज्ञापय महादेवि किं करिष्यामि शंकरि॥ २४४॥

मेरा महान् अहोभाग्य है कि महादेवी का समागम हुआ है। हे महादेवि! हे पार्वती! आज्ञा करो, मैं क्या करूँ?

एतावदुक्त्वा वचनं तदा हिमगिरीश्वरः।
संप्रेक्षमाणो गिरिजां प्राञ्जलिः पार्श्वगोऽभवत्॥ २४५॥

इतना वचन कहकर उस समय गिरिराज हिमालय हाथ जोड़कर पार्वती की ओर देखते हुए उनके समीप पहुँच गये।

अथ सा तस्य वचनं निशम्य जगतोऽरणि:।
सस्मितं प्राह पितरं स्मृत्वा पशुपतिं पतिम्॥ २४६॥

अनन्तर उनका वचन सुनकर संसार की दावाग्नि के समान पार्वती ने पशुपति अपने पति का स्मरण करके मन्द मुस्कान के साथ पिता से कहा।

शृणुष्व चैतत्प्रथमं गुह्यमीश्वरगोचरम्।
उपदेशं गिरिश्रेष्ठ! सेवितं ब्रह्मवादिभि:॥ २४७॥
यन्मे साक्षात् परं रूपमैश्वरं दृष्टमुत्तमम्।
सर्वशक्तिसमायुक्तमनन्तं प्रेरकं परम्॥ २४८॥
शान्त: समाहितमना मानाहंकारवर्जित:।
तन्निष्ठस्तत्परो भूत्वा तदेव शरणं व्रज॥ २४९॥

श्रीदेवी बोली- हे गिरिश्रेष्ठ! यह सर्वप्रथम गोपनीय ईश्वरगोचर तथा ब्रह्मवादियों से सेवित मेरा उपदेश सुनो, जो मेरा सर्वशक्तिसम्पन्न, अनन्त, परम अद्भुत एवं श्रेष्ठ प्रेरक ऐश्वर्यमय रूप है, उसमें निष्ठा रखते हुए शान्त, और समाहितचित्त होकर मान एवं अहंकार से वर्जित तथा उसी में निष्ठावान् एवं तत्पर होकर आप उसी की शरण में जाओ।

भक्त्या त्वनन्यया तात मद्भावं परमाश्रित:।
सर्वयज्ञतपोदानैस्तदेवार्च्चय सर्वदा॥ २५०॥

हे तात! अनन्य भक्ति के द्वारा मेरे परम भाव का आश्रय ग्रहण करके सभी यज्ञों, तपों एवं दानों द्वारा सदा उसी का अर्चन करें।

तदेव मनसा पश्य तद्ध्यायस्व यजस्व तत्।
ममोपदेशात्संसारं नाशयामि तवानघ॥ २५१॥
अहं त्वां परया भक्त्या ऐश्वरं योगमास्थितम्।
संसारसागरादस्मादुद्धराम्यचिरेण तु॥ २५२॥

मन से उसी को देखें, उसी का ध्यान करें और उसी का यजन करें। हे निष्पाप! मैं अपने उपदेश से आपकी संसारबुद्धि का नाश कर दूँगी। परम भक्ति के कारण ऐश्वर योग में संस्थित आपका मैं इस संसार-सागर से शीघ्र उद्धार कर दूँगी।

ध्यानेन कर्मयोगेन भक्त्या ज्ञानेन चैव हि।
प्राप्याहं ते गिरिश्रेष्ठ नान्यथा कर्मकोटिभि:॥ २५३॥

हे गिरिश्रेष्ठ! ध्यान, कर्मयोग, भक्ति तथा ज्ञान के द्वारा मुझे प्राप्त करना संभव है, अन्य प्रकार से करोड़ो कर्म करने से नहीं।

श्रुतिस्मृत्युदितं सम्यक्कर्मवर्णाश्रमात्मकम्।
अध्यात्मज्ञानसहितं मुक्तये सततं कुरु॥ २५४॥

श्रुतियों एवं स्मृतियों वर्णाश्रम के अनुसार जो अच्छे कर्म प्रतिपादित हैं, वे ही मुक्ति के लिए हैं। उन्हें अध्यात्मज्ञान सहित निरन्तर करते रहें।

धर्मात्संजायते भक्तिर्भक्त्या संप्राप्यते परम्।
श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितो धर्मो यज्ञादिको मत:॥ २५५॥

उस धर्माचरण से भक्ति उत्पन्न होती है, भक्ति से परमतत्त्व मोक्ष प्राप्त होता है। श्रुति-स्मृति द्वारा प्रतिपादित वह धर्म यज्ञ आदि रूप में माना गया है।

नान्यतो जायते धर्मो वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ।
तस्मान्मुमुक्षुर्धर्मार्थी मद्रूपं वेदमाश्रयेत्॥ २५६॥

अन्य किसी मार्ग से धर्म उत्पन्न नहीं होता। वेद से धर्म उत्पन्न हुआ है। इसलिए मुमुक्ष और धर्मार्थी को मेरे वेद स्वरूप का आश्रय लेना चाहिए।

ममैवैषा परा शक्तिर्वेदसंज्ञा पुरातनी।
ऋग्यजु:सामरूपेण सर्गादौ संप्रवर्तते॥ २५७॥

(क्योंकि) वेद नाम वाली मेरी ही पुरातनी श्रेष्ठ शक्ति है। सृष्टि के प्रारंभ में यही ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद रूप से प्रवर्तित होती है।

तेषामेव च गुप्त्यर्थं वेदानां भगवानज:।
ब्राह्मणादीन्ससर्जाथ स्वे स्वे कर्मण्ययोजयत्॥ २५८॥

उन्हीं वेदों के रक्षार्थ भगवान् अज ने ब्राह्मण आदि की सृष्टि की और उन्हें अपने-अपने कर्म में नियोजित किया।

येन कुर्वन्ति मद्धर्मं तदर्थं ब्रह्मनिर्मिता:।
तेषामधस्तान्नरकांस्तामिस्रादीनकल्पयत्॥ २५९॥

जो मेरे धर्म का आचरण नहीं करते हैं, उनके लिए ब्रह्मा द्वारा निर्मित अत्यन्त निम्नकोटि के तामिस्र आदि नरकों को बनाया गया है।

न च वेदादृते किञ्चिच्छास्त्रं धर्माभिधायकम्।
योऽन्यत्र रमते सोऽसौ न सम्भाष्यो द्विजातिभि:॥ २६०॥

वेद से अतिरिक्त इस लोक में अन्य कोई भी शास्त्र धर्म का प्रतिपादक नहीं है। जो व्यक्ति इसे छोड़कर अन्य शास्त्रों में रमता रहता है, उसके साथ द्विजातियों को बात नहीं करनी चाहिए।

यानि शास्त्राणि दृश्यन्ते लोकेऽस्मिन्विविधानि तु।
श्रुतिस्मृतिविरुद्धानि निष्ठा तेषां हि तामसी॥ २६१॥

जो विविध शास्त्र इस लोक में देखे जाते हैं, वे श्रुति-स्मृति से विरुद्ध हैं, अतः उनकी निष्ठा तामसी होती है।

कापालं भैरवञ्चैव यामलं वाममार्हतम्।
एवंविधानि चान्यानि मोहनार्थानि तानि तु॥ २६२॥

कापाल, भैरव, यामल, वाम, आर्हत-बौद्ध तथा जैन आदि जो अन्य शास्त्र हैं, वे सब मोह उत्पन्न करने वाले हैं।

ये कुशास्त्राभियोगेन मोहयन्तीह मानवान्।
मया सृष्टानि शास्त्राणि मोहायैषां भवान्तरे॥ २६३॥

यहाँ जो लोग निन्दित शास्त्रों के अभियोग-सम्बन्ध से इस लोक में मानवों को मोहित करते हैं, उनको दूसरे जन्म में मोहित करने के लिए मेरे द्वारा ये शास्त्र रचे गये हैं।

वेदार्थवित्तमैः कार्यं यत्स्मृतं कर्म वैदिकम्।
तत्प्रयत्नेन कुर्वन्ति मत्प्रियास्ते हि ये नराः॥ २६४॥

वेदार्थों के ज्ञाताओं ने जिस वैदिक कर्म को करने योग्य बताया है, उसे जो प्रयत्नपूर्वक करते हैं, वे मनुष्य मेरे अतिप्रिय होते हैं।

वर्णानामनुकम्पार्थं मन्नियोगाद्विराट् स्वयम्।
स्वायम्भुवो मनुर्धर्मान्मुनीनां पूर्वमुक्तवान्॥ २६५॥

सभी वर्णों पर अनुकम्पा करने के लिए मेरे आदेश से स्वयं विराट् पुरुष ने स्वायंभुव मनु के रूप में पहले मुनियों के धर्मों को कहा था।

श्रुत्वा चान्येऽपि मुनयस्तन्मुखाद्धर्ममुत्तमम्।
चक्रुर्धर्मप्रतिष्ठार्थं धर्मशास्त्राणि चैव हि॥ २६६॥

अन्य मुनियों ने भी उनके मुख से इस उत्तम धर्म को सुनकर धर्म की प्रतिष्ठा के लिए धर्मशास्त्रों की रचना की थी।

तेषु चान्तर्हितेष्वेवं युगान्तेषु महर्षयः॥
ब्रह्मणो वचनात्तानि करिष्यन्ति युगे युगे॥ २६७॥

युगान्त काल में उन शास्त्रों के अन्तर्लीन हो जाने पर ब्रह्मा के वचन से वे महर्षिगण युग-युग में उन शास्त्रों की रचना करते रहते हैं।

अष्टादशपुराणानि व्यासाद्यैः कथितानि तु।
नियोगाद्ब्रह्मणो राजंस्तेषु धर्मः प्रतिष्ठितः॥ २६८॥

हे राजन्! व्यास आदि द्वारा अठारह पुराण कहे गये हैं। ब्रह्मा की आज्ञा से उनमें धर्म प्रतिष्ठित है।

अन्यान्युपपुराणानि तच्छिष्यैः कथितानि तु।
युगे युगेऽत्र सर्वेषां कर्ता वै धर्मशास्त्रवित्॥ २६९॥

उनके शिष्यों द्वारा अन्यान्य उपपुराणों की रचना की गई। यहाँ प्रत्येक युग में उन सब के कर्ता धर्मशास्त्र के ज्ञाता ही हुए।

शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्द एव च।
ज्योतिःशास्त्रं न्यायविद्या सर्वेषामुपबृंहणम्॥ २७०॥
एवं चतुर्दशैतानि तथा हि द्विजसत्तमाः।
चतुर्वेदैः सहोक्तानि धर्मो नान्यत्र विद्यते॥ २७१॥

शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, न्यायविद्या- ये सकल शास्त्रों के पोषक तथा वृद्धि करने वाले हैं। इस प्रकार हे द्विजश्रेष्ठो! ये चौदह शास्त्र उसी प्रकार चारों वेदों के साथ ही कहे गये हैं। इन शास्त्रों में धर्म है, अन्यत्र कहीं भी नहीं है।

एवं पैतामहं धर्मं मनुव्यासादयः परम्।
स्थापयन्ति ममादेशाद्यावदाभूतसंप्लवम्॥ २७२॥

इस प्रकार पितामह द्वारा प्रतिपादित इस उत्तम धर्म को मनु, व्यास आदि मनीषी मेरे आदेश से प्रलयपर्यन्त स्थापित करते हैं अथवा स्थिर रखते हैं।

ब्रह्मणा सह ते सर्वे संप्राप्ते प्रतिसञ्चरे।
परस्यान्ते कृतात्मानः प्रविशन्ति परम्पदम्॥ २७३॥

वे सब मुनिगण प्रतिसंचर नामक महाप्रलय के उपस्थित होने पर कृतकृत्य होते हुए ब्रह्मा के साथ ही पर के भी अन्तरूप परम पद में प्रवेश कर लेते हैं।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन धर्मार्थं वेदमाश्रयेत्।
धर्मेण सहितं ज्ञानं परं ब्रह्म प्रकाशयेत्॥ २७४॥

इसलिए सब प्रकार से प्रयत्नपूर्वक धर्म के लिए वेद का आश्रय लेना चाहिए। क्योंकि धर्म सहित ज्ञान ही परब्रह्म को प्रकाशित करता है।

ये तु संगान् परित्यज्य मामेव शरणं गताः।
उपासते सदा भक्त्या योगमैश्वरमास्थिताः॥ २७५॥
सर्वभूतदयावन्तः शांता दांता विमत्सराः।
अमानिनो बुद्धिमन्तस्तापसाः शंसितव्रताः॥ २७६॥
मच्चित्ता मद्गतप्राणा मज्ज्ञानकथने रताः।
संन्यासिनो गृहस्थाश्च वनस्था ब्रह्मचारिणः॥ २७७॥
तेषां नित्याभियुक्तानां मायातत्त्वं समुत्थितम्।
नाशयामि तमः कृत्स्नं ज्ञानदीपेन नो चिरात्॥ २७८॥

जो व्यक्ति आसक्ति को त्यागकर मेरी शरण में आ जाते हैं और ऐश्वर योग में स्थित होकर सदा भक्तिपूर्वक मेरी उपासना करते हैं तथा सभी प्राणियों पर दया रखने वाले शान्त, दान्त, ईर्ष्यारहित, अमानी, बुद्धिमान्, तपस्वी, व्रती, मुझमें चित्त और प्राणों को लगाये हुए, मेरे ज्ञान के कथन में निरत, संन्यासी, गृहस्थी, वानप्रस्थी और ब्रह्मचारी हैं, उन सदा धर्मनिरत व्यक्तियों के महान् अन्धकारमय समुत्पन्न मायातत्त्व को मैं ही ज्ञानदीप द्वारा नष्ट कर देती हूँ, इसमें थोड़ा भी विलम्ब नहीं होता।

ते सुनिर्धूततमसो ज्ञानेनैकेन मन्मया:।
सदानन्दास्तु संसारे न जायन्ते पुन: पुन:॥ २७९॥

जब उनका अज्ञानरूप अन्धकार नष्ट हो जाता है, तब वे केवल ज्ञान के द्वारा मन्मय हो जाते हैं। वे सदानन्दरूप होकर संसार में बार-बार उत्पन्न नहीं होते।

तस्मात्सर्वप्रकारेण मद्भक्तो मत्परायण:।
मामेवार्च्चय सर्वत्र मनसा शरणं गत:॥ २८०॥

इसलिए सब प्रकार से मेरे भक्त बनकर होकर मत्परायण हो जाओ। आप मन से भी मेरी शरण में आकर सर्वत्र मुझे ही पूजो।

अशक्तो यदि मे ध्यातुमैश्वरं रूपमव्ययम्।
ततो मे परमं रूपं कालाद्यं शरणं व्रज॥ २८१॥

यदि मेरे इस अविनाशी ऐश्वररूप का ध्यान करने में असमर्थ हों तो मेरे कालात्मक परम रूप की शरण में आ जाओ।

यद्यत्स्वरूपं मे तात मनसो गोचरं तव।
तन्निष्ठस्तत्परो भूत्वा तदर्चनपरो भव॥ २८२॥

इसलिए हे तात! मेरा जो स्वरूप आपके मन से गोचर है, उसमें निष्ठा और परायणता रखकर उसकी सेवा में तत्पर हो जाओ।

यत्तु मे निष्कलं रूपं चिन्मात्रं केवलं शिवम्।
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तमनन्तममृतं परम्॥ २८३॥
ज्ञानेनैकेन तल्लभ्यं क्लेशेन परमं पदम्।
ज्ञानमेव प्रपश्यन्तो मामेव प्रविशन्ति ते॥ २८४॥
तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणा:।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषा:॥ २८५॥

मेरा जो रूप निष्कल, चिन्मात्र, केवल, शिव, समस्त उपाधियों से रहित, अनन्त, श्रेष्ठ और अमृतस्वरूप है। उस परम पद को एकमात्र ज्ञान के द्वारा कष्टपूर्वक प्राप्त किया जा सकता है। जो केवल ज्ञान को देखते हैं, वे मुझमें ही प्रवेश कर जाते हैं। क्योंकि उसी रूप में वे बुद्धियुक्त, तदात्मा, तन्निष्ठ एवं तत्परायण हैं, वे ज्ञान द्वारा पापों को धोकर पुन: संसार में आते नहीं हैं।

मामनाश्रित्य परमं निर्वाणममलं पदम्।
प्राप्यते न हि राजेन्द्र ततो मां शरणं व्रज॥ २८६॥

हे राजेन्द्र! मेरा आश्रय लिये बिना निर्मल निर्वाणरूप परम पद को प्राप्त नहीं किया जा सकता, इसलिए मेरी शरण में आओ।

एकत्वेन पृथक्त्वेन तथा चोभयथापि वा।
मामुपास्य महीपाल ततो यास्यसि तत्पदम्॥ २८७॥

हे महीपाल! मेरे एक स्वरूप से या भिन्न-भिन्न रूप से अथवा दोनों प्रकार से मेरी उपासना करके उस परमपद को प्राप्त कर सकोगे।

मामनाश्रित्य तत्तत्त्वं स्वभावविमलं शिवम्।
ज्ञायते न हि राजेन्द्र ततो मां शरणं व्रज॥ २८८॥

राजेन्द्र! मेरा आश्रय लिए बिना स्वभावत: निर्मल उस शिवतत्त्व को नहीं जान सकते, अत: मेरी शरण को प्राप्त होओ।

तस्मात्त्वमक्षरं रूपं नित्यं वा रूपमैश्वरम्।
आराधय प्रयत्नेन ततोऽन्धत्वं प्रहास्यसि॥ २८९॥

इसलिए आप प्रयत्नपूर्वक अविनाशी नित्य ऐश्वररूप की आराधना करें। उससे अज्ञानमय अन्धकार से मुक्त हो जाओगे।

कर्मणा मनसा वाचा शिवं सर्वत्र सर्वदा।
समाराधय भावेन ततो यास्यसि तत्पदम्॥ २९०॥

कर्म, मन और वाणी द्वारा सर्वत्र सब काल में प्रेमपूर्वक शिव की आराधना करो। उससे परमपद की प्राप्ति होगी।

न वै यास्यन्ति तं देवं मोहिता मम मायया।
अनाद्यनन्तं परमं महेश्वरमजं शिवम्॥ २९१॥
सर्वभूतात्मभूतस्थं सर्वाधारं निरञ्जनम्।
नित्यानन्दं निराभासं निर्गुणं तमस: परम्॥ २९२॥
अद्वैतमचलं ब्रह्म निष्कलं निष्प्रपञ्चकम्।
स्वसंवेद्यमवेद्यं तत्परे व्योम्नि व्यवस्थितम्॥ २९३॥

मेरी माया से मोहित होकर ही उस अनादि, अनन्त, परम परमेश्वर तथा अजन्मा महादेव को नहीं पाते हैं। वे शिव

सभी प्राणियों में आत्मरूप से अवस्थित, सर्वाधार, निरञ्जन, नित्यानन्द, निराभास, निर्गुण, तमोगुणातीत, अद्वैत, अचल, निष्प्रपञ्च, स्वसंवेद्य, अवेद्य और परमाकाश में अवस्थित हैं।

सूक्ष्मेण तमसा नित्यं वेष्टिता मम मायया।
संसारसागरे घोरे जायन्ते च पुनः पुनः॥ २९४॥

मनुष्य मेरी नित्य सूक्ष्म अज्ञानरूपी माया से वेष्टित होकर संसाररूपी घोर समुद्र में बार-बार जन्म लेते हैं।

भक्त्या त्वनन्यया राजन् सम्यग्ज्ञानेन चैव हि।
अन्वेष्टव्यं हि तद्ब्रह्म जन्मबन्धनिवृत्तये॥ २९५॥

राजन्! अनन्य भक्ति तथा सम्यक् ज्ञान के द्वारा ही जन्म-बन्धन से निवृत्ति हेतु उस ब्रह्मतत्त्व को अवश्य खोजना चाहिए।

अहंकारञ्च मात्सर्यं कामं क्रोधपरिग्रहम्।
अधर्माभिनिवेशञ्च त्यक्त्वा वैराग्यमास्थितः॥ २९६॥

(इसके लिए) अहंकार, द्वेषभाव, काम, क्रोध, परिग्रह तथा अधर्म में प्रवृत्ति- इन सब को त्यागकर वैराग्य का आश्रय ग्रहण करे।

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
अवेक्ष्य चात्मनात्मानं ब्रह्मभूयाय कल्पते॥ २९७॥

सभी प्राणियों में अपनी आत्मा को और अपनी आत्मा में सब प्राणियों को देखे। इस प्रकार आत्मा के द्वारा आत्मा का दर्शन करके ब्रह्मस्वरूप हो जाता है।

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा सर्वभूताभयप्रदः।
ऐश्वर्यं परमां भक्तिं विन्देतानन्यभाविनीम्॥ २९८॥

वह ब्रह्ममय होकर प्रसन्नात्मा तथा सभी प्राणियों का अभय दाता होता है। वह मनुष्य ईश्वर-सम्बन्धी अनन्यभावरूपा श्रेष्ठ भक्ति को प्राप्त करता है।

वीक्ष्यते तत्परं तत्त्वमैश्वरं ब्रह्म निष्कलम्।
सर्वसंसारनिर्मुक्तो ब्रह्मण्येवावतिष्ठते॥ २९९॥

उसे ईश्वर विषयक निष्कल परमतत्त्व ब्रह्म का दर्शन होता है। इस प्रकार समस्त संसार से मुक्त होकर वह ब्रह्म में अवस्थित हो जाता है।

ब्रह्मणोऽयं प्रतिष्ठानं परस्य परमः शिवः।
अनन्यश्चाव्ययश्चैकश्चात्माधारो महेश्वरः॥ ३००॥

परब्रह्म के प्रतिष्ठानरूप परम शिव स्वयं हैं। वे महेश्वर अनन्य, अविनाशी, अद्वितीय और समस्त भूतों के आधार हैं।

ज्ञानेन कर्मयोगेन भक्त्या योगेन वा नृप।
सर्वसंसारमुक्त्यर्थमीश्वरं शरणं व्रज॥ ३०१॥

हे राजन्! सारे संसार से मुक्ति पाने के लिए ज्ञान, कर्मयोग तथा भक्तियोग के द्वारा ईश्वर की शरण में जाओ।

एष गुह्योपदेशस्ते मया दत्तो गिरीश्वर।
अन्वीक्ष्य चैतदखिलं यथेष्टं कर्तुमर्हसि॥ ३०२॥

हे गिरीश्वर! यह गोपनीय उपदेश मैंने आपको दिया है। यह सब अच्छी तरह विचारकर जो अच्छा लगे, वह कर सकते हो।

अहं वै याचिता देवैः सञ्जाता परमेश्वरात्।
विनिन्द्य दक्षं पितरं महेश्वरविनिन्दकम्॥ ३०३॥
धर्मसंस्थापनार्थाय तवाराधनकारणात्।
मेना देहसमुत्पन्ना त्वामेव पितरं श्रिता॥ ३०४॥
स त्वं नियोगाद्देवस्य ब्रह्मणः परमात्मनः॥
प्रदास्यसे मां रुद्राय स्वयंवरसमागमे॥ ३०५॥

देवों के द्वारा याचना करने पर मैं परमेश्वर से (शक्तिरूपा) समुत्पन्न हूँ। मैंने महेश्वर प्रभु की निन्दा करने वाले अपने पिता दक्ष प्रजापति को भी विनिन्दित किया और धर्म की संस्थापना के लिए और तुम्हारी आराधना के कारण मैंने मेना के देह से जन्म ग्रहण किया है और अब आप पिता के आश्रित हो गई हूँ। वह अब आप परमात्मा ब्रह्मदेव की प्रेरणा अथवा आज्ञा से स्वयंवर के समय आने पर मुझे रुद्रदेव के लिये अर्पित करना।

तत्सम्बन्धान्तरे राजन् सर्वे देवाः सवासवाः।
त्वां नमस्यन्ति वै तात प्रसीदति च शंकरः॥ ३०६॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मां विद्धीश्वरगोचराम्।
संपूज्य देवमीशानं शरण्यं शरणं व्रज॥ ३०७॥

उस सम्बन्ध के होने पर (अर्थात् महेश्वर का मेरे साथ और आपके साथ जो सम्बन्ध होगा, उस कारण) हे राजन्! इन्द्र सहित सभी देवगण आपको नमन करेंगे और हे तात! भगवान् शंकर भी अति प्रसन्न होंगे। इस कारण सब प्रयत्नों से मुझको ईश्वरविषयक ही जानो। ईशान देव का भलीभाँति पूजन करके उसी शरण्य की शरण में चले जाओ।

स एवमुक्तो हिमवान् देवदेव्या गिरीश्वरः।
प्रणम्य शिरसा देवीं प्राञ्जलिः पुनरब्रवीत्॥ ३०८॥

इस प्रकार देवों की देवी पार्वती ने गिरीश्वर हिमाचल को ऐसा कहा, तब पुनः उन्होंने शिर झुकाकर प्रणाम करके हाथ जोड़कर देवी से कहा।

तस्येतत्परमं ज्ञानमात्मनो योगमुत्तमम्।
यथावद्व्याजहारेशा साधनानि च विस्तरात्॥३१०॥

हे महेशानि! आप परम महेश्वर-सम्बन्धी श्रेष्ठ योग, आत्मविषयक ज्ञान, योग तथा साधनों को मुझे कहें। तब ईश्वरी ने परम ज्ञान, उत्तम योग तथा साधनों को विस्तारपूर्वक बताया।

निशम्य वदनाम्भोजाद् गिरीन्द्रो लोकपूजितः।
लोकमातुः परं ज्ञानं योगासक्तोऽभवत्पुनः॥३११॥

लोकपूजित गिरीन्द्र लोकमाता पार्वती के मुखारविन्द से परम ज्ञान को सुनकर पुनः योगासक्त हो गये।

प्रददौ च महेशाय पार्वतीं भाग्यगौरवात्।
नियोगाद्ब्रह्मणः साध्वीं देवानाञ्चैव सन्निधौ॥३१२॥

भाग्य की महत्ता और ब्रह्मा के आदेश से हिमालय ने देवताओं के सान्निध्य में साध्वी पार्वती को महेश के लिए समर्पित की।

य इमं पठतेऽध्यायं देव्या माहात्म्यकीर्तनम्।
शिवस्य सन्निधौ भक्त्या शुचिस्तद्भावभावितः॥३१३॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो दिव्ययोगसमन्वितः॥
उल्लंघ्य ब्रह्मणो लोकं देव्याः स्थानमवाप्नुयात्॥३१४॥

जो देवी के माहात्म्य-कीर्तन करने वाले इस अध्याय को शिव की शरण में भक्तिपूर्वक पवित्र एवं तद्गतचित्त होकर पढ़ेगा, वह सभी पापों से मुक्त तथा दिव्य योग से समन्वित होगा। यह ब्रह्मलोक को लांघकर देवी का स्थान प्राप्त करता है।

यश्चैतत्पठति स्तोत्रं ब्राह्मणानां समीपतः।
समाहितमनाः सोऽपि सर्वपापैः प्रमुच्यते॥३१५॥

जो कोई ब्राह्मणों के समीप समाहितचित्त होकर इस स्तोत्र का पाठ करता है, वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।

नाम्नामष्टसहस्रन्तु देव्या यत्समुदीरितम्।
ज्ञात्वार्कमण्डलगतामावाह्य परमेश्वरीम्॥३१६॥
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैर्भक्तियोगसमन्वितः।
संस्मरन्परमं भावं देव्या माहेश्वरं परम्॥३१७॥
अनन्यमानसो नित्यं जपेदामरणाद्द्विजः।
सोऽन्तकाले स्मृतिं लब्ध्वा परं ब्रह्माधिगच्छति॥३१८॥

इस अध्याय में देवी के जो १००८ नाम बताये हैं, उसे जानकर सूर्यमण्डलगता परमेष्ठी का आवाहन करके भक्तियोग से युक्त होकर गन्धपुष्पादि द्वारा पूजन करके देवी सहित परम माहेश्वरभाव का स्मरण करते हुए, अनन्य मन से मरणपर्यन्त नित्य जप करने वाला द्विज अन्तकाल में उनका स्मरण करके परब्रह्म को प्राप्त करता है। अथवा वह ब्राह्मण के पवित्र कुल में विप्र होकर जन्म लेता है और पूर्व संस्कार के माहात्म्य से ब्रह्मविद्या को प्राप्त करता है।

सम्प्राप्य योगं परमं दिव्यं तत्पारमेश्वरम्।
शान्तः सुसंयतो भूत्वा शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥३२०॥

वह परम दिव्य परमेश्वरविषयक योग को प्राप्त करके शान्त और सुसंयतचित्त होकर शिव के सायुज्य को प्राप्त कर लेता है।

प्रत्येकञ्चाथ नामानि जुहुयात्सवनत्रयम्।
महामारिकृतैर्दोषैर्ग्रहदोषैश्च मुच्यते॥३२१॥

जो भी मनुष्य तीनों कालों में इन प्रत्येक नामों का उच्चारण करके होम करेगा, वह महामारीकृत दोषों से तथा ग्रहदोषों से मुक्त हो जाता है।

जपेद्वाऽहरहर्नित्यं संवत्सरमतन्द्रितः।
श्रीकामः पार्वतीं देवीं पूजयित्वा विधानतः॥३२२॥
सम्पूज्य पार्श्वतः शम्भुं त्रिनेत्रं भक्तिसंयुतः।
लभते महतीं लक्ष्मीं महादेवप्रसादतः॥३२३॥

जो लक्ष्मी चाहने वाला विधिविधान से देवी पार्वती की पूजा करके एक वर्ष तक सजग होकर नित्य इन नामों का जप करता है तथा भक्तियुक्त होकर देवी के समीप ही त्रिलोचन शिव की पूजा करता है, उसे महादेव की अनुकम्पा से महती लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन जप्तव्यं हि द्विजातिभिः।
सर्वपापापनोदार्थं देव्या नामसहस्रकम्॥३२४॥

इसलिये द्विजातियों को सब प्रकार से प्रयत्नपूर्वक समस्त पापों को दूर करने के लिए देवी के सहस्रनाम का जप करना चाहिए।

सूत उवाच

प्रसङ्गात्कथितं विप्रा देव्या माहात्म्यमुत्तमम्।

अत: परं प्रजासर्गं भृग्वादीनां निबोधत॥३२५॥

सूत बोले— विप्रगण! प्रसंगवश देवी के उत्तम माहात्म्य का वर्णन मैंने कर दिया। इसके बाद भृगु आदि की प्रजासृष्टि ध्यानपूर्वक समझो।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे देव्या माहात्म्ये द्वादशोऽध्याय:॥१२॥

त्रयोदशोऽध्याय:

(दक्षकन्याओं का वंश-वर्णन)

सूत उवाच

भृगो: ख्यात्यां समुत्पन्ना लक्ष्मीर्नारायणप्रिया॥
देवौ धाताविधातारौ मेरोर्जामातरौ शुभौ॥१॥

सूत बोले— नारायण की प्रिया लक्ष्मी भृगु की ख्याति नामक पत्नी से उत्पन्न हुई। मेरु के धाता और विधाता नामक दो शुभकारी देव जामाता हुए थे।

आयतिर्नियतिश्चैव मेरो: कन्ये महात्मन:।
तयोर्धातृविधातृभ्यां यौ च जातौ सुतावुभौ॥२॥
प्राणश्चैव मृकण्डुश्च मार्कण्डेयो मृकण्डुत:।
तथा वेदशिरा नाम प्राणस्य द्युतिमान्सुत:॥३॥

महात्मा मेरु की आयति और नियति नामक दो कन्यायें हुई थीं और उनके (पति) धाता और विधाता से दो पुत्र उत्पन्न हुए थे — प्राण और मृकण्डु। मृकण्डु से मार्कण्डेय की उत्पत्ति हुई और प्राण का वेदशिरा नामक पुत्र हुआ, जो अत्यन्त द्युतिमान् था।

मरीचेरपि सम्भूति: पूर्णमासमसूयत।
कन्याचतुष्टयञ्चैव सर्वलक्षणसंयुतम्॥४॥
तुष्टिर्ज्येष्ठा तथा वृष्टि: कृष्टिश्चापचितिस्तथा।
विरजा: पर्वतश्चैव पूर्णमासस्य तौ सुतौ॥५॥

मरीचि की पत्नी सम्भूति ने पूर्णमास नामक एक पुत्र को जन्मा और सर्वलक्षणसंपन्न चार कन्याओं को जन्म दिया। उसमें तुष्टि ज्येष्ठा थी, और (अन्य तीन) वृष्टि, कृष्टि तथा अपचिति नामवाली थीं। पूर्णमास के दो पुत्र हुए— विरजा और पर्वत।

क्षमा तु सुषुवे पुत्रान्पुलहस्य प्रजापते:।
कर्दमञ्च वरीयांसं सहिष्णुं मुनिसत्तमम्॥६॥
तथैव च कनीयांसं तपोनिर्धूतकल्मषम्।
अनसूया तथैवात्रेर्जज्ञे पुत्रानकल्मषान्॥७॥
सोमं दुर्वाससञ्चैव दत्तात्रेयञ्च योगिनम्।
स्मृतिश्चाङ्गिरस: पुत्री जज्ञे लक्षणसंयुता॥८॥

प्रजापति पुलह की पत्नी क्षमा ने कई पुत्रों को जन्म दिया, जिनमें कर्दम सबसे वरीय थे एवं मुनिश्रेष्ठ तथा तप से निर्धूत पाप वाले सहिष्णु कनिष्ठ थे। उसी प्रकार अनसूया ने अत्रि से पापरहित पुत्रों को जन्म दिया— सोम, दुर्वासा, और योगी दत्तात्रेय। अंगिरा से शुभलक्षणसम्पन्ना स्मृति नामक पुत्री उत्पन्न हुई।

सिनीवालीं कुहूञ्चैव राकामनुमतीमपि।
प्रीत्यां पुलस्त्यो भगवान्दम्भोजिमसृजत्प्रभु:॥९॥

भगवान् प्रभु पुलस्त्य ने प्रीति नामवाली अपनी पत्नी में सिनीवाली, कुहू, राका, अनुमती नामक पुत्रियों को तथा दम्भोजि नामक पुत्र को उत्पन्न किया।

पूर्वजन्मनि सोऽगस्त्य: स्मृत: स्वायम्भुवेऽन्तरे।
देवबाहुस्तथा कन्या द्वितीया नाम नामत:॥१०॥

पूर्वजन्म में स्वायम्भुव मन्वन्तर में वही अगस्त्य नाम से जाने गये। इसके बाद उनसे दूसरी देवबाहु नामकी कन्या उत्पन्न हुई थी।

पुत्राणां षष्टिसाहस्रं सन्तति: सुषुवे क्रतो:।
ते चोर्ध्वरेतस: सर्वे बालखिल्या इति स्मृता:॥११॥

क्रतु प्रजापति से साठ हजार पुत्रों की सन्तति उत्पन्न हुई। वे सब ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी बालखिल्य नाम से प्रसिद्ध हुए।

वसिष्ठश्च तथोर्ज्जायां सप्त पुत्रानजीजनत्।
कन्याञ्च पुण्डरीकाक्षां सर्वशोभासमन्विताम्॥१२॥

वसिष्ठ ने ऊर्जा नामक पत्नी से सात पुत्रों को और एक समस्त सुन्दरता से युक्त 'पुण्डरीकाक्षा' नामक कन्या को जन्म दिया।

रजोमात्रोर्ध्वबाहुश्च सवनश्चानगस्तथा।
सुतपा: शुक्र इत्येते सप्त पुत्रा महौजस:॥१३॥

वे सातों रजोमात्र, ऊर्ध्वबाहु, सवन, अनग, सुतपा, शुक्र एवं महौजस नाम से प्रसिद्ध थे।

योऽसौ रुद्रात्मको वह्निर्ब्रह्मणस्तनयो द्विजा:।
स्वाहा तस्मात्सुतान् लेभे त्रीनुदारान्महौजस:॥१४॥
पावक: पवमानश्च शुचिरग्निश्च स्मृत:।
निर्मथ्य: पवमान: स्याद्वैद्युत: पावक: स्मृत:॥१५॥

यश्चासौ तपते सूर्ये शुचिरग्निस्त्वसौ स्मृतः।
तेषान्तु सन्तताबन्ये चत्वारिंशच्च पञ्च च॥ १६॥

हे द्विजगण! वह जो रुद्रात्मक वह्नि ब्रह्मा का पुत्र था, स्वाहा ने उससे तीन उदार एवं महान् तेजस्वी पुत्रों को प्राप्त किया। वे थे- पावक, पवमान और शुचि। वे रूप में अग्नि ही थे। निमथन से उत्पन्न अग्नि को पवमान और विद्युत से उत्पन्न अग्नि को पावक कहा गया है। जो सूर्य में रहता हुआ तपता है, उसे शुचि नामक अग्नि कहा जाता है। उसकी पैंतालीस सन्तानें हुईं।

पवमानः पावकश्च शुचिस्तेषां पिता च यः।
एते चैकोनपञ्चाशद्वह्नयः परिकीर्तिताः॥ १७॥

पवमान, पावक, शुचि तथा इनका पिता ये जो चार अग्नियाँ हैं, ये सब मिलकर उनचास अग्नि बताये गये हैं।

सर्वे तपस्विनः प्रोक्ताः सर्वे यज्ञेषु भागिनः।
रुद्रात्मकाः स्मृताः सर्वे त्रिपुण्ड्राङ्कितमस्तकाः॥ १८॥

ये सभी तपस्वी तथा सभी यज्ञों में भाग लेने वाले कहे गये हैं। ये सब रुद्रस्वरूप कहे गये गये हैं, इसलिए उनके मस्तक त्रिपुण्ड्र से अंकित रहते हैं।

अयज्वानश्च यज्वानः पितरो ब्रह्मणः सुताः।
अग्निष्वात्ता बर्हिषदो द्विधा तेषां व्यवस्थितिः॥ १९॥
तेभ्यः स्वधा सुतां जज्ञे मेनां वै धारिणीं तथा।
ते उभे ब्रह्मवादिन्यौ योगिन्यौ मुनिसत्तमाः॥ २०॥

अयज्वन् और यज्वन नामक पितर ब्रह्मा के पुत्र हैं। उनकी व्यवस्था अग्निष्वात्त तथा बर्हिषद्— इन दो प्रकार से है। उनसे स्वधा ने मेना और धारिणी नामकी दो कन्याओं को उत्पन्न किया। हे मुनिश्रेष्ठो! वे दोनों ब्रह्मवादिनी होने से योगिनी नाम से प्रख्यात थीं।

असूत मेना मैनाकं क्रौञ्चन्तस्यानुजन्तथा।
गङ्गा हिमवतो जज्ञे सर्वलोकैकपावनी॥ २१॥

मेना ने मैनाक और उसके अनुज क्रौञ्च को जन्म दिया। सर्वलोकपावनी गंगा (नदीरूप में) हिमालय से उत्पन्न हुई।

स्वयोगाग्निबलाद्देवीं पुत्रीं लेभे महेश्वरीम्।
यथावत्कथितं पूर्वं देव्या माहात्म्यमुत्तमम्॥ २२॥

अपने योगाग्नि के बल से हिमालय ने महेश्वरी देवी को पुत्रीरूप में प्राप्त किया। देवी का उत्तम माहात्म्य मैं यथावत् बता चुका हूँ।

धारिणी मेरुराजस्य पत्नी पद्मसमानना।
देवौ धाताविधातारौ मेरोर्जामातरावुभौ॥ २३॥

मेरुराज की पत्नी कमलमुखी धारिणी थी। धाता और विधाता ये दो देव, मेरु के जामाता थे।

एषा दक्षस्य कन्यानां मयापत्यानुसन्ततिः।
व्याख्याता भवतां सद्यो मनोः सृष्टिं निबोधत॥ २४॥

यह मैंने दक्ष-कन्याओं के पति तथा उनकी सन्तति का वर्णन आप लोगों के सामने कर दिया। अब मनु की सृष्टि को शीघ्र ही सुनो।

इति कूर्मपुराणे पूर्वभागे दक्षकन्याख्यातिवंशः त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

चतुर्दशोऽध्यायः
(स्वायंभुव मनु का वंश)

सूत उवाच—

प्रियव्रतोत्तानपादौ मनोः स्वायम्भुवस्य तु।
धर्मज्ञौ तौ महावीर्यौ शतरूपा व्यजीजनत्॥ १॥

सूत बोले- स्वायंभुव मनु की शतरूपा (नामकी रानी) ने प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक धर्मज्ञ और महान् पराक्रमी दो पुत्रों को जन्म दिया था।

ततस्तूत्तानपादस्य ध्रुवो नाम सुतोऽभवत्।
भक्त्या नारायणे देवे प्राप्तवान् स्थानमुत्तमम्॥ २॥

इसके बाद उत्तानपाद का ध्रुव नामक पुत्र हुआ, जिसने भगवान् नारायण में विशेष भक्ति होने से उत्तम स्थान (ध्रुवपद) प्राप्त किया।

ध्रुवाच्छिष्टिश्च भाव्यश्च भाव्याच्छम्भुर्व्यजायत।
शिष्टेराधत्त सुच्छाया पञ्च पुत्रानकल्मषान्॥ ३॥

इस ध्रुव से शिष्ट और भाव्य तथा भाव्य से शम्भु का जन्म हुआ। शिष्टि से सुच्छाया ने पाँच निष्पाप पुत्रों को जन्म दिया।

वसिष्ठवचनाद्देवी तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम्।
आराध्य पुरुषं विष्णुं शालग्रामे जनार्दनम्॥ ४॥
रिपुं रिपुञ्जयं विप्रं कपिलं वृषतेजसम्।
नारायणपरान्शुद्धान्स्वधर्मपरिपालकान्॥ ५॥

सुच्छाया ने वसिष्ठ मुनि के कहने पर अत्यन्त दुष्कर तप किया और शालग्राम में परमपुरुष जनार्दन विष्णु की आराधना की। इससे उसने रिपु, रिपुञ्जय, विप्र, कपिल और वृषतेजा नामक पाँच पुत्रों को उत्पन्न किया। वे सभी नारायण की भक्ति में तत्पर, शुद्ध एवं स्वधर्म-रक्षक थे।

रिपोराधत्त महिषी चाक्षुषं सर्वतेजसम्।
सोऽजीजनत्पुष्करिण्यां सुरूपं चाक्षुषं मनुम्॥ ६॥
प्रजापतेरात्मजायां वीरणस्य महात्मनः।
मनोरजायन्त दश सुतास्ते सुमहौजसः॥७॥
कन्यायां सुमहावीर्यो वैराजस्य प्रजापतेः।
उरुः पुरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाक् शुचिः॥ ८॥
अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चाभिमन्युकः।
ऊरोरजनयत्पुत्रान्षडाग्नेयी महाबलान्॥ ९॥
अङ्गं सुमनसं ख्यातिं क्रतुमाङ्गिरसं शिवम्।
अङ्गाद्वेनोऽभवत्पश्चाद्वैन्यो वेनादजायत॥ १०॥

रिपु की महिषी ने अति तेजस्वी चक्षुस् नामक पुत्र को जन्म दिया। उस चक्षुस् ने महात्मा वीरण प्रजापति की पुत्री पुष्करिणी से रूपवान् चाक्षुष मनु को जन्म दिया। उस महावीर चाक्षुष मनु ने वैराज प्रजापति की कन्या से महान् तेजस्वी उरु, पूरु, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यवाक्, शुचि, अग्निष्टुत, अतिराज, सुद्युम्न और अभिमन्युक- इन दस पुत्रों को उत्पन्न किया। उरु से आग्नेयी नाम की पत्नी ने अङ्ग, सुमनस्, ख्याति, क्रतु, आङ्गिरस एवं शिव नामक बलशाली छः पुत्रों को जन्म दिया। पश्चात् अङ्ग से वेन हुआ और वेन से वैन्य (पृथु) उत्पन्न हुआ।

योऽसौ पृथुरिति ख्यातः प्रजापालो महाबलः।
येन दुग्धा मही पूर्वं प्रजानां हितकाम्यया॥ ११॥
नियोगाद्ब्रह्मणः सार्द्धं देवेन्द्रेण महौजसा।

वही वैन्य प्रजापालक महाबली पृथु नाम से प्रख्यात हुआ, जिसने पूर्व काल में ब्रह्मा की आज्ञा से प्रजाओं के हित की कामना से महातेजस्वी इन्द्र के साथ पृथ्वी का दोहन किया था।

वेनपुत्रस्य वितते पुरा पैतामहे मखे॥ १२॥
सूतः पौराणिको जज्ञे मायारूपः स्वयं हरिः।
प्रवक्ता सर्वशास्त्राणां धर्मज्ञो गुरुवत्सलः॥ १३॥

पूर्वकाल में वेनपुत्र पृथु के विशाल पैतामह यज्ञ में स्वयं हरि ने मायावी रूप धारण करके सूत पौराणिक के रूप में जन्म धारण किया। वे सूत सभी धर्मशास्त्रों के प्रवक्ता, धर्मज्ञ और गुरु से स्नेह रखने वाले थे।

तं मां वित्त मुनिश्रेष्ठाः पूर्वोद्भूतं सनातनम्।
अस्मिन्मन्वन्तरे व्यासः कृष्णद्वैपायनः स्वयम्॥ १४॥
श्रावयामास मां प्रीत्या पुराणः पुरुषो हरिः।
मदन्वये तु ये सूताः सम्भूता वेदवर्जिताः॥ १५॥
तेषां पुराणवक्तृत्वं वृत्तिरासीदजाज्ञया।

मुनिश्रेष्ठो! वह सूत पौराणिक मुझे ही जानो। पूर्व काल में उत्पन्न होने से सनातन हूँ। इस मन्वन्तर में पुराण पुरुष हरिरूप स्वयं कृष्णद्वैपायन व्यास ने मुझ पर कृपा की और प्रीतिपूर्वक (यह पुराण) श्रवण कराया। मेरे वंश में जो वेदज्ञान से रहित सूत उत्पन्न हुए थे, वे भगवान् अज की आज्ञा से पुराणों के वाचन से ही आजीविका का निर्वाह करते थे।

स च वैन्यः पृथुर्धीमान्सत्यसन्धो जितेन्द्रियः॥ १६॥
सार्वभौमो महातेजाः स्वधर्मपरिपालकः।
तस्य बाल्यात्प्रभृत्येव भक्तिर्नारायणेऽभवत्॥ १७॥

वह वेन पुत्र पृथु अत्यन्त बुद्धिमान्, सत्यप्रतिज्ञ, जितेन्द्रिय, सार्वभौम, महातेजस्वी और अपने धर्म का परिपालक था। बाल्यकाल से ही उसकी नारायण में भक्ति हो गई थी।

गोवर्धनगिरिं प्राप्तस्तपस्तेपे जितेन्द्रियः।
तपसा भगवान्प्रीतः शंखचक्रगदाधरः॥ १८॥

वह जितेन्द्रिय गोवर्धन पर्वत पर जाकर तपस्या करने लगा। उसके तप से शंखचक्रगदाधारी भगवान् प्रसन्न हुए।

आगत्य देवो राजानं प्राह दामोदरः स्वयम्।
धार्मिकौ रूपसम्पन्नौ सर्वशस्त्रभृतांवरौ॥ १९॥
मत्प्रसादादसन्दिग्धौ पुत्रौ तव भविष्यतः।
एवमुक्त्वा हृषीकेशः स्वकीयां प्रकृतिं गतः॥ २०॥

स्वयं दामोदर विष्णु देव ने वहाँ आकर राजा से कहा— मेरे प्रसाद से निश्चय ही तुम्हारे दो पुत्र होंगे, जो धार्मिक, रूपसम्पन्न तथा सकल शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ होंगे। इतना कहकर भगवान् अपनी प्रकृति में लीन हो गये।

वैन्योऽपि वेदविधिना निश्चलां भक्तिमुद्वहन्।
सोऽपालयत्स्वकं राज्यं चिन्तयन्मधुसूदनम्॥ २१॥

पृथु ने भी वैदिक विधिपूर्वक भगवान् में अचल भक्ति रखते हुए और मधुसूदन का चिन्तन करते हुए अपने राज्य का पालन किया।

अचिरादेव तन्वङ्गी भार्या तस्य शुचिस्मिता।
शिखण्डिनं हविर्द्धानमन्तर्द्धानाद्व्यजायत॥ २२॥

थोड़े ही समय में शुचिस्मिता कृशाङ्गी पृथु-पत्नी ने शिखण्डी और हविर्धान को अन्तर्धान से उत्पन्न किया।

शिखण्डिनोऽभवत्पुत्रः सुशील इति विश्रुतः।
धार्मिको रूपसम्पन्नो वेदवेदाङ्गपारगः॥ २३॥

शिखण्डी का पुत्र सुशील नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह धार्मिक, रूपसम्पन्न तथा वेद-वेदाङ्गों में पारंगत था।

सोऽधीत्य विधिवद्वेदान्धर्मेण तपसि स्थितः।
मतिञ्चक्रे भाग्ययोगात्संन्यासम्प्रति धर्मवित्॥ २४॥

वह विधिवत् धर्मपूर्वक वेदों का अध्ययन करके तपस्या में स्थित हुआ। उस धर्मज्ञ ने भाग्य के संयोग से संन्यास के प्रति अपनी बुद्धि को स्थिर किया।

स कृत्वा तीर्थसंसेवां स्वाध्याये तपसि स्थितः।
जगाम हिमवत्पृष्ठं कदाचित्सिद्धसेवितम्॥ २५॥

वह तीर्थों का भली-भाँति सेवन (भ्रमण) करके पुनः वेदाध्ययन और तप में ही स्थित हो गया फिर किसी समय सिद्धों के द्वारा सेवित हिमालय की चोटी पर चला गया था।

तत्र धर्मवनं नाम धर्मसिद्धिप्रदं वनम्।
अपश्यद्योगिनां गम्यमगम्यं ब्रह्मविद्विषाम्॥ २६॥

वहाँ पर उसने धर्मवन नामक एक वन देखा, जो धर्म की सिद्धि देने वाला, योगिजनों के द्वारा गमन करने के योग्य और ब्रह्मविद्वेषियों के लिये अगम्य स्थल था।

तत्र मन्दाकिनीनाम सुपुण्या विमला नदी।
पद्मोत्पलवनोपेता सिद्धाश्रमविभूषिता॥ २७॥

वहाँ पर मन्दाकिनी नाम वाली परम पुण्यमयी स्वच्छ नदी है जो पद्म और उत्पलों के वन से संयुत तथा सिद्धजन के पावन आश्रमों से विभूषित है।

स तस्या दक्षिणे तीरे मुनीन्द्रैर्योगिभिर्युतम्।
सुपुण्यमाश्रमं रम्यमपश्यत्प्रीतिसंयुतः॥ २८॥

उसने उसी नदी के दक्षिण की ओर मुनिवरों तथा परम योगिजनों से युक्त, सुपुण्य एवं अतीव रमणीय आश्रम देखा। उसे देख कर वह परम प्रीति वाला हो गया था।

मन्दाकिनीजले स्नात्वा सन्तर्प्य पितृदेवताः।
अर्चयित्वा महादेवं पुष्पैः पद्मोत्पलादिभिः॥ २९॥

तब उसने मन्दाकिनी के जल में स्नान करके, पितरों और देवों का तर्पण करके, पद्मोत्पलादि विविध पुष्पों से महादेव की अर्चना की।

ध्यात्वार्कसंस्थमीशानां शिरस्याधाय चाञ्जलिम्।
सम्प्रेक्षमाणो भास्वन्तं तुष्टाव परमेश्वरम्॥ ३०॥

रुद्राध्यायेन गिरिशं रुद्रस्य चरितेन च।
अन्यैश्च विविधैः स्तोत्रैः शाम्भवैर्वेदसम्भवैः॥ ३१॥

पुनः सूर्यमण्डल में अवस्थित ईशान का ध्यान करके अंजलि को सिर पर रखकर भगवान् भास्कर को देखते हुए उनकी स्तुति करने लगा। उसने रुद्राध्याय, रुद्रचरित और वेदोक्त विविध शिव-स्तुतियों से शङ्कर की आराधना की।

अतस्मिन्नन्तरेऽपश्यत्समायान्तं महामुनिम्।
श्वेताश्वतरनामानं महापाशुपतोत्तमम्॥ ३२॥

भस्मसन्दिग्धसर्वाङ्गं कौपीनाच्छादनान्वितम्।
तपसा कर्षितात्मानं शुक्लयज्ञोपवीतिनम्॥ ३३॥

इसी बीच उसने श्वेताश्वतर नामक बड़े-बड़े पाशुपतों में उत्तम महामुनि को आते हुए देखा। वे मुनि सर्वाङ्ग में भस्म लगाये हुए, कौपीनवस्त्रधारी, तपस्या से क्षीणकाय तथा श्वेत यज्ञोपवीत धारण किये हुए थे।

समाप्य संस्तवं शम्भोरानन्दास्राविलेक्षणः।
ववन्दे शिरसा पादौ प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्॥ ३४॥

उन्होंने शिवजी की स्तुति समाप्त करके आखों में आनन्दाश्रु भरते हुए मुनि के चरणों में शिर झुकाकर प्रणाम किया और हाथ जोड़कर यह वचन बोले।

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यन्मे साक्षान्मुनीश्वर।
योगीश्वरोऽद्य भगवान्दृष्टो योगविदां वरः॥ ३५॥

हे मुनीश्वर! मैं धन्य हूँ, अनुगृहीत हूँ जो मैंने आज साक्षात् योगीश्वर और योगवेत्ताओं में सर्वश्रेष्ठ, ऐश्वर्यसम्पन्न आपके दर्शन किये।

अहो मे सुमहद्भाग्यं तपांसि सफलानि मे।
किं करिष्यामि शिष्योऽहं तव मां पालयानघ॥ ३६॥

अहो! मेरा महान् सौभाग्य है। मेरी तपस्या आज सफल हो गई है। हे अनघ! मैं आपकी क्या सेवा करूँ? मैं आपका शिष्य हूँ। मेरा आप पालन कीजिये।

सोऽनुगृह्याथ राजानं सुशीलं शीलसंयुतम्।
शिष्यत्वे प्रतिजग्राह तपसा क्षीणकल्मषम्॥ ३७॥

उस महा मुनि ने शील-सदाचार से युक्त, तप से क्षीण हुए पापों वाले उस सुशील राजा पर अनुग्रह करके उसे अपना शिष्य बनाना स्वीकार कर लिया।

सांन्यासिकं विधिं कृत्स्नं कारयित्वा विचक्षण:।
ददौ तदैश्वरं ज्ञानं स्वशाखाविहितव्रतम्॥ ३८॥

विचक्षण मुनि ने संन्यास से सम्बन्ध रखने वाली संपूर्ण विधि को कराकर, अपनी शाखा से विहित व्रत वाले उसे ईश्वरीय ज्ञान प्रदान कर दिया।

अशेषं वेदसारं तत्पशुपाशविमोचनम्।
अन्त्याश्रममिति ख्यातं ब्रह्मादिभिरनुष्ठितम्॥ ३९॥

उसने सम्पूर्ण वेदों का सार और पशु-पाश का विमोचन जो अन्त्याश्रय के नाम से विख्यात है और ब्रह्मादि के द्वारा अनुष्ठित है उसे बतला दिया था।

उवाच शिष्यान्संप्रेक्ष्य ये तदाश्रमवासिन:।
ब्राह्मणा: क्षत्रिया वैश्या ब्रह्मचर्यपरायणा:॥ ४०॥
मया प्रवर्तितां शाखामधीत्यैवेह योगिन:।
समासते महादेवं ध्यायन्तो विश्वमैश्वरम्॥ ४१॥

उस आश्रम में निवास करने वाले सभी शिष्यों को देख कर उनसे कहा— जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और ब्रह्मचर्य में परायण हों, वे सब मेरे द्वारा प्रवर्तित इस शाखा का अध्ययन करके ही यहाँ योगी बन जायेंगे और विश्वेश्वर महादेव का ध्यान करते हुए स्थित रहेंगे।

इह देवो महादेवो रममाण: सहोमया।
अध्यास्ते भगवानीशो भक्तानामनुकम्पया॥ ४२॥

यहाँ भगवान् देवाधिदेव महादेव भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए उमा के साथ रमण करते हुए निवास करते हैं।

इहाशेषजगद्धाता पुरा नारायण: स्वयम्।
आराधयन्महादेवं लोकानां हितकाम्यया॥ ४३॥

पुराकाल में यहाँ सम्पूर्ण जगत् के धारणकर्ता स्वयं नारायण ने लोगों के कल्याण की इच्छा से महादेव की आराधना की थी।

इहैनं देवमीशानं देवानामपि दैवतम्।
आराध्य महतीं सिद्धिं लेभिरे देवदानवा:॥ ४४॥

यहीं पर देवों और दानवों ने देवाधिदेव भगवान् शङ्कर की आराधना करके महान् सिद्धि को प्राप्त किया था।

इहैव मुनय: सर्वे मरीच्याद्या महेश्वरम्।
दृष्ट्वा तपोबलाज्ज्ञानं लेभिरे सार्वकालिकम्॥ ४५॥

यहीं मरीचि आदि सभी मुनीश्वरों ने अपने तपोबल से शिव का दर्शन करके सार्वकालिक ज्ञान को प्राप्त किया था।

तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र तपोयोगसमन्वित:।
तिष्ठ नित्यं मया सार्द्धं तत: सिद्धिमवाप्स्यसि॥ ४६॥

अतएव हे राजेन्द्र! आप भी तप और योग से युक्त होकर सदा मेरे साथ रहें। तभी आप सिद्धि को प्राप्त करेंगे।

एवमाभाष्य विप्रेन्द्रो देवं ध्यात्वा पिनाकिनम्।
आचचक्षे महामन्त्रं यथावत्सर्वसिद्धये॥ ४७॥
सर्वपापोपशमनं वेदसारं विमुक्तिदम्।
अग्निरित्यादिकं पुण्यमृषिभि: सम्प्रवर्त्तितम्॥ ४८॥

विप्रेन्द्र ने इस प्रकार कहकर पिनाकिन् भगवान् शिव का ध्यान करके सकल सिद्धि के लिए समस्त पापों का उपशामक, वेदों का सारभूत, मोक्षप्रद तथा पुण्यदायक ऋषियों द्वारा प्रवर्तित 'अग्नि' इत्यादि महामंत्र का विधिपूर्वक उपदेश किया।

सोऽपि तद्वचनाद्राजा सुशील: श्रद्धयान्वित:।
साक्षात्पाशुपतो भूत्वा वेदाभ्यासरतोऽभवत्॥ ४९॥

उसके वचन सुनकर वह सुशील राजा भी श्रद्धा से समन्वित होकर साक्षात् पाशुपत होकर वेदाभ्यास में संलग्न हो गया।

भस्मोद्धूलितसर्वाङ्ग: कन्दमूलफलाशन:।
शान्तो दान्तो जितक्रोध: संन्यासविधिमाश्रित:॥ ५०॥

(वह राजा) भस्म से लिप्त समस्त अङ्गों वाला, कन्द-मूल और फलों को खाने वाला, परम शान्त तथा दमनशील-क्रोध को जीत कर पूर्ण संन्यास की विधि में समाश्रित हो गया था।

हविर्धानस्तथाग्नेय्यां जनयामास वै सुतम्।
प्राचीनबर्हिषं नाम्ना धनुर्वेदस्य पारगम्॥ ५१॥

हविर्धान ने आग्नेयी में एक पुत्र को जन्म दिया था जिसका नाम प्राचीनबर्हि था और वह धनुर्वेद का पारगामी विद्वान् था।

प्राचीनबर्हिर्भगवान्सर्वशस्त्रभृतां वर:।
समुद्रतनयायां वै दश पुत्रानजीजनत्॥ ५२॥

भगवान् प्राचीनबर्हि ने जो सब शस्त्रधारियों में परम श्रेष्ठ थे, समुद्रतनया में दश पुत्रों को जन्म ग्रहण कराया था।

प्रचेतसस्ते विख्याता राजान: प्रथितौजस:।
अधीतवन्त: स्वं वेदं नारायणपरायणा:॥ ५३॥

वे सब प्रथित ओज वाले राजागण प्रचेतस् के नाम से

लोक में विख्यात हुए। भगवान् नारायण में परायण होकर उन्होंने अपनी शाखान्तर्गत वेद का अध्ययन किया।

दशभ्यस्तु प्रचेताभ्यो मारिषायां प्रजापतिः।
दक्षो जज्ञे महाभागो यः पूर्वं ब्रह्मणः सुतः॥५४॥

उन दश प्रचताओं से मारिषा में महान् प्रजापति दक्ष उत्पन्न हुए थे, जो पहले ब्रह्माजी के पुत्र थे।

स तु दक्षो महेशेन रुद्रेण सह धीमता।
कृत्वा विवादं रुद्रेण शप्तः प्राचेतसोऽभवत्॥५५॥

वे दक्ष धीमान् महेश रुद्र के साथ विवाद करके रुद्र के द्वारा शापग्रस्त होकर प्राचेतस् हो गये थे।

समायान्तं महादेवो दक्षं देव्या गृहं हरः।
दृष्ट्वा यथोचितां पूजां दक्षाय प्रददौ स्वयम्॥५६॥
तदा वै तमसाविष्टः सोऽधिकां ब्रह्मणः सुतः।
पूजामनर्हामन्विच्छञ्जगाम कुपितो गृहम्॥५७॥

महादेव शिव ने देवी पार्वती के घर आते हुए दक्ष को देखकर स्वयं उनकी यथोचित पूजा की किन्तु ब्रह्मपुत्र दक्ष उस समय अत्यधिक क्रोधाविष्ट थे, अतः पूजा को अयोग्य मानकर वे क्रोधित होकर घर से निकल गये।

कदाचित्स्वगृहं प्राप्तां सतीं दक्षः सुदुर्मनाः।
भर्त्रा सह विनिन्द्यैनां भर्त्सयामास वै रुषा॥५८॥
अन्ये जामातरः श्रेष्ठा भर्तुस्तव पिनाकिनः।
त्वमप्यसत्सुताऽस्माकं गृहाद् गच्छ यथागतम्॥५९॥

किसी समय अपने घर पर आयी हुई सती के सामने दुःखी मन वाले दक्ष ने क्रोधावेश में पतिसहित उसकी निन्दा करने लगे थे कि तुम्हारे पति शिव से तो मेरे दूसरे जामाता अधिक श्रेष्ठ हैं। तुम भी मेरी असत् पुत्री हो। जैसे आयी हो वैसी ही घर से निकल जाओ।

तस्य तद्वाक्यमाकर्ण्य सा देवी शङ्करप्रिया।
विनिन्द्य पितरं दक्षं ददाहात्मानमात्मना॥६०॥
प्रणम्य पशुभर्त्तारं भर्तारं कृत्तिवाससम्।
हिमवद्दुहिता साभूत्तपसा तस्य तोषिता॥६१॥

दक्ष के ऐसे वचन सुनकर शंकरप्रिया उस देवी पार्वती ने अपने पिता दक्ष की निन्दा की और व्याघ्रचर्म को धारण करने वाले और समस्त प्राणियों का भरण करने वाले पशुपतिनाथ को प्रणाम करके अपने से स्वयं को जला डाला। इसके बाद हिमालय की तपस्या से संतुष्ट वह देवी हिमालय की पुत्री पार्वतीरूप में उत्पन्न हुई।

ज्ञात्वा तां भगवान्रुद्रः प्रपन्नार्त्तिहरो हरः।
शशाप दक्षं कुपितः समागत्याथ तद्गृहम्॥६२॥
त्यक्त्वा देहमिमं ब्राह्मं क्षत्रियाणां कुले भव।
स्वस्या सुतायां मूढात्मा पुत्रमुत्पादयिष्यसि॥६३॥

अनन्तर उस सती को दग्ध जानकर भक्तों के कष्टों का हरण करने वाले भगवान् रुद्र महादेव ने कुपित होकर उन्हीं के घर आकर दक्ष को शाप दे दिया— तुम ब्रह्मा से उत्पन्न इस ब्राह्मण शरीर को त्याग कर क्षत्रिय-कुल में उत्पन्न होओगे और मूढात्मा होकर अपनी पुत्री में ही पुत्रोत्पादन करोगे।

एवमुक्त्वा महादेवो ययौ कैलासपर्वतम्।
स्वायम्भुवोऽपि कालेन दक्षः प्राचेतसोऽभवत्॥६४॥

इस प्रकार कहकर महादेव कैलास पर्वत पर आ गये। स्वायम्भुव दक्ष (ब्रह्मपुत्र होते हुए) भी काल आने पर प्रचेताओं के पुत्ररूप में उत्पन्न हुए।

एतद्वः कथितं सर्वं मनोः स्वायम्भुवस्य तु।
निसर्गं दक्षपर्यन्तं शृण्वतां पापनाशनम्॥६५॥

इस प्रकार आपके समक्ष स्वायम्भुव मनु की दक्षपर्यन्त सृष्टि का वर्णन मैंने कर दिया जो कथा श्रोताओं के लिए पापनाशिनी है।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे राजवंशानुकीर्त्तने
चतुर्दशोऽध्यायः॥१४॥

पञ्चदशोऽध्यायः

(दक्षयज्ञ का विध्वंस)

नैमिषेया ऊचुः

देवानां दानवानाञ्च गन्धर्वोरगरक्षसाम्।
उत्पत्तिं विस्तराद्ब्रूहि सूत वैवस्वतेऽन्तरे॥१॥
स शप्तः शम्भुना पूर्वं दक्षः प्राचेतसो नृपः।
किमकार्षीन्महाबुद्धे श्रोतुमिच्छाम साम्प्रतम्॥२॥

नैमिषारण्यवासी ऋषियों ने कहा— हे सूतजी! वैवस्वत मन्वन्तर में देवों-दानवों, गन्धर्वों, सर्पों और राक्षसों की उत्पत्ति जिस प्रकार हुई थी उसका विस्तार पूर्वक वर्णन करें। पहले भगवान् शम्भु के द्वारा प्राप्त शाप से ग्रस्त उस प्रचेता के पुत्र राजा दक्ष ने क्या किया था? हे महाबुद्धे! इस समय वह सब कुछ हम आपसे सुनना चाहते हैं।

सूत उवाच–

वक्ष्ये नारायणेनोक्तं पूर्वकल्पानुषङ्गिकम्।
त्रिकालबद्धं पापघ्नं प्रजासर्गस्य विस्तरम्॥ ३॥

सूतजी ने कहा— पूर्वकल्प से सम्बन्धित प्रजासृष्टि का विस्तार जो नारायण ने कहा था, वह विस्तार मैं कहता हूँ। यह त्रिकालबद्ध पापों का नाश करने वाला है।

स शप्तः शम्भुना पूर्वं दक्षः प्राचेतसो नृपः।
विनिन्द्य पूर्ववैरेण गंगाद्वारेऽयजद्भवम्॥ ४॥

पूर्व जन्म में शम्भु के द्वारा शापग्रस्त वह प्राचेतस नृप दक्ष ने इस पहले के वैर के कारण ही निन्दा करके गंगाद्वार (हरिद्वार) में भव (विष्णु) का यज्ञ द्वारा पूजन किया था।

देवाश्च सर्वे भागार्थमाहूता विष्णुना सह।
सहैव मुनिभिः सर्वैरागता मुनिपुंगवाः॥ ५॥

सभी देवों को अपना-अपना भाग ग्रहण करने के लिए भगवान् विष्णु के साथ में आहूत किया गया था। श्रेष्ठ मुनिगण भी समस्त मुनियों के साथ ही वहाँ पर आए हुए थे।

दृष्ट्वा देवकुलं कृत्स्नं शंकरेण विना गतम्।
दधीचो नाम विप्रर्षिः प्राचेतसमथाब्रवीत्॥ ६॥

भगवान् शंकर के विना आये हुए सम्पूर्ण देवसमूह को वहाँ पर देखकर विप्रर्षि दधीच प्राचेतस से बोले।

दधीच उवाच–

ब्रह्माद्यास्तु पिशाचान्ता यस्याज्ञानुविधायिनः।
स देवः साम्प्रतं रुद्रो विधिना किन्न पूज्यते॥ ७॥

दधीच ने कहा— ब्रह्मा से लेकर पिशाच पर्यन्त सभी जिनकी आज्ञा के अनुसरण करने वाले हैं, वे देव रुद्र इस समय यज्ञ में विधिपूर्वक क्यों नहीं पूजे जा रहे हैं?

दक्ष उवाच–

सर्वेष्वेव हि यज्ञेषु न भागः परिकल्पितः।
न मन्त्रा भार्यया सार्द्धं शंकरस्येति नेज्यते॥ ८॥

दक्ष ने कहा— सभी यज्ञों में उनका भाग कल्पित नहीं है। इसी प्रकार पत्नी सहित शंकर के मंत्र भी नहीं मिलते हैं। इसलिए यहाँ शंकर की पूजा नहीं की जाती।

विहस्य दक्षं कुपितो वचः प्राह महामुनिः।
शृण्वतां सर्वदेवानां सर्वज्ञानमयः स्वयम्॥ ९॥

सर्वज्ञानमय महामुनि दधीच ने कुपित होकर उन पर हँसते हुए सभी देवताओं के सुनते हुए कहा।

दधीच उवाच–

यतः प्रवृत्तिर्विश्वात्मा यश्चासौ परमेश्वरः।
सम्पूज्यते सर्वयज्ञैर्विदित्वा किन्न शङ्करः॥ १०॥

दधीच ने कहा— जिनसे संसार की प्रवृत्ति है, जो विश्वात्मा और परमेश्वर हैं, सभी यज्ञों द्वारा उनकी पूजा की जाती है, यह जानते हुए भी शंकर क्यों नहीं पूजे जाते?

दक्ष उवाच–

न ह्ययं शङ्करो रुद्रः संहर्त्ता तामसो हरः।
नग्नः कपाली विदितो विश्वात्मा नोपपद्यते॥ ११॥

दक्ष ने कहा— यह रुद्र शंकर-मंगलकारी नहीं है, यह तो संहार करने वाला तामस देव है। यह नग्न तथा कपाली के रूप में प्रसिद्ध है। अतः इसे विश्वात्मा कहना उचित नहीं।

ईश्वरो हि जगत्स्रष्टा प्रभुर्नारायणो हरिः।
सत्त्वात्मकोऽसौ भगवानिज्यते सर्वकर्मसु॥ १२॥

सर्वसमर्थ नारायण विष्णु ही ईश्वर हैं तथा जगत् के स्रष्टा हैं। सत्त्वगुणधारी वही भगवान् सभी कर्मों में पूजे जाते हैं।

दधीच उवाच–

किं त्वया भगवानेष सहस्रांशुर्न दृश्यते।
सर्वलोकैकसंहर्त्ता कालात्मा परमेश्वरः॥ १३॥

दधीच बोले— क्या तुम्हें ये सहस्रांशु भगवान् (सूर्य) दिखाई नहीं देते हैं? ये ही संपूर्ण लोकों के एकमात्र संहारक तथा कालस्वरूप परमेश्वर हैं।

यं गृह्णन्तीह विद्वांसो धार्मिका ब्रह्मवादिनः।
सोऽयं साक्षी तीव्ररुचिः कालात्मा शाङ्करी तनुः॥ १४॥
एष रुद्रो महादेवः कपाली च घृणी हरः।
आदित्यो भगवान्सूर्यो नीलग्रीवो विलोहितः॥ १५॥

इस लोक में ब्रह्मवादी, धर्मपरायण विद्वान् लोग जिनकी स्तुति करते हैं, वे सर्वसाक्षी, कालात्मा, तीव्र कान्तियुक्त सूर्यदेव शंकर का ही शरीर है। यही रुद्र महादेव हैं। वे कपाली होकर घृणा देने वाले हैं तथापि वे हर (सबके संहारक) आदित्य हैं। वे ही भगवान् सूर्य (स्वयं) नीलकण्ठ एवं विलोहित (विशेषरूप से लाल रंग के) हैं।

संस्तूयते सहस्रांशुः सामाध्वर्युहोतृभिः।

पश्यैनं विश्वकर्माणं रुद्रमूर्तिं त्रयीमयम्॥ १६॥

सामवेदी अध्वर्यु तथा होता इन्हीं सहस्रांशु की स्तुति करते हैं। आप इसे विश्वनिर्मात्री, त्रयीमयी अर्थात् तीन वेदों वाली रुद्र की मूर्तिरूप में देखें।

दक्ष उवाच–

य एते द्वादशादित्या आगता यज्ञभागिनः।
सर्वे सूर्या इति ज्ञेया न ह्यन्यो विद्यते रविः॥ १७॥

दक्ष बोले– ये जो बारह आदित्य यज्ञ में भाग लेने आये हैं, ये सभी सूर्य नाम से प्रख्यात हैं। इनके अतिरिक्त दूसरा कोई सूर्य नहीं है।

एवमुक्ते तु मुनयः समायाता दिदृक्षवः।
बाढमित्यब्रुवन्दक्षं तस्य साहाय्यकारिणः॥ १८॥

दक्ष के ऐसा कहने पर, यज्ञ को देखने की इच्छा से आये मुनियों ने दक्ष की सहायता करते हुए कहा– यह यथार्थतः ठीक है।

तमसाविष्टमनसो न पश्यन्तो वृषध्वजम्।
सहस्रशोऽथ शतशो बहुशो भूय एव हि॥ १९॥
निन्दन्तो वैदिकान्मन्त्रान् सर्वभूतपतिं हरम्।
अपूजयन्दक्षवाक्यं मोहिता विष्णुमायया॥ २०॥

वे तामसरूप अज्ञान के कारण व्याप्त मन वाले होने के कारण वृषभध्वज भगवान् शिव को नहीं देख रहे थे। इस कारण वे सभी सैकड़ों बार हजारों बार तथा उससे भी अधिक बार सर्वभूतों के अधिपति शिव की तथा वैदिक मंत्रों की निन्दा करते हुए विष्णु की माया से मोहित हुए दक्ष के वचनों का अनुमोदन करने लगे।

देवाश्च सर्वे भागार्थमागता वासवादयः।
नापश्यन्देवमीशानमृते नारायणं हरिम्॥ २१॥

उस समय यज्ञ में भाग लेने के लिए इन्द्रादि देव आये थे, नारायण हरि के अतिरिक्त ईशान शिव को किसी ने नहीं देखा।

हिरण्यगर्भो भगवान्ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः।
पश्यतामेव सर्वेषां क्षणादन्तरधीयत॥ २२॥

तब ब्रह्मविदों में श्रेष्ठ, भगवान् हिरण्यगर्भ ब्रह्मा (यज्ञ के विनाश की आशंका से) सबके देखते ही क्षणभर में अन्तर्ध्यान हो गये।

अन्तर्हिते भगवति दक्षो नारायणं हरिम्।
रक्षकं जगतां देवं जगाम शरणं स्वयम्॥ २३॥

भगवान् के अन्तर्हित हो जाने पर दक्ष स्वयं संसार के पालक नारायण देव हरि की शरण में गये।

प्रवर्तयामास च तं यज्ञं दक्षोऽथ निर्भयः।
रक्षको भगवान्विष्णुः शरणागतरक्षकः॥ २४॥

दक्ष ने निर्भय होकर यज्ञ प्रारंभ कर दिया। शरणागत के पालक भगवान् विष्णु उनके रक्षक थे।

पुनः प्राह च तं दक्षं दधीचो भगवानृषिः।
संप्रेक्ष्यर्षिगणान्देवान्सर्वान्वै रुद्रविद्विषः॥ २५॥

भगवान् ऋषि दधीच सभी ऋषियों और देवों को रुद्रद्वेषी देखकर दक्ष को पुनः कहने लगे।

अपूज्यपूजने चैव पूज्यानां चाप्यपूजने।
नरः पापमवाप्नोति महद्वै नात्र संशयः॥ २६॥

अपूज्य व्यक्ति की पूजा करने और पूज्य व्यक्ति की पूजा न करने पर मनुष्य महान् पाप को प्राप्त होता है, इसमें थोड़ा भी संशय नहीं।

असतां प्रग्रहो यत्र सतांश्चैव विमानना।
दण्डो दैवकृतस्तत्र सद्यः पतति दारुणः॥ २७॥

जहाँ असत् व्यक्तियों का आदर होता है तथा सज्जनों की मानहानि होती है, वहाँ दैवकृत दारुण दण्ड आकर अवश्य ही गिरता है।

एवमुक्त्वाथ विप्रर्षिः शशापेश्वरविद्विषः।
समागतान्ब्राह्मणांस्तान्दक्षसाहाय्यकारिणः॥ २८॥

इतना कहने के बाद उस विप्रर्षि दधीच ने वहाँ पर आये हुए दक्ष की सहायता करने वाले ईश्वरद्वेषी उन ब्राह्मणों को शाप दे दिया।

यस्माद्बहिः कृतो वेदाद्भवद्भिः परमेश्वरः।
विनिन्दितो महादेवः शंकरो लोकवन्दितः॥ २९॥
भविष्यन्ति त्रयीबाह्याः सर्वेऽपीश्वरविद्विषः।
निन्दन्तीश्वरं मार्गं कुशास्त्रासक्तचेतसः॥ ३०॥
मिथ्याधीतसमाचारा मिथ्याज्ञानप्रलापिनः।
प्राप्य घोरं कलियुगं कलिजैः परिपीडिताः॥ ३१॥

क्योंकि आप सब ने परमेश्वर को वेद-विधान से बहिष्कृत कर दिया है और समस्त लोकों के द्वारा वन्दित महादेव की विशेष रूप से निन्दा की है, इसलिए आप सभी ईश्वर शंकर से द्वेष करने वाले वेद-मार्ग से भ्रष्ट हो जायेंगे। और जो यहाँ कुशास्त्रों में आसक्त चित्त वाले होकर ईश्वरीय मार्ग की निन्दा करते हैं, उनका अध्ययन तथा आचार-विचार मिथ्या हो जायेगा। वैसे ही मिथ्याज्ञान के प्रलापी

परम घोर कलियुग को प्राप्त करके कलि में जन्म लेने वालों के द्वारा चारों ओर से पीड़ित होंगे।

त्यक्त्वा तपोबलं कृत्स्नं गच्छध्वं नरकान्पुन:।
भविष्यति हृषीकेश: स्वाश्रितोऽपि पराङ्मुख:॥ ३२॥

तुम लोग अपने संपूर्ण तपोबल का त्याग करके पुन: नरकों को प्राप्त हो जाओ। अपना आश्रय बने भगवान् हृषीकेश भी विमुख हो जायेंगे।

एवमुक्त्वाथ विप्रर्षिर्विरराम तपोनिधि:।
जगाम मनसा रुद्रमशेषाघविनाशनम्॥ ३३॥

तपोनिधि वह ब्रह्मर्षि इस प्रकार कहकर रुक गये और पुन: वे मन से अशेष पापों के विनाशक रुद्रदेव की शरण में चले गये।

एतस्मिन्नन्तरे देवी महादेवं महेश्वरम्।
पतिं पशुपतिं देवं ज्ञात्वैतत्प्राह सर्वदृक्॥ ३४॥

इसी मध्य यह सब जानकर सर्वदृक् महादेवी सती ने महेश्वर-पशुपति देव महादेव को जाकर कहा।

दक्षो यज्ञेन यजते पिता मे पूर्वजन्मनि।
विनिन्द्य भवतो भावमात्मानं चापि शंकर॥ ३५॥

पूर्वजन्म के मेरे पिता दक्ष आप की प्रतिष्ठा तथा स्वयं की भी निन्दा करते हुए यज्ञ का अनुष्ठान कर रहे हैं।

देवा महर्षयश्चासंस्तत्र साहाय्यकारिण:।
विनाशयाशु तं यज्ञं वरमेतं वृणोम्यहम्॥ ३६॥

वहां अनेक देवता और महर्षि भी उनकी सहायता करने वाले हैं। आप शीघ्र ही उस यज्ञ को नष्ट कर दें, यही वर मैं मांगती हूँ।

एवं विज्ञापितो देव्या देवदेव: पर: प्रभु:।
ससर्ज सहसा रुद्रं दक्षयज्ञजिघांसया॥ ३७॥

इस प्रकार सती के द्वारा विशेषरूप से निवेदित परम प्रभु महादेव ने दक्ष के यज्ञ का विनाश करने के लिए सहसा रुद्र रूप को उत्पन्न किया।

सहस्रशिरसं क्रुद्धं सहस्राक्षं महाभुजम्।
सहस्रपाणिं दुर्द्धर्षं युगान्तानलसन्निभम्॥ ३८॥

दंष्ट्राकरालं दुष्प्रेक्ष्यं शङ्खचक्रधरं प्रभुम्।
दण्डहस्तं महानादं शार्ङ्गिणं भूतिभूषणम्॥ ३९॥

वह रुद्र सहस्रशिर, सहस्राक्ष और महाभुजाओं से युक्त था। वह क्रुद्ध, दुर्धर्ष तथा प्रलयकालीन अग्नि के समान दिखाई देता था। उसकी दंष्ट्रा बड़ी विकराल थी। वह दुष्प्रेक्ष्य, शंखचक्रधारी, प्रभु, दण्डहस्त, महानादकारी और भस्मभूषित था।

वीरभद्र इति ख्यातं देवदेवसमन्वितम्।
स जातमात्रो देवेशमुपतस्थे कृताञ्जलि:॥ ४०॥

वह महादेव की कान्ति से समन्वित वीरभद्र नाम से विख्यात था। वह जैसे ही उत्पन्न हुआ, हाथ जोड़कर देवेश्वर के समीप खड़ा हो गया था।

तमाह दक्षस्य मखं विनाशय शिवोऽस्तु ते।
विनिन्द्य मां स यजते गङ्गाद्वारे गणेश्वर॥ ४१॥

शिवजी ने कहा- तुम्हारा कल्याण हो और उस वीरभद्र को दक्ष के यज्ञ का विनाश करने के लिए आज्ञा दी। हे गणेश्वर! वह मेरी निन्दा करके गंगाद्वार में यज्ञ कर रहा है।

ततो बन्धप्रमुक्तेन सिंहेनैकेन लीलया।
वीरभद्रेण दक्षस्य विनाशमगमत्क्रतु:॥ ४२॥

इसके अनन्तर बन्धन से मुक्त एक सिंह के समान वीरभद्र ने अनायास ही दक्ष के यज्ञ को नष्ट कर डाला।

मन्युना चोमया सृष्टा भद्रकाली महेश्वरी।
तया च सार्द्धं वृषभं समारुह्य ययौ गण:॥ ४३॥

उस समय पार्वती ने क्रोध से महेश्वरी भद्रकाली का सृजन किया था। उसी के साथ वह गण वृषभ पर चढ़कर वहाँ गया था।

अन्ये सहस्रशो रुद्रा निसृष्टास्तेन धीमता।
रोमजा इति विख्यातास्तस्य साहाय्यकारिण:॥ ४४॥

उस धीमान् ने अन्य भी हजारों रुद्रों का सृजन कर दिया था। उसकी सहायता करने वाले वे रुद्रगण रोमज नाम से विख्यात हुए थे अथवा वे रोम से उत्पन्न हुए थे।

शूलशक्तिगदाहस्ता दण्डोपलकरास्तथा।
कालाग्निरुद्रसङ्काशा नादयन्तो दिशो दश॥ ४५॥

उनके हाथों में शूल-शक्ति और गदा थी। कुछ रुद्र दण्ड और उपल हाथों में ग्रहण किये हुए थे। सभी कालाग्नि रुद्र के समान थे और दशों दिशाओं को निनादित कर रहे थे।

सर्वे वृषभमारूढा सभार्याश्चातिभीषणा:।
समावृत्य गणश्रेष्ठं ययुर्दक्षमखं प्रति॥ ४६॥

सभी रुद्र भार्याओं के सहित वृषभ पर समारूढ़ और अत्यन्त भीषण स्वरूप वाले थे। वे गणश्रेष्ठ वीरभद्र को समावृत करके ही दक्ष के यज्ञ की ओर गये थे।

सर्वे सम्प्राप्य तं देशं गङ्गाद्वारमिति श्रुतम्।
ददृशुर्यज्ञदेशं वै दक्षस्यामिततेजस:॥४७॥

गंगाद्वार (हरिद्वार) नाम से प्रसिद्ध उस स्थान पर जाकर उन्होंने अतिशय तेजस्वी दक्ष के यज्ञस्थल को देखा।

देवाङ्गनासहस्राढ्यमप्सरोगीतनादितम्।
वेणुवीणानिनादाढ्यं वेदवादाभिनादितम्॥४८॥

वह यज्ञस्थल हजारों देवांगनाओं से युक्त, अप्सराओं के गीतों से निनादित, वेणु तथा वीणा की मधुर ध्वनि से संयुक्त, वेदों के स्वर से शब्दायमान था।

दृष्ट्वा सहर्षिभिर्देवै: समासीनम्प्रजापतिम्॥४९॥
उवाच स प्रियो रुद्रैर्वीरभद्र: स्मयन्निव॥५०॥
वयं ह्यनुचरा: सर्वे शर्वस्यामिततेजस:।
भागार्थं लिप्सया भागान् प्राप्ता यच्छत्वमीप्सितान्॥५१॥

वहां देवों तथा ऋषियों के साथ बैठे हुए प्रजापति दक्ष को देखकर समस्त रुद्रगणों के साथ उस प्रिय वीरभद्र ने मुस्कुराते हुए कहा— हम सब अपरिमित तेज वाले भगवान् शिव के अनुचर हैं। यज्ञ में अपने भाग लेने की इच्छा से हम यहाँ आये हैं, अत: आप हमारे इच्छित भागों को प्रदान करें।

अथ चेत्कस्यचिदियं माया मुनिवरोत्तमा:।
भागो भवद्भ्यो देयस्तु नास्मभ्यमिति कथ्यताम्॥५२॥

हे मुनिवरों में श्रेष्ठ मुनियो! यह किसकी माया (चाल अथवा आज्ञा) है कि यह भाग आप लोगों को ही देय है हमारे लिए नहीं है— कृपया यह बता दीजिए।

तम्ब्रूताज्ञापयति यो वेत्स्यामो हि वयं तत:।
एवमुक्ता गणेशेन प्रजापतिपुर:सरा:॥५३॥

जो आपको आज्ञा करता है, उसको भी हमें बता दो। जिससे हम उसे जान लेंगे (उसकी भी खबर लेंगे)। उस गणेश्वर ने प्रजापति सहित सबको इस प्रकार कहा था।

देवा ऊचु:

प्रमाणं वो न जानीमो भागे मन्त्रा इति प्रभुम्।
मन्त्रा ऊचु: सुरा यूयं तमोपहतचेतस:॥५४॥
येनाध्वरस्य राजानं पूजयेयुर्महेश्वरम्।
ईश्वर: सर्वभूतानां सर्वदेवतनुर्हर:॥५५॥
पूज्यते सर्वयज्ञेषु सर्वाभ्युदयसिद्धिद:।

देवों ने कहा— आपके देय भाग में मन्त्र हैं, यह प्रमाण प्रभु के बारे में हम नहीं जानते हैं। (ऐसा कहने पर) मन्त्रों ने कहा था कि तुम सब देव तम से अपहृत चित्त वाले होकर यज्ञ के अधिपति महेश्वर का पूजन नहीं कर रहे हो। जो समस्त प्राणियों का ईश्वर, सर्वदेवों का तनु हर है वे तो सभी यज्ञों में पूजे जाते हैं और सब प्रकार के अभ्युदय और सिद्धियों को प्रदान करने वाले हैं।

एवमुक्त्वा महेशानमायया नष्टचेतना:॥५६॥
न मेनिरे ययुर्मन्त्रा देवान्मुक्त्वा स्वमालयम्।

इस प्रकार कहने पर वे महेशान की माया से नष्ट चेतना वाले हो गये और उन्होंने यह बात नहीं मानी। तब मन्त्रों ने देवों का त्यागकर अपने स्थान को प्रस्थान किया।

तत: सभद्रो भगवान् सभार्य: सगणेश्वर:॥५७॥
स्पृशन् कराभ्यां विप्रर्षिं दधीचं प्राह देवहा॥
मन्त्रा: प्रमाणं न कृता युष्माभिर्बलदर्पितै:॥५८॥
यस्मात्प्रसह्य तस्माद्वो नाशयाम्यद्य गर्वितान्।
इत्युक्त्वा यज्ञशालां तां ददाह गणपुङ्गव:॥५९॥

इसके उपरान्त अपने गणेश्वरों तथा भार्या भद्रकाली के सहित उस वीरभद्र भगवान् ने करों से विप्रर्षि दधीच को स्पर्श करते हुए उनसे कहा था कि— अपने बल से गर्वित होकर आप महर्षियों ने वेदमन्त्रों को प्रमाण नहीं माना, इसलिए गर्वित हुए आप सब का आज मैं बलपूर्वक नाश करता हूँ। इतना कहकर गणों में परम श्रेष्ठ उस वीरभद्र ने यज्ञशाला को जला दिया।

गणेश्वराश्च संक्रुद्धा यूपानुत्पाट्य चिक्षिपु:।
प्रस्तोत्रा सह होत्रा च अश्वञ्चैव गणेश्वरा:॥६०॥
गृहीत्वा भीषणा: सर्वे गङ्गास्रोतसि चिक्षिपु:।

अन्य गणेश्वरों ने भी संक्रुद्ध होकर यज्ञशाला के खंभे उखाड़कर फेंक दिये। अति भयानक उन सभी गणेश्वरों ने प्रस्तोता और होता के सहित अश्व को पकड़कर गंगा की धारा में बहा दिया।

वीरभद्रोऽपि दीप्तात्मा शक्रस्यैवोद्यतं करम्॥६१॥
व्यष्टम्भयददीनात्मा तथान्येषां दिवौकसाम्।
भगनेत्रे तथोत्पाट्य कराग्रेणैव लीलया॥६२॥

उस दीप्तशरीर वाले और अदीनात्मा वीरभद्र ने भी इन्द्र के तथा अन्यान्य देवताओं के उठे हुए हाथों को वहीं स्तम्भित कर दिया। उसी प्रकार भग के नेत्रों को कर के अग्रभाग से बिना यत्न के ही उत्पाटित कर दिया था।

निहत्य मुष्टिना दन्तान् पूष्णश्चैवमपातयत्।

तथा चन्द्रमसं देवं पादाङ्गुष्ठेन लीलया॥६३॥
धर्षयामास बलवान् स्मयमानो गणेश्वरः।

पूषा के दाँतों को अपनी मुष्टि के प्रहार से तोड़कर भूमि पर गिरा दिया और वैसे ही उस महान् बलशाली गणेश्वर वीरभद्र ने मुस्कुराते हुए अनायास ही अपने पैर के अंगूठे से चन्द्रमा को भी धर्षित कर दिया था।

वह्नेर्हस्तद्वयं छित्त्वा जिह्वामुत्पाट्य लीलया॥६४॥
जघान मूर्ध्नि पादेन मुनीनपि मुनीश्वराः।

हे मुनीश्वरो! अग्नि के दोनों हाथों को काटकर उसकी जीभ को भी अनायास ही उखाड़ दिया था और दूसरे मुनियों को भी पैरों से मस्तक पर प्रहार किया था।

तथा विष्णुं सगरुडं समायान्तं महाबलः॥६५॥
विव्याध निशितैर्बाणैः स्तम्भयित्वा सुदर्शनम्।
समालोक्य महाबाहुरागत्य गरुडो गणम्॥६६॥
जघान पक्षैः सहसा ननादाम्बुनिधिर्यथा।
ततः सहस्रशो रुद्रः ससर्ज गरुडान् स्वयम्॥६७॥
वैनतेयादभ्यधिकान् गरुडं ते प्रदुद्रुवुः।
तान्दृष्ट्वा गरुडो धीमान् पलायत महाजवः॥६८॥
विसृज्य माधवं वेगात्तदद्भुतमिवाभवत्।

उस महाबली ने गरुड़ वाहन पर विराजमान होकर आ रहे विष्णु को देखकर सुदर्शन चक्र को स्तम्भित करके अनेक तीक्ष्ण बाणों से उन्हें बींध डाला था। तब महाबाहु गरुड़ ने वहाँ आकर उस गणेश्वर को अपने पक्षों से ताड़ित किया और समुद्र के समान गर्जना करने लगे। इसके उपरान्त रुद्र ने स्वयं सहस्रों गरुड़ों का सृजन किया, जो विनता के पुत्र से भी अधिक थे। उन्होंने उस गरुड़ पर आक्रमण कर दिया। उनको देखकर बुद्धिमान् गरुड़ बड़े ही वेग से वहाँ से भगवान् विष्णु को छोड़कर भाग निकले थे। यह एक आश्चर्य सा हुआ था।

अन्तर्हिते वैनतेये भगवान् पद्मसम्भवः॥६९॥
आगत्य वारयामास वीरभद्रञ्च केशवम्।
प्रासादयामास च तं गौरवात्परमेष्ठिनः॥७०॥

उस वैनतेय के अन्तर्हित हो जाने पर भगवान् पद्मयोनि वहाँ आ गये थे। उन्होंने केशव को और वीरभद्र को रोका। तब वे भी परमेष्ठी ब्रह्मा के सम्मान के कारण दोनों एक दूसरे को प्रसन्न करने लगे।

संस्तूय भगवानीशं शम्भुस्तत्रागमत्स्वयम्।
वीक्ष्य देवाधिदेवं तमुमां सर्वगुणैर्युताम्॥७१॥
तुष्टाव भगवान् ब्रह्मा दक्षः सर्वे दिवौकसः।
विशेषात्पार्वतीं देवीमीश्वरार्द्धशरीरिणीम्॥७२॥

उस ईश्वर (वीरभद्र तथा विष्णु) की स्तुति-प्रशंसा करते हुए भगवान् शम्भु स्वयं वहाँ पर आ गये। उस समय देवों के भी अधिदेव और समस्त गुणों से समावृत उमा का दर्शन करके भगवान् ब्रह्मा, दक्ष और समस्त देवगण उनकी स्तुति करने लगे। विशेष रूप से ईश्वर की अर्धशरीरिणी पार्वती की स्तुति की थी।

स्तोत्रैर्नानाविधैर्दक्षः प्रणम्य च कृताञ्जलिः।
ततो भगवती देवी प्रहसन्ती महेश्वरम्॥७३॥
प्रसन्नमनसा रुद्रं वचः प्राह घृणानिधिः।
त्वमेव जगतः स्रष्टा शासिता चैव रक्षिता॥७४॥

दक्ष ने नानाविध स्तुतिमंत्रों से कृताञ्जलि होकर प्रणाम किया। तब भगवती देवी ने प्रसन्न मन से हँसते हुए महेश्वर रुद्र से कहा- हे दयानिधे! आप ही इस जगत् के सृजन करने वाले हैं और आप ही इस पर शासन करते हैं तथा इसकी रक्षा भी करते हैं।

अनुग्राह्यो भगवता दक्षश्चापि दिवौकसः।
ततः प्रहस्य भगवान् कपर्दी नीललोहितः॥७५॥
उवाच प्रणतान्देवान् प्राचेतसमथो हरः।
गच्छध्वं देवताः सर्वाः प्रसन्नो भवतामहम्॥७६॥

आपको अब इस दक्ष पर और समस्त देवगण पर भी अनुग्रह करना चाहिए। इसके पश्चात् भगवान् नीललोहित कपर्दी हँस पड़े। तब हर ने उन प्रणत हुए देवों से तथा प्राचेतस से कहा— हे देवगणो! अब आप चले जाइए। मैं आप पर प्रसन्न हूँ।

संपूज्यः सर्वयज्ञेषु न निन्द्योऽहं विशेषतः।
त्वञ्चापि शृणु मे दक्ष वचनं सर्वरक्षणम्॥७७॥

आपको सभी यज्ञों में मेरी भली-भाँति पूजा करनी चाहिए और विशेष रूप से कभी भी मेरी निन्दा न करें और हे दक्ष! तुम भी सब की रक्षा करने वाला मेरा यह वचन सुनो।

त्यक्त्वा लोकैषणामेतां मद्भक्तो भव यत्नतः।
भविष्यसि गणेशानः कल्पान्तेऽनुग्रहान्मम॥७८॥

अब इस लोकैषणा का त्याग करके यत्नपूर्वक मेरे भक्त बन जाओ। ऐसा करने से इस कल्प के अन्त में मेरे इस अनुग्रह से तुम गणाधिपति बन जाओगे।

तावत्तिष्ठ ममादेशात्स्वाधिकारेषु निर्वृतः।
एवमुक्त्वा तु भगवान् सपत्नीकः सहानुगः॥७९॥
अदर्शनमनुप्राप्तो दक्षस्यामिततेजसः।
अन्तर्हिते महादेवे शंकरे पद्मसम्भवः॥८०॥
व्याजहार स्वयं दक्षमशेषजगतो हितम्।

तब तक मेरे आदेश से अपने अधिकारों से निर्वृत होते हुए स्थित रहो। इस प्रकार कहकर अपनी पत्नी तथा अपने अनुचरों के सहित भगवान् शम्भु उन अमित तेजस्वी दक्ष के लिए अदृश्य हो गये। महादेव शंकर के अन्तर्धान हो जाने पर पद्मसंभव ब्रह्मा जी ने स्वयं पूर्ण रूप से इस जगत् के हितकर वचन दक्ष प्रजापति से कहा।

ब्रह्मोवाच–

किमर्थं भवतो मोहः प्रसन्ने वृषभध्वजे॥८१॥
यदा च स स्वयं देवः पालयेत्त्वामतन्द्रितः।
सर्वेषामेव भूतानां हृद्येष परमेश्वरः॥८२॥

ब्रह्मा जी ने कहा— जब वृषभध्वज शंकर प्रसन्न हो गये हैं, तब आपको यह मोह कैसा? क्योंकि वे देव स्वयं अतन्द्रित होकर आपका पालन कर रहे हैं। यह परमेश्वर सभी भूतों के हृदय में विराजमान रहते हैं।

पश्यन्ति यं ब्रह्मभूता विद्वांसो वेदवादिनः।
स चात्मा सर्वभूतानां स बीजं परमा गतिः॥८३॥

जो ब्रह्मभूत वेदवादी मनीषी हैं, वे इनको देखा करते हैं। वे समस्त भूतों की आत्मा है, वे ही हम सब का बीजरूप है और वे ही परम गति हैं।

स्तूयते वैदिकैर्मन्त्रैर्देवदेवो महेश्वरः।
तमर्चयन्ति ये रुद्रं स्वात्मना च सनातनम्॥८४॥
चेतसा भावयुक्तेन ते यान्ति परमं पदम्।

देवों के देव महेश्वर वैदिक मन्त्रों के द्वारा संस्तुत हुआ करते हैं। उस सनातन रुद्र का स्वात्मा के द्वारा भावयुक्त चित्त से जो अर्चन किया करते हैं वे लोग निश्चय ही परम पद को प्राप्त करते हैं।

तस्मादनादिमध्यान्तं विज्ञाय परमेश्वरम्॥८५॥
कर्मणा मनसा वाचा समाराधय यत्नतः।
यत्नात्परिहरेशस्य निन्दा स्वात्मविनाशनीम्॥८६॥

इसलिए आदि मध्य और अन्त से रहित परमेश्वर को विशेष रूप से जानकर, कर्म-वचन और मन से यत्नपूर्वक उनका ही समाराधन करो और यत्नपूर्वक अपनी ही आत्मा का विनाश करने वाली ईश की निन्दा का परित्याग कर दो।

भवन्ति सर्वदोषाय निन्दकस्य क्रिया हि ताः।
यस्तु चैव महायोगी रक्षको विष्णुरव्ययः॥८७॥
स देवो भगवान्रुद्रो महादेवो न संशयः।

शिव की निन्दा करने वाले की वे सब क्रियाएँ केवल दोष के लिए ही हुआ करती है। यह जो महायोगी, अव्यय विष्णु रक्षा करने वाले हैं, वह देव भगवान् रुद्र महादेव ही हैं— इसमें तनिक भी संशय नहीं है।

मन्यन्ते ते जगद्योनिं विभिन्नं विष्णुमीश्वरात्॥८८॥
मोहादवेद निष्ठत्वात्ते यान्ति नरकं नराः।
वेदानुवर्तिनो रुद्रं देवं नारायणं तथा॥८९॥
एकीभावेन पश्यन्ति मुक्तिभाजो भवन्ति ते।
यो विष्णुः स स्वयं रुद्रो यो रुद्रः स जनार्दनः॥९०॥

जो लोग जगत् के योनिरूप विष्णु को ईश्वर से भिन्न मानते हैं, इसका कारण एकमात्र मोह ही होता है और वे मनुष्य अवेदनिष्ठ होने से नरक को प्राप्त करते हैं। जो वेदों के अनुवर्ती मनुष्य होते हैं वे रुद्र देव और भगवान् नारायण को एकीभाव से ही देखा करते हैं और वे निश्चय ही मुक्ति के भाजन होते हैं। जो विष्णु हैं वे ही स्वयं रुद्र हैं और जो रुद्र हैं वे ही भगवान् जनार्दन हैं।

इति मत्वा भजेद्देवं स याति परमां गतिम्।
सृजत्येष जगत्सर्वं विष्णुस्तत्पश्यतीश्वरः॥९१॥

यही एकीभाव मानकर जो देव का भजन करते हैं वे परम गति को प्राप्त हुआ करते हैं। ये विष्णु इस सम्पूर्ण जगत् का सृजन किया करते हैं और वे ईश्वर सब देखते रहते हैं।

इत्थं जगत्सर्वमिदं रुद्रनारायणोद्भवम्।
तस्मात्त्यक्त्वा हरेर्निन्दां हरे चापि समाहितः॥९२॥
समाश्रय महादेवं शरण्यं ब्रह्मवादिनाम्।

इस प्रकार से यह समस्त जगत् रुद्र और नारायण से उद्भव को प्राप्त है। इसलिए हरि की निन्दा का त्याग करके हर-शिव में ही समाहित चित्त होकर ब्रह्मवादियों के शरण लेने योग्य महादेव का ही आश्रय ग्रहण करो।

उपश्रुत्याथ वचनं विरिञ्चस्य प्रजापतिः॥९३॥
जगाम शरणं देवं गोपतिं कृत्तिवाससम्।
येऽन्ये शापाग्निनिर्दग्धाः दधीचस्य महर्षयः॥९४॥

द्विषन्तो मोहिता देवं सम्बभूवु: कलिष्वथ।
त्यक्त्वा तपोबलं कृत्स्नं विप्राणां कुलसम्भवा:॥१५॥
पूर्वसंस्कारमाहात्म्याद्ब्रह्मणो वचनादिह।

ब्रह्मा का यह वचन सुनकर प्रजापति दक्ष गोपति श्रीविष्णु तथा व्याघ्रचर्मधारी महादेव की शरण में आ गये। अन्य जो दधीच ऋषि की शापाग्नि से दग्ध महर्षिगण थे, वे सब शंकरदेव से द्वेष रखने वाले होने के कारण मोहित होकर कलियुग के पापलोकों में उत्पन्न हुए थे। वे (दक्ष का पक्ष लेने के कारण) अपने सम्पूर्ण तपोबल को त्याग कर अपने पूर्व जन्म के संस्कारों के कारण और ब्रह्माजी के वचन से इस लोक में ब्राह्मणों के कुल में उत्पन्न हुए थे।

मुक्तशापास्तत: सर्वे कल्पान्ते रौरवादिषु॥१६॥
निपात्यमाना: कालेन सम्प्राप्यादित्यवर्चसम्।
ब्रह्माणं जगतामीशमनुज्ञाता: स्वयम्भुवा॥१७॥
समाराध्य तपोयोगादीशानं त्रिदशाधिपम्।
भविष्यन्ति यथापूर्वं शंकरस्य प्रसादत:॥१८॥

अनन्तर वे शापग्रस्त होने कारण रौरव आदि नरकों में गिराये गये थे। अब वे समय आने पर सूर्य के समान तेजस्वी जगत्पति ब्रह्मा के पास जाकर वहाँ स्वयम्भू ब्रह्मा द्वारा अनुज्ञात होकर अर्थात् उनसे सम्मति प्राप्तकर, पुन: देवाधिपति ईशान की समाराधना करके, तपोयोग से तथा भगवान् शंकर की कृपा से पहले जैसी स्थिति को प्राप्त होंगे।

एतद्व: कथितं सर्वं दक्षयज्ञनिषूदनम्।
शृणुध्वं दक्षपुत्रीणां सर्वासां चैव सन्ततिम्॥१९॥

यह दक्ष प्रजापति के यज्ञ के विध्वंस का पूरा वृत्तान्त हमने कह दिया है। अब दक्षपुत्रियों संपूर्ण सन्तति के विषय में सुनो।

इति कूर्मपुराणे पूर्वभागे दक्षयज्ञविध्वंसो नाम
पञ्चदशोऽध्याय:॥१५॥

षोडशोऽध्याय:

(दक्षकन्याओं का वंश-कथन)

सूत उवाच-

प्रजा: सृजेति सन्दिष्ट: पूर्वं दक्ष: स्वयंभुवा।
ससर्ज देवान् गन्धर्वानृषींश्चैवासुरोरगान्॥१॥

महर्षि सूत बोले— 'प्रजा की सृष्टि करो' ऐसा स्वयम्भू के द्वारा आदेश प्राप्त करके पहले दक्ष प्रजापति ने देव, गन्धर्व, ऋषि, असुर और सर्पों का सृजन किया था।

यदास्य सृजत: पूर्वं न व्यवर्द्धन्त ता: प्रजा:।
तदा ससर्ज भूतानि मैथुनेनैव सर्वत:॥२॥

(परन्तु) पूर्व में जब दक्ष द्वारा उत्पन्न प्रजा वृद्धि को प्राप्त नहीं हुई, तब सब प्रकार से मैथुन-धर्म के द्वारा ही भूतों का सृजन किया।

असिक्न्यां जनयामास वीरणस्य प्रजापते:।
सुतायां धर्मयुक्तायां पुत्राणान्तु सहस्रकम्॥३॥

उन्होंने प्रजापति वीरण की परम धर्मयुक्ता पुत्री असिक्नी में एक हजार पुत्रों को उत्पन्न किया।

तेषु पुत्रेषु नष्टेषु मायया नारदस्य तु।
षष्टिं दक्षोऽसृजत्कन्या वैरिण्यां वै प्रजापति:॥४॥

नारद की माया से उन पुत्रों के नष्ट हो जाने पर दक्ष प्रजापति ने उस वैरिणी (असिक्नी) में साठ कन्याओं को उत्पन्न किया।

ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश।
विंशत्सप्त च सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमये॥५॥

उसने उन कन्याओं में से दश कन्याएँ धर्म को प्रदान की थीं। तेरह कश्यप को दी थीं। सताईस चन्द्र को अर्पित की और चार अरिष्टनेमि को दी।

द्वे चैव बहुपुत्राय द्वे कृशाश्वाय धीमते।
द्वे चैवांगिरसे तद्वत्तासां वक्ष्येऽथ विस्तरम्॥६॥

दो बहुपुत्र को और दो धीमान् कृशाश्व को दी थीं। दो अंगिरा ऋषि को प्रदान की थीं। उसी भाँति अब उनके वंशविस्तार को कहता हूँ।

मरुत्वती वसुर्यामी लम्बा भानुररुन्धती।
संकल्पा च मुहूर्ता च साध्या विश्वा च भामिनी॥७॥
धर्मपत्न्यो दश त्वेतास्तासां पुत्रान्निबोधत।
विश्वेदेवास्तु विश्वायां साध्या साध्यानजीजनत्॥८॥

उन दश कन्याओं के नाम हैं— मरुत्वती, वसु, यामी, लम्बा, भानु, अरुन्धती, संकल्पा, मुहूर्ता, साध्या और विश्वा। ये दश धर्म की पत्नियाँ थी। उनके सब के जो पुत्र हुए थे उनको भी अब जान लीजिए। विश्वा में विश्वेदेवों ने जन्म ग्रहण किया था और साध्या ने साध्यों को जन्म दिया था।

मरुत्वत्यां मरुत्वन्तो वस्वास्तु वसवस्तथा।
भानोस्तु भानवश्चैव मुहूर्त्तास्तु मुहूर्त्तजाः॥ ९॥

मरुत्वती में मरुत्वान् हुए और वसु से (आठ) वसुगण उत्पन्न हुए थे। भानु से (द्वादश) भानुगण हुए और मुहूर्त नामक पुत्र ने मुहर्ता नाम की पत्नी से हुए थे।

लम्बायाश्चाथ घोषो वै नागवीथी तु यामिजा।
पृथिवीविषयं सर्वमरुन्धत्यामजायत॥ १०॥

लम्बा से घोष की उत्पत्ति हुई थी तथा नागवीथी नामक कन्या यामी से उत्पन्न हुई। अरुन्धती में समस्त पृथिवी के विषय उत्पन्न हुए थे।

संकल्पायास्तु संकल्पो धर्मपुत्रा दश स्मृताः।
ये त्वनेकवसुप्राणा देवा ज्योतिःपुरोगमाः॥ ११॥

संकल्पा से संकल्प नामक पुत्र हुआ। इस प्रकार ये दश धर्म के पुत्र कहे जाते हैं। जो ये अनेक वसु अथवा अनेक प्रकार के धन जिनके प्राण कहे जाते हैं, वे ज्योतिष् आदि देव कहे गये हैं।

वसवोऽष्टौ समाख्यातास्तेषां वक्ष्यामि विस्तरम्।
आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानलोऽनिलः॥ १२॥
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्त्तिताः।
आपस्य पुत्रो वैतण्ड्यः श्रमः शान्तो ध्वनिस्तथा॥ १३॥

वसुगण आठ बताये गये हैं, उनका विस्तारपूर्वक वर्णन करूँगा। आप, ध्रुव, सोम, धर, अनल, अनिल, प्रत्यूष, प्रभास- ये आठ वसु नामक देव कहे गये हैं। आप नामक वसु के पुत्र वैतण्ड्य, श्रम, शान्त तथा ध्वनि हुए।

ध्रुवस्य पुत्रो भगवान् कालो लोकप्रकाशनः।
सोमस्य भगवान्वर्चा धरस्य द्रविणः सुतः॥ १४॥

ध्रुव नामक वसु का पुत्र लोक को प्रकाशित करने वाले भगवान् काल हुए थे और सोम का पुत्र भगवान् वर्चस् तथा धर वसु का पुत्र द्रविण हुआ।

मनोजवोऽनिलस्यासीदविज्ञातगतिस्तथा।
कुमारो ह्यनलस्यासीत्सेनापतिरिति स्मृतः॥ १५॥

(पाँचवें वसु) अनिल का पुत्र अविज्ञातगति तथा मनोजव था। अनल का कुमार सेनापति नाम से प्रसिद्ध था।

देवलो भगवान्योगी प्रत्यूषस्याभवत्सुतः।
विश्वकर्मा प्रभासस्य शिल्पकर्त्ता प्रजापतिः॥ १६॥

भगवान् योगी देवल प्रत्यूष के पुत्र हुए। प्रभास (नामक अष्टम वसु) के पुत्र प्रजापति, शिल्प कार्य के कुशल कर्त्ता विश्वकर्मा हुए थे।

अदितिर्दितिर्दनुस्तद्वदरिष्टा सुरसा तथा।
सुरभिर्विनता चैव ताम्रा क्रोधवशा त्विरा॥ १७॥
कद्रुर्मुनिश्च धर्मज्ञा तत्पुत्रान्वै निबोधत।
अंशो धाता भगस्त्वष्टा मित्रोऽथ वरुणोऽर्यमा॥ १८॥
विवस्वान् सविता पूषा ह्यंशुमान्विष्णुरेव च।
तुषिता नाम ते पूर्वं चाक्षुषस्यान्तरे मनोः॥ १९॥
वैवस्वतेऽन्तरे प्रोक्ता आदित्याश्चादितेः सुताः।
दितिः पुत्रद्वयं लेभे कश्यपाद्बलगर्वितम्॥ २०॥
हिरण्यकशिपुं ज्येष्ठं हिरण्याक्षं तथानुजम्।
हिरण्यकशिपुर्दैत्यो महाबलपराक्रमः॥ २१॥

(उनकी पुत्रियां) अदिति, दिति, दनु, उसी भाँति अरिष्टा, सुरसा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रु और धर्मज्ञा मुनि हुईं। वैसे ही उनके पुत्रों को भी जान लो- धाता, भग, त्वष्टा, मित्र, वरुण, अर्यमा, विवस्वान्, सविता, पूषा— अंशुमान् विष्णु, ये तुषित नाम से प्रसिद्ध प्रथम चाक्षुष मन्वन्तर में हुए थे। वैवस्वत मन्वन्तर में अदिति के पुत्र आदित्य कहे गये हैं। दिति ने कश्यप ऋषि से बलगर्वित दो पुत्रों को प्राप्त किया था। उनमें जो सबसे बड़ा था उसका नाम हिरण्यकशिपु था और जो उसका छोटा भाई था उसका नाम हिरण्याक्ष था। हिरण्यकशिपु दैत्य महान् बलशाली और पराक्रमी था।

आराध्य तपसा देवं ब्रह्माणं परमेश्वरम्।
दृष्ट्वा लेभे वरान्दिव्यान्स्तुत्वासौ विविधैः स्तवैः॥ २२॥

उस हिरण्यकशिपु ने तपश्चर्या के द्वारा परमेश्वर ब्रह्मदेव की आराधना की। उनके अनेक प्रकार के स्तवों से उनकी स्तुति करके परम दिव्यवरों को प्राप्ति की थी।

अथ तस्य बलाद्देवाः सर्वे एव महर्षयः।
बाधितास्ताडिता जग्मुर्देवदेवं पितामहम्॥ २३॥
शरण्यं शरणं देवं शम्भुं सर्वजगन्मयम्।
ब्रह्माणं लोककर्त्तारं त्रातारं पुरुषं परम्॥ २४॥
कूटस्थं जगतामेकं पुराणं पुरुषोत्तमम्।
स याचितो देववरैर्मुनिभिश्च मुनीश्वराः॥ २५॥

इसके पश्चात् उसके बल से सभी महर्षिगण पीड़ित और ताड़ित होकर पितामह ब्रह्मदेव के समीप गये। जो परम शरण्य, रक्षक, देव, शम्भु, सर्वजगन्मय, ब्रह्मा, लोकों की सृष्टि करने वाले, त्राता, परमपुरुष, कूटस्थ और जगत् के एक ही पुराण पुरुषोत्तम हैं। हे मुनीश्वरो! उसीसे देववरों ने तथा समस्त मुनियों ने याचना की थी।

सर्वदेवहितार्थाय जगाम कमलासनः।
संस्तूयमानः प्रणतैर्मुनीन्द्रैरमरैरपि॥ २६॥
क्षीरोदस्योत्तरं कूलं यत्रास्ते हरिरीश्वरः।
दृष्ट्वा देवं जगद्योनिं विष्णुं विश्वगुरुं शिवम्॥ २७॥
ववन्दे चरणौ मूर्ध्ना कृताञ्जलिरभाषत।

प्रणत मुनीन्द्र और अमरगणों के द्वारा भली-भाँति स्तुति किये जाने पर वह कमलासन ब्रह्मा समस्त देवों के हित का सम्पादन करने के लिए क्षीरसागर के उत्तरी तट पर पहुँचे जहाँ पर भगवान् ईश्वर हरि, शेषशय्या पर शयन किया करते हैं। वहाँ पर इस जगद्योनि, विश्वगुरु कल्याणकारी देव विष्णु का दर्शन करके ब्रह्माजी ने मस्तक से उनके चरणकमलों की वन्दना की तथा दोनों हाथों को जोड़कर प्रार्थना की।

ब्रह्मोवाच–

त्वं गतिः सर्वभूतानामनन्तोऽस्यखिलात्मकः॥ २८॥
व्यापी सर्वामरवपुर्महायोगी सनातनः।
त्वमात्मा सर्वभूतानां प्रधानप्रकृतिः परा॥ २९॥

ब्रह्माजी ने कहा— हे भगवान्! समस्त भूतों के आप ही गतिरूप हैं। आप अनन्त हैं और अखिल विश्व के आत्मरूप हैं। आप सर्वव्यापक हैं। सभी देवगण आपका ही शरीर है। आप महान् योगी और सनातन हैं। सब भूतों की आप ही आत्मा हैं और प्रधान-अथवा परा प्रकृति भी आप ही हैं।

वैराग्यैश्वर्यनिरतो वागतीतो निरञ्जनः।
त्वं कर्त्ता चैव भर्त्ता च विहन्ता च सुरद्विषाम्॥ ३०॥

आप वैराग्य और ऐश्वर्य में निरत रहने वाले हैं, वाणी से अतीत हैं अर्थात् वाणी द्वारा आप का वर्णन नहीं किया जा सकता। आप निरंजन-निर्लेप हैं। आप सृष्टिकर्ता, भरण-पोषण करने वाले, तथा देवों के शत्रु असुरों का नाश करने वाले हैं।

त्रातुमर्हस्यनन्तेश त्रातासि परमेश्वर।
इत्थं स विष्णुर्भगवान् ब्रह्मणा सम्प्रबोधितः॥ ३१॥

हे अनन्त! हे ईश! आप सब की रक्षा करने योग्य हैं। परमेश्वर! आप हमारे रक्षक हैं। इस प्रकार ब्रह्मा ने भगवान् विष्णु को अच्छी प्रकार समझा दिया था।

प्रोवाचोन्निद्रपद्माक्ष पीतवासाः सुरान्द्विजाः।
किमर्थं सुमहावीर्याः सप्रजापतिकाः सुराः॥ ३२॥
इमं देशमनुप्राप्ताः किं वा कार्यं करोमि वः।

द्विजगण! तब निद्रारहित होकर विकसित कमल-नयन वाले पीताम्बरधारी विष्णु ने देवताओं से कहा— हे महापराक्रमी देवो! प्रजापति के साथ आप लोग इस देश में किसलिए आये हैं? अथवा मैं आप लोगों का कौन-सा कार्य करूँ?

देवा ऊचुः

हिरण्यकशिपुर्नाम ब्रह्मणो वरदर्पितः॥ ३३॥
बाधते भगवन्दैत्यो देवान् सर्वान् सहर्षिभिः।
अवध्यः सर्वभूतानां त्वामृते पुरुषोत्तमम्॥ ३४॥

देवगण बोले— हिरण्यकशिपु ब्रह्मा के वरदान से गर्वित हो गया है। भगवन्! वह दैत्य ऋषियों सहित सभी देवों को पीड़ित कर रहा है। वह आप पुरुषोत्तम को छोड़कर सभी प्राणियों के लिए वह अवध्य है।

हन्तुमर्हसि सर्वेषां त्रातासि त्वं जगन्मय।
श्रुत्वा तद्दैवतैरुक्तं स विष्णुर्लोकभावनः॥ ३५॥
वधाय दैत्यमुख्यस्य सोऽसृजत्पुरुषं स्वयम्।
मेरुपर्वतवर्ष्माणं घोररूपं भयानकम्॥ ३६॥
शंखचक्रगदापाणिं तं प्राह गरुडध्वजः।
हत्वा तं दैत्यराजानं हिरण्यकशिपुं पुनः॥ ३७॥
इमं देशं समागन्तुं क्षिप्रमर्हसि पौरुषात्।
निशम्य वैष्णवेवाक्यं प्रणम्य पुरुषोत्तमम्॥ ३८॥
महापुरुषमव्यक्तं ययौ दैत्यमहापुरम्।
विमुञ्चन् भैरवं नादं शङ्खचक्रगदाधरः॥ ३९॥

जगन्मय! आप सबके रक्षक हैं, इसलिए उसका वध करने योग्य हैं। देवताओं का कथन सुनकर लोकरक्षक विष्णु ने दैत्य श्रेष्ठ का वध करने के लिए स्वयं एक पुरुष की सृष्टि की। उसका शरीर सुमेरुपर्वत के समान था, भयंकर रूप था और वह हाथों में शंख, चक्र और गदा धारण किये हुए था। उससे भगवान् ने कहा— तुम पराक्रम से दैत्यराज हिरण्यकशिपु को मारकर पुनःशीघ्र इस देश में आ जाओ। विष्णु का वचन सुनकर उसने अव्यक्त, महापुरुष और पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु को प्रणाम किया। पश्चात् शंखचक्रधारी वह भयंकर नाद करता हुआ दैत्य के महानगर की ओर चल पड़ा।

आरुह्य गरुडं देवो महामेरुरिवापरः।
आकर्ण्य दैत्यप्रवरा महामेघरवोपमम्॥ ४०॥
समं च चक्रिरे नादं तथा दैत्यपतेर्भयात्।

वह गरुड़ पर आरूढ़ होकर दूसरे महामेरु पर्वत के समान दिखाई दे रहा था। महामेघ के समान उसकी गर्जना सुनकर बड़े-बड़े दैत्य भी दैत्यपति हिरण्यकशिपु के भय से एक साथ महानाद करने लगे।

असुरा ऊचु:

कश्चिदागच्छति महान् पुरुषो देवनोदित:॥४१॥
विमुञ्चन् भैरवं नादं तं जानीमो जनार्दनम्।
तत: सहासुरवरैर्हिरण्यकशिपु: स्वयम्॥४२॥
सन्नद्धै: सायुधै: पुत्रै: सप्रह्लादैस्तदा ययौ।
दृष्ट्वा तं गरुडारूढं सूर्यकोटिसमप्रभम्॥४३॥

असुरों ने कहा— देवों द्वारा प्रेरित कोई महान् पुरुष आ रहा है। वह महान् भयानक गर्जना कर रहा है। इसलिए हमें वे जनार्दन ही जान पड़ते हैं। इसके पश्चात् समस्त श्रेष्ठ असुरों के साथ स्वयं हिरण्यकशिपु सावधान हो गया था। समस्त आयुधों से सुसज्जित एवं पूर्ण सन्नद्ध प्रह्लाद के सहित पुत्रों को साथ लेकर उसी समय हिरण्यकशिपु भी गया था और उसने गरुड़ पर समारूढ़ हुए करोड़ों सूर्यों के समान प्रभा वाले उन भगवान् विष्णु को देखा था।

पुरुषं पर्वताकारं नारायणमिवापरम्।
दुद्रुवु: केचिदन्योन्यमूचु: सम्भ्रान्तलोचना:॥४४॥

वह पुरुष एक विशाल पर्वत के समान आकार वाला और दूसरे नारायण के तुल्य लग रहा है। उसे देखकर कुछ दैत्य तो भयभीत होकर भाग गये थे और दूसरे कुछ भ्रमितनेत्र वाले होते हुए परस्पर कहने लगे।

अयं स देवो देवानां गोप्ता नारायणो रिपु:।
अस्माकमव्ययो नूनं तत्सुतो वा समागत:॥४५॥

यह वही नारायण देव है जो देवों का रक्षक तथा हमारा रिपु है। निश्चय ही वह अविनाशी स्वयं या उसका पुत्र यहाँ पर आ पहुँचा है।

इत्युक्त्वा शस्त्रवर्षाणि ससृजु: पुरुषाय ते।
स तानि चाक्षतो देवो नाशयामास लीलया॥४६॥

(एक दूसरे को) इतना कहकर उन्होंने उस पुरुष पर अपने शस्त्रों की वर्षा आरम्भ कर दी। परन्तु उस अखंडदेव ने उन शस्त्रों को लीलामात्र में ही नष्ट कर दिया।

हिरण्यकशिपो पुत्राश्चत्वार: प्रथितौजस:।
पुत्रं नारायणोद्भूतं युयुधुर्मेघनि:स्वना:॥४७॥

उस समय हिरण्यकशिपु के अतितेजस्वी चार पुत्र मेघ के समान भैरव नाद करते हुए उस नारायण से उत्पन्न पुत्र से युद्ध करने लगे थे।

प्रह्लादश्चानुह्लादश्च संह्लादो ह्लाद एव च।
प्रह्लाद: प्राहिणोद्ब्राह्ममनुह्लादोऽथ वैष्णवम्॥४८॥
संह्लादश्चापि कौमारमाग्नेयं ह्लाद एव च।
तानि तं पुरुषं प्राप्य चत्वार्यस्त्राणि वैष्णवम्॥४९॥
न शेकुश्चलितुं विष्णुं वासुदेवं यथातथम्।

(वे चारों) प्रह्लाद, अनुह्लाद, संह्लाद और ह्लाद थे। उनमें प्रह्लाद ब्रह्मास्त्र, अनुह्लाद वैष्णवास्त्र, संह्लाद कौमारास्त्र और ह्लाद आग्नेयास्त्र छोड़ रहा था। परन्तु वे चारों अस्त्र उस पुरुष के पास पहुँच कर यथार्थ वासुदेव विष्णु को तनिक भी डगमगा नहीं सके।

अथासौ चतुर: पुत्रान्महाबाहुर्महाबल:॥५०॥
प्रगृह्य पादेषु करैश्चिक्षेप च ननाद च।
विमुक्तेष्वथ पुत्रेषु हिरण्यकशिपु: स्वयम्॥५१॥
पादेन ताडयामास वेगेनोरसि तं बली।
स तेन पीडितोऽत्यर्थं गरुडेन सहानुग:॥५२॥
अदृश्य: प्रययौ तूर्णं यत्र नारायण: प्रभु:।
गत्वा विज्ञापयामास प्रवृत्तमखिलं तदा॥५३॥

तदनन्तर उस महाबली और महापराक्रमी विष्णु-पुरुष ने अपने हाथों से उन चारों पुत्रों की टाँगें पकड़कर दूर पटक दिया और जोर से गर्जन किया। पुत्रों के पटक दिये जाने पर हिरण्यकशिपु स्वयं वहाँ आया और अपने पैर से वेगपूर्वक उस पुरुष की छाती पर प्रहार किया। उससे वह पुरुष गरुड़ और दूसरे अनुयायियों के साथ अत्यन्त पीड़ित होकर अदृश्य हो गया और शीघ्र ही उस स्थान को चला गया जहाँ नारायण प्रभु थे। उसने वहाँ जो घटित हुआ था, वह सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

सञ्चिन्त्य मनसा देव: सर्वज्ञानमयोऽमल:।
नरस्यार्द्धतनुं कृत्वा सिंहस्यार्द्धतनुं तथा॥५४॥

सर्वज्ञानमय तथा निर्मल विष्णुदेव ने मन से अच्छी प्रकार विचारकर अपना आधा शरीर मनुष्यरूप का और आधा सिंहरूप में कर दिया।

नृसिंहवपुरव्यक्तो हिरण्यकशिपो: पुरे।
आविर्बभूव सहसा मोहयन्दैत्यदानवान्॥५५॥

नरसिंह का शरीर धारण करके वे भगवान् अव्यक्तरूप में ही हिरण्यकशिपु के नगर में जा पहुँचे और दैत्यों तथा दानवों को मोहित करते हुए एकाएक प्रकट हो गये।

दंष्ट्राकरालो योगात्मा युगान्तदहनोपम:।
समारूह्यात्मन: शक्तिं सर्वसंहारकारिकाम्॥५६॥
भाति नारायणोऽनन्तो यथा मध्यन्दिने रवि:।

वे दंष्ट्राओं से विकराल थे, फिर भी उनका स्वरूप योगमय था। वे उस समय प्रलयकालीन अग्नि के सदृश दिखाई दे रहे थे। सर्वसंहारकारिणी अपनी शक्ति का अवलम्बन करके वे अनन्तरूप नारायण उस समय दिवस के मध्याह्न समय के सूर्य की भाँति लग रहे थे।

दृष्ट्वा नृसिंहं पुरुषं प्रह्लादं ज्येष्ठपुत्रकम्॥५७॥
वधाय प्रेरयामास नरसिंहस्य सोऽसुर:।
इमं नृसिंहं पुरुषं पूर्वस्मादूनशक्तिकम्॥५८॥
सहैव तेऽनुजै: सर्वैर्नाशयाशु मयेरित:।

उस नृसिंहाकृत पुरुष को देखकर हिरण्यकशिपु ने अपने ज्येष्ठ पुत्र प्रह्लाद को उसका करने के लिए प्रेरित किया। उसने कहा कि यह नृसिंहाकृति वाला पुरुष पहले से कुछ कम शक्ति वाला है इसलिए तुम अपने सभी भाइयों के सहित मेरे द्वारा प्रेरित हुए तुम शीघ्र ही उसका नाश कर दो।

स तन्नियोगादसुर: प्रह्लादो विष्णुमव्ययम्॥५९॥
युयुधे सर्वयत्नेन नरसिंहेन निर्जित:।
तत: संमोहितो दैत्यो हिरण्याक्षस्तदानुज:॥६०॥
ध्यात्वा पशुपतेरस्त्रं ससर्ज च ननाद च।

फिर अपने पिता की आज्ञा से वह असुर प्रह्लाद उन अविनाशी विष्णु के साथ यत्नपूर्वक युद्ध करने लगा, परन्तु वह नरसिंह के द्वारा जीत लिया गया। उसके पश्चात् उसके छोटा भाई दैत्य हिरण्याक्ष ने संमोहित होकर पाशुपत अस्त्र का ध्यान करके उसे छोड़ा और गर्जना करने लगा।

तस्य देवाधिदेवस्य विष्णोरमिततेजस:॥६१॥
न हानिमकरोदस्त्रं तथा देवस्य शूलिन:।
दृष्ट्वा पराहतं त्वस्त्रं प्रह्लादो भाग्यगौरवात्॥६२॥
मेने सर्वात्मकं देवं वासुदेवं सनातनम्।
सन्त्यज्य सर्वशस्त्राणि सत्त्वयुक्तेन चेतसा॥६३॥
ननाम शिरसा देवं योगिनां हृदयेशयम्।

किन्तु उसका वह अस्त्र देवाधिदेव अमिततेजस्वी विष्णु तथा त्रिशूलधारी शंकर की कोई हानि नहीं कर सका। इस प्रकार अस्त्र को निवृत्त हुआ देखकर अपने भाग्य के गौरव से प्रह्लाद ने उस देव को सर्वात्मा सनातन वासुदेव समझा। तब उसने सत्त्वयुक्त चित्त से सकल शस्त्रों का त्याग करके योगियों के हृदय में शयन करने वाले विष्णुदेव को शिर से प्रणाम किया।

स्तुत्वा नारायणं स्तोत्रै: ऋग्यजु:सामसम्भवै:॥६४॥
निवार्य पितरं भ्रातृन् हिरण्याक्षं तदाब्रवीत्।

ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद के स्तोत्रों से नारायण की स्तुति करके पिता, भाइयों और हिरण्याक्ष को रोककर उस समय उनसे कहा।

अयं नारायणोऽनन्त शाश्वतो भगवानज:॥६५॥
पुराण: पुरुषो देवो महायोगी जगन्मय:।
अयं धाता विधाता च स्वयंज्योतिर्निरञ्जन:॥६६॥

ये भगवान् नारायण, अनन्त, शाश्वत और अज हैं। ये ही सब के धारणकर्ता, सृष्टिकर्ता, स्वयं ज्योति:स्वरूप और निरञ्जन हैं।

प्रधानं पुरुषं तत्त्वं मूलप्रकृतिरव्यय:।
ईश्वर: सर्वभूतानामन्तर्यामी गुणातिग:॥६७॥
गच्छध्वमेनं शरणं विष्णुमव्यक्तमव्ययम्।

ये ही प्रधान तत्त्व-मूल प्रकृतिरूप अविनाशी पुरुष हैं। वे सकल प्राणियों के ईश्वर, अन्तर्यामी और (सत्वादि) गुणों से परे हैं। इसलिए आप अव्यक्त और अविनाशी विष्णु की शरण में जाओ।

एवमुक्त: सुदुर्बुद्धिर्हिरण्यकशिपु: स्वयम्॥६८॥
प्रोवाच पुत्रमत्यर्थं मोहितो विष्णुमायया।
अयं सर्वात्मना वध्यो नृसिंहोऽल्पपराक्रम:॥६९॥
समागतोऽस्मद्भवनमिदानीं कालचोदित:।

ऐसा कहने पर भी अत्यन्त दुर्बुद्धि युक्त तथा विष्णु की माया से अत्यन्त मोहित हुआ हिरण्यकशिपु अपने पुत्र से बोला— यह अल्प पराक्रमी नृसिंह सब प्रकार से वध करने योग्य है। यह काल से प्रेरित होकर इस समय हमारे भवन में आया है।

विहस्य पितरं पुत्रो वच: प्राह महामति:॥७०॥
मा निन्दस्वैनमीशानं भूतानामेकमव्ययम्।
कथं देवो महादेव: शाश्वत: कालवर्जित:॥७१॥
कालेन हन्यते विष्णु: कालात्मा कालरूपधृक्।

तब महाबुद्धिमान् पुत्र ने हँसकर पिता से कहा— इनकी निन्दा मत करो। ये सभी प्राणियों के एकमात्र ईश्वर और अविनाशी हैं। ये महादेव शाश्वत एवं कालवर्जित हैं। ये कालस्वरूप तथा कालरूपधारी विष्णु हैं। काल इनका क्या विनाश करेगा?

ततः सुवर्णकशिपुर्दुरात्मा कालचोदितः॥७२॥
निवारितोऽपि पुत्रेण युयुधे हरिमव्ययम्।
संरक्तनयनोऽनन्तो हिरण्यनयनाग्रजम्॥७३॥
नखैर्विदारयामास प्रह्लादस्यैव पश्यतः।

तदनन्तर दुरात्मा हिरण्यकशिपु पुत्र के मना करने पर भी कालप्रेरित होने से अविनाशी हरि-विष्णु से युद्ध करने लगा। अनन्त भगवान् ने आँखें लाल करके हिरण्याक्ष के बड़े भाई को प्रह्लाद के देखते-देखते नखों से चीर डाला।

हते हिरण्यकशिपौ हिरण्याक्षो महाबलः॥७४॥
विसृज्य पुत्रं प्रह्लादं दुद्रुवे भयविह्वलः।
अनुह्लादादयः पुत्रा अन्ये च शतशोऽसुराः॥७५॥
नृसिंहदेहसम्भूतैः सिंहैर्नीता यमक्षयम्।
ततः संहृत्य तद्रूपं हरिर्नारायणः प्रभुः॥७६॥

हिरण्यकशिपु के मारे जाने पर महाबली हिरण्याक्ष भयभीत होकर पुत्र प्रह्लाद को छोड़कर भाग गया। तब अनुह्लाद आदि पुत्रों को नृसिंह के शरीर से उत्पन्न सिंहों ने ही यमलोक भेज दिया। तदनन्तर प्रभु नारायण भगवान् ने अपने (नृसिंह) रूप को समेट लिया।

स्वमेव परमं रूपं ययौ नारायणाह्वयम्।
गते नारायणे दैत्यः प्रह्लादोऽसुरसत्तमः॥७७॥
अभिषेकेण युक्तेन हिरण्याक्षमयोजयत्।
स बाधयामास सुरान्रणे जित्वा मुनीनपि॥७८॥

फिर अपने नारायण नामक परम रूप को धारण कर लिया। नारायण के चले जाने पर असुरश्रेष्ठ दैत्य प्रह्लाद ने योग्य (शास्त्रसंमत) अभिषेक करके हिरण्याक्ष को राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया। तब उसने भी युद्ध में देवताओं को और मुनियों को जीतकर पीड़ित किया।

लब्ध्वान्धकं महापुत्रं तपसाराध्य शंकरम्।
देवाञ्जित्वा सदेवेन्द्रान् क्षुब्ध्वा च धरणीमिमाम्॥७९॥

उसने तपस्या द्वारा शंकर की आराधना करके अन्धक नामक महान् पुत्र प्राप्त किया। उसने इन्द्र सहित देवों को जीतकर पृथ्वी को क्षुब्ध कर दिया।

नीत्वा रसातलं चक्रे वेदान्वै निष्प्रभांस्तथा।
ततः सब्रह्मका देवाः परिम्लानमुखश्रियः॥८०॥

फिर उसे पाताल में ले जाकर वेदों को तेजहीन कर दिया। तब ब्रह्मा सहित सभी देवों की मुख की शोभा मलिन हो गयी।

गत्वा विज्ञापयामासुर्विष्णवे हरिमन्दिरम्।
स चिन्तयित्वा विश्वात्मा तद्वधोपायमव्ययः॥८१॥

उन्होंने हरि-मन्दिर में जाकर विष्णु से निवेदन किया। तब विश्वात्मा, अविनाशी भगवान् उस (असुर) के वध का उपाय सोचने लगे।

सर्वदेवमयं शुभ्रं वाराहं पुरा दधे।
गत्वा हिरण्यनयनं हत्वा तं पुरुषोत्तमः॥८२॥

पहले पुरुषोत्तम भगवान् ने सर्वदेवमय श्वेत वराह का रूप धारण किया और हिरण्याक्ष के पास जाकर उसका वध किया।

दंष्ट्रयोद्धारयामास कल्पादौ धरणीमिमाम्।
त्यक्त्वा वाराहसंस्थानं संस्थाप्यैवं सुरद्विषः॥८३॥

फिर कल्प के आदि में (हिरण्याक्ष द्वारा गृहीत) उस पृथ्वी का अपनी दंष्ट्रा पर उठाकर उद्धार किया। पश्चात् देव-शत्रुओं को मार कर उन्होंने अपना वाराह रूप त्याग दिया।

स्वामेव प्रकृतिं दिव्यां ययौ विष्णुः परं पदम्।
तस्मिन् हतेऽमररिपौ प्रह्लादो विष्णुतत्परः॥८४॥
अपालयत्स्वकं राज्यं भावं त्यक्त्वा तदासुरम्।
यजते विधिवद्देवान्विष्णोराराधने रतः॥८५॥

अपनी ही दिव्य प्रकृति का अवलम्बन लेकर श्रीविष्णु परम धाम पहुँच गये। उस देवशत्रु हिरण्याक्ष के मार दिये जाने पर विष्णुपरायण प्रह्लाद अपने आसुरी भाव को त्याग करके प्रजा का पालन करने लगे और विष्णु की आराधना में निरत हो विधिपूर्वक यज्ञ करते थे।

निःसपत्नं सदा राज्यं तस्यासीद्विष्णुवैभवात्।
ततः कदाचिदसुरो ब्राह्मणं गृहमागतम्॥८६॥

विष्णु के प्रसाद से उनका राज्य सदा निष्कण्टक हो गया। तदनन्तर कभी एक ब्राह्मण उनके घर आया।

न च सम्भावयामास देवानाञ्चैव मायया।
स तेन तापसोऽत्यर्थं मोहितेनावमानितः॥८७॥

किन्तु देवताओं की माया से मोहित होने के कारण प्रह्लाद ने ब्राह्मण का आदर-सत्कार नहीं किया। इस प्रकार वैभव-प्रताप के कारण उसने तपस्वी ब्राह्मण को अपमानित किया।

शशापासुरराजानं क्रोधसंरक्तलोचनः।
यत्तद्बलं समाश्रित्य ब्राह्मणानवमन्यसे॥८८॥
सा शक्तिर्वैष्णवी दिव्या विनाशन्ते गमिष्यति।
इत्युक्त्वा प्रययौ तूर्णं प्रह्लादस्य गृहाद्द्विजः॥८९॥

(अपमान के कारण) क्रोध से आँखें लाल करके उस ब्राह्मण ने असुरराज को शाप दिया कि तूने जिसके बल का आश्रय लेकर ब्राह्मणों का अपमान किया है, वही तेरी दिव्य वैष्णवी शक्ति का नाश हो जायेगा। यह कहकर ब्राह्मण प्रह्लाद के घर से शीघ्र निकल गया।

मुमोह राज्यसंसक्तः सोऽपि शापबलात्ततः।
बाधयामास विप्रेन्द्रान्न विवेद जनार्दनम्॥९०॥

इसलिए वह भी शापबल के कारण राज्य में आसक्त होकर मोहित को प्राप्त हुआ और द्विजश्रेष्ठों को पीड़ित करने लगा तथा भगवान् जनार्दन को भूल गया।

पितुर्वधमनुस्मृत्य क्रोधं चक्रे हरिं प्रति।
तयोः समभवद्युद्धं सुघोरं रोमहर्षणम्॥९१॥
नारायणस्य देवस्य प्रह्लादस्यामरद्विषः।
कृत्वा स सुमहद्युद्धं विष्णुना तेन निर्जितः॥९२॥

(इतना ही नहीं) वह पिता के वध को स्मरण करके हरि के प्रति क्रोधित भी हुआ। इस कारण नारायण और देवशत्रु प्रह्लाद- इन दोनों में रोमांचकारी अत्यन्त भयंकर युद्ध हुआ था। ऐसा महान् युद्ध करके भी वह विष्णु के द्वारा पराजित हो गया।

पूर्वसंस्कारमाहात्म्यात्परस्मिन् पुरुषे हरौ।
सञ्जातं तस्य विज्ञानं शरण्यं शरणं ययौ॥९३॥

उस समय पूर्व के संस्कारों के माहात्म्य से परम पुरुष हरि के विषय में उसे विज्ञान उत्पन्न हो गया। तब वह शरण लेने योग्य हरि की शरण में आ पहुँचा था।

ततः प्रभृति दैत्येन्द्रो ह्यनन्यां भक्तिमुद्वहन्।
नारायणे महायोगमवाप पुरुषोत्तमे॥९४॥

उस दिन से वह दैत्यराज नारायण की अनन्य भक्ति करने लगा और उसने नारायण पुरुषोत्तम में महान् योग को प्राप्त किया।

हिरण्यकशिपोः पुत्रे योगसंसक्तचेतसि।
अवाप तन्महद्राज्यमन्धकोऽसुरपुङ्गवः॥९५॥

इस प्रकार हिरण्यकशिपु के पुत्र प्रह्लाद का चित्त योगासक्त हो गया तो असुरश्रेष्ठ अन्धक ने उसका विशाल राज्य हस्तगत कर लिया।

हिरण्यनेत्रतनयः शम्भोर्देहसमुद्भवः।
मन्दरस्थामुमां देवीं चकमे पर्वतात्मजाम्॥९६॥

शंकर की देह से उत्पन्न होने पर भी हिरण्याक्ष-पुत्र अन्धक मन्दराचल पर अवस्थित पर्वतपुत्री उमा देवी की कामना करने लगा।

पुरा दारुवने पुण्ये मुनयो गृहमेधिनः।
ईश्वराराधनार्थाय तपश्चेरुः सहस्रशः॥९७॥

(वे देवी मंदराचल पर कैसे गयीं थीं इसका कारण बताते हैं) पूर्वकाल में पवित्र दारुवन में हजारों गृहस्थ मुनि शंकर की आराधना करने के लिए तपस्या कर रहे थे।

ततः कदाचिन्महती कालयोगेन दुस्तरा।
अनावृष्टिरतीवोग्रा ह्यासीद्भूतविनाशिनी॥९८॥

तदनन्तर किसी समय कालयोग से अति दुस्तर, प्राणियों का विनाश करने वाली और अत्यन्त दारुण महती अनावृष्टि हुई थी।

समेत्य सर्वे मुनयो गौतमं तपसां निधिम्।
अयाचन्त क्षुधाविष्टा आहारं प्राणधारणम्॥९९॥

तब वहां के निवासी सब मुनि तपोनिधि गौतम मुनि के पास आये और उनसे प्राणधारण करने योग्य भोजन की याचना करने लगे।

स तेभ्यः प्रददावन्नं मृष्टं बहुतरं बुधः।
सर्वे बुभुजिरे विप्रा निर्विशंकेन चेतसा॥१००॥

उस बुद्धिमान् गौतम ने सब मुनियों को प्रचुर मात्रा में मधुर भोजन प्रदान किया। तब इन ब्राह्मणों ने भी शंकारहित चित्त से भोजन किया।

गते च द्वादशे वर्षे कल्पान्त इव शांकरी।
बभूव वृष्टिर्महती यथापूर्वमभूज्जगत्॥१०१॥

एक प्रलयकाल के समान बारह वर्ष (इसी अवस्था में) बीत जाने पर कल्याणकारी महती वृष्टि हुई और संसार भी पूर्ववत् हो गया अर्थात् अन्नादि से समृद्ध हो गया।

ततः सर्वे मुनिवराः समामन्त्र्य परस्परम्।
महर्षिं गौतमं प्रोचुर्गच्छाम इति वेगतः॥१०२॥

तब सब मुनियों ने परस्पर मंत्रणा करके महर्षि गौतम से कहा— हम लोग भी अब शीघ्र जाना चाते हैं।

निवारयामास च तान् कञ्चित्कालं यथासुखम्।
उषित्वा मद्गृहेऽवश्यं गच्छध्वमिति पण्डिताः॥१०३॥

तब गौतम ने उन लोगों को रोका और कहा— हे पंडितो! आप लोग कुछ दिन और मेरे गृह में सुखपूर्वक निवास करके फिर चले जाना।

ततो मायामयीं सृष्ट्वा कृष्णां गां सर्व एव ते।
समीपं प्रापयामासुर्गौतमस्य महात्मनः॥ १०४॥

तब उन सब पण्डितों ने एक मायामयी काले रंग की गौ की रचना की और उसको महात्मा गौतम के पास पहुँचा दिया।

सोऽनुवीक्ष्य कृपाविष्टस्तस्याः संरक्षणोत्सुकः।
गोष्ठे तां बन्धयामास स्पृष्टमात्रा ममार सा॥ १०५॥

महात्मा गौतम उसे देखकर दया से युक्त हो गये और उसका संरक्षण के प्रति उत्सुक होकर उसे गोशाला में बँधवा दिया। परन्तु वह (मायामय होने के कारण) स्पर्श करते ही मर गई।

स शोकेनाभिसन्तप्तः कार्याकार्यं महामुनिः।
न पश्यति स्म सहसा तमृषिं मुनयोऽब्रुवन्॥ १०६॥

(उसे मरी जानकर) वे महामुनि शोक से अभिसन्तप्त होकर कर्तव्याकर्तव्य के निर्णय में असमर्थ हो गये। तभी सहसा उस ऋषि से मुनियों ने कहा।

गोवध्येयं द्विजश्रेष्ठ यावत्तव शरीरगा।
तावत्तेऽन्नं न भोक्तव्यं गच्छामो वयमेव हि॥ १०७॥

(तुम्हें गोहत्या का पाप लगा है, अतः) हे द्विजश्रेष्ठ! यह गोहत्या जब तक आपके शरीर में रहेगी, तब तक हम लोग आपका अन्न ग्रहण नहीं करेंगे। इसलिए हम जा रहे हैं।

तेनानुमताः सन्तो देवदारुवनं शुभम्।
जग्मुः पापवशान्नीत्वा तपश्चर्तुं यथा पुरा॥ १०८॥

उनसे अनुमति मिल जाने पर वे मुनिगण पवित्र देवदारु वन में चले गये। गौतम भी पापवश होकर पहले की तरह तपस्या करने लगे।

स तेषां मायया जातां गोवध्यां गौतमो मुनिः।
केनापि हेतुना ज्ञात्वा शशापातीवकोपतः॥ १०९॥

गौतम मुनि ने किसी कारण से उन लोगों द्वारा माया से रचित गो-वध को जानकर अत्यन्त क्रोधित होकर शाप दे दिया।

भविष्यन्ति त्रयीबाह्या महापातकिभिः समाः।
बहुशस्ते तथा शापाज्जायमानाः पुनः पुनः॥ ११०॥

तुम लोग तीनों वेदों से रहित तथा महापातकियों के समान हो जाओगे। इस प्रकार शाप के कारण वे ब्राह्मण बार-बार जन्म लेते रहे।

सर्वे संप्राप्य देवेशं शङ्करं विष्णुमव्ययम्।
अस्तुवन् लौकिकैः स्तोत्रैरुच्छिष्टा इव सर्वगौ॥ १११॥
देवदेवौ महादेवौ भक्तानामार्तिनाशनौ।
कामवृत्त्या महायोगी पापान्नस्त्रातुमर्हतः॥ ११२॥

तब पाप से उच्छिष्ट हुए के समान (अपवित्र) वे लोग देवाधिपति शंकर और अविनाशी विष्णु की अनेक लौकिक स्तोत्रों द्वारा स्तुति की— आप दोनों सर्वव्यापी, देवों के देव, महान् देव, भक्तों का दुःख दूर करने वाले और स्वेच्छया महायोगी हैं। आप हमें पाप से मुक्त करने में समर्थ हैं।

तदा पार्श्वस्थितं विष्णुं संप्रेक्ष्य वृषभध्वजः।
किमेतेषां भवेत्कार्यं प्राह पुण्यैषिणामिति॥ ११३॥

तब पास में खड़े हुए विष्णु को देखकर वृषध्वज शंकर ने कहा— इन पुण्य चाहने वाले लोगों का कार्य कैसे होगा?

ततः स भगवान्विष्णुः शरण्यो भक्तवत्सलः।
गोपतिं प्राह विप्रेन्द्रानालोक्य प्रणतान् हरिः॥ ११४॥

तदनन्तर शरण देने वाले भक्तवत्सल भगवान् विष्णु प्रणाम करते हुए विप्रेन्द्रों को देखकर गोपति शंकर से बोले।

न वेदबाह्ये पुरुषे पुण्यलेशोऽपि शङ्कर।
सङ्गच्छते महादेव धर्मो वेदाद्विनिर्बभौ॥ ११५॥

हे शंकर! वेदबहिष्कृत पुरुष में पुण्य का लेश भी नहीं रहता है। क्योंकि हे महादेव! धर्म वेद से उत्पन्न है।

तथापि भक्तवात्सल्याद्रक्षितव्या महेश्वर।
अस्माभिः सर्व एवैते गन्तारो नरकानपि॥ ११६॥

हे महेश्वर! तथापि भक्तवत्सलता के कारण हमें नरक में जाने वाले इन सब की रक्षा करनी चाहिए।

तस्माद्धि वेदबाह्यानां रक्षणार्थाय पापिनाम्।
विमोहनाय शास्त्राणि करिष्यामो वृषध्वज॥ ११७॥

इसलिए हे वृषध्वज! वेदबहिष्कृत पापियों की रक्षा के लिए तथा उन्हें मोह में डालने के लिए ऐसे शास्त्रों की रचना करेंगे।

एवं सम्बोधितो रुद्रो माधवेन मुरारिणा।
चकार मोहशास्त्राणि केशवोऽपि शिवेरितः॥ ११८॥
कापालं नाकुलं वामं भैरवं पूर्वपश्चिमम्।

पाञ्चरात्रं पाशुपतं तथान्यानि सहस्रशः॥ ११९॥

इस प्रकार माधव-विष्णु ने रुद्रदेव को सम्बोधित किया था और केशव ने भी शिव से प्रेरित होकर मोह उत्पन्न करने वाले शास्त्र बनाये थे, जैसे कि कापाल, नाकुल, वाम, भैरव, पूर्व और बाद का पाञ्चरात्र, पाशुपत और अन्यान्य हजारों शास्त्रों की रचना की।

सृष्ट्वा तानाह निर्वेदाः कुर्वाणाः शास्त्रचोदितम्।
पतन्तो नरके घोरे बहून् कल्पान् पुनः पुनः॥ १२०॥
जायन्तो मानुषे लोके क्षीणपापचयास्ततः।
ईश्वराराधनबलाद्गच्छध्वं सुकृतां गतिम्॥ १२१॥

ऐसे शास्त्रों की रचना करने के बाद उन्होंने ब्राह्मणों से कहा— तुम लोग वेदविहीन होने से शास्त्र-प्रेरित कर्म करते हुए भी अनेक कल्पों तक बार-बार घोर नरक में गिरते हुए मनुष्य लोक में जन्म ग्रहण करोगे। तब पापराशि के क्षीण हो जाने पर ईश्वर-आराधन के बल से सद्गति को प्राप्त करोगे।

वर्त्तध्वं मत्प्रसादेन नान्यथा निष्कृतिर्हि वः।
एवमीश्वरविष्णुभ्यां चोदितास्ते महर्षयः॥ १२२॥
आदेशं प्रत्यपद्यन्त शिवस्यासुरविद्विषः।
चक्रुस्तेऽन्यानि शास्त्राणि तत्र तत्र रताः पुनः॥ १२३॥

तुम लोग मेरी कृपा से ऐसा वर्ताव करो, अन्यथा तुम्हारा उद्धार नहीं है। इस प्रकार महादेव और विष्णु ने उन मुनियों को प्रेरित किया था। असुरद्रोही वे महर्षि शिव के आदेश का पालन करने लगे और उन्होंने भी शास्त्रनिरत होकर अन्यान्य शास्त्रों की भी रचना की।

शिष्यानध्यापयामासुर्दर्शयित्वा फलानि च।
मोहापसदनं लोकमवतीर्य्य महीतले॥ १२४॥
चकार शंकरो भिक्षां हितायैषां द्विजैः सह।
कपालमालाभरणः प्रेतभस्मावगुण्ठितः॥ १२५॥
विमोहयँल्लोकमिमं जटामण्डलमण्डितः।

उनका फल दिखाकर वे शिष्यों को पढ़ाने लगे। इधर शंकर भी भूतल पर मोह के अपसदनरूपं लोक में अवतार लेकर उनके कल्याण के लिए ब्राह्मणों के साथ भिक्षाटन करने लगे। शंकर ने कपालमाला धारण की हुई थी और शरीर में प्रेतभस्म का लेप किया था तथा वे जटामण्डल से मण्डित होकर इस लोक को मोहित कर रहे थे।

निक्षिप्य पार्वतीन्देवीं विष्णावमिततेजसि॥ १२६॥
नियोज्य भगवान्रुद्रो भैरवं दुष्टनिग्रहे।
दत्त्वा नारायणे देव्यानन्दनं कुलनन्दनम्॥ १२७॥

अमिततेजस्वी विष्णु के पास पार्वती को छोड़कर भगवान् रुद्र ने दुष्टों के निग्रहार्थ भैरव को नियुक्त किया और देवी के कुलनन्दन पुत्र को नारायण के सुपुर्द कर दिया।

संस्थाप्य तत्र च गणान्देवानिन्द्रपुरोगमान्।
प्रस्थिते च महादेवे विष्णुर्विश्वतनुः स्वयम्॥ १२८॥
स्त्रीरूपधारी नियतं सेवते स्म महेश्वरीम्।
ब्रह्मा हुताशनः शक्रो यमोऽन्ये सुरपुंगवाः॥ १२९॥
सिषेविरे महादेवीं स्त्रीरूपं शोभनं गताः।

वहाँ अपने गणों तथा इन्द्र आदि देवताओं को स्थापित करके महादेव ने प्रस्थान किया। तब स्वयं विश्वतनु विष्णु, ब्रह्मा, अग्नि, इन्द्र, यम तथा अन्य श्रेष्ठ देव सुन्दर स्त्रीरूप को धारण करके महादेवी महेश्वरी पार्वती देवी की नियमपूर्वक सेवा करने लगे।

नन्दीश्वरश्च भगवान् शम्भोरत्यन्तवल्लभः॥ १३०॥
द्वारदेशे गणाध्यक्षो यथापूर्वमतिष्ठत।
एतस्मिन्नन्तरे दैत्यो ह्यन्धको नाम दुर्मतिः॥ १३१॥
आहर्तुकामो गिरिजामाजगामाथ मन्दरम्।
सम्प्राप्तमन्धकं दृष्ट्वा शंकरः कालभैरवः॥ १३२॥
न्यषेधयदमेयात्मा कालरूपधरो हरः।
तयोः समभवद्युद्धं सुघोरं रोमहर्षणम्॥ १३३॥

शंकर के अत्यन्त प्रिय गणाध्यक्ष भगवान् नन्दीश्वर द्वारदेश में ही पूर्व की भाँति (पहरेदार के रूप में) खड़े हो गये। इस बीच अन्धक नामक दुर्बुद्धि वाला दैत्य पार्वती का हरण करने के लिए मन्दराचल पर आया। अन्धक को आया देखकर अमित तेजस्वी कालरूपधारी शिवस्वरूप कालभैरव ने उसे रोका। उन दोनों में रोमाञ्चकारी अत्यन्त घोर युद्ध होने लगा।

शूलेनोरसि तं दैत्यमाजघान वृषध्वजः।
ततः सहस्रशो दैत्याः सहस्रान्धकसंज्ञिताः॥ १३४॥
नन्दीश्वराद्यो दैत्यैरन्धकैरभिनिर्जिताः।

वृषध्वज कालभैरव ने दैत्य की छाती पर त्रिशूल से प्रहार किया। तब अन्धक दैत्य ने अन्धक नामक हजारों दैत्यों को उत्पन्न किया। उन सब अन्धक दैत्यों से नन्दीश्वर आदि शिव के गण पराजित हो गये।

घण्टाकर्णो मेघनादश्चण्डेशश्चण्डतापनः॥ १३५॥
विनायको मेघवाहः सोमनन्दी च वैद्युतः।

सर्वेऽन्धकं दैत्यवरं सम्प्राप्यातिबलान्विताः॥ १३६॥
युयुधुः शूलशक्त्यृष्टिगिरिकूटपरश्वधैः।
भ्रामयित्वा तु हस्ताभ्यां गृहीत्वा चरणद्वयम्॥ १३७॥
दैत्येन्द्रेणातिबलिना क्षिप्तास्ते शतयोजनम्।
ततोऽन्धकनिसृष्टा ये शतशोऽथ सहस्रशः॥ १३८॥
कालसूर्यप्रतीकाशा भैरवञ्चाभिदुद्रुवुः।
हाहेति शब्दः सुमहान् बभूवातिभयंकरः॥ १३९॥

घण्टाकर्ण, मेघनाद, चण्डेश, चण्डतापन, विनायक, मेघवाह, सोमनन्दी एवं वैद्युत नामक अतिबलशाली गण दैत्यराज अन्धक के आगे शूल, शक्ति, ऋष्टि (दो धारवाली तलवार), गिरिशिखर तथा परश्वध (फरसे) नामक अस्त्रों से युद्ध करने लगे। अनन्तर अत्यन्त बली दैत्यराज अन्धक ने उन सब को दोनों पैरों से पकड़कर घुमाकर सौ योजन की दूरी पर एक-एक करके फेंक दिया। तत्पश्चात् अन्धक द्वारा उत्पन्न किये गये प्रलयकालीन सूर्य के समान सैकड़ों-हजारों दैत्यों ने भैरव पर आक्रमण कर दिया। तब वहाँ पर हाहाकार का अत्यन्त महान् और अत्यन्त भयंकर शब्द होने लगा।

युयुधे भैरवो देवः शूलमादाय भैरवम्।
दृष्ट्वान्धकानां सुबलं दुर्जयन्निर्जितो हरः॥ १४०॥

भयंकर त्रिशूल लेकर भैरवदेव युद्ध करने लगे, किन्तु शंकरस्वरूप वे भैरव अन्धकों की अतिमहती दुर्जय सेना को देखकर पराजित हो गये।

जगाम शरणन्देवं वासुदेवमजं विभुम्।
सोऽसृजद्भगवान्विष्णुर्देवीनां शतमुत्तमम्॥ १४१॥
देवीपार्श्वस्थितो देवो विनाशाय सुरद्विषाम्।
तदान्धकसहस्रन्तु देवीभिर्यमसादनम्॥ १४२॥
नीतं केशवमाहात्म्याल्लीलयैव रणाजिरे।

तब वे अजन्मा, सर्वव्यापक वासुदेव की शरण में गये। भगवान् विष्णु ने देवशत्रुओं के विनाश के लिए सैकड़ों उत्तम देवियों की सृष्टि की। देव विष्णु भी देवी पार्वती के समीप खड़े हो गये। उन देवियों ने हजारों अन्धकों को विष्णु की महिमा से लीलापूर्वक मारकर यमलोक भेज दिया।

दृष्ट्वा पराहतं सैन्यमन्धकोऽपि महासुरः॥ १४३॥
पराङ्मुखो रणात्तस्मात्पलायत महाजवः।

शत्रु से आहत अपनी सेना को देखकर महासुर अन्धक पीठ दिखाकर रण से बड़े वेग के साथ भाग गया।

ततः क्रीडां महादेवः कृत्वा द्वादशवार्षिकीम्॥ १४४॥
हिताय भक्तलोकानामाजगामाथ मन्दरम्।
सम्प्राप्तमीश्वरं ज्ञात्वा सर्व एव गणेश्वराः॥ १४५॥
समागम्योपतिष्ठन्त भानुमन्तमिव द्विजाः।
प्रविश्य भवनं पुण्यमयुक्तानां दुरासदम्॥ १४६॥

तदनन्तर महादेव बारह वर्षों की अपनी यह लीला सम्पन्न करके (सब को मोहित करके) भक्तों के कल्याणार्थ मन्दराचल पर आ गये। ईश्वर को आया हुआ जानकर सभी गणेश्वर वहाँ आकर उपस्थित हो गये जैसे द्विजगण सूर्य के सामने उपस्थान करते हैं। तब शंकर ने योगविहीन पुरुषों के लिए अत्यन्त अप्राप्य अपने पवित्र भवन में प्रवेश किया।

ददर्श नन्दिनन्देवं भैरवं केशवं शिवः।
प्रणामप्रवणं देवं सोऽनुगृह्याथ नन्दिनम्॥ १४७॥

शिव ने वहाँ नन्दी, भैरव और विष्णुदेव को देखा। उन्होंने प्रणामकरने के लिए तत्पर नन्दी को अनुगृहीत किया।

प्रीत्यैनं पूर्वमीशानः केशवं परिषस्वजे।
दृष्ट्वा देवो महादेवीं प्रीतिविस्फारितेक्षणाम्॥ १४८॥

सर्वप्रथम ईशान शंकर ने विष्णुदेव का प्रीतिपूर्वक आलिंगन किया। तत्पश्चात् (महादेव के आगमन के कारण) प्रेम से प्रफुल्लित नेत्रों वाली महादेवी पार्वती को उन्होंने देखा।

प्रणतः शिरसा तस्याः पादयोरीश्वरस्य च।
न्यवेदयज्जयन्तस्मै शङ्करायाथ शङ्करः॥ १४९॥
भैरवो विष्णुमाहात्म्यम्प्रतीतः पार्श्वगोऽभवत्।

महादेवी तथा शिव के चरणों में प्रणाम करके शंकर-स्वरूप कालभैरव ने शिव को अपने जय के विषय में कहा और विष्णुदेव के माहात्म्य को बताते हुए उनके समीप खड़े हो गये।

श्रुत्वा तं विजयं शम्भुर्विक्रमङ्केशवस्य च॥ १५०॥
समास्ते भगवानीशो देव्या सह वरासने।
ततो देवगणाः सर्वे मरीचिप्रमुखा द्विजाः॥ १५१॥
आजग्मुर्मन्दरन्द्रष्टुं देवदेवं त्रिलोचनम्।

उस विजय को तथा विष्णु के पराक्रम को सुनकर भगवान् शंभु पार्वती देवी के साथ उत्तम आसन पर बैठ गये। तदनन्तर सभी देवगण और मरीचि आदि द्विजगण

देवाधिपति त्रिलोचन का दर्शन करने के लिए मन्दराचल पर आये।

येन तद्विजितं पूर्वन्देवीनां शतमुत्तमम्॥ १५२॥
समागतन्दैत्यसैन्यमीशदर्शनकांक्षया।
दृष्ट्वा वरासनासीनन्देव्या चन्द्रविभूषणम्॥ १५३॥
प्रणेमुरादराद्देव्यो गायन्ति स्मातिलालसा:।
प्रणेमुर्गिरिजा देवीं वामपार्श्वे पिनाकिन:॥ १५४॥
देवासनगतान्देवीं नारायणमनोमयीम्।

वे सौ देवियाँ, जिन्होंने पहले दैत्य-सेना को जीता था, शंकर के दर्शन की अभिलाषा से वहाँ आयीं। उन देवियों ने श्रेष्ठ आसन पर देवी के साथ बैठे हुए शंकर को देखकर आदर से प्रणाम किया और वे अतिशय प्रेम प्रकट करती हुई गीत गाने लगीं। फिर उन्होंने शंकर के वामभाग में स्थित देवासन पर विराजमान नारायण की मनोमयी गिरिजा देवी को प्रणाम किया।

दृष्ट्वा सिंहासनासीनं देव्यो नारायणं तथा॥ १५५॥
प्रणम्य देवमीशानं पृष्टवत्यो वराङ्गना:।

फिर सिंहासन पर आसीन नारायण को देखकर देवियों ने प्रणाम किया। फिर उन उत्तम स्त्रियों ने ईशानदेव शंकर से पूछा।

कन्या ऊचु:

कस्त्वं विभ्राजसे कान्त्या केयम्बाला रविप्रभा॥ १५६॥
कोऽन्वयम्भाति वपुषा पङ्कजायतलोचन:।
निशम्य तासां वचनं वृषेन्द्रवरवाहन:॥ १५७॥
व्याजहार महायोगी भूताधिपतिरव्यय:।
अयन्नारायणो गौरी जगन्माता सनातन:॥ १५८॥

कन्यायें बोलीं— अपनी कान्ति से चमकते हुए आप कौन हैं? सूर्य की प्रभा जैसी यह बाला कौन है? यह कमललोचन कौन है, जो शरीर से सुन्दर प्रतीत हो रहा है? उनका वचन सुनकर नन्दीवाहन, महायोगी, भूताधिपति और अविनाशी शिव ने कहा— ये सनातनदेव नारायण हैं और ये जगन्माता गौरी हैं।

विभज्य संस्थितो देव: स्वात्मानं बहुधेश्वर:।
न मे विदु: परन्तत्त्वं देव्याश्च न महर्षय:॥ १५९॥

ये देवेश्वर अपने को बहुधा विभक्त करके स्थित हैं। महर्षिगण मेरा और देवी उमा का परम तत्त्व नहीं जानते हैं।

एकोऽयं वेद विश्वात्मा भवानी विष्णुरेव च।
अहं हि निस्पृह: शान्त: केवलो निष्परिग्रह:॥ १६०॥

अकेले ये विश्वात्मा विष्णु और भवानी देवी ही जानती हैं। वस्तुत: मैं तो निस्पृह, शान्त, केवल और परिग्रहशून्य हूँ।

मामेव केशवं प्राहुर्लक्ष्मीं देवीमथाम्बिकाम्।
एष धाता विधाता च कारणं कार्यमेव च॥ १६१॥

मुझे ही विद्वान् लोग केशव-विष्णु कहते हैं, तथा अम्बिका-पार्वती को लक्ष्मी कहते हैं। ये विष्णु धाता (धारणकर्ता), विधाता, कारण और कार्यरूप हैं।

कर्ता कारयिता विष्णुर्भुक्तिमुक्तिफलप्रद:।
भोक्ता पुमानप्रमेय: संहर्ता कालरूपधृक्॥ १६२॥

वे विष्णु कर्ता और कारयिता भी हैं और भोग तथा मोक्षरूप फल देने वाले हैं। ये पुरुष (जीवात्मारूप से) भोक्ता हैं, तथापि अप्रमेय हैं। वे कालरूपधारी होने से संहारकर्ता हैं।

स्रष्टा पाता वासुदेवो विश्वात्मा विश्वतोमुख:।
कूटस्थो ह्यक्षरो व्यापी योगी नारायणोऽव्यय:॥ १६३॥

ये स्रष्टा, रक्षक, वासुदेव, विश्वात्मा, सब ओर मुख वाले, कूटस्थ, अविनाशी, सर्वव्यापी, योगी, नारायण और अविकारी हैं।

तारक: पुरुषो ह्यात्मा केवलं परमं पदम्।
सैषा माहेश्वरी गौरी मम शक्तिर्निरञ्जना॥ १६४॥

ये तारणकर्ता पुरुष, आत्मारूप से सर्वव्यापक और केवलमात्र परम पद (मोक्षरूप) हैं। यह गौरी माहेश्वरी, मेरी निरञ्जना (निर्लेप) शक्ति है।

शांता सत्या सदानन्दा परं पदमिति श्रुति:।
अस्यां सर्वमिदञ्जातमत्रैव लयमेष्यति॥ १६५॥

यह शान्त, सत्यरूप, सदानन्दरूप और परम पद है, ऐसा श्रुति कहती है। वस्तुत: सम्पूर्ण जगत् इसी मेरी शक्ति से उत्पन्न हुआ है और इसी में विलीन होगा।

एषैव सर्वभूतानां गतीनामुत्तमा गति:।
तयाहं संगतो देव्या केवलो निष्कल: पर:॥ १६६॥
पश्याम्यशेषमेवाहं परमात्मानमव्ययम्।

यही सकल गतिशील प्राणियों का उत्तम आश्रय है। इससे मिलकर मैं केवल, निष्कल और पर हूँ। मैं इस शक्तिरूप देवी से संगत होकर समग्र प्राणिसमुदाय को तथा परम अव्यय परमात्मा को देखता हूँ।

तस्मादनादिमद्वैतं विष्णुमात्मानमीश्वरम्॥ १६७॥
एकमेव विजानीथ ततो यास्यथ निर्वृतिम्।
मन्यन्ते विष्णुमव्यक्तमात्मानं श्रद्धयान्विता॥ १६८॥
ये भिन्नदृष्ट्या चेशानं पूजयन्तो न मे प्रियाः॥
द्विषन्ति ये जगत्सूतिं मोहिता रौरवादिषु॥ १६९॥
पच्यमाना न मुच्यन्ते कल्पकोटिशतैरपि।
तस्मादशेषभूतानां रक्षको विष्णुरव्ययः॥ १७०॥
यथावदिह विज्ञाय ध्येयः सर्वापदि प्रभुः।

इसलिए अनादि, अद्वैत, ईश्वर, आत्मस्वरूप विष्णु को एकरूप ही जानो। तभी मोक्ष प्राप्त करोगे। जो श्रद्धायुक्त होकर विष्णु को अव्यक्त और आत्मस्वरूप मानते हैं, (वे मुझे प्रिय हैं) परन्तु जो भेदयुक्त दृष्टि से मुझ ईशान को विष्णु से भिन्न मानकर पूजते हैं, वे मेरे प्रिय नहीं हैं। जो मोहवश जगत् की उत्पत्ति के कारणरूप विष्णु से द्वेष करते हैं, वे रौरव आदि नरकों में पकाये जाते हुए करोड़ों कल्प तक नहीं छूट पाते। इसलिए अशेष प्राणियों के रक्षक अविनाशी विष्णु हैं। इसलिए यह सब अच्छी तरह जानकर सभी आपत्तियों में प्रभु का ध्यान करना चाहिए।

श्रुत्वा भगवतो वाक्यं देवाः सर्वे गणेश्वराः॥ १७१॥
नेमुर्नारायणं देवं देवीं च हिमशैलजाम्।
प्रार्थयामासुरीशाने भक्तिं भक्तजनप्रिये॥ १७२॥
भवानीपादयुगले नारायणपदाम्बुजे।

भगवान् का यह वचन सुनकर सभी देवों और गणेश्वरों ने नारायण देव तथा पार्वती देवी को प्रणाम किया। फिर भक्तजनों के प्रिय महादेव, हिमालयपुत्री पार्वती देवी के चरणयुगल तथा नारायण के चरणकमल में भक्ति के लिए प्रार्थना की।

ततो नारायणन्देवं गणेशा मातरोऽपि च॥ १७३॥
न पश्यन्ति जगत्सूतिं तदद्भुतमिवाभवत्।

तदनन्तर सभी गणेश्वर तथा मातृकाओं ने नारायण देव को तथा जगन्माता को वहाँ नहीं देखा, यह अद्भुत-सी घटना हुई।

तदन्तरे महादैत्यो ह्यन्धको मन्मथान्धकः॥ १७४॥
मोहितो गिरिजां देवीमाहर्तुं गिरिमाययौ।

इस बीच कामान्ध हुआ अन्धक नामक महादैत्य मोहित होकर पार्वती का हरण करने के लिए मन्दराचल पर आया।

अथानन्तवपुः श्रीमान्योगी नारायणोऽमलः।
तत्रैवाविरभूद्दैत्यैर्युद्धाय पुरुषोत्तमः॥ १७५॥

इसके बाद अनन्तशरीरधारी, श्रीमान्, योगी, निर्मल, पुरुषोत्तम नारायण वहीं दैत्यों से युद्ध करने के लिए प्रकट हो गये।

कृत्वाथ पार्श्वे भगवन्तमीशो
युद्धाय विष्णुं गणदेवमुख्यैः।
शिलादपुत्रेण च मातृकाभिः
स कालरुद्रोऽपि जगाम देवः॥ १७६॥

उस समय भगवान् विष्णु को अपने बगल में करके मुख्य गणदेवों, शिलादपुत्र, मातृकाओं साथ ईश्वर कालरुद्र ने युद्धार्थ प्रस्थान कर दिया।

त्रिशूलमादाय कृशानुकल्पं
स देवदेवः प्रययौ पुरस्तात्।
तमन्वयुस्ते गणराजवर्या
जगाम देवोऽपि सहस्रबाहुः॥ १७७॥

अग्नि के समान (देदीप्यमान) त्रिशूल को लेकर महादेव आगे-आगे चले। उस समय उनके पीछे श्रेष्ठ गणदेव एवं सहस्रबाहु विष्णु भी चलने लगे।

रराज मध्ये भगवान् सुराणां
विवाहनो वारिजपर्णवर्णः।
तदा सुमेरोः शिखराधिरूढ
स्त्रिलोकदृष्टिर्भगवानिवार्कः॥ १७८॥

उस समय देवताओं के मध्य गरुड़वाहन पर विराजमान भगवान् विष्णु कमलपत्र के समान वर्ण वाले होने से ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानों सुमेरुपर्वत के शिखर पर आरूढ़ तीनों लोक के नेत्ररूप भगवान् सूर्य हों।

जयत्यनादिर्भगवानमेयो
हरः सहस्राकृतिराविरासीत्।
त्रिशूलपाणिर्गगने सुघोषः
पपात देवोपरि पुष्पवृष्टिः॥ १७९॥

जयशील, अनादि, अप्रमेय, भगवान् शंकर ने त्रिशूलपाणि होकर हजारों आकृतियाँ धारण कर लीं और आकाशमार्ग में महान् घोष करने लगे। उस समय उन देवों पर पुष्पवृष्टि होने लगी।

समागतं वीक्ष्य गणेशराजं समावृतं दैत्यरिपुं गणेशैः।
युयोध शक्रेण समातृकाभिर्गणैरशेषैरमरप्रधानैः॥ १८०॥

उस दैत्यरिपु शंकर को महान् गणों से समावृत होकर आया हुआ देखकर प्रथम उस दैत्य अन्धक ने इन्द्र, मातृकाओं एवं समस्त प्रधान देवों के साथ युद्ध आरंभ कर दिया।

विजित्य सर्वानपि बाहुवीर्यात्
स संयुगे शम्भुरनन्तधामा।
समाययौ यत्र स कालरुद्रो
विमानमारुह्य विहीनसत्त्व॥ १८१॥

युद्ध में अनन्तधाम शंकर ने अपने बाहुबल से सबको जीत लिया था, इसलिए वह अन्धक सत्त्व-बलहीन सा होकर विमान पर आरूढ़ होकर उस ओर गया जहाँ कालरुद्र थे।

दृष्ट्वान्धकं समायान्तं भगवान् गरुडध्वजः।
व्याजहार महादेवं भैरवं भूतिभूषणम्॥ १८२॥

अन्धक को आते हुआ देखकर भगवान् विष्णु ने भस्मरूप आभूषण वाले भैरव महादेव से कहा।

हन्तुमर्हसि दैत्येशमन्धकं लोककण्टकम्।
त्वामृते भगवान् शक्तो हन्ता नान्योऽस्य विद्यते॥ १८३॥

लोक के लिए कण्टकरूप इस दैत्यराज अन्धक को आप ही मार सकते हैं। आपको छोड़कर दूसरा कोई इसको मारने में समर्थ नहीं है।

त्वं हर्ता सर्वलोकानां कालात्मा ह्यैश्वरी तनुः।
स्तूयते विविधैर्मन्त्रैर्वेदविद्भिर्विचक्षणैः॥ १८४॥

क्योंकि आप ही ईश्वरीय शरीरधारी कालरूप होकर लोकों का संहार करते हैं। वेदवेत्ता विद्वान् विविध मंत्रों से आपकी स्तुति करते हैं।

स वासुदेवस्य वचो निशम्य भगवान् हरः।
निरीक्ष्य विष्णुं हनने दैत्येन्द्रस्य मतिन्दधौ॥ १८५॥

वासुदेव का ऐसा वचन सुनकर, भगवान् शंकर ने विष्णु की ओर देखकर दैत्यराज का वध करने का निश्चय किया।

जगाम देवतानीकं गणानां हर्षवर्द्धनम्।
स्तुवन्ति भैरवं दैत्यमन्तरिक्षचारा जनाः॥ १८६॥

तब वे गणों का हर्ष बढ़ाने वाली देव-सेना की ओर चल पड़े। उस समय अन्तरिक्षचारी लोग भैरवरूप महादेव की स्तुति करने लगे।

जयानन्त महादेव कालमूर्ते सनातन।
त्वमग्निः सर्वभावानामन्तस्तिष्ठसि सर्वगः॥ १८७॥

हे अनन्त! हे महादेव! आपकी जय हो। हे सनातन कालमूर्ते! आप सर्वगामी हैं तथा (जठररूप)अग्नि से सभी प्राणियों के भीतर रहते हैं।

त्वमन्तको लोककर्त्ता त्वन्धाता हरिरव्ययः।
त्वं ब्रह्मा त्वं महादेवस्त्वन्धाम परमं पदम्॥ १८८॥

आप सब के अन्तकर्ता, लोकों का निर्माण करने वाले, धाता (भरण करने वाले) और अविनाशी हरि हैं। आप ब्रह्मा, आप महादेव, आप तेजःस्वरूप और परम धाम तथा परम पद हैं।

ओंकारमूर्तिर्योगात्मा त्रयीनेत्रस्त्रिलोचनः।
महाविभूतिर्विश्वेशो जयानन्त जगत्पते॥ १८९॥

आप ओंकारमूर्ति, योगात्मा, तीनवेदरूप नेत्र वाले, त्रिलोचन, महाविभूतिमय और विश्वेश्वर हैं। हे अनन्त! हे जगत्पते! आपकी जय हो।

ततः कालाग्निरुद्रोऽसौ गृहीत्वान्धकमीश्वरः।
त्रिशूलाग्रेषु विन्यस्य प्रननर्त्त सताङ्गतिः॥ १९०॥

तदनन्तर सज्जनों के गतिरूप कालाग्निस्वरूप वे रुद्रदेव अन्धकासुर को पकड़कर उसे त्रिशूल के अग्रभाग पर रखकर नृत्य करने लगे।

दृष्ट्वान्धकं देवगणाः शूलप्रोतं पितामहः।
प्रणेमुरीश्वरं देवं भैरवम्भवमोचनम्॥ १९१॥

इस प्रकार त्रिशूल में परोये हुए अन्धक को देखकर ब्रह्मा और देवगण संसार से मुक्ति देने वाले ईश्वर भैरवदेव को प्रणाम करने लगे।

अस्तुवन्मुनयः सिद्धा जगुर्गन्धर्वकिन्नराः।
अन्तरिक्षेऽप्सरःसङ्घा नृत्यन्ति स्म मनोहराः॥ १९२॥

मुनिगण तथा सिद्धगण भी स्तुति करने लगे। अन्तरिक्ष में मनोहर अप्सराओं का समूह नृत्य कर रहा था।

संस्थापितोऽथ शूलाग्रे सोऽन्धको दग्धकिल्विषः।
उत्पन्नाखिलविज्ञानस्तुष्टाव परमेश्वरम्॥ १९३॥

अनन्तर शूल के अग्रभाग पर स्थापित होने से अन्धक निष्पाप हो गया एवं उसमें समस्त विज्ञानों का अविर्भाव हुआ। तब वह परमेश्वर की स्तुति करने लगा।

अन्धक उवाच—

नमामि मूर्ध्ना भगवन्तमेकं
समाहितो यं विदुरीशतत्त्वम्।

पुरातनं पुण्यमनंतरूपं
कालं कविं योगवियोगहेतुम्॥ १९४॥

अन्धक बोला— मैं समाहित चित्त होकर एकरूप भगवान् को मस्तक झुकाकर नमन करता हूँ, जिन्हें लोग अद्वितीय, ईशतत्त्व, पुरातन, पुण्यस्वरूप, काल, कवि और योग-वियोग का हेतु जानते हैं।

दंष्ट्राकरालं दिवि नृत्यमानं
हुताशवक्त्रं ज्वलनार्करूपम्।
सहस्रपादाक्षिशिरोभियुक्तं
भवन्तमेकं प्रणमामि रुद्रम्॥ १९५॥

दंष्ट्राओं से भयंकर लगने वाले, आकाश में नृत्य करने वाले, अग्निस्वरूप मुखवाले, देदीप्यमान सूर्यस्वरूप, सहस्रचरण, नेत्र और शिर वाले, रुद्ररूप और केवल एक आपको नमस्कार है।

जयादिदेवामरपूजिताङ्घ्रे
विभागहीनामलतत्त्वरूप।
त्वमग्निरेको बहुधाभिपूज्यो
वय्वादिभेदैरखिलात्मरूपः॥ १९६॥

हे देवपूजित चरण वाले, विभागहीन, निर्मलतत्त्वरूप, आदिदेव! आपकी जय हो। आप एक अग्निस्वरूप होने पर भी अनेक प्रकार से पूजनीय हैं। वायु आदि भेदों से आप सब के आत्मस्वरूप हैं।

त्वामेकमाहुः पुरुषं पुराण-
मादित्यवर्णन्तमसः परस्तात्।
त्वं पश्यसीदं परिपाश्यजस्रं
त्वमन्तको योगिगणानुजुष्टः॥ १९७॥

आपको ही (वेदज्ञ) एकमात्र पुराण पुरुष कहते हैं। आप सूर्य के समान वर्ण वाले और तमोगुण-अन्धकाररूपी अज्ञान से परे हैं। आप इस जगत् को देखते हैं, निरन्तर इसकी रक्षा करते हैं और आप ही इसके संहारकर्ता हैं तथा आप योगिगणों द्वारा सेवित हैं।

एकोऽन्तरात्मा बहुधा निविष्टो
देहेषु देहादिविशेषहीनः।
त्वमात्मतत्त्वं परमात्मशब्दं
भवन्तमाहुः शिवमेव केचित्॥ १९८॥

आप ही एकमात्र सब के अन्तरात्मा तथा भिन्न-भिन्न देहों में अनेक प्रकार से प्रविष्ट हैं। फिर भी आप विशेष देहादि से रहित हैं। आप परमात्मा शब्द से अभिहित आमतत्त्वरूप हैं। कुछ लोग आपको शिव ही कहते हैं।

त्वमक्षरं ब्रह्मपरं पवित्र-
मानंदरूपं प्रणवाभिधानम्।
त्वमीश्वरो वेदविदां प्रसिद्धः
स्वायम्भुवोऽशेषविशेषहीनः॥ १९९॥

आप अविनाशी परम पवित्र ब्रह्म हैं। आप आनन्दरूप एवं प्रणव (ओंकार) नाम वाले हैं। आप वेदवेत्ताओं में प्रसिद्ध ईश्वर एवं समस्त भेदों से रहित स्वायम्भुव (ब्रह्मा के पुत्र) हैं।

त्वमिंद्ररूपो वरुणोऽग्निरूपो
हंसः प्राणो मृत्युरंतोऽसि यज्ञः
प्रजापतिर्भगवानेकरूपो
नीलग्रीवः स्तूयसे वेदविद्भिः॥ २००॥

आप इन्द्रस्वरूप, वरुण और अग्निरूप, हंस, प्राण, मृत्यु, अन्त तथा यज्ञरूप हैं। प्रजापति, एकरूप, भगवान् नीलग्रीव आदि नाम वाले आपकी वेदज्ञ-जन स्तुति करते हैं।

नारायणस्त्वं जगतामनादिः
पितामहस्त्वं प्रपितामहश्च।
वेदांतगुह्योपनिषत्सु गीतः
सदाशिवस्त्वं परमेश्वरोऽसि॥ २०१॥

आप नारायणरूप, जगत् में अनादि हैं, पितामह ब्रह्मा एवं सब के प्रपितामह हैं तथा वेदान्तगुह्यरूप उपनिषदों में आप ही गाये गये हैं। आप ही सदाशिव और परमेश्वर हैं।

नमः परस्मै तमसः परस्तात्
परात्मने पञ्चनवान्तराय।
त्रिशक्त्यतीताय निरञ्जनाय
सहस्रशक्त्यासनसंस्थिताय॥ २०२॥

तमोगुण से परे, परमात्मा, पांच और नव तत्त्वों के अन्दर रहने वाले, या चतुर्दशभुवनात्मक, तीन शक्तियों (सात्त्विकी, राजसी, तामसी) से अतीत, निरञ्जन, सहस्र शक्त्यासनों पर विराजमान आपको नमस्कार है।

त्रिमूर्तयेऽनन्तपदात्ममूर्तये
जगन्निवासाय जगन्मयाय।
नमो जनानां हृदि संस्थिताय
फणीन्द्रहाराय नमोऽस्तु तुभ्यम्॥ २०३॥

त्रिमूर्तिरूप, अनन्त, परमात्ममूर्ति, जगन्निवास, जगन्मय, लोगों के हृदय में अवस्थित और नागेन्द्रों का हार धारण करने वाले आपको नमस्कार है।

मुनीन्द्रसिद्धार्चितपादपद्म
ऐश्वर्यधर्मासनसंस्थिताय।
नमः परान्ताय भवोद्भवाय
सहस्रचन्द्रार्कसहस्रमूर्ते॥ २०४॥

मुनीन्द्रों और सिद्धों से पूजित चरणकमल वाले, हे सहस्र सूर्य-चन्द्रमा के समान, हे सहस्रमूर्ते! ऐश्वर्य और धर्म के आसन पर संस्थित, पर के भी अन्तरूप एवं संसार का उत्पत्तिस्थान! आपको नमस्कार है।

नमोऽस्तु सोमाय सुमध्यमाय
नमोऽस्तु देवाय हिरण्यबाहो।
नमोऽग्निचंद्रार्कविलोचनाय
नमोऽम्बिकायाः पतये मृडाय॥ २०५॥

हे हिरण्यबाहु! सोमरूप और उत्तम मध्यभाग वाले देव को नमस्कार है। अग्नि, चन्द्रमा और सूर्यरूपी नेत्र वाले आपको नमस्कार है। अम्बिकापति मृड (सबके लिए सुखप्रद शिव) को नमस्कार है।

नमोऽस्तु गुह्याय गुहांतराय
वेदान्तविज्ञानविनिश्चिताय।
त्रिकालहीनामलधामधाम्ने
नमो महेशाय नमः शिवाय॥ २०६॥

गुप्त रखने योग्य, हृदयरूपी गुहा में स्थित और वेदान्त के विज्ञान से विनिश्चित आपको नमस्कार है। त्रिकाल से रहित और निर्मल धाम वाले महेश को नमस्कार है। शिव को नमस्कार है।

एवं स्तुतः स भगवान् शूलाग्रादवतार्य तम्।
तुष्टः प्रोवाच हस्ताभ्यां स्पृष्ट्वा च परमेश्वरः॥ २०७॥

इस प्रकार स्तुति करने पर भगवान् परमेश्वर संतुष्ट हो गये और उसे त्रिशूल के अग्रभाग से उतारकर दोनों हाथों से स्पर्श करके बोले।

प्रीतोऽहं सर्वथा दैत्य स्तवेनानेन साम्प्रतम्।
सम्प्राप्य गाणपत्यं मे सन्निधाने सदा वस॥ २०८॥

हे दैत्य! तुम्हारे इस स्तोत्र से मैं अब सर्वथा सन्तुष्ट हूँ। इसलिए मेरे गणों के अधिपति होकर तुम सर्वदा मेरे निकट वास करो।

आरोगश्छिन्नसंदेहो देवैरपि सुपूजितः।
नंदीश्वरस्यानुचरः सर्वदुःखविवर्जितः॥ २०९॥

(त्रिशूल के अग्रभाग से) छिन्नशरीर हुए भी तुम रोगरहित रहोगे। तुम देवों से अच्छी प्रकार पूजित होकर नन्दीश्वर का अनुचर बनकर समस्त दुःखों में वर्जित होकर रहोगे।

एवं व्याहृतमात्रे तु देवदेवेन देवताः।
गणेश्वरं महादैत्यमंधकं देवसन्निधौ॥ २१०॥

इस प्रकार महादेव के कहने मात्र से ही देवताओं ने महादैत्य अन्धक को देवों के समीप गणेश्वररूप स्वीकार किया।

सहस्रसूर्यसङ्काशं त्रिनेत्रं चंद्रचिह्नितम्।
नीलकण्ठं जटामौलिं शूलाशक्तं महाकरम्॥ २११॥

उस समय वह सहस्र सूर्यों के समान प्रकाशित, त्रिनेत्रधारी तथा चन्द्रमा से शोभित था। उनका कंठ नीला एवं जटाजूट-धारी था। वह शूल से विद्ध था और उसके हाथ विशाल थे।

दृष्ट्वा तं तुष्टुवुर्दैत्यमाश्चर्यं परमङ्गताः।
उवाच भगवान् विष्णुर्देवदेवं स्मयन्निव॥ २१२॥

ऐसे उस दैत्य को देखकर देवगण परम आश्चर्य में पड़कर उसकी स्तुति करने लगे। तब भगवान् विष्णु ने मुस्कुराते हुए, महादेव से कहा।

स्थाने तव महादेव प्रभावः पुरुषो महान्।
नेक्षते ज्ञातिजान् दोषान् गृह्णाति च गुणानपि॥ २१३॥

हे महादेव! आपका प्रभाव एक महान् पुरुष जैसा है। वह ज्ञातिजनित दोषों को नहीं देखता, अपितु गुणों को ही ग्रहण करता है।

इतीरितोऽथ भैरवो गणेशदेवपुङ्गवः।
सकेशवः सहांधको जगाम शङ्करांतिकम्।
निरीक्ष्य देवमागतं सशङ्करः सहान्धकम्।
समाधवं समातृकं जगाम निर्वृतिं हरः॥ २१४॥

इस प्रकार कहने पर गणों के अधिपति देवश्रेष्ठ भैरव विष्णु और अन्धक सहित महादेव के निकट पहुँच गये। नारायण, अन्धक और मातृकाओं के साथ आये हुए कालभैरव को देखकर शंकर परम शांति को प्राप्त हुए।

प्रगृह्य पाणिनेश्वरो हिरण्यलोचनात्मजं
जगाम यत्र शैलजा विमानमीशवल्लभा।

विलोक्य सा समागतं पतिं भवार्तिहारिणम्।
उवाच सान्धकं मुखं प्रसादमन्धकंप्रति॥ २१५॥

तब महादेव ने हिरण्याक्षपुत्र अन्धक को हाथ से पकडकर वहाँ गये जहाँ शिववल्लभा पार्वती विमान में विराजमान थीं। भवबाधा को दूर करने वाले पति शिव को अन्धक के साथ आये हुए देखकर पार्वती ने अन्धक के प्रति अनुग्रहपूर्वक यह वचन कहा।

अथान्धको महेश्वरीं ददर्श देवपार्श्वगां
पपात दण्डवत् क्षितौ ननाम पादपद्मयो:।
नमामि देववल्लभामनादिमद्रिजामिमां
यत: प्रधानपुरुषौ निहन्ति याखिलञ्जगत्॥ २१६॥

अनन्तर महादेव के पास स्थित महेश्वरी पार्वती को देखकर अन्धक पृथ्वी पर दण्डवत् गिर गया और उनके चरणकमलों में प्रणाम करने लगा। (वह बोला—) जिनसे प्रकृति और पुरुष उत्पन्न होते हैं और जो सम्पूर्ण जगत् का संहार करती हैं, उस अनादि शिवप्रिया पार्वतीजी को मैं प्रणाम करता हूँ।

विभाति या शिवासने शिवेन साकमव्यया।
हिरण्मयेऽतिनिर्मले नमामि तां हिमाद्रिजाम्।
यदन्तराखिलञ्जगज्जगन्ति यान्ति संक्षयं
नमामि यत्र तामुमामशेषदोषवर्जिताम्॥ २१७॥

जो अविनाशिनी देवी शिवजी के साथ अत्यन्त निर्मल सुवर्णमय शिवासन पर शोभित हो रही हैं, उन पार्वती को मैं नमस्कार करता हूँ। जिनके भीतर यह सम्पूर्ण जगत् अस्तित्व एवं संहार को प्राप्त करते हैं, उन सकल दोष रहित उमा देवी को प्रणाम करता हूँ।

न जायते न हीयते न वर्द्धते च तामुमां
नमामि तां गुणातिगां गिरीशपुत्रिकामिमाम्।
क्षमस्व देवि शैलजे कृतं मया विमोहितं
सुरासुरैर्नमस्कृतं नमामि ते पदाम्बुजम्॥ २१८॥

जिनका जन्म, ह्रास और वृद्धि नहीं होती, उन गुणातीत हिमालय कन्या को प्रणाम करता हूँ। हे शैलजे! मैंने मोहित होकर ऐसा आचरण किया, मेरा अपराध क्षमा करें। देवों और असुरों से नमस्कृत आपके चरणकमल को नमस्कार करता हूँ।

इत्थं भगवती देवी भक्तिनम्रेण पार्वती।
संस्तुता दैत्यपतिना पुत्रत्वे जगृहेऽन्धकम्॥ २१९॥

इस प्रकार भक्ति से नम्र होकर दैत्य ने भगवती पार्वती देवी की स्तुति की। तब भगवती ने अन्धक को अपने पुत्र के रूप में स्वीकार कर लिया।

तत: स मातृभि: सार्द्धं भैरवो रुद्रसम्भव:।
जगाम त्वाज्ञया शम्भो: पातालं परमेश्वर:॥ २२०॥
यत्र सा तामसी विष्णोमूर्ति: संहारकारिका।
समास्ते हरिरव्यक्तो नृसिंहाकृतिरीश्वर:॥ २२१॥

तदनन्तर रुद्रोत्पन्न भैरव परमेश्वर शंकर की आज्ञा से मातृका देवियों के साथ पाताल में चले गये। जहाँ वह संहार करने वाली तामसी नृसिंहाकृतिरूप विष्णुमूर्ति रहती है, और हरि स्वयं अव्यक्तरूप से रहते हैं।

ततोऽनन्ताकृति: शम्भु: शेषेणापि सुपूजित:।
कालाग्निरुद्रो भगवान् युयोजात्मानमात्मनि॥ २२२॥

तदनन्तर अनन्त आकृति वाले शंकर की शेषनाग ने भी पूजा की। तब भगवान् कालाग्निरुद्र ने अपने स्वरूप को अपने आत्मरूप में ही योजित कर दिया अर्थात् भैरवस्वरूप को समेट लिया।

युञ्जतस्तस्य देवस्य सर्वा एवाथ मातर:।
बुभुक्षिता महादेवं प्रणम्याहुस्त्रिलोचनम्॥ २२३॥

भैरवदेव के योगलीन हो जाने पर सभी मातायें क्षुधापीड़ित होकर त्रिलोचन महादेव को प्रणाम करके कहने लगीं।

मातर ऊचु:

बुभुक्षिता महादेव त्वमनुज्ञातुमर्हसि।
त्रैलोक्यं भक्षयिष्यामो नान्यथा तृप्तिरस्ति न:॥ २२४॥

मातायें बोलीं— हे महादेव! हम भूखी हैं। आप आज्ञा दें। तीनों लोक को हम खा जायेंगी, अन्यथा हमारी तृप्ति नहीं होगी।

एतावदुक्त्वा वचनं मातरो विष्णुसम्भवा:।
भक्षयाञ्चक्रिरे सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्॥ २२५॥

इतना कहकर विष्णु से उत्पन्न वे मातृकाएँ समस्त चराचर सहित तीनों लोकों का भक्षण करने लगीं।

तत: स भैरवो देवो नृसिंहवपुषं हरिम्।
दध्यौ नारायणन्देवं प्रणम्य च कृताञ्जलि:॥ २२६॥

तदुपरान्त उन भैरवदेव ने नृसिंह शरीरधारी हरि का ध्यान करके हाथ जोड़कर नारायण देव को प्रणाम किया।

उमेशचिन्तितं ज्ञात्वा क्षणात्प्रादुरभूद्धरिः।
विज्ञापयामास च तं भक्षयन्तीह मातरः॥ २२७॥
निवारयाशु त्रैलोक्यं त्वदीया भगवन्निति।
संस्मृता विष्णुना देव्यो नृसिंहवपुषा पुनः।
उपतस्थुर्महादेवं नरसिंहाकृतिं ततः॥ २२८॥

शंकर की चिन्ता जानकर हरि तत्क्षण प्रकट हो गये और उनसे निवेदन किया कि आपसे प्रकट हुईं ये मातायें यहाँ तीनों लोकों को खा रही हैं। हे भगवन्! इन्हें शीघ्र रोको। तब पुनः नृसिंहशरीरधारी विष्णु के द्वारा स्मरण किये जाने पर वे देवियाँ नरसिंहाकृतिवाले महादेव के पास गयीं।

सम्प्राप्य सन्निधिं विष्णोः सर्वसंहारकारिकाः।
प्रददुः शम्भवे शक्तिं भैरवायातितेजसे॥ २२९॥

विष्णु का सान्निध्य पाकर सब का संहार करने वाली देवियों ने अत्यन्त तेजस्वी भैरवरूप शंभु को अपनी शक्ति प्रदान की।

अपश्यंस्ता जगत्सूतिं नृसिंहमतिभैरवम्।
क्षणादेकत्वमापन्नं शेषाहिं चापि मातरः॥ २३०॥

उन माताओं ने उस समय देखा कि जगत् के उत्पादक ब्रह्मा, अत्यन्त भीषणरूप वाले नृसिंह तथा अनन्त शेषनाग क्षणभर में ही एक हो गये।

व्याजहार हृषीकेशो ये भक्ताः शूलपाणये।
ये च मां संस्मरन्तीह पालनीयाः प्रयत्नतः॥ २३१॥

उस समय हृषीकेश-विष्णु ने कहा था कि जो शूलपाणि शंकर के भक्त हैं और जो मेरा स्मरण करते हैं, वे हमारे लिए प्रयत्नपूर्वक पालन करने योग्य हैं।

ममैव मूर्त्तिरतुला सर्वसंहारकारिका।
महेश्वरांगसंभूता भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी॥ २३२॥

क्योंकि सबका संहार करने वाली यह अतुल्य भैरव की मूर्ति मेरी ही है, भले ही वह महेश्वर के अंग से उत्पन्न है। यह (भक्तों को) भुक्ति और मुक्ति दोनों को देने वाली है।

अनन्तो भगवान् कालो द्विधावस्था ममैव तु।
तामसी राजसी मूर्तिर्देवदेवश्चतुर्मुखः॥ २३३॥

इस प्रकार भगवान् अनन्त (शेषनाग) और कालभैरव ये दोनों अवस्थाएँ मेरी ही हैं। यह मेरी तामसी मूर्ति है और देवों के देव चतुर्मुख ब्रह्मा राजसी मूर्ति है।

सोऽहं देवो दुराधर्षः काले लोकप्रकालनः।
भक्षयिष्यामि कल्पान्ते रौद्रेण निखिलं जगत्॥ २३४॥

वह मैं देव दुराधर्ष विष्णु, काल आने पर कल्पान्त के समय लोकप्रकालन (भयानक) रौद्ररूप से सम्पूर्ण जगत् का भक्षण करूँगा (इसलिए अभी इसका भक्षण न करो)।

या सा विमोहिनी मूर्त्तिर्मम नारायणाह्वया।
सत्त्वोद्रिक्ता जगत्सर्वं संस्थापयति नित्यदा॥ २३५॥

जो मेरी नारायण नाम की मोहिनी मूर्ति है, वह सत्त्वगुण की अधिकता से युक्त है अतः यह नित्य सम्पूर्ण जगत् को स्थिर रखती है।

स विष्णुः परमं ब्रह्म परमात्मा परा गतिः।
मूलप्रकृतिरव्यक्ता सदानन्देति कथ्यते॥ २३६॥

वही विष्णु परम ब्रह्म, परमात्मा, परागति, अव्यक्त मूलप्रकृति होने से सदानन्दा कही जाती है।

इत्येवं बोधिता देव्यो विष्णुना विष्णुमातरः।
प्रपेदिरे महादेवं तमेव शरणं परम्॥ २३७॥

इस प्रकार विष्णुमाता देवियों को विष्णु ने समझाया था, तब वे उन्हीं श्रेष्ठ महादेव विष्णु की शरण में आ गईं थीं।

एतद्वः कथितं सर्वं मयान्धकनिषूदनम्।
माहात्म्यं देवदेवस्य भैरवस्यामितौजसः॥ २३८॥

इस प्रकार मैंने अन्धक का विनाश वाला सम्पूर्ण कथानक तथा अमित तेजस्वी देवदेव भैरवरूप शंकर का माहात्म्य भी आपको को बता दिया।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे अन्धकनिबर्हणं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

सप्तदशोऽध्यायः

(दक्षकन्याओं का वंश वर्णन)

सूत उवाच—

अन्धके निगृहीते वै प्रह्लादस्य महात्मनः।
विरोचनो नाम बली बभूव नृपतिः सुतः॥ १॥

सूत बोले— इस प्रकार अन्धकासुर के दण्डित होने पर (बाद में गाणपत्य प्राप्त होने से) महात्मा प्रह्लाद का बलवान् पुत्र विरोचन नाम का राजा हुआ।

देवाञ्जित्वा सदेवेन्द्रान् बहून्वर्षान्महासुरः।
पालयामास धर्मेण त्रैलोक्यं सचराचरम्॥ २॥

महासुर विरोचन ने इन्द्र सहित देवताओं को जीतकर बहुत वर्षों तक चराचर सहित तीनों लोकों का धर्मपूर्वक पालन किया।

तस्यैव वर्तमानस्य कदाचिद्विष्णुचोदितः।
सनत्कुमारो भगवान् पुरं प्राप महामुनिः॥ ३॥

उसके इस प्रकार रहते किसी समय विष्णु द्वारा प्रेरित महामुनि भगवान् सनत्कुमार असुरराज के नगर में पहुँचे।

गत्वा सिंहासनगतो ब्रह्मपुत्रं महासुरः।
ननामोत्थाय सिरसा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत्॥ ४॥

सिंहासन पर आसीन महासुर ने उठकर उस ब्रह्मपुत्र के समीप जाकर शिर से प्रणाम किया तथा हाथ जोड़कर मुनि को यह वाक्य कहा।

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि सम्प्राप्तो मे पुरोत्तमम्।
योगीश्वरोऽद्य भगवान्यतोऽसौ ब्रह्मवित्स्वयम्॥ ५॥

मैं धन्य हूँ, अनुगृहीत हूँ, जो आज योगीश्वर एवं ब्रह्मवेत्ता भगवान् स्वयं मेरी श्रेष्ठ पुरी में पधारे हैं।

किमर्थमागतो ब्रह्मन् स्वयन्देवः पितामहः।
ब्रूहि मे ब्रह्मणः पुत्र किं कार्यं करवाण्यहम्॥ ६॥

ब्रह्मन्! आप स्वयं ब्रह्मदेव हैं। किस हेतु यहाँ आये हैं? ब्रह्मपुत्र! मुझे बतायें, मैं आपका कौन-सा कार्य करूँ।

सोऽब्रवीद्भगवान्देवो धर्मयुक्तं महासुरम्।
द्रष्टुमभ्यागतोऽहं वै भवन्तं भाग्यवानसि॥ ७॥

तब भगवान् देव सनत्कुमार ने धर्मयुक्त उस महासुर से कहा कि आप सचमुच भाग्यवान् हैं, मैं आपका दर्शन करने के लिए ही आया हूँ।

सुदुर्लभा नीतिरेषा दैत्यानान्दैत्यसत्तम।
त्रिलोके धार्मिको नूनं त्वादृशोऽन्यो न विद्यते॥ ८॥

हे दैत्यश्रेष्ठ! दैत्यों की ऐसी नीति अत्यन्त दुर्लभ है। आपके समान धार्मिक निश्चित ही तीनों लोक में दूसरा कोई नहीं है।

इत्युक्तोऽसुरराजोऽसौ पुनः प्राह महामुनिम्।
धर्माणां परमं धर्मं ब्रूहि मे ब्रह्मवित्तम॥ ९॥

यह कहे जाने पर उस असुरराज ने पुनः महामुनि से कहा— हे ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ! धर्मों में जो परम श्रेष्ठ धर्म है, वह मुझे कहो-उपदेश करो।

सोऽब्रवीद्भगवान्योगी दैत्येन्द्राय महात्मने।
सर्वगुह्यतमं धर्ममात्मज्ञानमनुत्तमम्॥ १०॥

तब उस भगवान् योगी ने महात्मा दैत्यराज को सबसे गुह्यतम और श्रेष्ठ धर्म आत्मज्ञान का उपदेश किया था।

स लब्ध्वा परमं ज्ञानं दत्त्वा च गुरुदक्षिणाम्।
निधाय पुत्रे तद्राज्यं योगाभ्यासरतोऽभवत्॥ ११॥

वह दैत्यराज परम ज्ञान प्राप्त करके, गुरुदक्षिणा देकर और पुत्र को राज्य सौंपकर योगाभ्यास में निरत हो गया।

स तस्य पुत्रो मतिमान् बलिर्नाम महासुरः।
ब्रह्मण्यो धार्मिकोऽत्यर्थंविजिग्येऽथ पुरन्दरम्॥ १२॥

उसका वह पुत्र बुद्धिमान् महासुर बलि था। वह ब्राह्मणभक्त, अत्यन्त धार्मिक था और इन्द्र को भी उसने जीत लिया था।

कृत्वा तेन महद्युद्धं शक्रः सर्वामरैर्वृतः।
जगाम निर्जितो विष्णुन्देवं शरणमच्युतम्॥ १३॥

सभी देवताओं समेत इन्द्र ने उसके साथ महान् युद्ध किया था और उससे पराजित होकर इन्द्र अच्युत विष्णुदेव की शरण में गये।

तदन्तरेऽदितिर्देवी देवमाता सुदुःखिता।
दैत्येन्द्राणां वधार्थाय पुत्रो मे स्यादिति स्वयम्॥ १४॥
तताप सुमहाघोरं तपोराशिं ततः परम्।
प्रपन्ना विष्णुमव्यक्तं शरण्यं शरणं हरिम्॥ १५॥

इस बीच (इन्द्र के पराजय के कारण) देवमाता अदिति ने अत्यन्त दुःखी होकर दैत्येन्द्रों के वध के निमित्त 'मुझे एक पुत्र हो' ऐसी कामना से अत्यंत महाघोर तप करने में लग गयीं और अव्यक्त, शरण लेने योग्य श्रीहरि—विष्णु की शरण में गई।

कृत्वा हृत्पद्मकिञ्जल्के निष्कलं परमम्पदम्।
वासुदेवमनाद्यंतमानन्दं व्योम केवलम्॥ १६॥

उसने अपने हृदयकमल के केसरों के मध्य निष्कल, परम पदरूप, आदि-अन्तरहित, आनन्दस्वरूप, व्योममय और अद्वितीय भगवान् वासुदेव को देखा।

प्रसन्नो भगवान्विष्णुः शङ्खचक्रगदाधरः।
आविर्बभूव योगात्मा देवमातुः पुरो हरिः॥ १७॥

तब शंख-चक्र-गदाधारी, योगात्मा, भगवान् विष्णु प्रसन्न होकर देवमाता के सामने प्रकट हो गये।

दृष्ट्वा समागतं विष्णुमदितिर्भक्तिसंयुता।
मेने कृतार्थमात्मानं तोषयामास केशवम्॥ १८॥

भगवान् विष्णु को आया हुआ देखकर भक्ति से युक्त होकर अदिति ने अपने को कृतार्थ माना और केशव की स्तुति करने लगी।

अदितिरुवाच—

जयाशेषदुःखौघनाशैकहेतो
जयानन्तमाहात्म्ययोगाभियुक्त।
जयानादिमध्यान्तविज्ञानमूर्ते
जयाकाशकल्पामलानन्दरूप॥ १९॥

अदिति बोलीं— हे अशेष दुःखसमुदाय के नाश के एकमात्र कारणरूप! आपकी जय हो। हे अनन्त माहात्म्य! हे योगाभियुक्त! आपकी जय हो। हे आदि, मध्य और अन्त से रहित! हे विज्ञानमूर्ते! आपकी जय हो। हे आकाशतुल्य! हे आनन्दस्वरूप! आपकी जय हो।

नमो विष्णवे कालरूपाय तुभ्यं
नमो नारसिंहाय शेषाय तुभ्यम्।
नमः कालरुद्राय संहारकर्त्रे
नमो वासुदेवाय तुभ्यं नमस्ते॥ २०॥

विष्णु और कालरूप आपको नमस्कार है। नरसिंहरूपधारी और शेषरूपधारी आपको नमस्कार है। कालरुद्र और संहारकर्ता को नमस्कार है। हे वासुदेव! आपको नमस्कार है।

नमो विश्वमायाविधानाय तुभ्यं
नमो योगगम्याय सत्याय तुभ्यम्।
नमो धर्मविज्ञाननिष्ठाय तुभ्यं
नमस्ते वराहाय भूयो नमस्ते॥ २१॥

हे विश्वमाया को उत्पन्न करने वाले! आपको नमस्कार है। योग के द्वारा अधिगम्य तथा सत्यस्वरूप को नमस्कार है। धर्मज्ञान की निष्ठा वाले आपके लिए नमस्कार है। हे वराहरूप! आपको बार-बार नमस्कार है।

नमस्ते सहस्रार्कचन्द्राभमूर्ते
नमो वेदविज्ञानधर्माभिगम्य।
नमो भूधरायाप्रमेयाय तुभ्यं
प्रभो विश्वयोनेऽथ भूयो नमस्ते॥ २२॥

हे सहस्र सूर्य और सहस्र चन्द्रमा के समान दीप्त मूर्ति वाले! आपको नमस्कार है। हे वेद, विज्ञान और धर्म द्वारा जानने योग्य! आपको नमस्कार है। भूधर और अप्रमेय! आपको नमस्कार है। हे प्रभो! हे विश्वयोने! आपको बार-बार नमस्कार है।

नमः शम्भवे सत्यनिष्ठाय तुभ्यं
नमो हेतवे विश्वरूपाय तुभ्यम्।
नमो योगपीठान्तरस्थाय तुभ्यं
शिवायैकरूपाय भूयो नमस्ते॥ २३॥

शंभु तथा सत्यनिष्ठ को नमस्कार है। विश्व के कारण और विश्वरूप आपको नमस्कार है। योगपीठान्तस्थ आपको नमस्कार है। अद्वितीयरूप वाले शिवस्वरूप को बार-बार नमस्कार है।

एवं स भगवान् विष्णुर्देवमात्रा जगन्मयः।
तोषितश्छन्दयामास वरेण प्रहसन्निव॥ २४॥

देवमाता द्वारा इस प्रकार स्तुति करने पर विश्वरूप भगवान् विष्णु ने हँसते हुए, उनसे वर माँगने के लिए अनुरोध किया।

प्रणम्य शिरसा भूमौ सा वव्रे वरमुत्तमम्।
त्वामेव पुत्रं देवानां हिताय वरये वरम्॥ २५॥

उन्होंने भूमि पर माथा टेककर प्रणाम किया ओर उत्तम वर माँगा— मैं देवताओं के कल्याण के लिए आप ही को पुत्ररूप में वर माँगती हूँ।

तथास्त्वित्याह भगवान् प्रपन्नजनवत्सलः।
दत्त्वा वरानप्रमेयस्तत्रैवान्तरधीयत॥ २६॥

शरणागतवत्सल भगवान् ने कहा— तथास्तु। इस प्रकार वर देकर अप्रमेय विष्णु वहीं अन्तर्हित हो गये।

ततो बहुतिथे काले भगवन्तं जनार्दनम्।
दधार गर्भं देवानां माता नारायणं स्वयम्॥ २७॥

अनन्तर बहुत दिन बीत जाने पर देवमाता ने स्वयं नारायण भगवान् जनार्दन को गर्भ में धारण कर लिया।

समाविष्टे हृषीकेशे देवमातुरथोदरम्।
उत्पाता जज्ञिरे घोरा बलेर्वैरोचनेः पुरे॥ २८॥

तब देवमाता के उदर में हृषीकेश के प्रविष्ट हो जाने पर विरोचन पुत्र बलि के नगर में घोर उत्पात होने लगे।

निरीक्ष्य सर्वानुत्पातान्दैत्येन्द्रो भयविह्वलः।
प्रह्लादमसुरं वृद्धं प्रणम्याह पितामहम्॥ २९॥

सभी उत्पातों को देखकर भयविह्वल दैत्यराज ने अपने वृद्ध पितामह असुर प्रह्लाद से कहा।

बलिरुवाच—

पितामह महाप्राज्ञ जायतेऽस्मिन्पुरान्तरे।
किमुत्पातो भवेत्कार्यमस्माकं किंनिमित्तकः॥ ३०॥

बलि बोले— पितामह! महाप्राज्ञ! हमारे इस नगर के भीतर किस कारण उत्पात हो रहा है? हमें क्या करना चाहिए?

निशम्य तस्य वचनश्चिरं ध्यात्वा महासुरः।

नमस्कृत्य हृषीकेशमिदं वचनमब्रवीत्॥ ३१॥

बलि का वचन सुनकर महासुर (प्रह्लाद) ने बहुत देर तक सोच-विचार करके भगवान् हृषीकेश को प्रणाम करके यह वचन कहा।

प्रह्लाद उवाच

यो यज्ञैरिज्यते विष्णुर्यस्य सर्वमिदं जगत्।

दधारासुरनाशार्थं माता तं त्रिदिवौकसाम्॥ ३२॥

प्रह्लाद बोले— जिन विष्णु की यज्ञों द्वारा आराधना की जाती है, जिनके वश में यह सम्पूर्ण जगत् है; उनको देवमाता ने असुरों के विनाश के लिए धारण कर लिया है।

यस्मादभिन्नं सकलं भिद्यते योऽखिलादपि।

स वासुदेवो देवानां मातुर्देहं समाविशत्॥ ३३॥

जिनसे सब अभिन्न है फिर भी जो सबसे भिन्न है, वे वासुदेव देवमाता के शरीर में प्रविष्ट हुए हैं।

न यस्य देवा जानन्ति स्वरूपं परमार्थतः।

स विष्णुरदितेर्देहं स्वेच्छयाद्य समाविशत्॥ ३४॥

जिनके स्वरूप को देवगण भी परमार्थतः नहीं जानते हैं, वे विष्णु आज स्वेच्छा से देवमाता के शरीर में प्रविष्ट हैं।

यस्माद्भवन्ति भूतानि यत्र संयान्ति संक्षयम्।

सोऽवतीर्णो महायोगी पुराणपुरुषो हरिः॥ ३५॥

जिनसे प्राणी उत्पन्न होते हैं और जिनमें विलीन होते हैं, वे महायोगी, पुराणपुरुष हरि अवतीर्ण हुए हैं।

न यत्र विद्यते नामजात्यादिपरिकल्पना।

सत्तामात्रात्मरूपोऽसौ विष्णुरंशेन जायते॥ ३६॥

जिनमें नाम, जाति आदि की परिकल्पना नहीं होती है, वे सत्तामात्र आत्मरूपी विष्णु अंश से उत्पन्न होते हैं।

यस्य सा जगतां माता शक्तिस्तद्धर्मधारिणी।

माया भगवती लक्ष्मीः सोऽवतीर्णो जनार्दनः॥ ३७॥

संसार की माता भगवती लक्ष्मी जिनकी माया या उनके धर्म को धारण करने वाली शक्ति है, वे जनार्दन विष्णु अभी (देवमाता में) अवतीर्ण हुए हैं।

यस्य सा तामसी मूर्तिः शंकरो राजसी तनुः।

ब्रह्मा सञ्जायते विष्णुरंशेनैकेन सत्त्वधृक्॥ ३८॥

जिनकी वह तामसी मूर्ति शंकर है और राजसी मूर्ति ब्रह्मा हैं, वे सत्त्वगुणधारी विष्णु एक अंश से जन्म ग्रहण करते हैं।

इति सञ्चिन्त्य गोविन्दं भक्तिनम्रेण चेतसा।

तमेव गच्छ शरणं ततो यास्यसि निर्वृतिम्॥ ३९॥

इस प्रकार विचार करके भक्ति से विनम्र चित्त होकर उसी गोविन्द की शरण में जाओ। इससे परम सुख प्राप्त करोगे।

ततः प्रह्लादवचनाद्बलिर्वैरोचनिर्हरिम्।

जगाम शरणं विश्वं पालयामास धर्मवित्॥ ४०॥

तदनन्तर प्रह्लाद के वचन से विरोचन पुत्र बलि हरि की शरण में गया और वह धर्मवेत्ता (धर्मदृष्टि से) विश्व का पालन करने लगा।

काले प्राप्ते महाविष्णुं देवानां हर्षवर्द्धनम्।

असूत कश्यपाद्वैनं देवमातादितिः स्वयम्॥ ४१॥

समय आने पर देवों का हर्ष बढ़ाने वाले महाविष्णु को स्वयं देवमाता अदिति ने कश्यप से उत्पन्न किया।

चतुर्भुजं विशालाक्षं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम्।

नीलमेघप्रतीकाशं भ्राजमानं श्रिया वृतम्॥ ४२॥

वे भगवान् चार भुजाओं से युक्त और विशाल नेत्रों वाले थे। उनका वक्षःस्थल श्रीवत्सके चिह्न से अंकित था। वे नीले मेघ के समान प्रकाशित हो रहे थे। अपनी कान्ति से देदीप्यमान होकर शोभा से आवृत थे।

उपतस्थुः सुराः सर्वे सिद्धाः साध्याश्च चारणाः।

उपेन्द्रं इन्द्रप्रमुखा ब्रह्मा चर्षिगणैर्वृतः॥ ४३॥

इस प्रकार ये उपेन्द्र (इन्द्र के छोटे भाई विष्णु) हैं, ऐसा जानकर इन्द्र आदि सभी देवगण, सिद्ध, साध्य और चारणगण तथा ऋषिगणों से आवृत ब्रह्मा भी उनकी उपासना करने लगे।

कृतोपनयनो वेदानध्यैष्ट भगवान् हरिः।

सदाचारं भरद्वाजात्त्रिलोकाय प्रदर्शयन्॥ ४४॥

भगवान् हरि विष्णु ने तीनों लोकों के लिए सदाचार का प्रदर्शन करते हुए भरद्वाज मुनि से उपनयन संस्कार ग्रहण करके वेदों का अध्ययन किया।

एवञ्च लौकिकं मार्गं प्रदर्शयति स प्रभुः।

स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते॥ ४५॥

इस प्रकार प्रभु ने लौकिक मार्ग का प्रदर्शन किया। क्योंकि जो कोई (प्रसिद्ध महान् पुरुष) करता है, लोग उसे प्रमाण मानकर अनुसरण करते हैं।

ततः कालेन मतिमान् बलिर्वैरोचनिः स्वयम्।
यज्ञैर्यज्ञेश्वरं विष्णुमर्चयामास सर्वगम्॥४६॥

तदनन्तर कुछ समय बाद बुद्धिमान् विरोचन-पुत्र बलि ने स्वयं यज्ञों द्वारा सर्वव्यापी विष्णु की अर्चना की।

ब्राह्मणान्पूजयामास दत्त्वा बहुतरं धनम्।
ब्रह्मर्षयः समाजग्मुर्यज्ञवाटं महात्मनः॥४७॥

उन यज्ञों में बहुत धन देकर उसने ब्राह्मणों का सत्कार किया। उस महात्मा बलि के यज्ञमंडप में अनेक ब्रह्मर्षिगण आ रहे थे।

विज्ञाय विष्णुर्भगवान् भरद्वाजप्रचोदितः।
आस्थाय वामनं रूपं यज्ञदेशमथागमत्॥४८॥

यह जानकर भरद्वाज ऋषि से प्रेरित होकर विष्णु भगवान् वामन (बौना) रूप धारण करके यज्ञस्थल पर आये।

कृष्णाजिनोपवीताङ्ग आषाढेन विराजितः।
ब्राह्मणो जटिलो वेदानुद्गिरन् सुमहाद्युतिः॥४९॥

उनके अंग कृष्णमृगचर्म से (यज्ञोपवीत की तरह) लपेटा हुआ था तथा वे (हाथ में) पलाशदण्ड से सुशोभित थे। वे ब्राह्मण वेष में जटाधारी होने से अतिशय कान्तिमान् होते हुए वेदोच्चारण कर रहे थे।

सम्प्राप्यासुरराजस्य समीपं भिक्षुको हरिः।
स्वपद्भ्यां क्रमितं देशमयाचत बलिं त्रिभिः॥५०॥

ऐसे भिक्षुक के रूप में श्रीहरि असुरराज बलि के समीप आये और उन्होंने अपने पैरों से तीन पग परिमित भूमि की याचना की।

प्रक्षाल्य चरणौ विष्णोर्बलिर्भावसमन्वितः।
आचामयित्वा भृङ्गारमादाय स्वर्णनिर्मितम्॥५१॥

राजा बलि ने भावयुक्त होकर स्वर्णनिर्मित (जलपूरित) भृङ्गार पात्र को लेकर विष्णु के चरणों को धोया और (चरणोदक का) आचमन किया।

दास्ये तवेदं भवते पदत्रयं
प्रीणातु देवो हरिरव्ययाकृतिः।
विचिन्त्य देवस्य कराग्रपल्लवे
निपातयामास सुशीलतज्जलम्॥५२॥

(फिर कहा-) मैं आपको तीन-पाद भूमि दूँगा। वे अविनाशी आकृति वाले भगवान् हरि प्रसन्न हों। इस प्रकार संकल्प लेकर बलि ने वामन भगवान् के हाथ के अग्रभाग पर अत्यन्त शीतल (संकल्परूप) जल गिराया।

विचक्रमे पृथिवीमेष चैतामथान्तरिक्षं दिवमादिदेवः।
व्यपेतरागन्दितिजेश्वरन्तं प्रकर्तुकामः शरणं प्रपन्नम्॥५३॥

अनन्तर दैत्यराज को क्षीणानुराग तथा अपने प्रति शरणागत करने के लिए आदि देव वामन भगवान् ने पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक तक अतिक्रमित किया।

आक्रम्य लोकत्रयमीशपादः
प्राजापत्याद्ब्रह्मलोकं जगाम।
प्रणेमुरादित्यमुखाः सुरेन्द्रा
ये तत्र लोके निवसन्ति सिद्धाः॥५४॥

प्रभु का चरण तीनों लोक को आक्रान्त करके प्रजापतिलोक होते हुए ब्रह्मलोक तक पहुँच गया। उस लोक में जो सिद्धगण निवास करते हैं वे तथा सूर्य आदि देवेन्द्रों ने उनको प्रणाम किया।

अथोपतस्थे भगवाननादिः
पितामहस्तोषयामास विष्णुम्।
भित्त्वा तदण्डस्य कपालमूर्ध्वं
जगाम दिव्याभरणोऽथ भूयः॥५५॥

अनन्तर अनादि भगवान् पितामह ब्रह्मा विष्णु के समीप आ पहुँचे और उनको संतुष्ट किया। तो भी दिव्य वस्त्रों से युक्त विष्णु ब्रह्माण्ड के कपाल को भेद करके ऊपर की ओर चले गये।

अथाण्डभेदान्निपपात शीतलं
महाजलं पुण्यकृद्भिश्च जुष्टम्।
प्रवर्त्तिता चापि सरिद्वरा सा
गंगेत्युक्ता ब्रह्मणा व्योमसंस्था॥५६॥

अनन्तर उस ब्रह्माण्ड के भेदन से शीतल बहुत-सा जल गिरने लगा, जिसे पुण्यात्माओं ने सेवन किया। वह जल श्रेष्ठ नदी के रूप में प्रवर्तित हुआ जिसे ब्रह्मा ने आकाशमार्ग में स्थित गंगा कहा।

गत्वा महान्तं प्रकृतिं ब्रह्मयोनिं
ब्रह्माणमेकं पुरुषं विश्वयोनिम्।
अतिष्ठदीशस्य पदं तदव्ययं
दृष्ट्वा देवास्तत्र तत्र स्तुवन्ति॥५७॥

भगवान् का वह अव्यय चरण महत्तत्त्व, प्रकृति, ब्रह्मयोनि, विश्वयोनि ऐसे एक पुरुष तक पहुँचकर अवस्थित हो गया। उन-उन स्थानों में स्थित देवगण प्रभु के उस अविनाशी पद का दर्शन करके स्तुति करने लगे।

आलोक्य तं पुरुषं विश्वकायं
महान् बलिर्भक्तियोगेन विष्णुम्।
ननाम नारायणमेकमव्ययं
स्वचेतसा यं प्रणमन्ति वेदाः॥ ५८॥

संपूर्ण विश्वरूप शरीर वाले उस पुरुष को देखकर महान् बलिराजा ने भक्तियुक्त होकर अद्वितीय एवं अविनाशी नारायण विष्णु को नमन किया। वेद भी जिसे अपने चित्त से प्रणाम करते हैं।

तमब्रवीद्भगवानादिकर्ता
भूत्वा पुनर्वामनो वासुदेवः।
ममैव दैत्याधिपतेऽधुनेदं
लोकत्रयं भवता भावदत्तम्॥ ५९॥

भगवान् आदिकर्ता वासुदेव ने पुनः वामनरूप धारण करके उस (बलि) से कहा— दैत्यराज! अभी आपने ही मुझे तीनों लोक भावपूर्वक समर्पित किये हैं।

प्रणम्य मूर्ध्ना पुनरेव दैत्यो
निपातयामास जलं कराग्रे।
दास्ये तवात्मानमनन्तधाम्ने
त्रिविक्रमायामितविक्रमाय॥ ६०॥

तब पुनः दैत्य ने सिर से उन्हें प्रणाम करके हाथ के अग्रभाग पर (संकल्प) जल गिराया और कहा— हे त्रिविक्रम! हे पराक्रमी! हे अनन्त तेजस्वी! मैं आपको अपना आत्मा भी अर्पित करता हूँ।

प्रगृह्य सूनोरपि सम्प्रदत्तं
प्रह्लादसूनोरथ शङ्खपाणिः।
जगाद दैत्यं जगदन्तरात्मा
पातालमूलं प्रविशेति भूयः॥ ६१॥

जगत् के अन्तरात्मा शंखपाणि भगवान् ने प्रह्लाद के पुत्र के पुत्र (बलि) द्वारा प्रदत्त दान ग्रहण करके फिर से दैत्य बलि से कहा— अब तुम पाताल के मूल में प्रवेश करो।

समास्यतां भवता तत्र नित्यं
भुक्त्वा भोगान्देवतानामलभ्यान्।
ध्यायस्व मां सततं भक्तियोगात्
प्रवेक्ष्यसे कल्पदाहे पुनर्माम्॥ ६२॥

आप वहाँ नित्य देवदुर्लभ भोगों को अच्छी प्रकार भोगते हुए निवास करो और भक्तियोग से मेरा निरन्तर ध्यान करते रहो। ऐसा करने से कल्प के अन्त में तुम मुझमें प्रवेश कर जाओगे।

उक्त्वैवं दैत्यसिंहं तं विष्णुः सत्यपराक्रमः।
पुरन्दराय त्रैलोक्यं ददौ जिष्णुरुरुक्रमः॥ ६३॥

सत्यपराक्रमी विजयशील तथा महान् पराक्रमी विष्णु ने उस दैत्यराज से ऐसा कहकर इन्द्र को तीनों लोक दे दिये (वापस कर दिये)।

संस्तुवन्ति महायोगं सिद्धा देवर्षिकिन्नराः।
ब्रह्मा शक्रोऽथ भगवान्रुद्रादित्यमरुद्गणाः॥ ६४॥

(उस समय) सिद्ध, देवर्षि, किन्नर, ब्रह्मा, भगवान् इन्द्र, रुद्र, आदित्य और मरुद्गण महायोग की स्तुति करते हैं।

कृत्वैतदद्भुतं कर्म विष्णुर्वामनरूपधृक्।
पश्यतामेव सर्वेषां तत्रैवान्तरधीयत॥ ६५॥

यह अद्भुत कर्म करके वामरूपधारी विष्णु सबके देखते ही देखते वहीं अन्तर्हित हो गये।

सोऽपि दैत्यवरः श्रीमान्पातालं प्राप नोदितः।
प्रह्लादेनासुरवरैर्विष्णुभक्तस्तु तत्परः॥ ६६॥

ऐश्वर्यवान् वह श्रेष्ठ दैत्य भी भगवान् की प्रेरणा से प्रह्लाद तथा दूसरे श्रेष्ठ असुरों के साथ पाताल पहुँच गया। वह विष्णुभक्त होने से उनके परायण ही था (उनकी आज्ञा में तत्पर था)।

अपृच्छद्विष्णुमाहात्म्यं भक्तियोगमनुत्तमम्।
पूजाविधानं प्रह्लादं तदाहासौ चकार सः॥ ६७॥

इसके बाद बलि ने प्रह्लाद से विष्णु का माहात्म्य, सर्वोत्तम भक्तियोग और पूजा का विधान पूछा। तब प्रह्लाद ने जो बताया, वह सब बलि ने किया।

अथ रथचरणं सशङ्खपाणिं
सरसिजलोचनमीशमप्रमेयम्।
शरणमुपययौ स भावयोगात्
प्रणयगतिं प्रणिधाय कर्मयोगम्॥ ६८॥

अनन्तर राजा बलि ने भावयोग से कर्मयोग का आचरण करते हुए रथचरण (चक्र) और शंखधारी हाथ वाले, कमललोचन, अप्रमेय, ईश्वर विष्णु की शरण में गये।

एष वः कथितो विप्रा वामनस्य पराक्रमः।
स देवकार्याणि सदा करोति पुरुषोत्तमः॥ ६९॥

हे विप्रगण! यह मैंने वामन भगवान् का पराक्रम आप लोगों को कहा है। वे पुरुषोत्तम ऐसे ही सदा देवों का कार्य करते हैं।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे त्रिविक्रमचरितवर्णनं नाम
सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

अष्टादशोऽध्याय:

(दक्षकन्याओं का वंशकथन)

सूत उवाच

बले: पुत्रशतं त्वासीन्महाबलपराक्रमम्।
तेषां प्रधानो द्युतिमान्बाणो नाम महाबल:॥ १॥

सूत बोले— राजा बलि के सौ पुत्र थे, जो महान् बल और पराक्रम से युक्त थे। उनमें मुख्य अर्थात् सबसे बड़ा महाबली तेजस्वी बाण था।

सोऽतीव शङ्करे भक्तो राजा राज्यमपालयत्।
त्रैलोक्यं वशमानीय बाधयामास वासवम्॥ २॥

वह राजा शंकर का अत्यन्त भक्त था, उसीसे उसने तीनों लोकों को वश में करके राज्य का पालन किया। उसने इन्द्र को भी पीडित किया।

तत: शक्रादयो देवा गत्वोचु: कृत्तिवाससम्।
त्वदीयो बाधते ह्यस्मान्बाणो नाम महासुर:॥ ३॥

तब इन्द्र आदि देवों ने शंकर के पास जाकर कहा— आपका यह भक्त बाण नामक महासुर हमें पीडा दे रहा है।

व्याहृतो दैवतै: सर्वैर्देवदेवो महेश्वर:।
ददाह बाणस्य पुरं शरेणैकेन लीलया॥ ४॥

सभी देवताओं के निवेदन करने पर देवों के देव महेश्वर ने एक ही तीर से लीलामात्र में बाण के नगर को जला डाला।

दह्यमाने पुरे तस्मिन्बाणो रुद्रं त्रिशूलिनम्।
ययौ शरणमीशानङ्गोपतिं नीललोहितम्॥ ५॥
मूर्द्धन्याधाय तल्लिङ्गं शाम्भवं रागवर्जित:।
निर्गत्य तु पुरात्तस्मात्तुष्टाव परमेश्वरम्॥ ६॥

जब नगर जलने लगा, तो बाणासुर त्रिशूलधारी, वृषभपति अथवा वाणी के अधिपति, नीललोहित, ईशान रुद्र की शरण में गया और उनके लिङ्ग को मस्तक पर रखकर रागरहित होकर उस नगर से बाहर निकलकर परमेश्वर की स्तुति करने लगा।

संस्तुतो भगवानीश: शङ्करो नीललोहित:।
गाणपत्येन बाणं तं योजयामास भावत:॥ ७॥

स्तुति किये जाने पर भगवान् प्रभु, शंकर, नीललोहित ने बाण को स्नेह से अपने गाणपत्य पद पर नियुक्त कर दिया।

अथैवञ्च दनो: पुत्रास्ताराद्याह्यतिभीषणा:।
तारस्तथा शम्बरश्च कपिल: शंकरस्तथा।
स्वर्भानुर्वृषपर्वा च प्राधान्येन प्रकीर्तिता:॥ ८॥

इस प्रकार दनु के तार आदि पुत्र हुए। वे अति भयानक थे। इनमें तार, शम्बर, कपिल, शंकर, स्वर्भानु और वृषपर्वा प्रमुख कहे गये हैं।

सुरसाया: सहस्रन्तु सर्पाणाममवद्द्विजा:।
अनेकशिरसां तद्वत्खेचराणां महात्मनाम्॥ ९॥

हे द्विजगण! सुरसा के गर्भ से हजार सर्परूप पुत्र हुए तथा अनेक सिर वाले महात्मा खेचर भी उत्पन्न हुए।

अरिष्टा जनयामास गन्धर्वाणां सहस्रकम्।
अनन्ताद्या महानागा: काद्रवेया: प्रकीर्तिता:॥ १०॥

अरिष्टा ने सहस्र गन्धर्वों को जन्म दिया। अनन्त आदि महानाग कद्रू के पुत्र होने से 'काद्रवेय' कहे गये हैं।

ताम्रा च जनयामास षट् कन्या द्विजपुंगवा:।
शुकीं श्येनीञ्च भासीञ्च सुग्रीवां ग्रन्थिकां शुचिम्॥ ११॥

द्विजश्रेष्ठो! ताम्रा ने शुकी, श्येनी, भासी, सुग्रीवा, ग्रन्थिका और शुचि नामक छह कन्याओं को उत्पन्न किया।

गास्तथा जनयामास सुरभिर्महिषीस्तथा।
इरा वृक्षलतावल्लीतृणजातीश्च सर्वश:॥ १२॥

सुरभि ने गौओं तथा भैंसों को जन्म दिया और इरा से वृक्ष, लता, वल्ली तथा सब प्रकार की तृणजातियों की उत्पत्ति हुई।

खसा वै यक्षरक्षांसि मुनिरप्सरसस्तथा।
रक्षोगणं क्रोधवशाज्जनयामास सत्तमा:॥ १३॥

हे श्रेष्ठ मुनिगण! खसा ने यक्षों तथा राक्षसों को, मुनि नामक दक्षपुत्री ने अप्सराओं को तथा क्रोधवशा ने राक्षसों को उत्पन्न किया।

विनतायाश्च पुत्रौ द्वौ प्रख्यातौ गरुडारुणौ।
तयोश्च गरुडो धीमान्तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम्।
प्रसादाच्छूलिन: प्राप्तो वाहनत्वं हरे: स्वयम्॥ १४॥

दक्षकन्या विनता के दो पुत्र प्रख्यात हुए- गरुड और अरुण। उनमें बुद्धिमान् गरुड ने कठिन तप करके शंकर की कृपा से स्वयं विष्णु का वाहनत्व प्राप्त किया।

आराध्य तपसा देवं महादेवं तथारुण:।
सारथ्ये कल्पित: पूर्वं प्रीतेनार्कस्य शम्भुना॥ १५॥

तथा अरुण भी तपस्या द्वारा महादेव की आराधना करके प्रसन्न हुए शंकर के द्वारा सूर्य के सारथि बनाये गये।

एते कश्यपदायादाः कीर्तिताः स्थाणुजङ्गमाः।
वैवस्वतेऽन्तरे ह्यस्मिञ्छृण्वतां पापनाशनम्॥ १६॥

इस वैवस्वत मन्वन्तार में ये सभी स्थावर और जंगमरूप कश्यप के पुत्र कहे गये हैं। यह सुनने वालों के पाप का नाशक है।

सप्तविंशसुताः प्रोक्ताः सोमपत्न्यश्च सुव्रताः।
अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानां ह्यनेकशः॥ १७॥

हे सुव्रतो! दक्ष की सत्ताईस पुत्रियां सोम-चन्द्र की पत्नियाँ कही गई हैं और अरिष्टनेमि की पत्नियाँ की भी अनेक सन्तानें हुई थीं।

बहुपुत्रस्य विदुषश्चतस्रो विद्युतः स्मृताः।
तद्वदंगिरसः श्रेष्ठा ऋषयो वृषसत्कृताः॥ १८॥

विद्वान् बहुपुत्र के चार विद्युत नाम के देवगण कहे गये हैं। उसी तरह अंगिरस् के श्रेष्ठ ऋषि पुत्र (ऋषि-कुल में) आदर-सत्कार के योग्य हुए।

कृशाश्वस्य तु देवर्षेर्देवप्रहरणाः सुताः।
एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि।
मन्वन्तरेषु नियतं तुल्यकार्यैः स्वनामभिः॥ १९॥

देवर्षि कृशाश्व के भी पुत्र देवों के हथियाररूप हुए। वे सभी हजारों युग के अन्त में भिन्न भिन्न मन्वन्तरों में एक समान कार्य करने वाले होने से अपने अपने नामों से युक्त होकर नियमित जन्म ग्रहण करते हैं।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे वंशानुकीर्तनं नामाऽष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

एकोनविंशोऽध्यायः

(ऋषियों के वंश का कथन)

सूत उवाच

एतानुत्पाद्य पुत्रांस्तु प्रजासन्तानकारणात्।
कश्यपः पुत्रकामस्तु चचार सुमहत्तपः॥ १॥

सूतजी ने कहा— कश्यप ऋषि ने पुत्रों की कामना करते हुए इस प्रकार से प्रजा की सन्तान के कारण से पुत्रों को समुत्पन्न करके फिर समुहान् तप किया था।

तस्यैवन्तपतोऽत्यर्थं प्रादुर्भूतौ सुताविमौ।
वत्सरश्चासितश्चैव तावुभौ ब्रह्मवादिनौ॥ २॥

उनके इस भाँति तप करने पर ये दो पुत्र उत्पन्न हुए थे जिनमें एक वत्सर और दूसरा असित था। वे दोनों ही ब्रह्मवादी (ब्रह्म का उपदेश करने वाले) थे।

वत्सरान्नैध्रुवो जज्ञे रैभ्यश्च सुमहायशाः।
रैभ्यस्य जज्ञिरे शुद्राः पुत्राः श्रुतिमतां वराः॥ ३॥

वत्सर से नैध्रुव और रैभ्य नामक महायशस्वी पुत्र हुए थे। रैभ्य के तेजस्वियों में श्रेष्ठ शूद्र जाति के पुत्र उत्पन्न हुए।

च्यवनस्य सुता भार्या नैध्रुवस्य महात्मनः।
सुमेधा जनयामास पुत्रान्वै कुण्डपायिनः॥ ४॥

महात्मा नैध्रुव की भार्या च्यवन ऋषि की पुत्री थी। उस सुमेधाने कुण्डपायी पुत्रों को जन्म दिया था।

असितस्यैकपर्णायां ब्रह्मिष्ठः समपद्यत।
नाम्ना वै देवलः पुत्रो योगाचार्यो महातपाः॥ ५॥

असित को एकपर्णा नामक पत्नी में एक ब्रह्मिष्ठ (वेदाध्ययनरत) पुत्र को प्राप्त किया। वह देवल नाम वाला पुत्र योगाचार्य और महातपस्वी हुआ था।

शाण्डिल्यः परमः श्रीमान् सर्वतत्त्वार्थविच्छुचिः।
प्रसादात्पार्वतीशस्य योगमुत्तममवाप्तवान्॥ ६॥

(दूसरा पुत्र) शाण्डिल्य परम ऐश्वर्यवान् और सब तत्त्वों के अर्थों का ज्ञाता तथा अत्यन्त पवित्र था। उसने पार्वतीश प्रभु के अनुग्रह से उत्तम योग को प्राप्त किया था।

शाण्डिल्यो नैध्रुवो रैभ्यः त्रयः पुत्रास्तु काश्यपाः।
नवप्रकृतयो विप्राः पुलस्त्यस्य वदामि वः॥ ७॥

शांडिल्य, नैध्रुव और रैभ्य ये तीनों ही काश्यप अर्थात् कश्यपवंश के पुत्र हुए। ये विप्रवृन्द! अब नवीन प्रकृति वाले पुलस्त्य ऋषि के पुत्रों के विषय में कहता हूँ।

तृणबिन्दोः सुता विप्रा नाम्ना ऐलविला: स्मृताः।
पुलस्त्याय तु राजर्षिस्तां कन्यां प्रत्यपादयत्॥ ८॥

हे विप्रो! तृणबिन्दु की पुत्री नाम से 'ऐलविला' कही गयी थी। राजर्षि ने उस कन्या को पुलस्त्य महर्षि को प्रदान कर दिया था।

ऋषिस्त्वैलविलस्तस्यां विश्रवाः समपद्यत।
तस्य पत्न्यश्चतस्रस्तु पौलस्त्यकुलवर्द्धिकाः॥ ९॥

उसमें विश्रवस् नाम से प्रसिद्ध ऐलविल ऋषि उत्पन्न हुआ था। उस पौलस्त्य कुल की वृद्धि करने वाली उनकी चार पत्नियाँ थीं।

पुष्पोत्कटा च वाका च कैकसी देववर्णिनी।
रूपलावण्यसम्पन्नास्तासांश्च शृणुत प्रजा:॥ १०॥

उन चारों के नाम— पुष्पोत्कटा, वाका, कैकसी और देववर्णिनी थे। ये सभी रूप-लावण्य से सुसम्पन्न थीं। उनकी जो सन्तानें थीं, उसे सुनो।

ज्येष्ठं वैश्रवणं तस्य सुषुवे देववर्णिनी।
कैकस्यजनयत्पुत्रं रावणं राक्षसाधिपम्॥ ११॥
कुम्भकर्णं शूर्पणखान्तथैव च विभीषणम्।
पुष्पोत्कटाप्यजनयत्पुत्रान्विश्रवस: शुभान्॥ १२॥
महोदरं प्रहस्तञ्च महापार्श्वं खरन्तथा।
कुम्भीनसीन्तथा कन्यां वाकायां शृणुत प्रजा:॥ १३॥

देववर्णिनी ने उनके सबसे बड़े पुत्र वैश्रवण को जन्मा था। कैकसीने राक्षसों के अधिपति रावण को पुत्र रूप में उत्पन्न किया था। इसके बाद कुम्भकर्ण, शूर्पणखा पुत्री और विभीषण को भी जन्म दिया। पुष्पोत्कटा ने भी विश्रवा से महोदर, प्रहस्त, महापार्श्व, खर— इन शुभ पुत्रों को और कुम्भीनसी नामक कन्या को जन्म दिया था। अब वाका की सन्तानों को सुनें।

त्रिशिरा दूषणश्चैव विद्युज्जिह्वो महाबल:।
इत्येते क्रूरकर्माण: पौलस्त्या राक्षसा दश।
सर्वे तपोबलोत्कृष्टा रुद्रभक्ता: सुभीषणा:॥ १४॥

उसके त्रिशिरा, दूषण, और विद्युज्जिह्व नामक महाबली पुत्र हुए। ये सभी क्रूर कर्मों के करने वाले दश पौलस्त्य राक्षस कहलाये। ये सभी उत्कट तपोबल से युक्त, अत्यन्त भीषण और रुद्र के परम भक्त थे।

पुलहस्य मृगा: पुत्रा: सर्वे व्यालाश्च दंष्ट्रिण:।
भूता: पिशाचा ऋक्षाश्च शूकरा हस्तिनस्तथा॥ १५॥

उस प्रकार पुलह ऋषि के पुत्र सभी मृग हुए। यो सब शिकारी पशु बड़े-बड़े दाँतों वाले थे। इसके अतिरिक्त भूत-पिशाच-ऋक्ष-शूकर तथा हाथी भी हुए।

अनपत्य: क्रतुस्तस्मिन् स्मृतो वैवस्वतेऽन्तरे।
मरीचे: कश्यप: पुत्र: स्वयमेव प्रजापति:॥ १६॥

उस वैवस्वत मन्वन्तर में बिना सन्तान वाले केवल एक ही क्रतु ऋषि बताये जाते हैं। मरीचि का पुत्र कश्यप स्वयं प्रजापति ही थे।

भृगोरथाभवच्छुक्रो दैत्याचार्यो महातपा:।
स्वाध्याययोगनिरतो हरभक्तो महाद्युति:॥ १७॥

भृगु से दैत्याचार्य महातपस्वी शुक्र हुए। वे शुक्र स्वाध्याय और योग में सर्वदा निरत रहने वाले, शिव के परम भक्त और अत्यन्त तेजस्वी थे।

अत्रे: पुत्रोऽभवद्वह्नि: सोदर्यस्तस्य नैध्रुव:।
कृशाश्वस्य तु विप्रर्षे: घृताच्यामिति न: श्रुतम्॥ १८॥

वह्नि अत्रि के पुत्र थे तथा नैध्रुव उसका सगा भाई था। विप्रर्षि कृशाश्व (अत्रि) के घृताची में कुछ सन्तानें हुई थीं, ऐसा हमने सुना है।

स तस्याञ्जनयामास स्वस्त्यात्रेयान्महौजस:।
वेदवेदाङ्गनिरतांस्तपसा हतकिल्विषान्॥ १९॥

उसने उसमें महान् ओजस्वी स्वस्त्यत्रेय नामक पुत्रों को जन्मा था। ये सभी वेद और वेदाङ्गों सदा निरत रहने वाले तथा तपश्चर्या के द्वारा अपने पापों नष्ट करने वाले थे।

नारदस्तु वसिष्ठाय ददौ देवीमरुन्धतीम्।
ऊर्ध्वरेतास्तु तत्रैव शापाद्दक्षस्य नारद:॥ २०॥

नारद ने वसिष्ठ के लिए देवी अरुन्धती को प्रदान किया था। परन्तु वहीं पर नारद दक्ष के शाप से ऊर्ध्वरेता (ब्रह्मचारी) हो गये थे।

हर्यश्वेषु तु नष्टेषु मायया नारदस्य तु।
शशाप नारदं दक्ष: क्रोधसंरक्तलोचन:॥ २१॥
यस्मान्मम सुता: सर्वे भवता मायया द्विज।
क्षयन्नीतास्त्वशेषेण निरपत्यो भविष्यसि॥ २२॥

(कारण यह था कि) नारद की माया से हर्यश्वों नामक दक्षपुत्रों के नष्ट हो जाने पर क्रोध से लाल नेत्रों वाले प्रजापति दक्ष ने नारद को शाप दे दिया था। (दक्ष ने शाप दिया कि) हे द्विज! क्योंकि तुमने माया से मेरे सभी पुत्रों को नष्ट कर दिया है तो तुम भी पूर्ण रूप से सन्तानहीन हो जाओगे।

अरुन्धत्यां वसिष्ठस्तु शक्तिमुत्पादयत्सुतम्।
शक्ते: पराशर: श्रीमान् सर्वज्ञस्तपतां वर:॥ २३॥

वसिष्ठ ने अरुन्धती पत्नी में शक्ति नामक पुत्र को उत्पन्न किया था। शक्ति से श्रीमान्, सर्वज्ञ और तपस्वियों में परम श्रेष्ठ पराशर ने जन्म ग्रहण किया था।

आराध्य देवदेवेशमीशानं त्रिपुरान्तकम्।
लेभे त्वप्रतिमं पुत्रं कृष्णद्वैपायनं प्रभुम्॥ २४॥

उस पराशर महामुनि ने देवों के भी देव, ईश्वर, त्रिपुरान्तक ईशान की समाराधना करके एक अति अप्रतिम

प्रभावशाली श्रीकृष्ण द्वैपायन नामक उत्तम पुत्र को प्राप्त किया था।

द्वैपायनाच्छुको जज्ञे भगवानेव शंकरः।
अंशांशेनावतीर्योर्व्यां स्वं प्राप परमं पदम्॥२५॥

द्वैपायन व्यास से शुकदेव की उत्पत्ति हुई थी, जो साक्षात् भगवान् शङ्कर ही थे। वे अपने अंशांश से उस भूमण्डल में अवतरित होकर पुनः अपने परम धाम को प्राप्त हो गये।

शुकस्यास्याभवन् पुत्राः पञ्चात्यन्ततपस्विनः।
भूरिश्रवाः प्रभुः शम्भुः कृष्णो गौरश्च पञ्चमः॥२६॥
कन्या कीर्तिमती चैव योगमाता धृतव्रता।
एतेऽत्रिवंशाः कथिता ब्रह्मणा ब्रह्मवादिनाम्॥२७॥
अत ऊर्ध्वं निबोधध्वं कश्यपाद्राजसन्ततिम्॥२८॥

इन शुकदेव के अत्यन्त तपस्वी पाँच पुत्र हुए थे जिनके नाम भूरिश्रवस्, प्रभु, शम्भु, कृष्ण और गौर थे। कीर्तिमती नामकी एक कन्या थी, जो व्रतपरायण होने से योगमाता (कही जाती) थी। इस प्रकार ब्रह्माजी द्वारा ब्रह्मवादियों का यह अत्रिवंश कहा गया। इसके आगे अब कश्यप से जो क्षत्रिय सन्तानें हुई थीं, उसे भी जानो।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे ऋषिवंशवर्णनं नाम एकोनविंशोऽध्यायः॥१९॥

विंशोऽध्यायः

(राजवंश का कथन)

सूत उवाच

अदितिः सुषुवे पुत्रमादित्यं कश्यपात्प्रभुम्।
तस्यादित्यस्य चैवासीद्भार्याणां तु चतुष्टयम्॥१॥
संज्ञा राज्ञी प्रभा छाया पुत्रांस्तासान्निबोधत।
संज्ञा त्वाष्ट्री तु सुषुवे सूर्यान्मनुमनुत्तमम्॥२॥

सूत बोले— अदिति ने कश्यप से शक्तिसम्पन्न आदित्य नामक पुत्र को जन्म दिया। उस आदित्य की चार पत्नियाँ थीं। उनके नाम हैं— संज्ञा, राज्ञी, प्रभा और छाया। उनके पुत्रों के नाम सुनो। त्वष्टा की पुत्री संज्ञा ने सूर्य से सर्वोत्तम मनु (वैवस्वत) को उत्पन्न किया।

यमञ्च यमुनाञ्चैव राज्ञी रेवन्तमेव च।
प्रभा प्रभातमादित्या छाया सावर्णिमात्मजम्॥३॥
शनिञ्च तपतीञ्चैव विष्टिञ्चैव यथाक्रमम्।
मनोस्तु प्रथमस्यासन्नव पुत्रास्तु तत्समाः॥४॥

राज्ञी नामक पत्नी ने यम, यमुना तथा रेवंत को उत्पन्न किया। प्रभा ने आदित्य से प्रभात को और छाया (नामक चौथी पत्नी) ने सावर्णि नामक पुत्र को तथा शनिदेव, तपती (कन्या) और विष्टि को उत्पन्न किया। प्रथम मनु (वैवस्वत) के उन्हीं के समान नौ पुत्र थे।

इक्ष्वाकुर्नभगश्चैव धृष्टः शर्यातिरेव च।
नरिष्यंतश्च नाभागो ह्यरिष्टः करूषस्तथा॥५॥
पृषध्रश्च महातेजा नवैते शक्रसन्निभाः।
इला ज्येष्ठा वरिष्ठा च सोमवंशं व्यवर्द्धयत्॥६॥

उनके नाम हैं— इक्ष्वाकु, नभग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभाग, अरिष्ट, करुष तथा महातेजस्वी पृषध्र— ये नौ मनुपुत्र इन्द्र के समान थे। मनु की इला, ज्येष्ठा और वरिष्ठा ने सोमवंश को बढ़ाया था।

बुधस्य गत्वा भवनं सोमपुत्रेण सङ्गता।
असूत सोमजाद्देवी पुरूरवसमुत्तमम्॥७॥

बुध के भवन में जाकर चन्द्र-पुत्र से संगम करके देवी इला ने पुरूरवा नामक उत्तम पुत्र को जन्म दिया।

पितॄणां तृप्तिकर्त्तारं बुधादिति हि नः श्रुतम्।
प्राप्य पुत्रं सुविमलं सुद्युम्न इति विश्रुतम्॥८॥
इला पुत्रत्रयं लेभे पुनः स्त्रीत्वमविन्दत।
उत्कलञ्च गयञ्चैव विनतञ्च तथैव च॥९॥
सर्वे तेऽप्रतिमप्रख्याः प्रपन्नाः कमलोद्भवम्।
इक्ष्वाकोश्चाभवद्वीरो विकुक्षिर्नाम पार्थिवः॥१०॥

बुध से उत्पन्न वह पुरूरवा नामक पुत्र पितरों के लिए तृप्तिकारक हुआ, ऐसा हमने सुना है। इला अत्यन्त निर्मल पुत्र (पुरूरवा) को प्राप्त कर बाद में (पुरुष रूप में) 'सुद्युम्न' नाम से प्रसिद्ध हुई। इला ने पुनः स्त्रीत्व प्राप्त किया और उत्कल, गय और विनत नामक तीन पुत्रों को जन्म दिया। वे सभी पुत्र अप्रतिम बुद्धिशाली और ब्रह्मपरायण थे। वीर राजा विकुक्षि (मनु के प्रथम पुत्र) इक्ष्वाकु से उत्पन्न हुआ था।

ज्येष्ठपुत्रः स तस्यासीद्दश पञ्च च तत्सुताः।
तेषां ज्येष्ठः ककुत्स्थोऽभूत्काकुत्स्थस्तु सुयोधनः॥११॥

वह इक्ष्वाकु का ज्येष्ठ पुत्र था। उसके पन्द्रह पुत्र हुए। उनमें ज्येष्ठ ककुत्स्थ था। ककुत्स्थ का पुत्र सुयोधन हुआ।

सुयोधनात्पृथुः श्रीमान्विश्वकश्च पृथोः सुतः।
विश्वकादार्द्रको धीमान्युवनाश्वश्च तत्सुतः॥ १२॥

सुयोधन से श्रीमान् पृथु हुआ और पृथु का पुत्र विश्वक हुआ। विश्वक से आर्द्रक और उसका पुत्र बुद्धिमान् युवनाश्व हुआ।

स गोकर्णमनुप्राप्य युवनाश्वः प्रतापवान्।
दृष्ट्वासौ गौतमं विप्रं तपन्तमनलप्रभम्॥ १३॥

वह प्रतापी युवनाश्व गोकर्णतीर्थ में गया। वहाँ उसने अग्नि के समान तेजस्वी गौतम नाम के विप्र को तप करते हुए देखा।

प्रणम्य दण्डवद्भूमौ पुत्रकामो महीपतिः।
अपृच्छत्कर्मणा केन धार्मिकं प्राप्नुयां सुतम्॥ १४॥

पुत्र का अभिलाषा से राजा ने भूमि पर दण्डवत् लेटकर प्रणाम किया और पूछा— मैं किस कर्म के द्वारा धार्मिक पुत्र को प्राप्त करूं?

गौतम उवाच

आराध्य पुरुषं पूर्वं नारायणमनामयम्।
अनादिनिधनं देवन्धार्मिकं प्राप्नुयात्सुतम्॥ १५॥

गौतम बोले— आदि-अन्त से रहित, अनामय, आदिपुरुष, देव नारायण की आराधना करके धार्मिक पुत्र प्राप्त कर सकते हो।

तस्य पुत्रः स्वयं ब्रह्मा पौत्रः स्यान्नीललोहितः।
तमादिकृष्णमीशानमाराध्याप्नोति सत्सुतम्॥ १६॥

स्वयं ब्रह्मा जिनके पुत्र हैं और नीललोहित पौत्र हैं, उन आदि कृष्ण ईशान की आराधना करके हरकोई सत्पुत्र को प्राप्त कर सकता है।

न यस्य भगवान् ब्रह्मा प्रभावं वेत्ति तत्त्वतः।
तमाराध्य हृषीकेशं प्राप्नुयाद्धार्मिकं सुतम्॥ १७॥

जिनके प्रभाव को भगवान् ब्रह्मा तत्त्वतः नहीं जानते हैं, उन हृषीकेश की आराधना करके मनुष्य धार्मिक पुत्र प्राप्त करे।

स गौतमवचः श्रुत्वा युवनाश्वो महीपतिः।
आराधयन् हृषीकेशं वासुदेवं सनातनम्॥ १८॥

वह राजा युवनाश्व गौतम की बात सुनकर सनातन, वासुदेव, हृषीकेश की आराधना करने लगा।

तस्य पुत्रोऽभवद्वीरः सावस्तिरिति विश्रुतः।
निर्मिता येन सावस्तिः गौडदेशे महापुरी॥ १९॥

उसके सावस्ति नाम से विख्यात वीर पुत्र हुआ। जिसने गौड देश में महापुरी सावस्ति बसाई।

तस्माच्च बृहदश्वोऽभूत्तस्मात्कुवलयाश्वकः।
धुन्धुमारः समभवत् धुन्धुं हत्वा महासुरम्॥ २०॥

उससे बृहदश्व उत्पन्न हुआ और उससे कुवलयाश्वक हुआ। वह धुन्धु नामक महासुर को मारकर 'धुन्धुमार' नाम वाला हुआ।

धुन्धुमारस्य तनयास्त्रयः प्रोक्ता द्विजोत्तमाः।
दृढाश्वश्चैव दण्डाश्वः कपिलाश्वस्तथैव च॥ २१॥
दृढाश्वस्य प्रमोदस्तु हर्यश्वस्तस्य चात्मजः।
हर्यश्वस्य निकुम्भस्तु निकुम्भात्संहताश्वकः॥ २२॥
कृताश्वोऽथ रणाश्वश्च संहिताश्वस्य वै सुतौ।
युवनाश्वो रणाश्वस्य शक्रतुल्यबलो युधि॥ २३॥

धुन्धुमार के तीन पुत्र हुए जो उत्तम ब्राह्मण कहे गये। वे थे— दृढाश्व, दण्डाश्व और कपिलाश्व। दृढाश्व का पुत्र प्रमोद और उसका पुत्र हर्यश्व था। हर्यश्व से निकुम्भ और निकुम्भ से संहताश्वक की उत्पत्ति हुई। संहिताश्व के दो पुत्र हुए— कृताश्व और रणाश्व। रणाश्व का पुत्र युवनाश्व युद्ध में इन्द्रतुल्य बलवान् था।

कृत्वा तु वारुणीमिष्टिमृषीणां वै प्रसादतः।
लेभे त्वप्रतिमं पुत्रं विष्णुभक्तमनुत्तमम्॥ २४॥
मान्धातारं महाप्राज्ञं सर्वशस्त्रभृतां वरम्।

युवनाश्व ने वारुणी याग करके ऋषियों की कृपा से सर्वगुणसंपन्न, महाप्राज्ञ, समस्त शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ मान्धाता नामक अप्रतिम पुत्र को प्राप्त किया।

मान्धातुः पुरुकुत्सोऽभूदम्बरीषश्च वीर्यवान्॥ २५॥
मुचुकुन्दश्च पुण्यात्मा सर्वे शक्रसमा युधि।
अम्बरीषस्य दायादो युवनाश्वोऽपरः स्मृतः॥ २६॥

मान्धाता के तीन पुत्र हुए— पुरुकुत्स, शक्तिशाली अम्बरीष और पुण्यात्मा मुचुकुन्द। ये सब युद्ध में इन्द्र के समान थे। अम्बरीष का दूसरा युवनाश्व (नामधारी) पुत्र भी कहा गया है।

हरितो युवनाश्वस्य हारितस्तत्सुतोऽभवत्।
पुरुकुत्सस्य दायादस्त्रसदस्युर्महायशाः॥ २७॥

युवनाश्व का पुत्र हरित और उसका पुत्र हारित हुआ। पुरुकुत्स का पुत्र महायशस्वी त्रसदस्यु हुआ।

नर्मदायां समुत्पन्नः सम्भूतिस्तत्सुतः स्मृतः।
विष्णुवृद्धः सुतस्तस्य त्वनरण्योऽभवत्ततः।
बृहदश्वोऽनरण्यस्य हर्यश्वस्तत्सुतोऽभवत्॥ २८॥

उसका पुत्र सम्भूति नर्मदा से उत्पन्न हुआ। सम्भूति का पुत्र विष्णुवृद्ध और विष्णुवृद्ध के पुत्र का नाम अनरण्य था। अनरण्य का पुत्र बृहदश्व और उसका पुत्र हर्यश्व हुआ।

सोऽतीव धार्मिको राजा कर्दमस्य प्रजापतेः।
प्रसादाद्धार्मिकं पुत्रं लेभे सूर्यपरायणम्॥ २९॥

वह अत्यन्त धार्मिक राजा था। कर्दम प्रजापति की कृपा से उसे धार्मिक तथा सूर्यपरायण पुत्र प्राप्त हुआ।

स तु सूर्यं समभ्यर्च्य राजा वसुमानाः शुभम्।
लेभे त्वप्रतिमं पुत्रं त्रिधन्वानमरिन्दमम्॥ ३०॥

उसका नाम वसुमना था। उस राजा वसुमना ने कल्याणकारक सूर्य की अर्चना करके शत्रुदमनकारी त्रिधन्वा नामक निरुपम पुत्र प्राप्त किया।

अयजच्चाश्वमेधेन शत्रुञ्जित्वा द्विजोत्तमाः।
स्वाध्यायवान्दानशीलस्तितीर्षुर्धर्मतत्परः॥ ३१॥

हे द्विजश्रेष्ठो! उस वसुमना ने शत्रुओं को जीतकर अश्वमेध यज्ञ किया। वह स्वाध्यायनिरत, दानशील, मोक्ष चाहने वाला और धर्मतत्पर था।

ऋषयस्तु समाजग्मुर्यज्ञवाटं महात्मनः।
वसिष्ठकश्यपमुखा देवाश्चेन्द्रपुरोगमाः॥ ३२॥

उस महात्मा के यज्ञ में वसिष्ठ, कश्यप आदि ऋषिवर एवं इन्द्र आदि देवगण पधारे।

तान् प्रणम्य महाराजः पप्रच्छ विनयान्वितः।
समाप्य विधिवद्यज्ञं वसिष्ठादींन्द्विजोत्तमान्॥ ३३॥

उन्हें प्रणाम कर विधिपूर्वक यज्ञ सम्पन्न करके महाराज ने विनम्र होकर वसिष्ठ आदि द्विजवरों से पूछा।

वसुमना उवाच

किं हि श्रेयस्करतरं लोकेऽस्मिन् ब्राह्मणर्षभाः।
यज्ञस्तपो वा संन्यासो ब्रूत मे सर्ववेदिनः॥ ३४॥

वसुमना बोले— हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! इस लोक में अपेक्षाकृत अधिक कल्याणकारक क्या है? यज्ञ, तप या संन्यास? हे सर्वज्ञ ब्राह्मणो! मुझे बतायें।

वसिष्ठ उवाच

अधीत्य वेदान्विधिवत्सुतांश्चोत्पाद्य यत्नतः।
इष्ट्वा यज्ञेश्वरं यज्ञैर्गच्छेद्वनमथात्मवान्॥ ३५॥

वसिष्ठ बोले— वेदों का विधिवत् अध्ययन करने के बाद (गृहस्थाश्रम में) पुत्रों को यत्नपूर्वक उत्पन्न करके, फिर यज्ञों द्वारा यज्ञेश्वर भगवान् का यजन करके आत्मवान्-जितेन्द्रिय होकर वन में जाना चाहिए।

पुलस्त्य उवाच

आराध्य तपसा देवं योगिनाम्परमेश्वरम्।
प्रव्रजेद्विधिवद्यज्ञैरिष्ट्वा पूर्वं सुरोत्तमान्॥ ३६॥

पुलस्त्य बोले— पहले तप द्वारा देव, योगी परमेश्वर की आराधना करके यज्ञों द्वारा उत्तम देवों का यजन करके विधिपूर्वक संन्यास लेना चाहिए (यह श्रेयस्कर है)।

पुलह उवाच

यमाहुरेकं पुरुषं पुराणम्परमेश्वरम्।
तमाराध्य सहस्रांशुन्तपसो मोक्षमाप्नुयात्॥ ३७॥

पुलह बोले— जिन्हें एकमात्र पुराणपुरुष परमेश्वर कहा जाता है, तपस्या द्वारा उन सहस्रांशु की आराधना करके मोक्ष प्राप्त करे।

जमदग्निरुवाच

अजो विश्वस्य कर्त्ता यो जगद्बीजं सनातनः।
अन्तर्यामी च भूतानां स देवस्तपसेज्यते॥ ३८॥

जमदग्नि बोले— जो जगत् के बीज, सभी प्राणियों के अन्तर्यामी, सनातन, अजन्मा तथा विश्व के कर्ता हैं, वे विष्णुदेव तपस्या द्वारा आराधनीय हैं।

विश्वामित्र उवाच

योऽग्निः सर्वात्मकोऽनन्तः स्वयम्भूर्विश्वतोमुखः।
स रुद्रस्तपसोग्रेण पूज्यते नेतरैर्मखैः॥ ३९॥

विश्वामित्र बोले— जो अग्निस्वरूप, सर्वात्मक, अनन्त, सब ओर मुख वाले और स्वयम्भु हैं, उन रुद्र की उग्र तपस्या द्वारा आराधना की जाती है, अन्य यज्ञों द्वारा नहीं।

भरद्वाज उवाच

यो यज्ञैरिज्यते देवो वासुदेवः सनातनः।
स सर्वदैवततनुः पूज्यते परमेश्वरः॥ ४०॥

भरद्वाज बोले— जो सनातन वासुदेव यज्ञों द्वारा पूजे जाते हैं, वे समस्त देवों के शरीरधारी होने से परमेश्वर ही पूजे जाते हैं।

अत्रिरुवाच

यतः सर्वमिदं जातं यस्यापत्यं प्रजापतिः।
तपः सुमहदास्थाय पूज्यते स महेश्वरः॥४१॥

अत्रि बोले— जिनसे यह सब उत्पन्न हुआ है और प्रजापति (ब्रह्मा) जिनके पुत्र हैं, उन महेश्वर की महान् तप करके पूजा होती है।

गौतम उवाच

यतः प्रधानपुरुषौ यस्य शक्तिरिदं जगत्।
स देवदेवस्तपसा पूजनीयः सनातनः॥४२॥

गौतम बोले— जिनसे प्रकृति और पुरुष दोनों उत्पन्न हुए हैं और यह जगत् जिनका शक्तिरूप है, वे सनातन देवों के देव तप द्वारा पूजनीय हैं।

कश्यप उवाच

सहस्रनयनो देवः साक्षी शम्भुः प्रजापतिः।
प्रसीदति महायोगी पूजितस्तपसा परः॥४३॥

कश्यप बोले— जो देव सहस्रनेत्र होने से सबके साक्षी, श्रेष्ठ महायोगी और प्रजापति हैं, वे शम्भु तपस्या द्वारा पूजित होने पर प्रसन्न होते हैं।

क्रतुरुवाच

प्राप्ताध्ययनयज्ञस्य लब्धपुत्रस्य चैव हि।
नान्तरेण तपः कश्चिद्धर्मशास्त्रेषु दृश्यते॥४४॥

क्रतु बोले— जिसने अध्ययन और यज्ञ प्राप्त कर लिये हों, और पुत्र भी प्राप्त कर लिया हो, उस व्यक्ति के लिए तपस्या को छोड़कर और कुछ भी धर्मशास्त्रों में नहीं दिखाई देता है।

इत्याकर्ण्य स राजर्षिस्तान् प्रणम्यातिहृष्टधीः।
विसर्जयित्वा संपूज्य त्रिधन्वानमथाब्रवीत्॥४५॥

यह सुनकर राजर्षि वसुमना ने अत्यन्त प्रसन्न होकर मुनियों को प्रणाम किया और उनकी अर्चना करने के उपरान्त विदाई दी और पश्चात् त्रिधन्वा से कहा।

आराधयिष्ये तपसा देवमेकाक्षराह्वयम्।
प्राणं बृहन्तं पुरुषमादित्यान्तरसंस्थितम्॥४६॥

अब मैं तपस्या द्वारा सूर्यमण्डल संस्थित, जगत् के प्राणस्वरूप एकाक्षर ॐकाररूप देव तथा बृहत् पुरुष की आराधना करूँगा।

त्वन्तु धर्मरतो नित्यं पालयैतदतन्द्रितः।
चातुर्वर्ण्यसमायुक्तमशेषं क्षितिमण्डलम्॥४७॥

तुम आलस्यरहित और धर्म में निरत होकर चारों वर्णों से युक्त इस सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल का नित्य पालन करो।

एवमुक्त्वा स तद्राज्यं निदायात्मभवे नृपः।
जगामारण्यमनघस्तपस्तप्तुमनुत्तमम्॥४८॥

ऐसा कहकर पुत्र को अपना राज्य सौंपकर वह निष्पाप राजा परमोत्तम तप करने के लिए वन में चला गया।

हिमवच्छिखरे रम्ये देवदारुवनाश्रये।
कन्दमूलफलाहारैरुत्पन्नैरयजत्सुरान्॥४९॥

देवदारुवृक्षों के वन से युक्त हिमालय के रमणीय शिखर पर उत्पन्न कन्द, मूल और फलों को खाकर देवताओं की आराधना करने लगा।

संवत्सरशतं साग्रं तपोनिर्धूतकिल्बिषः।
जजाप मनसा देवीं सावित्रीं वेदमातरम्॥५०॥

एक सौ वर्षों से भी अधिक तपस्या से दग्ध पाप वाला होकर वह राजा वेदमाता देवी सावित्री का मन से जप करने लगा।

तस्यैवन्तपतो देवः स्वयम्भूः परमेश्वरः।
हिरण्यगर्भो विश्वात्मा तं देशमगमत्स्वयम्॥५१॥

उसके इस प्रकार तप करते हिरण्यगर्भ, विश्वात्मा, परमेश्वर, स्वयम्भु देव स्वयं वहाँ आये।

दृष्ट्वा देवं समायान्तं ब्रह्माणं विश्वतोमुखम्।
ननाम शिरसा तस्य पादयोर्नाम कीर्तयन्॥५२॥

सब ओर मुख वाले ब्रह्मदेव को आते हुए देखकर उसने नाम कीर्तन करते हुए उनके चरणों में सिर से प्रणाम किया।

नमो देवाधिदेवाय ब्रह्मणे परमात्मने।
हिरण्यमूर्तये तुभ्यं सहस्राक्षाय वेधसे॥५३॥

(उसने कहा-) आप देवाधिदेव, ब्रह्मा, परमात्मा, हिरण्यमूर्ति, सहस्राक्ष और वेधा हैं, आपको नमस्कार है।

नमो धात्रे विधात्रे च नमो देवात्ममूर्तये।
सांख्ययोगाधिगम्याय नमस्ते ज्ञानमूर्तये॥५४॥

धाता और विधाता को नमस्कार है। देवात्ममूर्ति को नमस्कार है। सांख्य और योग द्वारा प्राप्त को नमस्कार है। ज्ञानमूर्ति को नमस्कार है।

नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं स्रष्ट्रे सर्वार्थवेदिने।
पुरुषाय पुराणाय योगिनां गुरवे नमः॥५५॥

तीन (ब्रह्मा-विष्णु-महेश) मूर्ति वाले आप को नमस्कार है। स्रष्टा, सकल अर्थों के वेत्ता आपको नमस्कार है। पुराण-पुरुष और योगियों के गुरु को नमस्कार है।

ततः प्रसन्नो भगवान्विरिञ्चिर्विश्वभावनः।

वरं वरय भद्रन्ते वरदोऽस्मीत्यभाषत॥५६॥

तदनन्तर भगवान् विश्वभावन ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर कहा— तुम्हारा कल्याण हो। मैं वर देने वाला हूँ, तुम वर माँगो।

राजोवाच

जपेयन्देवदेवेश गायत्रीं वेदमातरम्।

भूयो वर्षशतं साग्रं तावदायुर्भवेन्मम॥५७॥

राजा बोला— हे देवदेवेश! मैं पुनः सौ वर्षों तक वेदमाता गायत्री का जप करता रहूँ, उतनी आयु मेरी हो।

बाढमित्याह विश्वात्मा समालोक्य नराधिपम्।

स्पृष्ट्वा कराभ्यां सुप्रीतस्तत्रैवान्तरधीयत॥५८॥

विश्वात्मा ने राजा को देखकर कहा— बहुत अच्छा। अत्यन्त प्रसन्न भगवान् दोनों हाथों से राजा का स्पर्श किया और वहीं अन्तर्हित हो गये।

सोऽपि लब्धवरः श्रीमाञ्जजापातिप्रसन्नधीः।

शान्तस्त्रिषवणस्नायी कन्दमूलफलाशनः॥५९॥

वर पाकर वह राजा अत्यन्त प्रसन्न चित्त से जप करने लगा। वह तीनों काल स्नान करके और शान्त होकर कन्द, मूल और फल का भोजन करता था।

तस्य पूर्णे वर्षशते भगवानुग्रदीधितिः।

प्रादुरासीन्महायोगी भानोर्मण्डलमध्यतः॥६०॥

उसके सौ वर्ष पूरे हो जाने पर प्रखर किरण वाले भगवान् महायोगी सूर्यमण्डल के मध्य से प्रकट हुए।

तं दृष्ट्वा वेदवपुषं मण्डलस्थं सनातनम्।

स्वयम्भुवमनाद्यन्तं ब्रह्माणं विस्मयङ्गतः॥६१॥

वेदमय शरीरधारी, मण्डल में स्थित, सनातन, स्वयंभु आदि और अन्त से रहित ब्रह्मा को देखकर राजा विस्मय में पड़ गया।

तुष्टाव वैदिकैर्मन्त्रैः सावित्र्या च विशेषतः।

क्षणादपश्यत्पुरुषं तमेव परमेश्वरम्॥६२॥

वह वैदिक मंत्रों से विशेषतः सावित्री मन्त्र से उनकी स्तुति करने लगा। क्षणभर बाद उससे उन्हीं पुरुष को परमेश्वररूप में देखा।

चतुर्मुखं जटामौलिमष्टहस्तं त्रिलोचनम्।

चन्द्रावयवलक्ष्माणं नरनारीतनुं हरम्॥६३॥

उनके चार मुख थे, मस्तक पर जटा थी, आठ हाथ थे और तीन नेत्र थे। वे चन्द्रमा के अवयव से चिह्नित और अर्धनारीश्वर शरीर धारण करने वाले शिव थे।

भासयन्तं जगत्कृत्स्नं नीलकण्ठं स्वरश्मिभिः।

रक्ताम्बरधरं 'रक्तं' रक्तमाल्यानुलेपनम्॥६४॥

वे सम्पूर्ण जगत् को अपनी रश्मियों से उद्भासित कर रहे थे। वे नीलकण्ठ, रक्ताम्बरधारी, लाल तथा लाल माला और चन्दन से युक्त थे।

तद्भावभावितो दृष्ट्वा सद्भावेन परेण हि।

ननाम शिरसा रुद्रं सावित्र्या तेन चैव हि॥६५॥

ऐसे रुद्रदेव का दर्शन करके राजा ने उनके प्रति भावयुक्त होकर आर्द्रचित्त से और परम सद्भाव से गायत्री मंत्र का उच्चारण करते हुए मस्तक से रुद्रदेव को प्रणाम किया।

नमस्ते नीलकण्ठाय भास्वते परमेष्ठिने।

त्रयीमयाय रुद्राय कालरूपाय हेतवे॥६६॥

(और राजा ने कहा—) नीलकण्ठ, प्रकाशमान परमेष्ठी, वेदमय, रुद्र, कालरूप और सबके कारणभूत आपको नमस्कार है।

तदा प्राह महादेवो राजानं प्रीतमानसः।

इमानि मे रहस्यानि नामानि शृणु चानघ॥६७॥

तब महादेव ने प्रसन्नचित्त होकर राजा से कहा— हे निष्पाप राजन्! ये मेरे रहस्यमय नाम हैं, उसे सुनो।

सर्ववेदेषु गीतानि संसारशमनानि तु।

नमस्कुरुष्व नृपते एभिर्मां सततं शुचिः॥६८॥

ये सभी वेदों में गाये गये हैं और संसार के शामक हैं। हे नृपते! सदा पवित्र रहकर इन नामों से मुझे प्रणाम करो।

अधीष्व शतरुद्रीयं यजुषां सारमुद्धृतम्।

जपस्वानन्यचेतस्को मय्यासक्तमना नृप॥६९॥

हे नृप! अनन्यमना तथा मुझमें आसक्तचित्त होकर यजुर्वेद के सारभूत शतरुद्रीय अध्याय का अध्ययन तथा जप करो।

ब्रह्मचारी निराहारो भस्मनिष्ठः समाहितः।

जपेदामरणाद्रुद्रं स याति परमं पदम्॥७०॥

जो व्यक्ति ब्रह्मचारी, स्वल्पाहारी, भस्मनिष्ठ तथा समाहितचित्त होकर मरणकाल पर्यन्त इसका जप करता है, उसे परम पद का लाभ होता है।

इत्युक्त्वा भगवानुद्रो भक्तानुग्रहकाम्यया।
पुनः संवत्सरशतं राज्ञे ह्यायुरकल्पयत्॥७१॥

यह कहकर भगवान् रुद्र ने भक्त पर अनुग्रह करने की इच्छा से राजा को पुनः एक सौ वर्षों की आयु दे दी।

दत्त्वास्मै तत्परं ज्ञानं वैराग्यं परमेश्वरः।
क्षणादन्तर्दधे रुद्रस्तदद्भुतमिवाभवत्॥७२॥

परमेश्वर रुद्र राजा को परम ज्ञान तथा वैराग्य देकर क्षण भर में अन्तर्हित हो गये, यह अद्भुत सी बात हुई।

राजापि तपसा रुद्रं जजापानन्यमानसः।
भस्मच्छन्नत्रिषवणं स्नात्वा शान्तः समाहितः॥७३॥

राजा भी भस्मलिप्त शरीर, त्रिकालस्नायी, शान्त, समाहितचित्त और अनन्यमना होकर तपस्या द्वारा शतरुद्रीय का जप करने लगे।

जपतस्तस्य नृपतेः पूर्णे वर्षशते पुनः।
योगप्रवृत्तिरभवत्कालात्कालपरं पदम्॥७४॥
विवेशैतद्वेदसारं स्थानं वै परमेष्ठिनः।
भानोः सुमण्डलं शुभ्रं ततो यातो महेश्वरम्॥७५॥

जप करते हुए उस राजा के पुनः सौ वर्ष पूरे हो जाने पर उसकी योग में प्रवृत्ति हो गई। तदनन्तर कुछ समय बाद राजा ने वेदसारमय परमेष्ठी ब्रह्मा का स्थान में प्रवेश किया। फिर सूर्य के शुभ्र मण्डल को प्राप्तकर महेश्वर के परम पद को प्राप्त हो गया।

यः पठेच्छृणुयाद्वापि राज्ञश्चरितमुत्तमम्।
स्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते॥७६॥

जो कोई मनुष्य राजा वसुमना का यह उत्तम चरित्र पढ़ता या सुनता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर ब्रह्मलोक में पूजित होता है।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे राजवंशकीर्तने विंशोऽध्यायः।

एकविंशोऽध्यायः
(इक्ष्वाकुवंश का वर्णन)

सूत उवाच

त्रिधन्वा राजपुत्रस्तु धर्मेणापालयन्महीम्।
तस्य पुत्रोऽभवद्विद्वांस्त्र्यारुण इति श्रुतः॥१॥

महर्षि सूत ने कहा— इसके बाद राजपुत्र त्रिधन्वा धर्मपूर्वक पृथ्वी का पालन करने लगा। उसका एक पुत्र हुआ, जो विद्वान् और त्र्यारुण नाम से प्रसिद्ध था।

तस्य सत्यव्रतो नाम कुमारोऽभून्महाबलः।
भार्या सत्यधना नाम हरिश्चन्द्रमजीजनत्॥२॥

उसका त्र्यारुण का पुत्र सत्यव्रत नामक था जो महान् बलवान् हुआ था। उसकी भार्या का नाम सत्यधना था, जिसने हरिश्चन्द्र को जन्म दिया था।

हरिश्चन्द्रस्य पुत्रोऽभूद्रोहितो नाम वीर्यवान्।
हरितो रोहितस्याथ धुन्धुस्तस्य सुतोऽभवत्॥३॥
विजयश्च सुदेवश्च धुन्धुपुत्रौ बभूवतुः।
विजयस्याभवत्पुत्रः कारुको नाम वीर्यवान्।
कारुकस्य वृकः पुत्रस्तस्माद्बाहुरजायत॥४॥
सगरस्तस्य पुत्रोऽभूद्राजा परमधार्मिकः।
द्वे भार्ये सगरस्यापि प्रभा भानुमती तथा॥५॥

उस हरिश्चन्द्र का पुत्र रोहित हुआ था, जो परम वीर्यवान् था। रोहित का पुत्र हरित और इसका आत्मज धुन्धु था। धुन्धु के दो पुत्र विजय और सुदेव हुए। विजय का पुत्र कारुक नाम वाला महान् पराक्रमी था। इस कारुक का पुत्र वृक था और उस वृक से बाहु उत्पन्न हुआ था। उसका पुत्र सगर हुआ। वह परम धार्मिक राजा हुआ था। इस सगर की दो भार्याएँ थीं— एक का नाम प्रभादेवी और दूसरी भानुमती थी।

ताभ्यामाराधितो वह्निः प्रददौ वरमुत्तमम्।
एकं भानुमतीपुत्रमगृह्णादसमञ्जसम्॥६॥
प्रभा षष्टिसहस्रन्तु पुत्राणां जगृहे शुभा।
असमञ्जसपुत्रोऽभूदंशुमान्नाम पार्थिवः॥७॥

उन दोनों सगरकी पत्नियों के द्वारा समाराधित वह्निदेव ने उनको एक उत्तम वर प्रदान किया था। भानुमती ने एक असमंजस नामधारी पुत्र को ग्रहण किया और प्रभा ने साठ

हजार पुत्रों को स्वीकार किया था। उस असमंजस का पुत्र अंशुमान् नामक राजा हुआ था।

तस्य पुत्रो दिलीपस्तु दिलीपात्तु भगीरथः।
येन भागीरथी गङ्गा तपः कृत्वावतारिता॥ ८॥

उसका आत्मज दिलीप और दिलीप से भगीरथ हुआ, उसने तप करके गङ्गा को पृथ्वी पर उतारा था, इसीलिए वह भागीरथी नाम से प्रसिद्ध है।

प्रसादाद्देवदेवस्य महादेवस्य धीमतः।
भगीरथस्य तपसा देवः प्रीतमना हरः॥ ९॥

देवों के भी देव बुद्धिमान् महादेव की कृपा से ही यह हुआ था। भगीरथ की तपस्या से शंकरदेव प्रीतियुक्त मन वाले हो गये थे।

दधार शिरसा गङ्गां सोमान्ते सोमभूषणः।
भगीरथसुतश्चापि श्रुतो नाम बभूव ह॥ १०॥

जिससे चन्द्रमा का आभूषण वाले महादेव ने उस गंगा को अपने चन्द्र के नीचे ही शिर पर धारण कर लिया था। उस भगीरथ का पुत्र भी श्रुत नाम से प्रख्यात हुआ।

नाभागस्तस्य दायादः सिंधुद्वीपस्ततोऽभवत्।
अयुतायुः सुतस्तस्य ऋतुपर्णो महाबलः॥ ११॥

इसका पुत्र नाभाग और नाभाग का सिन्धुद्वीप नामक पुत्र हुआ था। उसका पुत्र अयुतायु तथा उसका पुत्र महान् बलवान् ऋतुपर्ण नामक हुआ था।

ऋतुपर्णस्य पुत्रोऽभूत्सुदासो नाम धार्मिकः।
सौदासस्तस्य तनयः ख्यातः कल्माषपादकः॥ १२॥

ऋतुपर्ण का पुत्र सुदास नामक परम धार्मिक हुआ था। उसका पुत्र सौदास था जो कल्माषपाद नाम से विख्यात हुआ था।

वसिष्ठस्तु महातेजाः क्षेत्रे कल्माषपादके।
अश्मकं जनयामास तमिक्ष्वाकुकुलध्वजम्॥ १३॥
अश्मकस्योत्कलायान्तु नकुलो नाम पार्थिवः।
स हि रामभयाद्राजा वनं प्राप सुदुःखितः॥
दधत् स नारीकवचं तस्माच्छतरथोऽभवत्।
तस्मादिलिविलिः श्रीमान् वृद्धशर्मा च तत्सुतः॥ १४॥

उस कल्माषपाद के क्षेत्र में (स्वयं प्रजोत्पत्ति में असमर्थ होने से) महान् तेजस्वी वसिष्ठ ने अश्मक नामक पुत्र को उत्पन्न किया था, जो इक्ष्वाकु कुल के ध्वजरूप में प्रतिष्ठित हुआ। अश्मक की उत्कला नाम की भार्या में नकुल नामक पुत्र राजा हुआ, जो राजा राम के भय से दुःखी होकर वन में चला गया था। वहाँ भी उसने नारी कवच (स्त्री-वेष) धारण किया था। उस नकुल से शतरथ नामक पुत्र हुआ था। उससे इलिविलि हुआ था और फिर उससे श्रीमान् वृद्धशर्म्मा उसका पुत्र हुआ था।

तस्माद्विश्वसहस्तस्मात्खट्वाङ्ग इति विश्रुतः।
दीर्घबाहुः सुतस्तस्माद्रघुस्तस्मादजायत॥ १५॥

उससे विश्वसह तथा फिर विश्वसह से खट्वांग नामक विख्यात पुत्र उत्पन्न हुआ था। इसका पुत्र दीर्घबाहु था तथा इस दीर्घबाहु से रघु ने जन्म ग्रहण किया था।

रघोरजः समुत्पन्नो राजा दशरथस्ततः।
रामो दाशरथिर्वीरो धर्मज्ञो लोकविश्रुतः॥ १६॥
भरतो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नश्च महाबलः।
सर्वे शक्रसमा युद्धे विष्णुशक्तिसमन्विताः॥ १७॥

रघु से अज और अज से राजा दशरथ उत्पन्न हुए। इन महाराज दशरथ से ही दाशरथि राम परमवीर और धर्मज्ञ रूप में लोक में प्रख्यात हुए। राम के अतिरिक्त भरत-लक्ष्मण और अति महान् बलवान् शत्रुघ्न भी हुए थे। वे सभी विष्णु की शक्ति से समन्वित होने से युद्ध में इन्द्र के समान थे।

जज्ञे रावणनाशार्थं विष्णुरंशेन विश्वभुक्।
रामस्य भार्या सुभगा जनकस्यात्मजा शुभा॥ १८॥
सीता त्रिलोकविख्याता शीलौदार्यगुणान्विता।
तपसा तोषिता देवी जनकेन गिरीन्द्रजा॥ १९॥
प्रायच्छज्जानकीं सीतां राममेवाश्रितां पतिम्।

विश्वभोक्ता साक्षात् विष्णु ही अपने अंश से रावण के नाश के लिए उत्पन्न हुए थे। राम की भार्या परम भाग्यवती राजा जनक की शुभ आत्मजा सीता नाम से तीनों लोकों में विख्यात हुई थी। वह शील और औदार्य गुणों से समन्वित थी। क्योंकि राजा जनक ने तप द्वारा हिमालयपुत्री पार्वती देवी को प्रसन्न किया था इसलिए पार्वती ने सीता जनक को पुत्रीरूप में दी थी, और सीता अपने पतिरूप में राम के आश्रित हुई।

प्रीतश्च भगवानीशस्त्रिशूली नीललोहितः॥ २०॥
प्रददौ शत्रुनाशार्थं जनकायाद्भुतं धनुः।
स राजा जनको धीमान् दातुकामः सुतामिमाम्॥ २१॥
अघोषयदमित्रघ्नो लोकेऽस्मिन्द्विजपुङ्गवाः।

इदं धनुः समादातुं यः शक्नोति जगत्त्रये॥ २२॥
देवो वा दानवो वापि स सीतां लब्धुमर्हति।

नीललोहित त्रिशूलधारी भगवान् शंकर ने भी परम प्रसन्न होकर शत्रुओं के नाश के लिए एक अद्भुत धनुष जनक को प्रदान किया था। हे द्विजश्रेष्ठो! उस बुद्धिमान् राजा जनक ने अपनी पुत्री को प्रदान करने की इच्छा की थी। तब शत्रुओं का नाश करने वाले राजा जनक ने पृथ्वी पर ऐसी घोषणा की कि जो कोई पुरुष इस (शिव) धनुष को उठाने में समर्थ होता है, वह देव या दानव कोई भी हो सीता को प्राप्त कर सकता है।

विज्ञाय रामो बलवाञ्जनकस्य गृहं प्रभुः॥ २३॥
भञ्जयामास चादाय गत्वासौ लीलयैव हि।
उद्वाहाथ तां कन्यां पार्वतीमिव शंकरः॥ २४॥
रामः परमधर्मात्मा सेनामिव च षण्मुखः।

ऐसी प्रतिज्ञा को जानकर बलवान् प्रभु श्रीराम ने जनक के घर जाकर उस धनुष को लीलामात्र में ही तोड़ दिया। उसके बाद जैसे पार्वती को शंकर ने और कार्तिकेय ने सेना से विवाह किया, उसी तरह परम धर्मात्मा श्रीराम ने उस कन्या के साथ विवाह किया।

ततो बहुतिथे काले राजा दशरथः स्वयम्॥ २५॥
रामं ज्येष्ठसुतं वीरं राजानं कर्तुमर्हसि।
तस्याथ पत्नी सुभगा कैकेयी चारुहासिनी॥ २६॥
निवारयामास पतिं प्राह सम्भ्रान्तमानसा।

इसके अनन्तर बहुतसा समय व्यतीत हो जाने पर राजा दशरथ ने स्वयं ही अपने ज्येष्ठ पुत्र वीर राम को राजा बनाने की इच्छा की। तब इनकी पत्नी सौभाग्यवती और सुन्दर हास्ययुक्त स्वभाववाली कैकयी भ्रमित मन होकर अपने पति को रोका और कहा—

मत्सुतं भरतं वीरं राजानं कर्तुमारभत्॥ २७॥
पूर्वमेव वरौ यस्माद्दत्तौ मे भवता यतः।
स तस्या वचनं श्रुत्वा राजा दुःखितमानसः॥ २८॥

आप मेरे वीर पुत्र भरत को राजा बनाने के योग्य हैं। क्योंकि आपने मुझे पहले ही दो वरदान प्रदान किये थे। राजा दशरथ उसका वचन सुनकर मन से अति दुःखी होने लगा।

बाढमित्यब्रवीद्वाक्यं तथा रामोऽपि धर्मवित्।
प्रणम्याथ पितुः पादौ लक्ष्मणेन सहाच्युतः॥ २९॥
ययौ वनं सपत्नीकः कृत्वा समयमात्मवान्।

किन्तु दुःखित होते हुए भी वचन बद्धता के कारण उस राजा ने 'बहुत अच्छा' ऐसा कहा और धर्मवेत्ता राम ने भी यही कहा था। अच्युत (मर्यादा से च्युत न होने वाले) श्रीराम ने लक्ष्मण को साथ लेकर पिता के चरणों में प्रणाम किया और वे जितेन्द्रिय राम समय (१४ वर्ष के समय की प्रतिज्ञा) करके पत्नी के साथ वन गये।

संवत्सराणां चत्वारि दश चैव महाबलः॥ ३०॥
उवास तत्र भगवान् लक्ष्मणेन सह प्रभुः।
कदाचिद्वसतोऽरण्ये रावणो नाम राक्षसः॥ ३१॥
परिव्राजकवेषेण सीतां हृत्वा ययौ पुरीम्।
अदृष्ट्वा लक्ष्मणो रामः सीतामाकुलितेन्द्रियौ॥ ३२॥
दुःखशोकाभिसन्तप्तौ बभूवतुररिन्दमौ।

इस प्रकार महाबली भगवान् प्रभु ने लक्ष्मण के साथ वहाँ वन में चौदह वर्षों तक निवास किया था। किसी समय जब वे वन में वास कर रहे थे, रावण नामधारी राक्षस ने परिव्राजक के वेष में आकर सीता देवी का हरण किया और अपनी नगरी में चला गया। श्रीराम और लक्ष्मण ने सीता को वहाँ पंचवटी में न देखकर बहुत व्याकुल हो उठे और वे शत्रुओं का नाश करने वाले थे, फिर भी दुःख और शोक से संतप्त हो गये।

ततः कदाचित्कपिना सुग्रीवेण द्विजोत्तमाः॥ ३३॥
वानराणामभूत्सख्यं रामस्याक्लिष्टकर्मणः।
सुग्रीवस्यानुगो वीरो हनूमान्नाम वानरः॥ ३४॥
वायुपुत्रो महातेजा रामस्यासीत्प्रियः सदा।
स कृत्वा परमं धैर्यं रामाय कृतनिश्चयः॥ ३५॥
आनयिष्यामि तां सीतामित्युक्त्वा विचचार ह।
महीं सागरपर्यन्तां सीतादर्शनतत्परः॥ ३६॥

हे द्विजोत्तमो! फिर किसी समय अक्लिष्ट कर्म वाले श्रीराम का कपि सुग्रीव तथा वानरों के साथ मित्रता हो गई थी। उसमें भी जो सुग्रीव का एक अनुगामी वायु का पुत्र और महान् तेजस्वी वीर हनुमान नामधारी वानर था, वह तो सदा श्रीराम के अत्यन्त प्रिय हो गये थे। हनुमान ने परम धैर्य धारण करके श्रीराम के आगे यह निश्चय करके कहा था कि मैं सीताजी को अवश्य लाऊँगा। इतना कहकर उसने सीता का दर्शन करने में तत्पर होकर सागरपर्यन्त समस्त भूमण्डल में विचरण किया था।

जगाम रावणपुरीं लङ्कां सागरसंस्थिताम्।
तत्राथ निर्जने देशे वृक्षमूले शुचिस्मिताम्॥ ३७॥
अपश्यदमलां सीतां राक्षसीभि: समावृताम्।
अश्रुपूर्णेक्षणां इष्टां संस्मरन्तीमनिन्दिताम्॥ ३८॥
राममिन्दीवरश्यामं लक्ष्मणञ्चात्मसंस्थिताम्।
निवेदयित्वा चात्मानं सीतायै रहसि प्रभु:॥ ३९॥

और वे सागर के मध्य संस्थित रावण की नगरी लङ्कापुरी में पहुँच गये थे । वहाँ पर एक वृक्ष के मूल में निर्जन प्रदेश में हनुमान् ने निर्मल और शुचिस्मिता सीताजी को देखा जो राक्षसियों से घिरी हुई थीं। उनके नेत्र अश्रुओं से डबडबाये हुए थे, फिर भी देखने वाले को प्रिय लगती थीं। राम का स्मरण करती हुई वे निर्दोष लग रहीं थीं। वे मन में इन्दीवर के समान श्यामवर्ण वाले श्रीराम तथा लक्ष्मण का चिन्तन कर रही थी। एकान्त पाकर हनुमान ने सीताजी को अपना परिचय दिया था।

असंशयाय प्रददावस्यै रामाङ्गुलीयकम्।
दृष्ट्वांगुलीयकं सीता पत्यु: परमशोभनम्॥ ४०॥
मेने समागतं रामं प्रीतिविस्फुरितेक्षणा।
समाश्वास्य तदा सीतां दृष्ट्वा रामस्य चान्तिकम्॥ ४१॥
नयिष्ये त्वां महाबाहुमुक्त्वा रामं ययौ पुन:।
निवेदयित्वा रामाय सीतादर्शनमात्मवान्॥ ४२॥
तस्थौ रामेण पुरतो लक्ष्मणेन च पूजित:।

संशय के निवारण के लिए उन्होंने श्रीराम की अंगूठी सीताजी को दी थी। उस समय अपने स्वामी की वह परम सुन्दर अंगूठी को देखकर प्रीति से विस्फारित नेत्रों वाली सीताजी ने श्रीराम को ही आया हुआ मान लिया। उस समय सीताजी को देखकर हनुमान् ने उन्हें आश्वस्त किया और कहा कि मैं आपको महाबाहु श्रीराम के समीप में ले जाऊँगा— इतना कहकर ही वे फिर श्रीराम के समीप चले गये थे। जितेन्द्रिय हनुमान् ने श्रीराम से सीता देवी के दर्शन की बात बताकर लक्ष्मण के द्वारा पूजित होते हुए श्रीराम के आगे खड़े हो गये।

तत: स रामो बलवान्सार्धं हनुमता स्वयम्॥ ४३॥
लक्ष्मणेन च युद्धाय बुद्धिञ्चक्रे हि राक्षस:।
कृत्वाथ वानरशतैर्लङ्कामार्गं महोदधे:॥ ४४॥
सेतुं परमधर्मात्मा रावणं हतवान्प्रभु:।
सपत्नीकं हि ससुतं सभ्रातृकमरिन्दम:॥ ४५॥
आनयामास तां सीतां वायुपुत्रसहायवान्।
सेतुमध्ये महादेवमीशानं कृत्तिवाससम्॥ ४६॥
स्थापयामास लिङ्गस्थं पूजयामास राघव:।

इसके पश्चात् बलशाली श्रीराम ने लक्ष्मण और हनुमान के साथ उस राक्षस से युद्ध करने के लिए विचार किया था। सैकडों वानरों के द्वारा उस महोदधि पर सेतु बनाकर लंका जाने का मार्ग बनाया। तत्पश्चात् परम धर्मात्मा प्रभु राम ने रावण का वध कर दिया था और पत्नी, पुत्र तथा भाइयों सहित सभी का वध करके शत्रुनाशन श्रीराम वायु के पुत्र हनुमान् की सहायता से देवी सीता को वापस लाये थे। उन्होंने समुद्र के मध्य निर्मित सेतु के नीचे कृत्तिवासा ईशान महादेव का लिङ्ग स्थापित किया था। उसके बाद राघव श्रीराम ने महादेव की पूजा की थी।

तस्य देवो महादेव: पार्वत्या सह शंकर:॥ ४७॥
प्रत्यक्षमेव भगवान्दत्तवान्वरमुत्तमम्।
यत्त्वया स्थापितं लिङ्गं द्रक्ष्यन्तीदं द्विजातय:॥ ४८॥
महापातकसंयुक्तास्तेषां पापं विनंक्ष्यति।
अन्यानि चैव पापानि स्नातस्यात्र महोदधौ॥ ४९॥

उसके बाद पार्वती के साथ महादेव शङ्कर देव श्रीराम के समक्ष प्रत्यक्ष हुए थे। भगवान् ने श्रीराम को एक उत्तम वरदान दिया था कि आपने जो यह मेरे लिङ्ग की स्थापना की है, उसका सभी द्विजातिगण दर्शन करेंगे। उनमें जो भी कोई महापातकी भी होगा तो उसका भी सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जायेगा। इसी प्रकार जो मनुष्य वहां महासागर में स्नान करेगा, उसके अन्य भी समस्त पापों का नाश हो जायेगा।

दर्शनादेव लिङ्गस्य नाशं यान्ति न संशय:।
यावत्स्थास्यन्ति गिरयो यावदेषा च मेदिनी॥ ५०॥
यावत्सेतुश्च तावच्च स्थास्याम्यत्र तिरोहित:।
स्नानं दानं तप: श्राद्धं सर्वं भवतु चाक्षयम्॥ ५१॥

उस रामेश्वर के लिङ्ग का दर्शन करने से ही सब पापों का नाश हो जाता है— इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है। जब तक ये पर्वतों का समुदाय और यह भूमि स्थित रहेंगे और जिस समय तक यह सेतु स्थित रहेगा मैं तिरोहित होकर यहीं पर वर्तमान रहूँगा। यहाँ पर किया हुआ स्नान-दान-तप और श्राद्ध सभी कुछ शुभकर्म अक्षय होगा।

स्मरणादेव लिङ्गस्य दिनपापं प्रणश्यति।
इत्युक्त्वा भगवाञ्छम्भु: परिष्वज्य तु राघवम्॥ ५२॥
सनन्दी सगणो रुद्रस्तत्रैवान्तरधीयत।
रामोऽपि पालयामास राज्यं धर्मपरायण:॥ ५३॥

उस लिङ्ग के स्मरणमात्र से ही दिनभर का किया हुआ पाप नष्ट हो जाता है। इतना कहकर भगवान् शम्भु ने श्रीराम को गले लगा लिया था। फिर नन्दी और गणों के सहित ही भगवान् रुद्र वहीं पर अन्तर्धान हो गये थे। फिर धर्मपरायण श्रीराम ने भी राज्य का पालन किया था।

अभिषिक्तो महातेजा भरतेन महाबल:।
विशेषाद्ब्राह्मणान्सर्वान्पूजयामास चेश्वरम्॥५४॥
यज्ञेन यज्ञहन्तारमश्वमेधेन शङ्करम्।
रामस्य तनयो जज्ञे कुश इत्यभिविश्रुत:॥५५॥
लवश्च सुमहाभाग: सर्वतत्त्वार्थवित्सुधी:।
अतिथिस्तु कुशाज्जज्ञे निषधस्तत्सुतोऽभवत्॥५६॥

क्योंकि भरत के द्वारा वे महाबली एवं तेजस्वी श्रीराम का अभिषेक किया गया था। उन्होंने विशेषरूप से ब्राह्मणों का और प्रभु का आदर-सत्कार किया था। श्रीराम ने प्रजापति दक्ष के यज्ञ का नाश करने वाले शंकर को अश्वमेध यज्ञ करके प्रसन्न किया था। राम का एक पुत्र हुआ जो कुश नाम नाम से प्रसिद्ध था और लव नामक पुत्र भी हुआ था जो महान भाग्यशाली और सब शास्त्रों के तत्त्वों को जानने वाला विद्वान् था। उस कुश से अतिथि ने जन्म ग्रहण किया और उससे निषध नामक पुत्र हुआ था।

नलश्च निषधस्यासीत् नभस्तस्मादजायत।
नभस: पुण्डरीकाक्ष: क्षेमधन्वा तु तत्सुत:॥५७॥

उस निषध का पुत्र नल हुआ था और नल से नभ की उत्पत्ति हुई थी। नभ का पुत्र पुण्डरीकाक्ष था तथा उसका पुत्र क्षेमधन्वा था।

तस्य पुत्रोऽभवद्वीरो देवानीक: प्रतापवान्।
अहीनगुस्तस्य सुतो महस्वांस्तत्सुतोऽभवत्॥५८॥

उस क्षेमधन्वा का वीर और प्रतापी देवानीक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। देवानीक का पुत्र अहीनगु था तथा उससे महस्वान् नामक पुत्र हुआ।

तस्माच्चन्द्रावलोकस्तु ताराधीशश्च तत्सुत:।
ताराधीशाच्चन्द्रगिरिर्भानुवित्तस्ततोऽभवत्॥५९॥
श्रुतायुरभवत्तस्मादेते चेक्ष्वाकुवंशजा:।
सर्वे प्राधान्यत: प्रोक्ता: समासेन द्विजोत्तमा:॥६०॥
य इमं शृणुयान्नित्यमिक्ष्वाकोर्वंशमुत्तमम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तो देवलोके महीयते॥६१॥

उससे चन्द्रावलोक की उत्पत्ति हुई और उसका पुत्र ताराधीश हुआ था। ताराधीश से चन्द्रगिरि नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई और उससे भानुवित्त ने जन्म लिया था। उससे श्रुतायु हुआ था। ये सभी इक्ष्वाकु राजा के ही वंश में जन्म लेने वाले थे। हे द्विजोत्तमो! प्रधानतया इन सब को ही मैंने संक्षेप में बता दिया है। जो इस इक्ष्वाकु के उत्तम वंश का आख्यान नित्य श्रवण करता है वह सभी पापों से मुक्त होकर देवलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे इक्ष्वाकुवंशवर्णनं नाम एकविंशोऽध्याय:॥२१॥

द्वाविंशोऽध्याय:
(सोमवंश का वर्णन)

सूत उवाच

ऐल: पुरूरवाश्चाथ राजा राज्यमपालयत्।
तस्य पुत्रा बभूवुर्हि षडिन्द्रसमतेजस:॥१॥

सूत बोले— अनन्तर (बुध से उत्पन्न) इलापुत्र पुरूरवा राज्य का पालन करने लगा। उसके इन्द्र के समान तेजस्वी छह पुत्र हुए।

आयुर्मायुरमायुश्च विश्वायुश्चैव वीर्यवान्।
शतायुश्च श्रुतायुश्च दिव्याश्चैवोर्वशीसुता:॥२॥

इनके नाम हैं— आयु, मायु, अमायु, शक्तिशाली विश्वायु, शतायु और श्रुतायु। ये सब दिव्य एवं उर्वशी के पुत्र थे।

आयुषस्तनया वीरा: पञ्चैवासन्महौजस:।
स्वर्भानुतनयायां वै प्रभायामिति न: श्रुतम्॥३॥

आयु के पाँच ही महान् तेजस्वी वीर पुत्र स्वर्भानु की पुत्री प्रभा से उत्पन्न हुए थे, ऐसा हमने सुना है।

नहुष: प्रथमस्तेषां धर्मज्ञो लोकविश्रुत:।
नहुषस्य तु दायादा: पञ्चेन्द्रोपमतेजस:॥४॥
उत्पन्ना: पितृकन्यायां विरजायां महाबला:।
यातिर्ययाति: संयातिरायाति: पञ्चमोऽश्वक:॥५॥

उनमें नहुष पहला पुत्र था, जो धर्मज्ञाता एवं लोकविख्यात था। नहुष के इन्द्र के समान तेजस्वी पाँच महाबली पुत्र पितरों की कन्या विरजा से उत्पन्न हुए— याति, ययाति, संयाति, आयाति और पाँचवाँ अश्वक।

तेषां ययाति पञ्चानां महाबलपराक्रम:।
देवयानीमुशनस: सुतां भार्यामवाप स:॥६॥

उन पाँचों में ययाति महाबली और पराक्रमी था। उसने शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी को पत्नी रूप में प्राप्त किया।

शर्मिष्ठामासुरीञ्चैव तनयां वृषपर्वण:।
यदुञ्च तुर्वसुञ्चैव देवयानी व्यजायत॥७॥

उसने असुर वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा को भी पत्नी बना लिया। देवयानी ने यदु और तुर्वसु को जन्म दिया।

द्रुह्युञ्चानुञ्च पुरुञ्च शर्मिष्ठा चाप्यजीजनत्।
सोऽभ्यषिञ्चदतिक्रम्य ज्येष्ठं यदुमनिन्दितम्॥८॥
पुरुमेव कनीयांसं पितुर्वचनपालकम्।
दिशि दक्षिणपूर्वस्यां तुर्वसुं पुत्रमादिशत्॥९॥

शर्मिष्ठा ने भी द्रुह्यु, अनु और पुरु को जन्म दिया। ययाति ने अनिन्दित ज्येष्ठ पुत्र यदु का उल्लंघन करके पिता के वचन का पालन करने वाले कनिष्ठ पुत्र पुरु का ही राज्याभिषेक किया और दक्षिण-पूर्व दिशा का राज्य तुर्वसु को सौंपा।

दक्षिणापरयो राजा यदुं श्रेष्ठं न्ययोजयत्।
प्रतीच्यामुत्तरायाञ्च द्रुह्युञ्चानुमकल्पयत्॥१०॥

राजा ने दक्षिण और पश्चिम दिशा के भाग में श्रेष्ठ पुत्र यदु को नियुक्त किया। पश्चिम और उत्तर दिशा में द्रुह्यु और अनु को प्रतिष्ठित किया।

तैरियं पृथिवी सर्वा धर्मत: परिपालिता।
राजापि दारसहितो वनं प्राप महायशा:॥११॥

वे राजा सम्पूर्ण पृथिवी का धर्मपूर्वक पालन करने लगे और महायशस्वी राजा ययाति पत्नी सहित वन को चले गये।

यदोरप्यभवन् पुत्रा: पञ्च देवसुतोपमा:।
सहस्रजित्तथा श्रेष्ठ: क्रोष्टुर्नीलो जिनो रघु:॥१२॥

यदु के भी देवपुत्र के समान पाँच पुत्र हुए। उनमें सहस्रजित् श्रेष्ठ था और शेष चार थे— क्रोष्टु, नील, जिन और रघु।

सहस्रजित्सुतस्तद्वच्छतजिन्नाम पार्थिव:।
सुता: शतजितोऽप्यासंस्त्रय: परमधार्मिका:॥१३॥
हैहयश्च हयश्चैव राजा वेणुहयश्च य:।
हैहयस्याभवत्पुत्रो धर्म इत्यभिविश्रुत:॥१४॥

सहस्रजित् का पुत्र शतजित् नामक राजा था और शतजित् के परम धार्मिक तीन पुत्र हुए— हैहय, हय और राजा वेणुहय। हैहय का पुत्र धर्म नाम से विख्यात हुआ।

तस्य पुत्रोऽभवद्विप्रा धर्मनेत्र: प्रतापवान्।
धर्मनेत्रस्य कीर्तिस्तु सञ्जितस्तत्सुतोऽभवत्॥१५॥

विप्रवृन्द! धर्म का पुत्र प्रतापी धर्मनेत्र हुआ। धर्मनेत्र का पुत्र कीर्ति और उसका पुत्र सञ्जित हुआ।

महिष्म: सञ्जितस्याभूद्भद्रश्रेण्यस्तदन्वय:।
भद्रश्रेण्यस्य दायादो दुर्दमो नाम पार्थिव:॥१६॥

सञ्जित का पुत्र महिष्म और उसका पुत्र भद्रश्रेण्य हुआ। भद्रश्रेण्य का पुत्र दुर्दम नामक राजा हुआ।

दुर्दमस्य सुतो धीमानन्धको नाम वीर्यवान्।
अन्धकस्य तु दायादाश्चत्वारो लोकसंमता:॥१७॥
कृतवीर्य: कृताग्निश्च कृतवर्मा च तत्सुत:।
कृतौजाश्च चतुर्थोऽभूत्कार्तवीर्यस्तथार्जुन:॥१८॥

दुर्दम का पुत्र धीमान् तथा शक्तिमान् अन्धक हुआ। अन्धक के चार लोकप्रसिद्ध पुत्र हुए— कृतवीर्य, कृताग्नि, कृतवर्मा और चौथा कृतौजा। कृतवीर्य का कार्तवीर्यार्जुन नामक पुत्र हुआ।

सहस्रबाहुर्द्युतिमान्धनुर्वेदविदां वर:।
तस्य रामोऽभवन्मृत्युर्जामदग्न्यो जनार्दन:॥१९॥

वह सहस्र भुजाओं से युक्त, द्युतिमान् तथा धनुर्वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ था। जमदग्नि के पुत्र भगवान् परशुराम उसकी मृत्यु का कारण बने।

तस्य पुत्रशतान्यासन्पञ्च तत्र महारथा:।
कृतास्त्रा बलिन: शूरा धर्मात्मानो मनस्विन:॥२०॥
शूरश्च शूरसेनश्च कृष्णो धृष्णस्तथैव च।
जयध्वजश्च बलवान्नारायणपरो नृप:॥२१॥

कार्तवीर्यार्जुन के सौ पुत्र हुए थे, जिनमें पाँच महारथी, अस्त्र चलाने में निपुण, बली, वीर, धर्मात्मा और मनस्वी थे। उनके नाम थे— शूर, शूरसेन, कृष्ण, धृष्ण और जयध्वज। इनमें जयध्वज बलवान् तथा नारायण की भक्ति में परायण था।

शूरसेनादय: पूर्वे चत्वार: प्रथितौजस:।
रुद्रभक्ता महात्मान: पूजयन्ति स्म शङ्करम्॥२२॥

शूरसेन आदि प्रथम चार राजा प्रसिद्ध पराक्रमी, रुद्रभक्त और महात्मा थे। वे शंकर की उपासना करते थे।

जयध्वजस्तु मतिमान्देवं नारायणं हरिम्।
जगाम शरणं विष्णुं दैवतं धर्मतत्पर:॥२३॥

बुद्धिमान् एवं धर्मपरायण जयध्वज भगवान् नारायण हरि के शरणापन्न हो विष्णु देवता की उपासना करता था।

तमूचुरितरे पुत्रा नायं धर्मस्तवानघ।
ईश्वराराधनरत: पितास्माकमिति श्रुति:॥ २४॥

उससे अन्य पुत्रों ने कहा— हे निष्पाप! तुम्हारा यह धर्म नहीं है। हमारे पिताजी शंकर की आराधना में निरत रहते थे, ऐसा सुना जाता है।

तानब्रवीन्महातेजा ह्येष धर्म: परो मम।
विष्णोरंशेन सम्भूता राजानो ये महीतले॥ २५॥

उनसे महातेजा जयध्वज ने कहा— यह मेरा परम धर्म है। पृथ्वी पर जितने राजा हुए हैं, वे विष्णु के अंश से उत्पन्न हुए हैं।

राज्यं पालयितावश्यं भगवान्पुरुषोत्तम:।
पूजनीयोऽजितो विष्णु: पालको जगतां हरि:॥ २६॥

भगवान् पुरुषोत्तम राज्य का अवश्य पालन करेंगे। संसार के पालक हरि एवं अपराजेय विष्णु ही पूजनीय हैं।

सात्त्विकी राजसी चैव तामसी च स्वयं प्रभु:।
तिस्रस्तु मूर्तय: प्रोक्ता: सृष्टिस्थित्यन्तहेतव:॥ २७॥

प्रभु की सृष्टि, स्थिति और प्रलय की हेतुभूत तीन प्रकार की मूर्तियाँ हैं— सात्त्विकी, राजसी और तामसी।

सत्त्वात्मा भगवान्विष्णु: संस्थापयति सर्वदा।
सृजेद्ब्रह्मा रजोमूर्त्ति: संहरेत्तामसो हर:॥ २८॥

सत्त्व स्वरूप भगवान् विष्णु सर्वदा सृष्टि की स्थापना करते हैं। रजोमूर्ति ब्रह्मा सृष्टि करते हैं और तामस महेश संहार करते हैं।

तस्मान्महीपतीनान्तु राज्यं पालयतामिदम्।
आराध्यो भगवान्विष्णु: केशव: केशिमर्दन:॥ २९॥

इसलिए इस राज्य का पालन करते हुए राजाओं के आराध्य केशिहन्ता केशव भगवान् विष्णु हैं।

निशम्य तस्य वचनं भ्रातरोऽन्ये मनस्विन:।
प्रोचु: संहारको रुद्र: पूजनीयो मुमुक्षुभि:॥ ३०॥

उसका यह वचन सुनकर दूसरे जो मनस्वी भाई थे वे बोले— जो लोग मोक्ष की इच्छा करते हैं, उन्हें संहारकर्ता रुद्र की पूजा करनी चाहिए।

अयं हि भगवान् रुद्र: सर्वं जगदिदं शिव:।
तमोगुणं समाश्रित्य कालान्ते संहरेत्प्रभु:॥ ३१॥

ये भगवान् रुद्र शिव कालान्त (कल्पान्त) में तमोगुण का आश्रय लेकर इस सम्पूर्ण जगत् का संहार कर देते हैं।

या सा घोरतमा मूर्त्तिरस्य तेजोमयी परा।
संहरेद्विद्यया पूर्वं संसारं शूलभृत्तया॥ ३२॥

उनकी जो अत्यन्त घोरतम तेजोमयी श्रेष्ठ मूर्ति है, उस विद्यास्वरूप मूर्ति द्वारा त्रिशूलधारी शंकर (संहारकाल में) प्रथम संसार का संहार करते हैं।

ततस्तानब्रवीद्राजा विचिन्त्यासौ जयध्वज:।
सत्त्वेन मुच्यते जन्तु: सत्त्वात्मा भगवान्हरि:॥ ३३॥

तदनन्तर राजा जयध्वज ने सोचकर उन लोगों से कहा— सत्त्वगुण से प्राणी मुक्त हो जाता है और भगवान् हरि सत्त्वस्वरूप हैं।

तमूचुर्भ्रातरो रुद्र: सेवित: सात्त्विकैर्जनै:।
मोचयेत्सत्त्वसंयुक्त: पूजयेत्सततं हरम्॥ ३४॥

उससे भाइयों ने कहा— सात्त्विक लोग रुद्र की सेवा करते हैं। सत्त्वसंयुक्त जीवात्मा को भगवान् शंकर मुक्त कराते हैं। इसलिए निरन्तर शिव की पूजा करनी चाहिए।

अथाब्रवीद्राजपुत्र: प्रहसन्वै जयध्वज:।
स्वधर्मो मुक्तये मुक्तो नान्यो मुनिभिरिष्यते॥ ३५॥

इसके बाद राजपुत्र जयध्वज ने हँसते हुए कहा— मुक्ति के लिए अपना धर्म समीचीन होता है, दूसरा नहीं— ऐसा मुनियों को अभीष्ट है।

तथा च वैष्णवीं शक्तिं नृपाणान्दधतां सदा।
आराधनं परो धर्मो मुरारेरमितौजस:॥ ३६॥

इसलिए वैष्णवी शक्ति को सदा धारण करते हुए राजाओं के लिए अमित तेजस्वी विष्णु की आराधना करना परम धर्म है।

तमब्रवीद्राजपुत्र: कृष्णो मतिमतां वर:।
यदर्जुनोऽस्मज्जनक: स धर्मं कृतवानिति॥ ३७॥

तब बुद्धिमानों में श्रेष्ठ राजपुत्र कृष्ण ने उससे कहा— हमारे पिता अर्जुन ने जिनका अनुष्ठान किया, वही हमारा धर्म है।

एवं विवादे वितते शूरसेनोऽब्रवीद्वच:।
प्रमाणमृषयो ह्यत्र ब्रूयुस्ते तत्तथैव तत्॥ ३८॥

इस प्रकार विवाद बढ़ जाने पर शूरसेन ने यह वचन कहा— इस विषय में ऋषि लोग ही प्रमाण हैं। वे जो कहें वही हमें करना है।

ततस्ते राजशार्दूला: पप्रच्छुर्ब्रह्मवादिन:।
गत्वा सर्वे सुसंरब्धा: सप्तर्षीणां तदाश्रमम्॥ ३९॥

तदनन्तर उन राजश्रेष्ठों ने ब्रह्मवादियों से पूछा और सब अत्यन्त उत्साहित होकर सप्तर्षियों के आश्रम में पहुँचे।

तानब्रुवंस्ते मुनयो वसिष्ठाद्या यथार्थतः।
या यस्याभिमता पुंसः सा हि तस्यैव देवता॥४०॥

वसिष्ठ आदि मुनियों ने उनसे यथार्थतः बताया कि जिस देवता में जिसकी अभिरुचि हो, वही उसका उपास्य देव है।

किन्तु कार्यविशेषेण पूजिता चेष्टदा नृणाम्।
विशेषात्सर्वदा नायं नियमो ह्यन्यथा नृपाः॥४१॥

किन्तु कार्य विशेष से पूजित होने पर देवता मनुष्यों का इष्ट साधन करते हैं। हे नृपगण! कार्यविशेष व्यतीत हो जाने पर सब समय ऐसा हो यह नियम नहीं है।

नृपाणां दैवतं विष्णुस्तथेशश्च पुरन्दरः।
विप्राणामग्निरादित्यो ब्रह्मा चैव पिनाकधृक्॥४२॥

राजाओं के देवता विष्णु, शंकर और इन्द्र हैं। ब्राह्मणों के देवता अग्नि, सूर्य, ब्रह्मा और शंकर हैं।

देवानां दैवतं विष्णुर्दानवानां त्रिशूलधृक्।
गन्धर्वाणां तथा सोमो यक्षाणामपि कथ्यते॥४३॥

देवों के देवता विष्णु और दानवों के देवता त्रिशूलधारी (शिव) हैं। चन्द्रमा गन्धर्वों और यक्षों के भी देवता कहे जाते हैं।

विद्याधराणां वाग्देवी सिद्धानां भगवान् हरिः।
रक्षसां शंकरो रुद्रः किन्नराणाञ्च पार्वती॥४४॥

सरस्वती विद्याधरों की और भगवान् हरि सिद्धों के और शंकर रुद्र राक्षसों के देवता माने जाते हैं। पार्वती किन्नरों की देवता हैं।

ऋषीणां भगवान् ब्रह्मा महादेवस्त्रिशूलभृत्।
मान्या स्त्रीणामुमा देवी तथा विष्ण्वीशभास्कराः॥४५

ऋषियों के देवता भगवान् ब्रह्मा और त्रिशूलधारी महादेव हैं। स्त्रियों के देवता विष्णु, शिव, सूर्य तथा पार्वती देवी हैं।

गृहस्थानाञ्च सर्वे स्युर्ब्रह्मा वै ब्रह्मचारिणाम्।
वैखानसानामर्कः स्याद्यतीनां च महेश्वरः॥४६॥

गृहस्थों के सभी देवता हैं। ब्रह्मचारियों के देवता ब्रह्मा, वानप्रस्थियों के सूर्य और संन्यासियों के देवता महेश्वर हैं।

भूतानां भगवान्रुद्रः कुष्माण्डानां विनायकः।
सर्वेषां भगवान् ब्रह्मा देवदेवः प्रजापतिः॥४७॥

भूतों के देवता भगवान् रुद्र और कूष्माण्डों (एक प्रकार भूतों की जाति) के देवता विनायक हैं। देवेश्वर प्रजापति भगवान् ब्रह्मा सबके देवता हैं।

इत्येवं भगवान् ब्रह्मा स्वयं देवो ह्यभाषत।
तस्माज्जयध्वजो नूनं विष्ण्वाराधनमर्हति॥४८॥

ऐसा भगवान् ब्रह्मा ने स्वयं कहा है। इसलिए जयध्वज निश्चित रूप से विष्णु की आराधना करने के अधिकारी हैं।

किन्तु रुद्रेण तादात्म्यं बुध्वा पूज्यो हरिर्नरैः।
अन्यथा नृपतेः शत्रुं न हरिः संहरेद्यतः॥४९॥

किन्तु रुद्र के साथ विष्णु का तादात्म्य समझकर मनुष्य हरि की आराधना करे। अन्यथा राजा के शत्रु का नाश हरि नहीं करेंगे।

सम्प्रणम्याथ ते जग्मुः पुरीं परमशोभनाम्।
पालयाञ्चक्रिरे पृथ्वीञ्जित्वा सर्वान्रिपून्रणे॥५०॥

अनन्तर वे (राजागण) प्रणाम करके अपनी परम सुन्दर नगरी में चले गये और युद्ध में शत्रुओं को जीतकर पृथ्वी का पालन करने लगे।

ततः कदाचिद्विप्रेन्द्रा विदेहो नाम दानवः।
भीषणः सर्वसत्त्वानां पुरीं तेषां समाययौ॥५१॥

हे विप्रेन्द्रगण! तदनन्तर किसी समय सभी प्राणियों के लिए भीषण विदेह नामक दानव उनके नगर में आ पहुंचा।

दंष्ट्राकरालो दीप्तात्मा युगान्तदहनोपमः।
शूलमादाय सूर्याभं नादयन्वै दिशो दश॥५२॥

वह अपनी दंष्ट्रा से भयंकर, प्रदीप्त शरीर और प्रलयकालिक अग्नि के सदृश दिखाई देता था। सूर्य के समान चमकते हुए त्रिशूल को लेकर दशो दिशाओं को शब्दायमान कर रहा था।

तन्नादश्रवणान्मर्त्यास्तत्र ये निवसन्ति ते।
तत्यजुर्जीवितं त्वन्येदुद्रुवुर्भयविह्वलाः॥५३॥

वहाँ जो मनुष्य निवास कर रहे थे, वे उसके नाद को सुनने के कारण प्राणत्याग करने लगे। कुछ लोग भयविह्वल हो भागने लगे।

ततः सर्वे सुसंयत्ताः कार्त्तवीर्यात्मजास्तदा।
शूरसेनादयः पञ्च राजानस्तु महाबलाः॥५४॥

तब कृतवीर्य के पुत्र शूरसेन आदि पाँच महाबली राजा युद्ध के लिए तैयार हो गये।

पुप्लुवुर्दानवं शक्तिगिरिकूटासिमुद्गरैः।
तान् सर्वान् स हि विप्रेन्द्राः शूलेन प्रहसन्निव॥५५॥

वे शक्ति, गिरिकूट, तलवार तथा मुद्गर लेकर दानव की ओर दौड़े। हे विप्रेन्द्रो! उस दानव ने शूल से मानो परिहास करते हुए उन सबको हतप्रभ कर दिया।

युद्धाय कृतसंरम्भा विदेहं त्वभिदुद्रुवुः।
शूरोऽस्त्रं प्राहिणोद्रौद्रं शूरसेनस्तु वारुणम्॥५६॥

वे पाँचों राजा युद्ध के लिए उत्साहित होकर आक्रमण करने लगे। शूर ने रौद्र अस्त्र को और शूरसेन ने वारुण अस्त्र को छोड़ा।

प्राजापत्यं तथा कृष्णो वायव्यं धृष्ण एव च।
जयध्वजश्च कौबेरमैन्द्रमाग्नेयमेव च॥५७॥

कृष्ण ने प्रजापत्य अस्त्र को, धृष्ण ने वायव्य को और जयध्वज ने कौबेर, ऐन्द्र और आग्नेय अस्त्र को चलाया।

भञ्जयामास शूलेन तान्यस्त्राणि स दानवः।
ततः कृष्णो महावीर्यो गदामादाय भीषणाम्॥५८॥
स्पृष्टमात्रेण तरसा चिक्षेप च ननाद च।

उस दानव ने उन अस्त्रों को अपने शूल से तोड़ दिया। तदनन्तर महाशक्तिशाली कृष्ण ने अपनी भयंकर गदा उठा ली और स्पर्श करते ही उसे वेगपूर्वक फेंक दिया तथा गर्जना करने लगा।

सम्प्राप्य सा गदाऽस्योरो विदेहस्य शिलोपमम्॥५९॥
न दानवञ्चालयितुं शशाकान्तकसन्निभम्।
दुद्रुवुस्ते भयग्रस्ता दृष्ट्वा तस्यातिपौरुषम्॥६०॥

वह गदा उस विदेह की चट्टान के समान छाती को प्राप्त करके अर्थात् टकराकर भी यमराज के सदृश उस दानव को विचलित न कर सकी। उसके इस अति पौरुष को देखकर राजा लोग भयभीत होकर भाग गये।

जयध्वजस्तु मतिमान् सस्मार जगतः पतिम्।
विष्णुं जिष्णुं लोकादिमप्रमेयमनामयम्॥६१॥
त्रातारं पुरुषं पूर्वं श्रीपतिं पीतवाससम्।
ततः प्रादुरभूच्चक्रं सूर्यायुतसमप्रभम्॥६२॥

परन्तु बुद्धिमान् जयध्वज ने जगत् के पति, जयशील, लोक के आदि, अप्रमेय, अनामय, रक्षक, पूर्वपुरुष, लक्ष्मीपति, पीताम्बर विष्णु का स्मरण किया। तब दस हजार सूर्य के समान चमकने वाला सुदर्शन चक्र प्रकट हुआ।

आदेशाद्वासुदेवस्य भक्तानुग्रहणात्तदा।
जग्राह जगतां योनिं स्मृत्वा नारायणं नृपः॥६३॥

भक्तों पर अनुग्रह करने के लिए वासुदेव की आज्ञा से आये हुए उस चक्र को राजा ने जगत् के उत्पत्तिस्थान नारायण का स्मरण करने के उपरान्त ग्रहण कर लिया।

प्राहिणोद्वै विदेहाय दानवेभ्यो यथा हरिः।
सम्प्राप्य तस्य घोरस्य स्कंधदेशं सुदर्शनम्॥६४॥
पृथिव्यां पातयामास शिरोऽद्रिशिखराकृति।
तस्मिन् हते देवरिपौ शूराद्या भ्रातरो नृपाः॥६५॥

उसने विदेह दानव पर चक्र को छोड़ा जैसे विष्णु दानवों पर छोड़ते हैं। उस भयंकर दानव के स्कन्धप्रदेश को पाकर चक्र ने पहाड़ की चोटी के समान उसके सिर को भूमि पर गिरा दिया। उस देवशत्रु के मारे जाने पर राजा शूर आदि प्रसन्न हुए।

तद्धि चक्रं पुरा विष्णुस्तपसाराध्य शंकरम्।
यस्मादवाप तत्तस्मादसुराणां विनाशकम्॥६६॥

क्योंकि पूर्वकाल में विष्णु ने तप के द्वारा शंकर की आराधना करके असुरों के विनाशकारी उस चक्र को प्राप्त किया था, इसलिए वह शंकरजी से प्राप्त किया गया था।

समाययुः पुरीं रम्यां भ्रातरश्चाप्यपूजयन्।
श्रुत्वा जगाम भगवाञ्जयध्वजपराक्रमम्॥६७॥
कार्तवीर्यसुतं द्रष्टुं विश्वामित्रो महामुनिः।
तमागतमथो दृष्ट्वा राजा सम्भ्रान्तलोचनः॥६८॥

वे राजा लोग सुन्दर नगरी में पहुँचे और भाई का पूजन किया। जयध्वज का पराक्रम सुनकर महामुनि भगवान् विश्वामित्र कार्तवीर्य के पुत्र को देखने के लिए आये। उनको आया हुआ देखकर राजा की आँखे कुछ भ्रान्तियुक्त हो गईं।

समावेश्यासने रम्ये पूजयामास भावतः।
उवाच भगवन् घोरः प्रसादाद्भवतोऽसुरः॥६९॥
निपातितो मया सोऽद्य विदेहो दानवेश्वरः।
त्वद्वाक्याच्छिन्नसन्देहो विष्णुं सत्यपराक्रमम्॥७०॥
प्रपन्नः शरणं तेन प्रसादो मे कृतः शुभः।
यक्ष्यामि परमेशानं विष्णुं पद्मदलेक्षणम्॥७१॥

राजा ने श्रद्धाभाव से उन्हें रमणीय आसन पर बैठाकर पूजा की और कहा— भगवन्! आपकी कृपा से मैंने दानेश्वर विदेह नामक असुर को मार गिराया है। आपके वचन से मेरा सन्देह दूर हो गया है। मैं सत्यपराक्रमी विष्णु की शरण

में हूँ अतएव उन्होंने मुझ पर मंगलमयी कृपा की है। मैं कमलपत्र के समान नेत्र वाले परम प्रभु विष्णु का यजन करूँगा।

कथं केन विधानेन सम्पूज्यो हरिरीश्वरः।
कोऽयं नारायणो देवः किंप्रभावश्च सुव्रत॥७२॥

किस प्रकार किस विधि से ईश्वर हरि का पूजन करना चाहिए? उत्तमव्रती ये नारायणदेव कौन हैं? इनका क्या प्रभाव है?

सर्वमेतन्ममाचक्ष्व परं कौतूहलं हि मे।
जयध्वजस्य वचनं श्रुत्वा शान्तो मुनिस्ततः।
दृष्ट्वा हरौ परां भक्तिं विश्वामित्र उवाच ह॥७३॥

यह सब मुझे बता दें? मुझे बड़ा कुतूहल हो रहा है? तब जयध्वज का वचन सुनकर और विष्णु के प्रति राजा की श्रेष्ठ भक्ति को जानकर शान्तभाव वाले मुनि विश्वामित्र ने कहा।

विश्वामित्र उवाच

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां यस्मिन्सर्वं यतो जगत्॥७४॥
स विष्णुः सर्वभूतात्मा तमाश्रित्य विमुच्यते।
यमक्षरात्परतरात्परं प्राहुर्गुहाश्रयम्॥७५॥

विश्वामित्र बोले— जिनसे प्राणियों की उत्पत्ति होती है और जिनमें सम्पूर्ण जगत् लीन होता है, वे सब भूतों के आत्मारूप विष्णु हैं। उनका आश्रय लेने से मुक्ति मिलती है। उन्हें तत्त्ववेत्ता अक्षर ब्रह्म से भी पर तथा (हृदयरूप) गुहा में स्थित कहते हैं।

आनन्दं परमं व्योम स वै नारायणः स्मृतः।
नित्योदितो निर्विकल्पो नित्यानन्दो निरञ्जनः॥७६॥
चतुर्व्यूहधरो विष्णुरव्यूहः प्रोच्यते स्वयम्।
परमात्मा परन्धाम परं व्योम परं पदम्॥७७॥

उन्हें परमानन्दमय एवं व्योमस्वरूप भी कहते हैं। वे ही नारायण कहे गये हैं। वे नित्य प्रकटरूप वाले, निर्विकल्प, नित्य आनन्दरूप, निरञ्जन, चतुर्व्यूहधारी होने पर भी जो स्वयं अव्यूह कहे जाते हैं। वे विष्णु परमात्मा, परम धाम, परमाकाशमय तथा परम पद हैं।

त्रिपादमक्षरं ब्रह्म तमाहुर्ब्रह्मवादिनः।
स वासुदेवो विश्वात्मा योगात्मा पुरुषोत्तमः॥७८॥

ब्रह्मवादी ऋषि उनको त्रिपाद या तीन अंश वाला, अक्षर ब्रह्म कहते हैं। वे विश्वात्मा, योगात्मा, पुरुषोत्तम वासुदेव हैं।

यस्यांशसम्भवो ब्रह्मा रुद्रोऽपि परमेश्वरः।
स्ववर्णाश्रमधर्मेण पुंसां यः पुरुषोत्तमः॥७९॥
एतावदुक्त्वा भगवान्विश्वामित्रो महातपाः॥८०॥
शूराद्यैः पूजितो विप्रो जगामाथ स्वमाश्रमम्।

जिनके अंश से ब्रह्मा तथा परमेश्वर रुद्र भी उत्पन्न हुए हैं। अपने वर्णाश्रमधर्म के अनुसार हर कोई मनुष्य कामनारहित व्रतभाव से उन पुरुषोत्तम की आराधना करे। इतना कहकर महातपस्वी भगवान् विश्वामित्र शूर आदि राजाओं से पूजित होकर अपने आश्रम को चले गये।

अथ शूरादयो देवमयजन्त महेश्वरम्॥८१॥
यज्ञेन यज्ञगम्यं तं निष्कामा रुद्रमव्ययम्।
तान्वसिष्ठस्तु भगवान्याजयामास धर्मवित्॥८२॥

अनन्तर शूर आदि राजा लोग यज्ञ द्वारा प्राप्त, अविनाशी, रुद्र, महेश्वर की यज्ञ द्वारा आराधना करने लगे। धर्मवेत्ता भगवान् वसिष्ठ ने उन लोगों को यज्ञ कराया।

गौतमोऽगस्तिरत्रिश्च सर्वे रुद्रपरायणाः।
विश्वामित्रस्तु भगवाञ्जयध्वजमरिन्दमम्॥८३॥
याजयामास भूतादिमादिदेवं जनार्दनम्।
तस्य यज्ञे महायोगी साक्षाद्देवः स्वयं हरिः॥८४॥
आविरासीत्स भगवानदद्भुतमिवाभवत्॥८५॥

उनके यज्ञ कराने वाले ये मुनि भी थे— गौतम, अगस्ति और अत्रि। ये सब रुद्रपरायण थे। भगवान् विश्वामित्र ने शत्रुदमनकारी जयध्वज को यज्ञ कराया, जिसमें भूतों के आदि तथा आदिदेव जनार्दन की यजन कराया। उसके यज्ञ में महायोगी, साक्षात् देव, स्वयं भगवान् हरि प्रकट हुए। यह अद्भुत बात हुई।

जयध्वजोऽपि तं विष्णुं रुद्रस्य परमां तनुम्।
इत्येवं सर्वदा बुद्ध्वा यत्नेनायजदच्युतम्॥८६॥

जयध्वज ने भी उन विष्णु को रुद्र का उत्तम शरीर मानकर यत्नपूर्वक अच्युत का यज्ञ द्वारा पूजन किया।

य इमं शृणुयान्नित्यं जयध्वजपराक्रमम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति॥८७॥

जो नित्य इस जयध्वज-पराक्रमरूप इस अध्याय को सुनता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक को प्राप्त करता है।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे सोमवंशानुकीर्तनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥२२॥

त्रयोविंशोऽध्याय:

(जयध्वजवंशानुकीर्तन)

सूत उवाच

जयध्वजस्य पुत्रोऽभूत्तालजङ्घ इति स्मृत:।
शतं पुत्रास्तु तस्यासंस्तालजङ्घा इति स्मृता:॥ १॥

महर्षि सूत जी ने कहा था— जयध्वज राजा का एक पुत्र था, जो तालजङ्घ नाम से प्रख्यात हुआ। उसके सौ पुत्र हुए, वे भी तालजङ्घ नाम से ही कहे गये।

तेषां ज्येष्ठो महावीर्यो वीतिहोत्रोऽभवन्नृप:।
वृषप्रभृतयश्चान्ये यादवा: पुण्यकर्मिण:॥ २॥

उन सबमें जो ज्येष्ठ पुत्र था, वह महावीर्य वीतिहोत्र नामक नृप हुआ। अन्य वृषप्रभृति यादव बहुत ही पुण्य कर्मों के करने वाले थे।

वृषो वंशकरस्तेषां तस्य पुत्रोऽभवन्मधु:।
मधो: पुत्रशतं त्वासीद्वृषणस्तस्य वंशभाक्॥ ३॥

उनके वंश का करने वाला वृष नामक पुत्र था। उसका पुत्र मधु हुआ था। मधु के भी सौ पुत्र हुए थे। उनके वंश को चलाने वाला वृषण था।

वीतिहोत्रसुतश्चापि विश्रुतोऽनन्त इत्यत:।
दुर्जयस्तस्य पुत्रोऽभूत्सर्वशास्त्रविशारद:॥ ४॥

वीतिहोत्र का पुत्र भी अनन्त नाम से प्रसिद्ध हुआ था। उसका पुत्र दुर्जेय था जो सभी शास्त्रों का ज्ञाता था।

तस्य भार्या रूपवती गुणै: सर्वैरलंकृता।
पतिव्रतासीत्पतिना स्वधर्मपरिपालिका॥ ५॥

उसकी भार्या परम रूपवती और सभी गुणों से अलंकृत थी। वह पूर्ण पतिव्रत धर्म का पालन करने वाली तथा पति के द्वारा अपने धर्म की परिपालिका थी।

स कदाचिन्महाराज: कालिन्दीतीरसंस्थिताम्॥
अपश्यदुर्वशीं देवीं गायन्तीं मधुरश्रुतिम्॥ ६॥

किसी समय महाराज ने कालिन्दी के तट पर खड़ी हुई तथा मधुर स्वर से संगीत का गायन करती हुई देवी उर्वशी को देखा था।

तत: कामाहतमनास्तत्समीपमुपेत्य वै।
प्रोवाच सुचिरं कालं देवि रन्तुं मयार्हसि॥ ७॥

उसे देखते ही वह राजा काम से आहत मन वाला हो गया और फिर उसके समीप पहुँच कर राजा ने कहा था— हे देवि! तुम मेरे साथ चिरकाल तक रमण करने के योग्य हो।

सा देवी नृपतिं दृष्ट्वा रूपलावण्यसंयुतम्।
रेमे तेन चिरं कालं कामदेवमिवापरम्॥ ८॥

उस देवी उर्वशी ने भी रूप-लावण्य से संयुत दूसरे कामदेव के समान उस नृप को देखकर उसके साथ चिरकाल पर्यन्त रमण किया था।

कालात्प्रबुद्धो राजा तामुर्वशीं प्राह शोभनाम्।
गमिष्यामि पुरीं रम्यां हसन्तीत्यब्रवीद्वच:॥ ९॥

बहुत समय बाद जब उसे ज्ञान हुआ, तो उस राजा ने परम सुन्दरी उर्वशी से कहा— अब मैं अपनी रम्य नगरी में जाऊंगा। तब हँसते हुए उर्वशी ने यह वाक्य कहा—

न ह्येतेनोपभोगेन भवतो राजसुन्दर।
प्रीति: सञ्जायते मह्यं स्थातव्यं वत्सरं पुन:॥ १०॥

हे सुन्दर राजा! आपके साथ इतने काल उपभोग करने से मुझे प्रसन्नता नहीं हुई है। इसलिए एक वर्ष और आपको यहाँ ठहरना चाहिए।

तामब्रवीत्स मतिमान् गत्वा शीघ्रतरं पुरीम्।
आगमिष्यामि भूयोऽत्र तन्मेऽनुज्ञातुमर्हसि॥ ११॥

उस समय बुद्धिमान् राजा ने उससे कहा- इस समय मैं शीघ्र ही अपनी नगरी में जाकर पुन: यहाँ पर आ जाऊंगा। अतएव तुम मुझे जाने की अनुमति देने योग्य हो।

तामब्रवीत्सा सुभगा तथा कुरु विशाम्पते।
नान्याप्सरसा तावद्रन्तव्यं भवता पुन:॥ १२॥

उस सुभगा ने राजा से कहा— हे प्रजापते! आप वैसा ही करें। किन्तु आपको फिर किसी अन्य अप्सरा के साथ रमण नहीं करना चाहिए।

ओमित्युक्त्वा ययौ तूर्णं पुरीं परमशोभनाम्।
गत्वा पतिव्रतां पत्नीं दृष्ट्वा भीतोऽभवन्नृप:॥ १३॥

बहुत अच्छा, इतना कहकर वह शीघ्र ही अपनी परम रमणीय नगरी में जा पहुँचा। परन्तु वहाँ जाकर अपनी पतिव्रता पत्नी को देखते ही वह राजा भयभीत हो गया।

संप्रेक्ष्य सा गुणवती भार्या तस्य पतिव्रता।
भीतं प्रसन्नया प्राह वाचा पीनपयोधरा॥ १४॥

उस राजा को ऐसा भयभीत देखकर उसकी गुणवती, पतिव्रता एवं उन्नत स्तनों वाली सुन्दर पत्नी ने प्रसन्नता पूर्ण वाणी से कहा।

स्वामिन् किमत्र भवतो भीतिरद्य प्रवर्तते।
तद्ब्रूहि मे यथातत्त्वं न राज्ञां कार्त्यवेत्त्विदम्॥ १५॥

हे स्वामिन्! आज यहाँ पर आपको यह कैसा भय हो रहा है? उसे आप मुझे ठीक-ठीक बताओ। परन्तु राजा लज्जावश उसे कुछ भी न बता तथातत्त्व नहीं कह रहा था।

स तस्या वाक्यमाकर्ण्य लज्जावनतमानसः।
नोवाच किञ्चिन्नृपतिर्ज्ञानदृष्ट्या विवेद सा॥ १६॥

उस पत्नी के वचन को सुनकर वह राजा लज्जा से अवनत मुख हो गया था और उसने कुछ भी उत्तर नहीं दिया फिर भी उस (पतिव्रता पत्नी) ने ज्ञान-दृष्टि से सब कुछ जान लिया था।

न भेतव्यं त्वया राजन् कार्यं पापविशोधनम्।
भीते त्वयि महाराज राष्ट्रं ते नाशमेष्यति॥ १७॥

फिर उस पत्नी ने कहा— हे राजन्! आपको कुछ भी भय नहीं करना चाहिए जो भी कुछ पापकर्म आपसे बन गया है उसका शोधन कर डालना ही उचित है। हे महाराज! आपके इस तरह भयभीत रहने पर यह आपका राष्ट्र ही नाश को प्राप्त हो जायगा।

ततः स राजा द्युतिमान्निर्गत्य तु पुरात्ततः।
गत्वा कण्वाश्रमं पुण्यं दृष्ट्वा तत्र महामुनिम्॥ १८॥

इसके उपरान्त वह द्युतिमान् अपने पुर से निकलकर परम पुण्यमय कण्व ऋषि के आश्रम चला गया था और वहाँ पर महामुनि का दर्शन प्राप्त किया था।

निशम्य कण्ववदनात्प्रायश्चित्तविधिं शुभम्।
जगाम हिमवत्पृष्ठं समुद्दिष्टं महाबलः॥ १९॥

महर्षि कण्व के मुख से परम शुभ प्रायश्चित्त की विधिका श्रवण करके वह महान् बलवान् समुदिष्ट हिमाचल के पृष्ठ पर चला गया था।

सोऽपश्यत्पथि राजेन्द्रो गन्धर्ववरमुत्तमम्।
भ्राजमानं श्रिया व्योम्नि भूषितं दिव्यमालया॥ २०॥

उस राजेन्द्र ने मार्ग में एक उत्तम गन्धर्व श्रेष्ठ को देखा था जो व्योम में श्री से परम भ्राजमान था और एक दिव्य माला से विभूषित हो रहा था।

वीक्ष्य मालाममित्रघ्नः सस्माराप्सरसं वराम्।
उर्वशीं तां मनश्चक्रे तस्या एवेयमर्हति॥ २१॥

उस शत्रुओं के नाश करे वाले नृप ने उस माला को देख करके अप्सराओं में श्रेष्ठ उस उर्वशी का स्मरण किया था यह माला तो उसकी या उसके ही योग्य है ऐसा मन में विचार किया था।

सोऽतीव कामुको राजा गन्धर्वेणाथ तेन हि।
चकार सुमहद्युद्धं मालामादातुमुद्यतः॥ २२॥

वह राजा अत्यन्त ही कामुक था और उस राजा ने उस गन्धर्व से महान् युद्ध किया था और उस माला को लेने के लिये समुद्यत हो गया था।

विजित्य समरे मालां गृहीत्वा दुर्जयो द्विजाः।
जगाम तामप्सरसं कालिन्दीं द्रष्टुमादरात्॥ २३॥

हे द्विजगण! समर में उस गन्धर्व को पराजित करके उस दुर्जय ने उस माला को ग्रहण कर लिया था और फिर कालिन्दी के तट पर उसी अप्सरा को देखने के लिए आदर से पहुँच गया था।

अदृष्ट्वाप्सरसं तत्र कामबाणाभिपीडितः।
बभ्राम सकलां पृथ्वीं सप्तद्वीपसमन्विताम्॥ २४॥

वहाँ पर उस अप्सरा को न देखकर वह काम के बाणों से बहुत पीड़ित हुआ था और फिर सातों द्वीपों से समन्वित इस सम्पूर्ण भूमि पर भ्रमण करने लगा था।

आक्रम्य हिमवत्पार्श्वमुर्वशीदर्शनोत्सुकः।
जगाम शैलप्रवरं हेमकूटमिति श्रुतम्॥ २५॥

उर्वशी के दर्शन करने को परम उत्सुक होकर उसने हिमालय के पार्श्व भाग का आक्रमण करके शैलों में प्रवर हेमकूट पर वह चला गया— ऐसा सुना है।

तत्र तत्राप्सरोवर्या दृष्ट्वा तं सिंहविक्रमम्।
कामं सन्दधिरे घोरं भूषितं चित्रमालया॥ २६॥

वहाँ-वहाँ पर रहने वाली श्रेष्ठ अप्सराएँ उस सिंह के समान विक्रम वाले राजा को देखकर के चित्रमाला से भूषित घोररूप कामदेव ही मानने लगीं थीं।

संस्मरन्नुर्वशीवाक्यं
तस्यां संसक्तमानसः।
न पश्यति स्म ताः सर्वा
गिरेः शृङ्गाणि जग्मिवान्॥ २७॥

उर्वशी के वाक्य का स्मरण करते हुए उसी में अच्छी प्रकार आसक्त मन वाले उस राजा ने उन सबको नहीं देखा और वह पर्वत को शिखरों पर चला गया था।

तत्राप्यप्सरसं दिव्यमदृष्ट्वा कामपीडितः।
देवलोकं महामेरुं ययौ देवपराक्रमः॥ २८॥

वहाँ पर भी उस दिव्य अप्सरा को न देखकर काम से पीड़ित वह देवतुल्य पराक्रमी राजा महामेरु पर स्थित देवलोक पर चला गया।

स तत्र मानसं नाम सरस्त्रैलोक्यविश्रुतम्।
भेजे शृङ्गमतिक्रम्य स्वबाहुबलभावितः॥ २९॥
तस्य तीरेषु सुभगाञ्चरन्तीमतिलालसाम्।
दृष्टवाननवद्याङ्गीं तस्यै मालान्ददौ पुनः॥ ३०॥

अपने बाहुबल से पूजित वह राजा उस पर्वत के एक शिखर को पारकर तीनों लोकों में प्रसिद्ध मानस नामक सरोवर पर गया। वहाँ उसके तट पर विचरण करती हुई अति भाग्यशाली, काम-लालसा से युक्त, और निर्दोष अङ्गों वाली उस उर्वशी को देखा था। तब राजा ने उसी को वह दिव्य माला दे दी।

स मालया तदा देवीं भूषितां प्रेक्ष्य मोहितः।
रेमे कृतार्थमात्मानं जानानः सुचिरन्तया॥ ३१॥

उस समय दिव्य माला से भूषित उस देवी अप्सरा को देखकर वह मोहित हो गया और अपने आपको परम कृतार्थ मानता हुआ उसी के साथ बहुत समय तक रमण किया।

अथोर्वशी राजवर्यं रतान्ते वाक्यमब्रवीत्।
किं कृतं भवता वीर पुरीं गत्वा तदा नृप॥ ३२॥

इसके अनन्तर रति-क्रिया समाप्त होने पर उस उर्वशी ने उस श्रेष्ठ राजा से यह वाक्य कहा था— हे वीर! आपने अपनी नगरी में जाकर क्या किया था।

स तस्यै सर्वमाचष्ट पत्न्या यत्समुदीरितम्।
कण्वस्य दर्शनञ्चैव मालापहरणं तथा॥ ३३॥
श्रुत्वैतद्व्याहृतं तेन गच्छेत्याह हितैषिणी।
शापं दास्यति ते कण्वो ममापि भवतः प्रिया॥ ३४॥

उसके ऐसा कहने पर जो भी कुछ उसकी पत्नी ने कहा था, राजा ने वह सब कह दिया। (मार्ग में) कण्व ऋषि का दर्शन और दिव्य माला के अपहरण की बात भी कही। उस राजा के द्वारा कही हुई सब बातें सुनकर उस हितैषिणी उर्वशी ने कहा— तुम जाओ। क्योंकि यह कण्व ऋषि आपको और आपकी पत्नी मुझे भी शाप दे देंगे।

तयासकृन्महाराजः प्रोक्तोऽपि मदमोहितः।
न च तत्कृतवान्वाक्यं तत्र संन्यस्तमानसः॥ ३५॥

इस तरह उसके बार-बार कहने पर भी मदमोहित महाराज ने उसके वचन को नहीं किया क्योंकि उसका मन उसीमें ही संसक्त था।

तदोर्वशी कामरूपा राज्ञे स्वं रूपमुत्कटम्।
सुरोमशं पिङ्गलाक्षं दर्शयामास सर्वदा॥ ३६॥

तब उर्वशी ने अपनी इच्छानुसार रूप धारण करने वाली होने से, राजा को अपना भयावह रूप दिखाया था जो सर्वदा अतिशय रोमों से युक्त तथा पिङ्गल नेत्रों वाला था।

तस्यां विरक्तचेतस्कः स्मृत्वा कण्वाभिभाषितम्।
धिङ्मामिति विनिश्चित्य तपः कर्तुं समारभत्॥ ३७॥

उस समय (विकराल रूप को देखकर) राजा उसमें विरक्त चित्त वाला हो गया था और कण्व के (प्रायश्चित्तरूप) वचन का स्मरण करके "मुझको धिक्कार है" ऐसा निश्चय करके तप करना आरम्भ कर दिया।

संवत्सरद्वादशकं कन्दमूलफलाशनः।
भूय एव द्वादशकं वायुभक्षोऽभवन्नृपः॥ ३८॥

उसने बारह वर्ष पर्यन्त कन्द, मूल और फलों का ही आहार ग्रहण किया और फिर अन्य बारह वर्ष तक केवल वायु का ही भक्षण करके रहा था।

गत्वा कण्वाश्रमं भीत्या तस्मै सर्वं न्यवेदयत्।
वासमप्सरसा भूयस्तपोयोगमनुत्तमम्॥ ३९॥

इसके उपरान्त राजा ने कण्व के आश्रम में जाकर भयपूर्वक ऋषि को अप्सरा के साथ सहवास करना और फिर उत्तम तपोयोग करना आदि संपूर्ण वृत्तान्त बता दिया।

वीक्ष्य तं राजशार्दूलं प्रसन्नो भगवानृषिः।
कर्तुकामो हि निर्बीजं तस्याघमिदमब्रवीत्॥ ४०॥

उस श्रेष्ठ राजा को देखकर भगवान् ऋषि परम प्रसन्न हुए। फिर उसके पाप को निर्बीज करने की इच्छा से ऋषि ने उस राजा से यह वचन कहा।

कण्व उवाच

गच्छ वाराणसीं दिव्यामीश्वराध्युषितां पुरीम्।
आस्ते मोचयितुं लोकं तत्र देवो महेश्वरः॥ ४१॥

कण्व ने कहा— हे राजन्! अब तुम वाराणसी जाओ, जो नगरी परम दिव्य और ईश्वर से अध्युषित है। वहाँ पर देव महेश्वर सम्पूर्ण लोक को पापों से मुक्त कराने के लिए ही वहाँ वास करते हैं।

स्नात्वा सन्तर्प्य विधिवद्गङ्गायां देवताः पितॄन्।
दृष्ट्वा विश्वेश्वरं लिङ्गं किल्बिषान्मोक्ष्यसे क्षणात्॥ ४२॥

वहाँ गङ्गा में विधिपूर्वक स्नान करके और देवगण तथा पितरों को तर्पण करके विश्वेश्वर शिव के लिङ्ग का दर्शन

करना। ऐसा करने से क्षणभर में ही पापों से मुक्त हो जाओगे।

प्रणम्य शिरसा कण्वमनुज्ञाप्य च दुर्जय:।
वाराणस्यां हरं दृष्ट्वा पापान्मुक्तोऽभवत्तत:॥ ४३॥

तब वह दुर्जय सिर से भगवान् कण्व ऋषि को प्रणाम करके उनसे अनुमति प्राप्त कर वाराणसी गया। वहाँ भगवान् हर के दर्शन करके सब पापों से मुक्त भी हो गया था।

जगाम स्वपुरीं शुभ्रां पालयामास मेदिनीम्।
याजयामास तं कण्वो याचितो घृणया मुनि:॥ ४४॥

इसके बाद राजा अपनी परम उज्ज्वल नगरी में चला गया था और पृथ्वी का पालन करने लगा था। उस कण्व मुनि ने राजा के द्वारा याचना करने पर कृपा करके यज्ञ करवाया था।

तस्य पुत्रोऽथ मतिमान् सुप्रतीक इति स्मृत:।
बभूव जातमात्रं तं राजानमुपतस्थिरे॥ ४५॥
उर्वश्याञ्च महावीर्या: सप्त देवसुतोपमा:।
कन्या जगृहिरे सर्वा गन्धर्व्यो दयिता द्विजा:॥ ४६॥

उस राजा का सुप्रतीक नामक एक बुद्धिमान् पुत्र हुआ था। उसके उत्पन्न होते ही उर्वशी में भी देव-पुत्रों के समान महान् शक्तिसम्पन्न सात पुत्र हुए थे। वे सब भी वहाँ उपस्थित हो गये। हे द्विजगण! उन सबने गन्धर्व की प्यारी कन्याओं को (पत्नीरूप में) ग्रहण किया था।

एष व: कथित: सम्यक् सहस्रजित उत्तम:।
वंश: पापहरो नृणां क्रोष्टोरपि निबोधत॥ ४७॥

यह आप सबको सहस्रजित के परमोत्तम वंश का वर्णन किया है, जो मनुष्यों के पापों का हरण करने वाला है। अब (सहस्रजित् के छोटे भाई) क्रोष्टु के वंश को भी मुझ से समझ लो।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे राजवंशानुकीर्त्तने त्रयोविंशोऽध्याय:॥ २३॥

चतुर्विंशोऽध्याय:

(यदुवंशकीर्ति का वर्णन)

सूत उवाच

क्रोष्टोरेकोऽभवत्पुत्रो वृजिनीवानिति श्रुत:।
तस्य पुत्रोऽभवत्ख्याति: कुशिकस्तत्सुतोऽभवत्॥ १॥

सूत बोले— क्रोष्टु का वृजिनीवान् नाम से प्रसिद्ध एक पुत्र हुआ। उसका पुत्र ख्याति हुआ और उसका भी पुत्र कुशिक नाम वाला हुआ।

कुशिकादभवत्पुत्रो नाम्ना चित्ररथो बली।
अथ चैत्ररथिर्लोके शशबिन्दुरिति स्मृत:॥ २॥

कुशिक का पुत्र बलवान् चित्ररथ हुआ। चित्ररथ का पुत्र लोक में शशबिन्दु नाम से विख्यात हुआ।

तस्य पुत्र: पृथुयशा राजाभूद्धर्मतत्पर:।
पृथुकर्मा च तत्पुत्रस्तस्मात्पृथुजयोऽभवत्॥ ३॥

उसका पुत्र राजा पृथुयशा हुआ, जो धर्मपरायण था। उसके पुत्र का नाम पृथुकर्मा था। पृथुकर्मा का पुत्र पृथुजय हुआ।

पृथुकीर्तिरभूत्तस्मात्पृथुदानस्ततोऽभवत्।
पृथुश्रवास्तस्य पुत्रस्तस्यासीत्पृथुसत्तम:॥ ४॥

उससे पृथुकीर्ति हुआ और उससे पृथुदान। पृथुदान का पुत्र पृथुश्रवा और उससे पृथुसत्तम का जन्म हुआ।

उशनास्तस्य पुत्रोऽभूच्छतेषुस्तत्सुतोऽभवत्।
तस्माद्वै रुक्मकवच: परावृत्तश्च तत्सुत:॥ ५॥

पृथुसत्तम का पुत्र उशना और उसका पुत्र शतेषु हुआ। उससे रुक्मकवच का जन्म हुआ और उसका पुत्र परावृत्त हुआ।

परावृत्तसुतो जज्ञे यामघो लोकविश्रुत:।
तस्माद्विदर्भ: सञ्जज्ञे विदर्भात्क्रथकौशिकौ॥ ६॥

परावृत्त का पुत्र यामघ संसार में प्रसिद्ध हुआ। उससे विदर्भ नामक पुत्र का जन्म हुआ और विदर्भ से क्रथ और कौशिक नाम के दो पुत्र हुए।

लोमपादस्तृतीयस्तु बभ्रुस्तस्यात्मजो नृप:।
धृतिस्तस्याभवत्पुत्र: श्वेतस्तस्याप्यभूत्सुत:॥ ७॥

उसका तीसरा पुत्र लोमपाद था। उसका आत्मज राजा बभ्रु हुआ। उसका पुत्र धृति और धृति का पुत्र श्वेत हुआ।

श्वेतस्य पुत्रो बलवान्नाम्ना विश्वसहः स्मृतः।
तस्य पुत्रो महावीर्यः प्रभावात्कौशिकः स्मृतः॥८॥

श्वेत का पुत्र बलवान् विश्वसह नाम से प्रसिद्ध हुआ था। उसका पुत्र महावीर्य था, जो अपने प्रभाव से कौशिक नाम से प्रसिद्ध हुआ।

अभूत्तस्य सुतो धीमान् सुमन्तश्च ततोऽनलः।
अनलस्य सुतः श्वेनिः श्वेनेरन्येऽभवन्सुताः॥९॥

उसका पुत्र धीमान् सुमन्त हुआ और उससे अनल की उत्पत्ति हुई। अनल का पुत्र श्वेनि था और उससे अनेक पुत्रों ने जन्म लिया।

तेषां प्रधानो द्युतिमान्वपुष्मांस्तत्सुतोऽभवत्।
वपुष्मतो बृहन्मेधाः श्रीदेवस्तत्सुतोऽभवत्॥१०॥

उनमें प्रधान था द्युतिमान् हुआ। द्युतिमान् का पुत्र वपुष्मान् हुआ। वपुष्मान् का पुत्र बृहन्मेधा और उसका पुत्र श्रीदेव हुआ।

तस्य वीतरथो विप्रा रुद्रभक्तो महाबलः।
क्रथस्याप्यभवत्कुन्तिर्वृष्णिस्तस्याभवत्सुतः॥११॥

विप्रवृन्द! श्रीदेव का पुत्र शिवभक्त एवं महाबली वीतरथ हुआ। क्रथ का पुत्र कुन्ति और कुन्ति से वृष्णि उत्पन्न हुआ।

तस्मान्नवरथो नाम बभूव सुमहाबलः।
कदाचिन्मृगयां यातो दृष्ट्वा राक्षसमूर्जितम्॥१२॥

उससे अत्यन्त महाबली पुत्र उत्पन्न हुआ। किसी समय वह शिकार खेलने गया तो एक बड़ा तेजस्वी राक्षस उसे दिखाई पड़ा।

दुद्राव महताविष्टो भयेन मुनिपुङ्गवाः।
अन्वधावत संक्रुद्धो राक्षसस्तं महाबलः॥१३॥

मुनिश्रेष्ठों! महान् भय से आविष्ट हो राजा भागने लगा। अत्यन्त क्रुध महाबली राक्षस ने उसका पीछा किया।

दुर्योधनोऽग्निसंकाशः शूलासक्तमहाकरः।
राजा नवरथो भीतो नातिदूरादवस्थितम्॥१४॥
अपश्यत्परमं स्थानं सरस्वत्याः सुगोपितम्।
स तद्वेगेन महता सम्प्राप्य मतिमान्नृपः॥१५॥

वह दुर्योधन राक्षस अग्नि के समान देदीप्यमान और उसके हाथ में त्रिशूल था। उसे देखकर भय को प्राप्त राजा नवरथ ने कुछ ही दूर पर स्थित सरस्वती देवी का परम सुरक्षित एक स्थान (मन्दिर) देखा। वह बुद्धिमान् राजा बड़े वेग के साथ वहाँ पहुँच गया।

ववन्दे शिरसा दृष्ट्वा साक्षाद्देवीं सरस्वतीम्।
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिर्बद्धाञ्जलिरमित्रजित्॥१६॥

वहाँ साक्षात् सरस्वती देवी का दर्शन करके उसने सिर झुकाकर प्रणाम किया। शत्रुजयी उस राजा ने हाथ जोड़कर इष्ट वाक्यों से स्तुति की।

पपात दण्डवद्भूमौ त्वयाहं शरणङ्गतः।
नमस्यामि महादेवीं साक्षाद्देवीं सरस्वतीम्॥१७॥

वह भूमि पर दण्डवत् गिर गया और बोला— मैं आपका शरणागत हूँ। मैं महादेवी साक्षात् सरस्वती देवी को नमस्कार करता हूँ।

वाग्देवतामनाद्यन्तामीश्वरीं ब्रह्मचारिणीम्।
नमस्ये जगतां योनिं योगिनीं परमां कलाम्॥१८॥

वाग्देवतारूप, आदि और अन्त से रहित, ईश्वरी, ब्रह्मचारिणी, संसार का उद्भव-स्थान, योगिनी तथा परम कलारूप आपको मैं नमस्कार करता हूँ।

हिरण्यगर्भसम्भूतां त्रिनेत्रां चन्द्रशेखराम्।
नमस्ये परमानन्दां चित्कलां ब्रह्मरूपिणीम्॥१९॥

हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) से उत्पन्न, तीन आँखो वाली, मौलि पर चन्द्रमा को धारण करने वाली, परमानन्दस्वरूप, चित्स्वरूप, कलास्वरूप तथा ब्रह्मरूपिणी को नमस्कार करता हूँ।

पाहि मां परमेशानि भीतं शरणमागतम्।
एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धो राजानं राक्षसेश्वरः॥२०॥
हन्तुं समागतः स्थानं यत्र देवी सरस्वती।
समुद्यम्य तदा शूलं प्रविष्टो बलगर्वितः॥२१॥

हे परमेश्वरी! भयभीत एवं शरणागत हुए मेरी आप रक्षा करें। इसी बीच क्रुध हुआ राक्षसराज राजा को मारने के लिए उस स्थान में जा पहुँचा, जहाँ देवी सरस्वती थीं। वह राक्षस बल से गर्वित होकर हाथ में त्रिशूल उठाकर प्रविष्ट हुआ था।

त्रिलोकमातुर्हि स्थानं शशाङ्कादित्यसन्निभम्।
तदन्तरे महद्भूतं युगान्तादित्यसन्निभम्॥२२॥

त्रैलोक्य की माता सरस्वती का वह स्थान चन्द्रमा और सूर्य के समान था। इतने में प्रलयकालिक सूर्य के समान एक पुरुष वहाँ उत्पन्न हुआ।

शूलेनोरसि निर्भिद्य पातयामास तं भुवि।
गच्छेत्याह महाराज न स्थातव्यं त्वया पुनः॥ २३॥

उसने राक्षस की छाती पर त्रिशूल से वार करके उसे भूमि पर गिरा दिया और राजा से कहा— हे महाराज! जाओ। अब यहाँ आपको रुकना नहीं चाहिए।

इदानीं निर्भयस्तूर्णं स्थानेऽस्मिन्राक्षसो हतः।
ततः प्रणम्य हृष्टात्मा राजा नवरथः परम्॥ २४॥
पुरीं जगाम विप्रेन्द्राः पुरन्दरपुरोपमाम्।
स्थापयामास देवेशीं तत्र भक्तिसमन्वितः॥ २५॥

अब तुम शीघ्र निर्भय हो जाओ। इस स्थान में राक्षस मारा गया है। हे विप्रेन्द्रो! तदनन्तर राजा नवरथ अत्यन्त प्रसन्न होकर प्रणाम करके अपनी इन्द्रपुरी के समान सुशोभित श्रेष्ठ नगरी में चला गया। वहाँ उसने देवेश्वरी सरस्वती की भक्तिभावपूर्वक स्थापना की।

ईजे च विविधैर्यज्ञैर्होमैर्देवीं सरस्वतीम्।
तस्य चासीद्दशरथः पुत्रः परमधार्मिकः॥ २६॥
देव्या भक्तो महातेजाः शकुनिस्तस्य चात्मजः।
तस्मात्करम्भः सम्भूतो देवरातोऽभवत्ततः॥ २७॥

विविध यज्ञों और हवनों से देवी सरस्वती की आराधना की। उस नवरथ का पुत्र परम धार्मिक दशरथ हुआ। वह भी देवी का भक्त और महातेजस्वी था। उसका पुत्र शकुनि हुआ। उससे करम्भ उत्पन्न हुआ और उससे देवरात हुआ।

ईजे स चाश्वमेधेन देवक्षत्रश्च तत्सुतः।
मधुस्तस्य तु दायादस्तस्मात्कुरुरजायत॥ २८॥

उस देवरात ने अश्वमेध यज्ञ किया और उसका पुत्र देवक्षत्र हुआ। देवक्षत्र का पुत्र मधु हुआ और उसका पुत्र कुरु उत्पन्न हुआ था।

पुत्रद्वयमभूत्तस्य सुत्रामा चानुरेव च।
अनोस्तु प्रियगोत्रोऽभूदंशुस्तस्य च रिक्थभाक्॥ २९॥

कुरु के दो पुत्र हुए थे— सुमात्रा और अनु। अनु का पुत्र प्रियगोत्र हुआ और उसका पुत्र अंशु।

अथांशोरन्धको नाम विष्णुभक्तः प्रतापवान्।
महात्मा दाननिरतो धनुर्वेदविदां वरः॥ ३०॥

अंशु का पुत्र विष्णुभक्त और प्रतापी अन्धक हुआ। वह महात्मा, दान में निरत तथा धनुर्वेद वेत्ताओं में श्रेष्ठ था।

स नारदस्य वचनाद्वासुदेवार्चने रतः।
शास्त्रं प्रवर्तयामास कुण्डगोलादिभिः श्रुतम्॥ ३१॥

वह नारद के वचन से वासुदेव की अर्चना में तत्पर रहता था। उसने कुण्ड और गोल[1] आदि वर्ण-संकरों द्वारा स्वीकृत शास्त्रों को आगे प्रवर्तित किया।

तस्य नाम्ना तु विख्यातं सात्वतानाञ्च शोभनम्।
प्रवर्त्तितं महच्छास्त्रं कुण्डादीनां हितावहम्॥ ३२॥

उसके नाम से प्रसिद्ध वह महान् शास्त्र सात्वतों के लिए सुन्दर और कुण्ड आदि लोगों के लिए कल्याणकारक होकर प्रचलित हुआ।

सात्वतस्तस्य पुत्रोऽभूत्सर्वशास्त्रविशारदः।
पुण्यश्लोको महाराजस्तेन वै तत्प्रवर्त्तितम्॥ ३३॥

अन्धक का पुत्र सात्वत सकल-शास्त्रों में पारंगत था। पवित्र-कीर्ति वाले उस महाराज ने उस शास्त्र को प्रवर्तित किया था।

सात्वतान्सत्त्वसम्पन्नान्कौशल्या सुषुवे सुतान्।
अन्धकं वै महाभोजं वृष्णिं देवावृधं नृपम्॥ ३४॥

(उसी की पत्नी) कौशल्या ने सात्वत नाम वाले शक्तिसम्पन्न पुत्रों को उत्पन्न किया। जिनके नाम थे- अन्धक, महाभोज, वृष्णि और राजा देवावृध।

ज्येष्ठञ्च भजमानाख्यं धनुर्वेदविदां वरम्।
तेषां देवावृधो राजा चचार परमं तपः॥ ३५॥

इन सबमें ज्येष्ठ था भजमान, जो धनुर्वेद के ज्ञाताओं में श्रेष्ठ था। इन भाइयों में राजा देवावृध ने परम तप किया था।

पुत्रः सर्वगुणोपेतो मम भूयादिति प्रभुः।
तस्य बभ्रुरिति ख्यातः पुण्यश्लोकोऽभवन्नृपः॥ ३६॥

उसने भगवान् से प्रार्थना की कि मेरा पुत्र सर्वगुणी हो। उसका पुत्र बभ्रु नाम से प्रसिद्ध हुआ था, जो पवित्रकीर्ति वाला था।

धार्मिको रूपसम्पन्नस्तत्त्वज्ञानरतः सदा।
भजमानाः श्रियन्दिव्यां भजमानाद्विजज्ञिरे॥ ३७॥

बभ्रु धार्मिक, रूपसम्पन्न और तत्त्वज्ञान में सदा निरत रहने वाला था। भजमान से दिव्य लक्ष्मी को धारण करने वाले पुत्र उत्पन्न हुए।

तेषां प्रधानौ विख्यातौ निमिः कृकण एव च।
महाभोजकुले जाता भोजा वैमातृकास्तथा॥ ३८॥

---

1. (सधवा स्त्री के गर्भ से उत्पन्न जारज पुत्र को 'कुण्ड' और विधवा के जारज पुत्र को 'गोल' कहते हैं)

उनमें प्रधान दो पुत्र प्रसिद्ध हुए— निमि और कृकण। महाभोज के वंश में भोज तथा वैमातृक नामक पुत्र हुए थे।

वृष्णेः सुमित्रो बलवाननमित्रस्तिमिस्तथा।
अनमित्रादभून्निघ्नो निघ्नस्य द्वौ बभूवतुः॥ ३९॥

वृष्णि के बलवान् पुत्र सुमित्र, अनमित्र तथा तिमि हुए। अनमित्र से निघ्न हुआ और निघ्न के दो पुत्र हुए।

प्रसेनस्तु महाभागः सत्राजिन्नाम चोत्तमः।
अनमित्रात्सिनिर्जज्ञे कनिष्ठो वृष्णिनन्दनात्॥ ४०॥

उनमें एक था महाभाग प्रसेन और दूसरा था उत्तम सत्राजित्। अनमित्र से सिनि उत्पन्न हुआ। वृष्णि के पुत्र अनमित्र से कनिष्ठ सिनि उत्पन्न हुआ।

सत्यवाक् सत्यसम्पन्नः सत्यकस्तत्सुतोऽभवत्।
सात्यकिर्युयुधानस्तु तस्यासङ्गोऽभवत्सुतः॥ ४१॥

उसका पुत्र सत्यक हुआ जो सत्यवक्ता होने से सत्यसम्पन्न नाम से प्रसिद्ध था। सत्यक का पुत्र युयुधान और उसका पुत्र असंग हुआ।

कुणिस्तस्य सुतो धीमांस्तस्य पुत्रो युगन्धरः।
माद्र्यां वृष्णिः सुतो जज्ञे वृष्णेर्वै यदुनन्दनः॥ ४२॥

असंग का पुत्र बुद्धिमान् कुणि हुआ और कुणि का पुत्र युगन्धर था। माद्री से यदुनन्दन वृष्णि का जन्म हुआ।

जज्ञाते तनयौ वृष्णेः श्वफल्कश्चित्रकस्तु हि।
श्वफल्कः काशिराजस्य सुतां भार्यामविन्दत॥ ४३॥

वृष्णि के दो पुत्र हुए— श्वफल्क और चित्रक। श्वफल्क ने काशिराज की पुत्री को भार्या के रूप में प्राप्त किया।

तस्यामजनयत्पुत्रमक्रूरं नाम धार्मिकम्।
उपमंगु तथा मंगुऽन्ये च बहवः सुताः॥ ४४॥

उसमें अक्रूर नामक धार्मिक पुत्र को उत्पन्न किया। उपमंगु, मंगु तथा अन्य भी बहुत से पुत्र उसके हुए।

अक्रूरस्य स्मृतः पुत्रो देववानिति विश्रुतः।
उपदेवश्च देवात्मा तयोर्विश्वप्रमाथिनौ॥ ४५॥

अक्रूर का एक पुत्र देववान् नाम से प्रसिद्ध हुआ। उपदेव और देवात्मा भी उसके पुत्र थे। इन दोनों के दो पुत्र थे— विश्व और प्रमाथी।

चित्रकस्याभवत्पुत्रः पृथुर्विपृथुरेव च।
अश्वग्रीवः सुबाहुश्च सुधाश्वकगवेक्षकौ॥ ४६॥

चित्रक के पुत्र पृथु, विपृथु, अश्वग्रीव, सुबाहु, सुधाश्वक और गवेक्षक हुए।

अन्धकस्य सुतायान्तु लेभे च चतुरः सुतान्।
कुकुरं भजमानञ्च शमीकं बलगर्वितम्॥ ४७॥

(कश्यप की) पुत्री में अन्धक के चार पुत्र हुए— कुकुर, भजमान, शमीक और बलगर्वित।

कुकुरस्य सुतो वृष्णिर्वृष्णेस्तु तनयोऽभवत्।
कपोतरोमा विख्यातस्तस्य पुत्रो विलोमकः॥ ४८॥

कुकुर का पुत्र वृष्णि और वृष्णि का पुत्र कपोतरोमा विख्यात हुआ। उसका पुत्र विलोमक हुआ था।

तस्यासीत्तुम्बुरुसखा विद्वान्पुत्रस्तमः किल।
तमस्याप्यभवत्पुत्रस्तथैवानकदुन्दुभिः॥ ४९॥

विलोमक का विद्वान् पुत्र तमस् हुआ जो तुम्बुरु गन्धर्व का मित्र था। उसी प्रकार तमस् का पुत्र आनकदुन्दुभि हुआ।

स गोवर्द्धनमासाद्य तताप विपुलं तपः।
वरं तस्मै ददौ देवो ब्रह्मा लोकमहेश्वरः॥ ५०॥
वंशस्ते चाक्षया कीर्तिर्ज्ञानयोगस्तथोत्तमः।
गुरोरप्यधिकं विप्राः कामरूपित्वमेव च॥ ५१॥

उसने गोवर्धन पर्वत पर जाकर महान् तप किया। लोक-महेश्वर ब्रह्मदेव ने उसे वरदान दिया कि तुम्हारा वंश बढ़े, अक्षय कीर्ति और उत्तम ज्ञानयोग प्राप्त हो। हे विप्रगण! उसे गुरु बृहस्पति से भी अधिक इच्छानुसार रूप धारण करने का सामर्थ्य प्राप्त हो (ऐसा वर दिया)।

स लब्ध्वा वरमव्यग्रो वरेण्यो वृषवाहनम्।
पूजयामास गानेन स्थाणुं त्रिदशपूजितम्॥ ५२॥

ऐसा वर प्राप्त करके निश्चिन्त होकर अति श्रेष्ठ वह राजा (आनकदुन्दुभि) देवपूजित, वृषवाहन शिव का गायन के द्वारा पूजन करने लगा।

तस्य गानरतस्याथ भगवानम्बिकापतिः।
कन्यारत्नं ददौ देवो दुर्लभं त्रिदशैरपि॥ ५३॥

गान में निरत रहने वाले उस राजा को पार्वतीपति शंकर ने एक देवताओं के लिए भी दुर्लभ एक कन्यारूपी रत्न प्रदान किया।

तया स सङ्गतो राजा गानयोगमनुत्तमम्।
अशिक्षयदमित्रघ्नः प्रियां तां भ्रान्तलोचनाम्॥ ५४॥

शत्रुहन्ता उस राजा ने उससे संगत होकर विभ्रमयुक्त नेत्रों वाली उस प्रिया को अत्युत्तम गानयोग (संगीतकला) की शिक्षा दी।

तस्यामुत्पादयामास सुभुजं नाम शोभनम्।
रूपलावण्यसम्पन्नां ह्रीमतीमिति कन्यकाम्॥५५॥

उस पत्नी में आनकदुन्दुभि ने सुभुज नामक एक सुन्दर पुत्र और रूपलावण्य से सम्पन्न ह्रीमती नामक एक कन्या को जन्म दिया।

ततस्तं जननी पुत्रं बाल्ये वयसि शोभनम्।
शिक्षयामास विधिवद्गानविद्यां च कन्यकाम्॥५६॥

तब उस पुत्र और पुत्री को माता ने बाल्यावस्था में गान-विद्या की विधिवत् शिक्षा दी।

कृतोपनयनो वेदानधीत्य विधिवद्गुरोः।
उद्वाहात्मजां कन्यां गन्धर्वाणां तु मानसीम्॥५७॥

उस बालक सुभुज ने उपनयन संस्कार के बाद गुरु से वेदों को विधिपूर्वक पढ़ने के पश्चात् गन्धर्वों की मानसी कन्या से विवाह किया।

तस्यामुत्पादयामास पञ्च पुत्राननुत्तमान्।
वीणावादनतत्त्वज्ञान् गानशास्त्रविशारदान्॥५८॥

उसमें सुभुज ने अत्युत्तम पाँच पुत्रों को उत्पन्न किया। वे सब वीणा-वादन के रहस्य को जानने वाले और गानशास्त्र में विशारद थे।

पुत्रैः पौत्रैः सपत्नीको राजा गानविशारदः।
पूजयामास गानेन देवं त्रिपुरनाशनम्॥५९॥

वह गानविद्या में विशारद राजा पुत्रों, पौत्रों और पत्नी समेत गानकला के द्वारा त्रिपुरासुर का नाश करने वाले शंकर की पूजा करता था।

ह्रीमतीं चारुसर्वाङ्गीं श्रीमिवायतलोचनाम्।
सुबाहुनामा गन्धर्वस्तामादाय ययौ पुरीम्॥६०॥

सर्वाङ्गसुन्दरी तथा लक्ष्मी के समान विशाल नेत्रों वाली अपनी पुत्री ह्रीमती का विवाह सुबाहु नामक गन्धर्व से किया, जो उसे लेकर अपनी नगरी में चला गया।

तस्यामप्यभवन् पुत्रा गन्धर्वस्य सुतेजसः।
सुषेणवीरसुग्रीवसुभोजनरवाहनाः॥६१॥

उसमें भी अति तेजस्वी उस गन्धर्व के पुत्र हुए— सुषेण, वीर, सुग्रीव, सुभोज एवं नरवाहन।

अथासीदभिजित्पुत्रश्चन्दनोदकदुन्दुभेः।
पुनर्वसुश्चाभिजितः सम्बभूवाहुकस्ततः॥६२॥

अनन्तर चन्दनोदकदुन्दुभि का अभिजित् नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। अभिजित् का पुत्र पुनर्वसु और उससे आहुक उत्पन्न हुआ।

आहुकस्योग्रसेनश्च देवकश्च द्विजोत्तमाः।
देवकस्य सुता वीरा जज्ञिरे त्रिदशोपमाः॥६३॥

हे द्विजश्रेष्ठों! आहुक के दो पुत्र हुए- उग्रसेन तथा देवक। देवक के देवताओं जैसे बहुत से वीर पुत्र उत्पन्न हुए।

देववानुपदेवश्च सुदेवो देवरक्षितः।
तेषां स्वसारः सप्तासन्वसुदेवाय तां ददौ॥६४॥
धृतदेवोपदेवा च तथान्या देवरक्षिता।
श्रीदेवा शान्तिदेवा च सहदेवा च सुव्रता॥६५॥
देवकी चापि तासां तु वरिष्ठाभूत्सुमध्यमा।
उग्रसेनस्य पुत्रोऽभून्न्यग्रोधः कंस एव च॥६६॥
सुभूमी राष्ट्रपालश्च तुष्टिमाञ्छङ्कुरेव च।
भजमानादभूत्पुत्रः प्रख्यातोऽसौ विदूरथः॥६७॥

उनके नाम हैं— देववान्, उपदेव, सुदेव और देवरक्षित। उनकी बहनें सात थी— धृतदेवा, उपदेवा, देवरक्षिता, श्रीदेवा, शान्तिदेवा, सहदेवा और देवकी। उत्तम व्रत वाली तथा सुन्दरी देवकी उन बहनों में सबसे बड़ी थी, जो वसुदेव को दी गई। उग्रसेन के पुत्र थे— न्यग्रोध और कंस, सुभूमि, राष्ट्रपाल, तुष्टिमान् और शंकु। (सत्वत के पुत्र) भजमान से विदूरथ नामक प्रख्यात पुत्र उत्पन्न हुआ।

तस्य शूरसमस्तस्मात्प्रतिक्षत्रश्च तत्सुतः।
स्वयंभोजस्ततस्तस्माद्धात्रीकः शत्रुतापनः॥६८॥

विदूरथ का सूरसम और उसका पुत्र प्रतिक्षत्र हुआ। प्रतिक्षत्र का पुत्र स्वयंभोज और उसका पुत्र शत्रु को तपाने वाला धात्रीक हुआ।

कृतवर्माथ तत्पुत्रः शूरसेनः सुतोऽभवत्।
वसुदेवोऽथ तत्पुत्रो नित्यं धर्मपरायणः॥६९॥

धात्रीक का पुत्र कृतवर्मा और कृतवर्मा का पुत्र शूरसेन हुआ। शूरसेन का पुत्र नित्य धर्मपरायण वसुदेव हुआ।

वसुदेवान्महाबाहुर्वासुदेवो जगद्गुरुः।
बभूव देवकीपुत्रो देवैरभ्यर्थितो हरिः॥७०॥

वसुदेव से महापराक्रमी, जगद्गुरु वासुदेव कृष्ण हुए। देवताओं द्वारा प्रार्थना करने पर श्रीविष्णु देवकी के पुत्ररूप में अवतीर्ण हुए।

रोहिणी च महाभागा वसुदेवस्य शोभना।
असूत पत्नी संकर्षं रामं ज्येष्ठं हलायुधम्॥७१॥

वसुदेव की दूसरी सुन्दर पत्नी महाभाग्यशाली रोहिणी ने हल अस्त्र वाले ज्येष्ठ पुत्र संकर्षण बलराम को उत्पन्न किया।

स एव परमात्मासौ वासुदेवो जगन्मय:।
हलायुध: स्वयं साक्षाच्छेष: सङ्कर्षण: प्रभु:॥७२॥

वे जो वसुदेव के पुत्र वासुदेव कहे गये हैं, वे जगन्मय परमात्मा थे। हलायुध संकर्षण (बलराम) स्वयं प्रभु साक्षात् शेषनाग ही थे।

भृगुशापच्छलेनैव मानयन्मानुषीं तनुम्।
बभूव तस्यां देवक्या रोहिण्यामपि माधव:॥७३॥

वस्तुत: भृगु मुनि के शाप के बहाने मनुष्य शरीर को स्वीकार करते हुए स्वयं माधव (विष्णु) ही देवकी में वासुदेवरूप से और रोहिणी बलराम रूप में अवतरित हुए।

उमादेहसमुद्भूता योगनिद्रा च कौशिकी।
नियोगाद्वासुदेवस्य यशोदातनया त्वभूत्॥७४॥

उसी प्रकार वासुदेव की आज्ञा से पार्वती के शरीर से उत्पन्न योगनिद्रारूप कौशिकी देवी यशोदा की पुत्री हुई।

ये चान्ये वसुदेवस्य वासुदेवाग्रजा: सुता:।
प्रागेव कंसस्तान्सर्वाञ्जघान मुनिसत्तमा:॥७५॥

हे मुनिश्रेष्ठों! अन्य जो वसुदेव के पुत्र वासुदेव कृष्ण के जो बड़े भाई हुए, उन सबको कंस ने पहले ही मार दिया था।

सुषेणश्च तथो दायी भद्रसेनो महाबल:।
वज्रदम्भो भद्रसेन: कीर्तिमानपि पूजित:॥७६॥

वसुदेव के सुषेण, दायी, भद्रसेन, महाबल, वज्रदम्भ, भद्रसेन और पूजित कीर्तिमान् भी पुत्र हुए थे।[1]

हतेष्वेतेषु सर्वेषु रोहिणी वसुदेवत:।
असूत रामं लोकेशं बलभद्रं हलायुधम्॥७७॥

इन सबके मार दिये जाने पर रोहिणी ने वसुदेव से लोकेश्वर, हलायुध, बलभद्र, राम को उत्पन्न किया।

जातेऽथ रामे देवानामादिमात्मानमच्युतम्।
असूत देवकी कृष्णं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम्॥७८॥

बलराम के जन्म के अनन्तर देवों के आदि आत्मारूप, अच्युत और श्रीवत्स चिह्न से अंकित वक्ष:स्थल वाले श्रीकृष्ण को देवकी ने उत्पन्न किया।

रेवती नाम रामस्य भार्यासीत्सुगुणान्विता।
तस्यामुत्पादयामास पुत्रौ द्वौ निशितोल्मुकौ॥७९॥

उत्तम गुणों से युक्त रेवती बलराम की पत्नी हुई। उसमें उन्होंने निशित और उल्मुक नामक दो पुत्रों को उत्पन्न किया।

षोडशस्त्रीसहस्राणि कृष्णस्याक्लिष्टकर्मण:।
बभूवुस्त्वात्मजास्तासु शतशोऽथ सहस्रश:॥८०॥

अक्लिष्टकर्मा श्रीकृष्ण की सोलह हजार स्त्रियाँ हुई। उनसे सैकड़ों और हजारों उनके पुत्र हुए।

चारुदेष्ण: सुचारुश्च चारुवेषो यशोधर:।
चारुश्रवाश्चारुयशा: प्रद्युम्न: साम्ब एव च॥८१॥
रुक्मिण्यां वासुदेवस्य महाबलपराक्रमा:।
विशिष्टा: सर्वपुत्राणां सम्बभूवुरिमे सुता:॥८२॥

उनमें मुख्य थे— चारुदेष्ण, सुचारु, चारुवेष, यशोधर, चारुश्रवा, चारुयशा, प्रद्युम्न और साम्ब। ये सभी रुक्मिणी में वासुदेव से उत्पन्न हुए थे। वे महान् बली और पराक्रमी तथा सब पुत्रों में विशिष्ट थे।

तान्दृष्ट्वा तनयान्वीरान् रौक्मिणेयाञ्जनार्दनात्।
जाम्बवत्यब्रवीत्कृष्णं भार्या तस्य शुचिस्मिता॥८३॥

जनार्दन श्रीकृष्ण से रुक्मिणी में उत्पन्न उन वीर पुत्रों को देखकर उनकी पवित्र हास्य वाली जाम्बवती नामक पत्नी ने कृष्ण को कहा।

मम त्वं पुण्डरीकाक्ष विशिष्टगुणवत्तरम्।
सुरेशसम्मितं पुत्रं देहि दानवसूदन॥८४॥

हे पुण्डरीकाक्ष! हे दानव-मर्दनकारी! मुझे आप देवराजतुल्य अत्यन्त विशिष्ट गुणशाली पुत्र दें।

जाम्बवत्या वच: श्रुत्वा जगन्नाथ: स्वयं हरि:।
समारेभे तप: कर्तुं तपोनिधिररिन्दम:॥८५॥

जाम्बवती की बात सुनकर शत्रुदमनकारी, तपोनिधि हरि ने स्वयं तप करना प्रारंभ कर दिया।

---

1. अन्य पाठान्तर से भिन्न नाम भी प्राप्त होते हैं- सुषेण, उदापि, भद्रसेन, महाबलो ऋजुदास, भद्रदास और कीर्तिमान्।

तच्छृणुध्वं मुनिश्रेष्ठा यथासौ देवकी सुतः।
दृष्ट्वा लेभे सुतं रुद्रं तप्त्वा तीव्रं महत्तपः॥८६॥

हे मुनिश्रेष्ठों! उस देवकीपुत्र कृष्ण ने जिस प्रकार तीव्र और महान् तप करके तथा उसके बाद रुद्र का दर्शन करके पुत्र प्राप्त किया था, वह सुनो।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे यदुवंशानुकीर्तनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥२४॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

(यदुवंश और कृष्ण की कीर्ति का वर्णन)

सूत उवाच

अथ देवो हृषीकेशो भगवान्पुरुषोत्तमः।
ततापं घोरं पुत्रार्थं निधानं तपसस्तपः॥१॥

सूतजी ने कहा— इसके अनन्तर हृषीकेश भगवान् पुरुषोत्तम ने पुत्र की प्राप्ति के लिए परम घोर तप किया था जो कि वे स्वयं तपों के निधान थे।

स्वेच्छायाप्यवतीर्णोऽसौ कृतकृत्योऽपि विश्वसृक्।
चचार स्वात्मनो मूलं बोधयन्परमेश्वरम्॥२॥

सम्पूर्ण विश्व के सृजन करने वाले और स्वयं कृतकृत्य होते हुए भी वे अपनी इच्छा से अवतीर्ण हुए थे। ऐसा होने पर भी उन्होंने परमेश्वर को ही अपना मूलस्वरूप बताते हुए लोक में तप किया था।

जगाम योगिभिर्जुष्टं नानापक्षिसमाकुलम्।
आश्रमं तूपमन्योर्वै मुनीन्द्रस्य महात्मनः॥३॥

वे महात्मा महामुनीन्द्र उपमन्यु महर्षि के आश्रम में गये थे, जो अनेक प्रकार के पक्षियों से समाकुल और अनेक योगीजनों द्वारा सेवित था।

पतत्रिराजमारूढः सुपर्णमतितेजसम्।
शंखचक्रगदापाणिः श्रीवत्साङ्कितलक्षणः॥४॥

उस समय वे अत्यन्त तेजस्वी सुपर्ण पक्षीराज गरुड पर आरूढ थे और शंख-चक्र तथा गदा हाथों में धारण किये हुए थे एवं श्रीवत्स का चिह्न भी उनके वक्षःस्थल पर अंकित था।

नानाद्रुमलताकीर्णं नानापुष्पोपशोभितम्।
ऋषीणामाश्रमैर्जुष्टं वेदघोषनिनादितम्॥५॥

वह आश्रम अनेक प्रकार के द्रुम और लताओं से समाकुल था तथा विविध प्रकार के पुष्पों से उपशोभित था। ऋषियों के आश्रमों से सेवित और वेदों की ध्वनियों से घोषित वह स्थल था।

सिंहर्क्षशरभाकीर्णं शार्दूलगजसंयुतम्।
विमलस्वादुपानीयैः सरोभिरुपशोभितम्॥६॥

उसमें सिंह—रीछ—शरभ—शार्दूल और गज सब जीव विचरण किया करते थे। वह विमल और परम स्वादु जलों वाले सरोवरों से उपशोभित था।

आरामैर्विविधैर्जुष्टं देवतायतनैः शुभैः।
ऋषिभिर्ऋषिपुत्रैश्च महामुनिगणैस्तथा॥७॥
वेदाध्ययनसम्पन्नैः सेवितं चाग्निहोत्रिभिः।
योगिभिर्ध्याननिरतैर्नासाग्रन्यस्तलोचनैः॥८॥

उस आश्रम में विविध उद्यान लगे हुए थे तथा अति शुभ देवमन्दिर भी बने हुए थे। ऋषिगण, ऋषियों के पुत्रों, महान् महामुनियों के समुदाय, वेदाध्ययन में निरत अग्निहोत्रियों तथा नासिका के अग्रभाग पर नेत्रों को स्थिर करके ध्यान में लगे रहने वाले योगियों के द्वारा भी वह आश्रम व्याप्त था।

उपेतं सर्वतः पुण्यं ज्ञानिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
नदीभिरभितो जुष्टं जापकैर्ब्रह्मवादिभिः॥९॥

यह चारों ओर पुण्य से व्याप्त था, क्योंकि वह तत्त्वदर्शी महाज्ञानी पुरुषों, चारों ओर से बहनेवाली नदियों, एवं जप करने में लगे हुए ब्रह्मवादियों द्वारा सेवित था।

सेवितं तापसैः पुण्यैरीशाराधनतत्परैः।
प्रशान्तैः सत्यसङ्कल्पैर्निःशोकैर्निरुपद्रवैः॥१०॥

यह आश्रम भगवान् शंकर की आराधन में तत्पर, परम शान्त स्वभाव वाले, सदा सत्यसंकल्प से युक्त, शोकरहित एवं उपद्रवरहित पुण्यशाली तापसों से सेवित था।

भस्मावदातसर्वाङ्गैः रुद्रजाप्यपरायणैः।
मुण्डितैर्जटिलैः शुद्धैस्तथान्यैश्च शिखाजटैः॥११॥
सेवितं तापसैर्नित्यं ज्ञानिभिर्ब्रह्मवादिभिः।

वह आश्रम भस्म के लेपन से उज्ज्वल सर्वांग वाले, रुद्र मन्त्र का जप करने में परायण कुछ मुण्डित और कुछ जटाओं को धारण करने वाले, परम शुद्ध और शिखारूपी जटाओं से युक्त ब्रह्मवादी ज्ञानी तपस्वियों के द्वारा सेवित था।

तत्राश्रमवरे रम्ये सिद्धाश्रमविभूषिते॥१२॥
गंगा भगवती नित्यं वहत्येवाघनाशिनी।

स तत्र वीक्ष्य विश्वात्मा तापसान्वीतकल्मषान्॥ १३॥
प्रणामेनाथ वचसा पूजयामास माधवः।
तं ते दृष्ट्वा जगद्योनिं शंखचक्रगदाधरम्॥ १४॥
प्रणेमुर्भक्तिसंयुक्ता योगिनां परमं गुरुम्।
स्तुवन्ति वैदिकैर्मन्त्रैः कृत्वा हृदि सनातनम्॥ १५॥

वह आश्रम अतीव श्रेष्ठ एवं रमणीय था तथा अन्य सिद्धों के आश्रमों से विशेष शोभायमान था। वहाँ लोगों के पापों का नाश करने वाली भगवती गङ्गा नित्य ही प्रवाहित होती है। वहाँ जाकर विश्वात्मा भगवान् कृष्ण ने पापों से रहित हुए तापसों का दर्शन किया था। माधव कृष्ण ने उन सब का प्रणामपूर्वक वचनों द्वारा पूजन किया था। उन सब ने भी जगत् की योनिरूप, शंख-चक्रगदाधारी एवं योगियों के परम गुरु कृष्ण का दर्शन करके उन्हें भक्तियुक्त होकर प्रणाम किया था। तत्पश्चात् सनातन आदि देव प्रभु को हृदय में धारण करके वैदिक मंत्रों द्वारा स्तुति की।

प्रोचुरन्योन्यमव्यक्तमादिदेवं महामुनिम्।
अयं स भगवानेकः साक्षी नारायणः परः॥ १६॥

उन अव्यक्त आदि देव महामुनि को देखकर वे सब परस्पर कहने लगे कि यही वह एक भगवान् परात्पर साक्षी नारायण ही हैं।

आगच्छत्यधुना देवः प्रधानपुरुषः स्वयम्।
अयमेवाव्ययः स्रष्टा संहर्ता चैव रक्षकः॥ १७॥

यह देव प्रधान पुरुष होने पर भी इस समय स्वयं ही यहाँ आये हैं। ये ही अव्यय, स्रष्टा, संहार करने वाले और रक्षा करने वाले हैं।

अमूर्तो मूर्तिमान् भूत्वा मुनीन्द्रष्टुमिहागतः।
एष धाता विधाता च समागच्छति सर्वगः॥ १८॥

ये स्वयं अमूर्त हैं किन्तु यहाँ मूर्तिमान् होकर मुनिगण का दर्शन करने के लिए पधारे हैं। ये ही धाता-विधाता और सर्वत्र गमन करने वाले हैं, जो यहाँ चले आये हैं।

अनादिरक्षयोऽनन्तो महाभूतो महेश्वरः।
श्रुत्वा बुद्ध्वा हरिस्तेषां वचांसि वचनातिगः॥ १९॥

वे अनादि, अक्षय, अनन्त, महाभूत और महेश्वर हैं। इस प्रकार से उनके वचन सुनकर और सोच-विचारकर वे शीघ्र ही उनके वचनों को लाँघ गये थे।

ययौ स तूर्णं गोविन्दः स्थानं तस्य महात्मनः।
उपस्पृश्याथ भावेन तीर्थे तीर्थे स यादवः॥ २०॥

फिर शीघ्र ही वे गोविन्द उन महात्मा उपमन्यु के आश्रम में पहुँच गये थे। उन यदुवंशी माधव ने प्रत्येक तीर्थ में जाकर बड़े ही भाव से तीर्थजल का स्पर्श किया था।

चकार देवकीसूनुर्देवर्षिपितृतर्पणम्।
नदीनां तीरसंस्थाने स्थापितानि मुनीश्वरैः॥ २१॥
लिङ्गानि पूजयामास शम्भोरमिततेजसः।

वहाँ पर देवकीपुत्र ने देवों और ऋषियों का तर्पण किया था और नदियों के तट पर मुनीश्वरों द्वारा संस्थापित ने अमित तेज वाले भगवान् शंकर के लिङ्गों का पूजन किया।

दृष्ट्वादृष्ट्वा समायान्तं यत्र यत्र जनार्दनम्॥ २२॥
पूजयाञ्चक्रिरे पुष्पैरक्षतैस्तत्रिवासिनः।
समीक्ष्य वासुदेवं तं शार्ङ्गशङ्खासिधारिणम्॥ २३॥
तस्थिरे निश्चलाः सर्वे शुभाङ्गं तत्मानसाः।

जहाँ-जहाँ पर भगवान् जनार्दन आये थे, उन्हें देखकर वहाँ के निवासियों ने पुष्प और अक्षतों से उनकी पूजा की थी। शार्ङ्गधनु, शंख, तथा असि को धारण करने वाले भगवान् वासुदेव का दर्शन करते ही स्तब्ध होकर वे वहीं के वहीं खड़े रह जाते थे। वे सभी शुभ अंगों वाले कृष्ण में ही तत्पर मन वाले हो गये थे।

यानि तत्रारुरुक्षूणां मानसानि जनार्दनम्॥ २४॥
दृष्ट्वा समाहितान्यासन्निष्क्रामन्ति पुरा हरिम्।
अथावगाह्य गङ्गायां कृत्वा देवर्षितर्पणम्॥ २५॥
आदाय पुष्पवर्याणि मुनीन्द्रस्याविशद्‌गृहम्।

जो योगारूढ होने की इच्छा रखते थे, उनके मन भगवान् जनार्दन हरि का दर्शन प्राप्त कर समाधिनिष्ठ हो गये थे और अपने अंग से बाहर ही नहीं निकलते थे। इसके बाद वासुदेव ने गंगा में प्रवेश किया तथा स्नान करके देवों और ऋषियों का तर्पण किया। फिर उत्तम पुष्प हाथ में लेकर महामुनीन्द्र उपमन्यु के गृह में प्रवेश किया था।

दृष्ट्वा तं योगिनां श्रेष्ठं भस्मोद्धूलितविग्रहम्॥ २६॥
जटाचीरधरं शान्तं ननाम शिरसा मुनिम्।
आलोक्य कृष्णमायान्तं पूजयामास तत्त्ववित्॥ २७॥

वहाँ भस्म से लिप्त सम्पूर्ण अंगों वाले योगियों में श्रेष्ठ तथा जटा एवं चीर वस्त्र धारी शांत मुनि का दर्शन करके उन्हें शिर से प्रणाम किया था। उन तत्त्ववेत्ता महामुनि ने भी साक्षात् श्रीकृष्ण को वहाँ पर समागत देखकर उनका पूजन किया था।

आसने वासयामास योगिनां प्रथमातिथिम्।
उवाच वचसां योनिज्ञानीमः परमम्पदम्॥ २८॥
विष्णुमव्यक्तसंस्थानं शिष्यभावेन संस्थितम्।
स्वागतं ते हृषीकेश सफलानि तपांसि नः॥ २९॥

उन्होंने योगियों के प्रथम अतिथि, प्रभु को आसन पर बिठाया था और फिर शिष्यभाव से संस्थित वचनों के उत्पत्ति स्थान, अव्यक्त स्वरूप एवं परम पदरूप भगवान् विष्णु से कहा कि हम आपको जानते हैं। हे हृषीकेश! आपका स्वागत है। आज हमारे तप सफल हो गये हैं।

यत्साक्षादेव विश्वात्मा मद्गेहं विष्णुरागतः।
त्वां न पश्यन्ति मुनयो यतन्तोऽपीह योगिनः॥ ३०॥
तादृशस्यात्रभवतः किमागमनकारणम्।

क्योंकि विश्वात्मा विष्णु साक्षात् ही मेरे घर पधारे हैं। आपको यत्न करने पर भी योगीजन और मुनिगण नहीं देख पाते हैं। ऐसे आप पूज्य का यहाँ आने का क्या कारण है?

श्रुत्वोपमन्योस्तद्वाक्यं भगवान्देवकीसुतः॥ ३१॥
व्याजहार महायोगी प्रसन्नं प्रणिपत्य तम्।

उपमन्यु मुनि के इस वचन को सुनकर महायोगी भगवान् देवकीनन्दन ने प्रसन्न होकर उन्हें प्रणाम करके कहा था।

कृष्ण उवाच

भगवन्द्रष्टुमिच्छामि गिरीशं कृत्तिवाससम्॥ ३२॥
सम्प्राप्तो भवतः स्थानं भगवद्दर्शनोत्सुकः।
कथं स भगवानीशो दृश्यो योगविदां वरः॥ ३३॥

श्रीकृष्ण ने कहा— हे भगवन्! मैं कृत्तिवास भगवान् गिरीश का दर्शन करना चाहता हूँ। मैं भगवान् के दर्शन के लिए उत्सुक होकर आपके इस आश्रम में आया हूँ। आप मुझे यह बतायें कि योगवेत्ताओं में परमश्रेष्ठ वह भवानीश कैसे दर्शन के योग्य हो सकेंगे?

मयाचिरेण कुत्राहं द्रक्ष्यामि तमुमापतिम्।
प्रत्याह भगवानुक्तो दृश्यते परमेश्वरः॥ ३४॥
भक्त्यैवोग्रेण तपसा तत्कुरुष्वेह संयतः।

मैं उन उमापति के शीघ्र दर्शन कहाँ प्राप्त करूँगा? कृष्ण के ऐसा पूछने पर भगवान् उपमन्यु ने उत्तर दिया कि परमेश्वर भक्ति द्वारा अथवा उग्र तप करने से दिखाई देते हैं। आप संयत होकर वही तप यहाँ करें।

इहेश्वरं देवदेवं मुनीन्द्रा ब्रह्मवादिनः॥ ३५॥
ध्यायन्त्याराधयन्त्येनं योगिनस्तापसाश्च ये।

यहीं पर रहकर ब्रह्मवादी श्रेष्ठ मुनिगण देवों के देव ईश्वर का ध्यान करते हैं और योगी तथा तपस्वी जन उनकी आराधना करते हैं।

इह देवः सपत्नीको भगवान् वृषभध्वजः॥ ३६॥
क्रीडते विविधैर्भूतैर्योगिभिः परिवारितः।
इहाश्रमे पुरारुद्रं तपस्तप्त्वा सुदारुणम्॥ ३७॥
लेभे महेश्वराद्योगं वसिष्ठो भगवानृषिः।
इहैव भगवान्व्यासः कृष्णद्वैपायनः स्वयम्॥ ३८॥
दृष्ट्वा तं परमेशानं लब्धवान् ज्ञानमैश्वरम्।
इहाश्रमं पदे रम्ये तपस्तप्त्वा कपर्दिनः॥ ३९॥
अविन्दन्पुत्रकान्रुद्रात्सुरयो भक्तिसंयुताः।
इह देवा महादेवीं भवानीञ्च महेश्वरीम्॥ ४०॥
संस्तुवन्तो महादेवं निर्भया निर्वृतिं ययुः।

वृषभध्वज शंकर पत्नी के सहित यहाँ पर अनेक भूतगणों तथा योगियों से परिवृत होकर यहाँ क्रीड़ा करते हैं। इसी आश्रम में पहले सुदारुण तप करके भगवान् वसिष्ठ ने रुद्र को प्राप्तकर महेश्वर से योग प्राप्त किया था। यहीं पर कृष्ण द्वैपायन भगवान् व्यास ने स्वयं उन परमेश्वर का दर्शन करके ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त किया था। इसी परम रमणीय आश्रम में कपर्दी शंकर का तप करके देवों ने रुद्र से पुत्रों को प्राप्त किया था। यहीं पर देवता लोग भक्ति से संयुक्त होकर महादेवी महेश्वरी भवानी की तथा महादेव शंकर की स्तुति करते हैं और निर्भय होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं।

इहाराध्य महादेवं सावर्णिस्तपतां वरः॥ ४१॥
लब्धवान्परमं योगं ग्रन्थकारत्वमुत्तमम्।
प्रवर्त्तयामास सतां कृत्वा वै संहितां शुभाम्॥ ४२॥

इसी स्थल पर तापसों में श्रेष्ठ सावर्णि ने महादेव की आराधना करके परम योग की प्राप्ति की थी और उत्तम ग्रन्थकारिता भी प्राप्त की थी। उस सावर्णि ने पुनः सज्जनों के लिए शुभ पौराणिकी संहिता को प्रवर्तन किया था।

इहैव संहितां दृष्ट्वा कामो यः शशिपायिनः।
महादेवश्चकारेमां पौराणीं तन्नियोगतः॥
द्वादशैव सहस्राणि श्लोकानां पुरुषोत्तम।
इह प्रवर्त्तिता पुण्या द्व्यष्टसाहस्रिकोत्तरा।
वायवीयोत्तरं नाम पुराणं वेदसंमतम्॥
द्विजः पौराणिकीं पुण्यां प्रसादेन द्विजोत्तमैः।
इहैव ख्यापितं शिष्यैर्वैशम्पायनभाषितम्॥ ४३॥

यहीं पर उस संहिता को देखकर शशिपायी ऋषि ने इच्छा की थी। महादेव ने उसके नियोग से इस पौराणिक संहिता को रचा था। हे पुरुषोत्तम! इसमें बारह हजार श्लोकों की संख्या है। वही संहिता इस आश्रम में सोलह हजार शलोकों में प्रवर्तित हुई। यह वायवीयोत्तर नामक यह पुराण वेदमान्य है। द्विजोत्तम शिष्यों ने कृपा करके वैशम्पायन द्वारा कथित पुण्यमयी इस पौराणिकी संहिता प्राप्त प्रसिद्ध किया था।

याज्ञवल्क्यो महायोगी दृष्ट्वात्र तपसा हरम्।
चकार तन्नियोगेन योगशास्त्रमनुत्तमम्॥४४॥

यही वह स्थल है जहाँ पर तपश्चर्या के द्वारा भगवान् शंकर का दर्शन प्राप्त करके महायोगी याज्ञवल्क्य ने उन्हीं के नियोग से परम उत्तम योगशास्त्र की रचना की थी।

इहैव भृगुणा पूर्वं तप्त्वा पूर्वं महातपः।
शुक्रो महेश्वरात्पुत्रो लब्धो योगविदां वरः॥४५॥

इसी स्थल पर पहले महर्षि भृगु ने महान् तप करके महेश्वर शंकर से योगवेत्ताओं में श्रेष्ठ शुक्र नामक पुत्र को प्राप्त किया था।

तस्मादिहैव देवेश तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम्।
द्रष्टुमर्हसि विश्वेशमुग्रं भीमं कपर्दिनम्॥४६॥

इसलिए हे देवेश! आप भी इसी स्थान पर अति कठिन तप करके उग्र भीमरूप कपर्दी विश्वनाथ का दर्शन प्राप्त कर सकते हैं।

एवमुक्त्वा ददौ ज्ञानमुपमन्युर्महामुनिः।
व्रतं पाशुपतं योगं कृष्णायाक्लिष्टकर्मणे॥४७॥

इस प्रकार कहकर महामुनि उपमन्यु ने ज्ञान प्रदान किया और अक्लिष्टकर्मा श्रीकृष्ण के लिये पाशुपत योगव्रत कहा।

स तेन मुनिवर्येण व्याहृतो मधुसूदनः।
तत्रैव तपसा देवं रुद्रमाराधयत्प्रभुः॥४८॥

इस तरह उस मुनिवर के कहने पर प्रभु मधुसूदन कृष्ण ने वहीं पर तप करके रुद्रदेव की आराधना की थी।

भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गो मुण्डो वल्कलसंयुतः।
जजाप रुद्रमनिशं शिवैकाहितमानसः॥४९॥

वासुदेव ने भस्म से सर्वांग लिप्त करके, मुण्डित सिर और वल्कलवस्त्र से संयुत होकर केवल एक शिव में ही समाहित चित्त होकर निरन्तर रुद्र का जप किया।

ततो बहुतिथे काले सोमः सोमार्द्धभूषणः।
अदृश्यत महादेवो व्योम्नि देव्या महेश्वरः॥५०॥

इसके अनन्तर बहुत समय बीत जाने पर अर्धचन्द्र के भूषणवाले सोम महादेव महेश्वर को देवी के साथ आकाश में देखा गया।

किरीटिनं गदिनं चित्रमालं पिनाकिनं शूलिनं देवदेवम्।
शार्दूलचर्माम्बरसंवृताङ्गं देव्या महादेवमसौ ददर्श॥५१॥

वे किरीटधारी, गदाधारी, विचित्र माला को धारण किये हुए, पिनाक धनुष और त्रिशूल हाथ में लिए हुए थे। ऐसे देवों के देव महादेव को देवी के साथ वासुदेव ने देखा था जिन्होंने व्याघ्र के चर्म से शरीर को आवृत किया था।

प्रभुं पुराणं पुरुषं पुरस्तात्
सनातनं योगिनमीशितारम्।
अणोरणीयासमनन्तशक्तिं
प्राणेश्वरं शम्भुमसौ ददर्श॥५२॥

इन वासुदेव ने पुराण पुरुष, सनातन, योगीराज, ईशिता, अणु से भी अणुतर एवं अनन्त शक्तिसम्पन्न प्राणेश्वर प्रभु शम्भु को अपने सामने देखा था।

परश्वधासक्तकरं त्रिनेत्रं नृसिंहचर्मावृतभस्मगात्रम्।
स उद्गिरन्तं प्रणवं बृहन्तं सहस्रसूर्यप्रतिमं ददर्श॥५३॥

उनके हाथ में परशु धारण किया हुआ था। वे तीन नेत्रों से युक्त थे। नृसिंह के चर्म तथा भस्म से समावृत उनका शरीर था। वे बृहत् प्रणव का मुख से उच्चारण कर रहे थे और जो सहस्र सूर्य के समान प्रतिमा वाले थे, ऐसे भगवान् शम्भु का दर्शन किया था।

न यस्य देवा न पितामहोऽपि
नेन्द्रो न चाग्निर्वरुणो न मृत्युः।
प्रभावमद्यापि वदन्ति रुद्रं
तमादिदेवं पुरतो ददर्श॥५४॥

जिसके प्रभाव को समस्त देवगण, पितामह, इन्द्र, अग्नि, वरुण और मृत्यु भी आज तक नहीं कह सकते हैं उन्हीं रुद्र देव को सामने देखा था।

तदान्वपश्यद्‌गिरीशस्य वामे
स्वात्मानमव्यक्तमनन्तरूपम्।
स्तुवन्तमीशं बहुभिर्वचोभिः
शङ्खासिचक्रान्वितहस्तमाद्यम्॥५५॥

उस समय उन्होंने गिरीश के वामभाग में स्वयं अव्यक्तरूप, तथापि अनन्तरूप वाले, अनेक वचनों से स्तुति किये जाते हुए तथा शङ्ख-चक्र से युक्त हाथों वाले आदि पुरुष को देखा था।

कृताञ्जलिं दक्षिणत: सुरेशं
हंसाधिरूढं पुरुषं ददर्श।
स्तुवानमीशस्य परं प्रभावं
पितामहं लोकगुरुं दिविस्थम्॥५६॥

उन शंकर के दक्षिण की ओर हंस पर आरूढ़ लोकगुरु पितामह ब्रह्मा को देखा, जो आकाश में स्थित पुरुषरूप थे तथा शंकर के परम प्रभाव से हाथ जोड़कर ईश्वर की स्तुति कर रहे थे।

गणेश्वरानर्कसहस्रकल्पा-
नन्दीश्वरादीनमितप्रभावान्।
त्रिलोकभर्तुः पुरतोऽन्वपश्यत्-
कुमारमग्निप्रतिमं गणेशम्॥५७॥

सहस्रों सूर्यों के सदृश गणेश्वर और अपरिमित प्रभाव वाले नन्दीश्वरादिक को तथा अग्नि के तुल्य प्रतिमा वाले कुमार एवं गणेश को भी उन त्रिलोक के स्वामी के आगे देखा।

मरीचिमत्रिं पुलहं पुलस्त्यं
प्रचेतसं दक्षमथापि कण्वम्।
पराशरं तत्पुरतो वसिष्ठं
स्वायम्भुवञ्चापि मनुं ददर्श॥५८॥

उन भगवान् शिव के आगे मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, प्रचेता, दक्ष, कण्व, पराशर, वसिष्ठ और स्वायम्भुव मनु को भी देखा था।

तुष्टाव मन्त्रैरमरप्रधानं
बद्धाञ्जलिर्विष्णुरुदारबुद्धिः।
प्रणम्य देव्या गिरिशं स्वभक्त्या
स्वात्मन्यथात्मानमसौ विचिन्त्य॥५९॥

उदार बुद्धि वाले भगवान् विष्णु ने देवी सहित गिरीश को स्वभक्ति से अपनी आत्मा में जिस तरह परमात्मा है— ऐसा चिन्तन करते हुए हाथ जोड़कर प्रणाम करके उस सुरेश्वर को स्तुति द्वारा प्रसन्न किया था।

कृष्ण उवाच

नमोऽस्तु ते शाश्वत सर्वयोग
ब्रह्मादयस्त्वामृषयो वदन्ति।
तमश्च सत्त्वञ्च रजस्त्वमेव
त्वामेव सर्वं प्रवदन्ति संत:॥६०॥

श्रीकृष्ण ने कहा— हे शाश्वत देव! हे सर्वयोग! आपके लिए मेरा नमस्कार है। ऋषि लोग आपको ही ब्रह्मा आदि कहते हैं। सन्त भी तमरूप, सत्त्वरूप, और रजस्वरूप तीनों रूप वाला आपको कहते हैं।

त्वं ब्रह्मा हरिरथ रुद्रविश्वकर्ता
संहर्ता दिनकरमण्डलाधिवासः।
प्राणस्त्वं हुतवहवासवादिभेद-
स्त्वामेकं शरणमुपैमि देवमीशम्॥६१॥

आप ही ब्रह्मा, हरि, रुद्र, विश्वकर्ता और संहारक हैं। आप ही दिनकर के मण्डल में अधिवास करने वाले हैं। आप ही प्राण, हुतवह (अग्नि) तथा इन्द्र आदि अनेक रूप वाले भी हैं। मैं उसी एकरूप देव ईश की शरण में जाता हूँ।

साङ्ख्यास्त्वामगुणमथाहुरेकरूपं
योगस्थं सततमुपासते हृदिस्थम्।
वेदास्त्वामभिदधतीह रुद्रमीड्यं
त्वामेकं शरणमुपैमि देवमीशम्॥६२॥

सांख्यवादी आपको निरन्तर योग में समवस्थित निर्गुण और एकरूप कहते हैं और निरन्तर हृदय में स्थित जानकर उपासना करते हैं। वेद भी आपका वही स्वरूप कहते हैं। ऐसे स्तुति करने योग्य आप एकेश्वर रुद्रदेव की शरण में मैं जाता हूँ।

त्वत्पादे कुसुममथापि पत्रमेकं
दत्त्वासौ भवति विमुक्तविश्वबन्धः।
सर्वाघं प्रणुदति सिद्धयोगिजुष्टं
स्मृत्वा ते पादयुगलं भवत्प्रसादात्॥६३॥

आपके चरणों में पुष्प अथवा एक ही पत्र अर्पित करके यह प्राणी विश्व के बन्धन से मुक्त हो जाता है। आपके अनुग्रह से सिद्ध और योगियों के द्वारा सेवित आपके चरणद्वय को स्मरण करके समस्त पैपों से छूट जाता है।

यस्याशेषविभागहीनममलं हृद्यन्तरावस्थितं
ते त्वां योनिमनन्तमेकमचलं सत्यं परं सर्वगम्॥६४॥
स्थानं प्राहुरनादिमध्यनिधनं यस्मादिदं जायते।
नित्यं त्वाहमुपैमि सत्यविभवं विश्वेश्वरं तं शिवम्॥६५॥

जिसका स्थान सम्पूर्ण विभागों से रहित, निर्मल, हृदय के अन्दर अवस्थित, आदि, मध्य और अन्त से रहित कहा

जाता है, वे आपको सबका उत्पत्ति स्थान, अनन्त, एक, अचल, सत्य पर और सर्वत्र गमन करने वाला बताया करते हैं जिससे यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ करता है, ऐसे सत्य-विभव वाले विश्वेश्वर शिव की शरण में मैं नित्य उपस्थित होता हूँ।

ओं नमो नीलकण्ठाय त्रिनेत्राय च रंहसे।
महादेवाय ते नित्यमीशानाय नमो नमः॥६६॥

नीलकण्ठ, त्रिनेत्रधारी और एकान्त-स्वरूप आपको नमस्कार। महादेव तथा ईशान को सदा बार-बार नमन है।

नमः पिनाकिने तुभ्यं नमो मुण्डाय दण्डिने।
नमस्ते वज्रहस्ताय दिग्वस्त्राय कपर्दिने॥६७॥

पिनाकधारी को नमस्कार। मुण्डस्वरूप और दण्डधारी आपको प्रणाम। वज्रहस्त, दिग्वस्त्र अर्थात् दिगम्बर और कपर्दी आपके लिये नमस्कार है।

नमो भैरवनादाय कालरूपाय दंष्ट्रिणे।
नागयज्ञोपवीताय नमस्ते वह्निरेतसे॥६८॥

भैरवनाद वाले, कालरूप, दंष्ट्रधारी, नागों के उपवीत धारण करने वाले तथा वह्निरेता आपको नमस्कार है।

नमोऽस्तु ते गिरीशाय स्वाहाकाराय ते नमः।
नमो मुक्ताट्टहासाय भीमाय च नमो नमः॥६९॥

पर्वताधिपति को नमस्कार। स्वाहाकार आपको नमस्कार है। मुक्ताट्टहास तथा भीमरूप आपके लिये बारम्बार नमस्कार है।

नमस्ते कामनाशाय नमः कालप्रमाथिने।
नमो भैरववेषाय हराय च निषङ्गिणे॥७०॥

कामदेव नाश करने वाले और काल का प्रमथन करने वाले आपको प्रणाम। भैरववेष से युक्त, निषंगी और हर के लिये नमस्कार है।

नमोऽस्तु ते त्र्यम्बकाय नमस्ते कृत्तिवाससे।
नमोऽम्बिकाधिपतये पशूनां पतये नमः॥७१॥

तीन नेत्रधारी और कृत्ति (व्याघ्रचर्म) के वस्त्र वाले, आपको प्रणाम है। अम्बिका देवी के अधिपति और पशुओं के स्वामी को नमस्कार है।

नमस्ते व्योमरूपाय व्योमाधिपतये नमः।
नरनारीशरीराय साङ्ख्ययोगप्रवर्तिने॥७२॥

व्योमरूप वाले तथा व्योम के अधिपति के लिये नमस्कार है। नर और नारी के शरीर वाले एवं साङ्ख्य तथा योग के प्रवर्त्तक के लिये नमस्कार है।

नमो भैरवनाथाय देवानुगतलिङ्गिने।
कुमारगुरवे तुभ्यं देवदेवाय ते नमः॥७३॥

भैरवनाथ तथा देवों के अनुकूल लिंगधारी और कुमार कार्तिकेय के गुरु आपको नमस्कार है। देवों के भी देव आपको नमस्कार है।

नमो यज्ञाधिपतये नमस्ते ब्रह्मचारिणे।
मृगव्याधाय महते ब्रह्माधिपतये नमः॥७४॥

यज्ञों के अधिपति और ब्रह्मचारी आपको प्रणाम है। मृग व्याध, महान् तथा ब्रह्मा के अधिपति के लिये नमस्कार है।

नमो हंसाय विश्वाय मोहनाय नमो नमः।
योगिने योगगम्याय योगमायाय ते नमः॥७५॥

हंस, विश्व और मोहन के लिये पुनः पुनः प्रणाम है। योगी— योग के द्वारा जानने के योग्य, योग माया वाले आपके लिये नमस्कार है।

नमस्ते प्राणपालाय घण्टानादप्रियाय च।
कपालिने नमस्तुभ्यं ज्योतिषां पतये नमः॥७६॥

प्राणरक्षक, घण्टानाद के प्रिय, कपाली और ज्योतिर्गण के स्वामी आपकी सेवा में प्रणाम है।

नमो नमोऽस्तु ते तुभ्यं भूय एव नमो नमः।
मह्यं सर्वात्मना कामान् प्रयच्छ परमेश्वर॥७७॥

आपको नमस्कार, नमस्कार। आपको पुनः पुनः नमस्कार। हे परमेश्वर! सर्वात्मभाव से मुझे कामनाएँ प्रदान करें।

सूत उवाच

एवं हि भक्त्या देवेशमभिष्टूय स माधवः।
पपात पादयोर्विप्रा देवदेव्योः स दण्डवत्॥७८॥

सूतजी ने कहा— प्रभु माधव ने इस प्रकार से बड़े ही भक्तिभाव से देवेश्वर की स्तुति की और हे विप्रो! उन देव और देवी के चरणों में उन्होंने दण्डवत् प्रणाम किया।

उत्थाप्य भगवान् सोमः कृष्णं केशिनिषूदनम्।
बभाषे मधुरं वाक्यं मेघगम्भीरनिःस्वनः॥७९॥

मेघ के तुल्य गम्भीर ध्वनि वाले भगवान् सोम ने केशिनिषूदन कृष्ण को उठाकर मधुर वचन कहा।

किमर्थं पुण्डरीकाक्ष तप्यते भवता तपः।
त्वमेव दाता सर्वेषां कामानां कर्मणामिह॥८०॥

शम्भु ने कहा— हे पुण्डरीकाक्ष! आप किस प्रयोजन हेतु ऐसा कठोर तप कर रहे हैं? इस संसार में आप स्वयं ही सम्पूर्ण कर्मों के फलों तथा कामनाओं के प्रदाता हैं।

त्वं हि सा परमा मूर्त्तिर्मम नारायणाह्वया।
न विना त्वां जगत्सर्वं विद्यते पुरुषोत्तम॥८१॥

आप वही मेरी नारायण नाम वाली परम मूर्ति हैं। हे पुरुषोत्तम! आपके विना इस सम्पूर्ण जगत् की विद्यमानता ही नहीं है।

वेत्थ नारायणानन्तमात्मानं परमेश्वरम्।
महादेवं महायोगं स्वेन योगेन केशव॥८२॥

हे नारायण! हे केशव! आप अनन्तात्मा-परमेश्वर महादेव और महायोग को अपने ही योग के द्वारा जानते हैं।

श्रुत्वा तद्वचनं कृष्णः प्रहसन्वै वृषध्वजम्।
उवाचान्वीक्ष्य विश्वेशं देवीञ्च हिमशैलजाम्॥८३॥

श्रीकृष्ण ने उनके इस वचन को सुनकर हँसते हुए वृषभध्वज विश्वेश तथा हिम शैलजादेवी को देखकर कहा।

ज्ञातं हि भवता सर्वं स्वेन योगेन शङ्कर।
इच्छाम्यात्मसमं पुत्रं त्वद्भक्तं देहि शङ्कर॥८४॥

हे शङ्कर! आपने अपने योग से सभी कुछ जान लिया है। मैं अपने ही समान आपका भक्त पुत्र प्राप्त करना चाहता हूँ उसे आप प्रदान कीजिए।

तथास्त्वित्याह विश्वात्मा प्रहृष्टमनसा हरः।
देवीमालोक्य गिरिजां केशवं परिषस्वजे॥८५॥

फिर विश्वात्मा हर ने बहुत ही प्रसन्न मन से कहा था— तथास्तु-अर्थात् ऐसा ही होवे। फिर गिरजा देवी की ओर देखकर केशव श्रीकृष्ण का आलिंगन किया था।

ततः सा जगतां माता शङ्करार्द्धशरीरिणी।
व्याजहार हृषीकेशं देवी हिमगिरीन्द्रजा॥८६॥

इसके उपरान्त भगवान् शङ्कर की अर्द्धाङ्गिनी, जगत् की माता, हिमगिरि की पुत्री पार्वती देवी ने हृषीकेश कृष्ण से इस प्रकार कहा था।

अहं जाने तवानन्त निश्चलां सर्वदाच्युत।
अनन्यामीश्वरे भक्तिमात्मन्यपि च केशव॥८७॥

हे अनन्त! हे केशव! हे अच्युत! मैं आपकी ईश्वर के प्रति अनन्य निश्चल भक्ति को सर्वदा जानती हूँ और जो मुझ में है, वह भी जानती हूँ।

त्वं हि नारायणः साक्षात्सर्वात्मा पुरुषोत्तमः।
प्रार्थितो दैवतैः पूर्वं सञ्जातो देवकीसुतः॥८८॥

(मैं जानती हूँ कि) आप साक्षात् नारायण सर्वात्मा पुरुषोत्तम हैं। देवताओं द्वारा पहले प्रार्थना की गई थी, इसीलिए देवकी के पुत्ररूप में आपने जन्म ग्रहण किया है।

पश्य त्वमात्मनात्मानमात्मानं मम सम्प्रति।
नावयोर्विद्यते भेद एकं पश्यन्ति सूरयः॥८९॥

सम्प्रति आप अपनी ही आत्मा से अपने को और मुझे भी उस आत्मा में देखो। हम दोनों में कोई भेद नहीं है। विद्वान् लोग हम दोनों को एक ही देखते हैं।

इमानिह वरानिष्टान्मत्तो गृह्णीष्व केशव।
सर्वज्ञत्वं तथैश्वर्यं ज्ञानं तत्पारमेश्वरम्॥९०॥
ईश्वरे निश्चलां भक्तिमात्मन्यपि परं बलम्।

फिर भी हे केशव! आप मुझसे अभीष्ट वरदानों को ग्रहण करें। सर्वज्ञता, ऐश्वर्य, परमेश्वर सम्बन्धी ज्ञान, ईश्वर में निश्चल भक्ति और आत्मा में भी परम बल— ये सभी ग्रहण करो।

एवमुक्तस्तया कृष्णो महादेव्या जनार्दनः॥९१॥
आदेशं शिरसा गृह्य देवोऽप्याह तथेश्वरम्।

महादेवी पार्वती देवी के द्वारा इस प्रकार कहने पर जनार्दन श्रीकृष्ण ने उनके आदेश को सिर से ग्रहण किया। तब देव शंकरने भी उसी प्रकार से ईश्वर को आशीर्वाद कहे।

प्रगृह्य कृष्णं भगवानथेशः
करेण देव्या सह देवदेवः।
सम्पूज्यमानो मुनिभिः सुरेशै-
र्जगाम कैलासगिरिं गिरीशः॥९२॥

इसके अनन्तर देवी के साथ ही देवों के देव भगवान् ईश ने अपने हाथ से कृष्ण को पकड़कर मुनियों और देवेश्वरों के द्वारा भली-भाँति पूजित होते हुए वे गिरीश शंकर कैलास पर्वत को चले गये।

इति श्रीकूर्मपुराणे यदुवंशानुकीर्तने कृष्णतपश्चरणं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥२५॥

षड्विंशोऽध्यायः

(श्रीकृष्ण की तपस्या और शिवलिङ्ग की उत्पत्ति)

सूत उवाच

प्रविश्य मेरुशिखरं कैलासं कनकप्रभम्।
रराम भगवान्सोमः केशवेन महेश्वरः॥ १॥

सूतजी ने कहा- अनन्तर भगवान् सोम महेश्वर सुवर्ण की प्रभा वाले कैलास पर्वत के मेरु शिखर पर जाकर केशव के साथ रमण करने लगे।

अपश्यंस्ते महात्मानं कैलासगिरिवासिनः।
पूजयाञ्चक्रिरे कृष्णं देवदेवमिवाच्युतम्॥ २॥

उस समय कैलास पर्वत के निवासियों ने अच्युत महात्मा कृष्ण को दर्शन किये और उनकी महादेव के समान ही पूजा की।

चतुर्बाहुमुदाराङ्गं कालमेघसमप्रभम्।
किरीटिनं शार्ङ्गपाणिं श्रीवत्साङ्कितवक्षसम्॥ ३॥
दीर्घबाहुं विशालाक्षं पीतवाससमच्युतम्।
दधानमुरसा मालां वैजयन्तीमनुत्तमाम्॥ ४॥
भ्राजमानं श्रिया देव्या युवानमतिकोमलम्।
पद्माङ्घ्रि पद्मनयनं सस्मितं सद्गतिप्रदम्॥ ५॥

वे भगवान् अच्युत चतुर्बाहु, सुन्दर शरीरधारी, कालमेघ की भाँति प्रभा वाले, मुकुटधारी, हाथ में धनुष लिए हुए, श्रीवत्सचिह्नित वक्षस्थल वाले, दीर्घबाहु, विशालाक्ष और पीत वस्त्रधारी थे। उन्होंने गले में उत्तम वैजयन्ती माला धारण की हुई थी। वे अत्यन्त कोमल, युवा और दिव्य कान्ति से सुशोभित थे। कमल के समान उनके सुन्दर चरण थे और कमल समान ही नेत्र थे। उनका मुख मन्द हास्ययुक्त था और वे सद्गति प्रदान करने वाले थे।

कदाचित्तत्र लीलार्थं देवकीनन्दवर्द्धनः।
भ्राजमानः श्रिया कृष्णश्चचार गिरिकन्दरम्॥ ६॥

देवकी के आनन्द को बढ़ाने वाले वे भगवान् कृष्ण किसी समय आनन्द मनाने के लिए गिरिकन्दरा में भ्रमण करने लगे। वे शरीर की कान्ति से अत्यन्त सुशोभित थे।

गन्धर्वाप्सरसां मुख्या नागकन्याश्च कृत्स्नशः।
सिद्धा यक्षाश्च गन्धर्वा देवास्तं च जगन्मयम्॥ ७॥
दृष्ट्वाश्चर्यं परं गत्वा हर्षादुत्फुल्ललोचनाः।
मुमुचुः पुष्पवर्षाणि तस्य मूर्ध्नि महात्मनः॥ ८॥

गन्धर्वों की प्रमुख अप्सरायें और सभी नागकन्यायें, सिद्ध, यक्ष, गन्धर्व और देवों ने उस जगन्मय को देखा और परम विस्मय को प्राप्त कर हर्ष से प्रफुल्लित नेत्र वाले होकर उन महात्मा के मस्तक पर पुष्पवर्षा करने लगे।

गन्धर्वकन्यका दिव्यास्तद्वदप्सरसो वराः।
दृष्ट्वा चकमिरे कृष्णं सुस्तुतं शुचिभूषणाः॥ ९॥

सुन्दर आभूषणों वाली गन्धर्वों की दिव्य कन्याएँ और वैसी ही श्रेष्ठ अप्सरायें स्तुति किये जाने वाले कृष्ण को देखकर काम के वशीभूत हो गई।

काश्चिद्गायन्ति विविधं गानं गीतविशारदाः।
सम्प्रेक्ष्य देवकीसूनुं सुन्दरं काममोहिताः॥ १०॥

उन सुन्दर देवकीपुत्र को देखकर काममोहित हुई उनमें से कुछ गीतविशारद कन्यायें विविध गान का आलाप करने लगीं।

काश्चिद्विलासबहुला नृत्यन्ति स्म तदग्रतः।
सम्प्रेक्ष्य सस्मितं काश्चित्पपुस्तद्वदनामृतम्॥ ११॥

कुछ विलासयुक्त होकर उनके आगे नृत्य करने लग गईं और कुछ ने उनके मन्द हास्ययुक्त मुख को देख-देखकर वदनामृत का पान किया।

काश्चिद्भूषणवर्याणि स्वांगादादाय सादरम्।
भूषयाञ्चक्रिरे कृष्णं कन्या लोकविभूषणम्॥ १२॥

कुछ कन्याएँ अपने अंग से बहुमूल्य आभूषणों को उतारकर आदरपूर्वक संसार के आभूषणरूप श्रीकृष्ण को सजाने लग गयीं।

काश्चिद्भूषणवर्याणि समादाय तदङ्गतः।
स्वात्मानं भूषयामासुः स्वात्मकैरपि माधवम्॥ १३॥

कुछ उनके ही अंगों से उत्तम आभूषण उतारकर अपने को ही सजाने लगीं और अपने आभूषणों से माधव को भी सजाने लगीं।

काचिदागत्य कृष्णस्य समीपं काममोहिता।
चुचुम्ब वदनाम्भोजं हरेर्मुग्धमृगेक्षणा॥ १४॥

कुछ काम से मोहित हुई मुग्ध मृग के समान नेत्रों वाली कामिनियां कृष्ण के समीप आकर हरि के मुखकमल को चूमने लगीं।

प्रगृह्य काश्चिद् गोविन्दं करेण भवनं स्वकम्।
प्रापयामास लोकादिं मायया तस्य मोहिता॥ १५॥

कुछ कन्याएँ भगवान् की माया से मोहित होकर गोविन्द का हाथ पकड़कर अपने-अपने भवन में ले जाने लगीं।

तासां स भगवान् कृष्ण: कामान् कमललोचन:।
बहूनि कृत्वा रूपाणि पूरयामास लीलया॥ १६॥

कमलनयन भगवान् कृष्ण ने अपनी लीला से अनेक रूप धारण करते हुए उन स्त्रियों में कामनाओं की पूर्ति की।

एवं वै सुचिरं कालं देवदेवपुरे हरि:।
रेमे नारायण: श्रीमान्मायया मोहयञ्जगत्॥ १७॥

इस प्रकार देवाधिदेव शंकर की नगरी में श्रीमान् नारायण विष्णु ने चिरकाल तक अपनी माया से जगत् को मोहित करते हुए रमण किया।

गते बहुतिथे काले द्वारवत्या निवासिन:।
बभूवुर्विकला भीता गोविन्दविरहे जना:॥ १८॥

बहुत समय बीत जाने पर द्वारकापुरी के निवासी जन गोविन्द के विरह में भयभीत और विकल हो गये।

तत: सुपर्णो बलवान्पूर्वमेव विसर्जित:।
स कृष्णं मार्गमाणस्तु हिमवन्तं ययौ गिरिम्॥ १९॥

तदनन्तर बलवान् सुन्दर पंख वाले गरुड जिन्हें पूर्व में छोड़ दिया गया था, वे कृष्ण को खोजते हुए हिमालय पर्वत पर आ पहुँचे।

अदृष्ट्वा तत्र गोविन्दं प्रणम्य शिरसा मुनिम्।
आजगामोपमन्यु तं पुरीं द्वारवतीं पुन:॥ २०॥

वहां पर गोविन्द को न देखकर उपमन्यु मुनि को शिर झुकाकर प्रणाम करके वे पुन: द्वारका पुरी में लौट आये।

तदन्तरे महादैत्या राक्षसाश्चातिभीषणा:।
आजग्मुर्द्वारकां शुभ्रां भीषयन्त: सहस्रश:॥ २१॥

इसी बीच अति भयानक राक्षस और महान् दैत्य हजारों की संख्या में सुन्दर द्वारका पुरी में भय उत्पन्न करते हुए आ पहुँचे।

स तान् सुपर्णो बलवान् कृष्णतुल्यपराक्रम:।
हत्वा युद्धेन महता रक्षति स्म पुरीं शुभाम्॥ २२॥

तब भगवान् कृष्ण के समान ही पराक्रमी बलशाली गरुड़ ने सबके साथ महान् युद्धकर उन्हें मारकर सुन्दर नगरी की रक्षा की।

एतस्मिन्नेव काले तु नारदो भगवानृषि:।
दृष्ट्वा कैलासशिखरे कृष्णं द्वारवतीं गत:॥ २३॥

इसी समय के बीच भगवान् नारद ऋषि कृष्ण को कैलास पर्वत के शिखर पर देखकर द्वारका की ओर गये।

ते दृष्ट्वा नारदमृषिं सर्वे तत्र निवासिन:।
प्रोचुर्नारायणो नाथ: कुत्रास्ते भगवान् हरि:॥ २४॥

वहां के निवासियों ने ऋषि नारद को देखकर पूछा कि स्वामी नारायण भगवान् विष्णु कहां पर विराजमान हैं।

स तानुवाच भगवान्कैलासशिखरे हरि:।
रमतेऽद्य महायोगी तं दृष्ट्वाहमिहागत:॥ २५॥

नारद ने उन्हें कहा- वे महायोगी भगवान् हरि तो कैलास पर्वत पर रमण कर रहे हैं, उन्हीं को देखकर मैं यहां आया हूँ।

तस्योपश्रुत्य वचनं सुपर्ण: पततां वर:।
जगामाकाशगो विप्रा: कैलासं गिरिमुत्तमम्॥ २६॥

हे ब्राह्मणो! उनका यह वचन सुनकर पक्षियों में श्रेष्ठ गरुड़ आकाश मार्ग से उत्तम गिरि कैलास पर आ गये।

ददर्श देवकीसूनुं भवने रत्नमण्डिते।
तत्रासनस्थं गोविन्दं देवदेवान्तिके हरिम्॥ २७॥

वहां पर एक रत्नजटित भवन में देवाधिदेव शम्भु के निकट आसन पर विराजमान देवकीपुत्र हरि गोविन्द को उन्होंने देखा।

उपास्यमानममरैर्दिव्यस्त्रीभि: समन्तत:।
महादेवगणै: सिद्धैर्योगिभि: परिवारितम्॥ २८॥

देवगण और दिव्याङ्गनाओं द्वारा चारों ओर से उनकी उपासना की जा रही थी। वे महादेव के गणों और सिद्ध योगियों द्वारा घिरे हुए थे।

प्रणम्य दण्डवद्भूमौ सुपर्ण: शङ्करं शिवम्।
निवेदयामास हरिं प्रवृत्तं द्वारकापुरे॥ २९॥

गरुड़ ने शिव शंकर को भूमि पर दण्डवत् प्रणाम करके द्वारिकापुरी में घटित वृत्तान्त को निवेदित किया।

तत: प्रणम्य शिरसा शङ्करं नीललोहितम्।
आजगाम पुरीं कृष्ण: सोऽनुज्ञातो हरेण तु॥ ३०॥
आरुह्य कश्यपसुतं स्त्रीगणैरभिपूजित:।
वचोभिरमृतास्वादैर्मानितो मधुसूदन:॥ ३१॥

तदनन्तर नीललोहित शंकर को विनयपूर्वक प्रणाम करके भगवान् कृष्ण महादेव से आज्ञा लेकर कश्यपसुत गरुड पर आरोहण कर द्वारकापुरी में आ गये। उस समय वे मधुसूदन

स्त्रियों के समूह द्वारा अभिपूजित होते हुए अमृतमय वचनों से सम्मानित हो रहे थे।

वीक्ष्य यान्तममित्रघ्नं गन्धर्वाप्सरसां वराः।
अन्वगच्छन्महायोगं शङ्खचक्रगदाधरम्॥ ३२॥

उन शत्रुनाशी भगवान् को जाते हुए देखकर गन्धर्वों की दिव्य अप्सराओं ने शंख-चक्र-गदाधारी महायोगी का अनुगमन किया।

विसर्जयित्वा विश्वात्मा सर्वा एवाङ्गना हरिः।
ययौ स तूर्णं गोविन्दो दिव्यां द्वारवतीं पुरीम्॥ ३३॥

वे विश्वात्मा हरि गोविन्द उन सभी अङ्गनाओं को विसर्जित करके शीघ्र ही दिव्य द्वारिका पुरी को चले गये।

गते देवेऽसुररिपौ च कामिन्यो मुनीश्वराः।
निशेव चन्द्ररहिता विना तेन चकाशिरे॥ ३४॥

उन असुररिपु देव के चले जाने पर कामिनियां और श्रेष्ठ मुनिगण उनके बिना चन्द्रमा रहित रात्रि की भाँति प्रकाशमान नहीं हुए अर्थात् निस्तेज हो गये।

श्रुत्वा पौरजनास्तूर्णं कृष्णागमनमुत्तमम्।
मण्डयाञ्चक्रिरे दिव्यां पुरीं द्वारवतीं शुभाम्॥ ३५॥

भगवान् कृष्ण के आगमन का उत्तम समाचार सुनकर पुरवासियों ने शीघ्र ही दिव्य एवं शुभ द्वारकापुरी को सुसज्जित कर दिया।

पताकाभिर्विशालाभिर्ध्वजैरन्तर्बहिः कृतैः।
मालादिभिः पुरीं रम्यां भूषयाञ्चक्रिरे जनाः॥ ३६॥

लोगों ने रम्य नगरी को अन्दर और बाहर विशाल पताकाओं, ध्वजाओं और मालाओं से सजा दिया।

अवादयन्त विविधान्वादित्रान् मधुरस्वनान्।
शङ्खान् सहस्रशो दध्मुर्वीणावादान्वितेनिरे॥ ३७॥

उस समय मधुर स्वर में विविध वाद्ययन्त्र बजने लगे। हजारों शंख गूँज उठे और वीणा से निकलती ध्वनि सभी दिशाओं में फैल गई।

प्रविष्टमात्रे गोविन्दे पुरीं द्वारवतीं शुभाम्।
अगायन्मधुरं गानं स्त्रियो यौवनशोभिताः॥ ३८॥

गोविन्द के उस शुभ द्वारवती पुरी में प्रवेश करते ही युवती स्त्रियां मधुर गीत गाने लगीं।

दृष्ट्वा ननृतुरीशानं स्थिताः प्रासादमूर्द्धसु।
मुमुचुः पुष्पवर्षाणि वसुदेवसुतोपरि॥ ३९॥

वे ईशान को देखते ही नृत्य करने लगीं और अपने महल के ऊपरी भाग में स्थित होकर वसुदेवपुत्र कृष्ण पर फूल बरसाने लगीं।

प्रविश्य भगवान् कृष्णस्त्वाशीर्वादाभिवर्द्धितः।
वरासने महायोगी भाति देवीभिरन्वितः॥ ४०॥

इस प्रकार आशीर्वादादि से संवर्धित होकर भगवान् कृष्ण ने नगरी में प्रवेश किया और वहाँ उत्तम आसन पर विराजमान होते हुए वे महायोगी देवियों के साथ अत्यन्त सुशोभित हुए।

सुरम्ये मण्डपे शुभ्रे शङ्खाद्यैः परिवारितः।
आत्मजैरभितो मुख्यैः स्त्रीसहस्रैश्च संवृतः॥ ४१॥
तत्रासनवरे रम्ये जाम्बवत्या सहाच्युतः।
भ्राजते चोमया देवो यथा देव्या समन्वितः॥ ४२॥

वे उस सुरम्य शुभ्र मंडप में शंख आदि बजाने वालों से घिरे हुए थे। उनके दोनों ओर प्रमुख आत्मीय जन थे और चारों तरफ हजारों स्त्रियों से भी अच्छी प्रकार घिरे हुए थे। वहां जाम्बवती के साथ सुन्दर श्रेष्ठ आसन पर विराजमान अच्युत ऐसे दिखाई दे रहे थे, जैसे देवी पार्वती के साथ महादेव सुशोभित हो रहे हों।

आजग्मुर्देवगन्धर्वा द्रष्टुं लोकादिमव्ययम्।
महर्षयः पूर्वजाता मार्कण्डेयादयो द्विजाः॥ ४३॥

हे द्विजगण! उस समय देव, गन्धर्व, पूर्वजात मार्कण्डेयादि महर्षिगण उन लोकादि, अविनाशी प्रभु को देखने के लिए आ गये।

ततः स भगवान् कृष्णो मार्कण्डेयं समागतम्।
ननामोत्थाय शिरसा स्वासनञ्च ददौ हरिः॥ ४४॥

तब भगवान् कृष्ण हरि ने वहाँ पर आये हुए मार्कण्डेयजी को शिर झुकाकर प्रणाम किया और उन्हें आसन प्रदान किया।

संपूज्य तानृषिगणान् प्रणामेन सहानुगः।
विसर्जयामास हरिर्दत्त्वा तदभिवाञ्छितान्॥ ४५॥

उन सब ऋषियों को अनुचरों सहित प्रणामपूर्वक पूजा करके हरि ने उनका अभीष्ट प्रदान करते हुए उन्हें विसर्जित किया।

तदा मध्याह्नसमये देवदेवः स्वयं हरिः।
स्नातः शुक्लाम्बरो भानुमुपतिष्ठन् कृताञ्जलिः॥ ४६॥

तदनन्तर देवदेव हरि ने मध्याह्न के समय स्नान करके श्वेत वस्त्र धारण कर हाथ जोड़कर सूर्य की उपासना की।

जजाप जाप्यं विधिवत्प्रेक्षमाणो दिवाकरम्।
तर्पयामास देवेशो देवान् पितृगणान्मुनीन्॥४७॥

देवेश्वर ने दिवाकर को निहारते हुए विधिपूर्वक मंत्रों का जप किया और देवताओं, पितरों तथा मुनियों का भी तर्पण किया।

प्रविश्य देवभवनं मार्कण्डेयेन चैव हि।
पूजयामास लिङ्गस्थं भूतेशं भूतिभूषणम्॥४८॥

उसी प्रकार मार्कण्डेय ऋषि ने भी देवभवन में प्रवेश करके भस्मरूप आभूषण वाले, लिङ्गस्वरूप, भूतपति महादेव की पूजा की।

समाप्य नियमं सर्वं नियन्ता स स्वयं नृणाम्।
भोजयित्वा मुनिवरं ब्राह्मणानभिपूज्य च॥४९॥
कृत्वात्मयोगं विप्रेन्द्रा मार्कण्डेयेन चाच्युतः।
कथां पौराणिकीं पुण्यां चक्रे पुत्रादिभिर्वृतः॥५०॥

हे विप्रेन्द्रो! मनुष्यों के स्वयं नियन्ता प्रभु ने सभी कर्म नियमपूर्वक समाप्त करके मुनिवर को भोजन कराकर और ब्राह्मणों का अभिवादन करके स्वयं भी अच्युत ने आत्मयोग— अपना कार्य संपादन करके पुत्रादि के साथ बैठकर मार्कण्डेय मुनि के साथ पवित्र पौराणिक कथा की।

अथैतत्सर्वमखिलं दृष्ट्वा कर्म महामुनिः।
मार्कण्डेयो हसन्कृष्णं बभाषे मधुरं वचः॥५१॥

अनन्तर महामुनि मार्कण्डेय ने यह सारा नित्यकर्म देखकर हँसते हुए कृष्ण से ये मधुर वचन कहे।

मार्कण्डेय उवाच

कः समाराध्यते देवो भवता कर्मभिः शुभैः।
ब्रूहि त्वं कर्मभिः पूज्यो योगिनां ध्येय एव च॥५२॥
त्वं हि तत्परमं ब्रह्म निर्वाणममलं पदम्।
भारावतरणार्थाय जातो वृष्णिकुले प्रभुः॥५३॥

मार्कण्डेय बोले— इन शुभ कर्मों द्वारा आप किस देवता की आराधना कर रहे हैं? बताने की कृपा करें। आप तो स्वयं इन कर्मों द्वारा पूज्य और योगियों के लिए ध्येय हैं। आप ही वह परम ब्रह्म हैं, जो मोक्षरूप निर्मल पद है। आप प्रभु तो वृष्णिकुल में पृथ्वी का भार उतारने के लिए उत्पन्न हुए हैं।

तमब्रवीन्महाबाहुः कृष्णो ब्रह्मविदां वरः।
शृण्वतामेव पुत्राणां सर्वेषां प्रहसन्निव॥५४॥

तब उन सभी पुत्रों के सुनते हुए ही ब्रह्मविदों में श्रेष्ठ महाबाहु कृष्ण ने हँसते हुए से उन मुनि से कहा-

श्रीभगवानुवाच

भवता कथितं सर्वं सत्यमेव न संशयः।
तथापि देवमीशानं पूजयामि सनातनम्॥५५॥

श्रीभगवान् ने कहा— आपने जो कुछ भी कहा, वह सब सत्य है, इसमें संशय नहीं है। तथापि मैं सनातन देव ईशान (शंकर) की पूजा करता हूँ।

न मे विप्रास्ति कर्त्तव्यं नानवाप्तं कथञ्चन।
पूजयामि तथापीशं जानन्वै परमं शिवम्॥५६॥

हे विप्र! मेरे लिए न तो कुछ करने को है और न मुझे कुछ अप्राप्त ही है, तथापि यह जानते हुए भी मैं परम शिव ईश की पूजा करता हूँ।

न वै पश्यन्ति ते देवं मायया मोहिता जनाः।
ततश्चैवात्मनो मूलं ज्ञापयन् पूजयामि तम्॥५७॥
न च लिङ्गार्चनात्पुण्यं लोके दुर्गतिनाशनम्।
तथा लिङ्गे हितायैषां लोकानां पूजयेच्छिवम्॥५८॥

माया से मोहित लोग उन देव (शंकर) को नहीं देख पाते हैं। परन्तु मैं अपने कारण का परिचय देते हुए उनका पूजन करता हूँ। इस संसार में लिङ्गार्चन से अधिक पुण्यदायक कुछ भी नहीं है, वही दुर्गति का नाश करने वाला है। इस प्रकार प्राणियों के हित की कामना से लिङ्ग में शिव की पूजा करनी चाहिए।

योऽहं तल्लिंगमित्याहुर्वेदवादविदो जनाः।
ततोऽहमात्ममीशानं पूजयाम्यात्मनैव तत्॥५९॥

यह लिङ्ग मेरा ही स्वरूप है, ऐसा वेदशास्त्रों के ज्ञाता सज्जन कहते हैं। इसीलिये मैं अपने ही आत्मस्वरूप ईशान की पूजा करता हूँ।

तस्यैव परमा मूर्त्तिस्तन्मयोऽहं न संशयः।
नावयोर्विद्यते भेदो वेदेष्वेतन्न संशयः॥६०॥

मैं उन्हीं की परमा मूर्ति हूँ, मैं ही शिवमय हूँ, इसमें कोई संदेह नहीं। हम दोनों में कोई भेद विद्यमान नहीं है, यह बात वेदों में प्रतिपादित है, इसमें थोड़ा भी संशय नहीं है।

एष देवो महादेवः सदा संसारभीरुभिः।

याज्यः पूज्यश्च वन्द्यश्च ज्ञेयो लिङ्गे महेश्वरः॥ ६१॥

संसार में भयभीत मनुष्यों द्वारा यही देव महादेव सदा याज्य, पूज्य और वन्दनीय हैं। इस लिङ्ग में महेश्वर को ही प्रतिष्ठित जानना चाहिये।

मार्कण्डेय उवाच

किं तल्लिगं सुरश्रेष्ठ लिङ्गे संपूज्यते च कः।
ब्रूहि कृष्ण विशालाक्ष गहनं ह्येतदुत्तमम्॥ ६२॥

श्रीमार्कण्डेय मुनि ने पूछा— हे सुरश्रेष्ठ! यह लिङ्ग क्या है और लिङ्ग में किस की पूजा होती है? हे विशाल नेत्रों वाले कृष्ण! आप इस गूढ़ एवं उत्तम विषय को कहें।

श्रीभगवानुवाच

अव्यक्तं लिङ्गमित्याहुरानन्दं ज्योतिरक्षयम्।
वेदा महेश्वरं देवमाहुर्लिङ्गिनमव्ययम्॥ ६३॥

श्रीभगवान् ने कहा— अक्षय, ज्योतिःस्वरूप, अव्यक्त आनन्द को ही लिङ्ग कहा गया है और वेदशास्त्र अविनाशी महेश्वर देव को लिङ्गी (लिङ्ग का धारणकर्ता) कहते हैं।

पुरा चैकार्णवे घोरे नष्टे स्थावरजंगमे।
प्रबोधार्थं ब्रह्मणो मे प्रादुर्भूतो महाशिवः॥ ६४॥
तस्मात्कालात्समारभ्य ब्रह्मा चाहं सदैव हि।
पूजयावो महादेवं लोकानां हितकाम्यया॥ ६५॥

प्राचीन काल में जब स्थावर-जङ्गम के नष्ट हो जाने पर सर्वत्र जल व्याप्त होकर एक ही समुद्ररूप हो गया था, तब ब्रह्मा और मुझे प्रबोधित करने के लिये वहां शिव का प्रादुर्भाव हुआ। उसी समय से लोकों के कल्याण की इच्छा से ब्रह्मा तथा मैं दोनों ही सदा महादेव की पूजा करते हैं।

मार्कण्डेय उवाच

कथं लिङ्गमभूत्पूर्वमैश्वरं परमं पदम्।
प्रबोधार्थं स्वयं कृष्ण वक्तुमर्हसि साम्प्रतम्॥ ६६॥

श्रीमार्कण्डेयजी बोले— हे कृष्ण! अब हमें यह बतायें कि पूर्वकाल में आप लोगों को प्रबोधित करने के लिए यह ईश्वरीय परम पदरूप लिङ्ग स्वयं प्रकट कैसे हुआ?

श्रीभगवानुवाच

आसीदेकार्णवं घोरमविभागं तमोमयम्।
मध्ये चैकार्णवे तस्मिञ्शङ्खचक्रगदाधरः॥ ६७॥
सहस्रशीर्षा भूत्वाहं सहस्राक्षः सहस्रपात्।
सहस्रबाहुः पुरुषः शयितोऽहं सनातनः॥ ६८

श्रीभगवान् ने कहा— जब विभागरहित, तमोमय, घोर एकमात्र अर्णव ही था, तब उस एकार्णव के बीच शंख, चक्र-गदाधारी, हजारों सिर, हजारों आँखें, हजारों पाद, और हजारों बाहु वाला सनातन मैं शयन कर रहा था।

एतस्मिन्नन्तरे दूरे पश्यामि ह्यमितप्रभम्।
कोटिसूर्यप्रतीकाशं भ्राजमानं श्रियावृतम्॥ ६९॥
चतुर्वक्त्रं महायोगं पुरुषं काञ्चनं प्रभुम्।
कृष्णाजिनधरं देवमृग्यजुः सामभिः स्तुतम्॥ ७०॥
निमेषमात्रेण स मां प्राप्तो योगविदां वरः।
व्याजहार स्वयं ब्रह्मा स्मयमानो महाद्युतिः॥ ७१॥

इसी अन्तराल में मैंने दूर पर स्थित अमित प्रभा वाले, करोड़ों सूर्य के समान आभा वाले, प्रकाशमान, शोभासम्पन्न, महायोगी, चतुर्मुख, संसार के कारण, पुराण पुरुष, कृष्णमृग का चर्म धारण किये हुए, ऋक्, यजुः तथा सामवेद द्वारा स्तुति किये जाते हुए ब्रह्मदेव को देखा। क्षणभर में ही वे योगवेत्ताओं में श्रेष्ठ, महाद्युति ब्रह्मा मुस्कुराते हुए स्वयं मेरे समीप आकर बोले।

कस्त्वं कुतो वा किंचेह तिष्ठसे वद मे प्रभो।
अहं कर्ता हि लोकानां स्वयम्भूः प्रपितामहः॥ ७२॥

हे प्रभो! आप कौन हैं, कहाँ से आये हैं और किस कारण यहाँ स्थित हैं? आप मुझे बताने की कृपा करें। मैं लोकों का जन्मदाता स्वयम्भू पितामह ब्रह्मा हूँ।

एवमुक्तस्तदा तेन ब्रह्मणाहमुवाच ह।
अहं कर्तास्मि लोकानां संहर्ता च पुनः पुनः॥ ७३॥
एवं विवादे वितते मायया परमेष्ठिनः।
प्रबोधार्थं परं लिङ्गं प्रादुर्भूतं शिवात्मकम्॥ ७४॥
कालानलसमप्रख्यं ज्वालामालासमाकुलम्।
क्षयवृद्धिविनिर्मुक्तमादिमध्यान्तवर्जितम्॥ ७५॥

उन ब्रह्मा के ऐसा कहने पर मैंने उनसे कहा— मैं पुनः-पुनः लोकों की सृष्टि करने वाला हूँ और उसका संहार करने वाला हूँ। परमेष्ठी की माया के कारण इस प्रकार का विवाद बढ़ जाने पर (हम लोगों को) यथार्थ स्थिति का ज्ञान कराने के लिये उस समय शिवस्वरूप परम लिङ्ग का प्रादुर्भाव हुआ। वह लिङ्ग प्रलयकालीन अग्नि के समान अनेक ज्वाला-मालाओं से व्याप्त, क्षय एवं वृद्धि से मुक्त और आदि, मध्य तथा अन्त से रहित था।

ततो मामाह भगवानधो गच्छ त्वमाशु वै।
अन्तमस्य विजानीष्व ऊर्ध्वं गच्छेऽहमित्यजः॥७६॥
तदाशु समयं कृत्वा गतावूर्ध्वमधश्च तौ।
पितामहोऽप्यहं नान्तं ज्ञातवन्तौ समेत्य तौ॥७७॥

तब भगवान् शिव ने मुझ से कहा— तुम शीघ्र ही (लिङ्ग के) नीचे की ओर जाओ और इसके अन्त का पता लगाओ और ये अजन्मा ब्रह्मा ऊपर की ओर जायँ। तदनन्तर शीघ्र ही प्रतिज्ञा करके हम दोनों ऊपर तथा नीचे की ओर गये, किन्तु पितामह तथा मैं दोनों ही उसका अन्त नहीं जान पाये।

ततो विस्मयमापन्नौ भीतौ देवस्य शूलिनः।
मायया मोहितौ तस्य ध्यायन्तौ विश्वमीश्वरम्॥७८॥
प्रोच्चरन्तौ महानादमोङ्कारं परमं पदम्।
तं प्राञ्जलिपुटौ भूत्वा शम्भुं तुष्टुवतुः परम्॥७९॥

तदनन्तर त्रिशूलधारी देव की माया से मोहित हम दोनों भयभीत एवं आश्चर्यचकित हो गये और उन विश्वरूप ईश्वर का ध्यान करने लगे। फिर परमपद महानाद ओंकार का उच्चारण करते हुए दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए परम शम्भु की स्तुति करने लगे।

ब्रह्मविष्णू ऊचतुः

अनादिमूलसंसाररोगवैद्याय शम्भवे।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्त्तये॥८०॥
प्रलयार्णवसंस्थाय प्रलयोद्भूतिहेतवे।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्त्तये॥८१॥
ज्वालामालाप्रतीकाय ज्वलनस्तम्भरूपिणे।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्त्तये॥८२॥
आदिमध्यान्तहीनाय स्वभावामलदीप्तये।
नमः शिवायानन्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्त्तये॥८३॥
महादेवाय महते ज्योतिषेऽनन्ततेजसे।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्त्तये॥८४॥
प्रधानपुरुषेशाय व्योमरूपाय वेधसे।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्त्तये॥८५॥

ब्रह्मा तथा विष्णु ने कहा— अनादि, मूलरूप, संसाररूपी रोगों के वैद्यस्वरूप शम्भु, शिव, शान्त, लिङ्गमूर्ति वाले ब्रह्म को नमस्कार है। प्रलयकालीन समुद्र में स्थित रहने वाले, सृष्टि और प्रलय के कारणरूप शिव, शान्त, लिङ्गमूर्तिधारी ब्रह्म को नमस्कार है। ज्वालामालाओं प्रतीकरूप, प्रज्वलित स्तम्भरूप, शिव, शान्त, लिङ्गशरीरधारी ब्रह्म को नमस्कार है। आदि, मध्य और अन्त से रहित, स्वभावतः निर्मल तेजोरूप शिव, शान्त तथा लिङ्गस्वरूप मूर्तिमान् ब्रह्म को नमस्कार है। महादेव, महान्, ज्योतिःस्वरूप, अनन्त, तेजस्वी शिव, शान्त, लिङ्गस्वरूप ब्रह्म को नमस्कार है। प्रधान पुरुष के भी ईश, व्योमस्वरूप, वेधा और लिङ्गमूर्ति शिव, शान्त ब्रह्म को नमस्कार है।

निर्विकाराय सत्याय नित्यायातुलतेजसे।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्त्तये॥८६॥
वेदान्तसाररूपाय कालरूपाय ते नमः।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्त्तये॥८७॥

निर्विकार, सत्य, नित्य, अतुल-तेजस्वी, शान्त, शिव लिङ्गमूर्ति ब्रह्म को नमस्कार है। वेदान्तसार-स्वरूप, कालरूप, बुद्धिमान्, लिङ्गस्वरूप, शिव, शान्त ब्रह्म को नमस्कार है।

एवं संस्तूयमानस्तु व्यक्तो भूत्वा महेश्वरः।
भाति देवो महायोगी सूर्यकोटिसमप्रभः॥८८॥
वक्त्रकोटिसहस्रेण ग्रसमान इवाम्बरम्।
सहस्रहस्तचरणः सूर्यसोमाग्निलोचनः॥८९॥
पिनाकपाणिर्भगवान् कृत्तिवासास्त्रिशूलधृक्।
व्यालयज्ञोपवीतश्च मेघदुन्दुभिनिःस्वनः॥९०॥

इस प्रकार स्तुति किये जाने पर महायोगी महेश्वर देव प्रकट होकर करोड़ों सूर्य के समान सुशोभित होने लगे। वे हजारों-करोड़ों मुखों से मानों आकाश को अपना ग्रास बना रहे थे। हजारों हाथ और पैर वाले, सूर्य, चन्द्रमा तथा अग्निरूप (तीन) नेत्र वाले, पिनाकपाणि, व्याघ्रचर्मरूप वस्त्रधारी, त्रिशूलधारी, सर्प का यज्ञोपवीत धारण करने वाले और मेघ तथा दुन्दुभि के सदृश स्वर वाले थे।

अथोवाच महादेवः प्रीतोऽहं सुरसत्तमौ।
पश्येतं मां महादेवं भयं सर्वं प्रमुच्यताम्॥९१॥
युवां प्रसूतौ गात्रेभ्यो मम पूर्वं सनातनौ।
अयं मे दक्षिणे पार्श्वे ब्रह्मा लोकपितामहः।
वामपार्श्वे च मे विष्णुः पालको हृदये हरः॥९२॥

• महादेव ने कहा— हे श्रेष्ठ देवो! मैं प्रसन्न हूँ। मुझ महादेव का दर्शन करो और समस्त भय का परित्याग करो। पूर्वकाल में मेरे ही शरीर से तुम दोनों सनातन (देव) उत्पन्न हुए थे। मेरे दक्षिण पार्श्व में ये लोक पितामह ब्रह्मा, वाम पार्श्व में पालनकर्ता विष्णु और हृदय में शंकर स्थित हैं।

प्रीतोऽहं युवयो: सम्यग्वरं दद्मि यथेप्सितम्।
एवमुक्त्वाथ मां देवो महादेव: स्वयं शिव:।
आलिङ्ग्य देवं ब्रह्माणं प्रसादाभिमुखोऽभवत्॥ ९३॥

मैं तुम दोनों पर अच्छी तरह प्रसन्न हूँ, इसलिये आपको इच्छित वर प्रदान करता हूँ। ऐसा कहकर महादेव स्वयं शिव मुझे तथा देव ब्रह्मा को आलिङ्गन कर कृपा करने के लिये उद्यत हुए।

तत: प्रहृष्टमनसौ प्रणिपत्य महेश्वरम्।
ऊचतु: प्रेक्ष्य तद्वक्त्रं नारायणपितामहौ॥ ९४॥
यदि प्रीति: समुत्पन्ना यदि देयो वरो हि न:।
भक्तिर्भवतु नौ नित्यं त्वयि देव महेश्वरे॥ ९५॥
तत: स भगवानीश: प्रहसन्परमेश्वर:।
उवाच मां महादेव: प्रीतं प्रीतेन चेतसा॥ ९६॥

तदनन्तर प्रसन्न मन वाले नारायण तथा पितामह ने महेश्वर को प्रणामकर उनके मुख की ओर देखते हुए कहा—हे देव! यदि प्रीति उत्पन्न हुई है और यदि आप हम दोनों को वर देना चाहते हैं तो (यह वर दें कि) हम दोनों की आप महेश्वर में नित्य भक्ति बनी रहे। तब उन प्रसन्न हुए परम ईश्वर भगवान् ईश महादेव ने प्रसन्न मन से हँसते हुए मुझ से कहा।

देवदेव उवाच

प्रलयस्थितिसर्गाणां कर्ता त्वं धरणीपते।
वत्स वत्स हरे विश्वं पालयैतच्चराचरम्॥ ९७॥
त्रिधा भिन्नोऽस्म्यहं विष्णो ब्रह्मविष्णुहराख्यया।
सर्गरक्षालयगुणैर्निर्गुणोऽपि निरञ्जन:॥ ९८॥
संमोहं त्यज भो विष्णो पालयैनं पितामहम्।
भविष्यत्येव भगवांस्तव पुत्र: सनातन:॥ ९९॥
अहं च भवतो वक्त्रात्कल्पादौ सुररूपधृक्।
शूलपाणिर्भविष्यामि क्रोधजस्तव पुत्रक:॥ १००॥

देवों के देव बोले— हे धरणीपते! वत्स हरि! तुम सृष्टि, पालन और प्रलय के कर्ता हो। इस चराचर जगत् का पालन करो। हे विष्णु! मैं निर्गुण तथा निरञ्जन होते हुए भी सृष्टि, पालन तथा लय के गुणों के द्वारा ब्रह्मा, विष्णु तथा हर नाम से तीन रूपों में विभक्त हूँ। हे विष्णो! मोह का परित्याग करो, इन पितामह की रक्षा करो। ये सनातन भगवान् आपके पुत्र होंगे। कल्प के आदि में मैं भी आपके मुख से प्रकट होकर देवरूप धारण कर, हाथ में शूल धारण किये हुए आपका क्रोधज पुत्र बनूँगा।

एवमुक्त्वा महादेवो ब्रह्माणं मुनिसत्तम।
अनुगृह्य च मां देवस्तत्रैवान्तरधीयत॥ १०१॥
तत: प्रभृतिलोकेषु लिङ्गार्चा सुप्रतिष्ठिता।
लिङ्गं तत्तु यतो ब्रह्मन् ब्रह्मण: परमं वपु:॥ १०२॥

हे मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार कहकर भगवान् महादेव मुझ पर तथा ब्रह्मा पर अनुग्रह करके वहीं पर अन्तर्धान हो गये। ब्रह्मन्! तब से लोक में लिङ्गपूजा की प्रतिष्ठा हुई। यह जो लिङ्ग कहा जाता है, वह ब्रह्म का श्रेष्ठ शरीर है।

एतल्लिंगस्य माहात्म्य भाषितं ते मयानघ।
एतद्बुध्यन्ति योगज्ञा न देवा न च दानवा:॥ १०३॥
एतद्धि परमं ज्ञानमव्यक्तं शिवसंज्ञितम्।
येन सूक्ष्ममचिन्त्यं तत्पश्यन्ति ज्ञानचक्षुष:॥ १०४॥
तस्मै भगवते नित्यं नमस्कारं प्रकुर्महे।
महादेवाय देवाय देवदेवाय शृंगिणे॥ १०५॥

हे अनघ! मैंने इस लिङ्ग का माहात्म्य तुम्हें बताया। इसे योगज्ञ ही जानते हैं। न देवता जानते हैं न दानव। यही एक शिव नाम वाला अव्यक्त परम ज्ञान है। ज्ञान-दृष्टि वाले इसी के द्वारा उस सूक्ष्म अचिन्त्य (तत्त्व) का दर्शन करते हैं। इस लिङ्गस्वरूप देवाधिदेव महादेव भगवान् रुद्र को हम नित्य नमस्कार करते हैं।

नमो वेदरहस्याय नीलकण्ठाय ते नम:।
विभीषणाय शान्ताय स्थाणवे हेतवे नम:॥ १०६॥
ब्रह्मणे वामदेवाय त्रिनेत्राय महीयसे।
शंकराय महेशाय गिरीशाय शिवाय च॥ १०७॥
नम: कुरुष्व सततं ध्यायस्व च महेश्वरम्।
संसारसागरादस्मादचिरादुद्धरिष्यसि॥ १०८॥

वेद के रहस्यरूप आपको नमस्कार है, नीलकण्ठ को नमस्कार है। विशेष भय उत्पन्न करने वाले, शान्त, स्थाणु तथा कारणरूप को नमस्कार है। वामदेव, त्रिलोचन, महिमावान्, ब्रह्म, शंकर, महेश, गिरीश तथा शिव को नमस्कार है। इन्हें निरन्तर नमस्कार करो, मन से महेश्वर का ध्यान करो। इससे शीघ्र ही संसार सागर से पार हो जाओगे।

एवं स वासुदेवेन व्याहृतो मुनिपुङ्गव:।
जगाम मनसा देवमीशानं विश्वतोमुखम्॥ १०९॥
प्रणम्य शिरसा कृष्णमनुज्ञातो महामुनि:।

जगाम चेप्सितं शम्भु देवदेवं त्रिशूलिनम्॥ ११०॥

इस प्रकार वासुदेव के द्वारा कहे जाने पर मुनि श्रेष्ठ (मार्कण्डेय) ने विश्वतोमुख देव ईशान (शंकर) का ध्यान किया। श्रीकृष्ण को विनयपूर्वक प्रणाम कर उनकी आज्ञा प्राप्त कर महामुनि (मार्कण्डेय) त्रिशूल धारण करने वाले देवाधिदेव के अभीष्ट स्थान को चले गये।

य इमं श्रावयेन्नित्यं लिङ्गाध्यायमनुत्तमम्।
शृणुयाद्वा पठेद्वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ १११॥
श्रुत्वा सकृदपि ह्येतत्तपश्चरणमुत्तमम्।
वासुदेवस्य विप्रेन्द्राः पापं मुञ्चति मानवः॥ ११२॥
जपेद्वाहरहर्नित्यं ब्रह्मलोके महीयते।
एवमाह महायोगी कृष्णद्वैपायनः प्रभुः॥ ११३॥

जो इस श्रेष्ठ लिङ्गाध्याय को सुनेगा, सुनायेगा अथवा पढ़ेगा, वह सभी पापों से मुक्त हो जायगा। हे विप्रेन्द्रो! वासुदेव के इस श्रेष्ठ तपश्चरण को एक बार भी सुनने वाला मनुष्य पाप से मुक्त हो जाता है अथवा प्रतिदिन इसका निरन्तर जप करने से ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित होता है— ऐसा महायोगी प्रभु कृष्ण द्वैपायन ने कहा है।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे यदुवंशानुकीर्तने लिङ्गोत्पत्तिर्नाम षड्विंशोऽध्यायः॥ २६॥

सप्तविंशोऽध्यायः

(श्रीकृष्ण का स्वधाम-गमन व उपदेश)

सूत उवाच

ततो लब्धवरः कृष्णो जाम्बवत्यां महेश्वरात्।
अजीजनन्महात्मानं साम्बमात्मजमुत्तमम्॥ १॥
प्रद्युम्नस्य ह्यभूत्पुत्रो ह्यनिरुद्धो महाबलः।
तावुभौ गुणसम्पन्नौ कृष्णस्यैवापरे तनू॥ २॥

सूतजी बोले— तदनन्तर महेश्वर से वर प्राप्त किये हुए कृष्ण ने जाम्बवती से महात्मा साम्ब नामक श्रेष्ठ पुत्र को उत्पन्न किया और प्रद्युम्न का भी महाबली अनिरुद्ध नामक पुत्र हुआ। गुणसम्पन्न वे दोनों कृष्ण का ही दूसरा शरीर थे।

हत्वा च कंसं नरकमन्यांश्च शतशोऽसुरान्।
विजित्य लीलया शक्रञ्जित्वा बाणं महासुरम्॥ ३॥
स्थापयित्वा जगत्कृत्स्नं लोके धर्मांश्च शाश्वतान्।
चक्रे नारायणो गन्तुं स्वस्थानं बुद्धिमुत्तमाम्॥ ४॥

कंस, नरक आदि सैंकड़ों असुरों को मारकर और लीलापूर्वक इन्द्र को जीत कर तथा महासुर बाण को पराजित कर, सम्पूर्ण जगत् को प्रतिष्ठित कर और लोक में शाश्वत धर्मों को स्थापित करके नारायण ने अपने धाम जाने का उत्तम विचार किया।

एतस्मिन्नन्तरे विप्रा भृग्वाद्याः कृष्णमीश्वरम्।
आजग्मुर्द्वारकां द्रष्टुं कृतकार्यं सनातनम्॥ ५॥

हे ब्राह्मणो! इसी बीच भृगु आदि महर्षि कृतकार्य (सभी प्रयोजनों से निवृत्त), सनातन, ईश्वर कृष्ण का दर्शन करने के लिये द्वारिका में आये।

स तानुवाच विश्वात्मा प्रणिपत्याभिपूज्य च।
आसनेषूपविष्टान्वै सह रामेण धीमता॥ ६॥
गमिष्यामि परं स्थानं स्वकीयं विष्णुसंज्ञितम्।
कृतानि सर्वकार्याणि प्रसीदध्वं मुनीश्वराः॥ ७॥

विश्वात्मा (कृष्ण) ने बुद्धिमान् बलराम के साथ आसनों पर उपविष्ट भृगु आदि महर्षियों को प्रणाम और अभिवादन करके उनसे कहा— हे मुनीश्वरो! सभी कार्य किये जा चुके हैं। अब मैं विष्णुसंज्ञक अपने उस परमधाम को जाऊँगा, आप लोग प्रसन्न हों।

इदं कलियुगं घोरं सम्प्राप्तमधुनाऽशुभम्।
भविष्यन्ति जनाः सर्वे ह्यस्मिन्पापानुवर्तिनः॥ ८॥
प्रवर्तयध्वं विज्ञानमज्ञानाञ्च हितावहम्।
येनेमे कलिजैः पापैर्मुच्यन्ते हि द्विजोत्तमाः॥ ९॥

इस समय अशुभ घोर कलियुग आ गया है। इसमें सभी लोग पाप का आचरण करने वाले हो जायेंगे। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! आप लोग अज्ञानियों के लिये हितकारी इस विशेष ज्ञान का प्रचार करें, जिससे ये सब कलि द्वारा उत्पन्न पापों से मुक्त होंगे।

ये मां जनाः संस्मरन्ति कलौ सकृदपि प्रभुम्।
तेषां नश्यति तत्पापं भक्तानां पुरुषोत्तमे॥ १०॥
येऽर्चयिष्यन्ति मां भक्त्या नित्यं कलियुगे द्विजाः।
विधिना वेददृष्टेन ते गमिष्यन्ति तत्पदम्॥ ११॥

जो लोग इस कलियुग में मुझ प्रभु का एक बार भी स्मरण करेंगे, पुरुषोत्तम में भक्तियुक्त हुए उनका पाप नष्ट हो जायेगा। हे ब्राह्मणो! जो कलियुग में भक्तिपूर्वक और वैदिक विधि से नित्य मेरा अर्चन करेंगे, वे मेरे पद को प्राप्त करेंगे।

ये ब्राह्मणा वंशजाता युष्माकं वै सहस्रशः।
तेषां नारायणे भक्तिर्भविष्यति कलौ युगे॥ १२॥
परात्परतरं यान्ति नारायणपरा जनाः।
न ते तत्र गमिष्यन्ति ते द्विषन्ति महेश्वरम्॥ १३॥
ध्यानं योगस्तपस्तप्तं ज्ञानं यज्ञादिको विधिः।
तेषां विनश्यति क्षिप्रं ये निन्दन्ति महेश्वरम्॥ १४॥

जो हजारों ब्राह्मण आप लोगों के वंश में जन्म लेंगे, कलियुग में उनकी नारायण में भक्ति होगी। नारायण में भक्तिनिरत लोग उस सर्वोत्तम पद को प्राप्त करते हैं, किन्तु जो महेश्वर से द्वेष करते हैं, वे वहाँ नहीं जा सकेंगे। जो उस महेश्वर की निन्दा करते हैं, उनका ध्यान, योग, तप, ज्ञान और यज्ञादि विधि सभी कुछ शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

यो मां समर्च्चयेन्नित्यमेकान्तं भावमाश्रितः।
विनिन्दन्देवमीशानं स याति नरकायुतम्॥ १५॥
तस्मात्संपरिहर्तव्या निन्दा पशुपतेर्द्विजाः।
कर्मणा मनसा वाचा मद्भक्तेष्वपि यत्नतः॥ १६॥

जो नित्य एकान्त भाव में आश्रय ग्रहण कर मेरी अर्चना करता है, परन्तु देव ईशान की निन्दा करता है, वह दस हजार वर्षों तक नरक में पड़ा रहता है। इसलिये हे द्विजो! मन, वाणी तथा कर्म से पशुपति तथा मेरे भक्तों की भी निन्दा का यत्नपूर्वक त्याग करना चाहिये।

ये च दक्षाध्वरे शप्ता दधीचेन द्विजोत्तमाः।
भविष्यन्ति कलौ भक्तैः परिहार्या प्रयत्नतः॥ १७॥
द्विषन्तो देवमीशानं युष्माकं वंशसम्भवाः।
शप्ताश्च गौतमेनोर्व्यां न सम्भाष्या द्विजोत्तमैः॥ १८॥

जो द्विजोत्तम दक्ष प्रजापति के यज्ञ में दधीच के द्वारा शापग्रस्त हुए कलियुग में भक्तों द्वारा उनका भी यत्नपूर्वक परिहार कर देना चाहिए। आपके कुल में उत्पन्न जो ब्राह्मण महादेव ईशान-शंकर से द्वेष करने वाले हैं, और गौतम ऋषि के द्वारा शापग्रस्त होकर पृथ्वी पर उत्पन्न हुए हैं, उनसे भी श्रेष्ठ ब्राह्मणों को बात नहीं करनी चाहिए।

एवमुक्तास्तु कृष्णेन सर्वे ते वै महर्षयः।
ओमित्युक्त्वा ययुस्तूर्णं स्वानि स्थानानि सत्तमाः॥ १९॥
ततो नारायणः कृष्णो लीलयैव जगन्मयः।
संहृत्य स्वकुलं सर्वं ययौ तत्परमं पदम्॥ २०॥

कृष्ण द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर वे सभी श्रेष्ठ महर्षि 'ठीक है' ऐसा कहकर शीघ्र ही अपने स्थानों को चले गये। तदनन्तर जगन्मय कृष्ण नारायण लीलापूर्वक अपने सारे कुल का संहार कर अपने परमधाम को चले गये।

इत्येष वः समासेन राज्ञां वंशः सुकीर्तितः।
न शक्यो विस्तराद्वक्तुं किं भूयः श्रोतुमिच्छथ॥ २१॥
यः पठेच्छृणुयाद्वापि वंशानां कथनं शुभम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते॥ २२॥

मैंने राजाओं के वंश का वर्णन संक्षेप में कर दिया है, विस्तारपूर्वक इसका वर्णन नहीं हो सकता। अब आप पुनः क्या सुनना चाहते हैं? जो इन वंशों के शुभ कथा को पढ़ता है अथवा सुनता है, वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है तथा स्वर्ग लोग में पूजा योग्य हो जाता है।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे राजवंशानुकीर्तनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः॥ २७॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

(पार्थ को व्यासजी का दर्शन)

ऋषय ऊचुः

कृतं त्रेता द्वापरञ्च कलिश्चेति चतुर्युगम्।
एषां प्रभावं सूताद्य कथयस्व समासतः॥ १॥

ऋषियों ने कहा— हे सूतजी! सत्य, त्रेता, द्वापर तथा कलि— ये चार युग हैं, अब इनके प्रभाव का संक्षेप में बताने की कृपा करें।

सूत उवाच

गते नारायणे कृष्णे स्वमेव परमं पदम्।
पार्थः परमधर्मात्मा पाण्डवः शत्रुतापनः॥ २॥
कृत्वा चैवोत्तरविधिं शोकेन महतावृतः।
अपश्यत्पथि गच्छन्तं कृष्णद्वैपायनं मुनिम्॥ ३॥
शिष्यैः प्रशिष्यैरभितः संवृतं ब्रह्मवादिनम्।
पपात दण्डवद्भूमौ त्यक्त्वा शोकं तदार्जुनः॥ ४॥

सूतजी बोले— नारायण कृष्ण के अपने परमधाम चले जाने पर शत्रुओं को कष्ट देने वाले परम धर्मात्मा पाण्डु पुत्र पार्थ और्ध्वदैहिक क्रिया करके महान् शोक से आवृत हो गये। उन्होंने मार्ग में जाते हुए ब्रह्मवादी कृष्णद्वैपायन व्यासमुनि को शिष्यों और प्रशिष्यों से घिरा हुआ देखा। तब अर्जुन ने शोक का परित्याग कर भूमि पर गिरकर दण्डवत् प्रणाम किया।

उवाच परमप्रीत्या कस्मादेतन्महामुने।
इदानीं गच्छसि क्षिप्रं कं वा देशं प्रति प्रभो॥५॥
सन्दर्शनाद्वै भवतः शोको मे विपुलो गतः।
इदानीं मम यत्कार्यं ब्रूहि पद्मदलेक्षण॥६॥
तमुवाच महायोगी कृष्णद्वैपायनः स्वयम्।
उपविश्य नदीतीरे शिष्यैः परिवृतो मुनिः॥७॥

वे अत्यन्त प्रीतिपूर्वक बोले— हे महामुने! प्रभो! आप कहाँ से आ रहे हैं और इस समय शीघ्रतापूर्वक किस देश की ओर जा रहे हैं? आपके शुभ दर्शन से ही मेरा महान् शोक दूर हो गया है। हे कमलपत्राक्ष व्यासदेव! इस समय मेरे लिए जो कार्य हो, उसे आप कहिए। तब शिष्यों से घिरे हुए महायोगी कृष्णद्वैपायन मुनि ने स्वयं नदी के तट पर बैठकर कहा।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे पार्थाय व्यासदर्शनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः॥२८॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः
(युगधर्म कथन)

व्यास उवाच

इदं कलियुगं घोरं सम्प्राप्तं पाण्डुनन्दन।
ततो गच्छामि देवस्य पुरीं वाराणसीं शुभाम्॥१॥
अस्मिन् कलियुगे घोरे लोकाः पापानुवर्त्तिनः।
भविष्यन्ति महाबाहो वर्णाश्रमविवर्जिताः॥२॥
नान्यत्पश्यामि जन्तूनां मुक्त्वा वाराणसीं पुरीम्।
सर्वपापोपशमनं प्रायश्चित्तं कलौ युगे॥३॥

व्यासजी बोले— हे पाण्डुपुत्र! यह घोर कलियुग आ गया है। इसलिये मैं भगवान् शंकर की महानगरी वाराणसी जा रहा हूँ। हे महाबाहु! इस घोर कलियुग में लोग वर्णाश्रम धर्म से रहित महान् पापाचरण वाले होंगे। कलियुग में प्राणियों के समस्त पापों का शमन करने के लिये वाराणसी पुरी को छोड़कर अन्य दूसरा कोई प्रायश्चित मैं नहीं देख रहा हूँ।

कृतं त्रेता द्वापरञ्च सर्वेष्वेतेषु वै नराः।
भविष्यन्ति महात्मानो धार्मिकाः सत्यवादिनः॥४॥
त्वं हि लोकेषु विख्यातो धृतिमाञ्जनवत्सलः।
पालयाद्य परं धर्मं स्वकीयं मुच्यसे भयात्॥५॥

सत्य, त्रेता तथा द्वापर— इन सभी में मनुष्य महात्मा, धार्मिक तथा सत्यवादी होते हैं। तुम संसार में प्रजाओं के प्रिय तथा धृतिमान् के रूप में विख्यात हो, अतः अपने परम धर्म का पालन करो, इससे आप भय से मुक्त हो जाओगे।

एवमुक्तो भगवता पार्थः परपुरञ्जयः।
पृष्टवान्प्रणिपत्यासौ युगधर्मान्द्विजोत्तमाः॥६॥
तस्मै प्रोवाच सकलं मुनिः सत्यवतीसुतः।
प्रणम्य देवमीशानं युगधर्मान्सनातनान्॥७॥

हे द्विजोत्तमो! भगवान् व्यास के द्वारा ऐसा कहने पर शत्रु के पुर को जीतने वाले कुन्तीपुत्र अर्जुन ने इन्हें प्रणाम कर युगधर्मों को पूछा। सत्यवती के पुत्र व्यासमुनि ने भगवान् शंकर को प्रणाम कर सम्पूर्ण सनातन युगधर्मों को उन्हें बतला दिया।

व्यास उवाच

वक्ष्यामि ते समासेन युगधर्मान्नरेश्वर।
न शक्यते मया राजन्विस्तरेणाभिभाषितुम्॥८॥
आद्यं कृतयुगं प्रोक्तं ततस्त्रेतायुगं बुधैः।
तृतीयं द्वापरं पार्थ चतुर्थं कलिरुच्यते॥९॥
ध्यानं तपः कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे॥१०॥

व्यासजी बोले— नरेश्वर! पार्थ! संक्षेप में युग धर्मों को तुम्हें बतलाता हूँ, मैं विस्तार से वर्णन नहीं कर सकता हूँ। पार्थ! विद्वानों द्वारा पहला कृतयुग कहा गया है, तदनन्तर दूसरा त्रेतायुग, तीसरा द्वापर तथा चौथा कलियुग कहा गया है। कृतयुग में ध्यान, त्रेता में ज्ञान, द्वापर में यज्ञ तथा कलियुग में एकमात्र दान ही श्रेष्ठ साधन बताया गया है।

ब्रह्मा कृतयुगे देवस्त्रेतायां भगवान् रविः।
द्वापरे दैवतं विष्णुः कलौ देवो महेश्वरः॥११॥
ब्रह्मा विष्णुस्तथा सूर्यः सर्व एव कलावपि।
पूज्यन्ते भगवान्रुद्रश्चतुर्ष्वपि पिनाकधृक्॥१२॥
आद्ये कृतयुगे धर्मश्चतुष्पादः प्रकीर्तितः।
त्रेतायुगे त्रिपादः स्याद्द्विपादो द्वापरे स्थितः॥१३॥
त्रिपादहीनस्तिष्येतु सत्तामात्रेण तिष्ठति।

कृतयुग में ब्रह्मा देवता होते हैं, इसी प्रकार त्रेता में भगवान् सूर्य, द्वापर में देवता विष्णु और कलियुग में महेश्वर रुद्र ही मुख्य देवता हैं। ब्रह्मा, विष्णु तथा सूर्य— ये सभी कलियुग में पूजित होते हैं, किन्तु पिनाकधारी भगवान् रुद्र

चारों युगों में पूजे जाते हैं। सर्वप्रथम कृतयुग में सनातन धर्म चार चरणों वाला था, त्रेता में तीन चरणों वाला तथा द्वापर में दो चरणों से स्थित हुआ, किन्तु कलियुग में धर्म तीनों पादों से रहित होकर केवल सत्तामात्र से स्थित रहता है।

कृते तु मिथुनोत्पत्तिर्वृत्तिः साक्षादलोलुपा॥ १४॥
प्रजास्तृप्ताः सदा सर्वाः सर्वानन्दाश्च भोगिनः।
अधमोत्तमत्वं नास्त्यासां निर्विशेषाः पुरञ्जय॥ १५॥
तुल्यमायुः सुखं रूपं तासु तस्मिन् कृते युगे।
विशोकास्तत्त्वबहुला एकान्तबहुलास्तथा॥ १६॥
ध्याननिष्ठास्तपोनिष्ठा महादेवपरायणाः।
ता वै निष्कामचारिण्यो नित्यं मुदितमानसाः॥ १७॥
पर्वतोदधिवासिन्यो ह्यनिकेताः परन्तप।

कृतयुग में (स्त्री-पुरुष के संयोगजन्य) मैथुनी सृष्टि होती थी और लोगों की आजीविका साक्षात् लोभरहित रहती थी। समस्त प्रजा सर्वदा सात्त्विक आनन्द से तृप्त और भोग से सम्पन्न रहती थीं। हे पुरंजय! उन प्रजाओं में उत्तम और अधम का भेद नहीं था, सभी निर्विशेष थे। उस कृतयुग की प्रजा में आयु, सुख और रूप समान था। सम्पूर्ण प्रजा शोक से रहित, अनेक तत्त्वों से युक्त, एकान्तप्रेमी, ध्याननिष्ठ, तपोनिष्ठ तथा महादेव की भक्ति में संलग्न थी। परंतप! वे प्रजाएँ निष्काम कर्म करने वाली, सदा प्रमुदित मनवाली और बिना घर के पर्वतों एवं समुद्र के समीप वास करने वाली थीं।

रसोल्लासः कालयोगात्त्रेताख्ये नश्यति द्विजाः॥ १८॥
तस्यां सिद्धौ प्रनष्टायामन्या सिद्धिरवर्त्तत।
अपां सौख्ये प्रतिहते तदा मेघात्मना तु वै॥ १९॥
मेघेभ्यस्तनयित्नुभ्यः प्रवृत्तं वृष्टिसर्ज्जनम्।
सकृदेव तया वृष्ट्या संयुक्ते पृथिवीतले॥ २०॥
प्रादुरासन् तथा तासां वृक्षा वै गृहसंज्ञिताः।
सर्वः प्रत्युपयोगस्तु तासां तेभ्यः प्रजायते॥ २१॥

हे द्विजो! तदनन्तर काल के प्रभाव से इस त्रेता नामक युग में आनन्दोल्लास नष्ट हो गया था, उसमें सिद्धि का लोप होने पर अन्य सिद्धि प्रवर्तित हुई। जलों का सुख समाप्त हो जाने पर मेघात्मा ने मेघ और विद्युत् से वर्षा की सृष्टि की। पृथ्वी तल पर एक बार ही उस वृष्टि का संयोग होने से उन प्रजाओं के लिये गृह-संज्ञक वृक्षों का प्रादुर्भाव हुआ। उन (वृक्षों) से ही उनके उपयोग की सभी वस्तुएं उनसे ही प्राप्त होने लगीं।

वर्त्तयन्ति स्म तेभ्यस्तास्त्रेतायुगमुखे प्रजाः।
ततः कालेन महता तासामेव विपर्ययात्॥ २२॥
रागलोभात्मको भावस्तदा ह्याकस्मिकोऽभवत्।
विपर्ययेण तासां तु तेन तत्कालभाविना॥ २३॥
प्रणश्यन्ति ततः सर्वे वृक्षास्ते गृहसंज्ञिताः।

इस प्रकार त्रेता युग के प्रारम्भ में वह समस्त प्रजा उन वृक्षों से ही जीवन निर्वाह करती थी। तदनन्तर बहुत काल व्यतीत होने पर उन प्रजाओं में विपर्यय के कारण अनाचक ही राग और लोभ का भाव उत्पन्न हो गया। पुनः उनमें तत्काल के प्रभाव से विपर्यय आ जाने के कारण वे गृहसंज्ञक सभी वृक्ष नष्ट हो गये।

ततस्तेषु प्रनष्टेषु विभ्रान्ता मैथुनोद्भवाः॥ २४॥
अभिध्यायन्ति तां सिद्धिं सत्याभिध्यानतस्तदा।
प्रादुर्बभूवुस्तासां तु वृक्षास्ते गृहसंज्ञिताः॥ २५॥

तब उन (वृक्षों) के नष्ट हो जाने पर वह मैथुनी प्रजा विभ्रान्त हो गई। तब सत्य युग को याद करते हुए वे सभी प्रजाजन उस पूर्वोक्त सिद्धि का ध्यान करने लगे। ऐसा करने से वे लुप्त गृह-संज्ञक वृक्ष पुनः प्रादुर्भूत हो गये।

वस्त्राणि ते प्रसूयन्ते फलान्याभरणानि च।
तेष्वेव जायते तासां गन्धवर्णरसान्वितम्॥ २६॥
अमाक्षिकं महावीर्यं पुटके पुटके मधु।
तेन ता वर्त्तयन्ति स्म त्रेतायुगमुखे प्रजाः॥ २७॥
हृष्टास्तुष्टास्तया सिद्ध्या सर्वा वै विगतज्वराः।
पुनः कालान्तरेणैव ततो लोभावृतास्तदा॥ २८॥
वृक्षांस्तान् पर्यगृह्णन्त मधु वा माक्षिकं बलात्।

वे वस्त्रों, आभूषणों तथा फलों को उत्पन्न करने लगे। उन प्रजाओं के लिये उन वृक्षों के प्रत्येक पत्र पुटों में गन्ध, वर्ण और रस से समन्वित, बिना मधु-मक्खियों के बना हुआ महान् शक्तिशाली मधु उत्पन्न होने लगा। उसीसे त्रेतायुग के आरम्भ में समस्त प्रजा जीवन-निर्वाह करती थीं। उस सिद्धि के कारण वे सारी प्रजाएँ हृष्ट-पुष्ट तथा ज्वर से रहित थीं। तदनन्तर कालान्तर में वे सभी पुनः लोभ के वशीभूत हो गये और वे उन वृक्षों तथा उनसे उत्पन्न अमाक्षिक मधु को बलपूर्वक ग्रहण करने लगे।

तासां तेनापचारेण पुनर्लोभकृतेन वै॥ २९॥
प्रनष्टा मधुना सार्द्धं कल्पवृक्षाः क्वचित् क्वचित्।
शीतवर्षातपैस्तीव्रैस्तास्ततो दुःखिता भृशम्॥ ३०॥

द्वन्द्वैः संपीड्यमानास्तु चक्रुरावरणानि च।
कृत्वा द्वन्द्वविनिर्घातान् वार्त्तोपायमचिन्तयन्॥ ३१॥
नष्टेषु मधुना सार्द्धं कल्पवृक्षेषु वै तदा।
ततः प्रादुरभूत्तासां सिद्धिस्त्रेतायुगे पुनः॥ ३२॥
वार्त्तायाः साधिका ह्यन्या वृष्टिस्तासां निकामतः।

उनके इस प्रकार पुनः लोभकृत ऐसा व्यवहार करने से वे कल्पवृक्ष कहीं-कहीं मधु के साथ ही नष्ट हो गये। तब वे असह्य शीत, वर्षा एवं ताप से अत्यधिक दुःखी रहने लगे। उन्होंने शीतोष्णादि द्वन्द्वों से पीड़ित होते हुए आवरणों की रचना की। तब मधुसहित कल्प वृक्षों के नष्ट हो जाने पर उन्होंने द्वन्द्वों के निराकरण का उपाय सोचा और आजीविका के साधनों का चिन्तन किया। तदनन्तर त्रेता युग में उन प्रजाओं की आजीविका की साधिका अन्य सिद्धि पुनः प्रादुर्भूत हुई और उनकी इच्छा के अनुकूल वृष्टि हुई।

तासां वृष्ट्युदकानीह यानि निम्नैर्गतानि तु॥ ३३॥
अभवन् वृष्टिसन्तत्या स्रोतःस्थानानि निम्नगाः।
यदा आपो बहुतरा आपन्नाः पृथिवीतले॥ ३४॥
अपां भूमेश्च संयोगादौषध्यस्तास्तदाभवन्।
अफालकृष्टाश्चानुप्ता ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश॥ ३५॥
ऋतुपुष्पफलैश्चैव वृक्षगुल्माश्च जज्ञिरे।
ततः प्रादुरभूत्तासां रागो लोभश्च सर्वशः॥ ३६॥

निरन्तर वृष्टि होने के कारण जो जल नीचे की ओर प्रवाहित हुआ, उससे उनके लिये अनेक स्रोतों तथा नदियों की उत्पत्ति हुई। जब पृथ्वीतल पर बहुत सा जल प्राप्त हो गया तो भूमि और जल का संयोग होने से अनेक प्रकार की औषधियाँ उत्पन्न हो गयीं। बिना जोते-बोये ही विभिन्न ऋतुओं के अनुसार होने वाले पुष्प एवं फलों से युक्त चौदह प्रकार के ग्राम्य एवं जंगली वृक्ष और गुल्म उत्पन्न हो गये। तदनन्तर उन प्रजाओं में सब प्रकार से राग और लोभ व्याप्त हो गया।

अवश्यम्भावितार्थेन त्रेतायुगवशेन वै।
ततस्ताः पर्यगृह्णन्त नदीक्षेत्राणि पर्वतान्॥ ३७॥
वृक्षगुल्मौषधीश्चैव प्रसह्य तु यथाबलम्।
विपर्ययेण तासां ता ओषध्यो विविशुर्महीम्॥ ३८॥

यह सब त्रेतायुग के प्रभाव से अवश्यंभावी था। तदुपरान्त उन लोगों ने अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार बलपूर्वक नदियों, क्षेत्रों, पर्वतों, वृक्षों, गुल्मों तथा औषधियों पर अधिकार जमाना प्रारम्भ किया। उनके विपरीत आचरण के कारण वे सभी औषधियाँ पृथ्वी में प्रवेश करने लग गयीं।

पितामहनियोगेन दुदोह पृथिवीं पृथुः।
ततस्ता जगृहुः सर्वा ह्यन्योन्यं क्रोधमूर्च्छिताः॥ ३९॥
सदाचारे विनष्टे तु बलात्कालबलेन च।
मर्यादायाः प्रतिष्ठार्थं ज्ञात्वैतद्भगवानजः॥ ४०॥
ससर्ज क्षत्रियान्ब्रह्मा ब्राह्मणानां हिताय वै।

तब पितामह के आदेश से महाराज पृथु ने पृथ्वी का दोहन किया। तदनन्तर वे सभी प्रजाएँ क्रोधाविष्ट होकर परस्पर एक-दूसरे की वस्तुएँ छीनने लगीं। काल के प्रभाव से उनमें बलात् सदाचार विनष्ट हो गया। यह सब जानकर भगवान् ब्रह्मा ने मर्यादा की प्रतिष्ठा के लिये और ब्राह्मणों के कल्याण के लिये क्षत्रियों की सृष्टि की।

वर्णाश्रमव्यवस्थाश्च त्रेतायां कृतवान्प्रभुः॥ ४१॥
यज्ञप्रवर्तनञ्चैव पशुहिंसाविवर्जितम्।
द्वापरेऽप्यथ विद्यन्ते मतिभेदास्तथा नृणाम्॥ ४२॥
रागो लोभस्तथा युद्धं मत्वा बुद्धिविनिश्चयम्।
एको वेदश्चतुष्पादस्त्रिधा त्विह विभाव्यते॥ ४३॥
वेदव्यासैश्चतुर्धा च न्यस्यते द्वापरादिषु।

प्रभु ने त्रेतायुग में वर्णाश्रम की व्यवस्था की और पशुहिंसा से वर्जित यज्ञों का प्रवर्तन किया। अनन्तर द्वापर में भी लोगों के बुद्धिभेद से राग, लोभ तथा युद्ध होने लगा और अपनी बुद्धि का ही विनिश्चय मानकर उस समय एक ही वेद चतुष्पादात्मक तथा तीन पादों में विभक्त हो गया। द्वापर आदि युगों में वेदव्यास के द्वारा यह वेद चार भागों में उपस्थापित हुआ।

ऋषिपुत्रैः पुनर्वेदा भिद्यन्ते दृष्टिविभ्रमैः॥ ४४॥
मन्त्रब्राह्मणविन्यासैः स्वरवर्णविपर्ययैः।
संहिता ऋग्यजुःसाम्नां प्रोच्यन्ते परमर्षिभिः॥ ४५॥
सामान्योद्भावना चैव दृष्टिभेदैः क्वचित्क्वचित्।
ब्राह्मणं कल्पसूत्राणि ब्रह्मप्रवचनानि च॥ ४६॥
इतिहासपुराणानि धर्मशास्त्राणि सुव्रत।
अवृष्टिर्मरणञ्चैव तथैवान्ये ह्युपद्रवाः॥ ४७॥

ऋषिपुत्रों के द्वारा पुनः दृष्टिभेद से वेदों का विभाजन हुआ। मन्त्र और ब्राह्मणों के विन्यास तथा स्वर एवं वर्ण के विपर्यय के कारण महान् ऋषियों ने वेदों की ऋक्, यजुः एवं साम नामक मन्त्रों की संहिताओं का नामकरण किया।

कहीं-कहीं दृष्टिभेद से समानता की उद्भावना हुई और हे सुव्रत! उन्होंने ब्राह्मण, कल्पसूत्र, वेदान्त, इतिहास-पुराण और धर्मशास्त्र रचना की। तदनन्तर वहां वर्षा का अभाव, मृत्यु और अनेक उपद्रव भी होने लगे।

वाङ्मन:कायजैर्दोषैर्निर्वेदो जायते नृणाम्।
निर्वेदाज्जायते तेषां दु:खमोक्षविचारणा॥४८॥
विचारणाच्च वैराग्यं वैराग्याद्दोषदर्शनम्।
दोषाणां दर्शनाच्चैव द्वापरे ज्ञानसम्भव:॥४९॥

मन, वाणी तथा शरीर-सम्बन्धी दु:खों के कारण मनुष्यों को निर्वेद उत्पन्न होता है। फिर निर्वेद के कारण उनमें दु:ख से मुक्ति पाने की बुद्धि उत्पन्न होती है और विचार से वैराग्य उत्पन्न होता है। वैराग्य से अपने दोष दिखलायी पड़ते हैं। दोष-दर्शन के कारण द्वापर में ज्ञान उत्पन्न होता है।

एषा रजस्तमोयुक्ता वृत्तिर्वै द्वापरे द्विजा:।
आद्ये कृते तु धर्मोऽस्ति स त्रेतायां प्रवर्तते॥५०॥
द्वापरे व्याकुलीभूत्वा प्रणश्यति कलौ युगे॥५१॥

हे द्विजो! द्वापर में यह वृत्ति रजोगुण और तमोगुण से युक्त हुई। आद्य अर्थात् कृतयुग में धर्म प्रतिष्ठित था, वही त्रेता में भी प्रवर्तित हुआ है। द्वापर में व्याकुल होकर वह धर्म कलियुग में आते-आते नष्ट हो जाता है।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे युगवंशानुकीर्त्तनं नामैकोनत्रिंशोऽध्याय:॥२९॥

त्रिंशोऽध्याय:

(युगधर्म निरूपण)

व्यास उवाच

तिष्ये मायामसूयाञ्च वधञ्चैव तपस्विनाम्।
साधयन्ति नरा नित्यं तमसा व्याकुलीकृता:॥१॥

व्यास बोले- कलियुग में मनुष्य तमोगुण से व्याकुल होकर सदा धन, असूया और तपस्वियों का वध करने में लगे रहेंगे।

कलौ प्रमारको रोग: सततं क्षुद्भयं तथा।
अनावृष्टिभयं घोरं देशानाञ्च विपर्यय:॥२॥

कलियुग में प्राणघातक रोग (हैजा, प्लेग आदि) तथा भूख का भय निरन्तर बना रहेगा। घोर अनावृष्टि का भय तथा अनेक स्थानों में उलट-फेर होता रहेगा।

अधार्मिका निराहारा महाकोपाल्पतेजस:।
अनृतं ब्रुवते लुब्धास्तिष्ये जाता: सुदुष्प्रजा:॥३॥

कलियुग में उत्पन्न हुए मनुष्य धर्मरहित, अहार रहित, महाक्रोधी, अल्प तेज वाले होंगे। वे लोभी, मिथ्याभाषी तथा दु:सन्तान वाले होंगे।

दुरिष्टैर्दुरधीतैश्च दुराचारैर्दुरागमै:।
विप्राणां कर्मदोषैश्च प्रजानां जायते भयम्॥४॥

बुरी इच्छा, असत् अध्ययन, दुराचार तथा असत् शास्त्रों का अध्ययन करने से और ब्राह्मणों के कर्मदोष से प्रजाओं में भय उत्पन्न होगा।

नाधीयते तदा वेदान् न यजन्ति द्विजातय:।
यजन्ति यज्ञान्वेदांश्च पठन्ते चाल्पबुद्धय:॥५॥

द्विजातिगण कलियुग में वेदों का अध्ययन नहीं करेंगे और यज्ञ भी नहीं करेंगे और अल्प बुद्धि वाले लोग यज्ञ करेंगे और वेदाध्ययन करेंगे।

शूद्राणां मन्त्रयोगैश्च सम्बन्धो ब्राह्मणै: सह।
भविष्यति कलौ तस्मिञ्छयनासनभोजनै:॥६॥

कलियुग में शूद्रों का सम्बन्ध ब्राह्मणों के साथ एक जगह सोने, बैठने, भोजन करने तथा मन्त्र योग से होगा।

राजान: शूद्रभूयिष्ठा ब्राह्मणान्बाधयन्ति च।
भ्रूणहत्या वीरहत्या प्रजायेत नरेश्वरे॥७॥

अधिकांश शूद्र राजा होंगे जो ब्राह्मणों को पीड़ित करेंगे। राजाओं में भ्रूणहत्या तथा वीरहत्या प्रचलित होगी।

स्नानं होमं जपं दानं देवतानां तथार्चनम्।
तथान्यानि च कर्माणि न कुर्वन्ति द्विजातय:॥८॥

द्विजातिगण स्ना, होम, जप, दान, देवार्चन तथा अन्य शुभ कर्मों को नहीं करेंगे।

विनिन्दन्ति महादेवं ब्राह्मणान् पुरुषोत्तमम्।
आम्नायधर्मशास्त्राणि पुराणानि कलौ युगे॥९॥

कलियुग में लोग महादेव शिव, ब्राह्मण, पुरुषोत्तम विष्णु, वेद, धर्मशास्त्र तथा पुराणों की निन्दा करेंगे।

कुर्वन्त्यवेददृष्टानि कर्माणि विविधानि तु।
स्वधर्मे तु रुचिर्नैव ब्राह्मणानां प्रजायते॥१०॥

लोग अनेक प्रकार के वेद विरुद्ध कर्म करेंगे तथा ब्राह्मणों की अपने धर्म में रुचि नहीं रहेगी।

कुशीलचर्या: पाषण्डैर्वृथारूपै: समावृता:।

बहुयाचनका लोका भविष्यन्ति परस्परम्॥ ११॥

लोग दुष्ट आचरण करने वाले तथा वृथा रूप धारण करने वाले पाखंडियों से घिरे रहेंगे और परस्पर बहुत याचना करने वाले होंगे।

अट्टशूला जनपदाः शिवशूलाश्चतुष्पथाः।
प्रमदाः केशशूलाश्च भविष्यन्ति कलौ युगे॥ १२॥

कलियुग में लोग जनपदों में अन्न बेचने वाले और चौराहे पर शिवलिङ्ग बेचने वाले होंगे तथा स्त्रियाँ वेश्यावृत्ति वाली होंगी।

शुक्लदन्ता जिनाख्याश्च मुण्डाः काषायवाससः।
शूद्रा धर्मं चरिष्यन्ति युगान्ते समुपस्थिते॥ १३॥

युग का अन्त उपस्थित होने पर शुभ्र दाँत वाले, जिन नाम से प्रसिद्ध मुण्डी, काषायवस्त्रधारी शूद्र धर्माचरण करेंगे।

सस्यचौरा भविष्यन्ति तथा चेलाभिमर्शिनः।
चौराच्चौराश्च हर्त्तारो हर्त्तुर्हर्ता तथापरः॥ १४॥

लोग अनाज की चोरी करेंगे, वस्त्रों का अपहरण करेंगे। चोरों के भी अपहर्ता चोर होंगे तथा अपहर्ता की हत्या करने वाले का भी होगा।

दुःखप्रचुरमल्पायुर्देहोत्सादः सरोगता।
अधर्माभिनिवेशत्वात्तमो वृत्तं कलौ स्मृतम्॥ १५॥

दुःखों का प्राचुर्य होगा, लोग अल्पायु वाले होंगे, देह में आलस्य और रोग रहेगा। अधर्म में विशेष रुचि होने से कलियुग में सब तामसगुण युक्त रहेगा।

काषायिणोऽथ निर्ग्रन्थास्तथा कापालिकाश्च ये।
वेदविक्रयिणश्चान्ये तीर्थविक्रयिणः परे॥ १६॥

इस (कलियुग) में कोई भगवे वस्त्र धारण करने वाले होंगे, कोई ग्रन्थविहीन अर्थात् शास्त्रव्यवहार से शून्य, कोई कापालिक (खोपड़ियों माला धारण करने वाले), कोई वेदविक्रेता अर्थात् शुल्क लेकर वेद पढ़ाने वाले होंगे और कोई अपने तीर्थ भी को बेचने वाले होंगे।

आसनस्थान्द्विजान्दृष्ट्वा चालयन्त्यल्पबुद्धयः।
ताडयन्ति द्विजेन्द्रांश्च शूद्रा राजोपजीविनः॥ १७॥

अल्पबुद्धि वाले लोग आसन पर बैठे हुए द्विजों को देखकर उन्हें उठा देंगे। राज्याश्रित शूद्र श्रेष्ठ ब्राह्मणों को प्रताड़ित करेंगे।

उच्चासनस्थाः शूद्राश्च द्विजमध्ये परन्तप।
द्विजापमानकरो राजा कलौ कालबलेन तु॥ १८॥

हे परंतप! कलियुग में समय के बल से ब्राह्मणों के मध्य उच्च आसनों पर शूद्र बैठेंगे। राजा द्विजों का अपमान करने वाला होगा।

पुष्पैश्च भूषणैश्चैव तथान्यैर्मङ्गलैर्द्विजाः।
शूद्रान्परिचरन्त्यल्पश्रुतभाग्यबलान्विताः॥ १९॥

अल्प ज्ञान, अल्प भाग्य तथा अल्प बल वाले द्विज लोग पुष्प, आभूषणों और अन्य मांगलिक वस्तुओं से शूद्रों की परिचर्या करेंगे।

न प्रेक्षन्तेऽर्चितांश्चापि शूद्रा द्विजवरान्नृप।
सेवावसरमालोक्य द्वारे तिष्ठन्ति च द्विजाः॥ २०॥

हे राजन्! शूद्र पूजा के योग्य श्रेष्ठ ब्राह्मणों की ओर देखेंगे नहीं और ब्राह्मण उनकी सेवा के अवसर देखकर (प्रतीक्षा करते) द्वार पर खड़े रहेंगे।

वाहनस्थान्समावृत्य शूद्राञ्छूद्रोपजीविनः।
सेवन्ते ब्राह्मणास्तांस्तु स्तुवन्ति स्तुतिभिः कलौ॥ २१॥

कलियुग में शूद्र से जीविका पाने वाले ब्राह्मण वाहन पर आरूढ़ शूद्रों को घेरकर उनकी सेवा करेंगे और अनेक स्तुतियों से प्रशंसा करेंगे।

अध्यापयन्ति वै वेदाञ्छूद्राञ्छूद्रोपजीविनः।
एवं निर्वेदकानर्थान्नास्तिक्यं घोरमाश्रिताः॥ २२॥

इस प्रकार घोर नास्तिकता का आश्रय ग्रहण करके शूद्र के अधीन आजीविका वाले ब्राह्मण शूद्रों को वेद एवं वेदभिन्न अर्थों को पढ़ायेंगे।

तपोयज्ञकलानान्तु विक्रेतारो द्विजोत्तमाः।
यतयश्च भविष्यन्ति शतशोऽथ सहस्रशः॥ २३॥

उत्तम द्विज तथा सैकड़ों-हजारों संन्यासी तप, यज्ञ और कलाओं को बेचने वाले होंगे।

नाशयन्तः स्वकान्धर्मानधिगच्छन्ति तत्पदम्।
गायन्ति लौकिकैर्गानैर्दैवतानि नराधिप॥ २४॥

हे राजन्! अपने धर्मों का विनाश करते हुए वे राज्य के पदों को प्राप्त करेंगे। लौकिक गानों से लोग देवताओं की स्तुति करेंगे।

वामपाशुपताचारास्तथा वै पाञ्चरात्रिकाः।
भविष्यन्ति कलौ तस्मिन्ब्राह्मणाः क्षत्रियास्तथा॥ २५॥

इस कलियुग में ब्राह्मण और क्षत्रिय सभी वाममार्गी, पाशुपताचारी और पाञ्चरात्रिक (सम्प्रदायविशेष के मानने वाले) हो जायेंगे।

ज्ञाने कर्मण्यपगते लोके निष्क्रियतां गते।
कीटमूषिकसर्पाश्च धर्षयिष्यन्ति मानुषान्॥ २६॥

ज्ञान और कर्म के दूर हो जाने से कलियुग में मनुष्य निष्क्रियता प्राप्त होंगे, तब कीड़े, चूहे और साँप मनुष्यों को कष्ट पहुँचायेंगे।

कुर्वन्ति चावताराणि ब्राह्मणानां कुलेषु वै।
देवीशापविनिर्दग्धाः पुरा दक्षाध्वरे द्विजाः॥ २७॥

प्राचीन काल में दक्ष के यज्ञ में दैवीशाप (दधीच के शाप) से जले हुए ब्राह्मण कलियुग में ब्राह्मणों के कुलों में अवतार ग्रहण करेंगे।

निन्दन्ति च महादेवं तमसाविष्टचेतसः।
वृथा धर्मं चरिष्यन्ति कलौ तस्मिन्युगान्तिके॥ २८॥

उस कलियुग में अन्तिम समय में तमोगुण से व्याप्त चित्तवाले वे ब्राह्मण महादेव की निन्दा करेंगे और वृथा धर्म का आचरण करेंगे।

सर्वे वीरा भविष्यन्ति ब्राह्मणाद्याः स्वजातिषु।
ये चान्ये शापनिर्दग्धा गौतमस्य महात्मनः॥ २९॥
सर्वे तेऽवतरिष्यन्ति ब्राह्मणास्तासु योनिषु।
विनिन्दन्ति हृषीकेशं ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः॥ ३०॥

महात्मा गौतम के शाप से दग्ध जो अन्य ब्राह्मण आदि हैं, वे सभी अपनी जातियों में वीर होंगे। वे सब ब्राह्मण उन योनियों में अवतीर्ण होंगे और ब्रह्मवादी ब्राह्मण विष्णु की निन्दा करेंगे।

वेदबाह्यव्रताचारा दुराचारा वृथाश्रमाः।
मोहयन्ति जनान् सर्वान् दर्शयित्वा फलानि च॥ ३१॥
तमसाविष्टमनसो वैडालव्रतिकाधमाः।
कलौ रुद्रो महादेवो लोकानामीश्वरः परः॥ ३२॥

वेदों में निषिद्ध व्रतों का आचरण करने वाले, दुराचारी, व्यर्थ श्रम करने वाले, तमोगुण से आविष्ट चित्त वाले, बिडाल के समान व्रत रखने वाले (ढोंगी धर्माचरण वाले) नीच जन सब लोगों को प्रलोभन दिखाकर मोहित करते रहेंगे। कलियुग में रुद्र, महादेव लोगों के परम ईश्वर हैं।

तदेव साधयेन्नॄणां देवतानां च दैवतम्।
करिष्यत्यवताराणि शंकरो नीललोहितः॥ ३३॥
श्रौतस्मार्त्तप्रतिष्ठार्थं भक्तानां हितकाम्यया।
उपदेक्ष्यति तज्ज्ञानं शिष्याणां ब्रह्मसंज्ञितम्॥ ३४॥
सर्ववेदान्तसारं हि धर्मान्वेदनिदर्शितान्।
सर्ववर्णान् समुद्दिश्य स्वधर्मा ये निदर्शिताः॥ ३५॥

मनुष्य को देवताओं के भी देवता उन्हीं महादेव की साधना करना चाहिए। नीललोहित शंकर श्रौत और स्मार्त धर्मों की प्रतिष्ठा के लिए और भक्तों की हितकामना से अवतार ग्रहण करेंगे। वे शिष्यों को समस्त वेदान्त के साररूप उस ब्रह्मसंज्ञक ज्ञान का और वेदनिर्दिष्ट धर्मों का उपदेश करेंगे, जो स्वधर्म सभी वर्णों को उद्देश्य करके उपदिष्ट हुए हैं।

ये तत्प्रीता निषेवन्ते येन केनोपचारतः।
विजित्य कलिजान्दोषान्यान्ति ते परमं पदम्॥ ३६॥

जो मनुष्य जिस-किसी भी उपचार से परम प्रीतिपूर्वक शंकर की सेवा करेंगे, वे कलिजन्य दोषों को जीतकर परम पद को प्राप्त करेंगे।

अनायासेन सुमहत्पुण्यमाप्नोति मानवः।
अनेकदोषदुष्टस्य कलेरेको महान् गुणः॥ ३७॥

वह मानव अनायास ही महान् पुण्य प्राप्त कर लेता है। अनेक दोषों से दूषित कलियुग का यह एक महान् गुण है।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन प्राप्य माहेश्वरं युगम्।
विशेषाद्ब्राह्मणो रुद्रमीशानं शरणं व्रजेत्॥ ३८॥

इसलिए सब प्रकार से यत्नपूर्वक माहेश्वर युग (कलियुग) को प्राप्तकर विशेष रूप से ब्राह्मण को ईशान रुद्र की शरण में जाना चाहिए।

ये नमन्ति विरूपाक्षमीशानं कृत्तिवाससम्।
प्रसन्नचेतसो रुद्रं ते यान्ति परमं पदम्॥ ३९॥

जो मनुष्य विरूपाक्ष, व्याघ्रचर्मधारी, रुद्र शंकर को प्रणाम करते हैं, वे प्रसन्नचित्त होकर परम पद को प्राप्त करते हैं।

यथा रुद्रनमस्कारः सर्वकामफलो ध्रुवः।
अन्यदेवनमस्कारान्न तत्फलमवाप्नुयात्॥ ४०॥

जिस प्रकार रुद्र को नमस्कार करने से सभी कामनाओं का फल निश्चितरूप से मिलता है, वैसे अन्य देवताओं को नमस्कार करने से वह फल नहीं मिलता है।

एवंविधे कलियुगे दोषाणामेव शोधनम्।
महादेवनमस्कारो ध्यानं दानमिति श्रुतिः॥ ४१॥

इस प्रकार के कलियुग में दोषों की ही शुद्धि होती है। महादेव को नमस्कार करना ही ध्यान और दान है— ऐसा श्रुति कथन है।

तस्मादनीश्वरानन्यान् त्यक्त्वा देव महेश्वरम्।
समाश्रयेद्विरूपाक्षं यदीच्छेत्परमं परम्॥४२॥

इसलिए यदि परम पद की इच्छा हो तो अन्य अनीश्वर देवों को छोड़कर विरूपाक्ष महेश्वर का आश्रय ग्रहण करना चाहिए।

नार्चयन्तीह ये रुद्रं शिवं त्रिदशवंदितम्।
तेषां दानं तपो यज्ञो वृथा जीवितमेव च॥४३॥

जो देवों से वन्दित रुद्र शिव की अर्चना नहीं करते हैं, उनका दान, तप, यज्ञ और जीवन भी व्यर्थ है।

नमो रुद्राय महते देवदेवाय शूलिने।
त्र्यम्बकाय त्रिनेत्राय योगिनां गुरवे नमः॥४४॥

देवाधिदेव, शूलपाणि, त्रिनेत्रधारी महान् रुद्र के लिए नमस्कार है। योगियों के गुरु को नमस्कार है।

नमोऽस्तु देवदेवाय महादेवाय वेधसे।
शम्भवे स्थाणवे नित्यं शिवाय परमेष्ठिने॥४५॥

देव-देव, महादेव, वेधा, शम्भु, स्थाणु, शिव और परमेष्ठी को सदा नमस्कार है।

नमः सोमाय रुद्राय महाग्रासाय हेतवे।
प्रपद्येऽहं विरूपाक्षं शरण्यं ब्रह्मचारिणम्॥४६॥

सोम, रुद्र, महान् संहारकर्ता और कारण स्वरूप को नमस्कार है। विरूपाक्ष, शरण देने वाले ब्रह्मचारी की शरण को मैं प्राप्त होता हूँ।

महादेवं महायोगमीशानं चांबिकापतिम्।
योगिनां योगदातारं योगमायासमावृतम्॥४७॥
योगिनां गुरुमाचार्यं योगिगम्यं पिनाकिनम्।
संसारतारणं रुद्रं ब्रह्माणं ब्रह्मणोऽधिपम्॥४८॥
शाश्वतं सर्वगं शान्तं ब्रह्मण्यं ब्राह्मणप्रियम्।
कपर्दिनं कालमूर्त्तिममूर्ति परमेश्वरम्॥४९॥
एकमूर्त्ति महामूर्ति वेदवेद्यं दिवस्पतिम्।
नीलकण्ठं विश्वमूर्त्ति व्यापिनं विश्वरेतसम्॥५०॥
कालाग्निं कालदहनं कामदं कामनाशनम्।
नमस्ये गिरिशं देवं चन्द्रावयवभूषणम्॥५१॥
विलोहितं लेलिहानमादित्यं परमेष्ठिनम्।
उग्रं पशुपतिं भीमं भास्करं परमं तपः॥५२॥

महादेव, महायोगस्वरूप, ईशान, अम्बिकापति, योगियों को योग प्रदान करने वाले, योगमाया से आवृत्त, योगियों के गुरु, आचार्य, योगियों द्वारा प्राप्त, पिनाकधारी, संसार से तारने वाले, रुद्र, ब्रह्मा, ब्रह्माधिपति, शाश्वत, सर्व-व्यापक, शान्त एवं ब्राह्मणों के रक्षक, ब्राह्मण प्रिय, कपर्दी, कालमूर्ति, अमूर्ति, परमेश्वर, एकमूर्ति, महामूर्ति, वेद द्वारा जानने योग्य, दिवस्पति, नीलकण्ठ, विश्वमूर्ति, व्यापक, विश्वरेता, कालाग्नि, कालदहन, कामनादायक, काम-विनाशक, गिरीश, देव, चन्द्ररूप आभूषण वाले, विशेष रक्तवर्ण वाले, लेलिहान (संसार को ग्रास बनाने वाले), आदित्य, परमेष्ठी, उग्र, पशुपति, भीम, भास्कर और परम तपस्वी, मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं युगानां वै समासतः।
अतीतानागतानां वै यावन्मन्वन्तरक्षयः॥५३॥

इस प्रकार मन्वन्तर की समाप्तिपर्यन्त भूत और भविष्यत् काल के युगों का लक्षण संक्षेप में बता दिया है।

मन्वन्तरेण चैकेन सर्वाण्येवान्तराणि वै।
व्याख्यातानि न सन्देहः कल्पः कल्पेन चैव हि॥५४॥

एक मन्वन्तर के कथन से अन्यान्य सभी मन्वन्तर भी कथित हो गये हैं और वैसे ही एक कल्प के व्याख्यान से सभी कल्पों की कथा व्याख्यात हो जाती है, इसमें सन्देह नहीं।

मन्वन्तरेषु चैतेषु अतीतानागतेषु वै।
तुल्याभिमानिनः सर्वे नामरूपैर्भवन्त्युत॥५५॥

अतीत और अनागत सभी मन्वन्तरों में अपने समान नामरूप धारण करने वाले अधिष्ठाता होते हैं।

एवमुक्तो भगवता किरीटी श्वेतवाहनः।
बभार परमां भक्तिमीशानेऽव्यभिचारिणीम्॥५६॥

भगवान् (व्यास) के ऐसा कहने पर श्वेतवाहन किरीटधारी अर्जुन ने शंकर में परम अव्यभिचारिणी भक्ति धारण की।

नमश्चकार तमृषिं कृष्णद्वैपायनं प्रभुम्।
सर्वज्ञं सर्वकर्त्तारं साक्षाद्विष्णुं व्यवस्थितम्॥५७॥

उन्होंने सर्वज्ञ, सर्वकर्ता, साक्षात् विष्णुरूप में अवस्थित उन कृष्णद्वैपायन ऋषि को नमस्कार किया।

तमुवाच पुनर्व्यासः पार्थं परपुरञ्जयम्।
कराभ्यां सुशुभाभ्यां संस्पृश्य प्रणतं मुनिः॥५८॥

शत्रु के नगरों को जीतने वाले प्रणत अर्जुन को व्यास ने अपने दोनों मंगलमय करों से स्पर्श करते हुए पुन: कहा।

धन्योऽस्यनुगृहीतोऽसि त्वादृशोऽन्यो न विद्यते।
त्रैलोक्ये शङ्करे नूनं भक्त: परपुरञ्जय॥५९॥

हे परपुरञ्जय! मैं धन्य हूँ, अनुगृहीत हूँ। निश्चय ही, तीनों लोक में तुम्हारे समान शंकर में भक्ति रखने वाला दूसरा कोई नहीं है।

दृष्टवानसि तं देवं विश्वाक्षं विश्वतोमुखम्।
प्रत्यक्षमेव सर्वेषां रुद्रं सर्वजगन्मयम्॥६०॥

सर्वत्र व्यापक नेत्रों वाले एवं सब ओर मुख वाले, सम्पूर्ण जगत् के आत्मरूप उन रुद्रदेव को तुमने प्रत्यक्ष देखा है।

ज्ञानं तदैश्वरं दिव्यं यथावद्विदितं त्वया।
स्वयमेव हृषीकेश: प्रीत्योवाच सनातन:॥६१॥

तुमने ईश्वर के दिव्य ज्ञान को अच्छी प्रकार जान लिया है। यह बात स्वयं ही सनातन श्रीकृष्ण ने प्रीतिपूर्वक कही है।

गच्छ गच्छ स्वकं स्थानं न शोकं कर्तुमर्हसि।
व्रजस्व परया भक्त्या शरण्यं शरणं शिवम्॥६२॥

तुम अपने स्थान को प्रस्थान करो, तुम्हें शोक करना नहीं चाहिए। परम भक्ति से शरण्य शिव की शरण में चले जाओ।

एवमुक्त्वा स भगवाननुगृह्यार्जुनं प्रभु:।
जगाम शङ्करपुरीं समाराधयितुं भवम्॥६३॥

इस प्रकार अर्जुन से कहकर वे भगवान् प्रभु (व्यास) उन्हें अनुगृहीत करते हुए शिव की आराधना करने के लिए शंकर की नगरी (वाराणसी) में चले गये।

पाण्डवेयोऽपि तद्वाक्यात्संप्राप्य शरणं शिवम्।
सन्त्यज्य सर्वकर्माणि ज्ञात्वा तत्परमोऽभवत्॥६४॥

अर्जुन भी उनके वचन से शिव की शरण प्राप्त करके समस्त कार्यों को त्यागकर उन्हीं की भक्ति में तल्लीन हो गये।

नार्जुनेन समः शम्भोर्भक्त्या भूतो भविष्यति।
मुक्त्वा सत्यवतीसूनुं कृष्णं वा देवकीसुतम्॥६५॥

सत्यवती पुत्र व्यास तथा देवकी पुत्र कृष्ण को छोड़कर अर्जुन के समान शंकर की भक्ति करने वाला न कोई हुआ है और न होगा।

तस्मै भगवते नित्यं नम: शान्ताय धीमते।
पाराशर्याय मुनये व्यासायामिततेजसे॥६६॥

शान्त, धीमान्, अमित तेजस्वी, उन भगवान् पराशर-पुत्र व्यास मुनि को नित्य नमस्कार है।

कृष्णद्वैपायन: साक्षाद्विष्णुरेव सनातन:।
को ह्यन्यस्तत्त्वतो रुद्रं वेत्ति तं परमेश्वरम्॥६७॥

कृष्ण द्वैपायन मुनि साक्षात् सनातन विष्णु ही हैं। उनके अतिरिक्त उन परमेश्वर रुद्र को यथार्थरूप में कौन जानता है।

नम: कुरुध्वं तमृषिं कृष्णं सत्यवतीसुतम्।
पाराशर्यं महात्मानं योगिनं विष्णुमव्ययम्॥६८॥

पराशर-पुत्र, महात्मा, योगी, अविनाशी, विष्णु स्वरूप, उन सत्यवतीसुत कृष्णद्वैपायन ऋषि को आप लोग नमस्कार करें।

एवमुक्त्वा तु मुनय: सर्वं एव समाहिता:।
प्रणेमुस्तं महात्मानं व्यासं सत्यवतीसुतम्॥६९॥

ऐसा कहे जाने पर सभी मुनियों ने समाहित चित्त होकर उन सत्यवतीपुत्र महात्मा व्यासदेव को प्रणाम किया।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे व्यासार्जुनसंवादे युगधर्मनिरूपणं नाम त्रिंशोऽध्याय:॥३०॥

एकत्रिंशोऽध्याय:

(वाराणसी का माहात्म्य)

ऋषय ऊचु:

प्राप्य वाराणसीं दिव्यां कृष्णद्वैपायनो मुनि:।
किमकार्षीन्महाबुद्धि: श्रोतुं कौतूहलं हि न:॥१॥

ऋषिगण बोले- दिव्य वाराणसी में पहुँचकर परम बुद्धिमान् कृष्णद्वैपायन मुनि ने क्या किया, यह सब सुनने के लिए हमें कुतूहल हो रहा है।

सूत उवाच

प्राप्य वाराणसीं दिव्यामुपस्पृश्य महामुनि:।
पूजयामास जाह्नव्यां देवं विश्वेश्वरं शिवम्॥२॥

सूत बोले- महामुनि ने दिव्य वाराणसी में पहुँचकर गंगाजी में आचमन किया और विश्वेश्वर महादेव शिव की पूजा की।

तमागतं मुनिं दृष्ट्वा तत्र ये निवसन्ति वै।
पूजयाञ्चक्रिरे व्यासं मुनयो मुनिपुङ्गवम्॥ ३॥

उन मुनि को वहां आया हुआ देखकर वहाँ के निवासी मुनियों ने मुनिश्रेष्ठ व्यास की पूजा की।

पप्रच्छु: प्रणता: सर्वे कथां पापप्रणाशिनीम्।
महादेवाश्रयां पुण्यां मोक्षधर्मान्सनातनान्॥ ४॥

उन सभी लोगों ने प्रणत होकर महादेव-सम्बन्धी पापनाशिनी कथा तथा सनातन मोक्षधर्मों के विषय में पूछा।

स चापि कथयामास सर्वज्ञो भगवानृषि:।
माहात्म्यं देवदेवस्य धर्म्यं वेदनिदर्शनात्॥ ५॥

सर्वज्ञ भगवान् व्यास ऋषि ने देवाधीश्वर शिव का वेद में निर्दिष्ट धर्मयुक्त माहात्म्य कहना प्रारंभ कर दिया।

तेषां मध्ये मुनीन्द्राणां व्यासशिष्यो महामुनि:।
पृष्टवाञ्जैमिनिर्व्यासं गूढमर्थं सनातनम्॥ ६॥

उन मुनीश्रेष्ठों के मध्य विराजमान व्यासशिष्य महामुनि जैमिनि ने व्यासजी से सनातन गूढ़ अर्थ को पूछा।

जैमिनिरुवाच

भगवन् संशयश्चैकं छेत्तुमर्हसि सर्ववित्।
न विद्यते ह्यविदितं भवत: परमर्षिण:॥ ७॥

जैमिनि बोले— भगवन्! सर्ववेत्ता आप एक मेरे संशय को दूर करने में समर्थ हैं, क्योंकि आप परम ऋषि के लिए कुछ भी अज्ञात नहीं है।

केचिद्ध्यानं प्रशंसन्ति धर्ममेवापरे जना:।
अन्ये साङ्ख्यं तथा योगं तपश्चान्ये महर्षय:॥ ८॥
ब्रह्मचर्यमथो नूनमन्ये प्राहुर्महर्षय:।
अहिंसां सत्यमप्यन्ये संन्यासमपरे विदु:॥ ९॥

कुछ लोग ध्यान की प्रशंसा करते हैं, दूसरे लोग धर्म की ही प्रशंसा करते हैं। कुछ अन्य लोग सांख्य तथा योग को तथा दूसरे महर्षि तपस्या को श्रेष्ठ मानते हैं। अन्य महर्षिगण ब्रह्मचर्य की ही प्रशंसा करते हैं। कुछ अन्य ऋषि अहिंसा को, तो कुछ संन्यास को श्रेष्ठ मानते हैं।

केचिद्दयां प्रशंसन्ति दानमध्ययनं तथा।
तीर्थयात्रां तथा केचिदन्ये चेन्द्रियनिग्रहम्॥ १०॥
किमेषाञ्च भवेच्छ्रेय: प्रब्रूहि मुनिपुङ्गव।
यदि वा विद्यतेऽप्यन्यगुह्यं तद्वक्तुमर्हसि॥ ११॥

कोई दया, कोई दान तथा स्वाध्याय की प्रशंसा करते हैं, कोई तीर्थयात्रा की, तो कोई इन्द्रियसंयम की। हे मुनिश्रेष्ठ! इन सबमें क्या श्रेयस्कर है, यह बताने की कृपा करें। यदि इनसे भिन्न भी कोई गोपनीय साधन हो तो, उसे बता दें।

श्रुत्वा स जैमिनेर्वाक्यं कृष्णद्वैपायनो मुनि:।
प्राह गम्भीरया वाचा प्रणम्य वृषकेतनम्॥ १२॥

जैमिनि के वचन सुनकर कृष्णद्वैपायन व्यास मुनि ने वृषध्वज शिव को प्रणाम करके गंभीर वाणी में कहा।

श्रीभगवानुवाच

साधु साधु महाभाग यत्पृष्टं भवता मुने।
वक्ष्ये गुह्यतमाद्गुह्यं शृण्वन्त्वन्ये महर्षय:॥ १३॥

श्रीभगवान् बोले— हे महाभाग मुने! आपने जो पूछा, वह बहुत ठीक ही है। मैं गुह्य से अति गुह्य तत्त्व को बताऊँगा। आप सभी महर्षि सुनें।

ईश्वरेण पुरा प्रोक्तं ज्ञानमेतत्सनातनम्।
गूढमप्राज्ञविद्विष्टं सेवितं सूक्ष्मदर्शिभि:॥ १४॥

यह सनातन गूढ ज्ञान पूर्वकाल में ईश्वर द्वारा कहा गया था। अज्ञानी जिससे द्वेष करते हैं और सूक्ष्मदर्शियों द्वारा जो सेवित है।

नाश्रद्दधाने दातव्यं नाभक्ते परमेष्ठिन:।
नावेदविदुषे देयं ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम्॥ १५॥

यह ज्ञान श्रद्धाविहीन व्यक्ति को नहीं देना चाहिए। परमेष्ठी (शिव) का भक्त न हो तथा ऐसा विद्वान् जो वेद का ज्ञाता न हो, उसे यह सर्वोत्तम ज्ञान नहीं देना चाहिए।

मेरुशृङ्गे महादेवमीशानं त्रिपुरद्विषम्।
देवासनगता देवी महादेवमपृच्छत॥ १६॥

कभी मेरुपर्वत के शिखर पर त्रिपुरारि ईशान, महादेव के साथ एक आसन पर विराजमान देवी पार्वती ने महादेव से पूछा।

श्रीदेव्युवाच

देवदेव महादेव भक्तानामार्त्तिनाशन।
कथं त्वां पुरुषो देवमचिरादेव पश्यति॥ १७॥

श्रीदेवी बोलीं— हे देवों के देव, भक्तों के कष्टों को दूर करने वाले महादेव! मनुष्य आपका दर्शन शीघ्र कैसे पा सकता है?

सांख्ययोगस्तपो ध्यानं कर्मयोगश्च वैदिक:।
आयासबहुलान्याहुर्यानि चान्यानि शङ्कर॥ १८॥

हे शंकर! सांख्य, योग, तप, ध्यान, वैदिक कर्मयोग तथा अन्य बहुत से साधन अति परिश्रमसाध्य हैं।

येन विभ्रान्तचित्तानां विज्ञानां योगिनामपि॥
दृश्यो हि भगवान्सूक्ष्म: सर्वेषामपि देहिनाम्॥ १९॥
एतद्गुह्यतमं ज्ञानं गूढं ब्रह्मादिसेवितम्।
हिताय सर्वभक्तानां ब्रूहि कामाङ्गनाशन॥ २०॥

अत: जिससे भ्रान्त चित्त वाले, ज्ञानी, योगियों तथा सभी देहधारियों को सूक्ष्म भगवान् का दर्शन हो जाय, वह ब्रह्मा आदि द्वारा सेवित, गूढ एवं अत्यन्त गोपनीय ज्ञान, हे कामजयी! आप सभी भक्तों के हितार्थ कहने की कृपा करें।

ईश्वर उवाच

अवाच्यमेतद् गूढार्थं ज्ञानमज्ञैर्बहिष्कृतम्।
वक्ष्ये तव यथातत्त्वं यदुक्तं परमर्षिभि:॥ २१॥

ईश्वर ने कहा– यह गूढार्थज्ञान अनिर्वचनीय है, अज्ञानियों द्वारा जिसका बहिष्कार हुआ है। मैं तुम्हें यथार्थत: कहूँगा, जिसे परमर्षियों ने कहा है।

परं गुह्यतमं क्षेत्रं मम वाराणसी पुरी।
सर्वेषामेव भूतानां संसारार्णवतारिणी॥ २२॥

वाराणसी नगरी मेरा परम गुह्यतम क्षेत्र है। सभी प्राणियों को संसार-सागर से पार उतारने वाली है।

तस्मिन् भक्ता महादेवि मदीयं व्रतमास्थिता:।
निवसन्ति महात्मान: परं नियममास्थिता:॥ २३॥

हे महादेवि! उस नगरी में मेरे व्रत को धारण करने वाले भक्तगण और श्रेष्ठ नियमों का पालन करने वाले महात्मा लोग निवास करते हैं।

उत्तमं सर्वतीर्थानां स्थानानामुत्तमञ्च यत्।
ज्ञानानामुत्तमं ज्ञानमविमुक्तं परं मम॥ २४॥

वह मेरा अविमुक्त क्षेत्र सभी तीर्थों और सभी स्थानों में उत्तम है तथा सभी प्रकार के ज्ञानों में उत्तम ज्ञान स्वरूप है।

स्थानान्तरे पवित्राणि तीर्थान्यायतनानि च।
श्मशाने संस्थितान्येव दिवि भूमिगतानि च॥ २५॥

स्वर्ग, भूमि आदि स्थानान्तर में जो पवित्र तीर्थ और मन्दिर हैं, वे सब यहाँ श्मशान में (काशी में) संस्थित हैं।

भूर्लोके नैव संलग्नमन्तरिक्षे ममालयम्।
अविमुक्ता न पश्यन्ति मुक्ता: पश्यन्ति चेतसा॥ २६॥

मेरा आलय भूलोक में न होकर, अन्तरिक्ष में संलग्न है। जो पुरुष मुक्त नहीं हैं, वे उसे नहीं देख पाते हैं, पर मुक्त पुरुष (ध्यानावस्थित) चित्त से देख लेते हैं।

श्मशानमेतद्विख्यातमविमुक्तमिति स्मृतम्।
कालो भूत्वा जगदिदं संहराम्यत्र सुन्दरि॥ २७॥

हे सुन्दरि! यह क्षेत्र श्मशान नाम से विख्यात अविमुक्त क्षेत्र कहा गया है। मैं कालरूप होकर यहाँ इस संसार का संहार करता हूँ।

देवीदं सर्वगुह्यानां स्थानं प्रियतमं मम।
मद्भक्ता यत्र गच्छन्ति मामेव प्रविशन्ति ते॥ २८॥

देवि! सभी गुह्य स्थानों में यह स्थान मुझे विशेष प्रिय है। जो मेरे भक्त यहाँ आते हैं, वे मुझ में ही प्रवेश कर जाते हैं।

दत्तं जप्तं हुतञ्चेष्टं तपस्तप्तं कृतञ्च यत्।
ध्यानमध्ययनं ज्ञानं सर्वं तत्राक्षयं भवेत्॥ २९॥

यहाँ किया गया दान, जप, हवन, यज्ञ, तप, ध्यान, अध्ययन और ज्ञान सब अक्षय हो जाता है।

जन्मान्तरसहस्रेषु यत्पापं पूर्वसञ्चितम्।
अविमुक्तं प्रविष्टस्य तत्सर्वं व्रजति क्षयम्॥ ३०॥

सहस्र जन्मान्तरों में जो पाप पूर्वसंचित है, वह अविमुक्त में प्रवेश करने पर वह सब नष्ट हो जाता है।

ब्राह्मणा: क्षत्रिया वैश्या: शूद्रा ये वर्णसङ्करा:।
स्त्रियो म्लेच्छाश्च ते चान्ये संकीर्णा: पापयोनय:॥ ३१॥
कीटा: पिपीलिकाश्चैव ये चान्ये मृगपक्षिण:।
कालेन निधनं प्राप्ता अविमुक्ते वरानने॥ ३२॥
चन्द्रार्द्धमौलयस्त्र्यक्षा महावृषभवाहना:।
शिवे मम पुरे देवि जायन्ते तत्र मानवा:॥ ३३॥

हे वरानने! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्णसंकर, स्त्रियाँ, म्लेच्छ, संकीर्ण पापयोनियां, कीट, पतंग, पशु, पक्षी— जो कोई कालवश काशीक्षेत्र में मृत्यु को प्राप्त करते हैं, हे देवि! शिवे! वे सभी मानव, अर्धचन्द्र से सुशोभित ललाट वाले, त्रिनेत्रधारी तथा महान् नन्दीवाहन से युक्त हो (अर्थात् मेरे स्वरूप को प्राप्त हुए) मेरे लोक में उत्पन्न होते हैं।

नाविमुक्ते मृत: कश्चिन्नरकं याति किल्बिषी।
ईश्वरानुगृहीता हि सर्वे यान्ति परां गतिम्॥ ३४॥

कोई भी पापाचारी अविमुक्त में मृत्यु पाकर नरक में नहीं जाता है। वे सभी ईश्वर से अनुगृहीत होकर श्रेष्ठ गति को प्राप्त करते हैं।

मोक्षं सुदुर्लभं ज्ञात्वा संसारं चातिभीषणम्।
अश्मना चरणौ हत्वा वाराणस्यां वसेन्नरः॥ ३५॥

मोक्ष को अत्यन्त दुर्लभ तथा संसार को अति भीषण जानकर मानव पत्थर से पैरों को तोड़कर काशी में वास करे (वहीं की भूमि से उसके पैरों का सायुज्य बना रहे)।

दुर्लभा तपसोऽप्यस्मिन्भूतस्य परमेश्वरि।
यत्र तत्र विपन्नस्य गतिः संसारमोक्षणी॥ ३६॥

परमेश्वरि! प्राणी के लिए तप को पाना दुर्लभ है। परन्तु जहां-कहीं भी काशी में मरने से वह संसार से मुक्ति प्रदान करने वाली गति प्राप्त करता है।

प्रसादाद्दह्यते ह्येनो मम शैलेन्द्रनन्दिनि।
अज्ञाबुधा न पश्यन्ति मम मायाविमोहिताः॥ ३७॥

हे शैलेन्द्रनन्दिनि! यहाँ मेरी कृपा से उसका पाप दग्ध हो जाता है। मेरी माया से मोहित अज्ञानी इस क्षेत्र को नहीं देख पाते हैं।

अविमुक्तं न पश्यन्ति मूढा ये तमसावृताः।
विण्मूत्ररेतसां मध्ये संविशन्ति पुनः पुनः॥ ३८॥

जो अज्ञानी तमोगुण से आवृत्त होकर इस अविमुक्त क्षेत्र को नहीं देख पाते हैं, वे विष्ठा, मूत्र और वीर्य (युक्त शरीर) के मध्य बार-बार प्रवेश करते रहते हैं।

हन्यमानोऽपि यो देवि विशेद्विघ्नशतैरपि।
स याति परमं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति॥ ३९॥
जन्ममृत्युजरामुक्तं परं याति शिवालयम्।
अपुनर्मरणानां हि सा गतिर्मोक्षकांक्षिणाम्॥ ४०॥

हे देवि! जो मनुष्य सैकड़ों विघ्नों से प्रताडित होकर भी यहां पहुँच जाता है, वह उस परम पद को प्राप्त करता है, जहाँ जाकर वह शोक नहीं करता। वह जन्म, मृत्यु और जरा से मुक्त इस श्रेष्ठ शिवधाम को प्राप्त होता है। पुनर्मरण न चाहने वाले मोक्षाभिलाषियों के लिए यही परम गति है।

यां प्राप्य कृतकृत्यः स्यादिति मन्येत पण्डितः।
न दानैर्न तपोभिश्च न यज्ञैर्नापि विद्यया॥ ४१॥
प्राप्यते गतिरुत्कृष्टा याविमुक्ते तु लभ्यते।
नानावर्णा विवर्णाश्च चण्डालाद्या जुगुप्सिताः॥ ४२॥
किल्बिषैः पूर्णदेहा ये प्रकृष्टैस्तापकैस्तथा।
भेषजं परमं तेषामविमुक्तं विदुर्बुधाः॥ ४३॥

जिस काशी को प्राप्त कर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है, ऐसा पण्डित लोग मानते हैं। ऐसी उत्कृष्ट सद्गति दान, तपस्या, यज्ञ और विद्या से प्राप्त नहीं होती है जो अविमुक्त क्षेत्र में मिलती है। नाना प्रकार के वर्ण वाले, वर्णहीन, चाण्डाल आदि घृणित वर्ण वाले, जिनके शरीर पापों से भरे हुए हैं, तथा जो त्रिविध तापों से संतप्त हैं, उन सब के लिए अविमुक्त क्षेत्र परम औषध स्वरूप है, यह बात विद्वान् लोग जानते हैं।

अविमुक्तं परं ज्ञानमविमुक्तं परं पदम्।
अविमुक्तं परन्तत्त्वमविमुक्तं परं शिवम्॥ ४४॥
कृत्वा वै नैष्ठिकींदीक्षामविमुक्ते वसन्ति ये।
तेषां तत्परमं ज्ञानं ददाम्यन्ते परं पदम्॥ ४५॥

अविमुक्त क्षेत्र परम ज्ञान, परम पद, परम तत्त्व और परम शिव स्वरूप है। जो मनुष्य निष्ठापूर्वक दीक्षा ग्रहणकर काशी में वास करते हैं, उन्हें मैं अन्त में वह परम ज्ञान और परम पद प्रदान करता हूँ।

प्रयागं नैमिषं पुण्यं श्रीशैलोऽथ हिमालयः।
केदारं भद्रकर्णञ्च गया पुष्करमेव च॥ ४६॥
कुरुक्षेत्रं रुद्रकोटिर्नर्मदा हाटकेश्वरम्।
शालिग्रामञ्च पुष्पाग्रं वंशं कोकामुखं तथा॥ ४७॥
प्रभासं विजयेशानं गोकर्णं शङ्कुकर्णकम्।
एतानि पुण्यस्थानानि त्रैलोक्ये विश्रुतानि च॥ ४८॥
यास्यन्ति परमं मोक्षं वाराणस्यां यथा मृताः।
वाराणस्यां विशेषेण गङ्गा त्रिपथगामिनी॥ ४९॥
प्रविष्टा नाशयेत्पापं जन्मान्तरशतैः कृतम्।

प्रयाग, पवित्र नैमिष, श्रीशैल, हिमालय, केदार, भद्रकर्ण, गया, पुष्कर, कुरुक्षेत्र, रुद्रकोटि, नर्मदा, हाटकेश्वर, शालिग्राम, पुष्पाग्र, वंश, कोकामुख, प्रभास, विजयेशान, गोकर्ण, शंकुकर्ण— ये पवित्र तीर्थ तीनों लोकों में प्रख्यात हैं। परन्तु वाराणसी में जैसे मृत्यु उपरान्त परम मोक्ष प्राप्त करते हैं (वैसे अन्यत्र नहीं है)। विशेष रूप से वाराणसी में प्रविष्ट हुई त्रिपथगामिनी गंगा मनुष्य के सौ जन्मों में किये हुए पापों का नाश कर देती है।

अन्यत्र सुलभा गङ्गा श्राद्धं दानं तथा जपः॥ ५०॥
व्रतानि सर्वमेवैतद्वाराणस्यां सुदुर्लभम्।

यजेत् जुहुयान्नित्यं दद्यात्यर्चयतेऽपरान्॥५१॥
वायुभक्षश्च सततं वाराणस्यां स्थितो नरः।
यदि पापो यदि शठो यदि चाधार्मिको नरः॥५२॥
वाराणसीं समासाद्य पुनाति स कुलत्रयम्।

अन्यत्र भी गंगास्नान, श्राद्ध, दान तथा जप सुलभ है, परन्तु ये सब और व्रत आदि वाराणसी में अत्यन्त दुर्लभ हैं। वाराणसी में नित्य यज्ञ और हवन करे, दान करे और अन्य देवों का अर्चन करे और वायु का भक्षण करता हुआ सतत वाराणसी में रहने वाला नर यदि पापी, शठ और अधार्मिक हो तो भी वह वाराणसी को प्राप्तकर अपने तीन कुलों को पवित्र कर लेता है।

वाराणस्यां महादेवं ये स्तुवन्त्यर्चयन्ति च॥५३॥
सर्वपापविनिर्मुक्तास्ते विज्ञेया गणेश्वराः।

जो लोग वाराणसी में महादेव की स्तुति और पूजा करते हैं, वे समस्त पापों से मुक्त शिव के गणेश्वर हैं, ऐसा जानना चाहिए।

अन्यत्र योगाज्ज्ञानाद्वा संन्यासादथवान्यतः॥५४॥
प्राप्यते तत्परं स्थानं सहस्रेणैव जन्मना।
ये भक्ता देवदेवेशे वाराणस्यां वसन्ति वै॥५५॥
ते विदन्ति परं मोक्षमेकेनैव तु जन्मना।
यत्र योगस्तथा ज्ञानं मुक्तिरेकेन जन्मना॥५६॥

दूसरे स्थानों में योग, ज्ञान, संन्यास अथवा अन्य किसी प्रकार से उस परम स्थान को सहस्र जन्मों प्राप्त किया जाता है। परन्तु वे जो देवेश्वर शिव के भक्त वाराणसी में रहते हैं, उन्हें एक ही जन्म में वह परम मोक्ष मिल जाता है, जहाँ योग, ज्ञान और मोक्ष उसी एक जन्म में प्राप्त हो जाते हैं।

अविमुक्तं समासाद्य नान्यद् गच्छेत्तपोवनम्।
यतो मया न मुक्तं तदविमुक्तमिति स्मृतम्॥५७॥

अविमुक्त क्षेत्र को प्राप्तकर अन्य किसी तपोवन में नहीं जाना चाहिए। क्योंकि यह क्षेत्र मेरे द्वारा मुक्त नहीं हुआ, इसीलिए इसे अविमुक्त कहा गया है।

तदेव गुह्यं गुह्यानामेतद्विज्ञाय मुच्यते।
ज्ञानध्याननिविष्टानां परमानन्दमिच्छताम्॥५८॥
या गतिर्विहिता सुभ्रुसाविमुक्ते मृतस्य तु।

वही क्षेत्र गुह्यों में भी गुह्य है, यह जानकर मनुष्य मोक्ष प्राप्त करता है। हे सुभ्रु! ज्ञान-ध्यान में संलग्न परमानन्द की प्राप्ति चाहने वालों की जो गति होती है, वही सद्गति अविमुक्त में मरने वाले को मिलती है।

यानि चान्यविमुक्तानि देवैरुक्तानि नित्यशः॥५९॥
पुरी वाराणसी तेभ्यः स्थानेभ्योऽप्यधिका शुभा।
यत्र साक्षान्महादेवो देहान्तेऽक्षय्यमीश्वरः॥६०॥
व्याचष्टे तारकं ब्रह्म तथैव ह्यविमुक्तकम्।
यत्तत्परतरं तत्त्वमविमुक्तमिति स्मृतम्॥६१॥
एकेन जन्मना देवि वाराणस्यां तदाप्यते।
भ्रूमध्ये नाभिमध्ये च हृदयेऽपि च मूर्द्धनि॥६२॥
यथाविमुक्तमादित्ये वाराणस्यां व्यवस्थितम्।
वरुणायास्तथा ह्यस्या मध्ये वाराणसी पुरी॥६३॥

देवताओं द्वारा जो कोई अविमुक्त स्थान बताये गये हैं, उन सब स्थानों से भी अधिक शुभदायक वाराणसी नगरी है। जहाँ साक्षात् महादेव ईश्वर देहावसान के समय जीव को अक्षय तारक ब्रह्म और अविमुक्त मंत्र का उपदेश करते हैं। देवि! जो परात्पर तत्त्व है वह अविमुक्त कहा गया है। वाराणसी में रहते हुए वह एक ही जन्म में प्राप्त हो जाता है। भौंहों के बीच, नाभि के अन्दर, हृदय में, मस्तक में और आदित्यलोक में जिस प्रकार अविमुक्त अवस्थित है उसी प्रकार वाराणसी में है। यह नगरी वरुणा और असी नामक दो नदियों के मध्य विराजमान होने से वाराणसी नाम से प्रसिद्ध है।

तत्रैव संस्थितं तत्त्वं नित्यमेवाविमुक्तिकम्।
वाराणस्याः परं स्थानं न भूतं न भविष्यति॥६४॥
यथा नारायणो देवो महादेवाद्दिवेश्वरात्।
तत्र देवाः सगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः॥६५॥
उपासते मां सततं देवदेवः पितामहः।

उसी वाराणसी में अविमुक्तक नामक परम तत्त्व नित्य ही संस्थित है। इसीलिए इस वाराणसी से श्रेष्ठ दूसरा स्थान न हुआ है और होगा भी नहीं, जिस प्रकार श्रीनारायण तथा महेश्वर। क्योंकि महादेव से श्रेष्ठ दूसरा कोई देव हुआ ही नहीं है। उस वाराणसी में देव, गन्धर्व, यक्ष, नाग, राक्षस तथा देवदेव ब्रह्मा भी निरन्तर मेरी उपासना करते हैं।

महापातकिनो ये च ये तेभ्यः पापकृत्तमाः॥६६॥
वाराणसीं समासाद्य ते यान्ति परमां गतिम्।
तस्मान्मुमुक्षुर्नियतो वसेद्वामरणान्तिकम्॥६७॥

जो महापातकी हैं और जो उनसे भी अधिक पाप करने वाले हैं, वे वाराणसी को पाकर परम गति को प्राप्त करते हैं।

इसलिए मोक्षाभिलाषी जन मरणपर्यन्त नियमपूर्वक काशी में वास करे।

वाराणस्यां महादेवि ज्ञानं लब्ध्वा विमुच्यते।
किन्तु विघ्ना भविष्यन्ति पापोपहतचेतसाम्॥६८॥

हे महादेवि! वाराणसी में ज्ञान प्राप्त करके जीव विमुक्त हो जाता है। किन्तु पाप से उपहत चित्त वालों को वहाँ विघ्न होते हैं।

ततो नैव चरेत्पापं कायेन मनसा गिरा।
एतद्रहस्यं वेदानां पुराणानां द्विजोत्तमा:॥६९॥

हे द्विजश्रेष्ठो! इसलिए वहाँ शरीर, मन तथा वाणी से भी पाप का आचरण न करे। वेदों तथा पुराणों का यही रहस्य है।

अविमुक्ताश्रयं ज्ञानं न किञ्चिद्वेद्मि तत्परम्।
देवतानामृषीणाञ्च शृण्वतां परमेष्ठिनाम्॥७०॥
देव्यै देवेन कथितं सर्वपापविनाशनम्।

अविमुक्तक्षेत्राश्रित ज्ञान से परतर अन्य कुछ भी मैं नहीं जानता हूँ। देवताओं तथा परमेष्ठी ऋषियों के सुनते हुए ही महादेव ने पार्वती से सर्वपापविनाशक इस नगरी के विषय में यह कहा था।

यथा नारायण: श्रेष्ठो देवानां पुरुषोत्तम:॥७१॥
यथेश्वराणां गिरीश: स्थानानाञ्चैतदुत्तमम्।

जैसे देवताओं में पुरुषोत्तम नारायण श्रेष्ठ हैं और जैसे ईश्वरों में महादेव श्रेष्ठ हैं वैसे स्थानों में वाराणसी उत्तम है।

यै: समाराधितो रुद्र: पूर्वस्मिन्नेव जन्मनि॥७२॥
ते विन्दन्ति परं क्षेत्रमविमुक्तं शिवालयम्।
कलिकल्मषसम्भूता येषामुपहता मति:॥७३॥
न तेषां वीक्षितं शक्यं स्थानं तत्परमेष्ठिन:।

जिन्होंने पूर्वजन्म में रुद्र की आराधना की है, वे लोग उत्तम अविमुक्तक्षेत्र शिवधाम को प्राप्त करते हैं। कलियुग के पाप से उत्पन्न जिनकी मति नष्ट हो गई है, वे परमेष्ठी के धाम काशी को देखने में समर्थ नहीं हैं।

ये स्मरन्ति सदा कालं विन्दन्ति च पुरीमिमाम्॥७४॥
तेषां विनश्यति क्षिप्रमिहामुत्र च पातकम्।

जो सर्वदा उसका स्मरण करते रहते हैं और इस पुरी में आकर रहते हैं, उनके इस लोक के और परलोक के समस्त पाप शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।

यानि चेह प्रकुर्वन्ति पातकानि कृतालया:॥७५॥
नाशयेत्तानि सर्वाणि तेन कालतनु: शिव:।

इस शिवालय में रहने वाले कभी कुछ पाप (अज्ञानवश) कर लेते हैं, तो इन सब पापों का कालविग्रही शिव नाश कर देते हैं।

आगच्छतामिदं स्थानं सेवितुं मोक्षकांक्षिणाम्॥७६॥
मृतानां वै पुनर्जन्म न भूयो भवसागरे।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वाराणस्यां वसेन्नर:॥७७॥
योगी वाप्यथवायोगी पापी वा पुण्यकृत्तम:।
न लोकवचनात् पित्रोर्न चैव गुरुवादत:॥७८॥
मतिरुत्क्रमणीया स्यादविमुक्तगतिं प्रति॥७९॥

मोक्ष की कामना से इस स्थान का सेवन करने के लिए आये हुए मनुष्य यदि काशी में ही मर जाते हैं तो, उनका भवसागर में पुनर्जन्म नहीं होता। इसलिए सब प्रकार से प्रयत्नपूर्वक मनुष्य वाराणसी में वास करे, चाहे वह योगी हो अथवा अयोगी, पापी हो या पुण्यकर्मा। न तो लोगों के कहने से, न माता-पिता और न गुरु के कहने से ही आदि मुक्तक्षेत्र में गति लाभ करने के सम्बन्ध में अपनी बुद्धि को लाँघना नहीं चाहिए।

सूत उवाच

एवमुक्त्वाथ भगवान्व्यासो वेदविदां वर:।
सहैव शिष्यप्रवरैर्वाराणस्यां चचार ह॥८०॥

सूत बोले— इस प्रकार कहने के पश्चात् वेदवेत्ताओं में श्रेष्ठ भगवान् व्यास अपने शिष्य प्रवरों के साथ वाराणसी में भ्रमण करने लगे।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे वाराणसीमाहात्म्यं नाम एकत्रिंशोऽध्याय:॥३१॥

द्वात्रिंशोऽध्याय:

(वाराणसी-माहात्म्य)

सूत उवाच

स शिष्यै: संवृतो धीमान् गुरु द्वैपायनो मुनि:।
जगाम विपुलं लिङ्गमोंकारं मुक्तिदायकम्॥१॥

सूत बोले— अपने शिष्यों से संवृत बुद्धिमान् मुनि गुरु कृष्णद्वैपायन व्यास मुक्तिदायक विशाल ओंकारलिङ्ग के समीप गये।

तत्राभ्यर्च्य महादेवं शिष्यैः सह महामुनिः।
प्रोवाच तस्य माहात्म्यं मुनीनां भावितात्मनाम्॥ २॥

वहाँ महामुनि ने शिष्यों के साथ महादेव की अर्चना करके पवित्रात्मा मुनियों को इस लिङ्ग का माहात्म्य बताया।

इदं तद्विमलं लिङ्गमोङ्कारं नाम शोभनम्।
अस्य स्मरणमात्रेण मुच्यते सर्वपातकैः॥ ३॥

यह प्रसिद्ध ओंकार नामक निर्मल लिङ्ग अति सुन्दर है। इसके स्मरणमात्र से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है।

अत्र तत्परमं ज्ञानं पञ्चायतनमुत्तमम्।
अर्चितं मुनिभिर्नित्यं वाराणस्यां विमोक्षदम्॥ ४॥

यहाँ वह लिङ्ग परम ज्ञानस्वरूप होने से उत्तम पञ्चायतन (शिव, विष्णु, ब्रह्मा, देवी और गणपति)-पाँच देवों का स्थान है। यह मुनियों द्वारा अर्चित और वाराणसी में होने से नित्य मोक्षदायक है।

अत्र साक्षान्महादेवः पञ्चायतनविग्रहः।
रमते भगवान्रुद्रो जन्तूनामपवर्गदः॥ ५॥

यहाँ साक्षात् भगवान् महादेव रुद्र पञ्चायतन (पाँचो देवों का) विग्रह धारण करके रमण करते रहते हैं। वे ही प्राणियों के मोक्षदाता हैं।

यत्तत्पाशुपतं ज्ञानं पञ्चार्थमिति कथ्यते।
तदेव विमलं लिङ्गमोङ्कारं समवस्थितम्॥ ६॥

यह जो पाशुपत ज्ञान जो पञ्चार्थ नाम से बोधित है, वही यह विमल लिङ्गरूप ओंकार में अवस्थित है।

शान्त्यतीतापरा शान्तिर्विद्या चैव यथाक्रमम्।
प्रतिष्ठा च निवृत्तिश्च पञ्चार्थं लिङ्गमैश्वरम्॥ ७॥

शान्ति से अतीत प्रवृत्ति, परा शान्ति, विद्या, प्रतिष्ठा और निवृत्ति— ये यथाक्रम से पञ्चार्थ से युक्त ऐश्वर्यमय शिवलिङ्ग हैं।

पञ्चानामपि देवानां ब्रह्मादीनां यदाश्रयम्।
ओङ्कारबोधितं लिङ्गं पञ्चायतनमुच्यते॥ ८॥

ब्रह्मा आदि पाँचों देवताओं का आश्रयस्वरूप यह ओंकार नाम से बोधित लिङ्ग पञ्चायतन नाम से कहा जाता है।

संस्मरेदैश्वरं लिङ्गं पञ्चायतनमव्ययम्।
देहान्ते तत्परं ज्योतिरानन्दं विशते पुनः॥ ९॥

जो मनुष्य मरणकाल में अविनाशी पञ्चायतन नाम वाले ऐश्वर लिङ्ग का स्मरण करता है, वह आनन्दमय परम ज्योति में प्रवेश कर जाता है।

अत्र देवर्षयः पूर्वे सिद्धा ब्रह्मर्षयस्तथा।
उपास्य देवमीशानं प्राप्तवन्तः परं पदम्॥ १०॥

पूर्वकाल में यहाँ देवर्षिगण, सिद्धगण तथा ब्रह्मर्षिगण ईशान देव की उपासना करके परम पद को प्राप्त हुए थे।

मत्स्योदर्यास्तटे पुण्यं स्थानं गुह्यतमं शुभम्।
गोचर्ममात्रं विप्रेन्द्रा ओंकारेश्वरमुत्तमम्॥ ११॥

हे विप्रेन्द्रो! मत्स्योदरी नदी के तट पर एक पुण्यमय, अत्यन्त गोपनीय शुभ स्थान है। वहाँ गोचर्म प्रमाण वाला उत्तम यह ओंकारेश्वर लिङ्ग है। (गोचर्म भूमि का एक मापदण्ड है)

कृत्तिवासेश्वरं लिङ्गं मध्यमेश्वरमुत्तमम्।
विश्वेश्वरं तथोंकारं कपर्दीश्वरमुत्तमम्॥ १२॥
एतानि गुह्यलिङ्गानि वाराणस्यां द्विजोत्तमाः।
न कश्चिदिह जानाति विना शम्भोरनुग्रहात्॥ १३॥

हे द्विजश्रेष्ठो! कृत्तिवासेश्वरलिङ्ग, उत्तम मध्यमेश्वरलिङ्ग, विश्वेश्वरलिङ्ग, ओंकारलिङ्ग तथा उत्तम कपर्दीश्वरलिङ्ग— ये वाराणसी में गुप्त स्थान में स्थापित लिङ्ग हैं। शंकर के अनुग्रह के बिना इस लोक में इन्हें कोई नहीं जानता है।

एवमुक्त्वा ययौ कृष्णः पाराशर्यो महामुनिः।
कृत्तिवासेश्वरं लिङ्गं द्रष्टुं देवस्य शूलिनः॥ १४॥

इस प्रकार कहकर पराशरपुत्र महामुनि कृष्णद्वैपायन व्यास त्रिशूलधारी महादेव के कृत्तिवासेश्वर लिङ्ग को देखने के लिए गये।

समभ्यर्च्य सदा शिष्यैर्माहात्म्यं कृत्तिवाससः।
कथयामास विप्रेभ्यो भगवान् ब्रह्मवित्तमः॥ १५॥

शिष्यों के साथ उनकी अर्चना करके ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ भगवान् व्यास ब्राह्मणों को कृत्तिवास का माहात्म्य बताने लगे।

अस्मिन् स्थाने पुरा दैत्यो हस्ती भूत्वा भवान्तिकम्।
ब्राह्मणान् हन्तुमायातो येऽत्र नित्यमुपासते॥ १६॥

पूर्वकाल में इस स्थान पर एक दैत्य हाथी का रूप धारण कर शंकर के समीप उन ब्राह्मणों को मारने के लिए आया था, जो यहाँ नित्य उपासना करते थे।

तेषां लिङ्गान्महादेवः प्रादुरासीत् त्रिलोचनः।
रक्षणार्थं द्विजश्रेष्ठा भक्तानां भक्तवत्सलः॥ १७॥

हे द्विजश्रेष्ठो! तब उन भक्तों की रक्षा करने के लिए भक्तवत्सल त्रिलोचन महादेव उस लिङ्ग से प्रादुर्भूत हुए।

हत्वा गजाकृतिं दैत्यं शूलेनावज्ञया हरः।
वासस्तस्याकरोत्कृत्तिं कृत्तिवासेश्वरस्ततः॥ १८॥

शंकर ने अपने शूल से अवज्ञापूर्वक उस गजाकृति दैत्य को मारकर उसके चमड़े को वस्त्र बना लिया अर्थात् उसे ओढ़ लिया। तभी से वे कृत्तिवासेश्वर नाम से प्रसिद्ध हुए।

अत्र सिद्धिं परां प्राप्ता मुनयो मुनिपुंगवाः।
तेनैव च शरीरेण प्राप्तास्तत्परमं पदम्॥ १९॥

हे मुनिश्रेष्ठो! मुनियों ने यहाँ परम सिद्धि को प्राप्त किया और उसी शरीर से उस परम पद को प्राप्त कर लिया।

विद्या विद्येश्वरा रुद्राः शिवा ये वः प्रकीर्त्तिताः।
कृत्तिवासेश्वरं लिङ्गं नित्यमावृत्य संस्थिताः॥ २०॥

विद्या, विद्येश्वर, रुद्र और शिव- ये जो आप सब को बताये गये हैं, वे नित्य कृत्तिवासेश्वर लिङ्ग को आवृत करके संस्थित हैं।

ज्ञात्वा कलियुगं घोरमधर्मबहुलं जनाः।
कृत्तिवासं न मुञ्चन्ति कृतार्थास्ते न संशयः॥ २१॥

जो मनुष्य इस घोर कलियुग को अधर्मबहुल जानकर कृत्तिवासलिङ्ग को नहीं छोड़ते हैं, वे कृतार्थ हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं।

जन्मान्तरसहस्रेण मोक्षोऽन्यत्राप्यते न वा।
एकेन जन्मना मोक्षः कृत्तिवासे तु लभ्यते॥ २२॥

अन्यत्र हजारों जन्मान्तर ग्रहण करने से मोक्ष प्राप्त हो या न हो, किन्तु कृत्तिवास में एक जन्म से ही मोक्ष प्राप्त हो जाता है।

आलयः सर्वसिद्धानामेतत्स्थानं वदन्ति हि।
गोपितं देवदेवेन महादेवेन शम्भुना॥ २३॥

इस स्थान को सभी सिद्धों का आलय कहते हैं। यह देवाधिदेव महादेव शंभु के द्वारा सुरक्षित है।

युगे युगे ह्यत्र दान्ता ब्राह्मणा वेदपारगाः।
उपासते महादेवं जपन्ति शतरुद्रियम्॥ २४॥
स्तुवन्ति सततं देवं महादेवं त्रियम्बकम्।
ध्यायन्तो हृदये नित्यं स्थाणुं सर्वान्तरं शिवम्॥ २५॥

यहाँ प्रत्येक युग में इन्द्रियों का निग्रह करने वाले वेदों के पारंगत ब्राह्मण महादेव की उपासना करते हुए शतरुद्रीय का जप करते हैं। वे त्रिलोचन देव महादेव की निरन्तर स्तुति करते हैं तथा सर्वान्तरात्मा स्थाणु शिव का अपने हृदय में ध्यान करते हैं।

गायन्ति सिद्धाः किल गीतकानि
ये वाराणस्यां निवसन्ति विप्राः।
तेषामथैकेन भवेन मुक्ति-
र्ये कृत्तिवासं शरणं प्रपन्नाः॥ २६॥

निश्चय ही सिद्ध जन ये गीत गाते हैं कि जो ब्राह्मण वाराणसी में वास करते हैं तथा जो कृत्तिवासलिङ्ग की शरण में जाते हैं, उनकी एक ही जन्म में मुक्ति हो जाती है।

सम्प्राप्य लोके जगतामभीष्टं
सुदुर्लभं विप्रकुलेषु जन्म।
ध्यानं समादाय जपन्ति रुद्रं
ध्यायन्ति चित्ते यतयो महेशम्॥ २७॥

जो कोई इस लोक में समस्त जगत् के अभीष्ट तथा अत्यन्त दुर्लभ विप्रकुल में जन्म पाकर, ध्यानमग्न होकर रुद्र-मंत्र का जप करते हैं तथा यति-संन्यासी भी चित्त में महेश का ध्यान करते हैं।

आराधयन्ति प्रभुमीशितारं
वाराणसीमध्यगता मुनीन्द्राः।
यजन्ति यज्ञैरभिसन्धिहीनाः
स्तुवन्ति रुद्रं प्रणमन्ति शम्भुम्॥ २८॥

उसी तरह वाराणसी के मध्य में रहने वाले बड़े-बड़े मुनि भी ईश्वर प्रभु की आराधना करते हैं, सर्व संकल्पों से रहित निष्कामभाव से यज्ञों द्वारा महादेव का यजन करते हैं, रुद्र की स्तुति करते हैं और शंभु को प्रणाम करते हैं।

नमो भवायामलभावधाम्ने
स्थाणुं प्रपद्ये गिरिशं पुराणम्।
स्मरामि रुद्रं हृदये निविष्टं
जाने महादेवमनेकरूपम्॥ २९॥

निर्मल भावधाम वाले भव को नमस्कार है। मैं स्थाणु, गिरीश तथा पुराण पुरुष की शरण में जाता हूँ। हृदय में अवस्थित रुद्र का मैं स्मरण करता हूँ। अनेक रूपों वाले महादेव को मैं जानता हूँ।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे वाराणसीमाहात्म्यं नाम
द्वात्रिंशोऽध्यायः॥ ३२॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

(वाराणसीमाहात्म्य)

सूत उवाच

समाभाष्य मुनीन्धीमान्देवदेवस्य शूलिनः।
जगाम लिङ्गं तद्द्रष्टुं कपर्दीश्वरमव्ययम्॥ १॥

सूत बोले– बुद्धिमान् व्यास ने मुनियों से संभाषण करके देवाधिदेव शूलपाणि शंकर के उस अविनाशी कपर्दीश्वर लिङ्ग का दर्शन करने के लिए प्रस्थान किया।

स्नात्वा तत्र विधानेन तर्पयित्वा पितॄन्द्विजाः।
पिशाचमोचने तीर्थे पूजयामास शूलिनम्॥ २॥

हे द्विजगण! वहाँ उन्होंने पिशाचमोचनतीर्थ में विधिपूर्वक स्नान करके तथा पितरों को तर्पण देकर शिव की पूजा की।

तत्राश्चर्यमपश्यंस्ते मुनयो गुरुणा सह।
मेनिरे क्षेत्रमाहात्म्यं प्रणेमुर्गिरिशं हरम्॥ ३॥

वहाँ गुरु के साथ मुनियों ने आश्चर्यकारक वह तीर्थ देखा। उससे उन्होंने उस स्थान का माहात्म्य समझा और गिरीश्वर हर को प्रणाम किया।

कश्चिदभ्याजगामेमं शार्दूलो घोररूपधृक्।
मृगीमेकां भक्षयितुं कपर्दीश्वरमुत्तमम्॥ ४॥

(उन्होंने देखा) एक भयानक रूप धारण करने वाला बाघ उत्तम कपर्दीश्वर शिवलिङ्ग के पास एक हरिणी को भक्षण करने के लिए आ पहुँचा।

तत्र सा भीतहृदया कृत्वा कृत्वा प्रदक्षिणम्।
धावमाना सुसम्भ्रान्ता व्याघ्रस्य वशमागता॥ ५॥

वहाँ भयभीत हृदय वाली वह हरिणी शिवलिङ्ग के चारों ओर बार-बार प्रदक्षिणा करके भ्रमित होकर दौड़ती हुई बाघ के वश में आ गई।

तां विदार्य नखैस्तीक्ष्णैः शार्दूलः सुमहाबलः।
जगाम चान्यद्विजनं स दृष्ट्वा तान्मुनीश्वरान्॥ ६॥

महाबली बाघ ने उसे अपने तीक्ष्ण नखों से चीर दिया और उन मुनीश्वरों को देखकर दूसरे जनरहित स्थान (वन) में चला गया।

मृतमात्रा च सा बाला कपर्दीशाग्रतो मृगी।
अदृश्यत महाज्वाला व्योम्नि सूर्यसमप्रभा॥ ७॥

कपर्दीश के आगे मृत्यु को प्राप्त हुई वह बाला मृगी आकाश में सूर्य की प्रभा के समान प्रभावाली महाज्वाला के रूप में दिखाई पड़ी।

त्रिनेत्रा नीलकण्ठा च शशाङ्काङ्कितशेखरा।
वृषाधिरूढा पुरुषैस्तादृशैरेव संवृता॥ ८॥
पुष्पवृष्टिं विमुञ्चन्ति खेचरास्तस्य मूर्द्धनि।
गणेश्वरः स्वयं भूत्वा न दृष्टस्तत्क्षणात्ततः॥ ९॥

वह त्रिनेत्रा, नीलकण्ठा, चन्द्रमा से अंकित मस्तकवाली, वृषभ पर आरूढ़ तथा वैसे ही पुरुषों से घिरी हुई थी। आकाशचारी उसके मस्तक पर पुष्पवृष्टि करने लगे। वह स्वयं गणेश्वर होकर उसी क्षण वहाँ से अदृश्य हो गयी।

दृष्ट्वैतदाश्चर्यवरं जैमिनिप्रमुखास्तदा।
कपर्दीश्वरमाहात्म्यं पप्रच्छुर्गुरुमच्युतम्॥ १०॥

उस समय यह जैमिनि आदि शिष्यों ने उस महान् आश्चर्य को देखकर कपर्दीश्वर के माहात्म्य के विषय में अच्युतस्वरूप गुरुदेव व्यास से पूछा।

तेषां प्रोवाच भगवान्देवाग्रे चोपविश्य सः।
कपर्दीशस्य माहात्म्यं प्रणम्य वृषभध्वजम्॥ ११॥

भगवान् व्यास महादेव के सामने बैठ गये और वृषभध्वज को प्रणाम करके उन शिष्यों से कपर्दीश का माहात्म्य कहने लगे।

(स्मृत्यैवाशेषपापौघं क्षिप्रमस्य विनश्यति।
कामक्रोधादयो दोषा वाराणस्यां निवासिनः॥
विघ्नाः सर्वे विनश्यन्ति कपर्दीश्वरपूजनात्॥
तस्मात्सदैव द्रष्टव्यं कपर्दीश्वरमुत्तमम्॥)

(कपर्दीश का स्मरण करते ही उसके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। कपर्दीश्वर के पूजन से वाराणसी में निवास करने वालों के काम, क्रोध आदि दोष तथा सभी विघ्न समाप्त हो जाते हैं। इसलिए उत्तम कपर्दीश्वर लिङ्ग के दर्शन सदैव करने चाहिए)।

इदं देवस्य तल्लिङ्गं कपर्दीश्वरमुत्तमम्।
पूजितव्यं प्रयत्नेन स्तोतव्यं वैदिकैः स्तवैः॥ १२॥

इसलिए महादेव के उस कपर्दीश्वर श्रेष्ठ लिङ्ग का विधिपूर्वक पूजन करना चाहिए और वैदिक स्तोत्रों से स्तुति करनी चाहिए।

ध्यायतामत्र नियतं योगिनां शान्तचेतसाम्।
जायते योगसिद्धिश्च षण्मासेन न संशयः॥ १३॥

यहाँ नियमपूर्वक ध्यान करने वाले शान्तचित्त योगियों की छह मास में ही योगसिद्धि हो जाती है, इसमें संशय नहीं।

ब्रह्महत्यादिपापानि विनश्यन्त्यस्य पूजनात्।
पिशाचमोचने कुण्डे स्नातस्यात्र समीपत:॥१४॥

इनका पूजन करने से तथा समीप ही पिशाचमोचनकुण्ड में स्नान करने से ब्रह्महत्या आदि पाप नष्ट हो जाते हैं।

अस्मिन् क्षेत्रे पुरा विप्रास्तपस्वी शंसितव्रत:।
शङ्कुकर्ण इति ख्यात: पूजयामास शूलिनम्॥१५॥

हे विप्रो! इसी क्षेत्र में पूर्व में कभी शंकुकर्ण नाम से प्रसिद्ध उत्तमव्रतधारी तपस्वी ने शिव की पूजा की थी।

जजाप रुद्रमनिशं प्रणवं रुद्ररूपिणम्।
पुष्पधूपादिभि: स्तोत्रैर्नमस्कारै: प्रदक्षिणै:॥१६॥

उसने दिनरात पुष्प-धूपादि सहित अनेक स्तुति मंत्रों द्वारा नमस्कार और प्रदक्षिणा करके रुद्ररूपी प्रणव का जप किया।

उवास तत्र योगात्मा कृत्वा दीक्षां तु नैष्ठिकीम्।
कदाचिदागतं प्रेतं पश्यति स्म क्षुधान्वितम्॥१७॥
अस्थिचर्मपिनद्धाङ्गं नि:श्वसन्तं मुहुर्मुहु:।
तं दृष्ट्वा स मुनिश्रेष्ठ: कृपया परया युत:॥१८॥
प्रोवाच को भवान् कस्माद्देशाद्देशमिमं गत:।
तस्मै पिशाच: क्षुधया पीड्यमानोऽब्रवीद्वच:॥१९॥

उस योगात्मा ने नैष्ठिकी दीक्षा प्राप्त करके वहाँ निवास किया। उसने किसी समय वहाँ आये हुए एक क्षुधापीड़ित प्रेत को देखा, जिसका शरीर मात्र हड्डी और चर्म से आवृत था। वह बार-बार श्वास ले रहा था। उसे देखकर मुनिवर परम कृपालु हो उठे और पूछने लगे— 'आप कौन हैं? किस स्थान से यहाँ पहुँचे हैं? तब भूख से पीड़ित उस पिशाच ने उनसे यह वचन कहा।

पूर्वजन्मन्यहं विप्रो धनधान्यसमन्वित:।
पुत्रपौत्रादिभिर्युक्त: कुटुम्बभरणोत्सुक:॥२०॥

मैं पूर्व जन्म में धनधान्य से सम्पन्न ब्राह्मण था। मैं पुत्र-पौत्रादि से युक्त और कुटुम्ब के भरण पोषण में ही उत्सुक रहता था।

न पूजिता मया देवा गावोऽप्यतिथयस्तथा।
न कदाचित्कृतं पुण्यमल्पं वा स्वल्पमेव वा॥२१॥

इसके अतिरिक्त मैंने कभी देवों, गौओं तथा अतिथियों का पूजा-सत्कार नहीं किया और कभी भी स्वल्पमात्र भी पुण्य नहीं किया।

एकदा भगवान्रुद्रो गोवृषेश्वरवाहन:।
विश्वेश्वरो वाराणस्यां दृष्ट: स्पृष्टो नमस्कृत:॥२२॥

मैंने एक बार वाराणसी में वृषभराज (नन्दी) वाहन वाले विश्वेश्वर भगवान् रुद्र का दर्शन किया, उन्हें स्पर्श किया और नमस्कार किया।

तदाचिरेण कालेन पञ्चत्वमहमागत:।
न दृष्टं तन्महाघोरं यमस्य वदनं मुने॥२३॥

तत्पश्चात् मैं तत्काल ही मृत्यु को प्राप्त हो गया। हे मुने! मैंने यम के उस महाभयानक मुख को नहीं देखा।

ईदृशीं योनिमापन्न: पैशाचीं क्षुधयार्दित:।
पिपासया परिक्रान्तो न जानामि हिताहितम्॥२४॥

अब ऐसी पैशाची-योनि को प्राप्त करके भूख से पीड़ित तथा प्यास से व्याकुल होकर अपने हित और अहित को नहीं जान पा रहा हूँ।

यदि कश्चित्समुद्धर्तुमुपायं पश्यसि प्रभो।
कुरुष्व तं नमस्तुभ्यं त्वाहं शरणं गत:॥२५॥

प्रभो! यदि आप मेरे उद्धार का कोई उपाय देख रहे हैं तो उसे करें। आपको नमस्कार है। मैं आपके शरणागत हूँ।

इत्युक्त: शङ्कुकर्णोऽथ पिशाचमिदमब्रवीत्।
त्वादृशो न हि लोकेऽस्मिन्विद्यते पुण्यकृत्तम:॥२६॥
यत्त्वया भगवान् पूर्वं दृष्टो विश्वेश्वर: शिव:।
संस्पृष्टो वन्दितो भूय: कोऽन्यस्त्वत्सदृशो भुवि॥२७॥

इस प्रकार कहने के बाद शंकुकर्ण ने पिशाच ने कहा— तुम्हारे समान उत्तम पुण्यकर्मा तो इस लोक में है ही नहीं जो कि तुमने पहले भगवान् विश्वेश्वर शिव का दर्शन किया और पुन: स्पर्श करके वंदन किया। फिर तुम्हारे समान इस संसार में अन्य कौन हो सकता है।

तेन कर्मविपाकेन देशमेतं समागत:।
स्नानं कुरुष्व शीघ्रं त्वमस्मिन् कुण्डे समाहित:॥२८॥
येनेमां कुत्सितां योनिं क्षिप्रमेव प्रहास्यसि॥२९॥

उसी कर्मफल के कारण तुम इस स्थान को प्राप्त हुए हो। तुम समाहितचित्त होकर इस कुण्ड में शीघ्र स्नान करो। ऐसा करने से इस कुत्सित योनि को शीघ्र त्याग दोगे।

स एवमुक्तो मुनिना पिशाचो
दयावता देववरं त्रिनेत्रम्।
स्मृत्वा कपर्दीश्वरमीशितारं
चक्रे समाधाय मनोऽवगाहम्॥३०॥

दयावान् मुनि के द्वारा ऐसा कहे जाने पर पिशाच ने मन को संयमित करके देवश्रेष्ठ, त्रिनेत्रधारी, कपर्दीश्वर भगवान् का स्मरण करके स्नान किया।

तदावगाहान्मुनिसन्निधाने
ममार दिव्याभरणोपपन्नः॥
अदृश्यतार्कप्रतिमे विमाने
शशांकचिह्नांकितचारुमौलिः॥ ३१॥

तब स्नान करने से वह मुनि के समीप ही मृत्यु को प्राप्त हुआ और दिव्य आभूषणों से सम्पन्न होकर सूर्यसदृश आभा वाले विमान में शशांक चिह्नित सुन्दर ललाटयुक्त (शिवसदृश) दिखाई देने लगा।

विभाति रुद्रैरुदितो दिविस्थैः
समावृतो योगिभिरप्रमेयैः।
स वालखिल्यादिभिरेष देवो
यथोदये भानुरशेषदेवः॥ ३२॥

द्युलोक में स्थित रुद्रगणों तथा महान् योगियों द्वारा चारों ओर से आवृत वह (पिशाच), उदयकाल में वालखिल्य आदि मुनियों से परिवृत सब के देव सूर्य देव के समान शोभित होने लगा।

स्तुवंति सिद्धा दिवि देवसंघा
नृत्यंति दिव्याप्सरसोऽभिरामाः।
मुञ्चन्ति वृष्टिं कुसुमालिमिश्रां
गन्धर्वविद्याधरकिन्नराद्याः॥ ३३॥

आकाश में सिद्धगण तथा देवसमूह उसका स्तुतिगान करने लगे। सुन्दर दिव्य अप्सरायें नृत्य करने लगीं और गन्धर्व, विद्याधर, किन्नर आदि उसके ऊपर भ्रमर मिश्रित पुष्पों की वृष्टि करने लगे।

संस्तूयमानोऽथ मुनींद्रसंघै-
रवाप्य बोधं भगवत्प्रसादात्।
समाविशन्मण्डलमेवमग्र्यं
त्रयीमयं यत्र विभाति रुद्रः॥ ३४॥

मुनीन्द्रों के समुदाय द्वारा उसकी स्तुति की जा रही थी और भगवान् शंकर की कृपा से उसे ज्ञान भी प्राप्त हो गया था। तदनन्तर वह वेदोमय प्रधान सूर्यमण्डल में प्रवेश कर गया, जहाँ रुद्र शोभायमान रहते हैं।

दृष्ट्वा विमुक्तं स पिशाचभूतं
मुनिः प्रहृष्टो मनसा महेशम्।
विचिन्त्य रुद्रं कविमेकमग्र्यं
प्रणम्य तुष्टाव कपर्दिनं तम्॥ ३५॥

पिशाच को विमुक्त देखकर वे मुनि अत्यन्त हर्षित हुए और मन से प्रधान, कविस्वरूप, रुद्र महेश का ध्यान करके उन्हें प्रणाम करके कपर्दीश्वर भगवान् को प्रसन्न करने लगे।

शंकुकर्ण उवाच

नमामि नित्यं परतः परस्ताद्
गोप्तारमेकं पुरुषं पुराणम्।
व्रजामि योगेश्वरमीशितार-
मादित्यमग्निं कलिलाधिरूढम्॥ ३६॥

शंकुकर्ण ने कहा— मैं नित्य, पर से भी पर, गोप्ता, एक, पुराण पुरुष को नमस्कार करता हूँ। मैं योगेश्वर, ईशिता, आदित्य (मंडल में अवस्थित) और अग्निस्वरूप तथा सब के हृदय में अधिरूढ़ भगवान् की शरण में जाता हूँ।

त्वां ब्रह्मपारं हृदि सन्निविष्टं
हिरण्मयं योगिनमादिहीनम्।
व्रजामि रुद्रं शरणं दिविस्थं
महामुनिं ब्रह्मपरं पवित्रम्॥ ३७॥

हे देव! आप ब्रह्मा से परे, सबके हृदय में सन्निविष्ट, हिरण्मय, योगी, जन्मरहित, रक्षक, आकाश में स्थित, महामुनि, ब्रह्मपरायण और पवित्र हैं। मैं आपकी शरण में आता हूँ।

सहस्रपादाक्षिशिरोऽभियुक्तं
सहस्रबाहुं तमसः परस्तात्।
त्वां ब्रह्मपारं प्रणमामि शंभुं
हिरण्यगर्भाधिपतिं त्रिनेत्रम्॥ ३८॥

सहस्र पाद, सहस्राक्ष और सहस्र शिरों से युक्त, सहस्रबाहु वाले, तम से परे, ब्रह्मपार, हिरण्यगर्भ के अधिपति और त्रिनेत्रधारी आप शंभु को मैं प्रणाम करता हूँ।

यतः प्रसूतिर्जगतो विनाशो
येनाहृतं सर्वमिदं शिवेन।
तं ब्रह्मपारं भगवन्तमीशं
प्रणम्य नित्यं शरणं प्रपद्ये॥ ३९॥

जिससे जगत् का जन्म और विनाश होता है और जिस शिव द्वारा इस सबका आहरण होता है, उन ब्रह्मपार, भगवान् ईश को प्रणाम करके मैं सदा शरणागत होता हूँ।

अलिङ्गमालोकविहीनरूपं
स्वयंप्रभुं चित्पतिमेकरुद्रम्।
तं ब्रह्मपारं परमेश्वरं त्वां
नमस्करिष्ये न यतोऽन्यदस्ति॥ ४०॥

लिङ्गरहित, अप्रकटितस्वरूप वाले, स्वयंप्रभु, चित्स्वरूप, एकमात्र रुद्र, आपको नमस्कार है। ऐसे आप ब्रह्मपार, परमेश्वर मैं प्रणाम करता हूँ, जिनके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है।

यं योगिनस्त्यक्तसबीजयोगा-
ल्लब्ध्वा समाधिं परमात्मभूताः।
पश्यन्ति देवं प्रणतोऽस्मि नित्यं
तद्ब्रह्मपारं भवतः स्वरूपम्॥ ४१॥

योगीजन जिस देव को सबीज योग के त्याग से समाधि प्राप्त करके परमात्म-स्वरूप होकर देखते हैं, आपके उस ब्रह्मपार स्वरूप को मैं नित्य नमन करता हूँ।

न यत्र नामानि विशेषतृप्तिर्न
संदृश्‍ये तिष्ठति यत्स्वरूपम्।
तं ब्रह्मपारं प्रणतोऽस्मि नित्यं
स्वयंभुवं त्वां शरणं प्रपद्ये॥ ४२॥

हे देव! जहाँ कोई नाम नहीं है, जहाँ विशेष तृप्ति-सुख नहीं है और जिसका स्वरूप भी नहीं दिखाई देता है, वैसे ब्रह्मपार शिव को मैं नित्य प्रणाम करता हूँ। मैं आप स्वयम्भु के शरणागत होता हूँ।

यद्वेदवेदाभिरता विदेहं
स ब्रह्मविज्ञानमभेदमेकम्।
पश्यन्त्यनेकं भवतः स्वरूपं
तद्ब्रह्मपारं प्रणमामि नित्यम्॥ ४३॥

वेदों के ज्ञान में सतत संलग्न विद्वान् जिन्हें अशरीरी, अभेदात्मक, अद्वैत और ब्रह्मविज्ञानमय आपके विविध स्वरूप को देखते हैं उस ब्रह्मपारस्वरूप को मैं नित्य प्रणाम करता हूँ।

यतः प्रधानं पुरुषः पुराणो
विवर्त्तते यं प्रणमन्ति देवाः।
नमामि तं ज्योतिषि संनिविष्टं
कालं बृहन्तं भवतः स्वरूपम्॥ ४४॥

जिनसे प्रकृति और पुरातन पुरुष विद्यमान रहते हैं, देवगण जिन्हें प्रणाम करते हैं, उस परमज्योति में संनिविष्ट, कालस्वरूप आपके बृहत् स्वरूप को मैं प्रणाम करता हूँ।

व्रजामि नित्यं शरणं महेशं
स्थाणुं प्रपद्ये गिरिशं पुराणम्।
शिवं प्रपद्ये हरमिन्दुमौलिं
पिनाकिनं त्वां शरणं व्रजामि॥ ४५॥

मैं नित्य महेश की शरण में जाता हूँ। मैं पुराण पुरुष, स्थाणु गिरीश को प्राप्त होता हूँ। चन्द्रमौलि महादेव को प्राप्त होता हूँ और पिनाकी भगवान् की शरण में जाता हूँ।

स्तुत्वैवं शंकुकर्णोऽसौ भगवन्तं कपर्दिनम्।
पपात दण्डवद्भूमौ प्रोच्चरन्प्रणवं शिवम्॥ ४६॥

इस प्रकार वह शंकुकर्ण भगवान् कपर्दी की स्तुति करके शिवरूप ॐ का उच्चारण करते हुए दण्डवत् भूमि पर गिर पड़ा।

तत्क्षणात्परमं लिङ्गं प्रादुर्भूतं शिवात्मकम्।
ज्ञानमानन्दमद्वैतं कोटिकालाग्निसन्निभम्॥ ४७॥

उसी क्षण ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप, अद्वैतरूप, कोटिकालाग्निसदृश शोभायमान शिवस्वरूप परम लिङ्ग प्रकट हुआ।

शंकुकर्णोऽथ स तदा मुनिः सर्वात्मकोऽमलः।
निर्लिप्ये विमले लिङ्गे तदद्भुतमिवाभवत्॥ ४८॥

तब सर्वात्मा और निर्मल मुनि शंकुकर्ण उस विमल लिंग में विलीन हो गया। यह एक आश्चर्य सा हुआ।

एतद्रहस्यमाख्यातं माहात्म्यं च कपर्दिनः॥
न कश्चिद्वेत्ति तमसा विद्वानप्यत्र मुह्यति॥ ४९॥

कपर्दी लिंग का यह रहस्य और माहात्म्य मैंने बता दिया। तमोगुण के कारण इसे कोई नहीं जान पाता है। विद्वान् भी इस विषय में मोहित हो जाता है।

य इमां शृणुयान्नित्यं कथां पापप्रणाशिनीम्॥
भक्तः पापविमुक्तात्मा रुद्रसामीप्यमाप्नुयात्॥ ५०॥

जो भक्त इस पापनाशिनी कथा का नित्य श्रवण करेगा, वह विमुक्त होकर रुद्र का सामीप्य प्राप्त करेगा।

पठेच्च सततं शुद्धो ब्रह्मपारं महास्तवम्॥
प्रातर्मध्याह्नसमये स योगं प्राप्नुयान्नरः॥ ५१॥

जो निरन्तर पवित्र होकर प्रातःकाल और मध्याह्नकाल में इस ब्रह्मपारनामक महान् स्तोत्र का पाठ करेगा, वह मनुष्य योग को प्राप्त करेगा।

इहैव नित्यं वत्स्यामो देवदेवं कपर्दिनम्॥
द्रक्ष्यामः सततं देवं पूजयामस्त्रिलोचनम्॥ ५२॥

इत्युक्त्वा भगवान्व्यासः शिष्यैः सह महाद्युतिः॥
उवास तत्र युक्तात्मा पूजयन्वै कपर्दिनम्॥५३॥

'हम सदा यहीं रहेंगे और देवाधिदेव कपर्दी का निरन्तर दर्शन करेंगे तथा त्रिलोचन देव की पूजा करेंगे' ऐसा कहकर महाद्युतिसम्पन्न, युक्तात्मा, भगवान् व्यासदेव शिष्यों के साथ कपर्दी की पूजा करते हुए वहीं रहे लगे।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे वाराणसीमाहात्म्यं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥३३॥

चतुर्स्त्रिंशोऽध्यायः
(वाराणसी-माहात्म्य)

सूत उवाच

उषित्वा तत्र भगवान् कपर्दीशान्तिके पुनः।
ययौ द्रष्टुं मध्यमेशं बहुवर्षगणान्प्रभुः॥१॥

सूत बोले— वहाँ कपर्दीश्वर शिव के समीप अनेक वर्षों तक वास करके भगवान् प्रभु वेदव्यास मध्यमेश्वर लिंग को देखने के लिए गये।

तत्र मन्दाकिनीं पुण्यामृषिसंघनिषेविताम्।
नदीं विमलपानीयां दृष्ट्वा हृष्टोऽभवन्मुनिः॥२॥

वहाँ ऋषियों के समूह से निषेवित, पवित्र एवं निर्मल जल वाली मन्दाकिनी नदी को देखकर व्यास मुनि अत्यन्त प्रसन्न हुए।

स तामन्वीक्ष्य मुनिभिः सह द्वैपायनः प्रभुः।
चकार भावपूतात्मा स्नानं स्नानविधानवित्॥३॥

उस नदी को देखकर पवित्र भावयुक्त आत्मा वाले और स्नानविधि को जानने वाले प्रभु द्वैपायन व्यास ने मुनियों के साथ वहाँ स्नान किया।

(पूजयामास लोकादिं पुष्पैर्नानाविधैर्भवम्॥
प्रविश्य शिष्यप्रवरैः सार्द्धं सत्यवतीसुतः॥)

(श्रेष्ठ शिष्यों के साथ उसमें प्रवेश करके सत्यवतीपुत्र व्यास ने अनेक प्रकार के पुष्पों से आदिजन्मा शिव की पूजा की।)

सन्तर्प्य विधिवद्देवानृषीन् पितृगणांस्तथा।
मध्यमेश्वरमीशानमर्चयामास शूलिनम्॥४॥

(उन्होंने) देवों, ऋषियों तथा पितरों का विधिवत् तर्पण करके मध्यमेश्वर ईशान शिव का पूजन किया।

ततः पाशुपताः शांता भस्मोद्धूलितविग्रहाः।
द्रष्टुं समागता रुद्रं मध्यमेश्वरमीश्वरम्॥५॥
ओंकारासक्तमनसो वेदाध्ययनतत्पराः।
जटिला मुण्डिताश्चापि शुद्धयज्ञोपवीतिनः॥६॥
कौपीनवसनाः केचिदपरे चाप्यवाससः।
ब्रह्मचर्यरताः शांता दांता वै ज्ञानतत्पराः॥७॥

तदनन्तर वे भस्मलेपित शरीरधारी, शान्तचित्त शिवभक्त, मध्यमेश्वर ईश्वर रुद्र को देखने के लिए आये। वे सब ओंकार में आसक्त चित्त वाले और वेदाध्ययन में तत्पर रहते थे। वे जटाधारी, मुण्डित शिर वाले एवं शुद्ध यज्ञोपवीतधारण किये हुए थे। उनमें कोई कौपीनवस्त्र पहने थे, तो कोई निर्वस्त्र थे। वे सभी ब्रह्मचर्य में निरत, शान्तस्वभाव, इन्द्रियनिग्रही तथा ज्ञानपरायण थे।

दृष्ट्वा द्वैपायनं विप्राः शिष्यैः परिवृतं मुनिम्।
पूजयित्वा यथान्यायमिदं वचनमब्रुवन्॥८॥
को भवान् कुत आयातः सह शिष्यैर्महामुने।
प्रोचुः पैलादयः शिष्यास्तानृषीन्धर्मभावितान्॥९॥

हे विप्रो! उन्होंने शिष्यों से घिरे हुए मुनि द्वैपायन को देखकर विधिवत् उनकी पूजा की और यह वचन कहा— हे महामुनि! आप कौन हैं? शिष्यों के साथ आप कहाँ से आये हैं? तब पैल आदि शिष्यों ने धर्म भावना से भावित उन ऋषियों से कहा।

अयं सत्यवतीसूनुः कृष्णद्वैपायनः प्रभुः।
व्यासः स्वयं हृषीकेशो येन वेदाः पृथक्कृताः॥१०॥

ये स्वयं हृषीकेश, सत्यवती पुत्र, प्रभु, कृष्णद्वैपायन व्यास हैं, जिन्होंने वेदों का विभाजन किया है।

यस्य देवो महादेवः साक्षाद्देवः पिनाकधृक्।
अंशांशेनाभवत्पुत्रो नाम्ना शुक इति प्रभुः॥११॥
यो वै साक्षान्महादेवं सर्वभावेन शंकरम्।
प्रपन्नः परया भक्त्या यस्य तज्ज्ञानमैश्वरम्॥१२॥

जिनका शुक नामक पुत्र हुआ, जो पिनाकपाणि साक्षात् महादेव ही अपने अंशांश से उत्पन्न हुए थे। जो परम भक्तिपूर्वक सर्वभाव से साक्षात् महादेव शंकर के शरणागत हैं और जिन्हें ईश्वरसंबन्धी ज्ञान प्राप्त है।

ततः पाशुपताः सर्वे ते च हृष्टतनूरुहाः।
ऊचुरव्यग्रमनसो व्यासं सत्यवतीसुतम्॥१३॥

तदनन्तर वे सब शिवभक्त हर्ष से पुलकित रोम वाले तथा शान्तचित्त होकर सत्यवती पुत्र व्यास से बोले।

भगवन् भवता ज्ञातं विज्ञानं परमेष्ठिनः॥
प्रसादाद्देवदेवस्य यत्तन्माहेश्वरं परम्॥ १४॥

हे भगवन्! आपको देवाधिदेव की कृपा से परमेष्ठी शंकर का विशेष ज्ञान है और जो महेश्वरसम्बन्धी परम ज्ञान है, वह भी प्राप्त हो चुका है।

तद्वदास्माकमव्यग्रं रहस्यं गुह्यमुत्तमम्।
क्षिप्रं पश्येम तं देवं श्रुत्वा भगवतो मुखात्॥ १५॥

आप हमें वह स्थिर, उत्तम, गुह्य रहस्य को बता दें। आप भगवान् के मुख से सुनकर हम शीघ्र ही उन महादेव को देख लेंगे।

विसर्जयित्वा ताञ्छिष्यान् सुमन्तुप्रमुखांस्तदा।
प्रोवाच तत्परं ज्ञानं योगिभ्यो योगवित्तमः॥ १६॥

तब सुमन्तु आदि अपने शिष्यों को वहाँ से विदाई देकर योगवेत्ताओं में श्रेष्ठ व्यासजी ने योगियों के लिए उस परम ज्ञान का उपदेश किया।

तत्क्षणादेव विमलं सम्भूतं ज्योतिरुत्तमम्।
लीनास्तत्रैव ते विप्राः क्षणादन्तरधीयत॥ १७॥

उसी क्षण वहाँ निर्मल उत्तम ज्योति प्रकट हुई। उसी में वे विप्रगण लीन होकर क्षणभर में अन्तर्हित हो गये।

ततः शिष्यान् समाहूय भगवान् ब्रह्मवित्तमः।
प्रोवाच मध्यमेशस्य माहात्म्यं पैलपूर्वकान्॥ १८॥

तदनन्तर पैल आदि शिष्यों को अपने समीप बुलाकर ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ भगवान् व्यास ने उनको मध्यमेश्वर लिंग का माहात्म्य बताया।

अस्मिन् स्थाने स्वयं देवो देव्या सह महेश्वरः।
रमते भगवान्नित्यं रुद्रैश्च परिवारितः॥ १९॥

अत्र पूर्वं हृषीकेशो विश्वात्मा देवकीसुतः॥
उवास वत्सरं कृष्णः सदा पाशुपतैर्वृतः॥ २०॥

(वे बोले) इसी स्थान में रुद्रों से परिवृत स्वयं भगवान् महेश्वर देव नित्य देवी पार्वती के साथ क्रीड़ा करते हैं। पूर्वकाल में यहाँ विश्वात्मा, हृषीकेश देवकीपुत्र कृष्ण ने एक वर्ष तक पाशुपतों के साथ निवास किया था।

भस्मोद्धूलितसर्वाङ्गो रुद्राराधनतत्परः॥
आराधयन् हरिः शंभुं कृत्वा पाशुपतं व्रतम्॥ २१॥

सर्वाङ्ग पर भस्म रचाते हुए, रुद्र की आराधना में तत्पर वे हरि पाशुपत व्रत धारण करके शंभु की उपासना करते थे।

तस्य वै बहवः शिष्या ब्रह्मचर्यपरायणाः।
लब्ध्वा तद्वचनाज्ज्ञानं दृष्टवन्तो महेश्वरम्॥ २२॥

उनके ब्रह्मचर्यपरायण बहुत से शिष्यों ने उनके वचन से ज्ञान प्राप्त कर महेश्वर का दर्शन किया।

तस्य देवो महादेवः प्रत्यक्षं नीललोहितः।
ददौ कृष्णस्य भगवान्वरदो वरमुत्तमम्॥ २३॥

वरप्रदाता भगवान् नीललोहित महादेव ने साक्षात् प्रकट होकर श्रीकृष्ण को उत्तम वर प्रदान किया।

येऽर्चयिष्यन्ति गोविन्दं मद्भक्ता विधिपूर्वकम्।
तेषां तदैश्वरं ज्ञानमुत्पत्स्यति जगन्मय॥ २४॥

(शिव ने कहा) हे जगन्मय! जो मेरे भक्त विधिपूर्वक गोविन्द की अर्चना करेंगे, उन्हें वह ऐश्वर-ज्ञान उत्पन्न होगा।

त्वमीशोऽर्चयितव्यश्च ध्यातव्यो मत्परैर्जनैः।
भविष्यसि न सन्देहो मत्प्रसादाद् द्विजातिभिः॥ २५॥

मेरी कृपा से आप प्रभु मेरे भक्तजनों तथा द्विजातियों के द्वारा पूजा और ध्यान करने योग्य होंगे, इसमें सन्देह नहीं है।

ये च द्रक्ष्यन्ति देवेशं ध्यात्वा देवं पिनाकिनम्।
ब्रह्महत्यादिकं पापं तेषामाशु विनश्यति॥ २६॥

जो लोग पिनाकपाणि महादेव का ध्यान करके आप देवेश का दर्शन करेंगे, उनके ब्रह्महत्यादि सारे पाप शीघ्र ही नष्ट हो जायेंगे।

प्राणांस्त्यजन्ति ये विप्राः पापकर्मरता अपि।
ते यान्ति परमं स्थानं नात्र कार्या विचारणा॥ २७॥

पापकर्म में प्रवृत्त रहने पर भी जो विप्र यहाँ प्राणत्याग करेंगे, वे परम स्थान को प्राप्त करेंगे, इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं है।

धन्यास्तु खलु ते विप्रा मन्दाकिन्यां कृतोदकाः।
अर्चयन्ति महादेवं मध्यमेश्वरमुत्तमम्॥ २८॥

वे विप्रगण धन्य हैं जो मन्दाकिनी में स्नान करके उत्तम मध्यमेश्वर महादेव की अर्चना करते हैं।

स्नानं दानं तपः श्राद्धं पिण्डनिर्वपणं त्विह॥
एकैकशः कृतं विप्राः पुनात्यासप्तमं कुलम्॥ २९॥

हे विप्रो! यहाँ स्नान, दान, तप, श्राद्ध और पिण्डदान इनमें से जो एक बार भी करता है, वह अपने सात कुलों को पवित्र कर लेता है।

सन्निहत्यामुपस्पृश्य राहुग्रस्ते दिवाकरे।

यत्फलं लभते मर्त्यस्तस्माद्दशगुणं त्विह॥ ३०॥

सूर्य ग्रहण के समय सन्निहती नदी (कुरुक्षेत्र तीर्थ) में स्नान करने से जो फल मिलता है, उससे दस गुना अधिक फल यहाँ प्राप्त होता है।

एवमुक्त्वा महायोगी मध्यमेशान्तिके प्रभुः।
उवास सुचिरङ्कालं पूजयन्वै महेश्वरम्॥ ३१॥

इस प्रकार कहकर महायोगी भगवान् व्यास ने महेश्वर की पूजा करते हुए मध्यमेश के समीप दीर्घकाल तक निवास किया।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे वाराणसीमाहात्म्यं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३४॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

(वाराणसी-माहात्म्य)

सूत उवाच

ततः सर्वाणि गुह्यानि तीर्थान्यायतनानि च।
जगाम भगवान्व्यासो जैमिनिप्रमुखैर्युतः॥ १॥

सूत बोले— इसके बाद जैमिनि आदि शिष्यों के साथ भगवान् व्यास सभी गोपनीय तीर्थों और देवमन्दिरों में गये।

प्रयागं परमं तीर्थं प्रयागादधिकं शुभम्।
विश्वरूपं तथा तीर्थं कालतीर्थमुत्तमम्॥ २॥
आकाशाख्यं महातीर्थं तीर्थञ्चैवानुषं परम्।
स्वर्ल्लीनञ्च महातीर्थं गौरीतीर्थमनुत्तमम्॥ ३॥

वे श्रेष्ठ प्रयाग तीर्थ और प्रयाग से भी अधिक शुभ विश्वरूप तीर्थ तथा उत्तम कालतीर्थ, आकाश नामक महातीर्थ, श्रेष्ठ आनुष तीर्थ, स्वर्लीन नामक महातीर्थ तथा परम श्रेष्ठ गौरीतीर्थ में गये।

प्राजापत्यं परं तीर्थं स्वर्गद्वारं तथैव च।
जम्बुकेश्वरमित्युक्तं धर्माख्यं तीर्थमुत्तमम्॥ ४॥
गयातीर्थं महातीर्थं तीर्थञ्चैव महानदी।
नारायणं परं तीर्थं वायुतीर्थमनुत्तमम्॥ ५॥
ज्ञानतीर्थं परं गुह्यं वाराहं तीर्थमुत्तमम्।
यमतीर्थं महापुण्यं तीर्थं संवर्त्तकं परम्॥ ६॥
अग्नितीर्थं द्विजश्रेष्ठाः कालकेश्वरमुत्तमम्।
नागतीर्थं सोमतीर्थं सूर्यतीर्थं तथैव च॥ ७॥
पर्वताख्यं महापुण्यं मणिकर्णमनुत्तमम्।
घटोत्कचं तीर्थवरं श्रीतीर्थञ्च पितामहम्॥ ८॥

द्विजश्रेष्ठो! वे श्रेष्ठ तीर्थ प्राजापत्य, स्वर्गद्वार, जम्बुकेश्वर तथा उत्तम चर्माख्य तीर्थ, गयातीर्थ, महातीर्थ, महानदीतीर्थ, श्रेष्ठ नारायण तीर्थ, परम श्रेष्ठ वायुतीर्थ, परम गुह्य ज्ञानतीर्थ, उत्तम वाराहतीर्थ, महापुण्यदायक यमतीर्थ तथा श्रेष्ठ संवर्तक तीर्थ, अग्नितीर्थ, उत्तम कालकेश्वर तीर्थ, नागतीर्थ, सोमतीर्थ तथा सूर्यतीर्थ, पर्वत नामक महापवित्र तीर्थ, परम श्रेष्ठ मणिकर्ण तीर्थ, तीर्थश्रेष्ठ घटोत्कच, श्रीतीर्थ तथा पितामह तीर्थ में गये।

गङ्गातीर्थन्तु देवेशं तथा तत्तीर्थमुत्तमम्।
कापिलञ्चैव सोमेशं ब्रह्मतीर्थमनुत्तमम्॥ ९॥

पुनः वे गंगातीर्थ तथा उत्तम देवेश तीर्थ, कापिल तीर्थ, सोमेश तीर्थ और परमोत्तम ब्रह्मतीर्थ में गये।

(यत्र लिङ्गं पूजनीयं स्नातुं ब्रह्मा यदागतः॥
तदानीं स्थापयामास विष्णुस्तल्लिंगमैश्वरम्॥
ततः स्नात्वा समागत्य ब्रह्मा प्रोवाच तं हरिम्।
मयानीतमिदं लिङ्गं कस्मात्स्थापितवानसि।
तमाह विष्णुस्त्वत्तोऽपि रुद्रे भक्तिर्दृढा यतः।
तस्मात्प्रतिष्ठितं लिङ्गं नाम्ना तव भविष्यति॥)

(जहाँ पर पूजनीय शिवलिङ्ग है, जब ब्रह्मा वहाँ स्नान करने के लिए आये, उसी समय विष्णु ने उस ईश्वरीय शिवलिंग को स्थापित कर दिया। तदनन्तर स्नान करके आने पर ब्रह्मा ने विष्णु से कहा— मैं इस लिंग को लाया हूँ! आपने क्यों स्थापना की? तब विष्णु ने भी उनसे कहा— शंकर के प्रति मुझ में दृढ़ भक्ति है, इसलिए मैंने लिङ्ग की प्रतिष्ठा की है। किन्तु यह आपके नाम से प्रसिद्ध होगा।)

भूतेश्वरं तथा तीर्थं तीर्थं धर्मसमुद्भवम्।
गन्धर्वतीर्थं सुशुभं वाह्नेयं तीर्थमुत्तमम्॥ १०॥
दौर्वासिकं होमतीर्थं चन्द्रतीर्थं द्विजोत्तमाः।
चित्रांगदेश्वरं पुण्यं पुण्यं विद्याधरेश्वरम्॥ ११॥
केदारं तीर्थमुख्याख्यं कालञ्जरमनुत्तमम्।
सारस्वतं प्रभासञ्च खेटकर्णं हरं शुभम्॥ १२॥

हे द्विजश्रेष्ठो! वे फिर भूतेश्वर तीर्थ, धर्मसमुद्भव तीर्थ, अत्यन्त शुभ गन्धर्व तीर्थ तथा उत्तम वाह्नेयतीर्थ, दौर्वासिक तीर्थ, होमतीर्थ, चन्द्रतीर्थ, पुण्य चित्रांगदेश्वर तीर्थ, पुण्य विद्याधरेश्वर तीर्थ, केदारतीर्थ, मुख्य नामक तीर्थ, अत्युत्तम

कालञ्जरतीर्थ, सारस्वततीर्थ, प्रभासतीर्थ, खेटकर्ण और शुभ हर तीर्थ में गये।

लौकिकाख्यं महातीर्थं तीर्थञ्चैव हिमालयम्।
हिरण्यगर्भं गोप्रख्यं तीर्थञ्चैव वृषध्वजम्॥ १३॥
उपशान्तं शिवञ्चैव व्याघ्रेश्वरमनुत्तमम्।
त्रिलोचनं महातीर्थं लोलार्कञ्चोत्तराह्वयम्॥ १४॥
कपालमोचनं तीर्थं ब्रह्महत्याविनाशनम्।
शुक्रेश्वरं महापुण्यमानन्दपुरमुत्तमम्॥ १५॥

पुन: लौकिक नामक महातीर्थ, हिमालयतीर्थ, हिरण्यगर्भ तीर्थ, गोप्रख्यतीर्थ और वृषध्वजतीर्थ, उपशान्त, शिव, परमोत्तम व्याघ्रेश्वर, त्रिलोचन नामक महातीर्थ, लोलार्क और उत्तराह्वय तीर्थ, ब्रह्महत्याविनाशक कपालमोचनतीर्थ, महापुण्यमय शुक्रेश्वरतीर्थ तथा उत्तम आनन्दपुर तीर्थ में गये।

एवमादीनि तीर्थानि प्राधान्यात्कथितानि तु।
न शक्या विस्तराद्वक्तुं तीर्थसंख्या द्विजोत्तमा:॥ १६॥

हे द्विजश्रेष्ठो! इस प्रकार मुख्यरूप से तीर्थों को बता दिया है। वस्तुत: विस्तार से तीर्थों की संख्या बताना शक्य नहीं है।

तेषु सर्वेषु तीर्थेषु स्नात्वाभ्यर्च्य सनातनम्।
उपोष्य तत्र तत्रासौ पाराशर्यो महामुनि:॥ १७॥
तर्पयित्वा पितृन्देवान् कृत्वा पिण्डप्रदानकम्।
जगाम पुनरेवापि यत्र विश्वेश्वर: शिव:॥ १८॥

महामुनि पराशरपुत्र व्यास ने उन सभी तीर्थों में स्नान करके और सनातन देव की अर्चना करके वहां उपवास किया। फिर देवों और पितरों को तर्पण तथा पिण्डदान करके पुन: उस स्थान में गये, जहाँ विश्वेश्वर शिव थे।

स्नात्वाभ्यर्च्य महालिङ्गं शिष्यै सह महामुनि:।
उवाच शिष्यान्धर्मात्मा यथेष्टं गन्तुमर्हथ॥ १९॥

धर्मात्मा महामुनि शिष्यों के साथ स्नान करके एवं महालिंग की पूजा करके शिष्यों से बोले— 'आप लोग अपने यथेष्ट स्थान को जा सकते हैं।'

ते प्रणम्य महात्मानं जग्मु: पैलादयो द्विजा:।
वासञ्च तत्र नियतो वाराणस्यां चकार स:॥ २०॥

हे द्विजो! वे पैल आदि शिष्य महात्मा व्यास को प्रणाम करके चले गये और व्यास जी नियतरूप से वाराणसी में रहने लगे।

शान्तो दान्तस्त्रिषवणं स्नात्वाभ्यर्च्य पिनाकिनम्।
भैक्षाहारो विशुद्धात्मा ब्रह्मचर्यपरायण:॥ २१॥

वे शान्त और इन्द्रियनिग्रही होकर तीनों समय स्नान करके भिक्षाहारी, विशुद्धात्मा और ब्रह्मचर्यपरायण होकर शिव की अर्चना करते थे।

कदाचित्तत्र वसता व्यासेनामिततेजसा।
भ्रममाणेन भिक्षा वै नैव लब्धा द्विजोत्तमा:॥ २२॥

हे द्विजोत्तमो! किसी समय वहाँ निवास करते हुए परम तेजस्वी व्यास जी को भिक्षा के लिए घूमते हुए भिक्षा उपलब्ध नहीं हुई।

तत: क्रोधावृततनुर्नराणामिह वासिनाम्।
विघ्नं सृजामि सर्वेषां येन सिद्धिर्हि हीयते॥ २३॥

तब क्रोधावृत शरीरयुक्त व्यास ने कहा– मैं यहाँ के निवासी सभी मनुष्यों के लिए विघ्न की सृष्टि करता हूँ, जिससे सबकी सिद्धि क्षीण हो जाएगी।

तत्क्षणात्सा महादेवी शंकरार्द्धशरीरिणी।
प्रादुरासीत्स्वयं प्रीत्या वेषं कृत्वा तु मानुषम्॥ २४॥
भो भो व्यास महाबुद्धे शप्तव्या न त्वया पुरी।
गृहाण भिक्षां मत्तस्त्वमुक्त्वैवं प्रददौ शिवा॥ २५॥

उसी क्षण शंकर की अर्धाङ्गिनी महादेवी पार्वती स्वयं प्रेम से मनुष्य के वेष में प्रकट हुई और बोली— हे मतिमान् व्यास! आप नगरी को शापग्रस्त न करें। मुझसे भिक्षा ग्रहण करें, ऐसा कहकर शिवा ने उन्हें भिक्षा प्रदान की।

उवाच च महादेवी क्रोधनस्त्वं यतो मुने।
इह क्षेत्रे न वस्तव्यं कृतघ्नोऽसि यत: सदा॥ २६॥

महादेवी ने पुन: कहा— हे मुने! जिस कारण आप क्रोधी हुए हो, इसलिए आपको इस क्षेत्र में वास नहीं करना चाहिए। क्योंकि तुम कृतघ्न हो।

एवमुक्त: स भगवान्ध्यानाज्ज्ञात्वा परां शिवाम्।
उवाच प्रणतो भूत्वा स्तुत्वा च प्रवरै: स्तवै:॥ २७॥

पार्वती के ऐसा कहने पर भगवान् व्यास ने परास्वरूपा शिवा को ध्यान से जानकर उनके आगे झुककर उत्तम स्तोत्रों से स्तुति करते हुए कहा।

चतुर्दश्यामथाष्टम्यां प्रवेशं देहि शाङ्करि।
एवमस्त्वित्यनुज्ञाय देवी चान्तरधीयत॥ २८॥

हे शांकरि! चतुर्दशी तथा अष्टमी के दिन मुझे वाराणसी में प्रवेश करने दें। तब 'ऐसा ही हो' इस प्रकार कहकर देवी अन्तर्धान हो गई।

एवं स भगवान्व्यासो महायोगी पुरातनः।
ज्ञात्वा क्षेत्रगुणान् सर्वान् स्थितस्तस्याथ पार्श्वतः॥ २९॥

इस प्रकार पुरातन महायोगी भगवान् व्यास काशी क्षेत्र के सब गुणों को जानकर उसके समीप ही रहने लगे।

एवं व्यासं स्थितं ज्ञात्वा क्षेत्रं सेवन्ति पण्डिताः।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वाराणस्यां वसेन्नरः॥ ३०॥

इस प्रकार व्यास जी को स्थित जानकर पण्डित लोग इस क्षेत्र का सेवन करते हैं। इसलिए सब प्रकार से प्रयत्नपूर्वक मनुष्य वाराणसी में निवास करें।

सूत उवाच

यः पठेदविमुक्तस्य माहात्म्यं शृणुयादथ।
श्रावयेद्वा द्विजाञ्छान्तान् स याति परमां गतिम्॥ ३१॥

सूतजी बोले— जो अविमुक्त क्षेत्र का माहात्म्य पढ़ता है, सुनता है अथवा शान्तचित्त द्विजों को सुनाता है, वह परम गति को प्राप्त करता है।

श्राद्धे वा दैविके कार्ये रात्रावहनि वा द्विजाः।
नदीनां चैव तीरेषु देवतायतनेषु च॥ ३२॥
ज्ञात्वा समाहितमनाः कामक्रोधविवर्जितः।
जपेदीशं नमस्कृत्य स याति परमां गतिम्॥ ३३॥

हे द्विजो! जो श्राद्ध में या देवकार्य में, रात्रि में या दिन में, नदियों के तटों पर अथवा देवालयों में काम-क्रोधादि त्यागकर समाहितचित्त होकर माहात्म्य को जानकर जगदीश्वर का नमस्कारपूर्वक जप करेगा, वह परम गति को प्राप्त होता है।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे वाराणसीमाहात्म्ये
पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥ ३५॥
वाराणसीमाहात्म्यं समाप्तम्॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः

(प्रयाग-माहात्म्य)

ऋषय ऊचुः

माहात्म्यमविमुक्तस्य यथावत्समुदीरितम्।
इदानीञ्च प्रयागस्य माहात्म्यं ब्रूहि सुव्रत॥ १॥

ऋषियों ने कहा— हे सुव्रत! अविमुक्त क्षेत्र का माहात्म्य आपने यथावत् कह दिया। अब प्रयाग का माहात्म्य को कहें।

यानि तीर्थानि तत्रैव विश्रुतानि महान्ति वै।
इदानीं कथयास्माकं सूत सर्वार्थविद्भवान्॥ २॥

वहाँ जो-जो प्रसिद्ध बड़े बड़े तीर्थ हैं, वह हमें इस समय बता दें। हे सूत! आप समस्त अर्थों के ज्ञाता हैं।

सूत उवाच

शृणुध्वमृषयः सर्वे विस्तरेण ब्रवीमि वः।
प्रयागस्य च माहात्म्यं यत्र देवः पितामहः॥ ३॥

सूत बोले— आप सब ऋषिगण सुनें। मैं विस्तार से प्रयाग का माहात्म्य कह रहा हूँ, जहाँ पितामह ब्रह्मदेव अवस्थित हैं।

मार्कण्डेयेन कथितं कौन्तेयाय महात्मने।
यथा युधिष्ठिरायैतत्तद्वक्ष्ये भवतामहम्॥ ४॥

मार्कण्डेय मुनि ने महात्मा कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर को जो कहा था, वह मैं आप लोगों से कहूँगा।

निहत्य कौरवान् सर्वान्भ्रातृभिः सह पार्थिवः।
शोकेन महताविष्टो मुमोह स युधिष्ठिरः॥ ५॥

सभी कौरवों का वधकर, भाईयों के साथ राजा युधिष्ठिर महान् शोक से आविष्ट होकर मोहित हो गये थे।

अचिरेणाथ कालेन मार्कण्डेयो महातपाः।
सम्प्राप्तो हास्तिनपुरं राजद्वारे स तिष्ठति॥ ६॥

कुछ ही समय बाद महातपस्वी मार्कण्डेय मुनि हस्तिनापुर आये और राज-द्वार पर खड़े हो गये।

द्वारपालोऽपि तं दृष्ट्वा राज्ञे कथितवान्द्रुतम्।
मार्कण्डेयो द्रष्टुमिच्छंस्त्वामास्ते द्वार्यसौ मुनिः॥ ७॥

उन्हें देखकर द्वारपाल ने तुरन्त राजा से कहा— मार्कण्डेय मुनि आपसे मिलना चाहते हैं, वे द्वार पर खड़े हैं।

त्वरितो धर्मपुत्रस्तु द्वारमभ्येत्य सत्वरम्।
द्वारमभ्यागतस्येह स्वागतं ते महामुने॥ ८॥
अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे तारितं कुलम्।
अद्य मे पितरस्तुष्टास्त्वयि तुष्टे सदा मुने॥ ९॥

शीघ्र ही धर्मपुत्र युधिष्ठिर त्वरितगति से द्वार पर पहुँचकर वहाँ उपस्थित मुनि से बोले— हे महामुने! आपका स्वागत है। आज मेरा जन्म सफल हुआ। आज मेरे कुल को आपने तार दिया। हे मुने! आपके सर्वथा संतुष्ट होने से आज मेरे पितर भी सन्तुष्ट हो गये हैं।

सिंहासनमुपस्थाप्य पादशौचार्चनादिभिः।
युधिष्ठिरो महात्मेति पूजयामास तं मुनिम्॥ १०॥
मार्कण्डेयस्तु संपृष्टः प्रोवाच स युधिष्ठिरम्।
किमर्थं मुह्यसे विद्वन् सर्वं ज्ञात्वा समागतः॥ ११॥

तब मुनि को सिंहासन पर बिठाकर महात्मा युधिष्ठिर ने पादप्रक्षालन तथा अर्चना आदि के द्वारा मुनि की पूजा की और कुशलक्षेम पूछा। तब मार्कण्डेय मुनि ने युधिष्ठिर से कहा— हे बुद्धमान्! आप क्यों मोह कर रहे हैं? मैं सब जानकर यहां आया हूँ।

ततो युधिष्ठिरो राजा प्रणम्य शिरसाब्रवीत्।
कथयस्व समासेन येन मुञ्चामि किल्विषम्॥ १२॥

तदनन्तर राजा युधिष्ठिर ने शिर झुकाकर प्रणाम करके कहा— मुझे संक्षेप में (उपाय) बतायें, जिससे मैं पाप से मुक्त हो जाऊँ।

निहता बहवो युद्धे पुमांसोऽनपराधिनः।
अस्माभिः कौरवैः सार्द्धं प्रसक्तान्मुनिसत्तम॥ १३॥
येन हिंसासमुद्भूताञ्जन्मान्तरकृतादपि।
मुच्येम पातकादद्य तद्भवान्वक्तुमर्हति॥ १४॥

हे मुनिश्रेष्ठ! कौरवों के साथ युद्ध के समय मैंने बहुत से निरपराधी मनुष्यों को मारा है। जिस कारण उस हिंसा से उत्पन्न तथा जन्मान्तर-कृत पापों से भी आज मैं मुक्त हो जाऊँ, वह उपाय आप बताने में समर्थ हैं।

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन्महाभाग यन्मां पृच्छसि भारत।
प्रयागगमनं श्रेष्ठं नराणां पापनाशनम्॥ १५॥
तत्र देवो महादेवो रुद्रोऽवात्सीन्नरेश्वर।
समास्ते भगवान् ब्रह्मा स्वयम्भूः सह दैवतैः॥ १६॥

मार्कण्डेय बोले— हे राजन्! महाभाग! भारत! जो आप मुझसे पूछ रहे हो, वह सुनो। (आपके लिए) प्रयाग जाना श्रेष्ठ है, जो मनुष्यों का पापनाशक है। हे नरेश्वर! वहाँ महादेव रुद्र वास करते हैं और देवताओं के साथ स्वयंभू भगवान् ब्रह्मा भी विराजमान हैं।

युधिष्ठिर उवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि प्रयागगमने फलम्।
मृतानां का गतिस्तत्र स्नातानाञ्चैव किम्फलम्॥ १७॥
ये वसन्ति प्रयागे तु ब्रूहि तेषान्तु किम्फलम्।
भवतो विदितं ह्येतन्मे ब्रूहि नमोऽस्तु ते॥ १८॥

युधिष्ठिर बोले— भगवन्! मैं प्रयागगमन का फल सुनना चाहता हूँ। वहाँ मरने वालों की गति क्या है? तथा स्नान करने वालों को क्या फल मिलता है? जो लोग प्रयाग में वास करते हैं, उन्हें क्या फल मिलता है? मुझे बताने की कृपा करें। आपको सब कुछ विदित है, आपको नमस्कार है।

मार्कण्डेय उवाच

कथयिष्यामि ते वत्स प्रयागस्नानजं फलम्।
पुरा महर्षिभिः सम्यक्कथ्यमानं मया श्रुतम्॥ १९॥

मार्कण्डेय बोले— हे वत्स! प्रयाग में स्नान करने का फल मैं तुम्हें कहता हूँ। पूर्वकाल में महर्षियों द्वारा कहे जाने पर उसे मैंने अच्छी प्रकार सुना था।

एतत्प्रजापतेः क्षेत्रं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
अत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः॥ २०॥

यह प्रजापति का क्षेत्र तीनों लोक में प्रसिद्ध है। यहाँ स्नान करके मनुष्य स्वर्ग को जाते हैं और जो मर जाते हैं उनका पुनर्जन्म नहीं होता है।

तत्र ब्रह्मादयो देवा रक्षां कुर्वन्ति संगताः।
बहून्यन्यानि तीर्थानि सर्वपापापहानि तु॥ २१॥

ब्रह्मा आदि देवता साथ मिलकर उसकी रक्षा करते हैं। वहाँ सकल पापों को दूर करने वाले बहुत से अन्य तीर्थ हैं।

कथितुं नेह शक्नोमि बहुवर्षशतैरपि।
संक्षेपेण प्रवक्ष्यामि प्रयागस्येह कीर्त्तनम्॥ २२॥

अनेक सैकड़ों वर्षों में भी उनका वर्णन करने में समर्थ नहीं हूँ। (अतः) संक्षेप में यहाँ प्रयाग का माहात्म्य कहूँगा।

षष्टिर्धनुःसहस्राणि तानि रक्षन्ति जाह्नवीम्।
यमुनां रक्षति सदा सविता सप्तवाहनः॥ २३॥

साठ हजार धनुष परिमित क्षेत्र में वे (तीर्थ) गंगा की रक्षा (प्रवाहित) करते हैं और सात घोड़ों के वाहन वाले सूर्यदेव सदा यमुना की रक्षा करते हैं।

प्रयागे तु विशेषेण स्वयं वसति वासवः।
मण्डलं रक्षति हरिः सर्वदेवैश्च सम्मितम्॥ २४॥

प्रयाग में विशेषरूप से स्वयं इन्द्र निवास करते हैं। सभी देवताओं से युक्त होकर विष्णु प्रयागमण्डल की रक्षा करते हैं।

न्यग्रोधं रक्षते नित्यं शूलपाणिर्महेश्वरः।
स्थानं रक्षन्ति वै देवाः सर्वपापहरं शुभम्॥ २५॥

वहाँ वटवृक्ष की रक्षा सदा शूलपाणि महेश्वर करते हैं। सकलपापहारी इस शुभ स्थान की रक्षा देवगण करते हैं।

स्वकर्मणा वृता लोका नैव गच्छन्ति तत्पदम्।
स्वल्पमल्पतरं पापं यस्य चास्ति नराधिप॥ २६॥

हे राजन्! अपने कर्म से घिरे हुए और जिनका थोड़ा सा भी पाप शेष है, वे लोग उस स्थान को नहीं जा पाते हैं।

प्रयागं स्मरमाणस्य सर्वमायाति संक्षयम्।
दर्शनात्तस्य तीर्थस्य नामसंकीर्तनादपि॥ २७॥
मृत्तिकालम्भनाद्वापि नरः पापात्प्रमुच्यते।
पञ्चकुण्डानि राजेन्द्र येषां मध्ये तु जाह्नवी॥ २८॥

प्रयाग का स्मरण करने से और उस तीर्थ के दर्शन तथा नाम कीर्तन मात्र से भी सभी पापों का क्षय हो जाता है। हे राजेन्द्र! वहाँ की मिट्टी स्पर्श करने से भी पापों का क्षय होता है। वहाँ पाँच कुण्ड हैं, जिनके मध्य में गंगा स्थित है।

प्रयागं विशतः पुंसः पापं नश्यति तत्क्षणात्।
योजनानां सहस्रेषु गंगां स्मरति यो नरः॥ २९॥
अपि दुष्कृतकर्मासौ लभते परमां गतिम्।
कीर्तनान्मुच्यते पापाद् दृष्ट्वा भद्राणि पश्यति॥ ३०॥

प्रयाग में प्रवेश करने वाले मनुष्य का पाप तत्काल नष्ट हो जाता है। जो मनुष्य हजारों योजन दूर से भी गंगा का स्मरण करता है, वह दुष्कर्मा होने पर भी परम गति को प्राप्त करता है। उसका कीर्तन करने से मनुष्य पाप से मुक्त हो जाता है और दर्शन से मनुष्य कल्याणों को देखता है।

तथोपस्पृश्य राजेन्द्र सुरलोके महीयते।
व्याधितो यदि वा दीनः क्रुद्धो वापि भवेन्नरः॥ ३१॥

हे राजेन्द्र! यदि रोगी या दीन अथवा क्रुद्ध मनुष्य भी गंगाजल से आचमन करके देवलोक में महती प्रतिष्ठा प्राप्त करता है।

पितॄणां तारकञ्चैव सर्वपापप्रणाशनम्।
यैः प्रयागे कृतो वास उत्तीर्णो भवसागरः॥ ३२॥

प्रयाग तीर्थ सभी पापों का विनाशक तथा पितरों को तारने वाला है। अतः जिन्होंने प्रयाग में वास किया, वे भवसागर से पार हो गये।

गंगायमुनमासाद्य त्यजेत्प्राणान्प्रयत्नतः।
ईप्सितांल्लभते कामान्वदन्ति मुनिपुंगवाः॥ ३३॥

मुनिवर कहते हैं कि जो पुरुष गंगा और यमुना में जाकर प्रयत्नपूर्वक प्राणत्याग करता है, वह अभीष्ट कामनाओं को प्राप्त करता है।

दीप्तकाञ्चनवर्णाभैर्विमानैर्भानुवर्तिभिः।
सर्वरत्नमयैर्दिव्यैर्नानाध्वजसमाकुलैः॥ ३४॥
वरांगनासमाकीर्णैर्मोदते शुभलक्षणः।
गीतवादित्रनिर्घोषैः प्रसुप्तः प्रतिबुध्यते॥ ३५॥

वह शुभलक्षण मनुष्य तपे हुए सोने की आभा वाले, सूर्य का अनुकरण करने वाले, सब प्रकार के दिव्य रत्नों से युक्त, अनेक ध्वजों से युक्त, वारांगनाओं से परिवृत विमानों में चढ़कर आनन्दित होता है। शयन के बाद गीत-वाद्य की ध्वनि से जगाया जाता है।

यावन्न स्मरते जन्म तावत्स्वर्गे महीयते।
तस्मात्स्वर्गात्परिभ्रष्टः क्षीणकर्मा नरोत्तमः॥ ३६॥

वह जब तक जन्म का स्मरण नहीं करता तब तक स्वर्ग में प्रतिष्ठित रहता है। इसलिए वह नरोत्तम कर्म (पुण्य) क्षीण हो जाने पर स्वर्ग से च्युत हो जाता है।[1]

हिरण्यरत्नसम्पूर्णे समृद्धे जायते कुले।
तदेव स्मरते तीर्थं स्मरणात्तत्र गच्छति॥ ३७॥

स्वर्णजटित रत्नों से परिपूर्ण समृद्ध कुल में जन्म लेता है। उसी प्रयागतीर्थ का स्मरण करता है और स्मरण करने से वहाँ जाता है।

देशे वा यदि वारण्ये विदेशे यदि वा गृहे।
प्रयागं स्मरमाणस्तु यस्तु प्राणान् परित्यजेत्॥ ३८॥
ब्रह्मलोकमवाप्नोति वदन्ति मुनिपुंगवाः।
सर्वकामफला वृक्षा मही यत्र हिरण्मयी॥ ३९॥

जनस्थान में या अरण्य में अथवा विदेश में या घर में प्रयाग का स्मरण करते हुए जो प्राण त्यागता है, वह ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है, ऐसा श्रेष्ठ मुनिजन कहते हैं। वहाँ की भूमि सुवर्णमयी है और वृक्ष सकलकामनाओं के फल देने वाले हैं।

ऋषयो मुनयः सिद्धास्तत्र लोके स गच्छति।
स्त्रीसहस्राकुले रम्ये मंदाकिन्यास्तटे शुभे॥ ४०॥
मोदते मुनिभिः सार्द्धं स्वकृतेनेह कर्मणा।
सिद्धचारणगन्धर्वैः पूज्यते देवदानवैः॥ ४१॥

1. क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति (भगवद्गीता)

जहाँ ऋषि, मुनि और सिद्धगण रहते हैं, उस लोक में वह जाता है। वहाँ हजारों स्त्रियों से घिरे मन्दाकिनी के रमणीय पवित्र तट पर मुनियों के साथ अपने किये हुए कर्म के कारण आनन्द भोगता है। वह सिद्ध, चारण, गन्धर्व, देव और दानव से पूजित होता है।

ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो जम्बुद्वीपपतिर्भवेत्।
ततः शुभानि कर्माणि चिन्तयानः पुनः पुनः॥४२॥
गुणवान्वृत्तसम्पन्नो भवतीत्यनुशुश्रुम॥
कर्मणा मनसा वाचा सत्ये धर्मे प्रतिष्ठितः॥४३॥

तदनन्तर स्वर्ग से च्युत हो जाने पर वह जम्बूद्वीप का स्वामी बनता है। तब बार-बार शुभ कर्मों का चिंतन करते हुए वह गुणवान् तथा चरित्रवान् होता है और मन से, वाणी से और कर्म से सत्यरूप धर्म में प्रतिष्ठित रहता है।

गंगायमुनयोर्मध्ये यस्तु ग्रासं प्रयच्छति।
सुवर्णमथ मुक्तां वा तथैवान्यत्परिग्रहम्॥४४॥
स्वकार्ये पितृकार्ये वा तीर्थे योऽभ्यर्चयेन्नरः।
निष्फलं तस्य तत्तीर्थं यावत्तत्फलमश्नुते॥४५॥

अपने कार्य, पितृकार्य या देवपूजन के समय गंगा और यमुना के मध्य में जो मनुष्य ग्रास (भोजन), सुवर्ण, मोती या अन्य कोई पदार्थ दान लेता है, तो जब तक वह उसका फल भोगता है उसका वह तीर्थवास भी फलरहित होता है।

अतस्तीर्थे न गृह्णीयात्पुण्येष्वायतनेषु च।
निमित्तेषु च सर्वेषु अप्रमत्तो द्विजो भवेत्॥४६॥

इसलिए तीर्थों और पवित्र देवालयों में दान ग्रहण न करे। सभी निमित्तों में ब्राह्मण को सावधान रहना चाहिए।

कपिलां पाटलां धेनुं यस्तु कृष्णां प्रयच्छति।
स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां चैलकर्णीं पयस्विनीम्॥४७॥
तस्य यावन्ति लोमानि सन्ति गात्रेषु सत्तम।
तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते॥४८॥

हे उत्तम पुरुष! जो वहाँ प्रयाग में कपिला, पाटला, तथा कृष्ण वर्ण की, स्वर्णजटित सींगवाली, रजतजटित खुरों वाली, दूध देने वाली और कर्णपर्यन्त वस्त्र से आच्छादित गौ को दान करता है, वह उस गौ के शरीर में जितने रोम होते हैं, उतने हजार वर्षों तक रुद्रलोक में प्रतिष्ठित होता है।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे प्रयागमाहात्म्ये षट्त्रिंशोऽध्यायः॥३६॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

(प्रयाग-माहात्म्य)

मार्कण्डेय उवाच

कथयिष्यामि ते वत्स तीर्थयात्राविधिक्रमम्।
आर्षेण तु विधानेन यथादृष्टं यथाश्रुतम्॥१॥

मार्कण्डेय ऋषि ने कहा— हे वत्स! अब मैं तीर्थयात्रा करने की विधि का जो क्रम है, उसे, आर्षविधान के अनुसार जिस प्रकार देखी गई है और जैसे सुनी है, वैसे तुम्हें बताऊँगा।

प्रयागतीर्थयात्रार्थी यः प्रयाति नरः क्वचित्।
बलीवर्दं समारूढः शृणु तस्यापि यत्फलम्॥२॥

प्रयाग तीर्थ की यात्रा करने की इच्छा करने वाला कोई मनुष्य यदि बैल पर सवारी करके जाता है, तो उसका जो फल है, उसे भी सुनो।

नरके वसते घोरे समाः कल्पशतायुतम्।
ततो निवर्त्तितो घोरो गवां क्रोधः सुदारुणः॥३॥
सलिलञ्च न गृह्णन्ति पितरस्तस्य देहिनः।
यस्तु पुत्रांस्तथा बालानन्नहीनान्प्रमुञ्चति॥४॥

वह (बैल पर यात्रा करने वाला) सैंकड़ो और हजारों कल्पपर्यन्त वर्षों तक घोर नरक में वास करता है। वहाँ से लौटने पर गौओं का घोर अत्यन्त दारुण क्रोध उस पर आ पड़ता है। पितर उस देहधारी (पुत्र) का जल ग्रहण नहीं करते हैं। वह अपने पुत्रों तथा बालकों को अन्नहीन छोड़ देता है अर्थात् कंगाल हो जाता है।

यथात्मानं तदा सर्वं दानं विप्रेषु दापयेत्।
ऐश्वर्याल्लोभमोहाद्वा गच्छेद्यानेन यो नरः॥५॥
निष्फलं तस्य तत्तीर्थं तस्माद्यानं विवर्जयेत्।
गंगायमुनयोर्मध्ये यस्तु कन्यां प्रयच्छति॥६॥
आर्षेण तु विधानेन यथाविभवविस्तरम्।
न स पश्यति तं घोरं नरकं तेन कर्मणा॥७॥

तब उसे अपना जो कुछ भी हो सब ब्राह्मणों को दान कर देना चाहिए। जो कोई ऐश्वर्य के कारण लोभ से या मोह से वाहन पर बैठकर तीर्थयात्रा करता है, उसका वह तीर्थगमन निष्फल हो जाता है। इसलिए (तीर्थयात्रा में) वाहन का परित्याग करना चाहिए। गंगा-यमुना के संगम में जो आर्ष विधि के अनुसार अपने वैभव-विस्तार के अनुकूल,

कन्यादान करता है, तो वह उस कर्म के प्रभाव से उस घोर नरक को नहीं देखता।

उत्तरान् स कुरून् गत्वा मोदते कालमव्ययम्।
वटमूलं समाश्रित्य यस्तु प्राणान् परित्यजेत्॥ ८॥
स्वर्गलोकानतिक्रम्य रुद्रलोकं स गच्छति।
यत्र ब्रह्मादयो देवा दिशश्च सदिगीश्वराः॥ ९॥
लोकपालाश्च पितरः सर्वे ते लोकसंस्थिताः।
सनत्कुमारप्रमुखास्तथा ब्रह्मर्षयोऽपरे॥ १०॥
नागाः सुपर्णाः सिद्धाश्च तथा नित्यं समासते।
हरिश्च भगवानास्ते प्रजापतिपुरस्कृतः॥ ११॥

फिर वह उत्तर में कुरुक्षेत्रों में जाकर चिर काल तक आनन्द भोगता है। प्रयाग में स्थित वटवृक्ष का आश्रय प्राप्त कर जो प्राणत्याग करता है, वह स्वर्गलोगोंका अतिक्रमण करके रुद्रलोक को प्राप्त होता है। जहाँ ब्रह्मा आदि देवगण, अपने अधिपति सहित समस्त दिशायें, लोकपालसमूह, पितृलोकनिवासी पितृगण, सनत्कुमार आदि ऋषिगण एवं अन्यान्य ब्रह्मर्षि, नाग, सुपर्ण तथा सिद्ध नित्य वास करते हैं और प्रजापति सहित भगवान् विष्णु भी रहते हैं।

गंगायमुनयोर्मध्ये पृथिव्या जघनं स्मृतम्।
प्रयागं राजशार्दूल त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्॥ १२॥

हे नृपश्रेष्ठ! गंगा और यमुना का संगमस्थल यह प्रयागराज तीर्थ पृथिवी का जघन-स्थल कहा गया है। इसी कारण यह त्रैलोक्य में प्रसिद्ध है।

तत्राभिषेकं यः कुर्यात्सङ्गमे शंसितव्रतः।
तुल्यं फलमवाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः॥ १३॥

जो व्रत-नियमपूर्वक वहाँ संगम में स्नान करता है, वह राजसूय और अश्वमेध यज्ञ के बराबर फल भोगता है।

न मातृवचनात्तात न लोकवचनादपि।
मतिरुत्क्रमणीया ते प्रयागगमनं प्रति॥ १४॥
षष्टितीर्थसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथापराः।
तेषां सान्निध्यमत्रैव तीर्थानां कुरुनन्दन॥ १५॥

हे तात! इसलिए न तो माता के कहने पर या न अन्य लोगों के कहने पर ही प्रयाग-गमन के प्रति निश्चय को बदलना चाहिए। हे कुरुनन्दन! यहां पर साठ हजार तथा साठ करोड़ तीर्थों का सान्निध्य प्राप्त होता है।

या गतिर्योगयुक्तस्य संन्यस्तस्य मनीषिणः।
सा गतिस्त्यजतः प्राणान् गङ्गायमुनसङ्गमे॥ १६॥

योगी, संन्यासी या मनीषी को जो गति प्राप्त होती है, वही गति गंगा-यमुना के संगम में प्राण त्यागने से मिलती है।

न ते जीवन्ति लोकेऽस्मिन्यत्र तत्र युधिष्ठिर।
ये प्रयागं न सम्प्राप्तास्त्रिषु लोकेषु वञ्चिताः॥ १७॥

हे युधिष्ठिर! इस लोक में यत्र-तत्र रहने वाले लोग (वस्तुतः) जीवित नहीं हैं जो प्रयाग को जा नहीं सके हैं। वे तीनों लोकों में वस्तुतः ठगे गये हैं। (उनका यह मनुष्य जन्म व्यर्थ है ऐसा जानना चाहिए)

एवं दृष्ट्वा तु तत्तीर्थं प्रयागं परमं पदम्।
मुच्यते सर्वपापेभ्यः शशाङ्क इव राहुणा॥ १८॥

इस प्रकार उस परम पदरूप प्रयाग का दर्शन करके मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है, जैसे राहु से ग्रस्त चन्द्रमा (मुक्त हो जाता है)।

कम्बलाश्वतरौ नागौ यमुनादक्षिणे तटे।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च मुच्यते सर्वपातकैः॥ १९॥

यमुना नदी के दक्षिण तट पर कम्बल और अश्वतर नामक दो नाग रहते हैं। वहाँ पर यमुना में स्नान करके आचमन करने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है।

तत्र गत्वा नरः स्नानं महादेवस्य धीमतः।
समस्तांस्तारयेत् पूर्वान्दशातीतान् दशावरान्॥ २०॥

मनुष्य वहाँ स्नान करके धीमान् महादेव की कृपा से अपने साथ-साथ पूर्वजों की अतीत दस पीढ़ियों तथा भावी दस पीढ़ियों को भी तार देता है।

कृत्वाभिषेकं तु नरः सोऽश्वमेधफलं लभेत्।
स्वर्गलोकमवाप्नोति यावदाभूतसंप्लवम्॥ २१॥

वहां स्नान करके वह नर अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है और प्रलयकाल पर्यन्त स्वर्गलोक को प्राप्त करता है अर्थात् निवास करता है।

पूर्वपार्श्वे तु गंगायास्त्रैलोक्ये याति मानवः।
अवटः सर्वसामुद्रः प्रतिष्ठानं च विश्रुतम्॥ २२॥

गंगा के पूर्वी भाग पर त्रैलोक्य में प्रसिद्ध सर्वसामुद्र (सब समुद्रों का जलवाला) नामक अवट-कूप है एवं प्रतिष्ठान नामक एक तीर्थ प्रसिद्ध है।

ब्रह्मचारी जितक्रोधस्त्रिरात्रं यदि तिष्ठति।
सर्वपापविशुद्धात्मा सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥ २३॥

यदि मनुष्य वहाँ ब्रह्मचर्यपूर्वक क्रोधजयी होकर तीन रात तक ठहरता है तो सभी पापों से मुक्त शुद्धात्मा होकर अश्वमेध का फल प्राप्त करता है।

उत्तरेण प्रतिष्ठानं भागीरथ्यास्तु सव्यत:।
हंसप्रपतनं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्॥ २४॥
अश्वमेधफलं तत्र स्मृतमात्रे तु जायते।
यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च तावत्स्वर्गे महीयते॥ २५॥

प्रतिष्ठान से उत्तर और गंगा से दक्षिण की ओर हंसप्रपतन नामक तीर्थ है जो त्रैलोक्यप्रसिद्ध है। उसका स्मरण करने मात्र से ही अश्वमेध का फल मिल जाता है। वह जब तक सूर्य और चन्द्रमा स्थित हैं तब तक स्वर्ग में पूजित होता है।

उर्वशीपुलिने रम्ये विपुले हंसपाण्डुरे।
परित्यजति य: प्राणाञ्छृणु तस्यापि यत्फलम्॥ २६॥

वहाँ हंस के समान धवल, रमणीय विशाल उर्वशीपुलिन नामक क्षेत्र में जो प्राणत्याग करता है, उसका जो फल है, वह सुन लो।

षष्टिर्वर्षसहस्राणि षष्टिर्वर्षशतानि च।
आस्ते स पितृभि: सार्द्धं स्वर्गलोके नराधिप॥ २७॥

हे राजन्! साठ हजार और साठ सौ वर्षों तक वह पितरों के साथ स्वर्ग में रहता है।

अथ सन्ध्यावटे रम्ये ब्रह्मचारी समाहित:।
नर: शुचिरुपासीत ब्रह्मलोकमवाप्नुयात्॥ २८॥

अनन्तर रमणीय सन्ध्यावट के नीचे ब्रह्मचर्य धारण कर, समाहितचित्त होकर पवित्र मन से जो मनुष्य उपासना करता है, वह ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है।

कोटितीर्थं समासाद्य यस्तु प्राणान् परित्यजेत्।
कोटिवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥ २९॥

जो कोटि नामक तीर्थ में जाकर अपने प्राणों का त्याग करता है, वह हजारों करोड़ों वर्ष तक स्वर्गलोक में पूजित होता है।

यत्र गङ्गा महाभागा बहुतीर्थतपोवना।
सिद्धं क्षेत्रं हि तज्ज्ञेयं नात्र कार्या विचारणा॥ ३०॥
क्षितौ तारयते मर्त्यान्नागांस्तारयतेऽप्यध:।
दिवि तारयते देवांस्तेन सा त्रिपथा स्मृता॥ ३१॥

जहाँ अनेक तीर्थों और तपोवनों से युक्त महासौभाग्ययुता गंगा है, वह सिद्ध क्षेत्र है, इस विषय में विचार नहीं करना चाहिए। यह गंगा पृथ्वी पर मनुष्यों को, पाताल में नागों को और स्वर्ग में देवों को तार देती है, अत: वह त्रिपथा कहलाती है।

यावदस्थीनि गङ्गायां तिष्ठन्ति पुरुषस्य तु।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥ ३२॥

जब तक मनुष्य की अस्थियां गंगा में रहती है, उतने हजार वर्ष तक वह स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित रहता है।

तीर्थानां परमं तीर्थं नदीनां परमा नदी।
मोक्षदा सर्वभूतानां महापातकिनामपि॥ ३३॥

यह गंगा तीर्थों में परम तीर्थ है और नदियों में उत्तम नदी है। यह सभी प्राणियों तथा महापातकियों के लिए भी मोक्षदायिनी है।

सर्वत्र सुलभा गंगा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा।
गंगाद्वारे प्रयागे च गंगासागरसंगमे॥ ३४॥

गंगा सर्वत्र सुलभ है, किन्तु गंगाद्वार, (हरिद्वार), प्रयाग और गंगासागर के संगम- इन तीन स्थानों में दुर्लभ है—

सर्वेषामेव भूतानां पापोपहतचेतसाम्।
गतिमन्वेषमाणानां नास्ति गंगासमा गति:॥ ३५॥

पाप से उपहत चित्तवाले और सद्‌गति को खोजने (इच्छा) वाले सभी प्राणियों के लिए गंगा के समान अन्य कोई कोई गति नहीं है।

पवित्राणां पवित्रं यन्मङ्गलानाञ्च मंगलम्।
महेश्वरात्परिभ्रष्टा सर्वपापहरा शुभा॥ ३६॥

यह पवित्र पदार्थों में अधिक पवित्र तथा मंगलमय वस्तुओं में मंगलस्वरूप हैं। शिव (की जटा) से निकली हुई गंगा समस्त पापों को हरने वाली और शुभ है।

कृते तु नैमिषं तीर्थं त्रेतायां पुष्करं वरम्।
द्वापरे तु कुरुक्षेत्रं कलौ गंगा विशिष्यते॥ ३७॥

सतयुग में नैमिषारण्य तीर्थ, त्रेता में पुष्कर और द्वापर में कुरुक्षेत्र श्रेष्ठ हैं, किन्तु कलियुग में गंगा का महत्त्व सब से अधिक है।

गंगामेव निषेवन्ते प्रयागे तु विशेषत:।
नान्यत्कलियुगे रौद्रे भेषजं नृप विद्यते॥ ३८॥
अकामो वा सकामो वा गंगायां यो विपद्यते।
स मृतो जायते स्वर्गे नरकं च न पश्यति॥ ३९॥

हे नृप! लोग विशेष रूप से प्रयागराज में ही गंगा का सेवन करते हैं। इस भयानक कलियुग में गंगाजी से अन्य कोई औषध नहीं है। अनिच्छा से या इच्छापूर्वक गंगा में जो

कोई शरीरत्याग करता है, वह मरने पर स्वर्ग जाता है, नरक को नहीं देखता है।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे प्रयागमाहात्म्ये सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥ ३७॥

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

(प्रयाग-माहात्म्य)

मार्कण्डेय उवाच

षष्टिस्तीर्थसहस्राणि षष्टिस्तीर्थशतानि च।
माघमासे गमिष्यन्ति गंगायमुनसंगमे॥ १॥

मार्कण्डेय बोले— गंगा और यमुना के संगम पर माघ मास में, साठ हजार और साठ सौ तीर्थ (पवित्र होने के लिए) पहुँचते हैं।

गवां शतसहस्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम्।
प्रयागे माघमासे तु त्र्यहं स्नातस्य यत्फलम्॥ २॥

विधिपूर्वक सौ हजार गायों के दान का जो फल होता है, वह फल माघमास में प्रयाग (संगम) में तीन दिन तक स्नान करने से मिल जाता है।

गंगायमुनयोर्मध्ये करीषाग्निश्च साधयेत्।
अहीनांगो ह्यरोगश्च पञ्चेन्द्रियसमन्वितः॥ ३॥

गंगा और यमुना के संगम में जो करीषाग्नि (गोबर के उपलों से प्रज्वलित अग्नि) के समक्ष बैठकर उपासना करता है, वह पूर्ण अंगो से युक्त, नीरोगी होता है तथा पाँचों इन्द्रियों से अच्छी प्रकार युक्त हो जाता है अर्थात् उसकी पाँ . इन्द्रियाँ अपने विषयों को ग्रहण करने में सक्षम हो जाती हैं।

यावंति रोमकूपाणि तस्य गात्रेषु भूमिप।
तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥ ४॥

हे राजन्! उसके शरीर के अवयवों पर जितने रोमछिद्र होंगे, उतने ही हजार वर्षों तक वह स्वर्गलोग में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है।

ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो जंबूद्वीपपतिर्भवेत्।
भुक्त्वा स विपुलान्भोगांस्तत्तीर्थं लभते पुनः॥ ५॥

तदनन्तर स्वर्गच्युत होने पर वह जंबूद्वीप का स्वामी बनता है। वहाँ विपुल भोगों को भोगकर उस तीर्थ को पुनः प्राप्त होता है।

जलप्रवेशं यः कुर्यात्संगमे लोकविश्रुते।
राहुग्रस्तो यथा सोमो विमुक्तः सर्वपातकैः॥ ६॥

लोकविश्रुत संगम पर जल में जो प्रवेश करता है, वह सब पापों से उसी तरह मुक्त जाता है जैसे राहु से ग्रस्त चन्द्रमा (मुक्त जाता है)।

सोमलोकमवाप्नोति सोमेन सह मोदते।
षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च॥ ७॥

वह चन्द्रलोक को प्राप्त करता है और चन्द्रमा के साथ साठ हजार और साठ सौ वर्षों तक आनन्दित होता है।

स्वर्गतः शक्रलोकेऽसौ मुनिगन्धर्वसेविते।
ततो भ्रष्टस्तु राजेन्द्र समृद्धे जायते कुले॥ ८॥

पुनः स्वर्ग से वह मुनियों तथा गन्धर्वों से सेवित इन्द्रलोक में जाता है। हे राजेन्द्र! वहाँ से च्युत होने पर वह समृद्ध कुल में उत्पन्न होता है।

अधःशिरास्तु यो धारामूर्ध्वपादः पिबेन्नरः।
सप्तवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥ ९॥

जो मनुष्य शिर नीचे और पैर ऊपर करके संगम में (जल) धारा का पान करता है, वह सात हजार वर्षों तक स्वर्गलोक में पूजित होता है।

तस्माद्भ्रष्टस्तु राजेन्द्र अग्निहोत्री भवेन्नरः।
भुक्त्वाथ विपुलान्भोगांस्तत्तीर्थं भजते पुनः॥ १०॥

हे राजेन्द्र! वहाँ से च्युत होने पर वह मनुष्य अग्निहोत्री बनता है। अनन्तर अनेक प्रकार के भोगों का उपभोग कर पुनः उसी तीर्थ को प्राप्त होता है।

यः शरीरं विकर्त्तित्वा शकुनिभ्यः प्रयच्छति॥ ११॥
विहंगैरुपभुक्तस्य शृणु तस्यापि यत्फलम्।
शतं वर्षसहस्राणां सोमलोके महीयते॥ १२॥

जो अपने शरीर को काटकर पक्षियों को अर्पित करता है, तब पक्षियों द्वारा उपभुक्त होने पर उसका जो फल होता है, उसे सुन लो। वह एक लाख वर्षों तक चन्द्रलोक में पूजित होता है।

ततस्तस्मात्परिभ्रष्टो राजा भवति धार्मिकः।
गुणवान्रूपसंपन्नो विद्वांस्तु प्रियवाक्यवान्॥ १३॥

तदनन्तर वहाँ से च्युत हो जाने पर वह धार्मिक, गुणवान् रूपसंपन्न, विद्वान् और प्रियभाषी राजा होता है।

भोगान् भुक्त्वाथ दत्त्वा च तत्तीर्थं भजते पुनः।

उत्तरे यमुनातीरे प्रयागस्य च दक्षिणे॥ १४॥
ऋणप्रमोचनं नाम तीर्थन्तु परमं स्मृतम्।
एकरात्रोषित: स्नात्वा ऋणात्तत्र प्रमुच्यते॥ १५॥
स्वर्गलोकमवाप्नोति अनृणश्च सदा भवेत्॥ १६॥

अनन्तर भोगों को भोगकर और दान करके पुन: उस तीर्थ का सेवन करता है। प्रयाग के दक्षिण की ओर यमुना के उत्तरी तट पर ऋणप्रमोचन नामक श्रेष्ठ तीर्थ बताया गया है। वहाँ एक रात निवास करने और स्नान करने से ऋण से मुक्त हो जाता है। वह स्वर्गलोक को प्राप्त करता है और सदा ऋण से रहित हो जाता है।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे प्रयागमाहात्म्यं नाम अष्टत्रिंशोऽध्याय:॥ ३८॥

एकोनचत्वारिंशोऽध्याय:

(प्रयाग-माहात्म्य)

मार्कण्डेय उवाच

तपनस्य सुता देवी त्रिषु लोकेषु विश्रुता।
समागता महाभागा यमुना यत्र निम्नगा॥ १॥
येनैव नि:सृता गंगा तेनैव यमुना गता।
योजनानां सहस्रेषु कीर्तनात्पापनाशिनी॥ २॥
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च यमुना यत्र निम्नगा।
सर्वपापविनिर्मुक्त: पुनात्यासप्तमं कुलम्॥ ३॥

मार्कण्डेय बोले— तीनों लोक में प्रसिद्ध महाभागा सूर्य-पुत्री यमुना नदी के रूप में वहाँ आकर मिलती है। जिस मार्ग से गंगा निकलती है, वहीं से यमुना गई है। सहस्रों योजन दूर से भी उसका नामकीर्तन करने से वह पापों का नाश करने वाली होती है। यमुना में स्नान करने और उसका जल पीने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त होकर अपने सात कुल को पवित्र कर लेता है।

प्राणांस्त्यजति यस्तत्र स याति परमां गतिम्।
अग्नितीर्थमिति ख्यातं यमुनादक्षिणे तटे॥ ४॥
पश्चिमे धर्मराजस्य तीर्थं त्वनरकं स्मृतम्।
तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवा:॥ ५॥

जो वहाँ प्राणत्याग करता है, वह परम गति को प्राप्त करता है। यमुना के दक्षिण तट पर अग्नितीर्थ नामक प्रसिद्ध तीर्थ है। पश्चिम भाग में धर्मराज का अनरक नामक तीर्थ है। उसमें स्नान करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है और जो मर जाते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता।

कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां स्नात्वा सन्तर्प्य वै शुचि:।
धर्मराजं महापापैर्मुच्यते नात्र संशय:॥ ६॥

कृष्णपक्ष की चतुर्दशी में स्नान करके पवित्र होकर जो धर्मराज का तर्पण करता है, वह महापापों से मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं।

दशतीर्थसहस्राणि दशकोट्यस्तथापरा:।
प्रयागसंस्थितानि स्युरेवमाहुर्मनीषिण:॥ ७॥

दस हजार तीर्थ और अन्य दस करोड़ (तीर्थ) प्रयाग में अवस्थित हैं, ऐसा मनीषियों ने कहा है।

तिस्र: कोट्योऽर्द्धकोटिश्च तीर्थानां वायुरब्रवीत्।
दिवि भूम्यन्तरिक्षे च तत्सर्वं जाह्नवी स्मृता॥ ८॥
यत्र गंगा महाभागा स देशस्तत्तपोवनम्।
सिद्धक्षेत्रं तु तज्ज्ञेयं गङ्गातीरं समाश्रितम्॥ ९॥
यत्र देवो महादेवो माधवेन महेश्वर:।
आस्ते देवेश्वरो नित्यं तत्तीर्थं तत्तपोवनम्॥ १०॥

वायु ने कहा है कि स्वर्ग, पृथ्वी और अन्तरिक्ष में साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं। गंगा उन सब तीर्थों से युक्त है। जहाँ महाभागा गंगा है, वह देश तपोवन है। गंगा तट पर स्थित उसे सिद्धक्षेत्र जानना चाहिए। जहाँ माधव के साथ महेश्वर महादेव रहते हैं, वही नित्य तीर्थ और तपोवन है।

इदं सत्यं द्विजातीनां साधूनामात्मजस्य च।
सुहृदांश्च जपेत्कर्णे शिष्यस्यानुगतस्य च॥ ११॥

यह सत्य को द्विजातियों, साधुओं, पुत्र, मित्र, शिष्य तथा अनुयायियों के कान में कहना चाहिए।

इदं धन्यमिदं स्वर्ग्यमिदं मेध्यमिदं शुभम्।
इदं पुण्यमिदं रम्यं पावनं धर्म्यमुत्तमम्॥ १२॥

यह तीर्थ धन्य है, यह स्वर्गप्रद है, यह पवित्र है, यह शुभ है, यह पुण्यमय है। यह रमणीय, पावन, और उत्तम धर्मयुक्त है।

महर्षीणामिदं गुह्यं सर्वपापप्रमोचनम्।
अत्राधीत्य द्विजोऽध्यायं निर्मलत्वमवाप्नुयात्॥ १३॥

महर्षियों का यह गोपनीय तथा सकलपापों से मुक्त करने वाला है। द्विज इस अध्याय को पढ़कर निर्मलता प्राप्त करे।

यश्चेदं शृणुयान्नित्यं तीर्थं पुण्यं सदा शुचिः।
जातिस्मरत्वं लभते नाकपृष्ठे च मोदते॥ १४॥

जो सदा पवित्र रहकर नित्य इस तीर्थ के विषय में श्रवण करेगा, वह जाति-स्मरण अर्थात् पूर्वजन्म की बात को स्मरण करने वाला हो जाता है और स्वर्ग में रहकर आनन्द भोगता है।

प्राप्यन्ते तानि तीर्थानि सद्भिः शिष्टानुदर्शिभिः।
स्नाहि तीर्थेषु कौरव्य मा च वक्रमतिर्भव॥ १५॥

शिष्टजनों के मार्ग का अनुगमन करने वाले सज्जन सभी तीर्थों को प्राप्त करते हैं। हे कुरुवंशी! आप तीर्थों में स्नान करें, विपरीत बुद्धिवाले न बनो।

एवमुक्त्वा स भगवान्मार्कण्डेयो महामुनिः।
तीर्थानि कथयामास पृथिव्यां यानि कानिचित्॥ १६॥

इतना कहकर महामुनि भगवान् मार्कण्डेय ने पृथ्वी पर जो कोई तीर्थ थे, उनके विषय में कह दिया।

भूसमुद्रादिसंस्थानं ग्रहाणां ज्योतिषां स्थितिम्।
पृष्टः प्रोवाच सकलमुक्त्वाथ प्रययौ मुनिः॥ १७॥

तब राजा द्वारा पूछे जाने पर पृथ्वी और समुद्र का संस्थान, ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति का संपूर्ण विषय बताकर मुनि ने प्रस्थान किया।

सूत उवाच

य इदं कल्यमुत्थाय शृणोति पठतेऽथवा।
मुच्यते सर्वपापैस्तु रुद्रलोकं स गच्छति॥ १८॥

सूत बोले— जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर इस प्रयाग तीर्थ के माहात्म्य को सुनता है या पाठ करता है, वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है तथा रुद्रलोक को जाता है।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे प्रयागमाहात्म्यं नाम
एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ३९॥

चत्वारिंशोऽध्यायः

(भुवनकोश विन्यास)

मुनय ऊचुः

एवमुक्तास्तु मुनयो नैमिषीया महामुनिम्।
पप्रच्छुरुत्तरं सूतं पृथिव्यादिविनिर्णयम्॥ १॥

मुनिगण बोले— उपर्युक्त माहात्म्य वर्णन के अनन्तर नैमिषारण्य के निवासी मुनियों ने महामुनि सूतजी से पृथ्वी आदि के निर्णय के विषय में प्रश्न किया।

ऋषय ऊचुः

कथितो भवता सर्गः मनुः स्वायंभुवः शुभः।
इदानीं श्रोतुमिच्छामस्त्रिलोकस्यास्य मण्डलम्॥ २॥
यावन्तः सागरद्वीपास्तथा वर्षाणि पर्वताः।
वनानि सरितः सूर्यो ग्रहाणां स्थितिरेव च॥ ३॥
यदाधारमिदं सर्वं येषां पृथ्वी पुरात्वियम्।
नृपाणां तत्समासेन तत्तद्वक्तुमिहार्हसि॥ ४॥

ऋषियों ने कहा— आपने स्वायंभुव मनु की शुभ सृष्टि का वर्णन कर दिया, अब हम इस त्रिलोकमण्डल बारे में सुनना चाहते हैं। जितने समुद्र, द्वीप, वर्ष, पर्वत, वन, नदियां, सूर्य, ग्रहों की स्थिति- ये सब जिसके आधार पर स्थित हैं और पूर्वकाल में यह पृथ्वी जिन राजाओं के अधिकार में थी, वह सब संक्षेप में आप हमें बताने की कृपा करें।

सूत उवाच

वक्ष्ये देवाधिदेवाय विष्णवे प्रभविष्णवे।
नमस्कृत्याप्रमेयाय यदुक्तं तेन धीमता॥ ५॥

सूत बोले— देवाधिदेव, सर्वसमर्थ, अज्ञेय विष्णु को नमस्कार करके मैं उन धीमान् द्वारा जो कुछ कहा गया था, उसे मैं कहूँगा।

स्वायम्भुवस्यास्य मनोः प्रागुक्तो यः प्रियव्रतः।
पुत्रस्तस्याभवन्पुत्राः प्रजापतिसमा दश॥ ६॥
आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च वपुष्मान्द्युतिमांस्तथा।
मेधा मेधातिथिर्हव्यः सवनः पुत्र एव च॥ ७॥
ज्योतिष्मान्दशमस्तेषां महाबलपराक्रमः।
धार्मिको दाननिरतः सर्वभूतानुकम्पकः॥ ८॥

इस स्वायम्भुव मनु का प्रियव्रत नामक पुत्र जो पहले कहा जा चुका है, उसके प्रजापति के समान दस पुत्र हुए। आग्नीध्र, अग्निबाहु, वपुष्मान्, द्युतिमान्, मेधा, मेधातिथि, हव्य, सवन, पुत्र और दसवां ज्योतिष्मान् था, जो उनमें महाबली, पराक्रमी, धार्मिक, दानपरायण एवं सभी प्राणियों पर दया करने वाला था।

मेधाग्निबाहुपुत्रास्तु त्रयो योगपरायणाः।
जातिस्मरा महाभागा न राज्ये दधिरे मतिम्॥ ९॥

उनमें मेधा, अग्निबाहु और पुत्र ये तीनों योगपरायण थे। ये महाभाग्यशाली और जातिस्मर (अपने जन्मान्तर का ज्ञान रखने वाले) थे, अतः इनका मन राज्य में नहीं लगता था।

प्रियव्रतोऽभ्यषिञ्चद्वै सप्तद्वीपेषु सप्त तान्।
जम्बुद्वीपेश्वरं पुत्रमाग्नीध्रमकरोन्नृपः॥ १०॥

राजा प्रियव्रत ने सात द्वीपों में उन सात पुत्रों को अभिषिक्त किया और पुत्र आग्नीध्र को जम्बुद्वीप का शासक बना दिया।

प्लक्षद्वीपेश्वरश्चैव तेन मेधातिथिः कृतः।
शाल्मलीशं वपुष्मन्तं नरेन्द्रमभिषिक्तवान्॥ ११॥

उसने मेधातिथि को प्लक्षद्वीप का स्वामी नियुक्त किया और वपुष्मान् को शाल्मलिद्वीप के नरेन्द्र पद पर अभिषिक्त किया।

ज्योतिष्मन्तं कुशद्वीपे राजानं कृतवान् प्रभुः।
द्युतिमन्तञ्च राजानं क्रौञ्चद्वीपे समादिशत्॥ १२॥

प्रभु (प्रियव्रत) ने ज्योतिष्मान् को कुशद्वीप में राजा बनाया और द्युतिमान् को क्रौञ्चद्वीप में राजपद पर नियुक्त किया।

शाकद्वीपेश्वरञ्चापि हव्यञ्चक्रे प्रियव्रतः।
पुष्कराधिपतिञ्चक्रे सवनञ्च प्रजापतिः॥ १३॥

प्रजापति प्रियव्रत ने हव्य को शाकद्वीपेश्वर बनाया तथा सवन को पुष्कर का अधिपति नियुक्त किया।

पुष्करेश्वरतश्चापि महावीतसुतोऽभवत्।
धातकिश्चैव द्वावेतौ पुत्रौ पुत्रवतां वरौ॥ १४॥

पुष्करेश्वर से महावीत और धातकि नामक दो पुत्र हुए। वे दोनों पुत्रवानों में परमोत्तम थे।

महावीतं स्मृतं वर्षं तस्य स्यात्तु महात्मनः।
नाम्ना वैधातकेश्चापि धातकीखण्डमुच्यते॥ १५॥

महात्मा महावीत के नाम से वह वर्ष महावीत हुआ। वैधातकि के नाम से धातकी खण्ड कहा गया।

शाकद्वीपेश्वरस्यापि हव्यस्याप्यभवन् सुताः।
जलदश्च कुमारश्च सुकुमारो मणीचकः॥ १६॥
कुशोत्तरोऽथ मोदाकिः सप्तमः स्यान्महाद्रुमः।
जलदं जलदस्याथ वर्षं प्रथममुच्यते॥ १७॥
कुमारस्य तु कौमारं तृतीयं सुकुमारकम्।
मणीचकञ्चतुर्थञ्च पञ्चमञ्च कुशोत्तरम्॥ १८॥
मोदाकं षष्ठमित्युक्तं सप्तमन्तु महाद्रुमम्।
क्रौञ्चद्वीपेश्वरस्यापि सुता द्युतिमतोऽभवन्॥ १९॥

शाकद्वीपेश्वर हव्य के भी (सात) पुत्र हुए— जलद, कुमार, सुकुमार, मणीचक, कुशोत्तर, मोदाकि और सातवाँ पुत्र महाद्रुम। जलद का जलद नाम से प्रथम वर्ष कहा जाता है। (द्वितीय) कुमार का कौमार वर्ष और तीसरा सुकुमारक चौथा मणीचक और पाँचवाँ कुशोत्तर वर्ष हुआ। मोदाक का छठा वर्ष और सातवाँ वर्ष महाद्रुम हुआ। क्रौञ्चद्वीपेश्वर द्युतिमान् के भी पुत्र हुए।

कुशलः प्रथमस्तेषां द्वितीयस्तु मनोहरः।
उष्णस्तृतीयः सम्प्रोक्तश्चतुर्थः पीवरः स्मृतः॥ २०॥
अन्धकारो मुनिश्चैव दुन्दुभिश्चैव सप्त वै।
तेषां स्वनामभिर्देशाः क्रौञ्चद्वीपाश्रयाः शुभाः॥ २१॥

उनमें प्रथम कुशल था, दूसरा मनोहर, तीसरा उष्ण और चौथा पीवर कहा गया है। अन्धकार, मुनि और सातवाँ दुन्दुभि था। उनके अपने नामों से क्रौञ्चद्वीप के आश्रित शुभ देश प्रसिद्ध हुए थे।

ज्योतिष्मतः कुशद्वीपे सप्तैवासन्महौजसः।
उद्भेदो वेणुमांश्चैवाश्वरथो लम्बनो धृतिः॥ २२॥
षष्ठः प्रभाकरश्चापि सप्तमः कपिलः स्मृतः।
स्वनामचिह्नितश्चात्र तथा वर्षाणि सुव्रताः॥ २३॥

कुशद्वीप में महातेजस्वी ज्योतिष्मान् के सात ही पुत्र थे— उद्भेद, वेणुमान्, अश्वरथ, लम्बन, धृति। छठा प्रभाकर और सातवाँ कपिल नामक हुआ था। हे सुव्रतो! उनके अपने नाम से चिह्नित सात वर्ष भी हैं।

ज्ञेयानि च तथान्येषु द्वीपेष्वेवमयो मतः।
शाल्मलिद्वीपनाथस्य सुताश्चासन्वपुष्मतः॥ २४॥
श्वेतश्च हरितश्चैव जीमूतो रोहितस्तथा।
वैद्युतो मानसश्चैव सप्तमः सुप्रभोमतः॥ २५॥

इसी प्रकार अन्य द्वीपों में भी वर्ष जानने चाहिए। शाल्मलिद्वीप के अधिपति वपुष्मान् के भी सात पुत्र थे— श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, वैद्युत, मानस और सप्तम सुप्रभ।

प्लक्षद्वीपेश्वरस्यापि सप्त मेधातिथेः सुताः।
ज्येष्ठः शान्तमयस्तेषां शिशिरस्तु सुखोदयः॥ २६॥
आनन्दश्च शिवश्चैव क्षेमकश्च ध्रुवस्तथा।
प्लक्षद्वीपादिके ज्ञेयाः शाकद्वीपान्तिकेषु च॥ २७॥
वर्णानाञ्च विभागेन स्वधर्मो मुक्तये मतः।

जम्बुद्वीपेश्वरस्यापि पुत्रास्त्वासन्महाबलाः॥ २८॥

प्लक्षद्वीपेश्वर मेधातिथि के भी सात पुत्र थे— उनमें ज्येष्ठ शान्तमय था और पुत्र— शिशिर, सुखोदय, आनन्द, शिव, क्षेमक और ध्रुव। इसी प्रकार प्लक्षद्वीप और शाकद्वीप आदि में भी समझना चाहिए। वर्णों के विभाग से स्वधर्म मुक्तिप्रदायक माना गया है। वैसे ही जम्बुद्वीप के राजा के भी महाबली पुत्र थे।

आग्नीध्रस्य द्विजश्रेष्ठास्तन्नामानि निबोधत।
नाभिः किम्पुरुषश्चैव तथा हरिरिलावृतः॥ २९॥
रम्यो हिरण्वांश्च कुरुर्भद्राश्वः केतुमालकः॥
जम्बुद्वीपेश्वरो राजा स चाग्नीध्रो महामतिः॥ ३०॥

हे द्विजश्रेष्ठो! आग्नीध्र के उन पुत्रों के नाम भी जान लो— नाभि, किम्पुरुष, हरि, इलावृत, रम्य, हिरण्वान्, कुरु, भद्राश्व और केतुमालक। ये जम्बुद्वीपेश्वर राजा आग्नीध्र अत्यन्त बुद्धिमान् थे।

विभज्य नवधा तेभ्यो यथान्यायं ददौ पुनः।
नाभेस्तु दक्षिणं वर्षं हिमाह्वं प्रददौ पिता॥ ३१॥
हेमकूटं ततो वर्षं ददौ किम्पुरुषाय सः।
तृतीयं नैषधं वर्षं हरये दत्तवान् पिता॥ ३२॥

जम्बुद्वीप को नौ भागों में बाँटकर उन नौ पुत्रों को न्यायपूर्वक प्रदान कर दिया। पिता ने नाभि नामक पुत्र को दक्षिणदिशा में स्थित हिमवर्ष दे दिया। तदनन्तर किम्पुरुष को हेमकूट नामक वर्ष दिया। फिर तीसरा नैषध वर्ष पिता ने हरि को प्रदान किया।

इलावृताय प्रददौ मेरुमध्यमिलावृतम्।
नीलाद्रेराश्रितं वर्षं रम्याय प्रददौ पिता॥ ३३॥
श्वेतं यदुत्तरं वर्षं पित्रा दत्तं हिरण्वते।
यदुत्तरं शृङ्गवतो वर्षं तत्कुरवे ददौ॥ ३४॥

इलावृत को मेरुमध्य में स्थित इलावृत वर्ष दिया। पिता ने नीलाद्रि के आश्रित वर्ष रम्य को प्रदान किया। पिता ने हिरण्वान् को उत्तर दिशा में स्थित श्वेत वर्ष दिया और कुरु को शृङ्गवान् पर्वत का उत्तर वर्ष प्रदान किया।

मेरोः पूर्वेण यद्वर्षं भद्राश्वाय न्यवेदयत्।
गन्धमादनवर्षं तु केतुमालाय दत्तवान्॥ ३५॥
वर्षेष्वेतेषु तान्पुत्रानभ्यषिञ्चन्नराधिपः।
संसारासारतां ज्ञात्वा तपस्तप्तुं वनं गतः॥ ३६॥

सुमेरु का पूर्व भागस्थ जो वर्ष था, उसे भद्राश्व को सौंपा। गन्धमादन वर्ष केतुमाल को दिया। इन वर्षों में उन पुत्रों को अभिषिक्त करके राजा संसार को सारहीन जानकर तप करने के लिए वन में चला गया।

हिमाह्वयं तु यद्वर्षं नाभेरासीन्महात्मनः।
तस्यर्षभोऽभवत्पुत्रो मेरुदेव्यां महाद्युतिः॥ ३७॥
ऋषभाद्भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताग्रजः।
सोऽभिषिच्यर्षभः पुत्रं भरतं पृथिवीपतिः॥ ३८॥
वानप्रस्थाश्रमं गत्वा तपस्तेपे यथाविधि।
तपसा कर्षितोऽत्यर्थं कृशोऽधमनिशं ततः॥ ३९॥

महात्मा नाभि का हिम नामक जो वर्ष था, उसका ऋषभ नामक महाकान्तिमान् पुत्र मेरुदेवी में उत्पन्न हुआ। ऋषभ से भरत उत्पन्न हुआ, जो वीर एवं सौ पुत्रों का अग्रज था। वह राजा ऋषभ भी पुत्र भरत को अभिषिक्त करके वानप्रस्थाश्रम में जाकर विधिपूर्वक तप करने लगा और दिनरात तप करने से वह कृशकाय हो गया।

ज्ञानयोगरतो भूत्वा महापाशुपतोऽभवत्।
सुमतिर्भरतस्यापि पुत्रः परमधार्मिकः॥ ४०॥
सुमतेस्तैजसस्तस्मादिन्द्रद्युम्नो महाद्युतिः।
परमेष्ठी सुतस्तस्मात्प्रतीहारस्तदन्वयः॥ ४१॥

वह ज्ञानयोग में निरत होकर महान् पाशुपत (शैवानुयायी) हो गया। भरत का भी परम धार्मिक पुत्र सुमति हुआ था। सुमति से तैजस और उससे इन्द्रद्युम्न नामक महान् तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ। उससे परमेष्ठी नामक पुत्र हुआ और उसका पुत्र प्रतीहार हुआ।

प्रतिहर्तेति विख्यात उत्पन्नस्तस्य चात्मजः।
भवस्तस्मादथोद्गीथः प्रस्ताविस्तत्सुतोऽभवत्॥ ४२॥

प्रतीहार से उत्पन्न पुत्र प्रतिहर्ता के नाम से विख्यात हुआ। प्रतिहर्ता से भव और भव से उद्गीथ नामक पुत्र हुआ। उद्गीथ का पुत्र प्रस्तावि हुआ।

पृथुस्ततस्ततो नक्तो नक्तस्यापि गयः स्मृतः।
नरो गयस्य तनयस्तस्य भूयो विराट्सुतः॥ ४३॥
तस्य पुत्रो महावीर्यो धीमांस्तस्मादजायत।
धीमतोऽपि ततश्चाभूद्भौवणस्तत्सुतोऽभवत्॥ ४४॥
त्वष्टा त्वष्टुश्च विरजो रजस्तस्मादभूत्सुतः।
शतजिद्रजितस्य जज्ञे पुत्रशतं द्विजाः॥ ४५॥

तदनन्तर पृथु का पुत्र नक्त और नक्त का पुत्र गय हुआ। गय का पुत्र नर और नर का पुत्र विराट् हुआ। विराट् का पुत्र महावीर्य और उससे धीमान् हुआ और उस धीमान् से भी रौवण नाम का पुत्र हुआ। रौवण का पुत्र त्वष्टा, त्वष्टा का विरज, विरज का रज, रज का पुत्र शतजित् और उसका पुत्र रथजित् हुआ। हे द्विजो! रथजित् के सौ पुत्र उत्पन्न हुए थे।

तेषां प्रधानो बलवान्विश्वज्योतिरिति स्मृतः।
आराध्य देवं ब्रह्माणं क्षेमकं नाम पार्थिवम्॥४६॥
असूत पुत्रं धर्मज्ञं महाबाहुमरिन्दमम्।
एते पुरस्तात्राजानो महासत्त्वा महौजसः॥४७॥
एषां वंशप्रसूतैस्तु भुक्तेयं पृथिवी पुरा॥४८॥

उन (सौ) में प्रधान और बलशाली विश्वज्योति नाम से कहा गया है। उसने देव ब्रह्मा की आराधना करके क्षेमक नामक राजा को पुत्ररूप में जन्म दिया, जो धर्मज्ञ, महाबाहु और शत्रुओं का दमन करने वाला था। ये सभी पूर्वकाल में महाशक्तिसम्पन्न एवं महातेजस्वी राजा हुए। पूर्वकाल में इन्हीं के वंशजों द्वारा पृथ्वी का उपभोग किया गया था।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे भुवनविन्यासे
चत्वारिंशोऽध्यायः॥४०॥

एकचत्वारिंशोऽध्यायः
(भुवनकोश विन्यास)

सूत उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि संक्षेपेण द्विजोत्तमाः।
त्रैलोक्यस्यास्य मानं वो न शक्यं विस्तरेण तु॥१॥

सूत बोले— हे द्विजश्रेष्ठो! इसके पश्चात् मैं आप लोगों को संक्षेप में इस त्रिलोकी का मान बताऊँगा, विस्तार से कहना शक्य नहीं है।

भूर्लोकोऽथभुवर्लोकः स्वर्लोकोऽथ महस्तथा।
जनस्तपश्च सत्यश्च लोकास्त्वण्डोद्भवास्तथा॥२॥

उस अण्ड से भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक तथा सत्यलोक उत्पन्न हुए हैं।

सूर्याचन्द्रमसौ यावत्किरणैरव भासतः।
तावद्भूर्लोक आख्यातः पुराणे द्विजपुंगवाः॥३॥
यावत्प्रमाणो भूर्लोको विस्तरात्परिमण्डलात्।
भुवर्लोकोऽपि तावत्स्यान्मण्डलाद्भास्करस्य तु॥४॥

हे द्विजश्रेष्ठो! सूर्य और चन्द्रमा की किरणों से जो भाग जहाँ तक प्रकाशमान रहता है, उसे पुराणों में भूलोक कहा गया है। सूर्य के परिमण्डल से भूलोक का जितना परिमाण है, उतना ही विस्तार भुवर्लोक का भी सूर्य के मण्डल से है।

ऊर्ध्वं यन्मण्डलं व्योम्नि ध्रुवो यावद्व्यवस्थितः।
स्वर्गलोकः समाख्यातस्तत्र वायोस्तु नेमयः॥५॥
आवहः प्रवहश्चैव तत्रैवानुवहः पुनः।
संवहो विवहश्चैव तदूर्ध्वं स्यात्परावहः॥६॥
तथा परिवहश्चैव वायोर्वै सप्त नेमयः॥
भूमेर्योजनलक्षे तु भानोर्वै मण्डलं स्थितम्॥७॥
लक्षे दिवाकरस्यापि मण्डलं शशिनः स्मृतम्।
नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नं तल्लक्षेण प्रकाशते॥८॥

आकाश में ऊपरी मंडल पर जहाँ ध्रुव अवस्थित है, वहाँ तक स्वर्गलोक कहा जाता है। वहाँ वायु की नेमियाँ हैं। आवह, प्रवह, अनुव, संवह, विवह तथा उसके ऊपर परावह और उसके ऊपर परिवह नाम से वायु की सात नेमियाँ हैं। भूमि से एक लाख योजन ऊपर की ओर सूर्यमण्डल स्थित है। उस सूर्यमंडल से भी एक लाख (योजन) ऊपर चन्द्रमा का मण्डल कहा गया है। उससे एक लाख योजन की दूरी पर सम्पूर्ण नक्षत्रमण्डल प्रकाशित होता है।

द्विलक्षे ह्यन्तरे विप्रा बुधो नक्षत्रमण्डलात्।
तावत्प्रमाणभागे तु बुधस्याप्युशनाः स्थितः॥९॥
अंगारकोऽपि शुक्रस्य तत्प्रमाणे व्यवस्थितः।
लक्षद्वयेन भौमस्य स्थितो देवपुरोहितः॥१०॥

हे विप्रो! नक्षत्र मण्डल से दो लाख (योजन) पर बुध है। बुधमंडल से उतने ही परिमाण के भाग पर शुक्र स्थित है। शुक्रमंडल से उतने ही प्रमाण पर मंगल अवस्थित है। मंगल से दो लाख योजन की दूरी पर देवताओं के पुरोहित बृहस्पति स्थित हैं।

सौरिर्द्विलक्षेण गुरोर्ग्रहाणामथ मण्डलात्।
सप्तर्षिमण्डलं तस्माल्लक्षमात्रे प्रकाशते॥११॥

बृहस्पति से दो लाख योजन ऊपर सूर्यपुत्र शनि स्थित है। पश्चात् इन ग्रहों के मण्डल से लाख योजन की दूरी पर सप्तर्षि-मण्डल प्रकाशित होता है।

ऋषीणां मण्डलादूर्ध्वं लक्षमात्रे स्थितो ध्रुवः।
तत्र धर्मः स भगवान्विष्णुर्नारायणः स्थितः॥१२॥

ऋषियों के मण्डल (सप्तर्षि-मण्डल) से ऊपर एक लाख योजन ऊपर की ओर ध्रुव स्थित है। वहाँ पर धर्मरूप नारायण भगवान् विष्णु स्थित हैं।

नवयोजनसाहस्रो विष्कम्भः सवितुः स्मृतः।
त्रिगुणस्तस्य विस्तारो मण्डलस्य प्रमाणतः॥ १३॥
द्विगुणः सूर्यविस्ताराद्विस्तारः शशिनः स्मृतः।
तुल्यस्तयोस्तु स्वर्भानुर्भूत्वा तानुपसर्पति॥ १४॥

नौ हजार योजन का सूर्य का विष्कम्भ-विस्तार माना गया है। उसका तीन गुना प्रमाण में (सूर्य) मण्डल का विस्तार है। सूर्य के विस्तार से दुगना चन्द्रमा का विस्तार कहा गया है। उन दोनों के तुल्य राहुमंडल उनके समीप खिसकता रहता है।

उद्धृत्य पृथिवीच्छायां निर्मितो मण्डलाकृतिः।
स्वर्भानोस्तु बृहत्स्थानं तृतीयं यत्तमोमयम्॥ १५॥

पृथ्वी की छाया को लेकर मण्डलाकार निर्मित राहु का जो तृतीय बृहत् स्थान है, वह तमोमय है।

चन्द्रस्य षोडशो भागो भार्गवस्य विधीयते।
भार्गवात्पादहीनस्तु विज्ञेयो वै बृहस्पतिः॥ १६॥

चन्द्रमा का सोलहवाँ भाग शुक्र का है। शुक्र से पादहीन (चतुर्थांश कम) बृहस्पति (का विस्तार) जानना चाहिए।

बृहस्पतेः पादहीनौ भौमसौरावुभौ स्मृतौ।
विस्तारान्मण्डलाच्चैव पादहीनस्तयोर्बुधः॥ १७॥
तारानक्षत्ररूपाणि वपुष्मन्तीह यानि वै।
बुधेन तानि तुल्यानि विस्तारान्मण्डलात्तथा॥ १८॥

बृहस्पति से एक पादरहित मंगल एवं शनि— इन दोनों का मण्डल बताया गया है। इन दोनों के मण्डल तथा विस्तार से चतुर्थांश कम बुधमण्डल है। तारा और नक्षत्ररूपी जो शरीरधारी हैं, वे सभी मण्डल एवं विस्तार से बुधग्रह के तुल्य हैं।

तारानक्षत्ररूपाणि हीनानि तु परस्परम्।
शतानि पञ्चचत्वारि त्रीणि द्वे चैव योजने॥ १९॥
पूर्वापरानुकृष्टानि तारकामण्डलानि तु।
योजनान्यर्द्धमात्राणि तेभ्यो ह्रस्वं न विद्यते॥ २०॥

जो तारा एवं नक्षत्र-रूप हैं, वे परस्पर पाँच, चार, तीन या दो सौ योजन कम विस्तार वाले हैं। एक-दूसरे से निकृष्ट ताराओं का यह मण्डल अर्धयोजन परिमाण वाले हैं, उनसे छोटा कोई विद्यमान नहीं है।

उपरिष्टात्त्रयस्तेषां ग्रहा वै दूरसर्पिणः।
सौरोऽङ्गिराश्च वक्रश्च ज्ञेयो मन्दविचारणः॥ २१॥
तेभ्योऽधस्ताश्च चत्वारः पुनरन्ये महाग्रहाः।
सूर्यः सोमो बुधश्चैव भार्गवश्चैव शीघ्रगाः॥ २२॥

उनसे ऊपर दूर तक गमन करने वाले जो तीन ग्रह शनि, बृहस्पति तथा मंगल हैं, उन्हें मन्दगति से विचरने वाला जानना चाहिए। उनसे नीचे जो अन्य चार- सूर्य, चन्द्रमा, बुध तथा शुक्र महाग्रह हैं, ये शीघ्र गति वाले हैं।

दक्षिणायनमार्गस्थो यदा चरति रश्मिमान्।
तदा पूर्वग्रहाणां वै सूर्योऽधस्तात्प्रसर्पति॥ २३॥
विस्तीर्णं मण्डलं कृत्वा तस्योर्द्ध्वं चरते शशी।
नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नं सोमादूर्द्ध्वं प्रसर्पति॥ २४॥

जब सूर्य दक्षिणायन मार्ग में होकर विचरण करता है, तब वह सभी पूर्वग्रहों के नीचे की ओर भ्रमण करता है। उसके ऊपर विस्तृत मण्डल बनाकर चन्द्रमा विचरण करता है। सम्पूर्ण नक्षत्र-मण्डल चन्द्रमा से ऊपर भ्रमण करता है।

नक्षत्रेभ्यो बुधश्चोर्द्ध्वं बुधादूर्द्ध्वं तु भार्गवः।
वक्रस्तु भार्गवादूर्द्ध्वं वक्रादूर्द्ध्वं बृहस्पतिः॥ २५॥
तस्माच्छनैश्चरोऽप्यूर्द्ध्वं तस्मात्सप्तर्षिमण्डलम्।
ऋषीणाञ्चैव सप्तानां ध्रुवश्चोर्द्ध्वं व्यवस्थितः॥ २६॥

नक्षत्रों से ऊपर बुध, बुध से ऊपर शुक्र, शुक्र से ऊपर मंगल और मंगल से ऊपर बृहस्पति है। उस बृहस्पति से भी ऊपर शनैश्चर, उससे ऊपर सप्तर्षि-मण्डल तथा सप्तर्षियों ऊपर ध्रुव अवस्थित है।

योजनानां सहस्राणि भास्करस्य रथो नव।
ईषादण्डस्तथा तस्य द्विगुणो द्विजसत्तमाः॥ २७॥
सार्द्धकोटिस्तथा सप्त नियुतान्यधिकानि तु।
योजनानान्तु तस्याक्षस्तत्र चक्रं प्रतिष्ठितम्॥ २८॥

हे उत्तम द्विजो! सूर्य का रथ नौ हजार योजन परिमित है। उसका ईषादण्ड उससे दोगुना (अर्थात् अठारह हजार योजन का) है। उसका अक्ष (धुरा) डेढ़ करोड़ सात लाख योजन का है। उसी में चक्र (रथ का पहिया) प्रतिष्ठित है।

त्रिनाभिमत्ते पञ्चारे षण्णेमिन्यक्षयात्मके।
संवत्सरमयं कृत्स्नं कालचक्रं प्रतिष्ठितम्॥ २९॥
चत्वारिंशत्सहस्राणि द्वितीयाक्षो व्यवस्थितः।
पञ्चाशच्चानि सार्द्धानि योजनानि द्विजोत्तमाः॥ ३०॥

यह पहिया तीन नाभि वाला, पाँच अरों वाला और छः नेमियों वाला अक्षय-अविनाशी है। उस चक्र में संवत्सरमय

यह सम्पूर्ण कालचक्र प्रतिष्ठित है। द्विजोत्तमो! सूर्य के रथ का दूसरा अक्ष (चक्र या धुरा) चालीस हजार तथा साढ़े पाँच हजार योजन का है।

अक्षप्रमाणमुभयोः प्रमाणं तद्युगार्द्धयोः।
ह्रस्वोक्षस्तद्युगार्द्धेन ध्रुवाधारो रथस्य तु॥ ३१॥
द्वितीयेऽक्षे तु तच्चक्रं संस्थितं मानसाचले।
हयाश्च सप्त च्छन्दांसि तन्नामानि निबोधत॥ ३२॥

अक्ष के प्रमाण तुल्य दोनों ओर के युगार्ध (जूआ) का प्रमाण है। धुरे के आधार में स्थित ह्रस्व अक्ष उस युगार्ध के बराबर है। द्वितीय अक्ष में स्थित वह चक्र मानसाचल पर स्थित है। सात छन्द (उस रथ के) सात अश्व हैं। उनके नाम जान लो।

गायत्री च बृहत्युष्णिक् जगती पंक्तिरेव च।
अनुष्टुब् त्रिष्टुबप्युक्ता च्छन्दांसि हरयो हरेः॥ ३३॥
मानसोपरि माहेन्द्री प्राच्यां दिशि महापुरी।
दक्षिणायां यमस्याथ वरुणस्य तु पश्चिमे॥ ३४॥

गायत्री, बृहती, उष्णिक्, जगती, पंक्ति, अनुष्टुप् तथा त्रिष्टुप्— ये सात छन्द सूर्य के (सात) अश्व कहे गये हैं। मानसाचल पर पूर्व दिशा में महेन्द्र की महानगरी है। दक्षिण में यम की और पश्चिम में वरुण की है।

उत्तरेषु च सोमस्य तन्नामानि निबोधत।
अमरावती संयमनी सुखा चैव विभावरी॥ ३५॥
काष्ठागतो दक्षिणतः क्षिप्तेषुरिव सर्पति।
ज्योतिषां चक्रमादाय देवदेवः पितामहः॥ ३६॥

उत्तर में सोम की नगरी है। उनके (भी) नाम (क्रमशः) समझ लो— अमरावती, संयमनी, सुखा तथा विभावरी। दक्षिण दिशा की ओर से प्रक्षिप्त बाण के समान देवों के भी देव पितामह ज्योतिश्चक्र को ग्रहण कर भ्रमण करते हैं।

दिवसस्य रविर्मध्ये सर्वकालं व्यवस्थितः।
सप्तद्वीपेषु विप्रेन्द्रा निशार्द्धस्य च सम्मुखः॥ ३७॥
उदयास्तमने चैव सर्वकालं तु संमुखे।
दिशास्वशेषासु तथा विप्रेन्द्रा विदिशासु च॥ ३८॥
कुलालचक्रपर्यन्तं भ्रमत्येष यथेश्वरः।
करोत्येष यथा रात्रिं विमुञ्चन्मेदिनीं द्विजाः॥ ३९॥

हे विप्रेन्द्रो! इन सप्तद्वीपों में सभी कालों में सूर्य दिन के मध्यभाग अवस्थित है एवं रात्रि के अर्धभाग में सदा सम्मुख रहता है। हे विप्रेन्द्रो! कुम्हार के चक्र के छोर के समान सभी दिशाओं तथा विदिशाओं में भी सभी समय सूर्य अपने उदय और अस्त होने के लिए सदा सम्मुख रहता है। यह ईश्वर सूर्य भ्रमण करता हुआ संपूर्ण पृथ्वी को छोड़ता रहता है और दिवस तथा रात्रि को करता है।

दिवाकरकरैरेतत्पूरितं भुवनत्रयम्।
त्रैलोक्यं कथितं सद्भिर्लोकानां मुनिपुंगवाः॥ ४०॥

इस प्रकार ये तीनों भुवन सूर्य की किरणों से व्याप्त हैं। हे मुनिश्रेष्ठो! विद्वानों ने (समस्त) लोगों के सामने इस त्रैलोक्य का वर्णन किया है।

आदित्यमूलमखिलं त्रैलोक्यं नात्र संशयः।
भवत्यस्माज्जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषम्॥ ४१॥
रुद्रेन्द्रोपेन्द्रचन्द्राणां विप्रेन्द्राणां दिवौकसाम्।
द्युतिमान्द्युतिमत्कृत्स्नमजयत्सार्वलौकिकम्॥ ४२॥

सम्पूर्ण त्रिलोक का मूल यह आदित्य है, इसमें संशय नहीं। इनसे से देवता, असुर तथा मनुष्यों से युक्त सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न होता है। रुद्र, इन्द्र, उपेन्द्र, चन्द्रमा एवं श्रेष्ठ विप्रों तथा समस्त देवताओं की कान्ति से युक्त यह सूर्य समस्त जगत् को कान्तिमान् करते हुए समस्त लोकों को जीत रहा है।

सर्वात्मा सर्वलोकेशो महादेवः प्रजापतिः।
सूर्य एव तु लोकस्य मूलं परमदैवतम्॥ ४३॥
द्वादशान्ये तथादित्या देवास्ते येऽधिकारिणः।
निर्वहन्ति पदन्तस्य तदंशा विष्णुमूर्तयः॥ ४४॥

इसलिए सूर्य ही सब का आत्मा, सभी लोकों का स्वामी, प्रजापति, महान् देव, तीनों लोकों के मूल और परम देवता है। वस्तुतः द्वादश आदित्य और अन्य बारह अधिकारी रूप देवता हैं, वे उसी सूर्य के अंशभूत और विष्णु के मूर्तिरूप हैं। वे उन्हीं के कार्य को सम्पादित करते हैं।

सर्वे नमस्यन्ति सहस्रबाहुं गन्धर्वयक्षोरगकिन्नराद्याः।
यजन्ति यज्ञैर्विविधैर्मुनीन्द्राश्छन्दोमयं ब्रह्ममयं पुराणम्॥ ४५॥

इसी कारण गन्धर्व, यक्ष, नाग तथा किन्नर आदि सभी सहस्रबाहु (हजारों किरणों वाले) सूर्य को नमस्कार करते हैं। मुनीन्द्रगण विविध यज्ञों द्वारा छन्दोमय एवं ब्रह्मस्वरूप पुरातन सूर्य देव का यजन करते हैं।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे भुवनकोशविन्यासो नाम एकचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४१॥

द्वाचत्वारिंशोऽध्यायः
(भुवनकोश विन्यास)

सूत उवाच

स रथोऽधिष्ठितो देवैरादित्यैर्मुनिभिस्तथा।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामणीसर्पराक्षसैः॥ १॥

सूतजी ने कहा— सूर्य का वह प्रसिद्ध रथ देवों, आदित्यों मुनियों, गन्धर्वों, अप्सराओं, श्रेष्ठ सर्पों तथा राक्षसों से अधिष्ठित है।

धातार्यमा च मित्रश्च वरुणः शक्र एव च।
विवस्वानथ पूषा च पर्जन्यश्चांशुरेव च॥ २॥
भगस्त्वष्टा च विष्णुश्च द्वादशैते दिवामराः।
आप्याययति वै भानुर्वसन्तादिषु वै क्रमात्॥ ३॥

धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, पर्जन्य, अंशु, भग, त्वष्टा तथा विष्णु— ये बारह आदित्य हैं। उन्हें क्रमशः वसन्त आदि ऋतुओं में सूर्य आप्यायित करते हैं।

पुलस्त्यः पुलहश्चात्रिर्वसिष्ठश्चाङ्गिरा भृगुः।
भरद्वाजो गौतमश्च कश्यपः क्रतुरेव च॥ ४॥
जमदग्निः कौशिकश्च मुनयो ब्रह्मवादिनः।
स्तुवन्ति देवं विविधैश्छन्दोभिस्तु यथाक्रमम्॥ ५॥

पुलस्त्य, पुलह, अत्रि, वसिष्ठ, अङ्गिरा, भृगु, भरद्वाज, गौतम, कश्यप, क्रतु, जमदग्नि तथा कौशिक— ये ब्रह्मवादी मुनि अनेक प्रकार के स्तुतिमंत्रों द्वारा क्रमशः सूर्यदेव की स्तुति करते हैं।

रथकृच्च रथौजाश्च रथचित्रः सुबाहुकः।
रथस्वनोऽथ वरुणः सुषेणः सेनजित्तथा॥ ६॥
तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च कृतजित् सत्यजित्तथा।
ग्रामण्यो देवदेवस्य कुर्वतेऽभीषुसंग्रहम्॥ ७॥

रथकृत्, रथौजा, रथचित्र, सुबाहुक, रथस्वन, वरुण, सुषेण, सेनजित्, तार्क्ष्य, अरिष्टनेमि, रथजित् और सत्यजित्— ये (बारह) ग्रामणी, देवों के देव सूर्य की रश्मियों का संग्रह किया करते हैं।

अथ हेतिः प्रहेतिश्च पौरुषेयो वधस्तथा।
सर्पो व्याघ्रस्तथापश्च वातो विद्युद्दिवाकरः॥ ८॥
ब्रह्मोपेतश्च विप्रेन्द्रा यज्ञोपेतस्तथैव च।
राक्षसप्रवरा ह्येते प्रयान्ति पुरतः क्रमात्॥ ९॥

हे मुनिगण! हेति, प्रहेति, पौरुषेय, वध, सर्प, व्याघ्र, आप, वात, विद्युत्, दिवाकर, ब्रह्मोपेत और यज्ञोपेत— ये (बारह) श्रेष्ठ राक्षस क्रम से सूर्य के आगे-आगे चलते हैं।

वासुकिः कङ्कनीलश्च तक्षकः सर्पपुङ्गवः।
एलापत्रः शङ्खपालस्तथैरावतसंज्ञितः॥ १०॥
धनञ्जयो महापद्मस्तथा कर्कोटको द्विजाः।
कम्बलोऽश्वतरश्चैव वहन्त्येनं यथाक्रमम्॥ ११॥

हे द्विजो! वासुकि, कङ्कनील, तक्षक, सर्पपुङ्गव, एलापत्र, शंखपाल, ऐरावत, धनंजय, महापद्म, कर्कोटक, कम्बल तथा अश्वतर— ये (बारह) नाग क्रमशः इन सूर्यदेव का वहन करते हैं।

तुम्बुरुर्नारदो हाहाहूहूर्विश्वावसुस्तथा।
उग्रसेनोऽथ सुरुचिरर्वावसुस्तथापरः॥ १२॥
चित्रसेनस्तथोर्णायुर्धृतराष्ट्रो द्विजोत्तमाः।
सूर्यवर्चा द्वादशैते गन्धर्वा गायनावराः॥ १३॥
गायन्ति गानैर्विविधैर्भानु षड्जादिभिः क्रमात्।

हे मुनिश्रेष्ठो! तुम्बुरु, नारद, हाहा, हूहू, विश्वावसु, उग्रसेन, वसुरुचि, अर्वावसु, चित्रसेन, उर्णायु, धृतराष्ट्र और सूर्यवर्चा— ये (बारह) श्रेष्ठ गायन करने वाले गन्धर्व हैं। ये क्रमशः षड्ज आदि स्वरों के द्वारा विविध प्रकार के गीतों से सूर्य के समीप गान करते रहते हैं।

क्रतुस्थलाप्सरोवर्या तथान्या पुञ्जिकस्थला॥ १४॥
मेनका सहजन्या च प्रम्लोचा च द्विजोत्तमाः।
अनुम्लोचा च विश्वाची घृताची चोर्वशी तथा॥ १५॥
अन्या च पूर्वचित्तिः स्यादन्या चैव तिलोत्तमा।
ताण्डवैर्विविधैरेनं वसन्तादिषु वै क्रमात्॥ १६॥
तोषयन्ति महादेवं भानुमात्मानमव्ययम्।

हे द्विजोत्तमो! अप्सराओं में श्रेष्ठ अप्सरा— क्रतुस्थला, पुञ्जिकस्थला, मेनका, सहजन्या, प्रम्लोचा, अनुम्लोचा, घृताची, विश्वाची, उर्वशी, पूर्वचित्ति, अन्या और तिलोत्तमा— ये (बारह) अप्सराएँ वसन्त आदि ऋतुओं में क्रमशः विविध ताण्डव-नृत्यों से इन अव्यय, आत्मस्वरूप महादेव भानु को प्रसन्न करती हैं।

एवं देवा वसन्त्यर्के द्वौ द्वौ मासौ क्रमेण तु॥ १७॥
सूर्यमाप्याययन्त्येते तेजसा तेजसां निधिम्।
ग्रथितैस्तैर्वचोभिस्तु स्तुवन्ति मुनयो रविम्॥ १८॥

गन्धर्वाप्सरसश्चैनं नृत्यगेयैरुपासते।
ग्रामणीयक्षभूतानि कुर्वतेऽभीषुसंग्रहम्॥ १९॥

इस प्रकार ये देवता क्रमशः दो-दो महीनों में सूर्य में प्रतिष्ठित रहते हैं और तेजोनिधि सूर्य को अपने तेज से आप्यायित करते हैं। (रथस्थित) मुनिगण अपने द्वारा रचित स्तुतियों से सूर्य की स्तुति करते हैं और अप्सराएँ एवं गन्धर्व नृत्य तथा गीतों के द्वारा इनकी उपासना करते हैं। ग्रामणी, यक्षादि भूतगण उन से रश्मियों का संग्रह करते हैं।

सर्पा वहन्ति देवेशं यातुधानाः प्रयान्ति च।
वालखिल्या नयन्त्यस्तं परिवार्योदयाद्रविम्॥ २०॥
एते तपन्ति वर्षन्ति भान्ति वान्ति सृजन्ति तु।
भूतानामशुभं कर्म व्यपोहन्तीति कीर्त्तिताः॥ २१॥

सर्पगण देवेश सूर्य को वहन करते हैं और राक्षस (उनके आगे-आगे) चलते हैं। बालखिल्य मुनि सूर्य को आवृतकर उदय से अस्त तक ले जाते हैं। ये (पूर्वोक्त द्वादश आदित्य) तपते, बरसते, प्रकाश करते, बहते एवं सृष्टि करते हैं। ये प्राणियों के अशुभ कर्मों को दूर करते हैं, ऐसा कहा गया है।

एते सहैव सूर्येण भ्रमन्ति दिवि भानुगाः।
विमाने च स्थिता नित्यं कामगे वातरंहसि॥ २२॥
वर्षन्तश्च तपन्तश्च ह्लादयन्तश्च वै क्रमात्।
गोपायन्तीह भूतानि सर्वाणीह युगक्रमात्॥ २३॥

ये आकाश में सूर्य के साथ ही भ्रमण करते हैं। ये नित्य कामचारी तथा वायु के समान गति वाले विमान पर स्थित रहते हैं। ये क्रमशः (ऋतु अनुसार) वर्षा, ताप एवं प्रजा को आनन्द प्रदान करते हुए प्रलयपर्यन्त सभी प्राणियों की रक्षा करते हैं।

एतेषामेव देवानां यथावीर्यं यथातपः।
यथायोगं यथासत्त्वं स एष तपति प्रभुः॥ २४॥

ये प्रभु सूर्य इन्हीं देवों के वीर्य, तप, योग और बल के अनुसार प्रत्येक को ताप देते हैं।

अहोरात्रव्यवस्थानकारणं स प्रजापतिः।
पितृदेवमनुष्यादीन्स सदाप्याययद्रविः॥ २६॥
तत्र देवो महादेवो भास्वान्साक्षान्महेश्वरः।
भासते वेदविदुषां नीलग्रीवः सनातनः॥ २७॥
स एष देवो भगवान्परमेष्ठी प्रजापतिः।
स्थानं तद्विदुरादित्ये वेदज्ञा वेदविग्रहाः॥ २८॥

दिन और रात्रि की व्यवस्था के कारणरूप ये प्रजापति सूर्य पितरों, देवों तथा मनुष्यादि सभी को सदा तृप्त करते हैं। वेदविदों के (ज्ञेय) सनातन, नीलकंठ, साक्षात् देव महादेव महेश्वर ही सूयरूप में भासित होते हैं। वही यह देव भगवान् परमेष्ठी प्रजापति हैं। उस आदित्य में वह स्थान वेदविग्रही वेदज्ञ जानते हैं।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे द्वाचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४२॥

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

(भुवनकोश विन्यास)

सूत उवाच

एवमेष महादेवो देवदेवः पितामहः।
करोति नियतं कालं कालात्मा ह्यैश्वरीं तनुः॥ १॥

सूतजी बोले— इस प्रकार ये देवाधिदेव महादेव सब के पितामह सूर्यदेव कालस्वरूप होकर नियत काल तक (स्वयं) ईश्वरीय शरीरों को धारण करते हैं।

तस्या ये रश्मयो विप्राः सर्वलोकप्रदीपकाः।
तेषां श्रेष्ठाः पुनः सप्तरश्मयो ग्रहयोनयः॥ २॥

हे विप्रो! सभी लोकों में प्रदीपस्वरूप उनकी जो रश्मियाँ हैं, उनमें भी ग्रहों की उत्पादिका होने से सात रश्मियाँ अत्यन्त श्रेष्ठ हैं।

सुषुम्नो हरिकेशश्च विश्वकर्मा तथैव च।
विश्वश्रवाः पुनश्चान्यः संयद्वसुरतः परः॥ ३॥
अर्वावसुरिति ख्यातः स्वराट् सप्त कीर्त्तिताः।
सुषुम्नः सूर्यरश्मिस्तु पुष्णाति शिशिरद्युतिम्॥ ४॥

सुषुम्न, हरिकेश, विश्वकर्मा, विश्वव्यचा, संयद्वसु, अर्वावसु तथा स्वराड्— ये सात रश्मियाँ कही गयी हैं। सुषुम्न नामक सूर्य की रश्मि चन्द्रमा की कान्ति को पुष्ट करती है।

तिर्यगूर्ध्वप्रचारोऽसौ सुषुम्नः परिपठ्यते।
हरिकेशस्तु यः प्रोक्तो रश्मिर्नक्षत्रपोषकः॥ ५॥
विश्वकर्मा तथा रश्मिर्बुधं पुष्णाति सर्वदा।
विश्वश्रवास्तु यो रश्मिः शुक्रं पुष्णाति नित्यदा॥ ६॥

यह सुषुम्न रश्मि तिरछे रूप से ऊपर की ओर गमन करने वाली बताई गई है। हरिकेश नामक जो रश्मि कही

गयी है, वह नक्षत्रों का पोषण करती है। विश्वकर्मा नामक रश्मि सदा बुधग्रह का पोषण करती है। विश्वव्यचा नाम की जो रश्मि है, वह नित्य शुक्र का पोषण करती है।

संयद्वसुरिति ख्यातो यः पुष्णाति स लोहितम्।
बृहस्पतिं सुपुष्णाति रश्मिरर्वावसुः प्रभुः॥७॥

संयद्वसु नाम से प्रसिद्ध जो रश्मि है, वह मंगल का पोषण करती है और प्रभावशाली अर्वावसु नामक रश्मि बृहस्पति का अच्छी प्रकार पोषण करती है।

शनैश्चरं प्रपुष्णाति सप्तमस्तु स्वरस्तथा।
एवं सूर्यप्रभावेण सर्वा नक्षत्रतारकाः॥८॥
वर्द्धन्ते वर्द्धिता नित्यं नित्यमाप्याययन्ति च।
दिव्यानां पार्थिवानाञ्च नैशानाञ्चैव नित्यशः॥९॥
आदानान्नित्यमादित्यस्तेजसां तमसामपि।

सप्तम स्वर नामक रश्मि शनिश्चर का पोषण करती है। इस प्रकार सूर्य के प्रभाव से सभी नक्षत्र एवं तारागण नित्य वृद्धि को प्राप्त होते हैं और वृद्धि प्राप्त कर नित्य (अन्य पदार्थों को) आप्यायित करते हैं। द्युलोक, पृथ्वीलोक एवं निशा-सम्बन्धी तेजसमूह और अन्धकार का नित्य आदान (ग्रहण) करने के कारण उन्हें आदित्य कहा जाता है।

आदत्ते स तु नाडीनां सहस्रेण समन्ततः॥१०॥
नादेयं चैव सामुद्रं कौप्यं चैव सहस्रदृक्।
स्थावरं जङ्गमञ्चैव यच्च कुल्यादिकं पयः॥११॥
तस्य रश्मिसहस्रन्तु शीतवर्षोष्णनिस्रवम्।
तासाञ्चतुःशता नाड्यो वर्षन्ते चित्रमूर्तयः॥१२॥

वह सूर्य अपनी हजारों नाड़ियों (किरणों) द्वारा चारों ओर से नदियों, समुद्रों, कूपों, स्थावर तथा जङ्गम और नहरों आदि के जल को ग्रहण करता है। उसकी हजारों रश्मियाँ शीत, वर्षा एवं उष्णता को स्रवित करने वाली हैं और उनमें विचित्र मूर्तिस्वरूपा चार सौ किरणें वर्षा करती हैं।

चन्द्रगाश्चैव गाहाश्च काञ्चनाः शातनास्तथा।
अमृता नामतः सर्वा रश्मयो वृष्टिसर्जनाः॥१३॥
हिमोद्वताश्च ता नाड्यो रश्मयो निःसृताः पुनः।
रेष्यो मेष्यश्च वास्यश्च ह्रादिन्यः सर्जनास्तथा॥१४॥

चन्द्रगा, गाहा, काञ्चना और शातना— ये अमृत नाम वाली सभी रश्मियाँ वृष्टिसर्जक हैं। हिमोद्वत ये नाड़ियां पुनः रश्मिरूप में निःसृत होती हैं। वे रेषी, मेषी, वासी, ह्रादिनी तथा सर्जना नाम वाली हैं।

चन्द्रास्ता नामतः सर्वाः पीतास्ताः स्युर्गभस्तयः।
शुक्लाश्च कुंकुमश्चैव गावो विश्वभृतस्तथा॥१५॥
शुक्लास्ता नामतः सर्वास्त्रिविधा घर्मसर्जनाः।
समं बिभर्ति ताभिः स मनुष्यपितृदेवताः॥१६॥

ये सभी रश्मियाँ पीत वर्ण की और चन्द्रा नाम वाली हैं; शुक्ला, कंकुमा और विश्वभृत् नामक सभी रश्मियों का नाम शुक्ला है। ये तीन प्रकार की रश्मियाँ धूप की सृष्टि करने वाली हैं। वे सूर्यदेव उनके द्वारा समान-रूप से मनुष्यों, पितरों तथा देवताओं का पोषण करते हैं।

मनुष्यानौषधेनेह स्वधया च पितृनपि।
अमृतेन सुरान्सर्वांस्त्रींस्त्रिभिस्तर्पयत्यसौ॥१७॥

वे मनुष्यों को औषध द्वारा, पितरों को स्वधा द्वारा और देवताओं को अमृत के द्वारा— इस प्रकार तीनों को तीन पदार्थों द्वारा तृप्त करते हैं।

वसन्ते ग्रीष्मके चैव षड्भिः स तपति प्रभुः।
शरद्यपि च वर्षासु चतुर्भिः संप्रवर्षति॥१८॥
हेमन्ते शिशिरे चैव हिममुत्सृजति त्रिभिः।
वरुणो माघमासे तु सूर्यः पूषा तु फाल्गुने॥१९॥

वे प्रभु वसन्त एवं ग्रीष्म ऋतु में छः किरणों द्वारा तपते हैं। शरद् और वर्षा ऋतु में चार रश्मियों के द्वारा वर्षा करते हैं तथा हेमन्त एवं शिशिर ऋतु में तीन रश्मियों से हिमपात करते हैं। सूर्य माघ मास में वरुण और फाल्गुन में पूषा कहलाते हैं।

चैत्रे मासे स देवेशो धाता वैशाखतापनः।
ज्येष्ठे मासे भवेदिन्द्रः आषाढे तपते रविः॥२०॥
विवस्वान् श्रावणे मासि प्रौष्ठपद्यां भगः स्मृतः।
पर्जन्यश्चाश्विने मासि कार्तिके मासि भास्करः॥२१॥
मार्गशीर्षे भवेन्मित्रः पौषे विष्णुः सनातनः।

वे चैत्र मास में देवेश, वैशाख में धाता, ज्येष्ठ मास में इन्द्र तथा आषाढ़ में रवि नाम वाले होकर ताप देते हैं। वे श्रावण में विवस्वान् तथा भाद्रपद मास में भग कहे जाते हैं। आश्विन मास में पर्जन्य, कार्तिक में त्वष्टा, मार्गशीर्ष में मित्र और पौष में सनातन विष्णु कहलाते हैं।

पञ्चरश्मिसहस्राणि वरुणस्यार्ककर्मणि॥२२॥
षड्भिः सहस्रैः पूषा तु देवेशः सप्तभिस्तथा।
धाताष्टभिः सहस्रैस्तु नवभिश्च शतक्रतुः॥२३॥
विवस्वान्दशभिः पाति पात्येकादशभिर्भगः।

सूर्य के कार्य सम्पादन में वरुण (नामक सूर्य) पाँच हजार रश्मियों द्वारा, पूषा छः हजार, देवेश सात हजार, धाता आठ हजार, शतक्रतु इन्द्र नौ हजार, विवस्वान् दस हजार और भग की ग्यारह हजार रश्मियों से पालन (सहयोग) करते हैं।

सप्तभिस्तपते मित्रस्त्वष्टा चैवाष्टभिस्तपेत्॥ २४॥
अर्यमा दशभिः पाति पर्जन्यो नवभिस्तथा।
षड्भी रश्मिसहस्रैस्तु विष्णुस्तपति विश्वसृक्॥ २५॥

मित्र नामक सूर्य सात हजार रश्मियों से तपते हैं और त्वष्टा आठ हजार रश्मियों से ताप देते हैं। अर्यमा दस हजार रश्मियों से और पर्जन्य नौ हजार रश्मियों पालन करते हैं। विश्व को धारण करने वाले, विष्णु (नामक सूर्य) छः हजार रश्मियों से तपते हैं।

वसन्ते कपिलः सूर्यो ग्रीष्मे काञ्चनसप्रभः।
श्वेतो वर्षासु विज्ञेयः पाण्डुरः शरदि प्रभुः॥ २६॥

प्रभु सूर्य वसन्त ऋतु में कपिल (भूरे) वर्ण के, ग्रीष्म में सुवर्ण के समान, वर्षा में श्वेत, शरद में पाण्डुर (सफेद-मिश्रित पीले) रंग के प्रतीत होते हैं।

हेमन्ते ताम्रवर्णः स्याच्छिशिरे लोहितो रविः।
ओषधीषु कलां धत्ते स्वधामपि पितृष्वथ॥ २७॥
सूर्योऽमरेष्वमृतं तु त्रयं त्रिषु नियच्छति।

हेमन्त में ताँबे के समान वर्ण वाले और शिशिर में सूर्य लोहित (लाल) वर्ण के होते हैं। सूर्य ओषधियों में रश्मियों का आधान करते हैं। पितरों को स्वधा और देवताओं को अमृतत्व — इस प्रकार तीनों में तीन पदार्थ प्रदान करते हैं।

अन्ये चाष्टौ ग्रहा ज्ञेयाः सूर्येणाधिष्ठिता द्विजाः॥ २८॥
चन्द्रमाः सोमपुत्रश्च शुक्रश्चैव बृहस्पतिः।
भौमो मन्दस्तथा राहुः केतुमानपि चाष्टमः॥ २९॥

हे द्विजो! अन्य आठ ग्रहों को सूर्य से अधिष्ठित जानना चाहिये। चन्द्रमा, चन्द्रमा का पुत्र बुध, शुक्र, बृहस्पति, मंगल, शनि, राहु तथा आठवाँ केतुमान् ग्रह है।

सर्वे ध्रुवे निबद्धा वै ग्रहास्ते वातरश्मिभिः।
भ्राम्यमाणा यथायोगं भ्रमन्त्यनु दिवाकरम्॥ ३०॥

ध्रुव में आबद्ध वे सभी ग्रह वातरश्मियों के द्वारा भ्रमण करते हुए यथास्थान सूर्य की परिक्रमा करते हैं।

अलातचक्रवद्यान्ति वातचक्रेरितास्तथा।
यस्माद्वहति तान्वायुः प्रवहस्तेन स स्मृतः॥ ३१॥

वायु चक्र द्वारा प्रेरित वे ग्रह अलातचक्र के समान भ्रमण करते हैं। चूँकि वायु उनका वहन करती है, इसलिये उसे 'प्रवह' कहा गया है।

रथस्त्रिचक्रः सोमस्य कुन्दाभास्तस्य वाजिनः।
वामदक्षिणतो युक्ता दश तेन क्षपाकरः॥ ३२॥
वीथ्याश्रयाणि चरति नक्षत्राणि रविर्यथा।
ह्रासवृद्धी तु विप्रेन्द्रा ध्रुवाधाराणि सर्वदा॥ ३३॥

सोम का रथ तीन चक्रों वाला है। उसके वाम और दक्षिण भाग में कुन्द पुष्प के समान धवल वर्ण वाले दस अश्व जुते हुए हैं। इसी रथ से निशाकर चन्द्रमा सूर्य के समान (अपनी) कक्षा में स्थित होकर नक्षत्रों के मध्य परिचर्या करता है। हे विप्रेन्द्रो! चन्द्रमा में क्रमशः ह्रास और वृद्धि सदा ध्रुव के आधार पर होती रहती है।

स सोमः शुक्लपक्षे तु भास्करे परतः स्थिते।
आपूर्यते परस्यान्ते सततञ्चैव ताः प्रभाः॥ ३४॥

शुक्लपक्ष में सूर्य पर भाग में स्थित रहने पर उसकी प्रभाराशि से वह सोम (चन्द्रमा) पर-भाग के अन्त में निरन्तर आपूरित होता रहता है।

क्षीणं पीतं सुरैः सोममाप्याययति नित्यदा।
एकेन रश्मिना विप्राः सुषुम्नाख्येन भास्करः॥ ३५॥
एषा सूर्यस्य वीर्येण सोमस्याप्यायिता तनुः।
पौर्णमास्यां स दृश्येत संपूर्णो दिवसक्रमात्॥ ३६॥

हे विप्रो! देवताओं द्वारा पान किये जाने के कारण क्षीण हुए चन्द्रमा को सूर्य सुषुम्ना नामक एक ही किरण से नित्य आप्यायित करते हैं। सूर्य के तेज से आप्यायित चन्द्रमा का यह शरीर (पुष्ट होकर) दिन के क्रमानुसार पूर्णिमा को सम्पूर्ण रूप से दिखायी देता है।

संपूर्णमर्द्धमासेन तं सोमममृतात्मकम्।
पिबन्ति देवता विप्रा यतस्तेऽमृतभोजनाः॥ ३७॥

हे विप्रो! आधे महीने तक देवता लोग उस अमृतस्वरूप सम्पूर्ण सोम का पान करते हैं, क्योंकि वे अमृत का भोजन करने वाले होते हैं।

ततः पञ्चदशे भागे किञ्चिच्छिष्टे कलात्मके।
अपराह्णे पितृगणा जघन्यं पर्युपासते॥ ३८॥
पिबन्ति द्विलवं कालं शिष्टा तस्य कला तु या।
सुधामृतमयीं पुण्यां तामिन्दोरमृतात्मिकाम्॥ ३९॥

तदनन्तर पंद्रहवें भाग के क्षीण हो जाने पर कुछ कलात्मक भाग शेष बच जाने पर अपराह्न में पितृगण उस भाग का सेवन करते हैं। चन्द्रमा की अवशिष्ट अमृतस्वरूपिणी, सुधामयी तथा पवित्र कला का पितृगण दो लव (काल-विशेष निमेष) तक पान करते हैं।

निःसृतं तदमावास्यां गभस्तिभ्यः स्वधामृतम्।
मासतृप्तिमवाप्स्यन्ति पितरः सन्ति निर्वृता:॥४०॥
न सोमस्य विनाशः स्यात्सुधा चैव सुपीयते।
एवं सूर्यनिमित्तोऽस्य क्षयो वृद्धिश्च सत्तमा:॥४१॥

अमावस्या के दिन (चन्द्रमा की) किरणों से निकलने वाले स्वधारूपी अमृत का पान करने से पितृगण पूरे महीने तक तृप्त होकर निर्वृत हो जाते हैं। देवताओं के द्वारा अमृत का पान किये जाने पर भी चन्द्रमा का विनाश नहीं होता है। हे श्रेष्ठजनो! इस प्रकार सूर्य के कारण चन्द्रमा के क्षय एवं वृद्धि का क्रम चलता है।

सोमपुत्रस्य चाष्टाभिर्वाजिभिर्वायुवेगिभिः।
वारिजैः स्यन्दनो युक्तस्तेनासौ याति सर्वत:॥४२॥

सोमपुत्र (बुध) के रथ में वायु के समान वेगवान् और जल से उत्पन्न आठ घोड़े जुते रहते हैं। वह बुध उसीसे सर्वत्र गमन करता है।

शुक्रस्य भूमिजैरश्वैः स्यन्दनो दशभिर्वृतः।
अष्टाभिश्चापि भौमस्य रथो हैमः सुशोभनः॥४३॥
बृहस्पते रथोऽष्टाश्वः स्यन्दनो हेमनिर्मितः।
रथो रूप्यमयोऽष्टाश्वो मन्दस्यायसनिर्मित:॥४४॥
स्वर्भानोर्भास्करारेश्च तथाष्टाभिर्हयैर्वृतः।
एते महाग्रहाणां वै समाख्याता रथाश्च वै॥४५॥

शुक्र का रथ भूमि से उत्पन्न दस घोड़ों से और मंगल का स्वर्णमय अत्यन्त सुन्दर रथ आठ घोड़ों से युक्त रहता है। बृहस्पति का भी आठ घोड़ों से युक्त रथ स्वर्णनिर्मित है। शनि का लोहे से निर्मित रथ रूप्यमय है और आठ घोड़ों से संयुक्त रहता है। सूर्य के शत्रु राहु का रथ भी आठ अश्वों से युक्त है। इस प्रकार महाग्रहों के रथों का वर्णन किया गया है।

सर्वे ध्रुवे महाभागा निबद्धा वायुरश्मिभिः।
ग्रहर्क्षताराधिष्ण्यानि ध्रुवे बद्धान्यशेषतः।
भ्रमन्ति भ्रामयन्त्येनं सर्वाण्यनिलरश्मिभि:॥४६॥

ये सभी महाग्रह वायु की रश्मियों के द्वारा ध्रुव में आबद्ध हैं। सभी ग्रह, नक्षत्र और तारागण भी ध्रुव में पूर्णतः निबद्ध होकर वायु की रश्मियों द्वारा भ्रमण करते हैं और भ्रमण कराते रहते हैं।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे भुवनकोशे
त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥४३॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

(भुवनकोश विन्यास)

सूत उवाच

ध्रुवादूर्ध्वं महर्लोकः कोटियोजनविस्तृतः।
कल्पाधिकारिणस्तत्र संस्थिता द्विजपुङ्गवा:॥१॥

सूतजी बोले— हे द्विजश्रेष्ठो! ध्रुव के ऊपर एक करोड़ योजन विस्तार वाला महर्लोक है। वहाँ कल्प के अधिकारी ही निवास करते हैं।

जनलोको महर्लोकात्तथा कोटिद्वयात्मकः।
सनकाद्यास्तथा तत्र संस्थिता ब्रह्मणः सुता:॥२॥
जनलोकात्तपोलोकः कोटित्रयसमन्वितः।
वैराजास्तत्र वै देवाः स्थिता दाहविवर्जिता:॥३॥

इसी प्रकार महर्लोक से ऊपर दो करोड़ योजन विस्तृत जनलोक है। वहाँ ब्रह्मा के (मानस) पुत्र सनकादि रहते हैं। जनलोक से ऊपर तपोलोक तीन करोड़ योजन वाला है। वहाँ संतापमुक्त वैराज नामक देवता रहते हैं।

प्राजापत्यात्सत्यलोकः कोटिषट्केन संयुतः।
अपुनर्मारको नाम ब्रह्मलोकस्तु स स्मृत:॥४॥
अत्र लोकगुरुर्ब्रह्मा विश्वात्मा विश्वभावनः।
आस्ते स योगिभिर्नित्यं पीत्वा योगामृतं परम्॥५॥

प्राजापत्य लोक के ऊपर छः करोड़ योजन का सत्यलोक है। यह अपुनर्मारक (पुनः मृत्यु न देने वाला) नामक ब्रह्मलोक कहा गया है। यहाँ विश्वात्मा, विश्वभावन, लोकगुरु ब्रह्मा परम योगामृत का पानकर योगियों के साथ नित्य वास करते हैं।

वसन्ति यतयः शान्ता नैष्ठिका ब्रह्मचारिणः।
योगिनस्तापसाः सिद्धा जापकाः परमेष्ठिन:॥६॥
द्वारं तद्योगिनामेकं गच्छतां परमं पदम्।
तत्र गत्वा न शोचन्ति स विष्णुः स च शंकर:॥७॥

शान्त स्वभाव वाले यतिगण, नैष्ठिक ब्रह्मचारी, योगी, तपस्वी, सिद्ध तथा परमेष्ठी का जप करने वाले यहाँ निवास करते हैं। परमपद को प्राप्त करने वाले योगियों का वह एकमात्र द्वार है। वहाँ पहुँचकर जीव शोक नहीं करते हैं। वही विष्णु और वही शंकर है।

सूर्यकोटिप्रतीकाशं पुरं तस्य दुरासदम्।
न मे वर्णयितुं शक्यं ज्वालामालासमाकुलम्॥ ८॥
तत्र नारायणस्यापि भवनं ब्रह्मणः पुरे।
शेते तत्र हरिः श्रीमान्योगी मायामयः परः॥ ९॥

करोड़ो सूर्य के समान उस का पुर अत्यन्त दुर्गम है। अग्निशिखा की मालाओं से व्याप्त उस पुर का वर्णन करना मेरे लिए संभव नहीं है। ब्रह्मा के उस पुर में नारायण का भी भवन है। वहाँ मायामय परम योगी श्रीयुक्त हरि शयन करते हैं।

स विष्णुलोकः कथितः पुनरावृत्तिवर्जितः।
यान्ति तत्र महात्मानो ये प्रपन्ना जनार्दनम्॥ १०॥
ऊर्ध्वं तद्ब्रह्मसदनात्पुरं ज्योतिर्मयं शुभम्।
वह्निना च परिक्षिप्तं तत्रास्ते भगवान् हरः॥ ११॥
देव्या सह महादेवश्चिन्त्यमानो मनीषिभिः।
योगिभिः शतसाहस्रैर्भूतै रुद्रैश्च संवृतः॥ १२॥

पुनर्जन्म से रहित वह विष्णुलोक कहा गया है। जो जनार्दन के शरणागत हैं, वे महात्मा वहाँ जाते हैं। उस ब्रह्म-सदन से ऊपर एक ज्योतिर्मय, अग्नि से परिव्याप्त कल्याणकारी पुर है। वहाँ सैकड़ों, हजारों योगियों, भूतों तथा रुद्रों से परिवृत, मनीषियों के द्वारा ध्यान किये जाते हुए वे भगवान् हर महादेव देवी पार्वती के साथ निवास करते हैं।

तत्र ते यान्ति निरता भक्ता वै ब्रह्मचारिणः।
महादेवपराः शान्तास्तापसाः सत्यवादिनः॥ १३॥
निर्ममा निरहङ्कारा: कामक्रोधविवर्ज्जिताः।
द्रक्ष्यन्ति ब्रह्मणा युक्ता रुद्रलोकः स वै स्मृतः॥ १४॥

वहाँ वे ही उपासक भक्त जाते हैं जो ब्रह्मचारी, महादेवपरायण, शान्त, तपस्वी और सत्यवादी हैं, जो ममत्वरहित, अहंकारशून्य तथा कामक्रोध से वर्जित हैं। ब्रह्मज्ञानसम्पन्न ही इसका दर्शन कर पाते हैं। वही रुद्रलोक कहा गया है।

एते सप्त महाल्लोकाः पृथिव्याः परिकीर्त्तिताः।
महातलादयश्चाधः पाताला: सन्ति वै द्विजाः॥ १५॥
महातलं च पातालं सर्वरत्नोपशोभितम्।
प्रासादैर्विविधैः शुभ्रैर्देवतायतनैर्युतम्॥ १६॥

हे द्विजो! ये सात पृथ्वी के महालोक कहे गये हैं। (पृथ्वी के) अधोभाग में महातल आदि पाताल हैं। महातल नामक पाताल सभी रत्नों से सुशोभित और अनेक प्रकार के महलों और शुभ्र देवालयों से युक्त है।

अनन्तेन च संयुक्तं मुचुकुन्देन धीमता।
नृपेण बलिना चैव पातालं स्वर्गवासिना॥ १७॥
शैलं रसातलं शार्करं हि तलातलम्।
पीतं सुतलमित्युक्तं नितलं विद्रुमप्रभम्॥ १८॥

यह अनन्त (नाग), धीमान् मुचुकुन्द एवं पाताल-स्वर्गवासी राजा बलि से युक्त है। हे विप्रो! रसातल पर्वतमय है, तलातल शर्करामय है। सुतल पीतवर्ण का नितल विद्रुम (मूँगे) के समान चमक वाला कहा गया है।

सितं च वितलं प्रोक्तं तलञ्चैव सितेतरम्।
सुपर्णेन मुनिश्रेष्ठास्तथा वासुकिना शुभम्॥ १९॥
रसातलमिति ख्यातं तथान्यैश्च निषेवितम्।
विरोचनहिरण्याक्षतक्षकाद्यैश्च सेवितम्॥ २०॥
तलातलमिति ख्यातं सर्वशोभासमन्वितम्।

वितल श्वेत वर्ण का और तल अश्वेत वर्ण का कहा गया है। हे मुनिश्रेष्ठो! शुभ रसातल गरुड़, वासुकि तथा अन्य (महात्माओं) से सेवित है। विरोचन, हिरण्याक्ष तथा तक्षक आदि के द्वारा सेवित तलातल सर्वशोभासम्पन्न है।

वैनतेयादिभिश्चैव कालनेमिपुरोगमैः॥ २१॥
पूर्वदेवैः समाकीर्णं सुतलञ्च तथा परैः।
नितलं यवनाद्यैश्च तारकाग्निमुखैस्तथा॥ २२॥

सुतल वैनतेय आदि पक्षियों और कालनेमि आदि अन्य श्रेष्ठ असुरों से समाकीर्ण है। उसी प्रकार तारक, अग्निमुख आदि यवनों से नितल सेवित है।

जम्भकाद्यैस्तथा नागैः प्रह्लादेनासुरेण च।
वितलं चैव विख्यातं कम्बलाहीन्द्रसेवितम्॥ २३॥
महाजम्भेन वीरेण हयग्रीवेण धीमता।
शंकुकर्णेन सम्भिन्नं तथा नमुचिपूर्वकैः॥ २४॥
तथान्यैर्विविधैर्नागैस्तलञ्चैव सुशोभनम्।
तेषामधस्तान्नरकाः कूर्माद्याः परिकीर्त्तिताः॥ २५॥

जम्भक आदि नागों से, असुर प्रह्लाद से और कम्बल नामक नागराज से सेवित वितल प्रसिद्ध है। यह महाजम्भ

और वीर धीमान् हयग्रीव से (भी सेवित) है। तल नामक पाताल शंकुकर्ण से युक्त और प्रधान नमुचि आदि दैत्यों तथा अन्य विविध प्रकार के नागों से शोभित है। उन (पातालों) के नीचे कूर्म आदि नरक बताये गये हैं।

पापिनस्तेषु पच्यन्ते न ते वर्णयितुं क्षमाः।
पातालानामधश्चास्ते शेषाख्या वैष्णवी तनुः॥ २६॥
कालाग्निरुद्रो योगात्मा नारसिंहोऽपि माधवः।
योऽनन्तः पठ्यते देवो नागरूपी जनार्दनः।
तदाधारमिदं सर्वं स कालाग्निं समाश्रितः॥ २७॥

उन नरकों में पापी लोग यातना पाते हैं। उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। पाताल लोक के नीचे शेष नामवाली वैष्णवी मूर्ति स्थित है, जिसे कालाग्निरुद्र, योगात्मा, नारसिंह, माधव, अनन्त, देव और नागरूपी जनार्दन भी कहते हैं। यह सब जगत् उन्हीं के आधार पर है और वे कालाग्नि के आश्रित हैं।

तमाविश्य महायोगी कालस्तद्वदनोषितः।
विषज्वालामयश्चेशो जगत् संहरति स्वयम्॥ २८॥

उस (कालाग्नि) में प्रविष्ट होकर और उसके मुख से उत्पन्न विष की ज्वालारूप होकर महायोगी ईश्वर काल स्वयं जगत् का संहार करते हैं।

सहस्रमारिप्रतिमः संहर्ता शंकरो भवः।
तामसी शाम्भवी मूर्तिः कालो लोकप्रकालनः॥ २९॥

हजारों मारक के समान, संहारकर्ता वह (काल) शंकर भव ही हैं। वह शम्भु की तामसी मूर्ति है। वही काल सब लोकों को ग्रास करने वाला है।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे भुवनविन्यासे
चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४४॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

(भुवनकोश में पर्वतादिसंख्या)

सूत उवाच

एतद्ब्रह्माण्डमाख्यातं चतुर्दशविधं महत्।
अतः परं प्रवक्ष्यामि भूर्लोकस्यास्य निर्णयम्॥ १॥

सूतजी बोले— इस चौदह प्रकार के महान् ब्रह्माण्ड का वर्णन किया गया है। इसके बाद इस भूलोक के निर्णय (वृत्तान्त) को कहूँगा।

जम्बूद्वीपः प्रधानोऽयं प्लक्षः शाल्मलिरेव च।
कुशः क्रौञ्चश्च शाकश्च पुष्करश्चैव सप्तमः॥ २॥
एते सप्त महाद्वीपाः समुद्रैः सप्तभिर्वृताः।
द्वीपाद्द्वीपो महानुक्तः सागराच्चापि सागरः॥ ३॥

(भूलोक में) यह जम्बूद्वीप प्रधान है और प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक तथा सप्तम पुष्कर द्वीप है। ये सातों महाद्वीप सात समुद्रों से घिरे हुए हैं, एक द्वीप से दूसरा द्वीप तथा एक सागर से दूसरा सागर महान् बताया गया है।

क्षारोदेक्षुरसोदश्च सुरोदश्च घृतोदकः।
दध्योदः क्षीरसलिलः स्वादूदश्चेति सागराः॥ ४॥
पञ्चाशत्कोटिविस्तीर्णा ससमुद्रा धरा स्मृता।
द्वीपैश्च सप्तभिर्युक्ता योजनानां समन्ततः॥ ५॥

क्षारोदक, इक्षुरसोदक, सुरोदक, घृतोदक, क्षीरोदक तथा स्वादूदक— ये (सात) समुद्र हैं। समुद्र सहित यह पृथ्वी पचास करोड़ योजन विस्तार वाली है। यह चारों ओर से सात द्वीपों से परिवेष्टित है।

जम्बूद्वीपः समस्तानां मध्ये चैव व्यवस्थितः।
तस्य मध्ये महामेरुर्विश्रुतः कनकप्रभः॥ ६॥
चतुरशीतिसाहस्रो योजनैस्तस्य चोच्छ्रयः।
प्रविष्टः षोडशाधस्ताद्द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तृतः॥ ७॥

समस्त द्वीपों के मध्य में जम्बूद्वीप स्थित है। उसके बीच में स्वर्ण के समान प्रभा युक्त महामेरु प्रसिद्ध है। उसकी ऊँचाई चौरासी हजार योजन की है। नीचे की ओर यह सोलह योजन तक प्रविष्ट है और ऊपर की ओर बत्तीस योजन तक विस्तृत है।

मूले षोडशसाहस्रो विस्तारस्तस्य सर्वतः।
भूपद्मस्यास्य शैलोऽसौ कर्णिकात्वेन संस्थितः॥ ८॥
हिमवान् हेमकूटश्च निषधश्चास्य दक्षिणे।
नीलः श्वेतश्च शृङ्गी च उत्तरे वर्षपर्वताः॥ ९॥

उस मेरु के मूल में चारों ओर सोलह हजार योजन का विस्तार है। यह पर्वत इस पृथ्वी रूप कमल की कर्णिका के रूप में अवस्थित है। इसके दक्षिणभाग में हिमवान्, हेमकूट तथा निषध और उत्तर में नील, श्वेत एवं शृङ्गी नामक वर्ष पर्वत स्थित हैं।

लक्षप्रमाणौ द्वौ मध्ये दशहीनास्तथापरे।
सहस्रद्वितयोच्छ्रायास्तावद्विस्तारिणश्च ते॥ १०॥

इनमें दो (हिमालय एवं हेमकूट वर्षपर्वत) एक लाख योजन परिमाण वाले हैं और अन्य (वर्ष पर्वत) दसगुना कम विस्तार वाले हैं। इनकी ऊँचाई दो हजार योजन की है और उनका विस्तार (चौड़ाई) भी उतना ही है।

भारतं प्रथमं वर्षं ततः किम्पुरुषं स्मृतम्।
हरिवर्षं तथैवान्यन्मेरोर्दक्षिणतो द्विजा:॥ ११॥
रम्यकञ्चोत्तरं वर्षं तस्यैवानु हिरण्मयम्।
उत्तरे कुरवश्चैव यथैते भारतास्तथा॥ १२॥

हे द्विजो! मेरु के दक्षिण की तरफ प्रथम भारतवर्ष, तदनन्तर किंपुरुष वर्ष और फिर हरिवर्ष तथा अन्य स्थित हैं। उसके उत्तर में रम्यक, हिरण्मय एवं उत्तरकुरु वर्ष है। ये सभी भारतवर्ष के समान हैं।

नवसाहस्रमेकैकमेतेषां द्विजसत्तमा:।
इलावृतञ्च तन्मध्ये तन्मध्ये मेरुरुच्छ्रित:॥ १३॥
मेरोश्चतुर्दशं तत्र नवसाहस्रविस्तरम्।
इलावृतं महाभागाश्चत्वारस्तत्र पर्वता:॥ १४॥

हे द्विजश्रेष्ठो! इनमें से प्रत्येक नौ हजार योजन विस्तृत है। इनके मध्य में इलावृत वर्ष है और उसके भी बीच में उन्नत मेरु पर्वत है। हे महाभागो! वहाँ मेरु का विस्तार चौदह हजार है ओर नौ हजार योजन वाला इलावृत है। उसमें चार पर्वत हैं।

विष्कम्भा रचिता मेरोर्योजनायुतमुच्छ्रिता:।
पूर्वेण मन्दरो नाम दक्षिणे गन्धमादन:॥ १५॥
विपुल: पश्चिमे पार्श्वे सुपार्श्वश्चोत्तर: स्मृत:।
कदम्बस्तेषु जम्बूश्च पिप्पलो वट एव च॥ १६॥

मेरु के व्यास के रूप में रचित इनकी ऊँचाई दस हजार योजन की है। इसके पूर्व में मन्दर, दक्षिण में गन्धमादन, पश्चिम भाग में विपुल और उत्तर में सुपार्श्व नामक पर्वत कहा गया है। उसमें कदम्ब, जम्बू, पीपल और वट वृक्ष हैं।

जम्बूद्वीपस्य सा जम्बूर्नामहेतुर्महर्षय:।
महागजप्रमाणानि जंब्वास्तस्या फलानि च॥ १७॥
पतन्ति भूभृत: पृष्ठे शीर्यमाणानि सर्वत:।
रसेन तस्या: प्रख्याता तत्र जम्बूनदी गिरौ॥ १८॥

हे महर्षियो! यह जम्बू वृक्ष ही जम्बूद्वीप नाम पड़ने का कारण है। उस जम्बूवृक्ष के फल महान् हाथी के प्रमाण वाले होते हैं। पर्वत के पृष्ठ भाग पर गिरने से वे फल फट जाते हैं। वहाँ उनके रस से प्रवाहित हुई नदी जम्बूनदी के नाम से विख्यात है।

सरित्प्रवर्तते चापि पीयते तत्र वासिभि:।
न स्वेदो न च दौर्गन्ध्यं न जरा नेन्द्रियक्षय:॥ १९॥
न ताप: स्वच्छमनसां नासौख्यं तत्र जायते।
तत्तीरमृद्रसं प्राप्य वायुना सुविशोषितम्॥ २०॥
जाम्बूनदाख्यं भवति सुवर्णं सिद्धभूषणम्।

वहाँ के निवासी उस नदी के रस का पान करते हैं। वहाँ (उस रस का पान करने से) स्वच्छ मन वाले मनुष्यों को न पसीना आता है, न उनमें दुर्गन्ध होती है, न वृद्धावस्था आती है और न ही उनकी इन्द्रियाँ क्षीण होती हैं। उसके तट पर स्थित मिट्टी के रस का वायु द्वारा शोषण कर लेने पर जाम्बूनद नामक सुवर्ण होता है, जो सिद्धगण का आभूषण है।

भद्राश्व: पूर्वतो मेरो: केतुमालश्च पश्चिमे॥ २१॥
वर्षे द्वे तु मुनिश्रेष्ठास्तयोर्मध्ये इलावृतम्।
वनं चैत्ररथं पूर्वे दक्षिणं गन्धमादनम्॥ २२॥
वैभ्राजं पश्चिमं विद्यादुत्तरं सवितुर्वनम्।

मेरु के पूर्व में भद्राश्व, पश्चिम में केतुमाल नामक दो वर्ष हैं। मुनिश्रेष्ठो! उन दोनों के मध्य इलावृत वर्ष है। पूर्व में चैत्ररथ वन, दक्षिण में गन्धमादन, पश्चिम में वैभ्राज और उत्तर में सवितृवन जानना चाहिए।

अरुणोदं महाभद्रमसितोदञ्च मानसम्॥ २३॥
सरांस्येतानि चत्वारि देवभोग्यानि सर्वदा।
सितान्तश्च कुमुद्वांश्च कुररी माल्यवांस्तथा॥ २४॥
वैकङ्को मणिशैलश्च वृक्षवांश्चचलोत्तम:।
महानीलोऽथ रुचक: सबिन्दुर्मन्दरस्तथा॥ २५॥
वेणुमांश्चैव मेघश्च निषधो देवपर्वत:।
इत्येते देवरचिता: सिद्धावासा: प्रकीर्त्तिता:॥ २६॥

उन (वनों) में अरुणोद, महाभद्र, असितोद और मानस नामक चार सरोवर हैं। ये सदा देवताओं द्वारा उपभोग किये जाते हैं। सितान्त, कुमुद्वान्, कुररी, माल्यवान्, वैकङ्क, मणिशैल, उत्तम पर्वत वृक्षवान्, महानील, रुचक, सबिन्दु, मन्दर, वेणुमान्, मेघ, निषध एवं देवपर्वत— ये सभी देवताओं द्वारा निर्मित हैं और इन्हें सिद्धों का वासस्थान कहा गया है।

अरुणोदस्य सरस: पूर्वत: केसराचल:।
त्रिकूट: सशिखश्चैव पतङ्गो रुचकस्तथा॥ २७॥
निषधो वसुधारश्च कलिङ्गस्त्रिशिख: स्मृत:।
समूलो वसुवेदिश्च कुररश्चैव सानुमान्॥ २८॥

ताम्रातश्च विशालश्च कुमुदो वेणुपर्वतः।
एकशृङ्गो महाशैलो गजशैलश्च पिञ्जकः॥ २९॥
पञ्चशैलोऽथ कैलासो हिमवांश्चाचलोत्तमः।
इत्येते देवचरिता उत्कटाः पर्वतोत्तमाः॥ ३०॥

अरुणोद सरोवर के पूर्व में केसराचल, त्रिकूट, सशिर,पतङ्ग, रुचक, निषध, वसुधार, कलिङ्ग, त्रिशिख, समूल, वसुवेदि, कुररु, सानुमान्, ताम्रात, विशाल, कुमुद, वेणुपर्वत, एकशृङ्ग, महाशैल, गजशैल, पिञ्जक, पञ्चशैल, कैलास और पर्वतों में उत्तम हिमवान्— ये सभी देवताओं द्वारा सेवित अति उत्तम पर्वत हैं।

महाभद्रस्य सरसो दक्षिणे केसराचलः।
शिखिवासश्च वैदूर्यः कपिलो गन्धमादनः॥ ३१॥
जारुधिश्च सुराम्बुश्च सर्वगन्धाचलोत्तमः।
सुपार्श्वश्च सुपक्षश्च कंकः कपिल एव च॥ ३२॥
विरजो भद्रजालश्च सुसकश्च महाबलः।
अञ्जनो मधुमांश्चाद्रिश्चित्रशृङ्गो महालयः॥ ३३॥
कुमुदो मुकुटश्चैव पाण्डुरः कृष्ण एव च।
पारिजातो महाशैलस्तथैव कपिलाचलः॥ ३४॥
सुषेणः पुण्डरीकश्च महामेघस्तथैव च।
एते पर्वतराजाश्च सिद्धगन्धर्वसेविताः॥ ३५॥

महाभद्र सरोवर के दक्षिण में— केसराचल, शिखिवास, वैदूर्य, कपिल, गन्धमादन, जारुधि, सुराम्बु, उत्तम पर्वत सर्वगन्ध, सुपार्श्व, सुपक्ष, कङ्क, कपिल, पिञ्जर, भद्रजाल, सुसक, महाबल, अञ्जन, मधुमान्, चित्रशृङ्ग, महालय, कुमुद, मुकुट, पाण्डुर, कृष्ण, पारिजात, महाशैल, कपिलाचल, सुषेण, पुण्डरीक और महामेघ— ये सभी पर्वतराज सिद्धों और गन्धर्वों सेवित हैं।

असितोदस्य सरसः पश्चिमे केसराचलः।
शङ्खकूटोऽथ वृषभो हंसो नागस्तथैव च॥ ३६॥
कालाञ्जनः शुक्रशैलो नीलः कमल एव च।
पारिजातो महाशैलः शैलः कनक एव च॥ ३७॥
पुष्पकश्च सुमेघश्च वाराहो विरजास्तथा।
मयूरः कपिलश्चैव महाकपिल एव च॥ ३८॥
इत्येते देवगन्धर्वसिद्धसङ्घैश्च सेविताः।
सरसो मानसस्येह उत्तरे केसराचलः॥ ३९॥

असितोद सरोवर के पश्चिम में केसराचल, शंखकूट, वृषभ, हंस, नाग, कालाञ्जन, शुक्रशैल, नील, कमल, पारिजात, महाशैल, शैल, कनक, वाराह, विरजा, मयूर, कपिल तथा महाकपिल— ये सभी (पर्वत) देव, गन्धर्व और सिद्धों के समूहों द्वारा सेवित हैं। मानसरोवर के उत्तर में केसराचल नामक पर्वत है।

एतेषां शैलमुख्यानामन्तरेषु यथाक्रमम्।
सन्ति चैवान्तरद्रोण्यः सरांसि च वनानि च॥ ४०॥
वसन्ति तत्र मुनयः सिद्धा च ब्रह्मभाविताः।
प्रसन्नः शान्तरजसः सर्वदुःखविवर्जिताः॥ ४१॥

इन प्रमुख पर्वतों के मध्य यथाक्रम से 'अन्तरद्रोणी' नामक जलाशय, सरोवर और अनेक वन हैं। वहाँ मुनिगण और सिद्ध निवास करते हैं, जो ब्रह्मभावयुक्त होने के कारण शान्त हुए रजोगुण वाले, प्रसन्नचित्त और सभी दुःखों से रहित हैं।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे भुवनकोशे पर्वतसंस्थाने
पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४५॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः
(भुवनकोश विन्यास)

सूत उवाच

चतुर्दशसहस्राणि योजनानां महापुरी।
मेरोरुपरि विख्याता देवदेवस्य वेधसः॥ १॥
तत्रास्ते भगवान् ब्रह्मा विश्वात्मा विश्वभावनः।
उपास्यमानो योगीन्द्रैर्मुनीन्द्रोपेन्द्रशंकरैः॥ २॥

सूतजी बोले— देवाधिदेव ब्रह्मा की मेरु के ऊपरी भाग में चौदह हजार योजन विस्तृत नगरी विख्यात है। वहाँ विश्वभावन विश्वात्मा भगवान् ब्रह्मा निवास करते हैं। योगीन्द्र, मुनीन्द्र, उपेन्द्र (विष्णु) और शंकर द्वारा उनकी उपासना की जाती है।

तत्र देवेश्वरेशानं विश्वात्मानं प्रजापतिम्।
सनत्कुमारो भगवानुपास्ते नित्यमेव हि॥ ३॥
स सिद्धऋषिगंधर्वैः पूज्यमानः सुरैरपि।
समास्ते योगयुक्तात्मा पीत्वा तत्परमामृतम्॥ ४॥

वहाँ ईशान देवेश्वर विश्वात्मा प्रजापति की भगवान् सनत्कुमार नित्य ही उपासना करते हैं। वे योगात्मा सिद्ध, ऋषि, गन्धर्व तथा देवताओं से पूजित होते हुए परम अमृत का पान करते हुए वहाँ निवास करते हैं।

तत्र देवाधिदेवस्य शम्भोरमिततेजसः।
दीप्तमायतनं शुभ्रं पुरस्ताद्ब्रह्मणः स्थितम्॥५॥
दिव्यकान्तिसमायुक्तं चतुर्द्वारं सुशोभनम्।
महर्षिगणसंकीर्णं ब्रह्मविद्भिर्निषेवितम्॥६॥

जहाँ देवों के आदिदेव, अमित तेजस्वी शंभु का शुभ्र एवं प्रदीप्त मन्दिर है, जो ब्रह्मा के निवास के सामने ही स्थित है। यह दिव्य कान्ति से युक्त, चार द्वारों वाला, अत्यन्त सुन्दर, महर्षियों से परिव्याप्त और ब्रह्मवेत्ताओं द्वारा सेवित है।

देव्या सह महादेवः शशाङ्कार्काग्निलोचनः।
रमते तत्र विश्वेशः प्रमथैः प्रमथेश्वरः॥७॥

चन्द्रमा, सूर्य और अग्निरूप (तीन) नेत्रों वाले विश्वेश्वर महादेव प्रमथेश्वर देवी (पार्वती) तथा प्रमथगणों के साथ वहाँ रमण करते हैं।

तत्र वेदविदः शान्ता मुनयो ब्रह्मचारिणः।
पूजयन्ति महादेवं तपसा सत्यवादिनः॥८॥
तेषां साक्षान्महादेवो मुनीनां भावितात्मनाम्।
गृह्णाति पूजां शिरसा पार्वत्या परमेश्वरः॥९॥

वहाँ वेदज्ञ शान्तचित्त मुनि, ब्रह्मचारी और सत्यवादी अपनी तपस्या द्वारा महादेव की पूजा करते हैं। उन ब्रह्मभाव वाले मुनियों की पूजा को साक्षात् परमेश्वर महादेव पार्वती के साथ सिर से (आदरपूर्वक) ग्रहण करते हैं।

तत्रैव पर्वतवरे शक्रस्य परमा पुरी।
नाम्नामरावती पूर्वे सर्वशोभासमन्विता॥१०॥
तत्र चाप्सरसः सर्वा गन्धर्वाः सिद्धचारणाः।
उपासते सहस्राक्षं देवास्तत्र सहस्रशः॥११॥

वहीं श्रेष्ठ पर्वत (मेरु) पर पूर्व दिशा में इन्द्र की अमरावती नाम की श्रेष्ठ नगरी है, जो समस्त शोभाओं से सम्पन्न है। वहाँ अप्सराओं का समूह, गन्धर्व, सिद्ध, चारण तथा हजारों संख्या में देवगण सहस्राक्ष इन्द्र की उपासना करते हैं।

ये धार्मिका वेदविदो यागहोमपरायणाः।
तेषां तत्परमं स्थानं देवानामपि दुर्लभम्॥१२॥
तस्माद्दक्षिणदिग्भागे वह्नेरमिततेजसः।
तेजोवती नाम पुरी दिव्याश्चर्यसमन्विता॥१३॥

जो धार्मिक हैं, वेदज्ञ हैं, यज्ञ एवं होमपरायण हैं, उनका वह परम स्थान है, जो देवताओं के लिये भी दुर्लभ है। उसके दक्षिण भाग में अमिततेजस्वी अग्नि की दिव्य आश्चर्यों से युक्त तेजोवती नामक नगरी स्थित है।

तत्रास्ते भगवान्वह्निर्भ्राजमानः स्वतेजसा।
जपिनां होमिनां स्थानं दानवानां दुरासदम्॥१४॥

भगवान् वह्नि अपने तेज से प्रकाशित होते हुए वहाँ निवास करते हैं। जप करने वालों तथा होम करने वालों का वह स्थान दानवों के लिये भी दुष्प्राप्य है।

दक्षिणे पर्वतवरे यमस्यापि महापुरी।
नाम्ना संयमनी दिव्या सर्वशोभासमन्विता॥१५॥
तत्र वैवस्वतं देवं देवाद्याः पर्युपासते।
स्थानं तत्सत्यसन्धानां लोके पुण्यकृतां नृणाम्॥१६॥

उस श्रेष्ठ पर्वत के दक्षिण भाग में यमराज की भी संयमनी नामक दिव्य महापुरी है जो सिद्धों तथा गन्धर्वों सेवित है। वहाँ देवतागण विवस्वान् (सूर्य) देव की उपासना करते रहते हैं। वह स्थान संसार में पुण्यात्मा तथा सत्य का आचरण करने वाले मनुष्यों का है।

तस्यास्तु पश्चिमे भागे निर्ऋतिस्तु महात्मनः।
रक्षोवती नामपुरी राक्षसैः संवृता तु या॥१७॥
तत्र ते नैर्ऋतं देवं राक्षसाः पर्युपासते।
गच्छन्ति तां धर्मरता ये तु तापसवृत्तयः॥१८॥

उसके पश्चिम भाग में महात्मा निर्ऋति की रक्षोवती नामक पुरी है, जो चारों ओर से राक्षसों से संवृत है। वे राक्षस वहां निर्ऋति देव की उपासना करते हैं। जो तापसवृत्ति युक्त धार्मिक होते हैं, वे उस पुरी को जाते हैं।

पश्चिमे पर्वतवरे वरुणस्य महापुरी।
नाम्ना शुद्धवती पुण्या सर्वकामर्द्धिसंयुता॥१९॥

पश्चिम में इस श्रेष्ठ पर्वत पर वरुण की शुद्धवती नाम की महा नगरी है। यह पुण्यमयी और समस्त कामनाओं की समृद्धि से युक्त है।

तत्राप्सरो गणैः सिद्धैः सेव्यमानोऽमराधिपैः।
आस्ते स वरुणो राजा तत्र गच्छन्ति येऽम्बुदाः॥२०॥

यहाँ अप्सरागण, सिद्ध, और अमराधिपों से उपासित राजा वरुण रहते हैं। जो संसार में नित्य जलदान करते हैं, वहाँ वे ही जाते हैं।

तस्या उत्तरदिग्भागे वायोरपि महापुरी।
नाम्ना गन्धवती पुण्या तत्रास्तेऽसौ प्रभञ्जनः॥२१॥
अप्सरोगणगन्धर्वैः सेव्यमानो महान् प्रभुः।

प्राणायामपरा विप्राः स्थानं तद्यान्ति शाश्वतम्॥ २२॥

उस (वरुणपुरी) के उत्तर भाग में वायु देवता की भी गन्धवती नामक पवित्र महापुरी है। वहाँ प्रभञ्जन (वायु देवता) निवास करते हैं। वे महान् प्रभु वायुदेव अप्सराओं तथा गन्धर्वसमूह से सेवित हैं। प्राणायाम-परायण विप्र ही इस शाश्वत स्थान को प्राप्त करते हैं।

तस्याः पूर्वे तु दिग्भागे सोमस्य परमा पुरी।
नाम्ना कान्तिमती शुभ्रा तस्यां सोमो विराजते॥ २३॥
तत्र ये धर्मनिरताः स्वधर्मं पर्युपासते।
तेषां तदुचितं स्थानं नानाभोगसमन्वितम्॥ २४॥

उस नगरी से पूर्व दिशा में सोम (चन्द्रमा) की कान्तिमती नामक शुभ्र श्रेष्ठ पुरी है, वहाँ चन्द्रमा विराजमान रहते हैं। जो धर्मपरायण रहते हुए अपने धर्म का पालन करते हैं उन्हीं के लिये नाना प्रकार के भोगों से संपन्न यह स्थान है।

तस्यास्तु पूर्वदिग्भागे शंकरस्य महापुरी।
नाम्ना यशोवती पुण्या सर्वेषां सा दुरासदा॥ २५॥
तत्रेशानस्य भवनं रुद्रेणाधिष्ठितं शुभम्।
गणेश्वरस्य विपुलं तत्रास्ते स गणावृतम्॥ २६॥

उसके पूर्व की ओर भगवान् शंकर की यशोवती नाम की पवित्र महापुरी है, जो सब के लिये दुर्लभ है। वहाँ ईशान (शंकर) का सुन्दर भवन है, जहां रुद्र रहते हैं। वहां गणेश्वर का विशाल भवन है, जहां गणों से आवृत वे उसमें रहते हैं।

तत्र भोगादिलिप्सूनां भक्तानां परमेष्ठिनः।
निवासः कल्पितः पूर्वं देवदेवेन शूलिना॥ २७॥
विष्णुपादाद्विनिष्क्रान्ता प्लावयित्वेन्दुमण्डलम्।
समन्ताद्ब्रह्मणः पुर्यां गंगा पतति वै ततः॥ २८॥

वहाँ पर पूर्वकाल में देवदेव शूली शंकर ने परमेष्ठी के भोगाभिलाषी भक्तों का निवास-स्थान कल्पित किया था। विष्णु के चरण से निकली हुई गङ्गा चन्द्रमण्डल को आप्लावित कर वहाँ से ब्रह्मपुरी के चारों ओर गिरती है।

सा तत्र पतिता दिक्षु चतुर्द्धा ह्यभवद्द्विजाः।
सीता चालकनन्दा च सुचक्षुर्भद्रनामिका॥ २९॥
पूर्वेण शैलाच्छैलं तु सीता यात्यन्तरिक्षगा।
ततश्च पूर्ववर्षेण भद्राश्वाद्याति चार्णवम्॥ ३०॥

द्विजो! वहाँ गिरकर वह सीता, अलकनन्दा, सुचक्षु एवं भद्रा नाम से चार दिशाओं में चार प्रकार से विभक्त हो गयी। अन्तरिक्ष में गमन करने वाली सीता (गङ्गा) एक पर्वत से दूसरे पर्वत पर जाती हुई पूर्व दिशा में भद्राश्व वर्ष में प्रवाहित होती हुई समुद्र में जाती है।

तथैवालकनन्दा च दक्षिणादेत्य भारतम्।
प्रयाति सागरं भित्त्वा सप्तभेदा द्विजोत्तमाः॥ ३१॥
सुचक्षुः पश्चिमगिरीनतीत्य सकलांस्तथा।
पश्चिमं केतुमालाख्यं वर्षं गत्वेति चार्णवम्॥ ३२॥

हे द्विजोत्तमो! इसी प्रकार अलकनन्दा दक्षिण दिशा से भारत वर्ष में प्रवेश कर सात भागों में विभक्त होकर सागर की ओर जाती है। उसी प्रकार सुचक्षु भी पश्चिम दिशा के सभी पर्वतों को पार करके पश्चिम दिशा के केतुमाल नामक वर्ष में प्रवाहित होकर समुद्र में जाती है।

भद्रा तथोत्तरगिरीनुत्तरांश्च तथा कुरून्।
अतीत्य चोत्तराम्भोधिं समभ्येति महर्षयः॥ ३३॥
आनीलनिषधायामौ माल्यवद्गन्धमादनौ।
तयोर्मध्यं गतो मेरुः कर्णिकाकारसंस्थितः॥ ३४॥

हे महर्षिगण! और भद्रा उत्तर दिशा के पर्वतों तथा उत्तर कुरुवर्ष का अतिक्रमण कर उत्तरसमुद्र में मिल जाती है। नील तथा निषध पर्वतों तक विस्तृत माल्यवान् तथा गन्धमादन पर्वत हैं। उन दोनों के मध्य में कर्णिकाकार के रूप में स्थित मेरु है।

भारताः केतुमालाश्च भद्राश्वाः कुरवस्तथा।
पत्राणि लोकपद्मस्य मर्यादाशैलबाह्यतः॥ ३५॥

इन मर्यादा पर्वतों के बाहर की तरफ संसाररूपी पद्म के पत्रों के रूप में भारतवर्ष, केतुमाल, भद्राश्व और कुरुवर्ष स्थित हैं।

जठरो देवकूटश्च मर्यादापर्वतावुभौ।
दक्षिणोत्तरमायातावानीलनिषधायतौ॥ ३६॥
गन्धमादनकैलाशौ पूर्वपश्चायतावुभौ।
अशीतियोजनायामावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ॥ ३७॥

जठर एवं देवकूट— ये दो मर्यादा पर्वत दक्षिणोत्तर दिशा में नील और निषध पर्वतों तक फैले हुए हैं। गन्धमादन और कैलास— ये दोनों पर्वत पूर्व तथा पश्चिम में फैले हुए हैं। ये दोनों अस्सी योजन तक विस्तृत और समुद्रपर्यन्त अवस्थित हैं।

निषधः पारियात्रश्च मर्यादापर्वताविमौ।
मेरोः पश्चिमदिग्भागे यथापूर्वं व्यवस्थितौ॥ ३८॥

त्रिशृङ्गो जारुधिश्चैवमुत्तरे वर्षपर्वतौ।
तावदायामविस्तारावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ॥ ३९॥

निषध और पारियात्र नामक दो मर्यादा पर्वत मेरु की पश्चिम दिशा में पूर्व पर्वतभागों के समान स्थित हैं। इसी प्रकार त्रिशृङ्ग और जारुधि नामक दो वर्षपर्वत उत्तर में स्थित हैं। ये पूर्व-पश्चिम तक विस्तृत तथा समुद्रपर्यन्त अवस्थित हैं।

मर्यादापर्वता: प्रोक्ता अष्टाविह मया द्विजा:।
जठराद्या: स्थिता मेरोश्चतुर्दिक्षु महर्षय:॥ ४०॥

हे द्विजो! मैंने यहाँ इन आठ मर्यादा पर्वतों का वर्णन कर दिया। हे महर्षियो! मेरु की चारों दिशाओं में ये जठर आदि अवस्थित हैं।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे भुवनविन्यासे
षट्चत्वारिंशोऽध्याय:॥ ४६॥

सप्तचत्वारिंशोऽध्याय:
(भुवनकोश विन्यास)

सूत उवाच

केतुमाले नरा: काका: सर्वे पनसभोजना:।
स्त्रियश्चोत्पलपत्राभास्ते जीवन्ति वर्षायुतम्॥ १॥

सूतजी ने कहा— केतुमाल वर्ष के सभी मनुष्य (काकसमान) कृष्ण वर्ण के और पनस नामक फल का आहार लेने वाले होते हैं। वहाँ की स्त्रियाँ कमलपत्र के समान वर्ण वाली (सुन्दर) होती हैं। ये सभी दस हजार वर्ष तक जीवित रहते हैं।

भद्राश्वे पुरुषा: शुक्ला: स्त्रियश्चन्द्रांशुसन्निभा:।
दशवर्षसहस्राणि जीवन्ते चान्नभोजना:॥ २॥

भद्राश्व नामक खंड के निवासी पुरुष शुक्ल वर्ण के और स्त्रियाँ चन्द्रमा की किरणों जैसी श्वेत होती हैं। ये सब अन्नभोजी दस हजार वर्ष तक जीवित रहते हैं।

रम्यके पुरुषा नार्यो रमन्ति रजतप्रभा:।
दशवर्षसहस्राणि शतानि दश पञ्च च॥ ३॥
जीवन्ति चैव सत्त्वस्था न्यग्रोधफलभोजना:।

रम्यक वर्ष में चाँदी की प्रभा वाले पुरुष और स्त्रियाँ रमण करते हैं और दस हजार पन्द्रह सौ ( ) वर्ष तक जीवित रहते हैं। ये सत्त्वभाव में स्थित रहते हुए तथा वटवृक्ष के फलों का भोजन करते हैं।

हिरण्मये हिरण्याभा: सर्वे श्रीफलभोजना:॥ ४॥
एकादशसहस्राणि शतानि दश पञ्च च।
जीवन्ति पुरुषा नार्यो देवलोकस्थिता इव॥ ५॥

हिरण्मयवर्ष में सुवर्ण की आभा वाले सभी मनुष्य श्रीफल का भोजन करने वाले हैं और ग्यारह हजार और पन्द्रह सौ वर्ष तक सभी स्त्री-पुरुष जीवित रहते हैं, जैसे वे देवलोक में स्थित हों।

त्रयोदशसहस्राणि शतानि दश पञ्च च।
जीवन्ति कुरुवर्षे तु श्यामांगा: क्षीरभोजना:॥ ६॥
सर्वे मिथुनजाताश्च नित्यं सुखनिषेविता:।
चन्द्रद्वीपे महादेवं यजन्ति सततं शिवम्॥ ७॥

कुरुवर्ष में दुग्ध का ही भोजन करने वाले श्याम अंग वाले मानव तेरह हजार पाँच सौ वर्ष तक जीवित रहते हैं। वे सभी मैथुन से उत्पन्न होने वाले और नित्य सुख का उपभोग करने वाले चन्द्रद्वीप में महादेव शिव की सतत उपासना करते हैं।

तथा किंपुरुषे विप्रा मानवा हेमसन्निभा:।
दशवर्षसहस्राणि जीवन्ति प्लक्षभोजना:॥ ८॥
यजन्ति सततं देवं चतु:शीर्षं चतुर्भुजम्।
ध्याने मन: समाधाय सादरं भक्तिसंयुता:॥ ९॥

इसी प्रकार किंपुरुषवर्ष में ब्राह्मण जाति के मनुष्य रहते हैं जो स्वर्ण-वर्ण की कान्ति वाले होते हैं। वे प्लक्षवृक्ष[1] के फलों का भोजन करने वाले दस हजार वर्ष तक जीवित रहते हैं। ये भक्तियुक्त होकर आदरसहित चित्त को ध्यान में समाहित करके चतुर्भुज एवं चतुर्मुख ब्रह्मदेव का निरन्तर यजन करते रहते हैं।

तथा च हरिवर्षे तु महारजतसन्निभा:।
दशवर्षसहस्राणि जीवन्तीक्षुरसाशिन:॥ १०॥
तत्र नारायणं देवं विश्वयोनिं सनातनम्।
उपासते सदा विष्णुं मानवा विष्णुभाविता:॥ ११॥

इसी प्रकार हरिवर्ष में रहने वाले महारजत के सदृश कान्ति वाले, इक्षुरस (गन्ना)[2] का भोजन करने वाले मनुष्य दस हजार वर्ष तक जीवित रहते हैं। वहाँ ये मानव विष्णु

1. The holy fig tree (Ficus religiosa).
2. Sugar cane.

की भक्ति में भावित होकर विश्वयोनि सनातन नारायण देव की सदा उपासना करते रहते हैं।

तत्र चन्द्रप्रभं शुभ्रं शुद्धस्फटिकसन्निभम्।
विमानं वासुदेवस्य पारिजातवनाश्रितम्॥ १२॥
चतुर्द्वारमनौपम्यं चतुस्तोरणसंयुतम्।
प्राकारैर्दशभिर्युक्तं दुराधर्षं सुदुर्गमम्॥ १३॥

वहाँ पारिजात के वन में शुद्ध स्फटिक के समान उज्ज्वल तथा चन्द्रमा की कान्ति जैसा वासुदेव का एक विमान है। चार द्वारों, चार तोरणों से संयुक्त तथा दस प्राकारों से युक्त यह अनुपम, दुराधर्ष और अत्यन्त दुर्गम है।

स्फटिकैर्मण्डपैर्युक्तं देवराजगृहोपमम्।
सुवर्णस्तम्भसाहस्रैः सर्वतः समलंकृतम्॥ १४॥
हेमसोपानसंयुक्तं नानारत्नोपशोभितम्।
दिव्यसिंहासनोपेतं सर्वशोभासमन्वितम्॥ १५॥

यह स्फटिकजडित मण्डपों से युक्त इन्द्र के भवन के सदृश है तथा सभी ओर से हजारों स्वर्ण-स्तम्भों से अलंकृत है। यह सोने की सीढ़ियों से युक्त, अनेक प्रकार के रत्नों से उपशोभित, दिव्य सिंहासनों से समन्वित और सब प्रकार की शोभाओं से सम्पन्न है।

सरोभिः स्वादुपानीयैर्नदीभिश्चोपशोभितम्।
नारायणपरैः शुद्धैर्वेदाध्ययनतत्परैः॥ १६॥
योगिभिश्च समाकीर्णं ध्यायद्भिः पुरुषं हरिम्।
स्तुवद्भिः सततं मन्त्रैर्नमस्यद्भिश्च माधवम्॥ १७॥

यह स्वादिष्ट जलयुक्त सरोवरों और नदियों से सुशोभित है। यह स्थान नारायणपरायण, पवित्र, वेदाध्ययन में तत्पर, पुरुष हरि का ध्यान करने वाले तथा निरन्तर मन्त्रों द्वारा माधव की स्तुति करने वाले और नमस्कार करने वाले योगियों से व्याप्त रहता है।

तत्र देवाधिदेवस्य विष्णोरमिततेजसः।
राजानः सर्वकालं तु महिमानं प्रकुर्वते॥ १८॥
गायन्ति चैव नृत्यन्ति विलासिन्यो मनोहराः।
स्त्रियो यौवनशालिन्यः सदा मण्डनतत्पराः॥ १९॥

वहाँ राजा लोग देवाधिदेव अमित तेजस्वी विष्णु की महिमा का निरन्तर कीर्तन करते रहते हैं। शृङ्गार करने में तत्पर विलासिनी सुन्दर युवा स्त्रियाँ सदा नाचती और गाती रहती हैं।

इलावृते पद्मवर्णा जम्बूरसफलाशिनः।
त्रयोदशसहस्राणि वर्षाणां च स्थिरायुषः॥ २०॥
भारतेषु स्त्रियः पुंसो नानावर्णाः प्रकीर्तिताः।
नानादेवार्चने युक्ता नानाकर्माणि कुर्वते॥ २१॥

इलावृतवर्ष में कमल के समान वर्ण वाले, जामुन के फलों का भक्षण करने वाले तेरह हजार वर्ष की आयु तक स्थिर रहते हैं। भारतवर्ष के स्त्री और पुरुष अनेक वर्ण के बताये गये हैं। ये विविध प्रकार के देवताओं की आराधना में लगे रहते हैं और अनेक प्रकार के कर्मों को करते हैं।

परमायुः स्मृतं तेषां शतं वर्षाणि सुव्रताः।
नव योजनसाहस्रं वर्षमेतत्प्रकीर्तितम्॥ २२॥
कर्मभूमिरियं विप्रा नराणामधिकारिणाम्।

हे सुव्रतो! इनकी परम आयु सौ वर्ष की कही गयी है। यह वर्ष नौ हजार योजन विस्तृत कहा गया है। हे विप्रो! यह अधिकारी पुरुषों की कर्मभूमि है।

महेन्द्रो मलयः सह्यः शक्तिमानृक्षपर्वतः॥ २३॥
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तात्र कुलपर्वताः।
इन्द्रद्वीपः कसेरुश्मान् ताम्रपर्णो गभस्तिमान्॥ २४॥
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्त्वथ वारुणः।
अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंस्थितः॥ २५॥

यहां महेन्द्र, मलय, सह्य, शक्तिमान्, ऋक्ष, विन्ध्य तथा पारियात्र— ये सात कुलपर्वत हैं। इन्द्रद्वीप, कशेरुश्मान्, ताम्रपर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व तथा वारुण और यह नवम द्वीप (भारतवर्ष) सागर के किनारे संस्थित है।

योजनानां सहस्रं तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरः।
पूर्वे किरातास्तस्यान्ते पश्चिमे यवनास्तथा॥ २६॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्रास्तथैव च।
इज्यायुद्धवणिज्याभिर्वर्तयन्त्यत्र मानवाः॥ २७॥

यह द्वीप दक्षिण और उत्तर में एक हजार योजन में फैला हुआ है। इसके पूर्व में किरात, पश्चिम में यवन और मध्य में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों का निवास है। यहाँ के मानव यज्ञ, युद्ध और वाणिज्य द्वारा जीविका चलाते हैं।

स्रवन्ते पावना नद्यः पर्वतेभ्यो विनिःसृताः।
शतद्रुश्चन्द्रभागा च सरयूर्यमुना तथा॥ २८॥
इरावती वितस्ता च विपाशा देविका कुहूः।
गोमती धूतपापा च बाहुदा च दृषद्वती॥ २९॥
कौशिकी लोहिनी चेति हिमवत्पादनिःसृताः।

पर्वतों से निकली हुई पवित्र नदियाँ बहती हैं। शतद्रु, चन्द्रभागा, सरयू, यमुना, इरावती, वितस्ता, विपाशा, देविका, कुहू, गोमती, धूतपापा, बाहुदा, दृषद्वती, कौशिकी तथा लोहिनी— ये सभी नदियाँ हिमवान् पर्वत से निकलती हैं।

वेदस्मृतिर्वेदवती व्रतघ्नी त्रिदिवा तथा॥ ३०॥
वर्णाशा चन्दना चैव सचर्मण्वती सुरा।
विदिशा वेत्रवत्यापि पारियात्राश्रयाः स्मृता॥ ३१॥

वेदस्मृति, वेदवती, व्रतघ्नी, त्रिदिवा, वर्णाशा, चन्दना, चर्मण्यवती, सुरा, विदिशा और वेत्रवती— ये नदियाँ पारियात्र पर्वत के आश्रय से बहने वाली कही गयी हैं।

नर्मदा सुरसा शोणो दशार्णा च महानदी।
मन्दाकिनी चित्रकूटा तामसी च पिशाचिका॥ ३२॥
चित्रोत्पला विशाला च मंजुला वालुवाहिनी।
ऋक्षवत्पादजा नद्यः सर्वपापहरा नृणाम्॥ ३३॥

नर्मदा, सुरसा, शोण, दशार्णा, महानदी, मन्दाकिनी, चित्रकूटा, तामसी, पिशाचिका, चित्रोत्पला, विशाला, मञ्जुला तथा वालुवाहिनी— ये ऋक्षवान् पर्वत के पादभाग से निकलने वाली नदियाँ मनुष्यों के सभी पापों को सद्यः हरण करती हैं।

तापी पयोष्णी निर्विन्ध्या शीघ्रोदा च महानदी।
विप्रा वैतरणी चैव बलाका च कुमुद्वती॥ ३४॥
तथा चैव महागौरी दुर्गा चान्तःशिला तथा।
विन्ध्यपादप्रसूतास्तु सद्यः पापहरा नृणाम्॥ ३५॥

तापी, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, शीघ्रोदा, महानदी, विप्रा, वैतरणी, बलाका, कुमुद्वती, महागौरी, दुर्गा और अन्तःशिला — ये नदियाँ विन्ध्याचल से उत्पन्न हैं जो मनुष्यों के सभी पापों को तत्काल हरण करती हैं।

गोदावरी भीमरथी कृष्णा वेणा च वञ्जुला।
तुंगभद्रा सुप्रयोगा कावेरी च द्विजोत्तमाः॥ ३६॥
दक्षिणापथनद्यस्तु सह्यपादाद्विनिःसृताः।

हे द्विजोत्तमो! गोदावरी, भीमरथी, कृष्णा, वेणा, वञ्जुला, तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा तथा कावेरी— ये दक्षिण मार्ग की नदियाँ सह्यपर्वत के निचले भाग से निकलने वाली हैं।

ऋतुमाला ताम्रपर्णी पुष्यवत्युत्पलावती॥ ३७॥
मलयात्रिःसृता नद्यः सर्वाः शीतजलाः स्मृताः।
ऋषिकुल्या त्रिसामा च गन्धमादनगामिनी॥ ३८॥

ऋतुमाला, ताम्रपर्णी, पुष्यवती और उत्पलावती— मलय पर्वत से निकली ये सभी नदियाँ शीतल जल वाली कही गयी हैं। ऋषिकुल्या और त्रिसामा गन्धमादन से गमन करती हैं।

क्षिप्रा पलाशिनी चैव ऋषीका वंशधारिणी।
शुक्तिमत्पादसञ्जाता सर्वपापहरा नृणाम्॥ ३९॥

क्षिप्रा, पलाशिनी, ऋषिका तथा वंशधारिणी नामक नदियाँ शुक्तिमान् पर्वत के मूल से उत्पन्न हैं और मनुष्यों के सभी पापों को हरने वाली हैं।

आसां नद्युपनद्यश्च शतशो द्विजपुङ्गवाः।
सर्वपापहराः पुण्याः स्नानदानादिकर्मसु॥ ४०॥

हे द्विजश्रेष्ठो! इन सभी की सैकड़ों नदियाँ और उपनदियाँ हैं, जो सभी पापों को हरने वाली तथा स्नान, दान आदि कर्मों में पवित्र हैं।

तास्विमे कुरुपाञ्चाला मध्यदेशादयो जनाः।
पूर्वदेशादिकाश्चैव कामरूपनिवासिनः॥ ४१॥
पुण्ड्राः कलिङ्गा मगधा दाक्षिणात्याश्च कृत्स्नशः।
तथापरान्ताः सौराष्ट्राः शूद्रा हीनास्तथार्बुदाः॥ ४२॥
मालका मलपाश्चैव पारियात्रनिवासिनः।
सौवीराः सैन्धवा हूणा माल्या बाल्यनिवासिनः॥ ४३॥
माद्रा रामास्तथैवाम्बाः पारसीकास्तथैव च।
आसां पिबन्ति सलिलं वसन्ति सरितां सदा॥ ४४॥

उनमें ये कुरु, पाञ्चाल, मध्यदेश आदि के लोग, पूर्व के देशों में रहने वाले, कामरूप के निवासी, पुण्ड्र, कलिङ्ग, मगध, समस्त दाक्षिणात्य तथा अन्य सौराष्ट्रवासी, शूद्र, आभीर, अर्बुद, मालक, मलपा, पारियात्र में रहने वाले, सौवीर, सैन्धव, हूण, माल्य, बाल्यनिवासी, मद्रनिवासी, राम, अम्बष्ठ तथा पारसी लोग इन्हीं नदियों का जल पीते हैं और इनके ही आसपास सदा रहते हैं।

चत्वारि भारते वर्षे युगानि कवयोऽब्रुवन्।
कृतं त्रेता द्वापरश्च कलिश्चान्यत्र न क्वचित्॥ ४५॥

कवियों (विद्वानों) ने भारतवर्ष में चार युग बताये हैं— कृत (सत्य) त्रेता, द्वापर तथा कलि। ये (युग) अन्यत्र कहीं नहीं मिलते।

यानि किम्पुरुषाद्यानि वर्षाण्यष्टौ महर्षयः।
न तेषु शोको नायासो नोद्वेगः क्षुद्भयं न च॥ ४६॥

हे महर्षियो! किंपुरुष आदि जो आठ वर्ष हैं, उनमें न शोक है, न परिश्रम है, न उद्वेग है और न भूख का भय है।

स्वस्थाः प्रजाः निरातङ्काः सर्वदुःखविवर्जिताः।
रमन्ते विविधैर्भावैः सर्वाश्च स्थिरयौवनाः॥ ४७॥

वहाँ सारी प्रजा स्वस्थ, आतङ्करहित तथा सब प्रकार के दुःखों से मुक्त है। सभी स्थिरयौवन वाले होकर अनेक प्रकार के भावों से रमण करते रहते हैं।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे भुवनकोशवर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४७॥

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

(जम्बूद्वीपवर्णन)

सूत उवाच

हेमकूटगिरेः शृङ्गे महाकूटं सुशोभनम्।
स्फाटिकं देवदेवस्य विमानं परमेष्ठिनः॥ १॥

सूतजी बोले— हेमकूट नामक पर्वत के शिखर पर देवाधिदेव परमेष्ठी (शिव) का स्फटिकमणि से निर्मित एक महान् सुन्दर निवासस्थान है।

तत्र देवाधिदेवस्य भूतेशस्य त्रिशूलिनः।
देवाः सर्षिगणाः सिद्धाः पूजां नित्यं प्रकुर्वते॥ २॥
स देव्या गिरिशः सार्द्धं महादेवो महेश्वरः।
भूतैः परिवृतो नित्यं भाति तत्र पिनाकधृक्॥ ३॥

वहाँ देवगण, सिद्धगण तथा यक्षगण देवाधिदेव भूतेश त्रिशूली की नित्य पूजा करते हैं। वे पिनाकधारी गिरिश महेश्वर वहाँ महादेवी पार्वती के साथ भूतगणों से परिवृत होते हुए नित्य सुशोभित होते हैं।

विभक्तचारुशिखरः कैलासो यत्र पर्वतः।
निवासः कोटियक्षाणां कुबेरस्य च धीमतः॥ ४॥
तत्रापि देवदेवस्य भवस्यायतनं महत्।

जहाँ अलग-अलग सुन्दर शिखरों वाला कैलास पर्वत है तथा करोड़ों यक्षों तथा बुद्धिमान् कुबेर का निवास है। वहीं देवाधिदेव शिव का विशाल मन्दिर है।

मन्दाकिनी तत्र पुण्या रम्या सुविमलोदका॥ ५॥
नदी नानाविधैः पद्मैरनेकैः समलंकृता।
देवदानवगन्धर्वयक्षराक्षसकिन्नरैः॥ ६॥
उपस्पृष्टजला नित्यं सुपुण्या सुमनोरमा॥

वहाँ नानाविध कमलों से अलंकृत और अत्यन्त स्वच्छ जल वाली रमणीय एवं पवित्र मन्दाकिनी नदी है। देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और किंनर उस अत्यन्त पवित्र तथा मनोरम नदी के जल का नित्य स्पर्श (स्नान, आचमन आदि) करते हैं।

अन्याश्च नद्यः शतशः स्वर्णपद्मैरलंकृताः॥ ७॥
तासां कूले तु देवस्य स्थानानि परमेष्ठिनः।
देवर्षिगणजुष्टानि तथा नारायणस्य तु॥ ८॥

स्वर्णकमलों से सुशोभित वहाँ दूसरी सैकड़ों नदियाँ भी हैं। इनके किनारों पर देवों तथा ऋषिगण से सेवित परमेष्ठी देव और नारायण के स्थान (देवालय) हैं।

तस्यापि शिखरे शुभ्रे पारिजातवनं शुभम्।
तत्र शक्रस्य विपुलं भवनं रत्नमण्डितम्॥ ९॥
स्फाटिकस्तम्भसंयुक्तं हेमगोपुरशोभितम्।
तत्राथ देवदेवस्य विष्णोर्विश्वात्मनः प्रभोः॥ १०॥
पुण्यञ्च भवनं रम्यं सर्वरत्नोपशोभितम्।
तत्र नारायणः श्रीमान् लक्ष्म्या सह जगत्पतिः॥ ११॥
आस्ते सर्वेश्वरः श्रेष्ठः पूज्यमानः सनातनः।

उस (हेमकूट) के शुभ्र शिखर पर पारिजात वृक्षों का सुन्दर वन है। वहाँ इन्द्र का रत्नमण्डित एक विशाल भवन है, जो स्फटिक मणियों से निर्मित स्तम्भयुक्त और स्वर्णनिर्मित गोपुर वाला है। वहाँ समस्त रत्नों से उपशोभित, सभी देवों के नियामक देवाधिदेव विष्णु का एक अत्यन्त पवित्र और रमणीय भवन है। वहाँ जगत्पति, सर्वेश्वर, श्रेष्ठ, पूज्यमान, सनातन श्रीमान् नारायण लक्ष्मी के साथ वास करते हैं।

तथा च वसुधारे तु वसूनां रत्नमण्डितम्॥ १२॥
स्थानानामुत्तमं पुण्यं दुराधर्षं सुरद्विषाम्।
रत्नधारे गिरिवरे सप्तर्षीणां महात्मनाम्॥ १३॥
सप्ताश्रमाणि पुण्यानि सिद्धावासैर्युतानि च।
तत्र हैमं चतुर्द्वारं वज्रनीलादिमण्डितम्॥ १४॥
सुपुण्यं सदवस्थानं ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।

इसी प्रकार वसुधार पर्वत पर (आठ) वसुओं के रत्नों से मण्डित, देवताओं से द्वेष करने वाले असुरों के लिये दुराधर्ष पवित्र स्थान हैं। पर्वतश्रेष्ठ रत्नधार पर महात्मा सप्तर्षियों के सात पवित्र आश्रम हैं। वहां सिद्धों का निवास है। वहाँ

अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा का स्वर्णनिर्मित, चार द्वारों वाला, वज्र, एवं नीलमणि आदि से जटित अत्यन्त पवित्र विशाल स्थान है।

तत्र देवर्षयो विप्रा: सिद्धा ब्रह्मर्षयोऽपरे॥ १५॥
उपासते देवदेवं पितामहमजं परम्।
सर्वै: सम्पूजितो नित्यं देव्या सह चतुर्मुख:॥ १६॥
आस्ते हिताय लोकानां शान्तानां परमागति:।

हे विप्रो! वहाँ देवर्षि, ब्रह्मर्षि, सिद्ध तथा दूसरे लोग अजन्मा, देवाधिदेव, श्रेष्ठ पितामह की नित्य उपासना करते हैं। उनके द्वारा नित्य सम्पूजित शान्तचित्त वालों के परम गतिरूप वे चतुर्मुख ब्रह्मा देवी के साथ लोकों की हितकामना से वहाँ विराजमान हैं।

तस्यैकशृङ्गशिखरे महापद्मैरलंकृते॥ १७॥
स्वच्छामृतजलं पुण्यं सुगन्धं सुमहत्सर:।
जैगीषव्याश्रमं पुण्यं योगीन्द्रैरुपसेवितम्॥ १८॥
तत्रास्ते भगवान्नित्यं सर्वशिष्यै: समावृत:।
प्रशान्तदोषैरक्षुद्रैर्ब्रह्मविद्भिर्महात्मभि:॥ १९॥

उस (हेमकूट) के एक उच्च शिखर पर महापद्मों से अलंकृत सुगन्धयुक्त, स्वच्छ एवं अमृत के समान जल वाला एक पवित्र महान् सरोवर है। वहाँ पर योगीन्द्रों से सुशोभित महर्षि जैगीषव्य का एक पवित्र आश्रम है। शान्त दोषशून्य, महान् ब्रह्मज्ञानी एवं महात्मा शिष्यों से समावृत भगवान् (जैगीषव्य) वहाँ नित्य निवास करते हैं।

शंखो मनोहरश्चैव कौशिक: कृष्ण एव च।
सुमना वेदनादश्च शिष्यास्तस्य प्रसादत:॥ २०॥
सर्वयोगरता: शान्ता भस्मोद्धूलितविग्रहा:।
उपासते महाचार्या ब्रह्मविद्यापरायणा:॥ २१॥
तेषामनुग्रहार्थाय यतीनां शान्तचेतसाम्।
सान्निध्यं कुरुते भूयो देव्या सह महेश्वर:॥ २२॥

शङ्ख, मनोहर, कौशिक, कृष्ण, सुमना तथा वेदनाद उनके कृपापात्र शिष्य हैं। वे सभी योगपरायण, शान्त, भस्म से उपलिप्त शरीर वाले महान् आचार्य तथा ब्रह्मविद्यापरायण उनकी उपासना करते हैं। उन शान्तचित्त योगियों पर अनुग्रह करने के लिये महेश्वर देवी के साथ (उस स्थान पर) निवास करते हैं।

अनेकान्याश्रमाणि स्युस्तस्मिन् गिरिवरोत्तमे।
मुनीनां युक्तमनसा सरांसि सरितस्तथा॥ २३॥
तेषु योगरता विप्रा जापका: संयतेन्द्रिया:।
ब्रह्मण्यासक्तमनसो रमन्ते ज्ञानतत्परा:॥ २४॥

उस उत्तम गिरिवर पर योगयुक्त चित्त वाले मुनियों के अन्य अनेक आश्रम तथा सरोवर और नदियाँ हैं। उनमें योगपरायण, जप करने वाले, संयत इन्द्रियों वाले एवं ब्रह्मासक्त मन वाले, ज्ञानतत्पर विप्रगण रमण करते हैं।

आत्मन्यात्मानमाधाय शिखान्ते पर्यवस्थितम्।
ध्यायन्ति देवमीशानं येन सर्वमिदं ततम्॥ २५॥

वे आत्मा में आत्मा का आधान करके शिखान्त के अन्तरभाग (ब्रह्मरन्ध्र) में स्थित ईशान देव का ध्यान करते हैं, जिनसे यह सम्पूर्ण जगत् विस्तारित है।

सुमेधं वासवस्थानं सहस्रादित्यसन्निभम्।
तत्रास्ते भगवानिन्द्र: शच्या सह सुरेश्वर:॥ २५॥
गजशैले तु दुर्गाया भवनं मणितोरणम्।
आस्ते भगवती दुर्गा तत्र साक्षान्महेश्वरी॥ २७॥

हजारों आदित्यों समान प्रकाशमान सुमेध पर्वत इन्द्र का स्थान है। सुरेश्वर भगवान् इन्द्र शची के साथ वहाँ निवास करते हैं। गजशैल पर दुर्गा का भवन है जिसमें मणियों के तोरण लगे हैं। साक्षात् महेश्वरी भगवती दुर्गा वहाँ रहती हैं।

उपास्यमाना विविधै: शक्तिभेदैरितस्तत:।
पीत्वा योगामृतं लब्ध्वा साक्षादमृतमैश्वरम्॥ २८॥

योगरूपी अमृत का पान करके और ईश्वरीय अमृत को साक्षात् प्राप्त करके विविध प्रकार की शक्तियों द्वारा इतस्तत: उपासित होती रहती हैं।

सुनीलस्य गिरे: शृङ्गे नानाधातुसमुज्ज्वले।
राक्षसानां पुराणि स्यु: सरांसि शतशो द्विजा:॥ २९॥
तथा पुरशतं विप्रा: शतशृङ्गे महाचले।
स्फाटिकस्तम्भसंयुक्तं यक्षाणाममितौजसाम्॥ ३०॥

हे द्विजो! सुनील पर्वत के विविध धातुओं से देदीप्यमान शिखर पर राक्षसों के नगर तथा सैकड़ों सरोवर हैं। विप्रो! इसी प्रकार महान् पर्वत शतशृङ्ग पर स्फटिक स्तम्भों से निर्मित, अमित तेजस्वी यक्षों के सौ नगर हैं।

श्वेतोदरगिरे: शृङ्गे सुपर्णस्य महात्मन:।
प्राकारगोपुरोपेतं मणितोरणमण्डितम्॥ ३१॥
स तत्र गरुड: श्रीमान् साक्षाद्विष्णुरिवापर:।
ध्यात्वा तत्परमं ज्योतिरात्मन्येवमथाव्ययम्॥ ३२॥

श्वेतोदर पर्वत के शिखर पर महात्मा सुपर्ण (गरुड) का स्थान है जिसके अनेक प्राकार गोपुरों से युक्त तथा तोरण मणियों से मण्डित है। वहाँ साक्षात् दूसरे विष्णु समान वे श्रीमान् गरुड उन परम ज्योतिःरूप, आत्मस्वरूप, अविनाशी विष्णु का ध्यान करके स्थित रहते हैं।

अन्यच्च भवनं पुण्यं श्रीशृंगे मुनिपुंगवाः।
श्रीदेव्याः सर्वरत्नाढ्यं हैमं समणितोरणम्॥ ३३॥

मुनिश्रेष्ठो! श्रीशृङ्ग पर दूसरा भी श्रीदेवी का एक पवित्र भवन है, जो सभी रत्नों से पूर्ण तथा स्वर्ण से बना हुआ है और सुन्दर मणियों से निर्मित तोरणयुक्त है।

तत्र सा परमा शक्तिर्विष्णोरतिमनोरमा।
अनन्तविभवा लक्ष्मीर्जगत्संमोहनोत्सुका॥ ३४॥

वहां विष्णु की अति मनोरम वह परमा शक्ति लक्ष्मी अनन्त वैभवसम्पन्न, संसार को मोहित करने में उत्सुक रहती है।

अध्यास्ते देवगन्धर्वसिद्धचारणवन्दिता।
विचिन्त्य जगतो योनिं स्वशक्तिकिरणोज्ज्वला॥ ३५॥
तत्रैव देवदेवस्य विष्णोरायतनं महत्।
सरांसि तत्र चत्वारि विचित्रकमलाशयाः॥ ३६॥

देवताओं, गन्धर्वों, सिद्धों तथा चारणों से वन्दित और अपनी शक्ति की किरणों से प्रकाशित (वे लक्ष्मी) जगत् के मूल कारण (विष्णु) का चिन्तन करती हुई वहाँ विशेषरूप से वास करती हैं। वहीं देवाधिदेव विष्णु का विशाल भवन है तथा वहीं पर विचित्र कमलों से सुशोभित चार सरोवर हैं।

तथा सहस्रशिखरे विद्याधरपुराष्टकम्।
रत्नसोपानसंयुक्तं सरोभिश्चोपशोभितम्॥ ३७॥
नद्यो विमलपानीयाश्चित्रनीलोत्पलाकराः।
कर्णिकारवनं दिव्यं तत्रास्ते शंकरः स्वयम्॥ ३८॥

इसी प्रकार सहस्रशिखर पर रत्नों की सीढ़ियों से बने हुए और सरोवरों से सुशोभित विद्याधरों के आठ नगर हैं। वहाँ निर्मल जल वाली नदियाँ अनेक प्रकार के नीलकमलों का आकर हैं और कर्णिकारका एक दिव्य वन है, जहां शंकर स्वयं विराजमान रहते हैं।

पारिजाते महालक्ष्म्याः पर्वते तु पुरं शुभम्।
रम्यप्रासादसंयुक्तं घण्टाचामरभूषितम्॥ ३९॥
नृत्यद्भिरप्सरःसंघैरितश्चेतश्च शोभितम्।
मृदंगपणवोद्घुष्टं वेणुवीणानिनादितम्॥ ४०॥

पारिजात नामक पर्वत पर महालक्ष्मी का सुन्दर पुर है, जो रमणीय प्रासादों से युक्त, घण्टा एवं चामर से अलंकृत, इतस्ततः नृत्य करती हुई अप्सराओं के समूह से सुशोभित, मृदंग एवं मुरज की ध्वनि से गुञ्जित, वीणा तथा वेणु की झंकार से निनादित है।

गन्धर्वकिन्नराकीर्णं संवृतं सिद्धपुंगवैः।
भास्वद्भिर्भृशमायुक्तं महाप्रासादसङ्कुलम्॥ ४१॥
महागणेश्वरैर्जुष्टं धार्मिकाणां सुदर्शनम्।
तत्र सा वसते देवी नित्यं योगपरायणा॥ ४२॥
महालक्ष्मीर्महादेवी त्रिशूलवरधारिणी।
त्रिनेत्रा सर्वशक्त्यौघसंवृता सा च तन्मयी॥ ४३॥
पश्यन्ति तत्र मुनयः सिद्धा ये ब्रह्मवादिनः।

वह गन्धर्वों तथा किंनरों से आकीर्ण, श्रेष्ठ सिद्धों से युक्त, अनेक देदीप्यमान पदार्थों से परिपूर्ण और बड़े-बड़े महलों से संकुल है। यह महान् गणेश्वरों की द्वारा सेवित और धार्मिक जनों का दर्शनीय स्थान है। वहाँ देवी महालक्ष्मी सदा योगपरायण होकर निवास करती है। वह महादेवी श्रेष्ठ त्रिशूल धारण करने वाली, त्रिनेत्रा, सभी शक्तियों के समूह से आवृत और तन्मयी है। वहाँ जो ब्रह्मवादी मुनिगण हैं—वे उनका दर्शन करते हैं।

सुपार्श्वस्योत्तरे भागे सरस्वत्याः पुरोत्तमम्॥ ४४॥
सरांसि सिद्धजुष्टानि देवभोग्यानि सत्तमाः।
पाण्डुरस्य गिरेः शृंगे विचित्रद्रुमसङ्कुलम्॥ ४५॥
गन्धर्वाणां पुरशतं दिव्यस्त्रीभिः समावृतम्।
तत्र नित्यं मदोत्सिक्ता नरा नार्यस्तथैव च॥ ४६॥
क्रीडन्ति मुदिता नित्यं विलासैर्भोगतत्पराः।

सुपार्श्व के उत्तर भाग में सरस्वती का उत्तम नगर है। हे साधुजनो! वहाँ सिद्धों से सेवित तथा देवताओं के उपभोग करने योग्य अनेक सरोवर हैं। पाण्डुर पर्वत के शिखर पर अनेक प्रकार के वृक्षों से संकुल और दिव्याङ्गनाओं से समावृत गन्धर्वों के सौ नगर हैं। वहां मदोन्मत्त नर और नारियां अनेक प्रकार के विलासी भोगों में तत्पर रहते हुए प्रसन्नतापूर्वक नित्य क्रीड़ा करते रहते हैं।

अञ्जनस्य गिरेः शृंगे नारीपुरमनुत्तमम्॥ ४७॥
वसन्ति तत्राप्सरसो रम्भाद्या रतिलालसाः।
चित्रसेनादयो यत्र समायान्त्यर्थिनः सदा॥ ४८॥
सा पुरी सर्वरत्नाढ्या नैकप्रस्रवणैर्युता।

अञ्जनगिरि के शिखर पर अतिश्रेष्ठ नारीपुर है, जिसमें रति की लालसा करने वाली रम्भा आदि अप्सराएं निवास करती हैं। चित्रसेन आदि (गन्धर्व) जहाँ सदा याचक रूप में आया करते हैं, वह पुरी सभी रत्नों से परिपूर्ण तथा अनेक झरनों से सम्पन्न हैं।

अनेकानि पुराणि स्युः कौमुदे चापि सत्तमाः॥४९॥
रुद्राणां शान्तरजसामीश्वरासक्तचेतसाम्।
तेषु रुद्रा महायोगा महेशान्तरचारिणः॥५०॥
समासते परं ज्योतिरारूढः स्थानमैश्वरम्।

हे उत्तमजनो! कौमुद (पर्वत) पर भी शान्त रजोगुण वाले (रजोगुण से रहित) तथा ईश्वर में आसक्त चित्त वाले रुद्रों के अनेक नगर हैं। उनमें महेश के अन्तर में विचरण करने वाले महायोगी रुद्रगण परम ज्योतिस्वरूप ईश्वरीय स्थान को आश्रित करके रहते हैं।

पिञ्जरस्य गिरेः शृङ्गे गणेशानां पुरत्रयम्॥५१॥
नन्दीश्वरस्य कपिला तत्रास्ते स महामतिः।
तथा च जारुधेः शृङ्गे देवदेवस्य धीमतः॥५२॥
दीप्तमायतनं पुण्यं भास्करस्यामितौजसः।
तस्यैवोत्तरदिग्भागे चन्द्रस्थानमनुत्तमम्॥५३॥
वसते तत्र रम्यात्मा भगवान् शान्तदीधितिः।

पिञ्जरगिरि के शिखर पर गणेशों के तीन नगर हैं। तथा वहीं नन्दीश्वर की कपिला पुरी है, जहाँ वे महामति वास करते हैं। इसी प्रकार जारुधि पर्वत के शिखर पर अमित तेजस्वी बुद्धिमान् देवाधिदेव भास्कर का दीप्तिमान् पवित्र स्थान है। उसी की उत्तर दिशा में चन्द्रमा का अनुत्तम स्थान है। वहाँ शीतल किरणों वाले रम्यात्मा भगवान् (चन्द्रमा) रहते हैं।

अन्यत्र भवनं दिव्यं हंसशैले महर्षयः॥५४॥
सहस्रयोजनायामं सुवर्णमणितोरणम्।
तत्रास्ते भगवान् ब्रह्मा सिद्धसङ्घैरभिष्टुतः॥५५॥
सावित्र्या सह विश्वात्मा वासुदेवादिभिर्युतः।
तस्य दक्षिणदिग्भागे सिद्धानां पुरमुत्तमम्॥५६॥
सनन्दनाद्यो यत्र वसन्ति मुनिपुंगवाः।

हे महर्षियो! हंस शैल पर एक हजार योजन विस्तार वाला एक दूसरा दिव्य भवन है और सुवर्ण तथा मणि से निर्मित तोरण वाला है। वहाँ सिद्धों के समूह से सेवित और वासुदेव आदि से युक्त विश्वात्मा भगवान् ब्रह्मा सावित्री के साथ रहते हैं। उसके दक्षिण दिग्भाग में सिद्धों का उत्तम नगर है, जहाँ मुनिश्रेष्ठ सनन्दन आदि रहते हैं।

पञ्चशैलस्य शिखरे दानवानां पुरत्रयम्॥५७॥
नातिदूरेण तस्माच्च दैत्याचार्यस्य धीमतः।
सुगन्धशैलशिखरे सरिद्भिरुपशोभितम्॥५८॥
कर्दमस्याश्रमं पुण्यं तत्रास्ते भगवानृषिः।

पञ्चशैल के शिखर पर दानवों के तीन नगर हैं। उसके पास ही दैत्याचार्य बुद्धिमान् कर्दम का सुगन्धपर्वत के शिखर पर नदियों से सुशोभित एक पवित्र आश्रम है, वहां वे भगवान् ऋषि रहते हैं।

तस्यैव पूर्वदिग्भागे किञ्चिद्वै दक्षिणाश्रिते॥५९॥
सनत्कुमारो भगवांस्तत्रास्ते ब्रह्मवित्तमः।
सर्वेष्वेतेषु शैलेषु तथान्येषु मुनीश्वराः॥६०॥
सरांसि विमला नद्यो देवानामालयानि च।
सिद्धलिङ्गानि पुण्यानि मुनिभिः स्थापितानि च॥६१॥

उसके पूर्व दिशा में कुछ दक्षिण की ओर ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ भगवान् सनत्कुमार रहते हैं। हे मुनीश्वरो! इन सभी शैलों तथा अन्य स्थानों में भी अनेक सरोवर, विमल जलयुक्त नदियाँ तथा देवालय और मुनियों द्वारा स्थापित पवित्र सिद्ध लिङ्ग है।

तानि चायतनान्याशु संख्यातुं नैव शक्यते।
एष संक्षेपतः प्रोक्तो जम्बूद्वीपस्य विस्तरः।
न शक्यो विस्तराद्वक्तुं मया वर्षशतैरपि॥६२॥

उन भवनों की गणना मैं शीघ्र नहीं कर सकता। यह जम्बूद्वीप का विस्तार संक्षेप में कहा गया है, मेरे द्वारा सैंकड़ों वर्षों में भी इसका वर्णन करना संभव नहीं है।

इति श्रीकूर्मपुराणे जम्बूद्वीपवर्णनं नाम
अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः॥४८॥

एकोनपञ्चाशोऽध्यायः

(भुवनकोश विन्यास प्लक्षद्वीप वर्णन)

सूत उवाच

जम्बूद्वीपस्य विस्ताराद्द्विगुणेन समन्ततः।
संवेष्टयित्वा क्षीरोदं प्लक्षद्वीपो व्यवस्थितः॥१॥

जम्बूद्वीप के विस्तार से चारों तरफ से द्विगुणित और क्षीरसागर को वेष्टित करके प्लक्षद्वीप व्यवस्थित है।

प्लक्षद्वीपे च विप्रेन्द्राः सप्तासन्कुलपर्वताः।
सिद्धायुताः सुपर्वाणः सिद्धसङ्घनिषेविताः॥ २॥

हे विप्रेन्द्र! उस प्लक्षद्वीप में सात कुलपर्वत हैं। वे सुन्दर पक्षयुक्त और सिद्धगणों के समूह से सेवित हैं।

गोमेदः प्रथमस्तेषां द्वितीयश्चन्द्र उच्यते।
नारदो दुन्दुभिश्चैव मणिमान्मेघनिस्वनः॥ ३॥
वैभ्राजः सप्तमस्तेषां ब्रह्मणोऽत्यन्तवल्लभः।

उनमें प्रथम गोमेद पर्वत है, दूसरे का नाम चन्द्र है, क्रमशः तीसरा नारद, चतुर्थ दुन्दुभि, पंचम मणिमान्, छठा मेघनिस्वन और सातवाँ वैभ्राज नामक कुलपर्वत है जो ब्रह्मा को अत्यन्त प्रिय है।

तत्र देवर्षिगन्धर्वैः सिद्धैश्च भगवानजः॥ ४॥
उपास्यते स विश्वात्मा साक्षी सर्वस्य विश्वदृक्।
तेषु पुण्या जनपदा आधयो व्याधयो न च॥ ५॥

वहाँ देव, ऋषि, गन्धर्व तथा सिद्धगण वे विश्वात्मा ब्रह्मा सबके साक्षी और विश्वद्रष्टा भगवान् ब्रह्मा की उपासना करते हैं। उन पर्वतों पर पवित्र जनपद हैं। वहाँ आधि-व्याधि कुछ नहीं हैं।

न तत्र पापकर्तारः पुरुषा वै कथञ्चन।
तेषां नद्यश्च सप्तैव वर्षाणां तु समुद्रगाः॥ ६॥
तासु ब्रह्मर्षयो नित्यं पितामहमुपासते।
अनुतप्ताशिखे चैव विपापा त्रिदिवा कृता॥ ७॥
अमृता सुकृता चैव नामतः परिकीर्त्तिताः।
क्षुद्रनद्यस्तु विख्याताः सरांसि च बहून्यपि॥ ८॥

वहाँ पाप करने वाले पुरुष होते ही नहीं है। उन वर्षपर्वतों की समुद्रगामिनी सात नदियाँ हैं। उन नदियों में ब्रह्मर्षिगण नित्य पितामह की उपासना करते हैं। वे नदियाँ अनुतप्ता, शिखा, विपापा, त्रिदिवा, कृता। अमृता, सुकृता— इन नामों से प्रसिद्ध हैं। छोटी नदियाँ और बहुत से सरोवर भी वहाँ विख्यात हैं।

न चैतेषु युगावस्था पुरुषा वै चिरायुषः।
आर्यकाः कुरराश्चैव विदेहा भाविनस्तथा॥ ९॥
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रास्तस्मिन्द्वीपे प्रकीर्त्तिताः।
इज्यते भगवानीशो वर्णैस्तत्र निवासिभिः॥ १०॥

उन स्थानों में युगावस्था (सत्य, त्रेता, द्वापर, कलि) नहीं है और सभी मनुष्य दीर्घायु होते हैं उस द्वीप में आर्यक, कुरर, विदेह तथा भाविन् क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र बताये गये हैं। वहाँ के निवासियों द्वारा भगवान् ईश की उपासना की जाती है।

तेषाञ्च सोमसाम्राज्यं सारूप्यं मुनिपुङ्गवाः।
सर्वे धर्मरता नित्यं सर्वे मुदितमानसाः॥ ११॥
पञ्चवर्षसहस्राणि जीवन्ति च निरामयाः।

हे मुनिश्रेष्ठो! उन्हें सोम साम्राज्य (सोम-सायुज्य) तथा सोमसारूप्य प्राप्त होता है। सब लोग धर्मपरायण एवं सदा प्रसन्नचित्त रहते हैं और वे रोगरहित होकर पाँच हजार वर्ष तक जीवित रहते हैं।

प्लक्षद्वीपप्रमाणं तु द्विगुणेन समन्ततः॥ १२॥
संवेष्ट्येक्षुरसाम्भोधिं शाल्मलिः संव्यवस्थितः।
सप्त वर्षाणि तत्रापि सप्तैव कुलपर्वताः॥ १३॥

प्लक्षद्वीप से दुगुना विस्तार वाला शाल्मलिद्वीप चारों ओर से ईक्षुरस के सागर को वेष्टित करके अवस्थित है। वहाँ भी सात वर्ष और सात ही कुलपर्वत हैं।

ऋज्वायताः सुपर्वाणः सप्त नद्यश्च सुव्रताः।
कुमुदश्चान्नदश्चैव तृतीयश्च बलाहकः॥ १४॥
द्रोणः कंसस्तु महिषः ककुद्मान् सप्तमस्तथा।
योनी तोया वितृष्णा च चन्द्रा शुक्ला विमोचनी॥ १५॥
निवृत्तिश्चेति ता नद्यः स्मृताः पापहरा नृणाम्।
न तेषु विद्यते लोभः क्रोधो वा द्विजसत्तमाः॥ १६॥

हे सुव्रतो! वे पर्वत सीधे फैले हुए तथा सुन्दर पर्व वाले और सात नदियों से युक्त हैं। वे सात पर्वत हैं— कुमुद, अन्नद, तीसरा बलाहक, द्रोण, कंस, महिष और सप्तम ककुद्मान्। और सात नदियों के नाम हैं — योनी, तोया, वितृष्णा, चन्द्रा, शुक्ला, विमोचना और निवृत्ति। ये नदियाँ स्मरण करने से मनुष्यों के पापों को हरने वाली हैं। हे द्विजश्रेष्ठो! उन वर्षों में लोभ अथवा क्रोध नहीं होता।

न चैवास्ति युगावस्था जना जीवन्त्यनामयाः।
यजन्ति सततं तत्र वर्णा वायुं सनातनम्॥ १७॥

वहाँ (चार) युग की व्यवस्था भी नहीं है। लोग रोगरहित जीवन यापन करते हैं। वहाँ की सभी वर्ण वाले सनातन वायुदेव की सतत पूजा करते हैं।

तेषां तत्साधनं युक्तं सारूप्यञ्च सलोकता।
कपिला ब्राह्मणाः प्रोक्ता राजानश्चारुणास्तथा॥ १८॥
पीता वैश्याः स्मृताः कृष्णा द्वीपेऽस्मिन् वृषला द्विजाः।

अतएव उन्हें वायुदेव का सायुज्य, सारूप्य और सालोकतारूप मुक्ति प्राप्त होती है। उस द्वीप में ब्राह्मण का वर्ण कपिल और क्षत्रिय का लाल कहा गया है। हे द्विजो! वहाँ वैश्य का वर्ण पीला एवं शूद्र का वर्ण कृष्ण बताया है।

शाल्मलस्य तु विस्ताराद्द्विगुणेन समन्तत:॥१९॥
संवेष्ट्य तु सुरोदाब्धिं कुशद्वीपो व्यवस्थित:।
विद्रुमश्चैव होमश्च द्युतिमान् पुष्पवांस्तथा॥२०॥
कुशेशयो हरिश्चैव मन्दर: सप्त पर्वता:।

शाल्मलिद्वीप से विस्तार में दुगुना कुशद्वीप है जो चारों तरफ से सुरासमुद्र को घेरकर स्थित है। वहाँ सात कुलपर्वतों के नाम हैं— विद्रुम, होम, द्युतिमान्, पुष्पवान्, कुशेशय, हरि और मन्दर।

धूतपापा शिवा चैव पवित्रा संमिता तथा॥२१॥
तथा विद्युत्प्रभा रामा महानद्यश्च सप्त वै।
अन्याश्च शतशो विप्रा नद्यो मणिजला: शुभा:॥२२॥

वहाँ धूतपापा, शिवा, पवित्रा, संमिता, विद्युत्प्रभा, रामा और मही— ये सात नदियाँ हैं। हे विप्रो! इनके अतिरिक्त सैंकड़ों मणियों के समान स्वच्छ जल वाली पवित्र नदियाँ हैं।

तास्तु ब्रह्माणमीशानं देवाद्या: पर्युपासते।
ब्राह्मणा द्रविणो विप्रा: क्षत्रिया: शुष्मिणस्तथा॥२३॥
वैश्यास्तोभास्तु मन्देहा: शूद्रास्तत्र प्रकीर्त्तिता:।

हे विप्रो! वहाँ रहने वाले देव आदि ब्रह्मा की ईश्वररूप में उपासना करते हैं। उस द्वीप में ब्राह्मणों को द्रविण, क्षत्रियों को शुष्मन्, वैश्यों को स्तोभ तथा शूद्रों को मन्देह नाम से जाना जाता है।

नरोऽपि ज्ञानसम्पन्ना मैत्र्यादिगुणसंयुता:॥२४॥
यथोक्तकारिण: सर्वे सर्वे भूतहिते रता:।
यजन्ति यज्ञैर्विविधैर्ब्रह्माणं परमेष्ठिनम्॥२५॥

वहाँ के सभी लोग ज्ञानसम्पन्न और मैत्री आदि गुणों से युक्त हैं। वे सभी शास्त्रविहित कर्म करने वाले और सभी प्राणियों के हित में निरत तथा विविध यज्ञों द्वारा परमेष्ठी ब्रह्मा की उपासना करते हैं।

तेषाञ्च ब्रह्मसायुज्यं सारूप्यञ्च सलोकता।
कुशद्वीपस्य विस्ताराद्द्विगुणेन समन्तत:॥२६॥
क्रौञ्चद्वीप: स्थितो विप्रा वेष्टयित्वा घृतोदधिम्।

उन्हें ब्रह्मा का सायुज्य, सारूप्य तथा सालोकता प्राप्त होती है। कुशद्वीप से द्विगुण विस्तार वाला क्रौञ्चद्वीप चारों ओर से घृतसागर को वेष्टित करके अवस्थित है।

क्रौञ्चो वामनकश्चैव तृतीयश्चाधिकारिक:॥२७॥
देवाव्दश्च विवेदश्च पुण्डरीकस्तथैव च।
नाम्ना च सप्तम: प्रोक्त: पर्वतो दुन्दुभिस्वन:॥२८॥
गौरी कुमुद्वती चैव सन्ध्या रात्रिर्मनोजवा।
कोभिश्च पुण्डरीकाक्षा नद्य: प्राधान्यत: स्मृता:॥२९॥

वहाँ भी सात कुलपर्वत हैं जो क्रौञ्च, वामनक, आधिकारिक, देवाव्द, विवेद, पुण्डरीक और सातवाँ दुन्दुभिस्वन नाम से कहा गया है। गौरी, कुमुद्वती, सन्ध्या, रात्रि, मनोजवा, कोभि और पुण्डरीकाक्ष— ये सात नदियां प्रधानत: कही गई हैं।

पुष्कला: पुष्करा धन्यास्तिष्या वर्णा: क्रमेण वै।
ब्राह्मणा: क्षत्रिया वैश्या: शूद्राश्चैव द्विजोत्तमा:॥३०॥

हे द्विजश्रेष्ठो! वहां पुष्कल, पुष्कर, धन्य और तिष्य—इन नामों से क्रमश: प्रसिद्ध ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं।

अर्चयन्ति महादेवं यज्ञदानशमादिभि:।
व्रतोपवासैर्विविधैर्होमैश्च पितृतर्पणै:॥३१॥
तेषां वै रुद्रसायुज्यं सारूप्यं चातिदुर्लभम्।
सलोकता च सामीप्यं जायते तत्प्रसादत:॥३२॥

वे यज्ञ, दान, शान्ति, व्रत, उपवास, विविध होम तथा पितृतर्पण आदि द्वारा महादेव की अर्चना करते हैं। उन्हें महादेव की कृपा से रुद्र का सायुज्य, अतिदुर्लभ सारूप्य, सालोक्य तथा सामीप्य प्राप्त होता है।

क्रौंचद्वीपस्य विस्ताराद्द्विगुणेन समन्तत:।
शाकद्वीप: स्थितो विप्रा आवेष्ट्य दधिसागरम्॥३३॥

हे विप्रो! क्रौञ्चद्वीप से द्विगुण विस्तार वाला शाकद्वीप है जो चारों तरफ से दधिसागर को घेरकर स्थित है।

उदयो रैवतश्चैव श्यामकाष्टगिरिस्तथा।
आम्बिकेयस्तथा रम्य: केसरी चेति पर्वता:॥३४॥
सुकुमारी कुमारी च नलिनी वेणुका तथा।
इक्षुका धेनुका चैव गभस्तिश्चेति निम्नगा:॥३५॥

उसके सात कुलपर्वत हैं— उदय, रैवत, श्यामक, अष्टगिरि, आम्बिकेय, रम्य तथा केसरी। और सात नदियां हैं— सुकुमारी, कुमारी, नलिनी, वेणुका, इक्षुका, धेनुका तथा गभस्ति।

आसां पिबन्तः सलिलं जीवन्ति तत्र मानवाः।
अनामयाश्चाशोकाश्च रागद्वेषविवर्जिताः॥ ३६॥
मृगाश्च मगधाश्चैव मानसा मन्दगास्तथा।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चात्र क्रमेण तु॥ ३७॥

वहाँ के मानव इन नदियों का जल पीकर जीवित रहते हैं। वे अनामय, शोकरहित तथा रागद्वेष से वर्जित हैं। मृग, मगध, मानस तथा मन्दक नाम से क्रमशः वहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र कहलाते हैं।

यजन्ति सततं देवं सर्वलोकैकसाक्षिणम्।
व्रतोपवासैर्विविधैर्देवदेवं दिवाकरम्॥ ३८॥
तेषां वै सूर्यसायुज्यं सामीप्यञ्च सरूपता।
सलोकता च विप्रेन्द्रा जायते तत्प्रसादतः॥ ३९॥

वे सब समस्त लोकों के एकमात्र साक्षी, देवाधिदेव सूर्य की अनेक प्रकार के व्रतों और उपवासों द्वारा यजन करते हैं। विप्रेन्द्रो! सूर्यदेव की कृपा से उन लोगों को सूर्य का सायुज्य, सामीप्य, सारूप्य तथा सालोक्यरूप मुक्ति होती है।

शाकद्वीपं समावृत्य क्षीरोदः सागरः स्थितः।
श्वेतद्वीपश्च तन्मध्ये नारायणपरायणाः॥ ४०॥
तत्र पुण्या जनपदा नानाश्चर्यसमन्विताः।
श्वेतास्तत्र नरा नित्यं जायन्ते विष्णुतत्पराः॥ ४१॥

शाकद्वीप को आवृत करके क्षीरसागर स्थित है। उसके मध्य में श्वेतद्वीप है, जहाँ के लोग नारायणपरायण हैं। वहाँ अनेक प्रकार के आश्चर्यों से युक्त पवित्र जनपद हैं। वहाँ के मनुष्य श्वेतवर्ण के एवं विष्णु की भक्ति में तत्पर रहने वाले हैं।

नाधयो व्याधयस्तत्र जरामृत्युभयं न च।
क्रोधलोभविनिर्मुक्ता मायामात्सर्यवर्जिताः॥ ४२॥

न तो वहाँ आधि और व्याधि अर्थात् मानसिक या शारीरिक कष्ट हैं और वृद्धावस्था तथा मृत्यु का भय भी नहीं होता। वहाँ के लोग क्रोध तथा लोभ से मुक्त एवं माया और मात्सर्य से वर्जित हैं।

नित्यपुष्टा निरातङ्का नित्यानन्दाश्च भोगिनः।
नारायणसमाः सर्वे नारायणपरायणाः॥ ४३॥

वे सदा स्वस्थ, भयरहित, नित्य आनन्दी तथा भोग करने वाले होते हैं। नारायण में परायण रहने वाले वे सभी नारायण के तुल्य होते हैं।

केचिद्ध्यानपरा नित्यं योगिनः संयतेन्द्रियाः।
केचिज्जपन्ति तप्यन्ति केचिद्विज्ञानिनोऽपरे॥ ४४॥

कुछ ध्यानपरायण, कुछ नित्य योगी तथा जितेन्द्रिय होते हैं। कुछ जप करते हैं, कुछ तप करते हैं तो कुछ ज्ञानपरायण रहते हैं।

अन्ये निर्बीजयोगेन ब्रह्मभावेन भाविताः।
ध्यायन्ति तत्परं ब्रह्म वासुदेवं सनातनम्॥ ४५॥

दूसरे लोग निर्बीजयोग द्वारा ब्रह्मभाव से भावित होकर सनातन, वासुदेव, परब्रह्म का ध्यान करते हैं।

एकान्तिनो निरालम्बा महाभागवताः परे।
पश्यन्ति तत्परं ब्रह्म विष्ण्वाख्यं तमसः परम्॥ ४६॥
सर्वे चतुर्भुजाकाराः शंखचक्रगदाधराः।
सुपीतवाससः सर्वे श्रीवत्साङ्कितवक्षसः॥ ४७॥

कोई एकान्तप्रिय, निरालम्ब तो अन्य भगवद्परायण होते हैं। वे तमोगुण से परे विष्णु नामक परब्रह्म को देखते हैं। वे सभी चतुर्भुज, शंख-चक्र-गदाधारी, पीताम्बर पहनने वाले और श्रीवत्स से अंकित वक्षःस्थल वाले हैं।

अन्ये महेश्वरपरास्त्रिपुण्ड्राङ्कितमस्तकाः।
सुयोगाद्भुतिकरणा महागरुडवाहनाः॥ ४८॥
सर्वे शक्तिसमायुक्ता नित्यानन्दाश्च निर्मलाः।
वसन्ति तत्र पुरुषा विष्णोरन्तरचारिणः॥ ४९॥

कुछ अन्य शिवपरायण, त्रिपुण्ड्र से अङ्कित मस्तक वाले, सुयोग से ऐश्वर्यसम्पन्न शरीर वाले तथा महान् गरुड़वाहन होते हैं। सभी शक्तिसमायुक्त, नित्यानन्द, निर्मल तथा विष्णु के हृदय विचरण करने वाले वहां निवास करते हैं।

तत्र नारायणस्यान्यद्दुर्गमं दुरतिक्रमम्।
नारायणं नाम पुरं प्रासादैरुपशोभितम्॥ ५०॥

वहाँ नारायण का अन्य दुर्गम, अतिक्रमण करने के अयोग्य तथा अनेक प्रासादों से उपशोभित नारायण नामक नगर है।

हेमप्राकारसंयुक्तं स्फाटिकैर्मण्डपैर्युतम्।
प्रभासहस्रकलिलं दुराधर्षं सुशोभनम्॥ ५१॥

उसमें सोने की चारदीवारी है और स्फटिकमणि के मण्डप हैं। वह सहस्र प्रभाओं से युक्त, अधर्षणीय एवं अत्यन्त सुन्दर है।

हर्म्यप्रासादसंयुक्तं महाट्टालसमाकुलम्।
हेमगोपुरसाहस्रैर्नानारत्नोपशोभितैः॥ ५२॥
शुभ्रास्तरणसंयुक्तैर्विचित्रैः समलंकृतम्।

नन्दैर्विविधाकारैः स्रवन्तीभिश्च शोभितम्॥५३॥

वह ऊँचे-ऊँचे महलों से युक्त, बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं से व्याप्त, नाना प्रकार के रत्नों से शोभित, शुभ्र आस्तरणों से संयुक्त, विचित्र आनन्ददायक विविध आकारों निर्मित हजारों सोने के गोपुरों (नगरद्वारों) से वह अलंकृत था और नदियों से भी वह शोभित था।

सरोभिः सर्वतो युक्तं वीणावेणुनिनादितम्।
पताकाभिर्विचित्राभिरनेकाभिश्च शोभितम्॥५४॥

वह चारों ओर सरोवरों से युक्त, वीणा और वंशी की ध्वनि से निनादित तथा अनेक विचित्र पताकाओं से शोभित था।

वीथिभिः सर्वतो युक्तं सोपानै रत्नभूषितैः।
नदीशतसहस्राढ्यं दिव्यगाननिनादितम्॥५५॥

वह चारों तरफ गलियों तथा रत्नभूषित सोपानों से युक्त था। सहस्रों नदियों से परिपूर्ण और दिव्य-गानों से निनादित होता रहता था।

हंसकारण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम्।
चतुर्द्वारमनौपम्यमगम्यं देवविद्विषाम्॥५६॥

वह हंस और बत्तखों से आकीर्ण तथा चक्रवाक आदि पक्षियों से शोभित था। उसके चारों चारों द्वार अनुपम और देवशत्रुओं द्वारा अगम्य थे।

तत्र तत्राप्सरःसंघैर्नृत्यद्भिरुपशोभितम्।
नानागीतविधानज्ञैर्देवानामपि दुर्लभैः॥५७॥
नानाविलाससम्पन्नैः कामुकैरतिकोमलैः।
प्रभूतचन्द्रवदनैर्नूपुरारावसंयुतैः॥५८॥
ईषत्स्मितैः सुबिम्बोष्ठैर्बालमुग्धमृगेक्षणैः।
अशेषविभवोपेतैस्तनुमध्यविभूषितैः॥५९॥

उस नगर में इधर-उधर नृत्य करती अप्सरायें दिखाई देती थीं। वे देवताओं के लिए भी दुर्लभ अनेक प्रकार के गीत-विधानों को जानती थीं। वे अनेक विलासों से सम्पन्न, कामुक, अत्यन्त कोमल, पूर्ण चन्द्रमा के समान मुख वाली तथा नूपुरों की ध्वनि से युक्त थीं। वे मन्द मुस्कान युक्त, सुन्दर सुडोल होठों से युक्त, बालक और मुग्ध मृगों के समान आँखों वाली थीं। वे सम्पूर्ण वैभवसम्पन्न थीं और उनके शरीर का मध्य भाग (कमर) पतला था।

सुराजहंसचलनैः सुवेषैर्मधुरस्वनैः।
संलापालापकुशलैर्दिव्याभरणभूषितैः॥६०॥
स्तनभारविनम्रैश्च मधुघूर्णितलोचनैः।
नानावर्णविचित्राङ्गैर्नानाभोगरतिप्रियैः॥६१॥

वे अप्सराएँ राजहंस के समान सुन्दर गति वाली, सुन्दर वेश-भूषा और मधुर स्वर-युक्त थीं। वार्तालाप में और आलाप करने में कुशल थीं तथा दिव्य आभूषणों से सुसज्जित थीं। स्तनों के भार से विनम्र, मद-विह्वल नेत्रों से युक्त, नाना वर्णों से विचित्र अङ्गों वाली तथा विविधभोग एवं रति क्रीड़ा प्रिय थीं।

उत्फुल्लकुसुमोद्यानैस्तद्भूतशतशोभितम्।
असंख्येयगुणं शुद्धमसंख्यैस्त्रिदशैरपि॥६२॥

वह नगर खिले हुए पुष्पों के उद्यान और उसमें रहने वाले सैंकड़ों प्राणियों से शोभित था। वह असंख्य गुणों से युक्त तथा असंख्य देवों से भी पवित्र था।

श्रीमत्पवित्रं देवस्य श्रीपतेरमितौजसः।
तस्य मध्येऽतितेजस्कमुन्नतप्राकारतोरणम्॥६३॥
स्थानं तद्वैष्णवं दिव्यं योगिनां सिद्धिदायकम्।
तन्मध्ये भगवानेकः पुण्डरीकदलद्युतिः॥६४॥
शेतेऽशेषजगत्सूतिः शेषाहिशयने हरिः।
विचिन्त्यमानो योगीन्द्रैः सनन्दनपुरोगमैः॥६५॥

अमित तेजस्वी श्रीपति विष्णुदेव का वह नगर शोभायुक्त एवं पवित्र है। उसके मध्य में अतितेजस्वी उन्नत प्राकार तोरण युक्त हैं। यह योगियों का सिद्धिदायक विष्णु का दिव्य स्थान है। उसके मध्य में कमलदल के समान कान्ति वाले, अशेष जगत् के जन्मदाता, एकाकी भगवान् विष्णु शेषनाग की शय्या पर विराजमान हैं। वे सनन्दन आदि योगीन्द्रगण द्वारा ध्यान किये जाते हैं।

स्वात्मानन्दामृतं पीत्वा पुरस्तात्तमसः परः।
पीतवासा विशालाक्षो महामायो महाभुजः॥६६॥

वे पीताम्बरधारी, विशालाक्ष, महामाया युक्त, विशाल भुजाओं वाले हरि आत्मानन्दरूप अमृत पान करके तम से भी परे अवस्थित हैं।

क्षीरोदकन्यया नित्यं गृहीतचरणद्वयः।
सा च देवी जगद्वन्द्या पादमूले हरिप्रिया॥६७॥

क्षीरसागर की कन्या लक्ष्मी उनके दोनों चरणों की नित्य सेवा करती हैं। वह जगद्वंद्या देवी भगवान् के पादमूल में रहती है और विष्णु की अत्यन्त प्रिय है।

समास्ते तन्मना नित्यं पीत्वा नारायणामृतम्।

न तत्राधार्मिका यान्ति न च देवान्तरालयाः॥६८॥
वैकुण्ठं नाम तत्स्थानं त्रिदशैरपि वन्दितम्।
न मे प्रभवति प्रज्ञा कृत्स्नशास्त्रनिरूपणे॥६९॥

वह देवी नित्य नारायणरूप अमृत का पान करके तन्मना होकर रहती हैं। उस स्थान में अधार्मिक नहीं जाते हैं और अन्य देवालय भी वहाँ नहीं है। उस स्थान का नाम वैकुण्ठ है। देवों द्वारा भी यह वन्दित है। सम्पूर्ण शास्त्र के निरूपण में मेरी बुद्धि समर्थ नहीं है।

एतावच्छक्यते वक्तुं नारायणपुरं हि तत्।
स एव परमं ब्रह्म वासुदेवः सनातनः॥७०॥
शेते नारायणः श्रीमान्मायया मोहयञ्जगत्॥७१॥

केवल इतना ही कहा जा सकता है कि यह नारायण का पुर है। वही परब्रह्म, सनातन, वासुदेव, श्रीमान् नारायण माया से जगत् को मोहित करके शयन कर रहे हैं।

नारायणादिदं जातं तस्मिन्नेव व्यवस्थितम्।
तमाश्रयति कालान्ते स एव परमा गतिः॥७२॥

यह समस्त जगत् नारायण से ही उत्पन्न है और उन्हीं में अवस्थित है। प्रलयकाल में उसी के आश्रित होता है। वे ही (संसार की) परम गति हैं।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे भुवनविन्यास एकोनपञ्चाशोऽध्यायः॥४९॥

पञ्चाशोऽध्यायः
(भुवनकोश विन्यास- पुष्करद्वीप वर्णन)

सूत उवाच

शाकद्वीपस्य विस्ताराद्द्विगुणेन व्यवस्थितः।
क्षीरार्णवं समाश्रित्य द्वीपं पुष्करसंज्ञितम्॥१॥

सूत बोले— शाकद्वीप की अपेक्षा दुगुना विस्तृत पुष्कर नामक द्वीप है, जो क्षीरसमुद्र को आश्रित करके अवस्थित है।

एक एवात्र विप्रेन्द्राः पर्वतो मानसोत्तरः।
योजनानां सहस्राणि चोर्ध्वं पञ्चाशदुच्छ्रितः॥२॥
तावदेव च विस्तीर्णः सर्वतः पारिमण्डलः।
स एव द्वीपश्चार्द्धेन मानसोत्तरसंस्थितः॥३॥

विप्रेन्द्रो! यहां पर मानसोत्तर नामक एक ही कुलपर्वत है। इसका विस्तार हजार योजन और ऊँचाई पांच सौ योजन है। उतना ही विस्तार वाला चारों दिशाओं में उसका परिमण्डल ही है। वही द्वीप आधे भाग से मानसोत्तर नाम से संस्थित है।

एक एव महाभागः सन्निवेशो द्विधा कृतः।
तस्मिन्द्वीपे स्मृतौ द्वौ तु पुण्यौ जनपदौ शुभौ॥४॥

हे महाभाग! एक ही संस्थान दो भागों में विभक्त हुआ है। उस द्वीप में दो पवित्र एवं शुभ जनपद बताये गये हैं।

अपरौ मानसस्याथ पर्वतस्यानुमण्डलौ।
महावीतं स्मृतं वर्षं धातकीखण्डमेव च॥५॥
स्वादूदकेनोदधिना पुष्करः परिवारितः।
तस्मिन्द्वीपे महावृक्षो न्यग्रोधोऽमरपूजितः॥६॥

वे दोनों मानस पर्वत के अनुमण्डल हैं। वहाँ दो वर्ष हैं— महावीत तथा धातकीखण्ड। यह द्वीप स्वादिष्ट जल वाले समुद्र से परिवेष्टित है। उस द्वीप में देवों से पूजित एक महान् वटवृक्ष है।

तस्मिन्निवसति ब्रह्मा विश्वात्मा विश्वभावनः।
तत्रैव मुनिशार्दूल शिवनारायणालयः॥७॥
वसत्यत्र महादेवो हरोऽर्द्धं हरिरव्ययः।

वहाँ विश्वभावन, विश्वात्मा ब्रह्मा वास करते हैं। मुनिश्रेष्ठ! वहीं पर शिवनारायण का मन्दिर है। वहाँ अर्धमूर्तिरूप में महादेव हर और आधे में अविनाशी हरि निवास करते हैं।

सम्पूज्यमानो ब्रह्माद्यैः कुमाराद्यैश्च योगिभिः॥८॥
गन्धर्वैः किन्नरैर्यक्षैरीश्वरः कृष्णपिङ्गलः।
स्वस्थास्तत्र प्रजाः सर्वा ब्राह्मणाः शतशस्त्विषः॥९॥
निरामया विशोकाश्च रागद्वेषविवर्जिताः।
सत्यानृते न तत्रास्तां नोत्तमाधममध्यमाः॥१०॥

ब्रह्मा आदि देवगण तथा सनत्कुमार आदि योगियों द्वारा वे पूजित हैं। गन्धर्व, किन्नर तथा यक्ष भी उन कृष्णपिंगल ईश्वर की पूजा करते हैं। वहाँ सभी प्रजायें स्वस्थ हैं। ब्राह्मण लोग शतशः कान्तियुक्त हैं। नीरोग, शोकरहित तथा राग-द्वेष से वर्जित हैं। वहाँ सत्य, मिथ्या, उत्तम, अधम और मध्यम (का भेद) नहीं है।

न वर्णाश्रमधर्माश्च न नद्यो न च पर्वताः।
परेण पुष्करेणाथ समावृत्य स्थितो महान्॥११॥
स्वादूदकसमुद्रस्तु समन्ताद्द्विजसत्तमः।
परेण तस्य महती दृश्यते लोकसंस्थितिः॥१२॥

वहाँ न वर्णाश्रम धर्म हैं, न नदियाँ और न पर्वत ही हैं। द्विजश्रेष्ठो! महान् स्वादिष्ठ जल वाला समुद्र चारों ओर से पुष्करद्वीप को आवृत करके स्थित है। उससे परे वहाँ महती लोकस्थिति दिखाई पड़ती है।

काञ्चनी द्विगुणा भूमि: सर्वत्रैकशिलोपमा।
तस्या: परेण शैलस्तु मर्यादा भानुमण्डल:॥ १३॥

उससे दुगुनी सुवर्णमयी भूमि है जो एक शिलाखण्ड के समान चारों ओर स्थित है। उससे परे मर्यादापर्वत भानुमंडल है।

प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकालोक: स उच्यते।
योजनानां सहस्राणि दश तस्योच्छ्रय: स्मृत:॥ १४॥

कुछ भाग में प्रकाश और कुछ में प्रकाश न रहने के कारण यह लोकालोक नाम से विख्यात है। उसकी ऊँचाई दस हजार योजन की है।

तावानेव च विस्तारो लोकालोकमहागिरे:।
समावृत्य तु तं शैलं सर्वतो वै समस्थितम्॥ १५॥
तमश्चाण्डकटाहेन समन्तात्परिवेष्टितम्।
एते सप्त महालोका: पाताला: सम्प्रकीर्तिता:॥ १६॥

लोकालोक महागिरि का विस्तार भी उतना ही है। चारों ओर अण्डकटाह से परिवेष्टित अन्धकार इस पर्वत को सब ओर से आवृत किये हुए है। ये सात महालोक और पातालों का वर्णन कर दिया है।

ब्रह्माण्डाशेषविस्तार: संक्षेपेण मयोदित:।
अण्डानामीदृशानां तु कोट्यो ज्ञेया: सहस्रश:॥ १७॥
सर्वगत्वात्प्रधानस्य कारणस्याव्ययात्मन:।
अण्डेष्वेतेषु सर्वेषु भुवनानि चतुर्दश॥ १८॥

ब्रह्माण्ड के संपूर्ण विस्तार का संक्षेप में मैंने वर्णन कर दिया। प्रधान, कारणरूप अव्ययात्मा के सर्वव्यापक होने से ऐसे ब्रह्माण्डों की संख्या हजारों करोड़ों में है, ऐसा जानना चाहिए। इन ब्रह्माण्डों के चौदह भुवन विद्यमान हैं।

तत्र तत्र चतुर्वक्त्रा रुद्रा नारायणादय:।
दशोत्तरमथैकैकमण्डावरणसप्तकम्॥ १९॥
समन्तात्संस्थितं विप्रास्तत्र यान्ति मनीषिण:।

उन ब्रह्माण्डों में चतुर्मुख ब्रह्मा, रुद्र और नारायण आदि रहते हैं। हे विप्रो! यहां सात आवरण ब्रह्माण्ड को चारों ओर से आवृत करके स्थित हैं। इनमें एक-एक आवरण पूर्व-पूर्व का अपेक्षा दस गुणा अधिक का है। हे विप्रो! वहां ज्ञानी लोग जाते हैं।

अनन्तमेकमव्यक्तमनादिनिधनं महत्॥ २०॥
अतीत्य वर्त्तते सर्वं जगत्प्रकृतिरक्षरम्।
अनन्तत्वमनन्तस्य यत: संख्या न विद्यते॥ २१॥

अनन्त, एक, अव्यक्त, जन्ममृत्युरहित, महत्, जगत् की प्रकृतिरूप, अक्षर— इन सब को अतिक्रमण करके विद्यमान है। अनन्त होने के कारण अनन्त की संख्या नहीं है।

तदव्यक्तमिदं ज्ञेयं तद्ब्रह्म परमं ध्रुवम्।
अनन्त एष सर्वत्र सर्वस्थानेषु पठ्यते॥ २२॥

उस निश्चल परम ब्रह्म को अव्यक्त जानना चाहिए। यही ब्रह्म सभी स्थानों में अनन्त नाम से कहा जाता है।

तस्य पूर्वं मयाप्युक्तं यत्तन्माहात्म्यमुत्तमम्।
गत: स एष सर्वत्र सर्वस्थानेषु पूज्यते॥ २३॥
भूमौ रसातले चैव आकाशे पवनेऽनले।
अर्णवेषु च सर्वेषु दिवि चैव न संशय:॥ २४॥

उनका जो उत्तम माहात्म्य पहले भी मैंने वर्णित किया है, वही सर्वत्र व्याप्त सभी स्थानों में पूजित होता है। वही भूमि, पाताल, आकाश, वायु, अग्नि, स्वर्ग तथा सभी समुद्रों में विद्यमान है, इसमें संशय नहीं।

तथा तमसि तत्त्वे वाप्येषु एव महाद्युति:।
अनेकधा विभक्ताङ्ग: क्रीडते पुरुषोत्तम:॥ २५॥

उसी प्रकार वह महाद्युतिमान् परब्रह्म अन्धकार एवं (प्रकाशरूप) तत्त्व में भी विद्यमान है। वह पुरुषोत्तम अनेक प्रकार से अपनेरूप को विभक्त करके क्रीड़ा करता है।

महेश्वर: परोऽव्यक्तादण्डमव्यक्तसम्भवम्।
अण्डाद्ब्रह्मा समुत्पन्नस्तेन सृष्टमिदं जगत्॥ २६॥

वे महेश्वर अव्यक्त से परे हैं। अण्ड अव्यक्त से उत्पन्न है। अण्ड से ब्रह्मा उत्पन्न हुए। उन्हीं के द्वारा यह जगत् की उत्पत्ति हुई।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे भुवनकोशवर्णनं नाम पञ्चाशोऽध्याय:॥ ५०॥

एकपञ्चाशोऽध्यायः
(मन्वन्तरकीर्तन में विष्णु का माहात्म्य)

ऋषय ऊचुः

अतीतानागतानीह यानि मन्वन्तराणि वै।
तानि त्वं कथयास्मभ्यं व्यासांश्च द्वापरे युगे॥ १॥

ऋषिगण बोले— जो मन्वन्तर बीत चुके हैं और जो आगे आने वाले हैं, उन्हें और द्वापर युग में जो व्यास हुए हैं, उनके विषय में आप हमें बताइए।

वेदशाखाप्रणयिनो देवदेवस्य धीमतः।
धर्मार्थानां प्रवक्तारो ह्यीशानस्य कलौ युगे॥ २॥
कियन्तो देवदेवस्य शिष्याः कलियुगेऽपि वै।
एतत्सर्वं समासेन सूत वक्तुमिहार्हसि॥ ३॥

हे सूत! वे व्यास वेदों की शाखाओं के प्रणेता हैं। कलियुग में देवाधिदेव, धीमान्, ईश्वर के धर्म हेतु जितने अवतार हुए तथा कलियुग में उन देवाधिदेव के कितने शिष्य हुए हैं? यह सब हमें आप संक्षेप में बताने की कृपा करें।

सूत उवाच

मनुः स्वायम्भुवः पूर्वं ततः स्वारोचिषो मतः।
उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुषस्तथा॥ ४॥
षडेते मनवोऽतीताः साम्प्रतं तु रवेः सुतः।
वैवस्वतोऽयं सप्तैतत्सप्तमं वर्त्तते परम्॥ ५॥

सूत ने कहा— सर्वप्रथम स्वायम्भुव मनु हुए। उनके पश्चात् स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत तथा चाक्षुष हुए। ये छः मनु बीत चुके हैं, सम्प्रति सूर्य के पुत्र सप्तम वैवस्वत मनु का यह सप्तम मन्वन्तर चल रहा है।

स्वायम्भुवं तु कथितं कल्पादावन्तरं मया।
अत ऊर्ध्वं निबोधध्वं मनोः स्वारोचिषस्य तु॥ ६॥

कल्प के प्रारम्भ में हुए स्वायम्भुव मन्वन्तर को मैं बता दिया है। अब इसके अनन्तर स्वारोचिष मनु का मन्वन्तर समझ लो।

पारावताश्च तुषिता देवाः स्वारोचिषेऽन्तरे।
विपश्चिन्नाम देवेन्द्रो बभूवासुरमर्दनः॥ ७॥
ऊर्जस्तम्भस्तथा प्राणो दान्तोऽथ ऋषभस्तथा।
तिमिरश्चार्वरीवांश्च सप्त सप्तर्षयोऽभवन्॥ ८॥

स्वारोचिष मन्वन्तर में पारावत तथा तुषित नामक देवता हुए तथा असुरों का मर्दन करने वाले विपश्चित् नामक इन्द्र हुए। उसमें ऊर्ज, स्तम्भ, प्राण, दान्त, ऋषभ, तिमिर तथा अर्वरीवान् नाम से सप्तर्षि प्रसिद्ध हुए।

चैत्रकिम्पुरुषाद्यास्तु सुताः स्वारोचिषस्य तु।
द्वितीयमेतदाख्यातमन्तरं शृणु चोत्तमम्॥ ९॥

स्वारोचिष के चैत्र और किम्पुरुष आदि पुत्र हुए। यह द्वितीय मन्वन्तर कहा गया, अब उत्तम मनु के विषय में सुनो।

तृतीयेऽप्यन्तरे चैव उत्तमो नाम वै मनुः।
सुशान्तिस्तत्र देवेन्द्रो बभूवामित्रकर्षणः॥ १०॥
सुधामानस्तथा सत्याः शिवश्चाथ प्रतर्दनः।
वशवर्तिनः पञ्चैते गणा द्वादशकाः स्मृताः॥ ११॥

तृतीय मन्वन्तर में भी उत्तम नाम के मनु हुए। वहीं पर शत्रुविनाशक सुशान्ति नामक देवेन्द्र हुए थे। सुधामा, सत्य, शिव, प्रतर्दन तथा वशवर्ती— नामक देव हुए। ये सभी पाँच द्वादशक नाम के गणसमुदाय के रूप में हुए थे, ऐसा कहा जाता है।

रजोगात्रोर्ध्वबाहुश्च सवनश्चानघस्तथा।
सुतपाः शक्र इत्येते सप्त सप्तर्षयोऽभवन्॥ १२॥
तामसस्यान्तरे देवाः सुरापाहरयस्तथा।[1]
सत्याश्च सुधियश्चैव सप्तविंशतिका गणाः॥ १३॥
शिबिरिन्द्रस्तथैवासीच्छतयज्ञोपलक्षणः।
बभूव शंकरे भक्तो महादेवार्चने रतः॥ १४॥

रजस, गात्र, ऊर्ध्वबाहु, सवन, अनघ, सुतपस् और शक्र— ये सात सप्तर्षि हुए। तामस मन्वन्तर में सुरापा हरि, सत्य और सुधी— नाम वाले सत्ताईस गणदेवता हुए। सौ यज्ञ करने वाले शिबि नामक इन्द्र हुए। वे शङ्कर के भक्त तथा महादेव की पूजा में निरत रहते थे।

ज्योतिर्द्धाम पृथुकल्पश्चैत्रोऽग्निर्वसनस्तथा।
पीवरस्त्वृषयो ह्येते सप्त तत्रापि चान्तरे॥ १५॥

उस मन्वन्तर में भी ज्योतिर्धाम, पृथक्, कल्प, चैत्र, अग्नि, वसन तथा पीवर नामक सप्तर्षि हुए।

---

1. यहाँ मूल में सुरायासहरा पाठ मिलता है, जो उचित नहीं जान पड़ता। क्योंकि ये ही श्लोक वामन पुराण के तृतीय अध्याय में उद्धृत हैं, अतः हमने वही पाठ रखा है।

पञ्चमे चापि विप्रेन्द्रा रैवतो नाम नामतः।
मनुर्विभुश्च तत्रेन्द्रो बभूवासुरमर्दनः॥ १६॥
अमिता भूतयस्तत्र वैकुण्ठाश्च सुरोत्तमाः।
एते देवगणास्तत्र चतुर्दश चतुर्दश॥ १७॥

हे विप्रेन्द्रो! पञ्चम मन्वन्तर में रैवत नामक मनु तथा असुरविनाशक विभु नामक इन्द्र हुए। अमित, भूति, और वैकुण्ठ नामक सुरश्रेष्ठ चौदह-चौदह की संख्या में गणदेवता हुए।

हिरण्यरोमा वेदश्रीरूर्ध्वबाहुस्तथैव च।
वेदबाहुः सुबाहुश्च सपर्जन्यो महामुनिः॥ १८॥
एते सप्तर्षयो विप्रास्तत्रासन् रैवतेऽन्तरे।

हे विप्रो! हिरण्यरोमा, वेदश्री, ऊर्ध्वबाहु, वेदबाहु, सुबाहु, सपर्जन्य और महामुनि नाम से प्रसिद्ध ये सप्तर्षि रैवत मन्वन्तर में हुए थे।

स्वारोचिषश्चोत्तमश्च तामसो रैवतस्तथा॥ १९॥
प्रियव्रतान्विता ह्येते चत्वारो मनवः स्मृताः।
षष्ठे मन्वन्तरे चापि चाक्षुषस्तु मनुर्द्विजाः॥ २०॥

स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत— ये चार मनु प्रियव्रत के वंशज कहे गये हैं। हे द्विजगण! चाक्षुष नामक मनु छठे मन्वन्तर में हुए थे।

मनोजवस्तथैवेन्द्रो देवांश्चैव निबोधत।
आद्याः प्रभूतभाव्याश्च प्रथनाश्च दिवौकसः॥ २१॥
महानुभावा लेख्याश्च पञ्च देवगणाः स्मृताः।
विरजश्च हविष्मांश्च सोमो मनुसमः स्मृतः॥ २२॥
अविनामा सविष्णुश्च सप्तासन्नृषयः शुभाः।
विवस्वतः सुतो विप्राः श्राद्धदेवो महाद्युतिः॥ २३॥

उसी प्रकार मनोजव नामक इन्द्र हुए तथा अब देवगणों को भी जान लो। आद्य, प्रभूत, भाव्य, प्रथन और लेख्य— ये पाँच महानुभाव देवगण कहे गये हैं। विरज, हविष्मान् सोम, मनु, सम, अविनामा और सविष्णु— ये कल्याणकारी सात ऋषि हुए हैं। हे विप्रो! विवस्वान् के पुत्र महाकान्तिमान् श्राद्धदेव हुए थे।

मनुः संवर्त्तनो विप्राः साम्प्रतं सप्तमेऽन्तरे।
आदित्या वसवो रुद्रा देवास्तत्र मरुद्गणाः॥ २४॥

हे विप्रो! सम्प्रति सातवें मन्वन्तर में वही मनु हैं और वहां आदित्य, वसु, रुद्र मरुद्गण देवता हैं।

पुरन्दरस्तथैवेन्द्रो बभूव परवीरहा।
वसिष्ठः कश्यपश्चात्रिर्जमदग्निश्च गौतमः॥ २५॥
विश्वामित्रो भरद्वाजः सप्त सप्तर्षयोऽभवन्।

उस मन्वन्तर में शत्रुवीरों का नाश करने वाले पुरन्दर इन्द्र हैं। वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि, जमदग्नि, गौतम, विश्वामित्र तथा भरद्वाज— ये सात सप्तर्षि हुए हैं।

विष्णुशक्तिरनौपम्या सत्त्वोद्रिक्ता स्थिता स्थितौ॥ २६॥
तदंशभूता राजानः सर्वे च त्रिदिवौकसः।
स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वं प्रकृत्यां मानसः सुतः॥ २७॥
रुचेः प्रजापतेर्जज्ञे तदंशेनाभवद्द्विजाः।
ततः पुनरसौ देवः प्राप्ते स्वारोचिषेऽन्तरे॥ २८॥
तुषितायां समुत्पन्नस्तुषितैः सह दैवतैः।

इसमें विष्णु की अनुपम, सत्त्वगुणाश्रयी शक्ति रक्षा के लिए अवस्थित है। सभी देवगण और राजागण उसी के अंश से उत्पन्न हैं। हे द्विजो! स्वायम्भुव मन्वन्तर में पूर्व काल में प्रकृति के गर्भ से रुचि नामक प्रजापति का एक मानस पुत्र हुआ। अनन्तर वे ही देव पुनः स्वारोचिष मन्वन्तर उपस्थित होने पर तुषित देवताओं के साथ तुषिता में उत्पन्न हुए।

उत्तमे त्वन्तरे विष्णुः सत्यैः सह सुरोत्तमः॥ २९॥
सत्यायामभवत्सत्यः सत्यरूपो जनार्दनः।

उत्तम नामक मनु के संवत्सर में सत्यस्वरूप देवश्रेष्ठ जनार्दन विष्णु सत्य नामक देवों के साथ सत्या के गर्भ से सत्य नाम से उत्पन्न हुए।

तामसस्यान्तरे चैव सम्प्राप्ते पुनरेव हि॥ ३०॥
हर्यायां हरिभिर्देवैर्हरिरेवाभवद्धरिः।

तामस मन्वन्तर प्राप्त होने पर पुनः हरि (विष्णु) ने (मनुपत्नी) हर्या के गर्भ से हरि नाम से जन्म ग्रहण किया।

रैवतेऽप्यन्तरे चैव सङ्कल्पान्मानसो हरिः॥ ३१॥
सम्भूतो मानसैः सार्द्धं देवैः सह महाद्युतिः।

रैवत मनु के काल में भी संकल्प से ही मानसदेवों के साथ महातेजस्वी हरि मानस नाम से उत्पन्न हुए।

चाक्षुषेऽप्यन्तरे चैव वैकुण्ठः पुरुषोत्तमः॥ ३२॥
विकुण्ठायामसौ जज्ञे वैकुण्ठैर्दैवतैः सह।
मन्वन्तरे च सम्प्राप्ते तथा वैवस्वतेऽन्तरे॥ ३३॥
वामनः कश्यपाद्विष्णुरदित्यां सम्बभूव ह।

इसके बाद चाक्षुष मन्वन्तर में भी पुरुषोत्तम विष्णु वैकुण्ठ देवताओं के साथ विकुण्ठा से वैकुण्ठ नाम से उत्पन्न हुए। उसी प्रकार वैवस्वत मन्वन्तर के प्राप्त होने पर विष्णु कश्यप से अदिति में वामनरूप में उत्पन्न हुए।

त्रिभि: क्रमैरिमाँल्लोकाञ्जित्वा येन महात्मना॥ ३४॥
पुरन्दराय त्रैलोक्यं दत्तं निहतकण्टकम्।
इत्येतास्तनवस्तस्य सप्तमन्वन्तरेषु वै॥ ३५॥

उन महात्मा वामन ने तीन पाद से इन तीन लोकों को जीतकर इन्द्र को निष्कण्टक त्रैलोक्य का राज्य दे दिया था। इस प्रकार सात मन्वन्तरों में विष्णु का ही शरीर सात रूपों में प्रकट हुआ।

सप्त चैवाभवन्विप्रा याभि: संरक्षिता: प्रजा:।
यस्माद्विश्वमिदं कृत्स्नं वामनेन महात्मना॥ ३६॥
तस्मात्सर्वै: स्मृतो नूनं देवै: सर्वेषुदैत्यहा।
एष सर्वं सृजत्यादौ पाति हन्ति च केशव:॥ ३७॥

हे विप्रो! उन्हींके द्वारा प्रजाएँ संरक्षित हुईं। महात्मा वामन ने इस सम्पूर्ण विश्व को नाप लिया था। इसलिए सभी देवों द्वारा सब काल में दैत्यसंहारक वामन का ही स्मरण करते हैं। ये केशव ही सर्वप्रथम प्राणियों की सृष्टि करते हैं, फिर पालन और संहार करते हैं।

भूतान्तरात्मा भगवान्नारायण इति श्रुति:।
एकांशेन जगत्सर्वं व्याप्य नारायण: स्थित:॥ ३८॥

भगवान् नारायण समस्त भूतों की आत्मा में रहते हैं। वे नारायण अपने एक अंश से सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त करके स्थित हैं।

चतुर्द्धा संस्थितो व्यापी सगुणो निर्गुणोऽपि च।
एका भगवतो मूर्तिर्ज्ञानरूपा शिवामला॥ ३९॥

ये निर्गुण भी सगुणरूप में चार रूपों में संस्थित होकर व्यापक हैं। भगवान् की एक मूर्ति ज्ञानरूप, कल्याणरूप एवं निर्मल है।

वासुदेवाभिधाना सा गुणातीता सुनिष्कला।
द्वितीया कालसंज्ञान्या तामसी शिवसंज्ञिता॥ ४०॥
निहन्त्री सकलस्यान्ते वैष्णवी परमा तनु:।
सत्त्वोद्रिक्ता तृतीयान्या प्रद्युम्नेति च संज्ञिता॥ ४१॥

वासुदेव नाम की वह मूर्ति गुणातीत और अत्यन्त शुद्ध है। उनकी दूसरी मूर्ति कालसंज्ञक तथा अन्य तामसी मूर्ति शिवसंज्ञक है। वह अन्त में सबका संहार करती है। वैष्णवी मूर्ति परम श्रेष्ठ है। सत्त्वगुणमयी अन्य जो तीसरी मूर्ति है वह प्रद्युम्नसंज्ञक है।

जगत्संस्थापयेद्विश्वं सा विष्णो: प्रकृतिर्ध्रुवा।
चतुर्थी वासुदेवस्य मूर्तिर्ब्रह्मेति संज्ञिता॥ ४२॥
राजसी चानिरुद्धस्य पुरुषसृष्टिकारिता।
य: स्वपित्यखिलं हत्वा प्रद्युम्नेन सह प्रभु:॥ ४३॥

वह विष्णु की निश्चल प्रकृति है और वही समस्त विश्व को संस्थापन करती है। वासुदेव की चौथी मूर्ति 'ब्रह्मा' नाम से कही जाती है। वह अनिरुद्ध की पुरुषसृष्टिकर्तृ राजसी मूर्ति है, जो प्रभु सबका संहार करके प्रद्युम्न के साथ सोते हैं।

नारायणाख्यो ब्रह्मासौ प्रजासर्गं करोति स:।
यासौ नारायणतनु: प्रद्युम्नाख्या शुभा स्मृता॥ ४४॥
तया सम्मोहयेद्विश्वं सदेवासुरमानुषम्।
तत: सैव जगन्मूर्ति: प्रकृति: परिकीर्त्तिता॥ ४५॥

वे नारायणसंज्ञक ब्रह्मा प्रजा की सृष्टि करते हैं। जो वह नारायण की शुभ मूर्ति प्रद्युम्न नाम से प्रसिद्ध है, वह देव, दानव, मनुष्य सहित विश्व को संमोहित करती है। इसलिए वही जगन्मूर्ति प्रकृति कही गई है।

वासुदेवो ह्यनन्तात्मा केवलो निर्गुणो हरि:।
प्रधानं पुरुषं काल: तत्त्वत्रयमनुत्तमम्॥ ४६॥
वासुदेवात्मकं नित्यमेतद्विज्ञाय मुच्यते।

वासुदेव हरि तो केवल निर्गुण और अनन्तात्मा हैं। इसी प्रकार प्रधान (प्रकृति) पुरुष और काल— ये तीनों ही सर्वोत्तम तत्त्व हैं। ये भी वासुदेवस्वरूप ही हैं अत: नित्य हैं। इन सब को जो विशेषरूप से जान लेता है, वह मुक्त हो जाता है।

एकञ्चेदं चतुष्पादं चतुर्द्धा पुनरच्युत:॥ ४७॥
बिभेद वासुदेवोऽसौ प्रद्युम्नो भगवान् हरि:।
कृष्णद्वैपायनो व्यासो विष्णुर्नारायण: स्वयम्॥ ४८॥
अवातरत्स सम्पूर्णं स्वेच्छया भगवान् हरि:।
अनाद्यन्तं परं ब्रह्म न देवा ऋषयो विदु:॥ ४९॥
एकोऽयं वेद भगवान् व्यासो नारायण: प्रभु:।

प्रद्युम्नस्वरूप भगवान् वासुदेव हरि जो अच्युत (अस्खलित) हैं, स्वयं एक होते हुए भी चतुष्पादात्मक अपने स्वरूप को चार रूपों (वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध) में विभक्त किया। विष्णु नारायण स्वयं हरि ही स्वेच्छा से कृष्णद्वैपायन व्यासरूप में अवतरित हुए। अनाद्यन्त परब्रह्म को ऋषि या देवता कोई भी नहीं जानते हैं। एकमात्र नारायण, प्रभु भगवान् व्यास ही जानते हैं।

इत्येतद्विष्णुमाहात्म्यं कथितं मुनिसत्तमा:।
एतत्सत्यं पुन: सत्यमेवं ज्ञात्वा न मुह्यति॥५०॥

मुनिश्रेष्ठो! इस प्रकार मैंने विष्णु का माहात्म्य बता दिया। यह सत्य है, पुन: सत्य है, ऐसा जान लेने पर व्यक्ति मोह नहीं होता।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वभागे मन्वन्तरकीर्तने विष्णुमाहात्म्यं नामैकपञ्चाशोऽध्याय:॥५१॥

द्विपञ्चाशोऽध्याय:

(वेदशाखाप्रणयन)

सूत उवाच

अस्मिन्मन्वन्तरे पूर्वं वर्तमाने महान् प्रभु:।
द्वापरे प्रथमे व्यासो मनु: स्वायम्भुवो मत:॥१॥
बिभेद बहुधा वेदं नियोगाद्ब्रह्मण: प्रभो:।
द्वितीय द्वापरे चैव वेदव्यास: प्रजापति:॥२॥

सूतजी बोले— इस वर्तमान मन्वन्तर से पूर्व प्रथम द्वापर युग में महान् प्रभु स्वायम्भुव मनु व्यास माने गये हैं। प्रभु ब्रह्मा के नियोग से उन्होंने वेद को अनेक भागों में विभक्त किया था। द्वितीय द्वापर युग में प्रजापति वेदव्यास हुए।

तृतीये चोशना व्यासश्चतुर्थे स्याद्बृहस्पति:।
सविता पञ्चमे व्यास: षष्ठे मृत्यु: प्रकीर्तित:॥३॥
सप्तमे च तथैवेन्द्रो वसिष्ठश्चाष्टमे मत:।
सारस्वतश्च नवमे त्रिधामा दशमे मत:॥४॥

तीसरे द्वापर में शुक्र व्यास हुए और चौथे में बृहस्पति। पाँचवें में सूर्य व्यास हुए और छठें में मृत्यु व्यासरूप में प्रसिद्ध हुए। सप्तम द्वापर में इन्द्र व्यास हुए और आठवें में वसिष्ठ। नवम द्वापर में सारस्वत और दशम में त्रिधामा व्यास हुए।

एकादशे तु ऋषभ: सुतेजा द्वादशे स्मृत:।
त्रयोदशे तथा धर्म: सुचक्षुस्तु चतुर्दशे॥५॥
त्र्यारुणि: पञ्चदशे षोडशे तु धनञ्जय:।
कृतञ्जय: सप्तदशे ह्यष्टादशे ऋतञ्जय:॥६॥
ततो व्यासो भरद्वाजस्तस्मादूर्ध्वं तु गौतम:।
वाचश्रवाश्चैकविंशे तस्मान्नारायण: पर:॥७॥

ग्यारहवें में ऋषभ नामक व्यास हुए और द्वादश में सुतेजा हुए। तेरहवें में धर्म और चौदहवें में सुचक्षु हुए। पन्द्रहवें में त्र्यारुणि और सोलहवें में धनञ्जय व्यास हुए। सत्रहवें में कृतञ्जय तथा अठारहवें में ऋतञ्जय व्यास हुए। तदनन्तर (उन्नीसवें) भरद्वाज व्यास हुए। उसके पश्चात् गौतम व्यास हुए। इक्कीसवें में वाचश्रवा और तत्पश्चात् (बाइसवें संवत्सर में) नारायण हुए।

तृणबिन्दुस्त्रयोविंशे वाल्मीकिस्तत्पर: स्मृत:।
पञ्चविंशे तथा प्राप्ते यस्मिन्वै द्वापरे द्विजा:॥८॥
पराशरसुतो व्यास: कृष्णद्वैपायनोऽभवत्।
(सप्तविंशे तथा व्यासो जातूकर्णो महामुनि:।)
स एव सर्ववेदानां पुराणानां प्रदर्शक:॥९॥

तृणबिन्दु तेइसवें द्वापर युग में हुए। तत्पश्चात् (चौबीसवें) वाल्मीकि व्यास कहे गये। हे द्विजो! पचीसवें द्वापर के आने पर शक्ति की उत्पत्ति हुई। इसके बाद पराशर छब्बीसवें द्वापर में तथा सत्ताईसवें द्वापर में जातूकर्ण नामक व्यास हुए। अट्ठाइसवें पराशरपुत्र कृष्णद्वैपायन व्यास हुए। वे ही समस्त वेदों तथा पुराणों के प्रदर्शक हुए।

पाराशर्यो महायोगी कृष्णद्वैपायनो हरि:।
आराध्य देवमीशानं दृष्ट्वा स्तुत्वा त्रिलोचनम्॥१०॥
तत्प्रसादादसौ व्यासं वेदानामकरोत्प्रभु:॥११॥

पराशर-पुत्र व्यास महायोगी हैं। वे कृष्णद्वैपायन नाम से प्रसिद्ध स्वयं हरि हैं। उन्होंने त्रिलोचन ईशानदेव शङ्कर की आराधना करके उनके प्रत्यक्ष दर्शन किये और स्तुति करके उन्हीं की कृपा से प्रभु ने वेदों का विभाजन किया।

अथ शिष्यान् स जग्राह चतुरो वेदपारगान्।
जैमिनिञ्च सुमन्तुञ्च वैशम्पायनमेव च॥१२॥
पैलं तेषां चतुर्थञ्च पञ्चमं मां महामुनि:।
ऋग्वेदपाठकं पैलं जग्राह स महामुनि:॥१३॥

अनन्तर उन्होंने वेद-पारंगत चार शिष्यों को वे वेदविभाग ग्रहण कराये अर्थात् उन्हें पढ़ाया। वे चार— जैमिनि, सुमन्तु, वैशम्पायन और चतुर्थ पैल को (एक-एक वेद पढ़ाया)। महामुनि ने पञ्चम शिष्य मुझ सूत को (पुराण पढ़ाकर) तैयार किया। उन महामुनि पैल नामक शिष्य को ऋग्वेद पढ़ने वाले के रूप में स्वीकार किया।

यजुर्वेदप्रवक्तारं वैशम्पायनमेव च।
जैमिनिं सामवेदस्य पाठकं सोऽन्वपद्यत॥१४॥
तथैवाथर्ववेदस्य सुमन्तुमृषिसत्तमम्।
इतिहासपुराणानि प्रवक्तुं मामयोजयत्॥१५॥

वैशम्पायन को यजुर्वेद का प्रवक्ता तथा जैमिनि को सामवेद का पाठक बनाया। उसी प्रकार अथर्ववेद का प्रवक्ता ऋषिश्रेष्ठ सुमन्तु को बनाया और इतिहास पुराणों का प्रवचन करने के लिए मुझे नियुक्त किया।

एक आसीद्यजुर्वेदस्तं चतुर्द्धा प्रकल्पयत्।
चातुर्होत्रमभूत्तस्मिंस्तेन यज्ञमथाकरोत्॥ १६॥

यजुर्वेद एक था। उसे चार भागों में विभक्त किया। उसमें चतुर्होत्र नामक यज्ञ का विधान हुआ, वह यज्ञ भी वेदव्यास द्वारा किया गया।

आध्वर्यवं यजुर्भिः स्यादग्निहोत्रं द्विजोत्तमाः।
औद्गात्रं सामभिश्चक्रे ब्रह्मत्वञ्चाप्यथर्वभिः॥ १७॥

हे द्विजश्रेष्ठो! यजुर्मन्त्रों से आध्वर्यव अग्निहोत्र सम्पन्न हुआ। साममन्त्रों से उद्गाता का कर्म और तथा अथर्वमन्त्रों से ब्रह्मा के कर्म को कल्पित किया।

ततः स ऋच उद्धृत्य ऋग्वेदं कृतवान् प्रभुः।
यजूंषि तु यजुर्वेदं सामवेदं तु सामभिः॥ १८॥

तदनन्तर प्रभु व्यास ने यज्ञ में ऋचाओं को उद्धृत करके ऋग्वेद की रचना की। यजुर्मन्त्रों को उद्धृत करके यजुर्वेद और साममन्त्रों द्वारा सामवेद का प्रणयन किया।

एकविंशतिभेदेन ऋग्वेदं कृतवान् पुरा।
शाखानान्तु शतेनैव यजुर्वेदमथाकरोत्॥ १९॥
सामवेदं सहस्रेण शाखानां प्रविभेद सः।
अथर्वाणमथो वेदं विभेद कुशकेतनः॥ २०॥
भेदैरष्टादशैर्व्यासः पुराणं कृतवान् प्रभुः।
सोऽयमेकश्चतुष्पादो वेदः पूर्वं पुरातनः॥ २१॥
ओंकारो ब्रह्मणो जातः सर्वदोषविशोधनः।

प्राचीन काल में ऋग्वेद को इक्कीस भागों में बाँटा और यजुर्वेद को सौ शाखाओं में विभक्त किया। पुनः कुशरूपी घर वाले व्यास ने सामवेद को सहस्र शाखाओं में विभक्त किया और अथर्ववेद को भी (नौ शाखाओं में) विभक्त किया। व्यास ने अठारह प्रकार के पुराणों की रचना की। इस प्रकार पूर्वकाल में एक ही पुरातन वेद था, जिसे चार पादों में विभक्त किया गया। ओंकार ब्रह्म-परमात्मा से उत्पन्न हुआ है, अतएव सर्वदोषों का शुद्धिकारक है।

वेदविद्योऽथ भगवान्वासुदेवः सनातनः॥ २२॥
स गीयते परो वेदैर्यो वेदैनं स वेदवित्।
एतत्परतरं ब्रह्म ज्योतिरानन्दमुत्तमम्॥ २३॥
वेदवाक्योदितं तत्त्वं वासुदेवः परम्पदम्।
वेदविद्यामिमं वेत्ति वेदं वेदपरो मुनिः॥ २४॥

सनातन भगवान् वासुदेव तो वेदों के द्वारा ही ज्ञेय हैं। इन्हीं परम पुरुष का गान वेदों द्वारा किया जाता है। जो इस वेद विद्या को जानता है, वही वेदवित् है और वही परम तत्त्व को जानता है। वे भगवान् वासुदेव परात्पर, ब्रह्म, ज्योतिरूप और आनन्दस्वरूप हैं और वेदवाक्यों द्वारा कथित परम पदरूप हैं। वेदपरायण मुनि इन्हें वेद द्वारा ज्ञेय और वेदस्वरूप जानते हैं।

अवेदं परमं वेत्ति वेदनिःश्वासकृत्परः।
स वेदवेद्यो भगवान्वेदमूर्तिर्महेश्वरः॥ २५॥

वेद में निष्ठावान् पुरुष परमेश्वररूप होकर परम श्रेष्ठ अवेद्य तत्त्व को जान लेता है। वे वेदमूर्ति भगवान् महेश्वर वेदों से ही जानने योग्य हैं।

स एव वेद्यो वेदश्च तमेवाश्रित्य मुच्यते।
इत्येतदक्षरं वेदमोंकारं वेदमव्ययम्॥
अवेदञ्च विजानाति पाराशर्यो महामुनिः॥ २६॥

वही वेद है, जो जानने योग्य है। उसी का आश्रय लेकर प्राणी मुक्त होता है। इसी प्रकार अक्षर अविनाशी ओंकार तत्त्व भी जानने योग्य और अव्यय वेदस्वरूप है। पराशर पुत्र महामुनि व्यास इसे वेदरहित (परमात्मरूप में) विशेष रूप से जानते हैं।

इति श्रीकूर्मपुराणे वेदशाखाप्रणयनं नाम
द्विपञ्चाशोऽध्यायः॥ ५२॥

त्रिपञ्चाशोऽध्यायः
(महादेव के अवतारों का वर्णन)

सूत उवाच

वेदव्यासावताराणि द्वापरे कथितानि तु।
महादेवावताराणि कलौ शृणुत सुव्रताः॥ १॥

सूत बोले— हे सुव्रतो! द्वापरयुग में वेदव्यास के अवतारों के संबन्ध में कहा गया, अब कलियुग में महादेव के अवतारों के विषय में सुनो।

आद्ये कलियुगे श्वेतो देवदेवो महाद्युतिः।
नाम्ना हिताय विप्राणामभूद्वैवस्वतेऽन्तरे॥ २॥

हिमवच्छिखरे रम्ये सकले पर्वतोत्तमे।
तस्य शिष्याः प्रशिष्याश्च बभूवुरमितप्रभाः॥३॥

वैवस्वत मन्वन्तर में ब्राह्मणों के कल्याणार्थ प्रथम कलियुग में देवाधिदेव, महाद्युतिमान् श्वेत (शिव) पर्वतश्रेष्ठ रमणीय हिमालय के शिखर पर उत्पन्न हुए। उनके अति तेजस्वी अनेक शिष्य और प्रशिष्य हुए।

श्वेतः श्वेतशिखश्चैव श्वेतास्यः श्वेतलोहितः।
चत्वारस्ते महात्मानो ब्राह्मणा वेदपारगाः॥४॥

उनमें श्वेत, श्वेतशिख, श्वेतास्य और श्वेतलोहित— ये चार ब्राह्मण महात्मा वेद के पारगामी विद्वान् थे।

सुतारो मदनश्चैव सुहोत्रः कङ्कणस्तथा।
लोकाक्षिरथ योगीन्द्रो जैगीषव्योऽथ सप्तमे॥५॥

उसी प्रकार (द्वितीय से लेकर षष्ठ कलियुग पर्यंन्त क्रमशः) सुतार, मदन, सुहोत्र, कङ्कण, लोकाक्षि तथा योगीन्द्र— ये महादेव के अवतार हुए। सप्तम कलियुग में जैगीषव्य महादेव के अवतार हुए।

अष्टमे दधिवाहः स्यान्नवमे ऋषभः प्रभुः।
भृगुस्तु दशमे प्रोक्तस्तस्मादुग्रः पुरः स्मृतः॥६॥
द्वादशेऽत्रिसमाख्यातो बाली चाथ त्रयोदशे।
चतुर्दशे गौतमस्तु वेददर्शी ततः परः॥७॥

आठवें कलियुग में दधिवाह और नवम कलियुग में प्रभु ऋषभ हुए। दशम में भृगु कहे गये और एकादश में उग्र हुए। द्वादश में अत्रि नाम से विख्यात हुए, त्रयोदश में बाली, चतुर्दश में गौतम और पञ्चदश में वेददर्शी हुए।

गोकर्णश्चाभवत्तस्माद् गुहावासः शिखण्डधृक्।
यजमाल्यट्टहासश्च दारुको लाङ्गली तथा॥८॥

सोलहवें कलियुग में गोकर्ण और सत्रहवें में गुहावासी शिखण्डभृक्, अठारहवें में यजमाली, उन्नीसवें में अट्टहास, बीसवें में दारुक और इक्कीसवें में लाङ्गली हुए।

महायामो मुनिः शूली डिण्डमुण्डीश्वरः स्वयम्।
सहिष्णुः सोमशर्मा च नकुलीश्वर एव च॥९॥

(आगे क्रमशः) महायाम, मुनि, शूली, स्वयं डिण्डमुण्डीश्वर, सहिष्णु, सोमशर्मा और अट्ठाइसवें कलियुग में नकुलीश्वर महादेव के अवतार हुए।

(वैवस्वतेऽन्तरे शम्भोरवतारास्त्रिशूलिनः।
अष्टाविंशतिराख्याता ह्यन्ते कलियुगे प्रभोः।
तीर्थकायावतारे स्याद्देवेशो नकुलीश्वरः॥)

तत्र देवाधिदेवस्य चत्वारः सुतपोधनाः।
शिष्या बभूवुश्चान्येषां प्रत्येकं मुनिपुङ्गवाः॥१०॥
प्रसन्नमनसो दान्ता ऐश्वरीं भक्तिमास्थिताः।
क्रमेण तान्प्रवक्ष्यामि योगिनो योगवित्तमान्॥११॥

(वैवस्वत मन्वन्तर में प्रभु, त्रिशूली, शम्भु के अष्टादश अवतार कहे गये। अन्तिम कलियुग में कायावतारतीर्थ में देवेश्वर, नकुलीश्वर महादेव के अवतार होंगे।) वहाँ देवाधिदेव के महातपस्वी चार शिष्य होंगे। उनमें से प्रत्येक के मुनिश्रेष्ठ शिष्य होंगे। वे सब प्रसन्नचित्त, इन्द्रियनिग्रही और ईश्वर में भक्तिपरायण होंगे। उन योगियों एवं अत्यन्त योगवेत्ताओं को मैं क्रमशः बताऊँगा।

(श्वेतःश्वेतशिखश्चैव श्वेतास्यः श्वेतलोहितः)।
दुन्दुभिः शतरूपश्च ऋचीकः केतुमांस्तथा।
विशोकश्च विकेशश्च विशाखः शापनाशनः॥१२॥
सुमुखो दुर्मुखश्चैव दुर्दमो दुरतिक्रमः।
सनकः सनातनश्चैव तथैव च सनन्दनः॥१३॥
दालभ्यश्च महायोगी धर्मात्मानो महौजसः।
सुधामा विरजाश्चैव शंखवाण्यज एव च॥१४॥

इनके नाम हैं— (श्वेत, श्वेतशिख, श्वेतास्य, श्वेतलोहित), दुन्दुभि, शतरूप, ऋचीक, केतुमान्, विशोक, विकेश, विशाख, शापनाशन, सुमुख, दुर्मुख, दुर्दम, दुरतिक्रम, सनक, सनातन तथा सनन्दन, महायोगी, धर्मात्मा एवं अत्यन्त, तेजस्वी दालभ्य, सुधामा विरजा, शंखवाण्यज।

सारस्वतस्तथा मेघो धनवाहः सुवाहनः।
कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुः पञ्चशिखो मुनिः॥१५॥
पराशरश्च गर्गश्च भार्गवश्चाङ्गिरास्तथा।
बलबन्धुर्निरामित्रः केतुशृङ्गस्तपोधनाः॥१६॥
लम्बोदरश्च लम्बश्च विक्रोशो लम्बकः शुकः।
सर्वज्ञः समबुद्धिश्च साध्यासाध्यस्तथैव च॥१७॥
सुधामा काश्यपश्चाथ वसिष्ठो वरिजास्तथा।
अत्रिरुग्रतमा चैव श्रवणोऽथ सुवैद्यकः॥१८॥
कुणिश्च कुणिबाहुश्च कुशरीरः कुनेत्रकः।
कश्यपो ह्युशना चैव च्यवनोऽथ बृहस्पतिः॥१९॥
उत्तथ्यो वामदेवश्च महाकालो महानिलिः।
वाजश्रवाः सुकेशश्च श्यावाश्वः सुपथीश्वरः॥२०॥
हिरण्यनाभः कौशिल्योऽकाक्षुः कुथुमिस्तथा।
सुमन्तर्वचसो विद्वान् कबन्धः कुषिकन्धरः॥२१॥
प्लक्षो दर्वायणिश्चैव केतुमान् गौतमस्तथा।

भल्लाची मधुपिङ्गश्च श्वेतकेतुस्तपोधन:॥२२॥
उषिधा बृहदश्वश्च देवल: कविरेव च।
शालहोत्राग्निवेश्यस्तु युवनाश्व: शरद्वसु:॥२३॥
छगल: कुण्डकर्णश्च कुन्तश्चैव प्रवाहक:।
उलूको विद्युतश्चैव शाद्वको ह्याश्वलायन:॥२४॥
अक्षपाद: कुमारश्च ह्युलूको वसुवाहन:।
कुणिकश्चैव गर्गश्च मित्रको रुरुरेव च॥२५॥

सारस्वत, मोघ, धनवाह, सुवाहन, कपिल, आसुरि, वोढु, मुनि पञ्चशिख, पराशर, गर्ग, भार्गव, अङ्गिरा, चलबन्धु, निरामित्र तथा केतुशृङ्ग ये सब तपस्या के धनी थे, इनके अतिरिक्त लम्बोदर, लम्ब, विक्रोश, लम्बक, शुक, सर्वज्ञ, समबुद्धि, साध्य और असाध्य, सुधामा, काश्यप, वसिष्ठ, वरिजा, अत्रि, उग्र, श्रवण, सुवैद्यक, कुणि, कुणिबाहु, कुशरीर, कुनेत्रक, कश्यप, उशना, च्यवन और बृहस्पति, उचास्य, वामदेव, महाकाल, महानिलि, वाजश्रवा, सुकेश, श्यावाश्व, सुपथीश्वर, हिरण्यनाभ, कौशिल्य, अकाक्षु, कुथुभिध, सुमन्तवर्चस, विद्वान्, कबन्ध, कुषिकन्ध, प्लक्ष, दर्वायणि, केतुमान्, गौतम, भल्लाची, मधुपिंग, तपोधन और श्वेतकेतु, उषिधा, बृहदश्व, देवल, कवि, शालहोत्र, अग्निवेश्य, युवनाश्व और शरद्वसु, छगल, कुण्डकर्ण, कुन्त, प्रवाहक, उलूक, विद्युत, शाद्वक, आश्वलायन, अक्षपाद, कुमार, उलूक, वसुवाहन, कुणिक, गर्ग, मित्रक और रुरु।

शिष्या एते महात्मान: सर्वावर्तेषु योगिनाम्।
विमला ब्रह्मभूयिष्ठा ज्ञानयोगपरायणा:॥२६॥
कुर्वन्ति चावताराणि ब्राह्मणानां हिताय च।
योगेश्वराणामादेशाद्वेदसंस्थापनाय वै॥२७॥

योगियों की सभी परम्पराओं में ये महात्मा शिष्य बताये हैं। ये निर्मल, ब्रह्मभूत तथा ज्ञानयोगपरायण होंगे। ये ब्राह्मणों के कल्याणार्थ और वेदों की स्थापना हेतु योगेश्वरों के आदेश से अवतार ग्रहण करते हैं।

ये ब्राह्मणा: संस्मरन्ति नमस्यन्ति च सर्वदा।
तर्पयन्त्यर्चयन्त्येतान् ब्रह्मविद्यामवाप्नुयु:॥२८॥

जो ब्राह्मण इनका स्मरण करते हैं और सदा नमस्कार करते हैं तथा जो इनका तर्पण करते हैं और अर्चना करते हैं, वे ब्रह्मविद्या को प्राप्त करते हैं।

इदं वैवस्वतं प्रोक्तमन्तरं विस्तरेण तु।
भविष्यति च सावर्णो दक्षसावर्ण एव च॥२९॥

इस वैवस्वत मन्वन्तर मैंने विस्तारपूर्वक वर्णन कर दिया, इसके बाद सावर्ण और दक्षसावर्ण मन्वन्तर होंगे।

दशमो ब्रह्मसावर्णो धर्म एकादश: स्मृत:।
द्वादशो रुद्रसावर्णो रोच्यनामा त्रयोदश:॥३०॥

तदनन्तर ब्रह्मसावर्ण दसवाँ और धर्मसावर्ण ग्यारहवाँ बताया गया है। बारहवाँ रुद्रसावर्ण और तेरहवाँ रोच्य नामक मन्वन्तर होगा।

भौत्यश्चतुर्दश: प्रोक्तो भविष्या मनव: क्रमात्।
अयं व: कथितो ह्यंश: पूर्वो नारायणेरित:॥३१॥
भूतैर्भव्यैर्वर्तमानैराख्यानैरुपबृंहित:।

चौदहवाँ मन्वन्तर भौत्य होगा। इन सबके क्रम से मनु होंगे। भूत, भविष्य और वर्तमान आख्यानों से वृद्धि को प्राप्त और नारायण द्वारा कथित इस पूर्व भाग का वर्णन मैंने कर दिया।

य: पठेच्छृणुयाद्वापि श्रावयेद्वा द्विजोत्तमान्॥३२॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते।

जो व्यक्ति इसका पाठ करेगा या सुनेगा या द्विजश्रेष्ठों को सुनायेगा, वह समस्त पापों से मुक्त होकर ब्रह्मलोक में पूजित होगा।

पठेद्देवालये स्नात्वा नदीतीरेषु चैव हि॥३३॥
नारायणं नमस्कृत्य भावेन पुरुषोत्तमम्।
नमो देवाधिदेवाय देवानां परमात्मने।
पुरुषाय पुराणाय विष्णवे प्रभविष्णवे॥३४॥

पुरुषोत्तम नारायण को श्रद्धापूर्वक नमस्कार करके नदी-तट पर स्नान करके देवालय में इसका पाठ करना चाहिए। देवों के देवाधिदेव, परमात्मा, पुराणपुरुष, सर्वनियन्ता विष्णु को नमस्कार है।

इति श्रीकूर्मपुराणे पूर्वार्द्धे त्रिपञ्चाशोऽध्याय:॥५३॥

॥इति कूर्मपुराणे पूर्वार्द्धं समाप्तम्॥

॥श्रीगणेशाय नमः॥

॥अथ कूर्मपुराणे उत्तरार्द्धं प्रारभ्यते॥

प्रथमोऽध्यायः

(ईश्वर-गीता)

ऋषय ऊचुः

भवता कथितः सम्यक् सर्गः स्वायम्भुवः प्रभो।
ब्रह्माण्डस्यादिविस्तारो मन्वन्तरविनिश्चयः॥ १॥
तत्रेश्वरेश्वरो देवो वर्णिभिर्धर्मतत्परैः।
ज्ञानयोगरतैर्नित्यमाराध्यः कथितस्त्वया॥ २॥
तत्त्वशेषसंसारदुःखनाशमनुत्तमम्।
ज्ञानं ब्रह्मैकविषयं तेन पश्येम तत्परम्॥ ३॥

ऋषियों ने कहा— हे प्रभु! आपने स्वायम्भुव मनु की सृष्टि का कथन सम्यक् प्रकार से कर दिया। ब्रह्माण्ड के प्रारम्भ का विस्तार और मन्वन्तर का निर्णय भी बताया गया है। उसमें धर्मतत्पर, ज्ञानयोग में निरत ब्रह्मचारियों के द्वारा नित्य आराध्य सर्वेश्वर देव का वर्णन भी आपने किया। साथ ही सम्पूर्ण संसार के दुःखनाशक परमोत्तम तत्त्व को भी आपने बताया। इसके द्वारा हम परम ब्रह्मात्मैक्यज्ञान देख रहे हैं।

त्वं हि नारायणः साक्षात् कृष्णद्वैपायनात्प्रभो।
अवाप्ताखिलविज्ञानस्तत्त्वां पृच्छामहे पुनः॥ ४॥

हे प्रभो! आप साक्षात् नारायण हैं। आप कृष्णद्वैपायन से अखिल विज्ञान को प्राप्त कर चुके हैं, अतः आपसे हम पुनः पूछना चाहते हैं।

श्रुत्वा मुनीनां तद्वाक्यं कृष्णद्वैपायनात्प्रभुः।
सूतः पौराणिकः श्रुत्वा भाषितुं ह्युपचक्रमे॥ ५॥

मुनियों के ये वचन सुनकर पौराणिक प्रभु सूतजी ने श्रीकृष्णद्वैपायन से सुने हुए वृत्तान्त को कहना प्रारम्भ कर दिया।

तथास्मिन्नन्तरे व्यासः कृष्णद्वैपायनः स्वयम्।
आजगाम मुनिश्रेष्ठा यत्र सत्रं समासते॥ ६॥
तं दृष्ट्वा वेदविद्वांसं कालमेघसमद्युतिम्।
व्यासं कमलपत्राक्षं प्रणेमुर्द्विजपुङ्गवाः॥ ७॥

हे मुनिश्रेष्ठो! इस मध्य श्रीकृष्णद्वैपायन व्यास स्वयं वहाँ आ पहुँचे जहाँ यज्ञ किया जा रहा था। उन वेदों के विद्वान् तथा कालमेघ के समान कान्ति वाले कमलनयन व्यास जी को देखकर द्विजश्रेष्ठों ने उन्हें प्रणाम किया।

पपात दण्डवद्भूमौ दृष्ट्वासौ लोमहर्षणः।
प्रणम्य शिरसा भूमौ प्राञ्जलिर्वशगोऽभवत्॥ ८॥

उनको देखकर वे लोमहर्षण भूमि पर दण्डवत् गिर गये और शिर झुकाकर प्रणाम करके हाथ जोड़कर भूमि पर स्थित हो गये।

पृष्टास्तेऽनामयं विप्राः शौनकाद्या महामुनिम्।
समासृत्यासनं तस्मै तद्योग्यं समकल्पयन्॥ ९॥

शौनक आदि ब्राह्मणों ने महामुनि से कुशलक्षेम पूछा और उनके समीप आकर उनके योग्य आसन की व्यवस्था की।

अथैतानब्रवीद्वाक्यं पराशरसुतः प्रभुः।
कच्चिन्न हानिस्तपसः स्वाध्यायस्य श्रुतस्य च॥ १०॥

अनन्तर पराशर पुत्र प्रभु व्यास ने उन सबसे कहा— आप लोगों के तप, स्वाध्याय और शास्त्र चर्चा की कुछ हानि तो नहीं हो रही है?

ततश्च सूतः स्वगुरुं प्रणम्याह महामुनिम्।
ज्ञानं तद्ब्रह्मविषयं मुनीनां वक्तुमर्हसि॥ ११॥

इसके बाद सूत ने महामुनि अपने गुरु को प्रणाम करके कहा— मुनियों के लिए आप वह ब्रह्मविषयक ज्ञान बताने की कृपा करें।

इमे हि मुनयः शान्तास्तापसा धर्मतत्पराः।
शुश्रूषा जायते चैषां वक्तुमर्हसि तत्त्वतः॥ १२॥
ज्ञानं विमुक्तिदं दिव्यं यन्मे साक्षात्त्वयोदितम्।
मुनीनां व्याहृतं पूर्वं विष्णुना कूर्मरूपिणा॥ १३॥

ये मुनिगण शान्त तपस्वी तथा धर्मपरायण हैं। इन्हें श्रवण करने की इच्छा है। अतएव आप तत्त्वतः कहने योग्य हैं। वह मुक्तिप्रदायक दिव्य ज्ञान जिसे आपने साक्षात् मुझे बताया था और जिसे पूर्वकाल में कूर्मरूपधारी विष्णु ने मुनियों के लिए कहा था।

श्रुत्वा सूतस्य वचनं मुनिः सत्यवतीसुतः।
प्रणम्य शिरसा रुद्रं वचः प्राह सुखावहम्॥ १४॥

सत्यवती पुत्र मुनि व्यास ने सूत के वचन सुनकर रुद्रदेव को प्रणाम करके सुखकारक वचन कहें।

व्यास उवाच

वक्ष्ये देवो महादेवः पृष्टो योगीश्वरैः पुरा।
सनत्कुमारप्रमुखैः स स्वयं समभाषत॥ १५॥

व्यास जी ने कहा— मैं वही कहूँगा जो पुराकाल में सनत्कुमार प्रभृति योगीश्वरों द्वारा पूछे जाने पर महादेव ने स्वयं कहा था।

सनत्कुमारः सनकस्तथैव च सनन्दनः।
अङ्गिरा रुद्रसहितो भृगुः परमधर्मवित्॥ १६॥
कणादः कपिलो गर्गो वामदेवो महामुनिः।
शुक्रो वसिष्ठो भगवान् सर्वे संयतमानसाः॥ १७॥
परस्परं विचार्येति संशयाविष्टचेतसः।
तप्तवन्तस्तपो घोरं पुण्ये बदरिकाश्रमे॥ १८॥

सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, अंगिरा, रुद्र सहित परम धार्मिक भृगु कणाद, कपिल, गर्ग, महामुनि वामदेव, शुक्र, भगवान् वसिष्ठ आदि संयत चित्त वाले सभी मुनियों ने परस्पर विचार करके पुण्य बद्रिकाश्रम में घोर तप किया था।

अपश्यंस्ते महायोगमृषिधर्मसुतं मुनिम्।
नारायणमनाद्यन्तं नरेण सहितं तदा॥ १९॥

तब उन्होंने महायोगी, ऋषिधर्म के पुत्र, मुनि, अनादि और अन्त से रहित नारायण को नर के साथ देखा।

संस्तूय विविधैः स्तोत्रैः सर्ववेदसमुद्भवैः।
प्रणेमुर्भक्तिसंयुक्ता योगिनो योगवित्तमम्॥ २०॥

भक्तिसंयुक्त उन योगियों ने सभी वेदों से उत्पन्न विविध स्तोत्र वाक्यों द्वारा स्तुति करके परम योगवेत्ता नारायण को प्रणाम किया।

विज्ञाय वाञ्छितं तेषां भगवानपि सर्ववित्।
प्राह गम्भीरया वाचा किमर्थं तप्यते तपः॥ २१॥

उनका इच्छित जानकर सर्वज्ञ भगवान् ने भी गंभीर वाणी में पूछा— आप लोग तप क्यों कर रहे है।

अब्रुवन् हृष्टमनसो विश्वात्मानं सनातनम्।
साक्षान्नारायणं देवमागतं सिद्धिसूचकम्॥ २२॥
वयं संयममापन्नाः सर्वे वै ब्रह्मवादिनः।
भवन्तमेकं शरणं प्रपन्नाः पुरुषोत्तमम्॥ २३॥

प्रसन्न मन वाले मुनियों ने वहाँ पधारे सिद्धिसूचक विश्वात्मा सनातन साक्षात् नारायण देव से कहा— हम सभी ब्रह्मवादी ऋषि संयमी होकर एकमात्र आप पुरुषोत्तम की शरण में आये हैं।

त्वं वेत्सि परमं गुह्यं सर्वन्तु भगवानृषिः।
नारायणः स्वयं साक्षात्पुराणोऽव्यक्तपुरुषः॥ २४॥
न ह्यन्यो विद्यते वेत्ता त्वामृते परमेश्वरम्।
स त्वमस्माकमचलं संशयं छेत्तुमर्हसि॥ २५॥

आप सम्पूर्ण परम गुह्य तत्त्व को जानते हैं। आप स्वयं भगवान् ऋषि नारायण साक्षात् पुरातन अव्यक्त पुरुष हैं। आप परमेश्वर के अतिरिक्त अन्य कोई तत्त्ववेत्ता नहीं है। इसलिए आप ही हमारे अचल संशय को दूर करने में समर्थ है।

किं कारणमिदं कृत्स्नं को नु संसरते सदा।
कश्चिदात्मा च का मुक्तिः संसारः किंनिमित्तकः॥ २६॥
कः संसार इतीशानः को वा सर्वं प्रपश्यति।
किं तत्परतरं ब्रह्म सर्वं नो वक्तुमर्हसि॥ २७॥

इस सम्पूर्ण जगत् का कारण कौन है? कौन इसमें सदा संसरण करता है? आत्मा कौन है? मुक्ति क्या है? संसार का निमित्त क्या है? संसार का अधीश्वर कौन है? कौन सबको देखता है? उससे परतर ब्रह्म क्या है? हमें यह सब आप बताने की कृपा करें।

एवमुक्त्वा तु मुनयः प्रापश्यन् पुरुषोत्तमम्।
विहाय तापसं वेषं संस्थितं स्वेन तेजसा॥ २८॥
विभ्राजमानं विमलं प्रभामण्डलमण्डितम्।
श्रीवत्सवक्षसं देवं तप्तजाम्बूनदप्रभम्॥ २९॥

ऐसा कहकर मुनिगण पुरुषश्रेष्ठ नारायण को देखने लगे जो तापस वेश को छोड़कर अपने तेज से संस्थित थे, जो अपने प्रभामण्डल से मण्डित होकर विमल प्रतीत हो रहे थे। उनके वक्षःस्थल पर श्रीवत्स का चिह्न था और जिनकी आभा तपे हुए सोने के समान थी।

शङ्खचक्रगदापाणिं शार्ङ्गहस्तं श्रिया वृतम्।
न दृष्टस्तत्क्षणादेव नरस्तस्यैव तेजसा॥ ३०॥

उनके हाथों में शंख, चक्र, गदा और धनुष धारण किया हुआ था। वे लक्ष्मी से युक्त थे और उस समय उनके तेज से नर नहीं दिखाई पड़े।

तदन्तरे महादेव: शशाङ्काङ्कितशेखर:।
प्रसादाभिमुखो रुद्र: प्रादुरासीन्महेश्वर:॥ ३१॥

इसी मध्य चंद्र से अंकित ललाट वाले महेश्वर रुद्र प्रसन्न मुख होकर प्रादुर्भूत हुए।

निरीक्ष्य ते जगन्नाथं त्रिनेत्रं चन्द्रभूषणम्।
तुष्टुवुर्हृष्टमनसो भक्त्या तं परमेश्वरम्॥ ३२॥

जगन्नाथ, त्रिनेत्रधारी, चन्द्रभूषण, उन परमेश्वर को देखकर प्रसन्न मन वाले मुनियों ने भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति की।

जयेश्वर महादेव जय भूतपते शिव।
जयाशेषमुनीशान तपसाऽभिप्रपूजित॥ ३३॥

ईश्वर महादेव आपकी जय हो। हे भूतपति शिव! आपकी जय हो। अशेष मुनि ईशान की जय हो। तप से अभिपूजित आपकी जय हो।

सहस्रमूर्ते विश्वात्मन् जगद्यन्त्रप्रवर्त्तक।
जयानन्त जगज्जन्मत्राणसंहारकारक॥ ३४॥

हे सहस्रमूर्ते! हे विश्वात्मन्! संसाररूपी यंत्र के प्रवर्तक आपकी जय हो। जगत् की उत्पत्ति, रक्षा और संहार करने वाले हे अनंत! आपकी जय हो।

सहस्रचरणेशान शम्भो योगीन्द्रवन्दित।
जयाम्बिकापते देव नमस्ते परमेश्वर॥ ३५॥

हे सहस्रचरण, हे ईशान, हे शंभु, हे योगीन्द्रगणवन्दित! आपकी जय हो। अम्बिकापति देव की जय हो। हे परमेश्वर! आपको नमस्कार है।

संस्तुतो भगवानीशस्त्र्यम्बको भक्तवत्सल:।
समालिङ्ग्य हृषीकेशं प्राह गम्भीरया गिरा॥ ३६॥
किमर्थं पुण्डरीकाक्ष मुनीन्द्रा ब्रह्मवादिन:।
इमं समागता देशं किन्नु कार्यं मयाच्युत॥ ३७॥

इस प्रकार भक्तवत्सल भगवान् ईश पूजित होकर हृषीकेश को आलिङ्गन करके गंभीर वाणी में बोले— हे पुण्डरीकाक्ष! ये ब्रह्मवादी मुनीन्द्रगण इस स्थान में क्यों आये हैं? हे अच्युत! मुझ से क्या कार्य है?

आकर्ण्य तस्य तद्वाक्यं देवदेवो जनार्दन:।
प्राह देवो महादेवं प्रसादाभिमुखं स्थितम्॥ ३८॥

उनका यह वाक्य सुनकर देवदेव जनार्दन प्रसन्नाभिमुख होकर स्थित महादेव से बोले—

इमे हि मुनयो देव तापसा: क्षीणकल्मषा:।
अभ्यागतानां शरणं सम्यग्दर्शनकांक्षिणाम्॥ ३९॥

हे देव! ये ऋषिगण तपस्वी और क्षीण पाप वाले हैं। आप सम्यक् दर्शन की अभिलाषा वाले अतिथियों की शरण (रक्षक) हैं।

यदि प्रसन्नो भगवान्मुनीनां भावितात्मनाम्।
सन्निधौ मम तज्ज्ञानं दिव्यं वक्तुमिहार्हसि॥ ४०॥
त्वं हि वेत्सि स्वमात्मानं न ह्यन्यो विद्यते शिव।
वद त्वमात्मनात्मानं मुनीन्द्रेभ्य: प्रदर्शय॥ ४१॥

यदि आप भगवान् भावितात्मा इन मुनियों पर प्रसन्न हैं, तो मेरे समक्ष ही इन्हें दिव्य ज्ञान बताने की कृपा करें। हे शिव! अपने विषय में आप ही जानते हैं, अन्य कोई भी विद्यमान नहीं है। अतएव आप स्वयं ही कहें और मुनियों को आत्मविषयक (ज्ञान का) प्रदर्शन करें।

एवमुक्त्वा हृषीकेश: प्रोवाच मुनिपुङ्गवान्।
प्रदर्शयन्योगसिद्धिं निरीक्ष्य वृषभध्वजम्॥ ४२॥

इतना कहकर जनार्दन ने वृषभध्वज शिव की ओर देखते हुए और योगसिद्धि का प्रदर्शन करते हुए उन मुनिश्रेष्ठों से कहा।

सन्दर्शनान्महेशस्य शंकरस्याथ शूलिन:।
कृतार्थं स्वयमात्मानं ज्ञातुमर्हथ तत्त्वत:॥ ४३॥

आप मुनिगण शूलपाणि महेश शंकर के दर्शन से स्वयं पूर्णत: कृतकृत्य मानने योग्य हो।

द्रष्टुमर्हथ देवेशं प्रत्यक्षं पुरत: स्थितम्।
ममैव सन्निधाने स यथावद्वक्तुमीश्वर:॥ ४४॥

अब आप सब सामने स्थित देवेश्वर को प्रत्यक्ष देखने में समर्थ हैं। वे ईश्वर मेरे सम्मुख ही यथावत् कहने के लिए उपस्थित हैं।

निशम्य विष्णोर्वचनं प्रणम्य वृषभध्वजम्।
सनत्कुमारप्रमुखा: पृच्छन्ति स्म महेश्वरम्॥ ४५॥

भगवान् विष्णु के वचन सुनकर सनत्कुमार आदि ऋषियों ने वृषभध्वज महेश्वर को प्रणाम करके पूछा।

अथास्मिन्नन्तरे दिव्यमासनं विमलं शिवम्।
किमप्यचिन्त्यं गगनादीश्वरार्थे समुद्बभौ॥ ४६॥

इसी समय में एक दिव्य, विमल, पवित्र आसन जो कुछ अचिन्त्य था, आकाश मार्ग से ईश्वर के लिए समुपस्थित हुआ।

तत्राससाद योगात्मा विष्णुना सह विश्वकृत्।
तेजसा पूरयन्विश्वं भाति देवो महेश्वरः॥४७॥

उस पर योगात्मा विश्वकर्ता (शिव) विष्णु के साथ विराजमान हुए। उस समय महेश्वर देव अपने तेज से संपूर्ण विश्व को व्याप्त करते हुए से प्रतीत हो रहे थे।

ततो देवाधिदेवेशं शंकरं ब्रह्मवादिनः।
विभ्राजमानं विमले तस्मिन्ददृशुरासने॥४८॥

तदनन्तर ब्रह्मवादी मुनियों ने उस विमल आसन पर सुशोभित देवेश्वर देवाधिपति शंकर को देखा।

तमासनस्थं भूतानामीशं ददृशिरे किल।
यदन्तरा सर्वमेतद्यतोऽभिन्नमिदं जगत्॥४९॥

उस आसन पर विराजमान प्राणियों के नियन्ता शिव को देखा, जिनके मध्य यह सब कुछ था, क्योंकि यह जगत् उनसे अभिन्न है।

सवासुदेवमीशानमीशं ददृशिरे परम्।
प्रोवाच पृष्टो भगवान्मुनीनां परमेश्वरः॥५०॥

वासुदेव के साथ (विराजमान) परम ईश ईशान को वहां देखा। तब मुनियों के द्वारा पूछे जाने पर भगवान् परमेश्वर बोले—।

निरीक्ष्य पुण्डरीकाक्षं स्वात्मयोगमनुत्तमम्।
तच्छृणुध्वं यथान्यायमुच्यमानं मयानघाः॥५१॥
प्रशान्तमनसः सर्वे विशुद्धं ज्ञानमैश्वरम्।

हे निष्पाप मुनियो! आप सब पुण्डरीकाक्ष का दर्शन करके प्रशान्त मन से मेरे द्वारा कहे जाने वाले उत्तम आत्मयोग रूपी विशुद्ध ईश्वरीय ज्ञान को यथावत् श्रवण करें।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे ईश्वरगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे ऋषिव्याससंवादे प्रथमोऽध्यायः॥१॥

द्वितीयोऽध्यायः

(ईश्वर-गीता)

ईश्वर उवाच

अवाच्यमेतद्विज्ञानं मम गुह्यं सनातनम्।
यन्न देवा विजानन्ति यतन्तोऽपि द्विजातयः॥१॥

ईश्वर ने कहा— यह मेरा गोपनीय और सनातन विज्ञान वस्तुतः कहने योग्य नहीं है। इसे द्विजातिगण या देवगण प्रयत्न करने पर भी नहीं जान पाते हैं।

इदं ज्ञानं समाश्रित्य ब्रह्मीभूता द्विजोत्तमाः।
न संसारं प्रपद्यन्ते पूर्वेऽपि ब्रह्मवादिनः॥२॥

हे द्विजगण! इस ज्ञान का आश्रय लेकर पहले के ब्रह्मवादी भी ब्राह्मी स्थिति को प्राप्त कर पुनः संसार को प्राप्त नहीं करते हैं।

गुह्याद्गुह्यतमं साक्षाद् गोपनीयं प्रयत्नतः।
वक्ष्ये भक्तिमतामद्य युष्माकं ब्रह्मवादिनाम्॥३॥

यह ज्ञान अत्यन्त गूढ़ से भी गूढ़तम है। इसको प्रयत्नपूर्वक रक्षा की जानी चाहिए। मैं आज आप भक्तियुक्त ब्रह्मवादियों के समक्ष कहूँगा।

आत्मायं केवलः स्वच्छः शुद्धः सूक्ष्मः सनातनः।
अस्ति सर्वान्तरः साक्षाच्चिन्मात्रस्तमसः परः॥४॥
सोऽन्तर्यामी स पुरुषः स प्राणः स महेश्वरः।
स कालोऽत्र तदव्यक्तं स च वेद इति श्रुतिः॥५॥

यह आत्मा केवल, स्वच्छ, शुद्ध, सूक्ष्म और सनातन है। यह सर्वान्तर में स्थित, साक्षात् मात्र चित्स्वरूप और तम से परे है। वही अन्तर्यामी, वही पुरुष, वही प्राण, वही महेश्वर, वही काल, वही अव्यक्त और वही वेद है— ऐसा श्रुतिवचन है।

अस्माद्विजायते विश्वमत्रैव प्रविलीयते।
स मायी मायया बद्धः करोति विविधास्तनूः॥६॥

इसी से यह जगत् उत्पन्न होता है और उसी में (अन्त में) लीन हो जाता है। वह मायावी अपनी माया से बद्ध होकर अनेक शरीरों का निर्माण करता है।

न चाप्ययं संसरति न संसारमयः प्रभुः।
नायं पृथ्वी न सलिलं न तेजः पवनो नभः॥७॥
न प्राणो न मनोऽव्यक्तं न शब्दः स्पर्श एव च।
न रूपरसगन्धाश्च नाहं कर्ता न वागपि॥८॥

यह ईश्वर न तो संसरण करता है और न यह संसारमय ही है। यह न तो पृथ्वी, न जल, न तेज, न वायु, न आकाश है। यह न प्राण, न मन, न अव्यक्त, न शब्द और स्पर्श ही है। यह न रूप, रस और गन्ध है। मैं कर्ता और वाणी भी नहीं हूँ।

न पाणिपादौ नो पायुर्न चोपस्थं द्विजोत्तमाः।
न च कर्ता न भोक्ता वा न च प्रकृतिपूरुषौ॥९॥
न माया नैव च प्राणा न चैव परमार्थतः।
यथा प्रकाशतमसोः सम्बन्धो नोपपद्यते॥१०॥

तद्वदैक्यं न सम्बन्धः प्रपञ्चपरमात्मनोः।
छायातपौ यथा लोके परस्परविलक्षणौ॥ ११॥
तद्वत्प्रपञ्चपुरुषौ विभिन्नौ परमार्थतः।
तथात्मा मलिनः सृष्टो विकारी स्यात्स्वरूपतः॥ १२॥

हे द्विजोत्तमो! यह हाथ, पाद, पायु, उपस्थ कुछ भी नहीं है। न वह कर्ता, न भोक्ता और नहीं प्रकृति और पुरुष ही है। यह परमार्थतः न माया है, न पंचप्राण है। जैसे प्रकाश और अन्धकार का सम्बन्ध उपपन्न नहीं होता है, उसी प्रकार परमार्थरूप से प्रपञ्च और पुरुष भिन्न-भिन्न हैं। उसी प्रकार यह आत्मा भी मलिन होकर स्वरूपतः सृष्ट और विकारी हो जाता है।

न हि तस्य भवेन्मुक्तिर्जन्मान्तरशतैरपि।
पश्यन्ति मुनयो मुक्ताः स्वात्मानं परमार्थतः॥ १३॥

उसकी मुक्ति सैकड़ों जन्मान्तरों में भी नहीं होती। मुनिगण ही परमार्थरूप में मुक्त होकर आत्मा का दर्शन करते हैं।

विकारहीनं निर्द्वन्द्वमानन्दात्मानमव्ययम्।
अहं कर्ता सुखी दुःखी कृशःस्थूलेति या मतिः॥ १४॥
सा चाहङ्कारकर्तृत्वादात्मन्यारोपिता जनैः।
वदन्ति वेदविद्वांसः साक्षिणं प्रकृतेः परम्॥ १५॥
भोक्तारमक्षरं शुद्धं सर्वत्र समवस्थितम्।
तस्मादज्ञानमूलो हि संसारः सर्वदेहिनाम्॥ १६॥

यह आत्मा विकारशून्य, निर्द्वन्द्व, आनन्दमय, अविनाशी है। मैं कर्ता हूँ, मैं सुखी-दुःखी, कृश-स्थूल हूँ— इस प्रकार की जो बुद्धि होती है, वह मनुष्यों द्वारा आत्मा में आरोपित और अहंकार के कारण होती है। वेदज्ञ विद्वान् साक्षी आत्मा को प्रकृते पर बताते हैं। अतः समस्त देहधारियों के लिए यह संसार ही अज्ञान का मूल कारण है।

अज्ञानादन्यथाज्ञानात्तत्त्वं प्रकृतिसङ्गतम्।
नित्योदितं स्वयं ज्योतिः सर्वगः पुरुषः परः॥ १७॥
अहंकाराविवेकेन कर्ताहमिति मन्यते।
पश्यन्ति ऋषयोऽव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम्॥ १८॥

अज्ञान से अथवा अन्यथा ज्ञान से यह नित्य जागरूक, स्वयंज्योति, सर्वगामी, परम पुरुषरूप तत्त्व जब प्रकृति से संगत होता है, तब अहंकार से उत्पन्न अविवेक के कारण वह अपने को कर्ता आदि मानने लगता है। ऋषिगण उस सदसद्रूप नित्य अव्यक्त को देखते हैं।

प्रधानं पुरुषं बुद्ध्वा कारणं ब्रह्मवादिनः।
तेनायं सङ्गतः स्वात्मा कूटस्थोऽपि निरञ्जनः॥ १९॥
स्वात्मानमक्षरं ब्रह्म नावबुद्ध्येत तत्त्वतः।
अनात्मन्यात्मविज्ञानं तस्माद्दुःखं तथेतरत्॥ २०॥

ब्रह्मवादी प्रधान-पुरुष को ही कारणरूप मानते हैं, तभी वह कूटस्थ, निरंजन आत्मा भी उससे संगत होता है और वह स्वात्मरूप, अविनाशी ब्रह्म को तत्त्वतः जान नहीं पाते हैं। वे अनात्म में आत्मा का चिन्तन करते हैं जिससे दुःख और अन्य दोषों उत्पन्न होते हैं।

रागद्वेषादयो दोषाः सर्वे भ्रान्तिनिबन्धनाः॥
कर्माण्यस्य महान्दोषः पुण्यापुण्यमिति स्थितिः॥ २१॥

राग-द्वेषादि सभी दोष भ्रान्ति से उत्पन्न होने वाले हैं। इसके कर्म महान् दोष हैं, जिनकी पुण्य और पापरूप में स्थिति है।

तद्वशादेव सर्वेषां सर्वदेहसमुद्भवः।
नित्यं सर्वत्र गुह्यात्मा कूटस्थो दोषवर्जितः॥ २२॥
एकः सन्तिष्ठते शक्त्या मायया न स्वभावतः।
तस्मादद्वैतमेवाहुर्मुनयः परमार्थतः॥ २३॥

उसी के वश में होने के कारण सब में इन सब शरीरों का प्रादुर्भाव होता है। नित्य, सर्वव्यापक, कूटस्थ और दोषरहित गुह्यात्मा अकेला अपनी माया शक्ति के द्वारा संस्थित रहता है, स्वभावतः नहीं। इसीलिए, ऋषिगण परमार्थरूप में इसे अद्वैत ही कहते हैं।

भेदोऽव्यक्तस्वभावेन सा च मायात्मसंश्रया।
यथा च धूमसम्पर्कान्नाकाशो मलिनो भवेत्॥ २४॥
अन्तःकरणजैर्भावैरात्मा तद्वन्न लिप्यते।

अव्यक्त के स्वभाव से यह भेद होता है और वह माया आत्मा से संसक्त है। जिस प्रकार धूम के संपर्क से आकाश मलिन नहीं होता है, उसी प्रकार अन्तःकरण से उत्पन्न भावों से यह आत्मा लिप्त नहीं होता।

यथा स्वप्रभया भाति केवलः स्फटिकोपलैः॥ २५॥
उपाधिहीनो विमलस्तथैवात्मा प्रकाशते।
ज्ञानस्वरूपमेवाहुर्जगदेतद्विचक्षणाः॥ २६॥

जैसे स्फटिक का पत्थर केवल अपनी आभा से चमकता है, उसी तरह उपाधिरहित निर्मल आत्मा स्वयं प्रकाशमान होता है। ज्ञानी पुरुष इस जगत् को ज्ञानस्वरूप ही मानते हैं।

अर्थस्वरूपमेवान्ये पश्यन्त्यन्ये कुदृष्टय:।
कूटस्थो निर्गुणो व्यापी चैतन्यात्मा स्वभावत:॥ २७॥
दृश्यते ह्यर्थरूपेण पुरुषैर्ज्ञानदृष्टिभि:।

अन्य कुदृष्टि वाले इसे अर्थस्वरूप ही देखते हैं। स्वभावत: कूटस्थ, निर्गुण, सर्वव्यापक और चैतन्य आत्मा ज्ञानदृष्टि वाले पुरुषों द्वारा अर्थरूप में देखा जाता है।

यथा स लक्ष्यते रक्त: केवलं स्फटिको जनै:॥ २८॥
रक्तिकाद्युपधानेन तद्वत्परमपूरुष:।
तस्मादात्माक्षर: शुद्धो नित्य: सर्वत्रगोऽव्यय:॥ २९॥

जिस प्रकार स्फटिक पत्थर रक्तिका आदि की उपाधि (लालिमा) के कारण लोगों द्वारा लाल देखा जाता है, उसी प्रकार परम पुरुष परमात्मा भी स्वोपाधिकत्वेन अर्थरूप प्रतीत होता है। इसलिए, आत्मा अक्षर, शुद्ध, नित्य, सर्वव्यापक और अविनाशी है।

उपासितव्यो मन्तव्य: श्रोतव्यश्च मुमुक्षुभि:।
यदा मनसि चैतन्यं भाति सर्वत्र सर्वदा॥ ३०॥
योगिन: श्रद्दधानस्य तदा सम्पद्यते स्वयम्।

मुमुक्षु जनों को उस आत्मा का ध्यान, मनन और श्रवण करना चाहिए। जब मन में सदा सब ओर से चैतन्य का भास होता है, तब श्रद्धायुक्त योगी का स्वयं ज्ञानसम्पन्न हो जाता है।

यदा सर्वाणि भूतानि स्वात्मन्येवाभिपश्यति॥ ३१॥
सर्वभूतेषु चात्मानं ब्रह्म सम्पद्यते तदा।
यदा सर्वाणि भूतानि समाधिस्थो न पश्यति॥ ३२॥
एकीभूत: परेणासौ तदा भवति केवलम्।

जब वह (साधक) समस्त भूतों को अपनी आत्मा में ही देखता है और सब भूतों में स्वयं को देखता है, तब वह ब्रह्मत्व को प्राप्त हो जाता है। जब योगी समाधिस्थ होकर समस्त भूतों को नहीं देखता है और परमात्मा से एकीभूत हो जाता है जब वह केवल (अनन्य) हो जाता है।

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि स्थिता:॥ ३३॥
तदासावमृतीभूत: क्षेमं गच्छति पण्डित:।

जब उसके हृदय में स्थित सभी कामनाएँ छूट जाती हैं तब वह अमृतत्व को प्राप्त ज्ञानी कल्याण की ओर जाता है।

यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति॥ ३४॥
तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते सदा।

जब मनुष्य सम्पूर्ण भूतों के पृथकत्व को एक में ही स्थित देखता है तब उसे व्यापक ब्रह्म की प्राप्ति होती है।

यदा पश्यति चात्मानं केवलं परमार्थत:॥ ३५॥
मायामात्रं तदा सर्वं जगद्भवति निर्वृत:॥ ३६॥

और जब आत्मा को केवल परमार्थरूप में देखता है, तब सम्पूर्ण जगत् मायामात्र दिखाई देता है और वह मुक्त होता है।

यदा जन्मजरादु:खव्याधीनामेकभेषजम्।
केवलं ब्रह्मविज्ञानं जायतेऽसौ तदा शिव:॥ ३७॥

जब जन्म, जरा, दु:ख और रोगों का एकमात्र औषधरूप ब्रह्मज्ञान उत्पन्न होता है तब वह शिव हो जाता है।

यथा नदीनदा लोके सागरेणैकतां ययु:।
तद्वदात्माक्षरेणासौ निष्कलेनैकतां व्रजेत्॥ ३८॥

संसार में जैसे नदी और नद सागर में जाकर एकत्व को प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार यह आत्मा भी शुद्ध अक्षर ब्रह्म से मिलकर एकता को प्राप्त हो जाता है।

तस्माद्विज्ञानमेवास्ति न प्रपञ्चो न संस्थिति:।
अज्ञानेनावृतं लोके विज्ञानं तेन मुह्यति॥ ३९॥

इस कारण विज्ञान ही है, प्रपञ्च या संस्थिति नहीं है। लोक में विज्ञान अज्ञान से आवृत है, इसलिए सब मोहित होते हैं।

विज्ञानं निर्मलं सूक्ष्मं निर्विकल्पं तदव्ययम्।
अज्ञानमितरत्सर्वं विज्ञानमिति तन्मतम्॥ ४०॥

विज्ञान (ब्रह्म) निर्मल, सूक्ष्म, निर्विकल्प और अविनाशी है और उससे भिन्न सब अज्ञान है। इसीलिए उसे विज्ञान कहा गया है।

एतद्व: कथितं साङ्ख्यं भाषितं ज्ञानमुत्तमम्।
सर्ववेदान्तसारं हि योगस्तत्रैकचित्तता॥ ४१॥

मैंने आप लोगों को यह उत्तम सांख्यज्ञान बता दिया। यही समस्त वेदान्त का सार है और उसमें एकचित्त होना योग है।

योगात्सञ्जायते ज्ञानं ज्ञानाद्योग: प्रवर्तते।
योगज्ञानाभियुक्तस्य नावाप्यं विद्यते क्वचित्॥ ४२॥

योग से ज्ञान उत्पन्न होता है और ज्ञान से योग प्रवृत्त होता है। योग और ज्ञान से युक्त पुरुष के लिए कुछ भी अप्राप्य नहीं रहता।

यदेव योगिनो यान्ति सांख्यैस्तदधिगम्यते।
एकं सांख्यञ्च योगञ्च य: पश्यति स तत्त्ववित्॥ ४३॥

योगी जन जिसे प्राप्त करते हैं सांख्यवेत्ता भी उसका अनुगमन और योग को जो एकरूप देखता है, वही तत्त्ववेत्ता है।

अन्ये हि योगिनो विप्रा ह्यैश्वर्यासक्तचेतस:।
मज्जन्ति तत्र तत्रैव ये चान्ये कुण्ठबुद्धय:॥ ४४॥

हे विप्रो! दूसरे योगी जो ऐश्वर्य में आसक्त चित्त हुए और दूसरे कुंठित बुद्धि वाले भी उसी में मग्न रहते हैं।

यत्तत्सर्वगतं दिव्यमैश्वर्यममलं महत्।
ज्ञानयोगाभियुक्तस्तु देहान्ते तदवाप्नुयात्॥ ४५॥

और जो सर्वसम्मत दिव्य निर्मल महान् ऐश्वर्य है, उसे ज्ञानयोग से सम्पन्न शरीरान्त होने पर प्राप्त करता है।

एष आत्माहमव्यक्तो मायावी परमेश्वर:।
कीर्तित: सर्ववेदेषु सर्वात्मा सर्वतोमुख:॥ ४६॥
सर्वरूप: सर्वरस: सर्वगन्धोऽजरोऽमर:।
सर्वत: पाणिपादोऽहमन्तर्यामी सनातन:॥ ४७॥

यह अव्यक्त आत्मा मैं हूँ। सभी वेदों में वही मायावी, परमेश्वर, सर्वात्मा, सर्वतोमुख, सर्वरूप, सर्वरस, सर्वगन्ध, अजर, अमर, सर्वत्र विस्तृत हाथ-पैर वाला कहा गया है, मैं ही अन्तर्यामी और सनातन हूँ।

अपाणिपादो जवगो ग्रहीता हृदि संस्थित:।
अचक्षुरपि पश्यामि तथाऽकर्ण: शृणोम्यहम्॥ ४८॥

हाथ-पैर न होने पर भी मैं तीव्र गति से चलता हूँ और हृदय में संस्थित होकर सबको ग्रहण करता हूँ। नेत्ररहित भी मैं देखता हूँ और कानरहित होने पर भी सुनता हूँ।

वेदाहं सर्वमेवेदं न मां जानाति कश्चन।
प्राहुर्महान्तं पुरुषं मामेकं तत्त्वदर्शिन:॥ ४९॥

मैं इस सबको जानता हूँ पर कोई मुझे नहीं जानता है। तत्त्वदर्शी मुझे ही एक और महान् कहते हैं।

पश्यन्ति ऋषयो हेतुमात्मन: सूक्ष्मदर्शिन:।
निर्गुणामलरूपस्य यदैश्वर्यमनुत्तमम्॥ ५०॥

निर्गुण और शुद्धात्मा के हेतुभूत जो सर्वोत्तम ऐश्वर्य है, उसे सूक्ष्मद्रष्टा ऋषिगण देखते हैं।

यन्न देवा विजानन्ति मोहिता मम मायया।
वक्ष्ये समाहिता यूयं शृणुध्वं ब्रह्मवादिन:॥ ५१॥

उसे मेरी माया से मोहित हुए देवगण भी नहीं जानते हैं। उसे मैं कहूँगा, आप ब्रह्मवादी समाहित चित्त होकर सुनो।

नाहं प्रशस्त: सर्वस्य मायातीत: स्वभावत:।
प्रेरयामि तथापीदं कारणं सूरयो विदु:॥ ५२॥

मैं सबके लिए प्रशंसायोग्य नहीं हूँ और स्वभावत: माया से परे हूँ। फिर भी प्रेरित करता हूँ। इसके कारण को विद्वान् ही जानते हैं।

यतो गुह्यतमं देहं सर्वगं तत्त्वदर्शिन:।
प्रविष्टा मम सायुज्यं लभन्ते योगिनोऽव्ययम्॥ ५३॥

इसी कारण तत्वदर्शी योगीजन मेरे सर्वगामी, गुह्यतम शरीर में प्रविष्ट होकर मेरे अविनाशी सायुज्य (मोक्ष) को प्राप्त करते हैं।

ये हि मायामतिक्रान्ता मम या विश्वरूपिणी।
लभन्ते परमं शुद्धं निर्वाणं ते मया सह॥ ५४॥

जो मेरी विश्वरूपा माया को अतिक्रमित कर लेते हैं, वे मेरे साथ परम शुद्ध निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

न तेषां पुनरावृत्ति: कल्पकोटिशतैरपि।
प्रसादान्मम योगीन्द्रा एतद्वेदानुशासनम्॥ ५५॥

सैकड़ों, करोड़ों कल्प में भी उनकी बार-बार आवृत्ति (पुनरावृत्ति) नहीं होती। हे योगीन्द्रगण! यही मेरी कृपा से ही ऐसा होता है और यही वेद का अनुशासन है।

तत्पुत्रशिष्ययोगिभ्यो दातव्यं ब्रह्मवादिभि:।
मदुक्तमेतद्विज्ञानं सांख्यं योगसमाश्रयम्॥ ५६॥

इसलिए ब्रह्मवादी लोग मेरे द्वारा कहे गए इस सांख्ययोग पूरित विज्ञान को अपने पुत्रों, शिष्यों तथा योगियों को प्रदान करना चाहिए।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे ईश्वरगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे ऋषिव्याससंवादे द्वितीयोऽध्याय:॥ २॥

तृतीयोऽध्याय:

(ईश्वर-गीता)

ईश्वर उवाच

अव्यक्तादभवत्काल: प्रधानं पुरुष: पर:।
तेभ्य: सर्वमिदं जातं तस्माद्ब्रह्ममयं जगत्॥ १॥

ईश्वर ने कहा— अव्यक्त से काल, प्रधान और परम पुरुष हुए। उनसे यह सारा विश्व उत्पन्न हुआ, इसी कारण यह जगत् ब्रह्ममय है।

सर्वत: पाणिपादान्तं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वत: श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥ २॥

सर्वत्र हाथ-पैर वाला, सर्वत्र आँखें, शिर और मुख वाला और सर्वत्र कान वाला यह (अव्यक्त) लोक में सबको आवृत करके स्थित है।

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
सर्वाधारं सदानन्दमव्यक्तं द्वैतवर्जितम्॥ ३॥

वह समस्त इन्द्रियों के गुणों का आभास कराता है, तथापि सभी इन्द्रियों से रहित है। वह सबका आधारभूत सदा आनन्द स्वरूप, अव्यक्त और द्वैतवर्जित है।

सर्वोपमानरहितं प्रमाणातीतगोचरम्।
निर्विकल्पं निराभासं सर्वावासं परामृतम्॥ ४॥
अभिन्नं भिन्नसंस्थानं शाश्वतं ध्रुवमव्ययम्।
निर्गुणं परमं ज्योतिस्तज्ज्ञानं सूरयो विदु:॥ ५॥

यह सभी उपमानों से रहित, प्रमाणों से अतीत, अगोचर, निर्विकल्प, निराभास, सबका निवास स्थान, परम अमृत है, वह अभिन्न है और भिन्न संस्थान वाला भी है। वह शाश्वत, ध्रुव, अविनाशी, निर्गुण और परम ज्योति:स्वरूप है, उस ब्रह्म के यथार्थ ज्ञान को विद्वान् ही जानते हैं।

स आत्मा सर्वभूतानां स बाह्याभ्यन्तर: पर:।
सोऽहं सर्वत्रग: शान्तो ज्ञानात्मा परमेश्वर:॥ ६॥
मया ततमिदं विश्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्।
मत्स्थानि सर्वभूतानि यस्तं वेदविदो विदु:॥ ७॥

वह समस्त प्राणियों का आत्मा तथा बाह्य और आभ्यन्तर में स्थित और (सबसे) पर है। वही मैं सर्वत्रगामी, शान्त, ज्ञानात्मा और परमेश्वर हूँ। मेरे द्वारा ही इस स्थावर-जंगमरूप विश्व का विस्तार है। समस्त प्राणी मुझ में स्थित हैं, इस बात को वेदवेत्ता ही जानते हैं।

प्रधानं पुरुषञ्चैव तद्वस्तु समुदाहृतम्।
तयोरनादिरुद्दिष्ट: काल: संयोगज: पर:॥ ८॥

प्रधान और पुरुष को इसकी वस्तु कहा गया है और जो परम काल अनादिरूप में उद्दिष्ट है, वह उन दोनों के संयोग से उत्पन्न है।

त्रयमेतदनाद्यन्तमव्यक्ते समवस्थितम्।
तदात्मकं तदन्यत्स्यात्तद्रूपं मामकं विदु:॥ ९॥

इसलिए ये तीनों तत्त्व अव्यक्त में अनादि और अनन्तरूप में अवस्थित हैं। इसी स्वरूपवाला और उससे भिन्न जो रूप है, वह मेरा है ऐसा (विद्वान्) जानते हैं।

महदाद्यं विशेषान्तं सम्प्रसूतेऽखिलं जगत्।
या सा प्रकृतिरुद्दिष्टा मोहिनी सर्वदेहिनाम्॥ १०॥

महदादि से लेकर विशेषपर्यन्त अशिल जगत् को जो उत्पन्न करती है, वह प्रकृति कही गई है, जो सभी देहधारियों को मोहित करने वाली है।

पुरुष: प्रकृतिस्थो वै भुंक्ते य: प्राकृतान् गुणान्।
अहङ्कारविमुक्तत्वात्प्रोच्यते पञ्चविंशक:॥ ११॥

प्रकृति में ही स्थित रहता हुआ पुरुष प्राकृत गुणों का भोग करता है। परन्तु अहंकार से विमुक्त होने से उसे पचीसवां तत्त्व कहते हैं।

आद्यो विकार: प्रकृतेर्महानिति च कथ्यते।
विज्ञातृशक्तिविज्ञानात् ह्यहङ्कारस्तदुत्थित:॥ १२॥

प्रकृति का प्रथम विकार महत् कहा जाता है। विज्ञाता की शक्ति के कारण अहंकार की उत्पत्ति हुई है।[1]

एक एव महानात्मा सोऽहङ्कारोऽभिधीयते।
स जीव: सोऽन्तरात्मेति गीयते तत्त्वचिन्तकै:॥ १३॥

जो एक महत् आत्मा है, वही अहंकार कहा जाता है। तत्त्ववेत्ता उसे जीव और अन्तरात्मा भी कहा करते हैं।

तेन वेदयते सर्वं सुखं दु:खञ्च जन्मसु।
स विज्ञानात्मकस्तस्य मन: स्यादुपकारकम्॥ १४॥

उसके द्वारा जन्मों में जो कुछ भी सुख और दु:ख भोगा जाता है, उसका वह बोध कराता है। वह विज्ञानस्वरूप और उसका मन उपकारक होता है।

तेनापि तन्मयस्तस्मात् संसार: पुरुषस्य तु।
स चाविवेक: प्रकृतौ संगात्कालेन सोऽभवत्॥ १५॥

1. देखें- ईश्वरकृष्णरचित सांख्यकारिका ३

उसी के कारण उसके द्वारा भी पुरुष का संसार तन्मय होता है। यह अविविकी प्रकृति और काल के संयोग से उत्पन्न होता है।

कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः।
सर्वे कालस्य वशगा न कालः कस्यचिद्वशे॥ १६॥

वही काल सब प्राणियों का सृजन करता है और वही प्रजा का संहार भी करता है। अतएव सभी काल के वश में है किन्तु काल किसी के वश में नहीं है।

सोऽन्तरा सर्वमेवेदं नियच्छति सनातनः।
प्रोच्यते भगवान्प्राणः सर्वज्ञः पुरुषोत्तमः॥ १७॥
सर्वेन्द्रियेभ्यः परमं मन आहुर्मनीषिणः।
मनसश्चाप्यहङ्कारमहङ्कारान्महान्परः॥ १८॥

वही सनातन काल यह सब कुछ प्रदान करता है। इसीलिए उसे भगवान्, प्राण, सर्वज्ञ और पुरुषोत्तम कहा गया है। मनीषीगण सभी इन्द्रियों से श्रेष्ठ मन को मानते है। उस मन से भी श्रेष्ठ अहंकार और अहंकार से श्रेष्ठ महत् होता है।

महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः।
पुरुषाद्भगवान् प्राणस्तस्य सर्वमिदं जगत्॥ १९॥

महत् से परे अव्यक्त और अव्यक्त से परे पुरुष है। उस पुरुष से भी भगवान् प्राणमय काल श्रेष्ठ है। उसी का यह सम्पूर्ण जगत् है।

प्राणात्परतरं व्योम व्योमातीतोऽग्निरीश्वरः।
सोऽहं ब्रह्माव्ययः शान्तो मायातीतमिदं जगत्॥ २०॥

प्राण की अपेक्षा आकाश परतर है। आकाश से भी अतीत ईश्वररूप अग्नि है। वही मैं परम शान्त, अव्यय, ब्रह्म हूँ एवं यह जगत् मायातीत है।

नास्ति मत्तः परं भूतं मां विज्ञाय मुच्यते।
नित्यं नास्तीति जगति भूतं स्थावरजङ्गमम्॥ २१॥

मुझसे बढ़कर कोई प्राणी नहीं है। मुझे यथार्थतः जानकर जीवमुक्त हो जाता है। जगत् में स्थावर जंगमात्मक प्राणीसमूह भी नित्य नहीं है।

ऋते मामेकमव्यक्तं व्योमरूपं महेश्वरम्।
सोऽहं सृजामि सकलं संहरामि सदा जगत्॥ २२॥

एकमात्र मुझ अव्यक्त व्योमरूप महेश्वर को छोड़कर कुछ भी नित्य नहीं है। अतएव मैं सम्पूर्ण जगत् का सृजन करता हूँ तथा सदा उसका संहार करता रहता हूँ।

मायी मायामयो देवः कालेन सह सङ्गतः।
मत्सन्निधावेष कालः करोति सकलं जगत्॥ २३॥

मायावी और मायामय देव काल के साथ संगत होता है। वही काल मेरे सान्निध्य से सम्पूर्ण जगत् की रचना करता है। वही अन्तरात्मा नियोजन भी करता है। वही वेद का अनुशासन (शिक्षा) है।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे ईश्वरगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे ऋषिव्याससंवादे तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

चतुर्थोऽध्यायः

(ईश्वर-गीता)

ईश्वर उवाच

वक्ष्ये समाहिता यूयं शृणुध्वं ब्रह्मवादिनः।
माहात्म्यं देवदेवस्य येन सर्वं प्रवर्त्तते॥ १॥

ईश्वर ने कहा— हे ब्रह्मवादियो! आप सब समाहित चित्त होकर उन देवाधिदेव का माहात्म्य सुनो जिससे यह सब कुछ प्रवृत्त होता है।

नाहं तपोभिर्विविधैर्न दानेन न चेज्यया।
शक्यो हि पुरुषैर्ज्ञातुमृते भक्तिमनुत्तमाम्॥ २॥

अनेक प्रकार के तप, दान अथवा यज्ञों द्वारा मुझे जानना शक्य नहीं है। उत्तमोत्तम भक्ति के बिना पुरुष मुझे नहीं जान सकते हैं।

अहं हि सर्वभूतानामन्तस्तिष्ठामि सर्वतः।
मां सर्वसाक्षिणं लोको न जानाति मुनीश्वराः॥ ३॥

मैं ही सब भूतों के अन्दर सब ओर से विराजमान हूँ। हे मुनीश्वरो! मुझ सर्वसाक्षी को यह संसार नहीं जानता है।

यस्यान्तरा सर्वमिदं यो हि सर्वान्तकः परः।
सोऽहं धाता विधाता च कालोऽग्निर्विश्वतोमुखः॥ ४॥

जिसके भीतर यह सब कुछ है और जो सबके भीतर रहने वाला है। वही मैं धाता-विधाता, कालरूप, अग्निस्वरूप और विश्वतोमुख हूँ।

न मां पश्यन्ति मुनयः सर्वे पितृदिवौकसः।
ब्रह्मा च मनवः शक्रो ये चान्ये प्रथितौजसः॥ ५॥

सभी मुनीगण, पितृगण, देवता, ब्रह्मा, समस्त मनु, इन्द्र और जो अन्य प्रसिद्ध तेज वाले हैं वे भी मुझे नहीं देख सकते हैं।

गृणन्ति सततं वेदा मामेकं परमेश्वरम्।
यजन्ति विविधैर्यज्ञैर्ब्राह्मणा वैदिकैर्मखैः॥ ६॥

समस्त वेद एकमात्र मुझ परमेश्वर की सदा स्तुति करते हैं और ब्राह्मण लोग विविध वैदिक यज्ञों द्वारा मेरा यजन करते हैं।

सर्वे लोका न पश्यन्ति ब्रह्मा लोकपितामहः।
ध्यायन्ति योगिनो देवं भूताधिपतिमीश्वरम्॥ ७॥

समस्त लोक और लोक पितामह ब्रह्मा भी मुझे नहीं देख पाते। योगीजन सम्पूर्ण भूतों के अधिपति देवस्वरूप मुझ ईश्वर का ध्यान करते हैं।

अहं हि सर्वहविषां भोक्ता चैव फलप्रदः।
सर्वदेवतनुर्भूत्वा सर्वात्मा सर्वसंप्लुतः॥ ८॥

मैं ही सम्पूर्ण हवि का भोक्ता और फल देने वाला हूँ। मैं ही सभी देवों का शरीर धारण कर सर्वात्मा और सर्वत्र व्याप्त हूँ।

मां पश्यन्तीह विद्वांसो धार्मिका वेदवादिनः।
तेषां सन्निहितो नित्यं ये मां नित्यमुपासते॥ ९॥

मुझको वेदवादी धार्मिक विद्वान् ही देख पाते हैं। जो मेरी नित्य उपासना करते हैं मैं सदा उनके समीप रहता हूँ।

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या धार्मिका मामुपासते।
तेषां ददामि तत्स्थानमानन्दं परमम्पदम्॥ १०॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि जो भी धर्मयुक्त होकर मेरी उपासना करते हैं उन्हें मैं आनन्दमय परमपद प्रदान करता हूँ।

अन्येऽपि ये स्वधर्मस्था शूद्राद्या नीचजातयः।
भक्तिमन्तः प्रमुच्यन्ते कालेनापि हि सङ्गताः॥ ११॥

दूसरे भी नीच जाति के शूद्र आदि लोग अपने धर्म में स्थित रहकर भक्तिमान् होकर काल के द्वारा सान्निध्य प्राप्त कर मुक्त हो जाते हैं।

मद्भक्ता न विनश्यन्ति मद्भक्ता वीतकल्मषाः।
आदावेव प्रतिज्ञातं न मे भक्तः प्रणश्यति॥ १२॥

मेरे भक्त विनाश को प्राप्त नहीं होते, मेरे भक्त पापमुक्त हो जाते हैं। प्रारम्भ में ही मेरे द्वारा यह प्रतिज्ञात है कि मेरे भक्त का नाश नहीं होगा।

यो वै निन्दति तं मूढो देवदेवं स निन्दति।
यो हि पूजयते भक्त्या स पूजयति मां सदा॥ १३॥

जो मूढ़ मेरे उस भक्त की निन्दा करता है वह देवाधिदेव की ही निन्दा करता है। जो उसका भक्तिपूर्वक आदर करता है वह सदा मुझे ही पूजता है।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं मदाराधनकारणात्।
यो मे ददाति नियतं स च भक्तः प्रियो मम॥ १४॥

जो मेरी आराधना के उद्देश्य से नियमपूर्वक पत्र, पुष्प, फल और जल समर्पित करता है वह भक्त मेरा प्रिय है।

अहं हि जगतामादौ ब्रह्माणं परमेष्ठिनम्।
विदधौ दत्तवान्वेदानशेषानात्मनिःसृतान्॥ १५॥

इस जगत् के प्रारम्भ में परमेष्ठी ब्रह्मा को मैंने ही बनाया और आत्मनिसृत समस्त वेदों को उन्हें प्रदान किया।

अहमेव हि सर्वेषां योगिनां गुरुरव्ययः।
धार्मिकाणां च गोप्ताहं निहन्ता वेदविद्विषाम्॥ १६॥

मैं ही सभी योगियों का अविनाशी गुरु, धार्मिकों का रक्षक और वेदों से द्वेष करने वाले व्यक्तियों को मारने वाला हूँ।

अहं हि सर्वसंसारान्मोचको योगिनामिह।
संसारहेतुरेवाहं सर्वसंसारवर्जितः॥ १७॥

मैं ही योगियों को संसार से मुक्त कराने वाला हूँ। मैं ही संसार का कारण हूँ और सम्पूर्ण संसार से भिन्न हूँ।

अहमेव हि संहर्त्ता संस्रष्टा परिपालकः।
माया वै मामिका शक्तिर्माया लोकविमोहिनी॥ १८॥

मैं ही संहारकर्त्ता, सृष्टिकर्त्ता और परिपालक हूँ। यह माया मेरी ही शक्ति है। यह जगत् को मोहित करती है।

ममैव च परा शक्तिर्या सा विद्येति गीयते।
नाशयामि च तां मायां योगिनां हृदि संस्थितः॥ १९॥

मेरी जो पराशक्ति है उसे विद्या नाम से पुकारते हैं। मैं योगियों के हृदय में स्थित होकर उस माया को नष्ट करता हूँ।

अहं हि सर्वशक्तीनां प्रवर्तकनिवर्तकः।
आधारभूतः सर्वासां निधानममृतस्य च॥ २०॥

मैं ही समस्त शक्तियों का प्रवर्तक और निवर्तक हूँ। मैं ही सबका आधारभूत और अमृत का निधान हूँ।

एका सर्वान्तरा शक्तिः करोति विविधं जगत्।
(नाहं प्रेरयिता विप्राः परमं योगमाश्रिताः)।
आस्थाय ब्रह्मणो रूपं मन्मयी मदधिष्ठिता॥ २१॥

वह मेरी ही सबके भीतर रहने वाली एक शक्ति, इस विचित्र जगत् का निर्माण करती है। (हे परम योग के आश्रित ब्राह्मणों! मैं प्रेरणा देने वाला नहीं हूँ)

अन्या च शक्तिर्विपुला संस्थापयति मे जगत्।
भूत्वा नारायणोऽनन्तो जगन्नाथो जगन्मय:॥२२॥

वह ब्रह्मा का रूप धारण करके मुझमें ही अधिष्ठित है। मेरी दूसरी विपुला शक्ति अनन्त, नारायण, जगन्नाश, जगन्मय नारायण का रूप धारण करके जगत् को संस्थापित करती है।

तृतीया महती शक्तिर्निहन्ति सकलं जगत्।
तामसी मे समाख्याता कालाख्या रुद्ररूपिणी॥२३॥

मेरी तृतीय महान् शक्ति सम्पूर्ण जगत् का विनाश करती है जो कालरूपा, रुद्ररूपिणी, महती, तामसी कही गई है।

ध्यानेन मां प्रपश्यन्ति केचिज्ज्ञानेन चापरे।
अपरे भक्तियोगेन कर्मयोगेन चापरे॥२४॥

कोई मुझे ध्यान द्वारा देखते हैं, तो कुछ ज्ञान से, अन्य कुछ भक्तियोग द्वारा तो अनेक कर्मयोग द्वारा देखते हैं।

सर्वेषामेव भक्तानामिष्ट: प्रियतमो मम।
यो हि ज्ञानेन मां नित्यमाराधयति नान्यथा॥२५॥

परंतु इन सब भक्तों में ज्ञान के द्वारा जो नित्य उपासना करता है वह मेरा सबसे इष्ट और प्रियतम् भक्त है।

अन्ये च हरये भक्ता मदाराधनकारिण:।
तेऽपि मां प्राप्नुवन्त्येव नावर्त्तन्ते च वै पुन:॥२६॥

मेरी आराधना में संयुत जो हरी भक्त है वे भी मुझे ही प्राप्त करते हैं और पुन: संसार में लौटते नहीं है।

मया ततमिदं कृत्स्नं प्रधानपुरुषात्मकम्।
मय्येव संस्थितं चित्तं मया सम्प्रेर्यते जगत्॥२७॥

प्रकृति और पुरुषरूप इस सम्पूर्ण जगत् का मैंने ही विस्तार किया है। मुझमें ही यह चित्त संस्थित है और मेरे ही द्वारा यह जगत् संप्रेरित है।

नाहं प्रेरयिता विप्रा: परमं योगमाश्रित:।
प्रेरयामि जगत्कृत्स्नमेतद्यो वेद सोऽमृत:॥२८॥

हे विप्रो! मैं प्रेरक नहीं हूँ। मैं परमयोग का आश्रय लेकर इस सम्पूर्ण जगत् को प्रेरित करता हूँ। इस बात को जो जानता है वह मुक्त हो जाता है।

पश्याम्यशेषमेवेदं वर्त्तमानं स्वभावत:।
करोति कालो भगवान्महायोगेश्वर: स्वयम्॥२९॥

मैं स्वभावत: विद्यमान इस सारे संसार को देखता हूँ। महायोगेश्वर भगवान् काल स्वयं इसकी रचना करते हैं।

योऽहं सम्प्रोच्यते योगी मायी शास्त्रेषु सूरिभि:।
योगीश्वरोऽसौ भगवान्महायोगेश्वर: स्वयम्॥३०॥

विद्वानों द्वारा शास्त्रों में मुझे योगी और मायावी कहा गया है। वही योगीश्वर और महान् योगेश्वर स्वयं भगवान् है

महत्त्वं सर्वसत्त्वानां वरत्वात् परमेष्ठिन:।
प्रोच्यते भगवान् ब्रह्मा महाब्रह्ममयोऽमल:॥३१॥

परमेष्ठी की श्रेष्ठता के कारण सभी प्राणियों का महत्व है। वे भगवान् ब्रह्मा, महान्, ब्रह्ममय और निर्मल कहे जाते हैं।

यो मामेवं विजानाति महायोगेश्वरेश्वरम्।
सोऽविकल्पेन योगेन युज्यते नात्र संशय:॥३२॥

इस प्रकार जो मुझ महायोगेश्वर को भलीभाँति जानता है, वह निर्विकल्प योग से युक्त हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं।

सोऽहं प्रेरयिता देव: परमानन्दमाश्रित:।
नृत्यामि योगी सततं यस्तद्वेद स योगवित्॥३३॥

वही मैं देव प्रेरक होकर परमानन्द का आश्रय ग्रहण कर, योगी बनकर नृत्य करता हूँ। जो इस बात को जानता है वही योगवेत्ता है।

इति गुह्यतमं ज्ञानं सर्ववेदेषु निष्ठितम्।
प्रसन्नचेतसे देयं धार्मिकायाहिताग्नये॥३४॥

इस प्रकार यह सर्वथा गोपनीय ज्ञान सभी वेदों में निश्चित किया हुआ है। यह प्रसन्न चित्त, धार्मिक और आहिताग्नि के लिए देना चाहिए।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे ईश्वरगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे ऋषिव्याससंवादे चतुर्थोऽध्याय:॥४॥

पञ्चमोऽध्याय:

(ईश्वर-गीता)

व्यास उवाच

एतावदुक्त्वा भगवान्योगिनां परमेश्वर:।
ननर्त्त परमं भावमैश्वरं सम्प्रदर्शयन्॥१॥

व्यास जी बोले— इतना कहकर योगियों के परमेश्वर भगवान् अपने ईश्वरीय भाव को प्रदर्शित करते हुए नृत्य करने लगे।

तं ते ददृशुरीशानं तेजसां परमं निधिम्।
नृत्यमानं महादेवं विष्णुना गगनेऽमले॥ २॥

समस्त तेजों के परमनिधि उन ईशान महादेव को निर्मल आकाश में विष्णु के साथ नृत्य मुद्रा में उन ऋषियों ने देखा।

यं विदुर्योगतत्त्वज्ञा योगिनो यतमानसाः।
तमीशं सर्वभूतानामाकाशे ददृशुः किल॥ ३॥

जिसे योगवेत्ता तथा संयत मन वाले योगी ही जान पाते हैं। उन भूतादिपति शिव को आकाश में सबने देखा।

यस्य मायामयं सर्वं येनेदं प्रेर्यते जगत्।
नृत्यमानः स्वयं विप्रैर्विश्वेशः खलु दृश्यते॥ ४॥

यह मायामय सम्पूर्ण जगत् जिसके द्वारा प्रेरित है उन्हीं स्वयं विश्वेश्वर को विप्रो ने साक्षात् नृत्य करते हुए देखा।

यत्पादपंकजं स्मृत्वा पुरुषोऽज्ञानजं भयम्।
जहाति नृत्यमानं तं भूतेशं ददृशुः किल॥ ५॥

जिनके चरण-कमल का स्मरण करके पुरुष अज्ञान-जनित भय से मुक्त हो जाता है उस भूतपति को उन्होंने नाचते हुए देखा।

केचिन्निद्राजितश्वासाः शान्ता भक्तिसमन्विताः।
ज्योतिर्मयं प्रपश्यन्ति स योगी दृश्यते किल॥ ६॥

कुछ लोग निद्रा को और प्राणवायु को जितने वाले, शांत और भक्तियुक्त जिस ज्योतिर्मय को देखते है वह योगी सबको दिखाई दे रहे थे।

योऽज्ञानान्मोचयेत् क्षिप्रं प्रसन्नो भक्तवत्सलः।
तमेवं मोचनं रुद्रमाकाशे ददृशुः परम्॥ ७॥

जो भक्त वत्सल अतिप्रसन्न होकर अज्ञान से मुक्ति दिलाते है। उस मुक्ति प्रदाता परमरुद्र को आकाश में सबने देखा।

सहस्रशिरसं देवं सहस्रचरणाकृतिम्।
सहस्रबाहुं जटिलं चन्द्रार्द्धकृतशेखरम्॥ ८॥

वे सहस्र शिर वाले, सहस्र चरण की आकृति वाले, हजार भुजाओं से सुशोभित, जटाधारी और अर्धचन्द्र से शोभित ललाट वाले थे।

वसानं चर्म वैयाघ्रं शूलासक्तमहाकरम्।
दण्डपाणिं त्रयीनेत्रं सूर्यसोमाग्निलोचनम्॥ ९॥

वे व्याघ्रचर्मधारी, त्रिशूलधारी, दण्डपाणि तथा तीन नेत्रों से युक्त सूर्य, चन्द्र और अग्नि के समान नेत्र वाले थे ऐसे शिव को देखा।

ब्रह्माण्डं तेजसा स्वेन सर्वमावृत्य विष्ठितम्।
दंष्ट्राकरालं दुर्द्धर्षं सूर्यकोटिसमप्रभम्॥ १०॥
सृजन्तमनलज्वालं दहन्तमखिलं जगत्।
नृत्यन्तं ददृशुर्देवं विश्वकर्माणमीश्वरम्॥ ११॥

जो अपने तेज से सम्पूर्ण ब्रह्मांड को समावृत करके अधिष्ठित है। जिनकी भयानक दंष्ट्रा है जो अत्यन्त दुर्द्धर्ष और करोड़ों सूर्य के समान प्रभा वाले हैं। जो अग्नि की ज्वालाओं की सृष्टि करने वाले और सम्पूर्ण जगत् को दग्ध करने वाले उस विश्वकर्मा ईश्वर को सबने नृत्य करते हुए देखा।

महादेवं महायोगं देवानामपि दैवतम्।
पशूनां पतिमीशानमानन्दं ज्योतिरव्ययम्॥ १२॥
पिनाकिनं विशालाक्षं भेषजं भवरोगिणाम्।
कालात्मानं कालकालं देवदेवं महेश्वरम्॥ १३॥

जो महादेव, महायोगी और देवों के भी देव, पशुओं के पति, ईशान, आनन्दस्वरूप, ज्योतिस्वरूप, अविनाशी, पिनाकधारी, विशाल नेत्र वाले, संसार के रोगियों के औषधस्वरूप, कालात्मा, महाकाल, देवों के भी देव महान् ईश्वर हैं।

उमापतिं विशालाक्षं योगानन्दमयं परम्।
ज्ञानवैराग्यनिलयं ज्ञानयोगं सनातनम्॥ १४॥

जो उमा के पति, विशाल नेत्र धारी, परम योगानन्दमय, ज्ञान और वैराग्य के निलय, ज्ञानयोगसम्पन्न और सनातन है (उस प्रभु को नृत्य करते हुए देखा।)

शाश्वतैश्वर्यविभवं धर्माधारं दुरासदम्।
महेन्द्रोपेन्द्रनमितं महर्षिगणवन्दितम्॥ १५॥
योगिनां हृदि तिष्ठन्तं योगमायासमावृतम्।
क्षणेन जगतो योनिं नारायणमनामयम्॥ १६॥
ईश्वरेणैक्यमापन्नमपश्यन् ब्रह्मवादिनः।
दृष्ट्वा तदैश्वरं रूपं रुद्रं नारायणात्मकम्।
कृतार्थं मेनिरे संतः स्वात्मानं ब्रह्मवादिनः॥ १७॥

जो शाश्वत ऐश्वर्य के वैभव से युक्त, धर्म के आधार स्वरूप, दुष्प्राप्य, महेन्द्र और उपेन्द्र द्वारा प्रार्थित, महर्षिगण द्वारा वन्दित, योगियों के हृदय में निवास करने वाले और योगमाया से समावृत हैं। जो क्षणभर में ही जगत् की सृष्टि करने वाले अनामय नारायण स्वरूप है, ऐसे ईश्वर के साथ ब्रह्मवादियों ने ऐक्यभाव को प्राप्त करते हुए उन्हें देखा। उस समय ब्रह्मवादियों ने उस नारायणात्मक ऐश्वर्यमय रुद्ररूप को देखकर अपने को कृतार्थ माना।

सनत्कुमार:सनको भृगुश्च
सनातनश्चैव सनन्दनश्च।
रैभ्योऽङ्गिरा वामदेवोऽथ शुक्रो
महर्षिरत्रि:कपिलो मरीचि:॥ १८॥

दृष्ट्वाथ रुद्रं जगदीशितारं
तं पद्मनाभाश्रितवामभागम्।
ध्यात्वा हृदिस्थं प्रणिपत्य मूर्ध्ना
कृताञ्जलिं स्वेषु शिर:सु भूय:॥ १९॥

सनत्कुमार, सनक, भृगु, सनातन, सनन्दन, रैभ्य, अंगिरा, वामदेव, शुक्र, महर्षि अत्रि, कपिल, मरीचि आदि मुनिगण विष्णु के आश्रित वामभाग वाले भगवान् रुद्र को देखकर, हृदय में उनका ध्यान करते हुए मस्तक झुकाकर प्रणाम करके पुन: अपने दोनों हाथों को जोड़कर शिर पर लगाकर खड़े हो गये।

ओङ्कारमुच्चार्य विलोक्य देव-
मन्त:शरीरं निहितं गुहायाम्।
समस्तुवन् ब्रह्ममयैर्वचोभि-
रानन्दपूर्णाहितमानसा वै॥ २०॥

ओंकार का उच्चारण करके और शरीररूपी गुहा में निहित उन देव का ध्यान करके, वे सब वेदमय वचनों से और आनन्दपूर्ण मन युक्त होकर देवेश्वर की स्तुति करने लगे।

मुनय ऊचु:

त्वामेकमीशं पुरुषं पुराणं प्राणेश्वरं रुद्रमनन्तयोगम्।
नमाम सर्वे हृदि सन्निविष्टं प्रचेतसं ब्रह्ममयं पवित्रम्॥ २१॥

मुनिगण बोले— आप ही ईश्वर, पुराणपुरुष, अनन्तयोग, प्राणेश्वर रुद्र हैं। हम सबके हृदय में संनिविष्ट, प्रचेतस, ब्रह्ममय और परम पवित्र आपको हम नमन करते हैं।

पश्यन्ति त्वां मुनयो ब्रह्मयोनिं
दान्ता: शान्ता विमलं रुक्मवर्णम्।
ध्यात्वात्मस्थमचलं स्वे शरीरे
कविं परेभ्य: परमं परञ्च॥ २२॥

आप ब्रह्मयोनि, अत्यन्त विमल और सुवर्णमय कान्तिमान् हैं। अपने शरीर में आत्मरूप से प्रचलित, कवि, पर से भी परतर, परमरूप आपका ध्यान करके, शांत और दान्त चित्त वाले मुनिगण आपको देखते हैं।

त्वत्त: प्रसूता जगत: प्रसूति:
सर्वानुभूस्त्वं परमाणुभूत:।
अणोरणीयान्महतो महीयां-
स्त्वामेव सर्वं प्रवदन्ति सन्त:॥ २३॥

आपसे ही इस जगत् की उत्पत्ति हुई है। आप सबके द्वारा अनुभूत हैं और परमाणुस्वरूप हैं। आप अणु से भी अणुतर और महान् से भी महानतम हैं। ऐसा ही संतजन कहा करते हैं।

हिरण्यगर्भो जगदन्तरात्मा
त्वत्तोऽस्ति जात: पुरुष: पुराण:।
सञ्जायमानो भवता निसृष्टो
यथाविधानं सकलं स सर्ज॥ २४॥

यह हिरण्यगर्भ जगत् का अन्तरात्मा, पुराणपुरुष आपसे ही उत्पन्न है। आप के द्वारा समुत्पन्न होकर ही उसने यथाविधि शीघ्र ही समस्त जगत् की सृष्टि की थी।

त्वत्तो वेदा: सकला: संप्रसूता-
स्त्वय्येवान्ते संस्थितिं ते लभन्ते।
पश्यामस्त्वां जगतो हेतुभूतं
नृत्यन्तं स्वे हृदये सन्निविष्टम्॥ २५॥

आपसे ही यह समस्त वेद प्रसूत हुए है और अन्तिम समय में आप में ही यह लीन हो जाते हैं। हम सभी जगत् के हेतुभूत, अपने हृदय में सन्निविष्ट, आपको नृत्य करते हुए देख रहे हैं।

त्वयैवेदं भ्राम्यते ब्रह्मचक्रं
मायावी त्वं जगतामेकनाथ:।
नमामस्त्वां शरणं संप्रपन्ना
योगात्मानं नृत्यन्तं दिव्यनृत्यम्॥ २६॥

आपके द्वारा ही यह ब्रह्मचक्र भ्रमित हो रहा है। आप ही मायावी और जगत् के एकमात्र स्वामी हैं। हम आपकी शरणागति को प्राप्त हैं। आप योगात्मा दिव्य नृत्य करने वाले को हम प्रणाम करते हैं।

पश्यामस्त्वां परमाकाशमध्ये
नृत्यन्तं ते महिमानं स्मराम:।
सर्वात्मानं बहुधा सन्निविष्टं
ब्रह्मानन्दं चानुभूयानुभूय॥ २७॥

परमाकाश के मध्य नृत्य करते हुए हम आपको देख रहे हैं और आपकी महिमा का स्मरण करते हैं। सभी आत्माओं में अनेक प्रकार से सन्निविष्ट और ब्रह्मानन्द का बार-बार अनुभव कराने वाले हैं।

ओङ्कारस्ते वाचको मुक्तिबीजं
त्वमक्षरं प्रकृतौ गूढरूपम्।
तत्त्वां सत्यं प्रवदन्तीह सन्तः
स्वयम्प्रभं भवतो यत्प्रभावम्॥ २८॥

आपका वाचक ओंकार है[1] जो मुक्ति का बीज स्वरूप है। आप ही अक्षर और प्रकृति में गूढ़रूप से संस्थित है। संत लोग आपको ही सत्यस्वरूप कहा करते हैं। आपका जो प्रभाव है, वह स्वयं प्रभ है।

स्तुवन्ति त्वां सततं सर्ववेदा
नमन्ति त्वामृषयः क्षीणदोषाः।
शान्तात्मानः सत्यसन्धं वरिष्ठं
विशन्ति त्वां यतयो ब्रह्मनिष्ठाः॥ २९॥

समस्त वेद निरन्तर आपकी स्तुति करते हैं। निष्पाप मुनिगण आपको नमन करते हैं। शांतचित्त वाले ब्रह्मनिष्ठ योगीजन, सत्यसन्ध और वरिष्ठ आप में ही प्रवेश करते हैं।

भुवो नाशो नादिमान्विश्वरूपो
ब्रह्मा विष्णुः परमेष्ठी वरिष्ठः।
स्वात्मानन्दमनुभूय विशन्ते
स्वयं ज्योतिरचला नित्यमुक्ताः॥ ३०॥

आप पृथ्वी के नाशक, अनादिमान्, विश्वरूप, ब्रह्मा, विष्णु और श्रेष्ठ परमेष्ठी हैं। नित्यमुक्त अविचल ज्योति स्वयं स्वात्मानन्द का अनुभव करके प्रवेश कर जाती है।

एको रुद्रस्त्वं करोषीह विश्वं
त्वं पालयस्यखिलं विश्वरूपम्।
त्वामेवान्ते निलयं विन्दतीदं
नमामस्त्वां शरणं संप्रपन्ना॥ ३१॥

आप अकेले रुद्र ही इस विश्व को रचते हैं। आप ही अखिल विश्वरूप का पालन भी करते हैं। यही विश्व अन्तकाल में आप में ही लय को प्राप्त होता है। हम आपकी शरणागत होकर प्रणाम करते हैं।

एको वेदो बहुशाखो ह्यनन्त-
स्त्वामेवैकं बोधयत्येकरूपम्।
वन्द्यं त्वां ये शरणं संप्रपन्ना
मायामेतां ते तरन्तीह विप्राः॥ ३२॥

एक ही वेद बहुशाखायुक्त और अनन्त है और एक स्वरूप वाले आपको एक ही बोध कराता है। हे विप्रो! ऐसे वन्दनीय आपकी शरण को प्राप्त, संसार में इस मोहमाया से तर जाते हैं।

त्वामेकमाहुः कविमेकरुद्रं ब्रह्मं गृणन्तं हरिमग्निमीशम्।
रुद्रं नित्यमनिलं चेकितानं धातारमादित्यमनेकरूपम्॥ ३३॥

आपको ही कवि, एकरुद्र, ब्रह्म का गुणगान करने वाला, हरि, अग्नि, ईश, रुद्र, नित्य, अनिल, चेकितान, धाता, आदित्य और अनेक रूप वाला कहते हैं।

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता
सनातनस्त्वं पुरुषोत्तमोऽसि॥ ३४॥

आप ही परम अविनाशी, जानने योग्य और इस विश्व का परम निधान हैं। आप ही अव्यय, शाश्वत धर्म के रक्षक, सनातन और पुरुषोत्तम हैं।

त्वमेव विष्णुश्चतुराननस्त्वं त्वमेव रुद्रो भगवानपीशः।
त्वं विश्वनाथः प्रकृतिः प्रतिष्ठा सर्वेश्वरस्त्वं परमेश्वरोऽसि॥

आप ही विष्णु और चतुरानन ब्रह्मा हैं। आप ही रुद्र भगवान् ईश हैं। आप ही विश्व के नाथ, प्रकृति, प्रतिष्ठा, सर्वेश्वर और परमेश्वर हैं।

त्वामेकमाहुः पुरुषं पुराणमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
चिन्मात्रमव्यक्तमनन्तरूपं खं ब्रह्म शून्यं प्रकृतिर्गुणाश्च॥ ३६॥

आप एक को ही पुराण पुरुष, आदित्यवर्ण, तम से पर, चिन्मात्र, अव्यक्त, अनन्तरूप, आकाशरूप, ब्रह्म, शून्य, प्रकृति और गुण कहते हैं।

यदन्तरा सर्वमिदं विभाति यदव्ययं निर्मलमेकरूपम्।
किमप्यचिन्त्यं तव रूपमेतत्तदन्तरा यत्प्रतिभाति तत्त्वम्॥ ३७

जिसके भीतर यह संपूर्ण जगत् भासमान है, जो अव्यय, निर्मल, एकरूप है, आप का ऐसा स्वरूप कुछ अचिन्त्य है, जिसके भीतर यह तत्त्व प्रतिभासित हो रहा है।

योगेश्वरं भद्रमनन्तशक्तिं
परायणं ब्रह्मतनुं पुराणम्।
नमाम सर्वे शरणार्थिनस्त्वां
प्रसीदभूताधिपते महेश॥ ३८॥

आप योगेश्वर, भद्र, अनन्तशक्तिसम्पन्न, परायण, पुराण ब्रह्मतनु हैं, हम सब शरणार्थी आपको नमन करते हैं। हे भूताधिपति महेश! प्रसन्न हों।

---

1. तस्य वाचकः प्रणवः (योगसूत्र)

त्वत्पादपद्मस्मरणादशेष-
संसारबीजं निलयं प्रयाति।
मनो नियम्य प्रणिधाय कायं
प्रसादयामो वयमेकमीशम्॥ ३९॥

आपके पादपंकज के स्मरणमात्र से ही संपूर्ण संसार का बीज निलय को प्राप्त होता है अर्थात् नष्ट हो जाता है। हम सब अपने मन को नियमित करके प्रणिधानपूर्वक एक ही ईश्वर को प्रसन्न करते हैं अर्थात् उनकी स्तुति करते हैं।

नमो भवायास्तु भवोद्भवाय
कालाय सर्वाय हराय तुभ्यम्।
नमोऽस्तु रुद्राय कपर्दिने ते
नमोऽग्नये देव नमः शिवाय॥ ४०॥

भव, भव के उद्भव, कालस्वरूप, सर्वरूप महादेव को नमस्कार है। आप कपर्दी रुद्र के लिए प्रणाम है। हे देव! अग्निस्वरूप, शिवस्वरूप आपके लिए नमस्कार है।

ततः स भगवान्प्रीतः कपर्दी वृषवाहनः।
संहृत्य परमं रूपं प्रकृतिस्थोऽभवद्भवः॥ ४१॥

इसके बाद कपर्दी वृषवाहन भगवान् शिव, अत्यन्त प्रसन्न होकर परम रूप को समेटकर अपने सामान्य रूप में स्थित हो गये।

ते भवं भूतभव्येशं पूर्ववत्समवस्थितम्।
दृष्ट्वा नारायणं देवं विस्मितं वाक्यमब्रुवन्॥ ४२॥
भगवन् भूतभव्येश गोवृषाङ्कितशासन।
दृष्ट्वा ते परमं रूपं निवृत्ताः स्मः सनातन॥ ४३॥

उन सब ने भूतभव्येश शिव को पूर्व के समान अवस्थित और विस्मय को प्राप्त नारायण देव को देखकर यह वाक्य कहा— हे भगवन्! हे भूतभव्येश! हे गोवृषाङ्कितशासन! हे सनातन! हम सब आपके इस परम रूप को देखकर निवृत्त (कृतकृत्य) हो गये हैं।

भवत्प्रसादादमले परस्मिन्परमेश्वरे।
अस्माकं जायते भक्तिस्त्वय्येवाव्यभिचारिणी॥ ४४॥

आपकी कृपा से निर्मल परब्रह्म परमेश्वर आप में हमारी अटूट भक्ति उत्पन्न हो गई है।

इदानीं श्रोतुमिच्छामो माहात्म्यं तव शङ्कर।
भूयोऽपि चैव यन्नित्यं याथात्म्यं परमेष्ठिनः॥ ४५॥

हे शङ्कर! सम्प्रति हम आपके माहात्म्य को सुनने की इच्छा करते हैं तथा पुनः आप परमेष्ठी का नित्य और यथार्थ स्वरूप का भी श्रवण करना चाहते हैं।

स तेषां वाक्यमाकर्ण्य योगिनां योगसिद्धिदः।
प्राह गम्भीरया वाचा समालोक्य च माधवम्॥ ४६॥

योगसिद्धिप्रदाता शिवजी ने उन योगियों की बात सुनकर माधव की ओर देखकर गंभीर वाणी में कहा।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे ईश्वरगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे ऋषिव्याससंवादे पंचमोऽध्यायः॥ ५॥

षष्ठोऽध्यायः
(ईश्वर-गीता)

ईश्वर उवाच

शृणुध्वमृषयः सर्वे यथावत्परमेष्ठिनः।
वक्ष्यामीशस्य माहात्म्यं यत्तद्वेदविदो विदुः॥ १॥

ईश्वर ने कहा— हे ऋषिवृन्द! आप सब लोग श्रवण कीजिए। मैं यथावत् परमेष्ठी ईश का माहात्म्य कहता हूँ जिसको वेदों के ज्ञाता ही जानते हैं।

सर्वलोकैकनिर्माता सर्वलोकैकरक्षिता।
सर्वलोकैकसंहर्ता सर्वात्माहं सनातनः॥ २॥
सर्वेषामेव वस्तूनामन्तर्यामी महेश्वरः।
मध्ये चान्तः स्थितं सर्वं नाहं सर्वत्र संस्थितः॥ ३॥

एक मैं ही समस्त लोकों का निर्माता हूँ। सब लोकों की रक्षा करने वाला भी मैं ही एक हूँ तथा सम्पूर्ण लोकों का संहारकर्ता भी मैं हूँ। मैं ही सर्वात्मा और सनातन हूँ। मैं महेश्वर समस्त वस्तुओं का अन्तर्यामी हूँ। मध्य में और अन्त में, सब कुछ मुझ में स्थित है और मैं सर्वत्र संस्थित नहीं हूँ।

भवद्भिरद्भुतं दृष्टं यत्स्वरूपन्तु मामकम्।
ममैषा ह्युपमा विप्रा माया वै दर्शिता मया॥ ४॥
सर्वेषामेव भावानामन्तरं समवस्थितः।
प्रेरयामि जगत्कृत्स्नं क्रियाशक्तिरियं मम॥ ५॥
मयेदं चेष्टते विश्वं तद्वै भावानुवर्ति मे।
सोऽहं कालो जगत्कृत्स्नं प्रेरयामि कलात्मकम्॥ ६॥

आप लोगों ने जो यह मेरा परम अद्भुत स्वरूप देखा है। हे विप्रगण! यह भी मेरी ही उपमा माया है जिसे मैंने प्रदर्शित किया है। मैं सब पदार्थों के भीतर समवस्थित हूँ और मैं सम्पूर्ण जगत् को प्रेरित किया करता हूँ— यही मेरी क्रियाशक्ति है। मेरे द्वारा ही यह विश्व चेष्टावान् है और मेरे

भाव का अनुवर्ती है। वही मैं काल इस कलात्मक संपूर्ण जगत् को प्रेरित करता रहता हूँ।

एकांशेन जगत्कृत्स्नं करोमि मुनिपुंगवाः।
संहराम्येकरूपेण स्थितावस्था ममैव तु॥७॥

हे मुनिश्रेष्ठो! मैं अपने एक अंश से इस सम्पूर्ण जगत् को बनाता हूँ और अन्य एक रूप से इसका संहार करता हूँ। इसकी स्थिति की अवस्था भी मेरी ही है।

आदिमध्यान्तनिर्मुक्तो मायातत्त्वप्रवर्तकः।
क्षोभयामि च सर्गादौ प्रधानपुरुषावुभौ॥८॥
ताभ्यां सञ्जायते विश्वं संयुक्ताभ्यां परस्परम्।
महदादिक्रमेणैव मम तेजो विजृम्भते॥९॥

मैं आदि और मध्य से निर्मुक्त तथा मायातत्त्व का प्रवर्त्तक हूँ। सर्ग के प्रारंभ में इन प्रधान और पुरुष दोनों को क्षोभित करता हूँ। उन दोनों के परस्पर संयुक्त होने पर यह विश्व समुत्पन्न होता है। महदादि के क्रम से मेरा ही तेज विजृम्भित हुआ करता है।

यो हि सर्वजगत्साक्षी कालचक्रप्रवर्तकः।
हिरण्यगर्भो मार्त्तण्डः सोऽपि मद्देहसम्भवः॥१०॥
तस्मै दिव्यं स्वमैश्वर्यं ज्ञानयोगं सनातनम्।
दत्तवानात्मजान्वेदान् कल्पादौ चतुरो द्विजाः॥११॥
स मन्नियोगतो देवो ब्रह्मा मद्भावभावितः।
दिव्यं तन्मामकैश्वर्यं सर्वदावगतः स्वयम्॥१२॥

जो इस समस्त जगत् का साक्षी और कालचक्र का प्रवर्त्तक यह हिरण्यगर्भ मार्त्तण्ड है, वह भी मेरे ही देह से उत्पन्न है। हे द्विजो! उसके लिये मैंने अपना दिव्य ऐश्वर्य, सनातन ज्ञानयोग और आत्मस्वरूप चार वेदों को कल्प के आदि में प्रदान किया था। मेरे नियोग से देव ब्रह्मा स्वयं मेरे भाव से भावित होकर मेरे दिव्य ऐश्वर्य से सर्वदा अवगत हैं।

स सर्वलोकनिर्माता मन्नियोगेन सर्ववित्।
भूत्वा चतुर्मुखः सर्गं सृजत्येवात्मसंभवः॥१३॥
योऽपि नारायणोऽनन्तो लोकानां प्रभवोऽव्ययः।
ममैव च परा मूर्तिः करोति परिपालनम्॥१४॥

मेरी आज्ञा से ही सर्वज्ञाता होकर यह सब लोकों का निर्माता, आत्मसम्भव, चतुर्मुख ब्रह्मा इस सर्ग का सृजन किया करते हैं। और जो यह अनन्त नारायण, संपूर्ण लोकों का उत्पत्तिस्थल और अव्यय है, यह भी मेरी ही परा मूर्ति है जो परिपालन किया करती है।

योऽन्तकः सर्वभूतानां रुद्रः कालात्मकः प्रभुः।
मदाज्ञयासौ सततं संहरिष्यति मे तनुः॥१५॥
हव्यं वहति देवानां कव्यं कव्याशिनामपि।
पाकञ्च कुरुते वह्निः सोऽपि मच्छक्तिनोदितः॥१६॥
भुक्तमाहारजातञ्च पचते तदहर्निशम्।
वैश्वानरोऽग्निर्भगवानीश्वरस्य नियोगतः॥१७॥

जो समस्त प्राणियों का अन्तक (विनाशक) है, वह कालात्मक प्रभु रुद्र भी मेरी आज्ञा से निरन्तर संहार करेगा। वह मेरा ही शरीर है। वह देवों के लिये समर्पित हव्य को वहन किया करता है और जो कव्य (होमान्त शेष) का भक्षण करने वालों का कव्य वहन करता है तथा जो वह्नि पाचन क्रिया करता है, वह भी मेरी ही शक्ति से प्रेरित हुआ करता है। ईश्वर के नियोग से भगवान् वैश्वानर प्राणियों द्वारा खाये गये आहार को अहर्निश पचाते हैं।

योऽपि सर्वाम्भसां योनिर्वरुणो देवपुंगवः।
सोऽपि सञ्जीवयेत्कृत्स्नमीश्वरस्य नियोगतः॥१८॥
योऽन्तस्तिष्ठति भूतानां बहिर्देवः प्रभञ्जनः।
मदाज्ञयासौ भूतानां शरीराणि बिभर्ति हि॥१९॥

जो सम्पूर्ण जलों का उत्पत्ति का स्थान देवों में श्रेष्ठ वरुण है वह भी ईश्वर के ही नियोग से सबको सञ्जीवित किया करते हैं। जो प्राणियों के अन्दर और बाहर स्थित रहता है वह प्रभञ्जन (वायुदेव) भी मेरी ही आज्ञा से भूतों के शरीरों का भरण किया करता है।

योऽपि सञ्जीवनो नृणां देवानाममृताकरः।
सोमः स मन्नियोगेन नोदितः किल वर्त्तते॥२०॥
यः स्वभासा जगत्कृत्स्नं प्रभासयति सर्वशः।
सूर्यो वृष्टिं वितनुते स्वोस्नेणैव स्वयंभुवः॥२१॥

जो मनुष्यों के लिए संजीवनरूप और देवों के लिए अमृत का भंडार है, वह सोम भी मेरे ही नियोग से प्रेरित हुआ वर्तमान है। जो अपनी दीप्ति से सम्पूर्ण जगत् को सब ओर से प्रकाशित करता है, वह सूर्य भी स्वयम्भू के अपने उस्रवण से ही वृष्टि का विस्तार किया करता है।

योऽप्यशेषजगच्छास्ता शक्रः सर्वामरेश्वरः।
यज्वनां फलदो देवो वर्त्तते स मदाज्ञया॥२२॥

जो भी संपूर्ण जगत् के शासक, सकल देवों के अधीश्वर तथा यज्ञकर्ता के लिए फल देने वाले इन्द्र हैं, वे भी मेरी आज्ञा से वर्तित हो रहे हैं।

यः प्रशास्ता ह्यसाधूनां वर्तते नियमादिह।
यमो वैवस्वतो देवो देवदेवनियोगतः॥ २३॥

जो असाधु (असत्कर्म वाले) पुरुषों के प्रशासक वैवस्वत देव यमराज हैं, वे भी मुझ देवाधिदेव के नियोग से नियमपूर्वक शासन करते हैं।

योऽपि सर्वधनाध्यक्षो धनानां सम्प्रदायकः।
सोऽपीश्वरनियोगेन कुबेरो वर्तते सदा॥ २४॥
यः सर्वरक्षसां नाथस्तामसानां फलप्रदः।
मन्नियोगादसौ देवो वर्तते निर्ऋतिः सदा॥ २५॥

जो समस्त धनों का अधिपति और धनों का सम्प्रदायक है, वह कुबेर भी मुझ ईश्वर के नियोग से प्रवर्तमान है। जो सभी राक्षसों का स्वामी तथा तामसजनों के फलदाता हैं, वह निर्ऋतिदेव भी सदा मेरे नियोग से ही वर्तमान हैं।

वेतालगणभूतानां स्वामी भोगफलप्रदः।
ईशानः किल भक्तानां सोऽपि तिष्ठेन्मदाज्ञया॥ २६॥

जो वेतालगण और भूतों के स्वामी एवं भक्तों का भोगफल प्रदाता है, वह ईशान देव भी मेरी आज्ञा के अधीन रहता है।

यो वामदेवोऽङ्गिरसः शिष्यो रुद्रगणाग्रणीः।
रक्षको योगिनां नित्यं वर्ततेऽसौ मदाज्ञया॥ २७॥

रुद्रगणों में अग्रणी, अंगिरा के शिष्य और योगियों के रक्षक जो वामदेव है वह भी मेरी आज्ञा से ही प्रवर्तित है।

यश्च सर्वजगत्पूज्यो वर्तते विघ्ननायकः।
विनायको धर्मरतः सोपि मद्वचनात्किल॥ २८॥

जो सम्पूर्ण संसार के लिए पूज्य, धर्मपरायण, विघ्नों का नायक, विनायक (गणेश) हैं, वे भी मेरे वचन से प्रेरित हैं।

योऽपि ब्रह्मविदां श्रेष्ठो देवसेनापतिः प्रभुः।
स्कन्दोऽसौ वर्तते नित्यं स्वयम्भूर्विधिनोदितः॥ २९॥

जो ब्रह्मवेत्ताओं श्रेष्ठ, देवताओं के सेनापति, स्वयम्भू, प्रभु स्कन्द कार्तिकेय भी विधि द्वारा प्रेरित होकर ही अधिष्ठित हैं।

ये च प्रजानां पतयो मरीच्याद्या महर्षयः।
सृजन्ति विविधं लोकं परस्यैव नियोगतः॥ ३०॥
या च श्रीः सर्वभूतानां ददाति विपुलां श्रियम्।
पत्नी नारायणस्यासौ वर्तते मदनुग्रहात्॥ ३१॥

जो प्रजाओं के स्वामी मरीचि आदि महर्षिगण हैं, वे भी परात्पर की आज्ञा से ही विविध लोकों की रचना करते हैं। और जो नारायण की पत्नी लक्ष्मी समस्त प्राणियों को विपुल धन-सम्पत्ति प्रदान करती है, वह भी मेरे अनुग्रह से ही वर्तमान है।

वाचं ददाति विपुलां या च देवी सरस्वती।
सापीश्वरनियोगेन नोदिता संप्रवर्तते॥ ३२॥

जो देवी सरस्वती विपुल वाणी प्रदान करती है, वह भी ईश्वर के नियोग से प्रेरित होकर प्रवर्तित है।

याशेषपुरुषान् घोरान्नरकात्तारयिष्यति।
सावित्री संस्मृता चापि मदाज्ञानुविधायिनी॥ ३३॥

जो सम्यक् प्रकार से स्मरण करने पर समस्त नरसमूह को घोर नरक से तार देती है, वह सावित्री भी मेरी आज्ञा की अनुवर्तिनी है।

पार्वती परमा देवी ब्रह्मविद्याप्रदायिनी।
यापि ध्याता विशेषेण सापि मद्वचनानुगा॥ ३४॥

जो ब्रह्मविद्या को प्रदान करने वाली और विशेष रूप से ध्यान करने योग्य है, वह श्रेष्ठ देवी पार्वती भी मेरे वचन का अनुगमन करती है।

योऽनन्तमहिमानन्तः शेषोऽशेषामरप्रभुः।
दधाति शिरसा लोकं सोऽपि देवनियोगतः॥ ३५॥

जो अनन्त महिमाशाली, अनन्त नामधारी, समस्त देवों के प्रभु शेष (नाग) अपने सिर से इस लोक को धारण करते हैं, वे भी मुझ देव के नियोग से ही करते हैं।

योऽग्निः संवर्तको नित्यं वडवारूपसंस्थितः।
पिबत्यखिलमम्भोधिमीश्वरस्य नियोगतः॥ ३६॥

जो अग्नि नित्य संवर्तक और वडवारूप में अवस्थित होकर संपूर्ण समुद्र का पान करती है, वह भी महेश्वर के आदेश से ही है।

ये चतुर्दश लोकेऽस्मिन्मनवः प्रथितौजसः।
पालयन्ति प्रजाः सर्वास्तेऽपि तस्य नियोगतः॥ ३७॥

जो इस लोक में प्रथित तेज वाले चौदह मनु हैं, वे भी ईश्वर के नियोग से समस्त प्रजाओं का पालन करते हैं।

आदित्या वसवो रुद्रा मरुतश्च तथाश्विनौ।
अन्याश्च देवताः सर्वाः शास्त्रेणैव विनिर्मिताः॥ ३८॥
गन्धर्वा गरुडाद्याश्च सिद्धाः साध्याश्च चारणाः।
यक्षरक्षःपिशाचाश्च स्थिताः सृष्टाः स्वयंभुवा॥ ३९॥

आदित्य, वसु, रुद्र, मरुत्, दोनों अश्विनीकुमार तथा अन्य सभी देवता (मेरे) शास्त्र से ही नियमित हैं। गन्धर्व, गरुड,

सिद्ध, सन्ध्या, चारण, यक्ष, राक्षस, पिशाच आदि सभी स्वयंभू द्वारा सृष्ट हैं।

कलाकाष्ठानिमेषाश्च मुहूर्त्ता दिवसाः क्षपाः।
ऋतवः पक्षमासाश्च स्थिताः शास्त्रे प्रजापतेः॥४०॥
युगमन्वन्तराण्येव मम तिष्ठन्ति शासने।
पराश्चैव परार्द्धाश्च कालभेदास्तथापरे॥४१॥
चतुर्विधानि भूतानि स्थावराणि चराणि च।
नियोगादेव वर्त्तन्ते देवस्य परमात्मनः॥४२॥

कला, काष्ठा, निमेष, मुहूर्त, दिवस, क्षमा, ऋतु, पक्ष-मास— ये सब प्रजापति के शास्त्र (अनुशासन) में स्थित हैं। युग और मन्वन्तर भी मेरे ही शासन में स्थित रहा करते हैं। परा-परार्द्ध तथा अन्य कालभेद और चार प्रकार के चराचर प्राणी भी परमात्मा देव के ही नियोग से वर्त्तमान रहा करते हैं।

पातालानि च सर्वाणि भुवनानि च शासनात्।
ब्रह्माण्डानि च वर्त्तन्ते सर्वाण्येव स्वयंभुवः॥४३॥
अतीतान्यप्यसंख्यानि ब्रह्माण्डानि ममाज्ञया।
प्रवृत्तानि पदार्थौघैः सहितानि समन्ततः॥४४॥

समस्त पाताल लोक और सभी भुवन तथा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड— ये सभी स्वयम्भू के शासन से ही प्रवर्तित हैं। जो सब ओर से अनेक पदार्थों के समूहों के सहित असंख्य अतीत ब्रह्माण्ड भी मेरी ही आज्ञा से प्रवृत्त हुए थे।

ब्रह्माण्डानि भविष्यन्ति सह चात्मभिरात्मगैः।
करिष्यन्ति सदैवाज्ञां परस्य परमात्मनः॥४५॥
भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
भूतादिरादिप्रकृतिर्नियोगे मम वर्त्तते॥४६॥

अन्य भी बहुत से ब्रह्माण्ड आत्मगत वस्तु समूह से आत्माओं के साथ भविष्य में भी होंगे। वे सभी परात्पर परमेश्वर की आज्ञा का ही सदा पालन करेंगे। भूमि, जल, वायु, आकाश, अनल, मन, बुद्धि, भूतादि और प्रकृति मेरे ही नियोग में वर्त्तमान रहते हैं।

याशेषजगतां योनिर्मोहिनी सर्वदेहिनाम्।
माया विवर्त्तते नित्यं सापीश्वरनियोगतः॥४७॥
यो वै देहभृतां देवः पुरुषः पठ्यते परः।
आत्मासौ वर्त्तते नित्यमीश्वरस्य नियोगतः॥४८॥

जो सम्पूर्ण लोकों की योनि अर्थात् उद्भव स्थल है और सभी देहधारियों को मोहित करने वाली है, वह माया भी नित्य ही ईश्वर के नियोग से प्रवर्तमान है। जो यह देहधारियों का देव पर पुरुष के नाम से ही कहा जाता है वह आत्मा नित्य ही ईश्वर के नियोग से वर्त्तमान रहा करता है।

विधूय मोहकलिलं[1] यया पश्यति तत्पदम्।
सापि बुद्धिर्महेशस्य नियोगवशवर्त्तिनी॥४९॥

जिसके द्वारा मोहजनित भ्रम के अपसारण से परम पद का दर्शन होता है, वह श्रेष्ठ बुद्धि भी मेरी आज्ञानुवर्तिनी है।

बहुनात्र किमुक्तेन मम शक्त्यात्मकं जगत्।
मयैव प्रेर्यते कृत्स्नं मयैव प्रलयं व्रजेत्॥५०॥

अधिक कहने से क्या? यह संपूर्ण जगत् मेरी शक्ति का स्वरूप है। सम्पूर्ण जगत् मेरे द्वारा ही प्रेरित होता है और मेरे द्वारा ही लय को प्राप्त होता है।

अहं हि भगवानीशः स्वयं ज्योतिः सनातनः।
परमात्मा परं ब्रह्म मत्तो ह्यन्यो न विद्यते॥५१॥

मैं ही भगवान्, ईश्वर, स्वयंज्योति, सनातन, परमात्मा और परब्रह्म हूँ। मुझसे भिन्न कुछ भी नहीं है।

इत्येतत्परमं ज्ञानं युष्माकं कथितं मया।
ज्ञात्वा विमुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात्॥५२॥

यही परमज्ञान है, जिसे मैंने आप लोगों को कह दिया है। इसको जानकर प्राणी जन्मादिरूप संसार-बन्धन से मुक्त हो जाता है।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे ईश्वरगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे ऋषिव्याससंवादे षष्ठोऽध्यायः॥६॥

सप्तमोऽध्यायः

(ईश्वर-गीता)

ईश्वर उवाच

शृणुध्वमृषयः सर्वे प्रभावं परमेष्ठिनः।
यं ज्ञात्वा पुरुषो मुक्तो न संसारे पतेत्पुनः॥१॥

महादेव बोले— आप सब परमेष्ठी के प्रभाव को श्रवण करें, जिसे जानकर पुरुष मुक्त होकर पुनः संसार में नहीं गिरता।

परात्परतरं ब्रह्म शाश्वतं ध्रुवमव्ययम्।

1. कलिल— भ्रम, मिथ्याज्ञान। द्र० भागवत २.५२

नित्यानन्दं निर्विकल्पं तद्धाम परमं मम॥२॥

जो पर से भी परतर, शाश्वत, ध्रुव, अव्यय, सदानन्दरूप और निर्विकल्प है, वही मेरा परम धाम है।

अहं ब्रह्मविदां ब्रह्मा स्वयंभूर्विश्वतोमुख:।
मायाविनामहं देव: पुराणो हरिरव्यय:॥३॥

मैं ब्रह्मवेत्ताओं का ब्रह्मा, स्वयंभु, विश्वतोमुख, मायावियों के लिए देवस्वरूप, पुराण पुरुष हरि और अव्यय हूँ।

योगिनामस्म्यहं शम्भु: स्त्रीणां देवी गिरीन्द्रजा।
आदित्यानामहं विष्णुर्वसूनामस्मि पावक:॥४॥
रुद्राणां शङ्करश्चाहं गरुड: पततामहम्।
ऐरावतो गजेन्द्राणां राम:[1] शस्त्रभृतामहम्॥५॥

योगियों में मैं ही शम्भु हूँ, स्त्रियों में देवी पार्वती, आदित्यों में विष्णु और वसुओं में पावक हूँ। मैं ही रुद्रों में शंकर, पक्षियों में गरुड़, गजेन्द्रों में ऐरावत तथा शस्त्रधारियों में परशुराम हूँ।

ऋषीणां च वसिष्ठोऽहं देवानाञ्च शतक्रतु:।
शिल्पिनां विश्वकर्माहं प्रह्लाद: सुरविद्विषाम्॥६॥
मुनीनामप्यहं व्यासो गणानाञ्च विनायक:।
वीराणां वीरभद्रोऽहं सिद्धानां कपिलो मुनि:॥७॥

ऋषियों में वसिष्ठ, देवताओं में इन्द्र, शिल्पियों में विश्वकर्मा और सुरद्वेषियों में प्रह्लाद हूँ। मुनियों में मैं व्यास, गणों में गणेश, वीरों में वीरभद्र और सिद्धों में कपिल मुनि हूँ।

पर्वतानामहं मेरुर्नक्षत्राणाञ्च चन्द्रमा:।
वज्रं प्रहरणानाञ्च व्रतानां सत्यमस्म्यहम्॥८॥
अनन्तो भोगिनां देव: सेनानीनाञ्च पावकि:[2]।
आश्रमाणां गृहस्थोऽहमीश्वराणां महेश्वर:॥९॥

मैं पर्वतों में सुमेरु, नक्षत्रों में चन्द्रमा, आयुधों में वज्र और व्रतों में सत्य हूँ। नागों में अनन्त शेष, सेनापतियों में कार्तिकेय, आश्रमों में गृहस्थ आश्रम और ईश्वरों में महेश्वर हूँ।

महाकल्पश्च कल्पानां युगानां कृतमस्म्यहम्।
कुबेर: सर्वयक्षाणां तृणानाञ्चैव वीरुध:॥१०॥
प्रजापतीनां दक्षोऽहं निर्ऋति: सर्वरक्षसाम्।
वायुर्बलवतामस्मि द्वीपानां पुष्करोऽस्म्यहम्॥११॥

मैं ही कल्पों में महाकल्प और युगों में सत्ययुग हूँ। सभी यक्षों में कुबेर और तृणों में वीरुध (लता) हूँ। प्रजापतियों में दक्ष, समस्त राक्षसों में निर्ऋति, बलवानों में वायु और द्वीपों में पुष्कर हूँ।

मृगेन्द्राणाञ्च सिंहोऽहं यन्त्राणां धनुरेव च।
वेदानां सामवेदोऽहं यजुषां शतरुद्रियम्॥१२॥
सावित्री सर्वजप्यानां गुह्यानां प्रणवोऽस्म्यहम्।
सूक्तानां पौरुषं सूक्तं ज्येष्ठसाम च सामसु॥१३॥
सर्ववेदार्थविदुषां मनु: स्वायम्भुवोऽस्म्यहम्।
ब्रह्मावर्तस्तु देशानां क्षेत्राणामविमुक्तकम्॥१४॥

मृगेन्द्रों में सिंह, यन्त्रों में धनु, वेदों में सामवेद और यजुर्मन्त्रों में शतरुद्रिय मैं ही हूँ। जपनीय सब मंत्रों में सावित्री और गुह्य मन्त्रों में ओंकार स्वरूप मैं ही हूँ। सूक्तों में पुरुषसूक्त और सामों में ज्येष्ठसाम हूँ। संपूर्ण वेदार्थों के ज्ञाताओं में स्वायम्भुव मनु मैं ही हूँ देशों में ब्रह्मावर्त और क्षेत्रों में अविमुक्त क्षेत्र हूँ।

विद्यानामात्मविद्याहं ज्ञानानामैश्वरं परम्।
भूतानामस्म्यहं व्योम तत्त्वानां मृत्युरेव च॥१५॥
पाशानामस्म्यहं माया काल: कलयतामहम्।
गतीनां मुक्तिरेवाहं परेषां परमेश्वर:॥१६॥
यच्चान्यदपि लोकेऽस्मिन् सत्त्वं तेजोबलाधिकम्।
तत्सर्वं प्रतिजानीध्वं मम तेजोविजृम्भितम्॥१७॥

विद्याओं में आत्मविद्या, ज्ञानों में परम ईश्वरीय ज्ञान, महाभूतों में व्योम और तत्त्वों में मृत्यु स्वरूप मैं ही हूँ। पाशों (बन्धन) में मैं माया हूँ और विनाशशीलों में कालरूप हूँ। गतियों में मुक्ति और परों (श्रेष्ठों) में परमेश्वर हूँ। इस लोक में दूसरा जो कोई भी प्राणी तेज एवं बल में अधिक है, उन सब को मेरे ही तेज से विकसित समझो।

आत्मान: पशव: प्रोक्ता: सर्वे संसारवर्त्तिन:।
तेषां पतिरहं देव: स्मृत: पशुपतिर्बुधै:॥१८॥

संसारवर्ती सभी आत्माएँ पशु नाम से कही गयी हैं। मैं देव ही उन सबका पति हूँ, अतएव विद्वानों द्वारा मुझे पशुपति कहा गया है।

मायापाशेन बध्नामि पशूनेतान् स्वलीलया।
मामेव मोचकं प्राहु: पशूनां वेदवादिन:॥१९॥
मायापाशेन बद्धानां मोचकोऽन्यो न विद्यते।

1. राम: परशुराम: जामदग्निपुत्र:।
2. अग्निपुत्र: कार्तिकेय:।

मामृते परमात्मानं भूताधिपतिमव्ययम्॥ २०॥

मैं अपनी लीला से इन पशुओं को मायापाश में बाँधता हूँ और वेदवादी विद्वान् इन पशुओं को बन्धन से मुक्त करने वाला भी मुझे ही कहते हैं। माया के बन्धन से बँधे हुए जीवों को छुड़ाने वाला भूताधिपति, अविनाशी मुझ परमात्मा के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है।

चतुर्विंशतितत्त्वानि माया कर्म गुणा इति।
एते पाशाः पशुपतेः क्लेशाश्च[1] पशुबन्धनाः॥ २१॥

चौबीस तत्त्व,[2] माया, कर्म और गुण— ये सभी पशुपति के पाश क्लेशदायक और जीव को बाँधने वाले हैं।

मनो बुद्धिरहङ्कारः खानिलाग्निजलानि भूः।
एताः प्रकृतयस्त्वष्टौ विकाराश्च तथापरे॥ २२॥
श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा घ्राणञ्चैव तु पञ्चमम्।
पायूपस्थं करौ पादौ वाक् चैव दशमी मता॥ २३॥
शब्दः स्पर्शश्च रूपञ्च रसो गन्धस्तथैव च।
त्रयोविंशतिरेतानि तत्त्वानि प्राकृतानि च॥ २४॥

मन, बुद्धि, अहंकार, आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी ये आठ प्रकृतियाँ कही गई हैं। अन्य सब विकार हैं। श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और पाँचवां नाक, गुदा, लिंग हाथ, पैर और दशम वाक्, तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध— इस प्रकार ये तेईस तत्त्व प्रकृति के हैं।

चतुर्विंशकमव्यक्तं प्रधानं गुणलक्षणम्।
अनादिमध्यनिधनं कारणं जगतः परम्॥ २५॥

चौबीसवाँ तत्त्व गुणलक्षण वाला अव्यक्त प्रधान है। यही मध्य और अन्त से रहित तथा जगत् का मुख्य कारण है।

सत्त्वं रजस्तमश्चेति गुणत्रयमुदाहृतम्।
साम्यावस्थितिमेतेषामव्यक्तां प्रकृतिं विदुः॥ २६॥

सत्त्व, रज और तम— ये तीन गुण कहे गये हैं। इन तीनों की साम्यावस्था को ही अव्यक्त प्रकृति कहा जाता है।

सत्त्वं ज्ञानं तमो ज्ञानं राजसं समुदाहृतम्।
गुणानां बुद्धिवैषम्याद्वैषम्यं कवयो विदुः॥ २७॥

सत्त्वज्ञान, तमोज्ञान और राजस ज्ञान— ये तीनों ज्ञान बुद्धि की विषमता के कारण होते हैं, ऐसा विद्वान् कहते हैं।

धर्माधर्माविति प्रोक्तौ पाशौ द्वौ कर्मसंज्ञितौ।
मय्यर्पितानि कर्माणि न बन्धाय विमुक्तये॥ २८॥

धर्म और अधर्म— ये दो कर्मसंज्ञक पाश कहे गये हैं। मुझ में अर्पित किये गये कर्म बन्धन के लिए न होकर मुक्ति के लिए होते हैं।

अविद्यामस्मितां रागं द्वेषं चाभिनिवेशनम्।
क्लेशाख्यांस्तानं स्वयं प्राह पाशानात्मनिबन्धनात्॥ २९॥

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश— ये पाँचों पाशों को आत्म के बन्धन होने के कारण क्लेश नाम से कहा गया है।

एतेषामेव पाशानां मायाकारणमुच्यते।
मूलप्रकृतिरव्यक्ता सा शक्तिर्मयि तिष्ठति॥ ३०॥

इन सब पाशों का कारण माया ही कहा गया है। वह माया मेरी अव्यक्त मूल प्रकृति के रूप में मुझमें ही अवस्थित है।

स एव मूलप्रकृतिः प्रधानं पुरुषोऽपि च।
विकारा महदादीनि देवदेवः सनातनः॥ ३१॥

वही मूल प्रकृति है, जो प्रधान और पुरुष भी है। महत् आदि सब विकार कहे गये हैं और देवाधिदेव सनातन हैं।

स एव बन्धः स च बन्धकर्ता
स एव पाशः पशुभृत्स एव।
स वेद सर्वं न च तस्य वेत्ता
तमाहुराद्यं पुरुषं पुराणम्॥ ३२॥

वही (सनातन) स्वयं बन्धरूप है। वही बन्धनकर्ता है। वही पाश है और वही पशुभृत् है। वह सब कुछ जानता है, उसको जानने वाला कोई नहीं है। उसे ही आदि पुराण पुरुष कहते हैं।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे ईश्वरगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे ऋषिव्याससंवादे सप्तमोऽध्यायः॥७॥

अष्टमोऽध्यायः

(ईश्वर-गीता)

ईश्वर उवाच

अन्यद्गुह्यतमं ज्ञानं वक्ष्ये ब्राह्मणपुङ्गवाः।
येनासौ तरते जन्तुर्घोरं संसारसागरम्॥ १॥

ईश्वर बोले — हे ब्राह्मणश्रेष्ठो! अब मैं अत्यन्त गोपनीय ज्ञान को कहूँगा जिससे जीव इस घोर संसार सागर से तर जाते हैं।

---

1. अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः (योगसूत्र)
2. सांख्यकारिका ३

अयं ब्रह्मा तमः शान्तः शाश्वतो निर्मलोऽव्ययः।
एकाकी भगवानुक्तः केवलः परमेश्वरः॥ २॥

यह भगवान् ब्रह्मा तमःस्वरूप, शान्त,, शाश्वत, निर्मल, अविनाशी, एकाकी, केवल और परमेश्वर कहे गये हैं।

मम योनिर्महद्ब्रह्म तत्र गर्भं दधाम्यहम्।
मूलमायाभिधानं तं ततो जातमिदं जगत्॥ ३॥

जो महद्ब्रह्म है, वह मेरा योनि है। मैं उसमें गर्भ को धारण कराता हूँ। वह मूलमाया नाम से प्रसिद्ध है। उसीसे यह जगत् उत्पन्न होता है।

प्रधानं पुरुषो ह्यात्मा महद्भूतादिरेव च।
तन्मात्राणि मनोभूतानीन्द्रियाणि च जज्ञिरे॥ ४॥

उससे प्रधान, पुरुष, महान् आत्मा, भूतादि, पञ्च तन्मात्र एवं इन्द्रियाँ उत्पन्न हुई हैं।

ततोऽण्डमभवद्धैममर्ककोटिसमप्रभम्।
तस्मिञ्जज्ञे महाब्रह्मा मच्छक्त्या चोपबृंहितः॥ ५॥

उससे करोड़ों सूर्य के समान प्रभायुक्त सुवर्ण अण्ड उत्पन्न हुआ और मेरी शक्ति द्वारा परिवर्धित महाब्रह्मा उससे उत्पन्न हुआ।

ये चान्ये बहवो जीवास्तन्मयाः सर्व एव ते।
न मां पश्यन्ति पितरं मायया मम मोहिताः॥ ६॥

ये जो अन्य बहुत से जीव हैं, वे सब तन्मय हैं। वे मेरी माया से मोहित होकर मुझ पिता को नहीं देखते हैं।

यासु योनिषु ताः सर्वाः सम्भवन्तीह मूर्तयः।
तां मातरं परां योनिं मामेव पितरं विदुः॥ ७॥

इस संसार में ये सब मूर्तियाँ जिन योनियों से उत्पन्न होती हैं, उस परायोनि को माता और मुझे ही पिता जानो।

यो मामेव विजानाति बीजिनं पितरं प्रभुम्।
स वीरः सर्वलोकेषु न मोहमधिगच्छति॥ ८॥

जो मुझे बीजरूप प्रभु को पितारूप में जानता है, वह वीर पुरुष सभी लोकों में मोह को प्राप्त नहीं होता।

ईशानः सर्वविद्यानां भूतानां परमेश्वरः।
ओङ्कारमूर्तिर्भगवानहं ब्रह्मा प्रजापतिः॥ ९॥

मैं ही समस्त विद्याओं का ईश्वर, सब भूतों का परमेश्वर, ओंकारस्वरूप, भगवान्, ब्रह्मा और प्रजापति हूँ।

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति॥ १०॥

समस्त भूतों में समान भाव से अवस्थित मुझ परमेश्वर को जो मनुष्य इस विनाशशील जगत् में अविनाशीरूप में देखता है, वही यथार्थतः मुझे देखता (जानता) है।

समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम्।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम्॥ ११॥

जो व्यक्ति सर्वत्र ईश्वर को समानभाव से अवस्थित देखता है, वह अपने से अपनी हिंसा नहीं करता है, जिससे परम गति को प्राप्त होता है।

विदित्वा सप्त सूक्ष्माणि षडङ्गं च महेश्वरम्।
प्रधानविनियोगज्ञः परं ब्रह्माधिगच्छति॥ १२॥

सात सूक्ष्म पदार्थों तथा षडङ्ग महेश्वर को जानकर जो व्यक्ति प्रधान के विनियोग को समझ लेता है, वह परब्रह्म को प्राप्त करता है।

सर्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः
स्वच्छन्दता नित्यमलुप्तशक्तिः।
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विदित्वा
षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य॥ १३॥

सर्वज्ञता, तृप्ति, अनादिबोध, स्वच्छन्दता, नित्य अलुप्तशक्ति और अनन्तशक्ति— ये विभु महेश्वर के छः अङ्ग कहे गये है जो जानने योग्य हैं।

तन्मात्राणि मन आत्मा च तानि
सूक्ष्माण्याहुः सप्त तत्त्वात्मकानि।
या सा हेतुः प्रकृतिः सा प्रधानं
बन्धः प्रोक्तो विनयेनापि तेन॥ १४॥

पाँच तन्मात्र-मन और आत्मा ये ही परम सूक्ष्म सात तत्त्व कहे जाते हैं। इन सबका जो कारण है वही प्रकृति है और उसने इसी को विनय से प्रधान बन्ध कहा है।

या सा शक्तिः प्रकृतौ लीनरूपा
वेदेषूक्ता कारणं ब्रह्मयोनिः।
तस्या एकः परमेष्ठी पुरस्ता-
न्माहेश्वरः पुरुषः सत्यरूपः॥ १५॥

जो वह शक्ति प्रकृति में ही विलीनरूपा है, वेदों में उसी को कारण ब्रह्मयोनि कहा गया है। उसका एक परमेष्ठी, पुरस्तात्, माहेश्वर पुरुष वाला सत्यरूप है।

ब्रह्मा योगी परमात्मा महीयान्
व्योमव्यापी वेदवेद्यः पुराणः।

एको रुद्रो मृत्युमव्यक्तमेकं
बीजं विश्वं देव एकः स एव॥ १६॥

वह ब्रह्मा, योगी, महीयान्, परमात्मा, व्योम में व्यापक, वेदों के द्वारा ही जानने के योग्य और पुराण है। वह एक ही रुद्र, अव्यक्त, मृत्यु है, जिसका विश्वरूप एक बीज है, किन्तु वह देव एक ही है।

तमेवैकं प्राहुरन्येऽप्यनेकं
त्वामेवात्मा केचिदन्यं तमाहुः।
अणोरणीयान्महतो महीयान्
महादेवः प्रोच्यते विश्वरूपः॥ १७॥

उसी एक को अन्य लोग अनेक कहा करते हैं— तुमको ही आत्मा और कुछ उसे अन्य कहते हैं। वही अणु से भी बहुत ही अणुतर और महान् से भी परम महान् है। वही महादेव विश्वरूप कहे जाते हैं।

एवं हि यो वेद गुहाशयं परं
प्रभुं पुराणं पुरुषं विश्वरूपम्।
हिरण्मयं बुद्धिमतां परागतिं
स बुद्धिमान् बुद्धिमतीत्य तिष्ठति॥ १८॥

इस प्रकार जो (हृदयरूपी) गुहा में शयन करने वाले, परम प्रभु, पुराण पुरुष, विश्वरूप, हिरण्यमय तथा बुद्धिमानों की परागति को जानता है, वही वस्तुतः बुद्धिमान् है और वह बुद्धि का अतिक्रमण करके स्थित रहता है।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे ईश्वरगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे ऋषिव्याससंवादे अष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

नवमोऽध्यायः
(ईश्वर-गीता)

ऋषय ऊचुः

निष्कलो निर्मलो नित्यो निष्क्रियः परमेश्वरः।
तन्नो वद महादेव विश्वरूपः कथं भवान्॥ १॥

ऋषियों ने पूछा— निष्कल, निर्मल, नित्य, निष्क्रिय और परमेश्वर हे महादेव! आप विश्वरूप कैसे हुए यह बताने की कृपा करें?

ईश्वर उवाच

नाहं विश्वो न विश्वञ्च मामृते विद्यते द्विजाः।
माया निमित्तमात्रास्ति सा चात्मनि मयाश्रिता॥ २॥
अनादिनिधना शक्तिर्माया व्यक्तिसमाश्रया।
तन्निमित्तः प्रपञ्चोऽयमव्यक्ताज्जायते खलु॥ ३॥

ईश्वर ने कहा— हे द्विजगण! मैं स्वयं विश्व नहीं हूँ और मेरे बिना यह विश्व भी विद्यमान नहीं रहता। इसका निमित्त मात्र माया ही है और वह माया आत्मा में मेरे द्वारा ही आश्रित रहती है। यह आदि-अन्त से रहित शक्तिरूपा माया व्यक्ति का आश्रय ग्रहण करती है। उसीका निमित्त यह प्रपञ्च है जो उस अव्यक्त से समुत्पन्न हुआ करता है।

अव्यक्तं कारणं प्राहुरानन्दं ज्योतिरक्षरम्।
अहमेव परं ब्रह्म मत्तो ह्यन्यन्न विद्यते॥ ४॥
तस्मान्मे विश्वरूपत्वं निश्चितं ब्रह्मवादिभिः।
एकत्वे च पृथक्त्वे च प्रोक्तमेतन्निदर्शनम्॥ ५॥

इस एक अव्यक्त को ही सबका कारण कहा जाता है। मैं ही आनन्दमय, ज्योतिस्विरूप और परब्रह्म हूँ— मुझसे अन्य कोई भी नहीं है। इसी कारण मेरा विश्वरूप होना ब्रह्मवादियों ने निश्चित किया है। मेरे एकरूप होने और भिन्नरूप होने में यही एक निदर्शन है।

अहं तत्परमं ब्रह्म परमात्मा सनातनः।
अकारणं द्विजाः प्रोक्ता न दोषो ह्यात्मनस्तथा॥ ६॥
अनन्ताः शक्तयोऽव्यक्ता मायया संस्थिता ध्रुवाः।
तस्मिन्दिवि स्थितं नित्यमव्यक्तं भाति केवलम्॥ ७॥

मैं ही वह सनातन परम ब्रह्म परमात्मा हूँ। हे द्विजो! जो बिना कारण का कहा गया है, उसमें आत्मा का कोई भी दोष नहीं है। अनन्त शक्तियाँ हैं जो अव्यक्त हैं और माया के द्वारा संस्थित हैं तथा ध्रुव हैं। उस दिव लोक में स्थित नित्य अव्यक्त ही केवल प्रतिभासित होता है।

अभिन्नं वक्ष्यते भिन्नं ब्रह्माव्यक्तं सनातनम्।
एकया मायया युक्तमनादिनिधनं ध्रुवम्॥ ८॥
पुंसोऽन्याभूद्यथा भूतिरन्यया न तिरोहितम्।
अनादि मध्यं तिष्ठन्तं चेष्टते विद्यया किल॥ ९॥

अभिन्न ही भिन्न कहा जाता है। ब्रह्म अव्यक्त और सनातन है। वह एक माया से युक्त, आदि तथा अन्त से रहित निश्चल है। पुरुष की जिस तरह अन्या भूति है और अन्य से तिरोहित नहीं है वह अनादि मध्य से स्थित विद्या के द्वारा चेष्टा किया करता है।

तदेतत्परमव्यक्तं प्रभामण्डलमण्डितम्।
तदक्षरं परं ज्योतिस्तद्विष्णोः परमं पदम्॥ १०॥

यह परम, अव्यक्त और प्रभामण्डल से मण्डित है। वही अक्षर, परम ज्योतिरूप और उस विष्णु का परम पद है।

तत्र सर्वमिदं प्रोतमोतं चैवाखिलं जगत्।
तदेवेदं जगत्कृत्स्नं तद्विज्ञाय विमुच्यते॥ ११॥
यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् बिभेति न कुतश्चन॥ १२॥

वहां पर उसमें यह सम्पूर्ण जगत् ओत-प्रोत है अर्थात् बाहर भीतर सर्वत्र ही विद्यमान है। वही यह समस्त जगत् इसका भली भाँति ज्ञान करके विमुक्त हो जाया करता है। जहाँ पर वाणी मन के साथ वहां न पहुँचकर निवृत्त हो जाती है, वह ब्रह्म आनन्दमय स्वरूप है। विद्वान् पुरुष कहीं भी भयभीत नहीं होता है।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्त-
मादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तं विज्ञाय परिमुच्येत विद्वान्
नित्यानन्दी भवति ब्रह्मभूतः॥ १३॥
अस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चित्
यज्ज्योतिषां ज्योतिरेकं दिविस्थम्।
तदेवात्मानं मन्यमानोऽथ विद्वा-
नात्मानन्दी भवति ब्रह्मभूतः॥ १४॥

मैं उस महान् पुरुष को जानता हूँ जो सूर्य के समान वर्ण वाला और तम से परे है। उसे भली-भाँति जानकर विद्वान् संपूर्णरूप से मुक्त हो जाता है और नित्य ही आनन्दमय ब्रह्मभूत अर्थात् ब्रह्मस्वरूप हो जाया करता है। इससे परे दूसरा कोई भी नहीं है, जो द्युलोक में स्थित सभी ज्योतियों का एक ही ज्योतिरूप है। उसी को आत्मा मानने वाला विद्वान् आनन्द से युक्त और ब्रह्ममय हो जाया करता है।

तदव्ययं कलिलं गूढदेहं
ब्रह्मानन्दममृतं विश्वधाम।
वदन्त्येवं ब्राह्मणा ब्रह्मनिष्ठा
यत्र गत्वा न निवर्तेत भूयः॥ १५॥
हिरण्मये परमाकाशतत्त्वे
यदर्चिषि दिवि विप्रतिभातीव तेजः।
तद्विज्ञाने परिपश्यन्ति धीरा
विभ्राजमानं विमलं व्योमधाम॥ १६॥

वही अविनाशी, कलिल, गूढ देह वाला, अमृतस्वरूप, ब्रह्मानन्द और विश्व का धाम है— ऐसा ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण कहते हैं। वह ऐसा स्थान है जहाँ पर एक बार पहुँच कर यह जीवात्मा पुनः इस संसार में लौट कर नहीं आता है अर्थात् जन्म नहीं लेता है। हिरण्मय परमाकाशतत्त्व में जो दिवलोक में प्रकाशमान होता है, उसके विज्ञान में धीर पुरुष विभ्राजमान-विमल व्योम के धाम को देखा करते हैं।

ततः परं परिपश्यन्ति धीरा
आत्मन्यात्मानमनुभूय साक्षात्।
स्वयं प्रभुः परमेष्ठी महीयान्
ब्रह्मानन्दी भगवानीश एषः॥ १७॥
एको देवः सर्वभूतेषु गूढः
सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
तमेवैकं येऽनुपश्यन्ति धीरा-
स्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्॥ १८॥

इसके अनन्तर धीर पुरुष साक्षात् आत्मा में आत्मा का अनुभव करके परम तत्त्व को देखा करते हैं। यही भगवान् ईश स्वयं प्रभु, परमेष्ठी, महीयान्, ब्रह्मानन्दी है। यह एक ही देव समस्त भूतों में व्याप्त है और सब प्राणियों में गूढ़ है तथा समस्त भूतों का अन्तरात्मा है। उसी एक को जो धीर भली-भाँति देख लेते हैं अर्थात् उसका ठीक ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं, उन्हीं को शाश्वत शान्ति प्राप्त होती है अन्य जनों को नहीं।

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः।
सर्वव्यापी स भगवान्तस्मादन्यन्न विद्यते॥ १९॥
इत्येतदैश्वरं ज्ञानमुक्तं वो मुनिपुंगवाः।
गोपनीयं विशेषेण योगिनामपि दुर्लभम्॥ २०॥

सभी ओर मुख, शिर और ग्रीवा वाला, समस्त भूतों की हृदय-गुहा में वास करने वाला, सर्वत्र व्यापक रहने वाला वह भगवान् है। इससे अन्य कोई नहीं है। हे मुनिश्रेष्ठो! यह हमने आपको ईश्वरीय ज्ञान बता दिया है। यह योगिजनों के लिए भी अत्यन्त दुर्लभ है अतः विशेषरूप से गोपनीय है।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे ईश्वरगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां ऋषिनारदसंवादे नवमोऽध्यायः॥ ९॥

दशमोऽध्याय:

(ईश्वर-गीता)

ईश्वर उवाच

अलिङ्गमेकमव्यक्तलिङ्गं ब्रह्मेति निश्चितम्।
स्वयं ज्योति: परं तत्त्वं पूर्वं व्योम्नि व्यवस्थितम्॥ १॥
अव्यक्तं कारणं यत्तदक्षरं परमं पदम्।
निर्गुणं सिद्धिविज्ञानं तद्वै पश्यन्ति सूरय:॥ २॥

ईश्वर ने कहा— अलिङ्ग, एक, अव्यक्त लिङ्ग, ब्रह्म — इस नाम से निश्चित स्वयंज्योतिरूप, परम तत्त्व और परम व्योम में व्यवस्थित है, जो अव्यक्त कारण है वह अक्षर और परम पद है, वह गुणों से रहित है। इस सिद्धि के विज्ञान को विद्वान् ही देखा करते हैं अर्थात् जानते हैं।

तन्निष्ठा: शान्तसङ्कल्पा नित्यं तद्भावभाविता:।
पश्यन्ति तत्परं ब्रह्म यत्तल्लिङ्गमिति श्रुति:॥ ३॥
अन्यथा न हि मां द्रष्टुं शक्यं वै मुनिपुङ्गवा:।
नहि तद्विद्यते ज्ञानं येन तज्ज्ञायते परम्॥ ४॥

जिनके अन्त:करण में संकल्प नष्ट हो गये हैं और नित्य ही उसी की भावना से भावित रहा करते हैं वे ही उसी परब्रह्म को देखते हैं क्योंकि यही उसका लिङ्ग है— ऐसा श्रुति ने प्रतिपादन किया है। हे मुनिपुङ्गवो! अन्यथा मुझको नहीं देखा जा सकता है अर्थात् अन्य कोई भी साधन नहीं है जिसके द्वारा मुझे कोई जान सके। ऐसा और कोई भी ज्ञान नहीं है जिसके द्वारा वह परब्रह्म जाना जा सकता है।

एतत्तत्परमं स्थानं केवलं कवयो विदु:।
अज्ञानतिमिरं ज्ञानं यस्मान्मायामयं जगत्॥ ५॥
यज्ज्ञानं निर्मलं शुद्धं निर्विकल्पं निरञ्जनम्।
ममात्मासौ तदेवैनमिति प्राहुर्विपश्चित:॥ ६॥
येऽप्यनेकं प्रपश्यन्ति तत्परं परमं पदम्।
आश्रिता: परमां निष्ठां बुद्ध्वैकं तत्त्वमव्ययम्॥ ७॥

वही एकमात्र परम पद है, ऐसा विद्वान् लोग जानते हैं। अज्ञान रूपी तिमिर से पूर्ण ज्ञान है जिससे यह मायामय जगत् होता है। जो ज्ञान निर्मल, शुद्ध, निर्विकल्प और निरञ्जन है वही मेरी आत्मा है, ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं। जो उसके अनेक रूप को देखते हैं, वह भी परम पद है। उस अविनाशी तत्त्व को जानकर वे परम निष्ठा को आश्रित कर लेते हैं।

ये पुन: परमं तत्त्वमेकं वानेकमीश्वरम्।
भक्त्या मां सम्प्रपश्यन्ति विज्ञेयास्ते तदात्मका:॥ ८॥
साक्षादेवं प्रपश्यन्ति स्वात्मानं परमेश्वरम्।
नित्यानन्दं निर्विकल्पं सत्यरूपमिति स्थिति:॥ ९॥
भजन्ते परमानन्दं सर्वगं जगदात्मकम्।
स्वात्मन्यवस्थिता: शान्ता: परे व्यक्तापरस्य तु॥ १०॥

जो लोग पुन: उस परम तत्त्व को एक अथवा अनेक ईश्वररूप में मुझको देखते हैं वे तत्स्वरूप वाले ही जानने चाहिए। इस प्रकार वे अपने आत्मा परमेश्वर का साक्षात् दर्शन करते हैं। वह नित्यानन्दमय, निर्विकल्प और सत्यरूप स्थित है। वे अपनी ही आत्मा में अवस्थित परम शान्तभाव वाले, परमानन्द स्वरूप, सर्वत्र गमनशील और इस जगत् के आत्मरूप की उपासना करते हैं और दूसरे लोग अव्यक्त पर का भजन करते हैं।

एषा विमुक्ति: परमा मम सायुज्यमुत्तमम्।
निर्वाणं ब्रह्मणा चैक्यं कैवल्यं कवयो विदु:॥ ११॥
तस्मादनादिमध्यान्तं वस्त्वेकं परमं शिवम्।
स ईश्वरो महादेवस्तं विज्ञाय प्रमुच्यते॥ १२॥

यह परम मुक्ति है और मेरा उत्तम सायुज्य है। ब्रह्म के साथ एकता ही निर्वाण है जिसको ऋषिगण कैवल्य कहा करते हैं। इसलिए आदि मध्य और अंत से रहित परम शिव एक ही वस्तु है। वही ईश्वर महादेव हैं जिनका विशेष ज्ञान प्राप्त करके जीव मुक्त हो जाया करता है।

न तत्र सूर्य: प्रतिभातीह चन्द्रो
नक्षत्राणां गणो नोत विद्युत्।
तद्भासितं ह्यखिलं भाति विश्व-
मतीव भासममलं तद्विभाति॥ १३॥
विश्वोदितं निष्कलं निर्विकल्पं
शुद्धं बृहत्परमं यद्विभाति।
अत्रान्तरे ब्रह्मविदोऽथ नित्यं
पश्यन्ति तत्त्वमचलं यत्स ईश:॥ १४॥

वहाँ पर सूर्य प्रकाश नहीं करता है न चन्द्रमा ही है। नक्षत्रों का समुदाय भी नहीं है और न विद्युत् ही है। उसी के भासित होने पर यह संपूर्ण विश्व भासित होता है और उसकी भासमानता अतीव अमल है। इसी तरह वह दीप्ति

युक्त भासित हुआ करता है। विश्व में उदित या जिससे यह विश्व उदित हुआ है— निष्कल, निर्विकल्प, शुद्ध, वृहत् और परम विभासित होता है। इसी के मध्य ब्रह्मवेत्ता इस अचल नित्यतत्त्व को देखते हैं, वही ईश है।

नित्यानन्दममृतं सत्यरूपं
शुद्धं वदन्ति पुरुषं सर्ववेदा:।
प्राणानिति प्राणविनेशितारं
ध्यायन्ति वेदैरिति निश्चितार्था:॥ १५॥
न भूमिरापो न मनो न वह्नि:
प्राणोऽनिलो गगनं नोत बुद्धि:।
न चेतनोऽन्यत्परमाकाशमध्ये
विभाति देव: शिव एव केवल:॥ १६॥

सभी वेद उसे नित्यानन्दस्वरूप, अमृतमय, सत्यरूप, शुद्ध पुरुष कहा करते हैं। प्रणव में विशिता को प्राणान्— इस तरह ध्यान किया करते हैं। इस प्रकार वेदों द्वारा सत्य अर्थ का निश्चिय किया है। वह परमाकाश-हृदयगुहा में स्थित चेतनरूप में विराजमान है। वह भूमि, जल, मन, अग्नि, प्राण, वायु, गनन, बुद्धि और अन्य कोई भी इस परमाकाश के मध्य में प्रकाशमान नहीं होता है केवल एक देव शिव ही प्रकाशित होते हैं।

इत्येतदुक्तं परमं रहस्यं
ज्ञानमेदं सर्ववेदेषु गीतम्।
जानाति योगी विजनेऽथ देशे
युञ्जीत योगं प्रयतो ह्यजस्रम्॥ १७॥

यह परम रहस्य ज्ञान मैंने आपको कह दिया है जो कि समस्त वेदों में गाया गया है। जो कोई योगी निरन्तर संयतचित्त होकर योगयुक्त रहता है, वही एकान्त देश में इसका ज्ञान प्राप्त किया करता है।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे ईश्वरगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे ऋषिनारदसंवादे दशमोऽध्याय:॥ १०॥

एकादशोऽध्याय:

(ईश्वर-गीता)

ईश्वर उवाच

अत: परं प्रवक्ष्यामि योगं परमदुर्लभम्।
येनात्मानं प्रपश्यन्ति भानुमन्तमिवेश्वरम्॥ १॥
योगाग्निर्दहते क्षिप्रमशेषं पापपञ्जरम्।
प्रसन्नं जायते ज्ञानं साक्षान्निर्वाणसिद्धिदम्॥ २॥

ईश्वर ने कहा— इसके अनन्तर मैं परम दुर्लभ योग का वर्णन करता हूँ, जिसके द्वारा ईश्वररूप आत्मा को सूर्य की भाँति देखा करते हैं। योग की अग्नि समग्र पापसमुदाय को शीघ्र ही दग्ध कर देती है और तब साक्षात् मोक्ष की सिद्धि देने वाला प्रसन्न निर्मल ज्ञान उत्पन्न हो जाता है।

योगात्संजायते ज्ञानं ज्ञानाद्योग: प्रवर्त्तते।
योगज्ञानाभियुक्तस्य प्रसीदति महेश्वर:॥ ३॥
एककालं द्विकालं वा त्रिकालं नित्यमेव च।
ये युञ्जन्ति महायोगं ते विज्ञेया महेश्वरा:॥ ४॥

योग से ज्ञान की उत्पत्ति होती है और ज्ञान से ही योग प्रवृत्त हुआ करता है। योग और ज्ञान से अभियुक्त होने पर महेश्वर प्रसन्न होते हैं। जो कोई एक काल में, दो कालों में अथवा तीनों कालों में सदा महायोग का अभ्यास किया करते हैं उनको महेश्वर ही जानना चाहिए।

योगस्तु द्विविधो ज्ञेयो ह्यभाव: प्रथमो मत:।
अपरस्तु महायोग: सर्वयोगोत्तमोत्तम:॥ ५॥
शून्यं सर्वनिराभासं स्वरूपं यत्र चिन्त्यते।
अभावयोग: स प्रोक्तो येनात्मानं प्रपश्यति॥ ६॥
यत्र पश्यति चात्मानं नित्यानन्दं निरञ्जनम्।
मयैक्यं स मया योगो भाषित: परम: स्वयम्॥ ७॥

यह योग दो प्रकार का जानना चाहिए। प्रथम योग तो अभावरूप ही माना जाता है और दूसरा समस्त योगों में उत्तमोत्तम महायोग है। जहाँ शून्य और निराभास का चिन्तन किया जाता है, अभाव योग वह कहा गया है। जिसके द्वारा आत्मा को देख लेता है, जिसमें नित्यानन्द, निरञ्जन आत्मा को देखता है, वह मेरे साथ ऐक्य है। इस प्रकार मैंने परम योग का स्वयं वर्णन कया है।

ये चान्ये योगिनां योगा: श्रूयन्ते ग्रन्थविस्तरे।
सर्वे ते ब्रह्मयोगस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥ ८॥
यत्र साक्षात्प्रपश्यन्ति विमुक्ता विश्वमीश्वरम्।
सर्वेषामेव योगानां स योग: परमो मत:॥ ९॥
सहस्रशोऽथ बहुशो ये चेश्वरबहिष्कृता:।
न ते पश्यन्ति मामेकं योगिनो यतमानसा:॥ १०॥

जो योगियों के अन्य योग ग्रन्थों में विस्तारपूर्वक सुने जाते हैं वे सब ब्रह्मयोग की सोलहवीं कला की भी योग्यता

प्राप्त नहीं करते। जिसमें विमुक्त लोग विश्वात्मा ईश्वर को साक्षात् देखा करते हैं, वह योग सभी योगों में परम श्रेष्ठ माना गया है। सहस्रों और बहुत से जो ईश्वर के द्वारा बहिष्कृत संयतचित्त वाले योगीजन हैं, वे एक मुझ को नहीं देखते हैं अर्थात् मुझको स्थिर चित्त वाले योगीजन ही देखा करते हैं।

प्राणायामस्तथा ध्यानं प्रत्याहारोऽथ धारणा।
समाधिश्च मुनिश्रेष्ठा यमश्च नियमासने॥ ११॥
मय्येकचित्तता योगः प्रत्यन्तरनियोगतः।
तत्साधनानि चान्यानि युष्माकं कथितानि तु॥ १२॥

हे मुनिश्रेष्ठो! प्राणायाम, ध्यान, प्रत्याहार, धारणा और समाधि, यम, नियम और आसन[1]— यह योग कहा जाता है। प्रत्यन्तार नियोग से अर्थात् अन्य में से वृत्तियों का निरोध करने से यह योग साध्य होता है। इसके सिद्ध करने के अन्य साधन होते हैं जो मैंने आपको बता दिये हैं।

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ।
यमाः संक्षेपतः प्रोक्ताश्चित्तशुद्धिप्रदा नृणाम्॥ १३॥

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, परिग्रह— ये यम संक्षेप में बता दिये गये हैं। ये मनुष्यों के चित्त को शुद्धि प्रदान करने वाले हैं।[2]

कर्मणा मनसा वाचा सर्वभूतेषु सर्वदा।
अक्लेशजननं प्रोक्ता त्वहिंसा परमर्षिभिः॥ १४॥

कर्म से, मन से, वचन से समस्त प्राणियों में सदा किसी प्रकार का क्लेश उत्पन्न न करना ही परम ऋषियों द्वारा अहिंसा कही गई है।

अहिंसायाः परो धर्मो नास्त्यहिंसापरं सुखम्।
विधिना या भवेद्धिंसा त्वहिंसैव प्रकीर्त्तिता॥ १५॥
सत्येन सर्वमाप्नोति सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम्।
यथार्थकथनाचारः सत्यं प्रोक्तं द्विजातिभिः॥ १६॥

अहिंसा से परम धर्म अन्य कोई नहीं है और अहिंसा से बढ़कर कोई सुख नहीं है। (यज्ञादि में) जो हिंसा शास्त्रोक्त विधिपूर्वक होती है उसे अहिंसा ही कहा गया है। सत्य से सब कुछ प्राप्त होता है। सत्य में सब प्रतिष्ठित है। द्विजातियों के द्वारा यथार्थ कथन का जो व्यवहार है, उसी को सत्य कहा गया है।

परद्रव्यापहरणं चौर्यादथ बलेन वा।
स्तेयं तस्यानाचरणादस्तेयं धर्मसाधनम्॥ १७॥
कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा।
सर्वत्र मैथुनत्यागं ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते॥ १८॥

पराये द्रव्य का अपहरण चोरी से अथवा बलपूर्वक किया गया हो, वह स्तेय (चोरी) है। उसका आचरण न करना ही अस्तेय है। वही धर्म का साधन है। कर्म, मन और वचन से सर्वदा सभी अवस्थाओं में सर्वत्र मैथुन का परित्याग ही ब्रह्मचर्य कहा जाता है।

द्रव्याणामप्यनादानमापद्यपि तथेच्छया।
अपरिग्रहमित्याहुस्तं प्रयत्नेन पालयेत्॥ १९॥
तपःस्वाध्यायसन्तोषो शौचमीश्वरपूजनम्।[3]
समासान्नियमाः प्रोक्ता योगसिद्धिप्रदायिनः॥ २०॥

आपत्ति के समय में भी इच्छापूर्वक द्रव्यों को जो ग्रहण नहीं करता है, उसे ही अपरिग्रह कहा जाता है। उसका प्रयत्नपूर्वक पालन करना चाहिए। तप, स्वाध्याय, सन्तोष, शौच, ईश्वर का अर्चन— ये ही संक्षेप से नियम कहे गये हैं इन नियमों का पालन योग की सिद्धि प्रदान करने वाला है।

उपवासपराकादिकृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः।
शरीरशोषणं प्राहुस्तापसास्तप उत्तमम्॥ २१॥

पराक आदि व्रत-उपवास तथा कृच्छ्र-चान्द्रायण आदि के द्वारा जो शरीर-शोषण किया जाता है, उसी को तपस्वी उत्तम तप कहते हैं।

वेदान्तशतरुद्रीयप्रणवादिजपं बुधाः।
सत्त्वसिद्धिकरं पुंसां स्वाध्यायं परिचक्षते॥ २२॥
स्वाध्यायस्य त्रयो भेदा वाचिकोपांशुमानसाः।
उत्तरोत्तरवैशिष्ट्यं प्राहुर्वेदार्थवेदिनः॥ २३॥

वेदान्त, शतरुद्रिय और प्रणव आदि के जप को विद्वान् लोग तप कहते हैं। स्वाध्याय पुरुषों को सत्त्व सिद्धि प्रदान करने वाला कहा जाता है। स्वाध्याय के भी तीन भेद हैं— वाचिक, उपांशु और मानस। इन तीनों की उत्तरोत्तर विशेषता है, ऐसा वेदज्ञ कहते हैं।

1. यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि (यो. सू. २.२९)

2. अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः। (यो. सू. २.३०)

3. शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः। (यो. सू. २.३२)

यः शब्दबोधजननः परेषां शृण्वतां स्फुटम्।
स्वाध्यायो वाचिकः प्रोक्त उपांशोरथ लक्षणम्॥ २४॥
ओष्ठयोः स्पन्दमात्रेण परस्याशब्दबोधकम्।
उपांशुरेष निर्दिष्टः साध्वसौ वाचिकाज्जपात्॥ २५॥

जो दूसरे सुनने वालों को शब्द का स्पष्ट बोध कराने वाला होता है उसी को वाचिक स्वाध्याय कहा गया है। अब उपांशु का लक्षण बताते हैं। दोनों होठों के स्पन्दन मात्र से दूसरे का अशब्द का बोध कराता है, यही उपांशु जप कहा गया है। यह वाचिक जप से साधु जप होता है।

यत्पदाक्षरसङ्गत्या परिस्पन्दनवर्जितम्।
चिन्तनं सर्वशब्दानां मानसं तज्जपं विदुः॥ २६॥

जो पद और अक्षरों की संगति से परिस्पन्दन रहित मन्त्र के सब शब्दों का चिन्तन ही मानस जप कहा जाता है।

यदृच्छालाभतो वित्तं अलं पुंसो भवेदिति।
प्राशस्त्यमृषयः प्राहुः संतोषं सुखलक्षणम्॥ २७॥

पुरुष को यदृच्छापूर्वक जो धन मिल जाता है और उसे ही वह पर्याप्त मान लेता है, ऋषियों ने उसी को संतोष और सुख का श्रेष्ठ लक्षण कहा है।

बाह्यमाभ्यन्तरं शौचं द्विधा प्रोक्तं द्विजोत्तमाः।
मृज्जलाभ्यां स्मृतं बाह्यं मनः शुद्धिरथान्तरम्॥ २८॥
स्तुतिस्मरणपूजाभिर्वाङ्मनःकायकर्मभिः।
सुनिश्चला शिवे भक्तिरेतदीशस्य पूजनम्॥ २९॥
यमाश्च नियमाः प्रोक्ताः प्राणायामं निबोधत।
प्राणः स्वदेहजो वायुरायामस्तन्निरोधनम्॥ ३०॥
उत्तमाधममध्यत्वात्त्रिधायं प्रतिपादितः।
य एव द्विविधः प्रोक्तः सगर्भोऽगर्भ एव च॥ ३१॥

हे द्विजोत्तमो! बाह्य और आभ्यन्तर दो प्रकार का शौच कहा गया है। मिट्टी और जल से जो शुद्धि है वह बाह्य शौच है और आन्तरिक शौच मन की शुद्धि से हुआ करता है। वाणी, मन और शरीर के कर्मों से स्तुति-स्मरण और पूजा के द्वारा जो सुनिश्चित भक्ति शिव में होती है, इसी को ईश का पूजन कहा जाता है। यम और नियम पहले ही बता चुके हैं। अब प्राणायाम को जान लो। प्राण अपनी देह से उत्पन्न वायु का नाम है। उसका आयाम अर्थात् निरोध करना ही प्राणायाम है, जो उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकार से प्रतिपादित है। वह भी फिर दो प्रकार का कहा गया है— एक सगर्भ और दूसरा अगर्भ।

मात्राद्वादशको मन्दश्चतुर्विंशतिमात्रकः।
मध्यमः प्राणसंरोधः षट्त्रिंशन्मात्रिकोऽन्तकः॥ ३२॥
यः स्वेदकम्पनोच्छ्वासजनकस्तु यथाक्रमम्।
संयोगश्च मनुष्याणामानन्दाच्चोत्तमोत्तमः॥ ३३॥
सुनफाख्यं हि तं योगं सगर्भविजयं बुधाः।
एतद्वै योगिनां प्राहुः प्राणायामस्य लक्षणम्॥ ३४॥
सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं शिरसा सह।
त्रिर्जपेदायतप्राणः प्राणायामोऽथ नामतः॥ ३५॥

द्वादश मात्राओं वाला अर्थात् उतने कालपर्यन्त का प्राणायाम मन्द होता है। चौबीस मात्राओं से युक्त मध्यम है और छत्तीस मात्राओं वाला उत्तम होता है। जो क्रम से स्वेद, कम्पन, उछ्वास को उत्पन्न करने वाला होता है तथा मनुष्यों का आनन्द से संयोग होता है वह उत्तमोत्तम होता है। उस सुनफ नाम वाले योग को ही ज्ञानी जन सगर्भ विजय कहते हैं। यह योगियों के ही प्राणायाम का लक्षण कहा गया है। व्याहृतियों (भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम्) के सहित प्रणव (ॐकार) से युक्त तथा सिर से समन्वित गायत्री मन्त्र का आयत प्राण होकर तीन बार जप करे। इसी का नाम प्राणायाम कहा गया है।

रेचकः पूरकश्चैव प्राणायामोऽथ कुम्भकः।
प्रोच्यते सर्वशास्त्रेषु योगिभिर्यतमानसैः॥ ३६॥
रेचको बाह्यनिश्वासः पूरकस्तन्निरोधनः।
साम्येन संस्थितिर्या सा कुम्भकः परिगीयते॥ ३७॥

रेचक पूरक और कुम्भक- ये तीन प्रकार के प्राणायाम को संयतचित्त वाले योगियों ने समस्त शास्त्रों में कहा है। बाह्य निश्वास को ही रेचक कहते हैं और उसका निरोध कर लेना ही पूरक होता है। साम्यावस्था में जो संस्थिति है, उसे ही कुम्भक कहा जाता है।

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु स्वभावतः।
निग्रहः प्रोच्यते सद्भिः प्रत्याहारस्तु सत्तमाः॥ ३८॥
हृत्पुण्डरीके नाभ्यां वा मूर्ध्नि पर्वसु मस्तके।
एवमादिषु देशेषु धारणा चित्तबन्धनम्॥ ३९॥
देशावस्थितिमालम्ब्य ऊर्ध्वं या वृत्तिसन्ततिः।
प्रत्यन्तरैरसृष्टा या तद्ध्यानं सूरयो विदुः॥ ४०॥
एकाकारः समाधिः स्याद्देशालम्बनवर्जितः।
प्रत्ययो ह्यर्थमात्रेण योगशासनमुत्तमम्॥ ४१॥
धारणा द्वादशायामा ध्यानं द्वादश धारणाः।
ध्यानं द्वादशकं यावत्समाधिरभिधीयते॥ ४२॥

हे मुनिश्रेष्ठो! स्वभावतः विषयों में विचरण करने वाली इन्द्रियों को निग्रह करने को साधु पुरुषों ने प्रत्याहार[1] कहा है। हृदयकमल, नाभि, मूर्धा, पर्व,मस्तक आदि स्थानों में बैठकर चित्त को एकाग्र करना धारणा है।[2] स्थानविशेष का आलम्बनपूर्वक ऊपर की ओर जो चित्तवृत्तियों की एकतानता रहती है, तथा जो प्रत्यन्तरों से असम्बद्ध रहती है, उसे विद्वान् लोग ध्यान कहा करते हैं। किसी स्थानविशेष के आलम्बन से रहित एकाकार होना ही समाधि है। उसका वस्तुमात्र से सम्बन्ध रहता है। यही उत्तम योग का उपदेश है। बारह प्राणायामपर्यन्त धारणा, द्वादश धारणापर्यन्त ध्यान और द्वादश ध्यानपर्यन्त समाधि कही गई है।

आसनं स्वस्तिकं प्रोक्तं पद्ममर्द्धासनं तथा।
साधनानाञ्च सर्वेषामेतत्साधनमुत्तमम्॥४३॥
ऊर्वोरुपरि विप्रेन्द्राः कृत्वा पादतले उभे।
समासीनात्मनः पद्ममेतदासनमुत्तमम्॥४४॥
उभे कृत्वा पादतले जानूर्वोरन्तरेण हि।
समासीनात्मनः प्रोक्तमासनं स्वस्तिकं परम्॥४५॥
एकं पादमथैकस्मिन्विष्टभ्योरसि सत्तमाः।
आसीनार्द्धासनमिदं योगसाधनमुत्तमम्॥४६॥

आसन तीन प्रकार के कहे हैं— स्वस्तिक, पद्म और अर्द्धासन। समस्त साधनों में यह अति उत्तम साधन होता है। हे विप्रेन्द्रो! दोनों पैरों को जांघों के ऊपर रखकर स्वयं समासीन होना पद्मासन है, जो उत्तम आसन कहा गया है। दोनों पादतलों को जानु और ऊरु के भीतर करके समासीनात्मा पुरुष का जो आसन है, वह परम स्वस्तिक कहा गया है। एक पाद को विष्टम्भन करके उसमें रखे— ऐसी स्थिति को अर्द्धासन कहते हैं। यह योग साधन के लिये उत्तम आसन है।

अदेशकाले योगस्य दर्शनं न हि विद्यते।
अग्न्यभ्यासे जले वापि शुष्कपर्णचये तथा॥४७॥
जन्तुव्याप्ते श्मशाने च जीर्णगोष्ठे चतुष्पथे।
सशब्दे सभये वापि चैत्यवल्मीकसञ्चये॥४८॥
अशुभे दुर्जनाक्रान्ते मशकादिसमन्विते।
नाचरेद्देहबाधे वा दौर्मनस्यादिसंभवे॥४९॥

अदेश काल में योग का दर्शन नहीं होता है। अग्नि के समीप में— जल में तथा शुष्क पत्तों के समूह के जन्तु व्याप्त में, श्मशान में, जीर्ण गोष्ठ में, चतुष्पथ में, सशब्द में, सभय में, चैत्य और वल्मीक सञ्चय में, अशुभ, दुर्जनक्रान्त और मशक आदि समन्वित स्थल में नहीं करना चाहिए। देह की बाधा में दौर्मनस्य आदि के होने पर भी योग का साधन नहीं करना चाहिए।

सुगुप्ते सुशुभे देशे गुहायां पर्वतस्य वा।
नद्यास्तीरे पुण्यदेशे देवतायतने तथा॥५०॥
गृहे वा सुशुभे देशे निर्जने जन्तुवर्जिते।
युञ्जीत योगं सततमात्मानं तत्परायणः॥५१॥
नमस्कृत्याथ योगीन्द्राञ्छिष्यांश्चैव विनायकम्।
गुरुञ्चैव च मां योगी युञ्जीत सुसमाहितः॥५२॥

किसी भी भली भाँति रक्षित, शुभ, निर्जन, पर्वत की गुफा, नदी का तट, पुण्यस्थल, देवायतन, गृह, जन्तुवर्जित स्थान में आत्मा में तत्परायण होकर सतत योग का अभ्यास करना चाहिए। वह योगी शिष्यों, विनायक, गुरु और मुझको नमन करके सुसमाहित होकर योगाभ्यास करें।

आसनं स्वस्तिकं बद्ध्वा पद्ममर्द्धमथापि वा।
नासिकाग्रे समां दृष्टिमीषदुन्मीलितेक्षणः॥५३॥
कृत्वाथ निर्भयः शान्तस्त्यक्त्वा मायामयं जगत्।
स्वात्मन्येव स्थितं देवं चिन्तयेत्परमेश्वरम्॥५४॥

स्वस्तिक, पद्म या अर्द्धासन को बाँध कर नासिका के अग्रभाग में एकटक दृष्टि करे, नेत्र थोड़े खुले होने चाहिए। निर्भय और शान्त होकर तथा इस मायामय जगत् का त्याग कर अपनी आत्मा में अवस्थित देव परमेश्वर का चिन्तन करना चाहिए।

शिखाग्रे द्वादशांगुल्ये कल्पयित्वाथ पङ्कजम्।
धर्मकन्दसमुद्भूतं ज्ञानेनालं सुशोभनम्॥५५॥
ऐश्वर्याष्टदलं श्वेतं परं वैराग्यकर्णिकम्।
चिन्तयेत्परमं कोशं कर्णिकायां हिरण्मयम्॥५६॥

शिखा के अग्रभाग में द्वादश अंगुल वाले एक पङ्कज की कल्पना करे जोकि धर्मकन्द से समुद्भूत हो और ज्ञानरूपी नाल से सुशोभित हो। उसमें ऐश्वर्य के आठ दल और वैराग्यरूपी परमोत्तर कर्णिका है। उस कर्णिका में हिरण्मय परम कोश का चिन्तन करना चाहिए।

---

1. स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः (यो. सू. २.५४)
2. देशबन्धश्चित्तस्य धारणा। तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्। तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः॥ (यो. सू. ३.१-३)

सर्वशक्तिमयं साक्षाद्यं प्राहुर्दिव्यमव्ययम्।
ओङ्कारवाच्यमव्यक्तं रश्मिज्वालासमाकुलम्॥५७॥
चिन्तयेत्तत्र विमलं परं ज्योतिर्यदक्षरम्।
तस्मिञ्ज्योतिषि विन्यस्य स्वानन्दं मम भेदत:॥५८॥
ध्यायीत कोशमध्यस्थमीशं परमकारणम्।
तदात्मा सर्वगो भूत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्॥५९॥

वह सर्व-शक्तियों से साक्षात् परिपूर्ण है जिसको दिव्य और अव्यय कहते हैं। वह ओङ्कार से वाच्य-अव्यक्त तथा रश्मियों की ज्वाला से समाकुल है। वहीं पर जो अक्षर, विमल—पर ज्योति है, उसका ही चिन्तन करना चाहिए। उस ज्योति में मेरे भेद से स्वानन्द का विन्यास करके कोश के मध्य में स्थित परम कारण ईश का ध्यान करे। तदात्मा और सर्वगामी होकर अन्य कुछ भी चिन्तन न करें।

एतद्गुह्यतमं ज्ञानं ध्यानान्तरमथोच्यते।
चिन्तयित्वा तु पूर्वोक्तं हृदये पद्ममुत्तमम्॥६०॥
आत्मानमथ कर्तारं तत्रानलसमत्विषम्।
मध्ये वह्निशिखाकारं पुरुषं पञ्चविंशकम्॥६१॥
चिंतयेत्परमात्मानं तन्मध्ये गगनं परम्।
ओङ्कारबोधितं तत्त्वं शाश्वतं शिवमुच्यते॥६२॥
अव्यक्तं प्रकृतौ लीनं परं ज्योतिरनुत्तमम्।
तदन्त: परमं तत्त्वमात्माधारं निरञ्जनम्॥६३॥

यह परम गोपनीय ज्ञान है। अब ध्यानान्तर कहा जाता है। पूर्वोक्त हृदय में उत्तम पद्म का चिन्तन करके आत्मा को—अनल के तुल्य कान्ति वाले वन को मध्य में वह्नि की शिखा के आकार वाले पंचविंशक पुरुष परमात्मा का चिन्तन करे। उस मध्य में परमाकाश है। ओङ्कार से बोधित शाश्वत तत्त्व शिव कहे जाते हैं। अव्यक्त प्रकृति में लीन है जो उत्तम परम ज्योति है, उसके मध्य में आत्मा का आधार निरञ्जन परमतत्त्व विद्यमान है।

ध्यायीत तन्मयो नित्यमेकरूपं महेश्वरम्।
विशोध्य सर्वतत्त्वानि प्रणवेनाथवा पुन:॥६४॥
संस्थाप्य मयि चात्मानं निर्मले परमे पदे।
प्लावयित्वात्मनो देहं तेनैव ज्ञानवारिणा॥६५॥
मदात्मा मन्मना भस्म गृहीत्वा त्वग्निहोत्रिकम्।
तेनोद्धूलितसर्वाङ्गमग्निरादित्यमन्त्रत:॥६६॥

इस प्रकार तन्मय होकर नित्य ही एकरूप वाले महेश्वर का ध्यान करना चाहिए। समस्त तत्त्वों का विशेष शोधन करके अथवा पुन: प्रणव के द्वारा निर्मल परम पद एक में अपनी आत्मा को संस्थापित करके और आत्मा के देह को उसी ज्ञान के वारि से आप्लावित करके मुझ में ही मन लगाने वाला होकर— मदात्मरूप होकर अग्निहोत्र की भस्म को ग्रहण करे। उस भस्म से अपने सब अङ्गों को अग्नि या आदित्य मन्त्र से धूलित करना चाहिए।

चिन्तयेत्स्वात्मनीशानं परं ज्योति:स्वरूपिणम्।
एष पाशुपतो योग: पशुपाशविमुक्तये॥६७॥
सर्ववेदान्तमार्गोऽयमत्याश्रममिति श्रुति:।
एतत्परतरं गुह्यं मत्सायुज्यप्रदायकम्॥६८॥
द्विजातीनां तु कथितं भक्तानां ब्रह्मचारिणाम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च क्षमा शौचं तपो दम:॥६९॥
सन्तोष: सत्यमास्तिक्यं व्रताङ्गानि विशेषत:।
एकेनाप्यथ हीनेन व्रतमस्य तु लुप्यते॥७०॥

पुन: अपनी आत्मा में परम ज्योतिस्वरूप ईशान का चिन्तन करे। यही जीव के बन्धन की विमुक्ति के लिये पाशुपत योग है। यह समस्त वेदान्त का मार्ग है यह अत्याश्रम (सभी अवस्थाओं में उत्तम) है, ऐसा श्रुतिवचन है। यह परतर और परम गोपनीय है यही मेरा सायुज्य प्रदान करने वाला है। इसे द्विजाति ब्रह्मचारी एवं भक्त है उनके लिये कहा गया है। ब्रह्मचर्य अहिंसा, क्षमा, शौच, दम, तप सन्तोष, सत्य, आस्तिकता— ये विशेषरूप में व्रत के अङ्ग होते हैं। इनमें एक के भी नष्ट होने से इसका व्रत लुप्त हो जाता है।

तस्मादात्मगुणोपेतो मद्व्रतं वोढुमर्हति।
वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिता:॥७१॥
बहवोऽनेन योगेन पूता मद्भावयोगत:।
ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्॥७२॥

इसीलिये आत्मगुणों से युक्त मनुष्य ही मेरे व्रत का वहन करने में समर्थ है। राग-भय और क्रोध को छोड़ देने वाले मुझ में ही मन लगाने वाले मेरा आश्रय ग्रहण करके इस योग से बहुत से मेरी भावना से युक्त होकर मुझको जो भी जिस भावना से प्रसन्न होकर जिस भावना से मेरी शरण में आते हैं, मैं भी उसी को उसी भाव से भजता हूँ।

ज्ञानयोगेन मां तस्माद्यजेत परमेश्वरम्।
अथवा भक्तियोगेन वैराग्येण परेण तु॥७३॥
चेतसा बोधयुक्तेन पूजयेन्मां सदा शुचि:।
सर्वकर्माणि संन्यस्य भिक्षाशी निष्परिग्रह:॥७४॥

इस लिये मुझ परमेश्वर का ज्ञानयोग से अथवा भक्तियोग से तथा परम वैराग्य से यजन करे। सदा पवित्र होकर बोधयुक्त चित्त से ही मेरा पूजन करें। अन्य समस्त कर्मों का त्याग करके निष्परिग्रह होकर भिक्षाटन से निर्वाह करे।

प्राप्नोति मम सायुज्यं गुह्यमेतन्मयोदितम्।
अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रीकरुण एव च॥७५॥
निर्ममो निरहङ्कारो यो मद्भक्तः स मे प्रियः।
संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः॥७६॥

वह व्यक्ति मेरे द्वारा कथित परम गोपनीय मेरे सायुज्य प्राप्त करता है। समस्त भूतों से कभी भी द्वेष न करने वाला तथा मैत्री भाव रखने वाला, ममता से हीन, अहङ्कार से रहित जो मेरा भक्त होता है वही मुझे प्रिय है। संयत आत्मा वाला और दृढ़ निश्चयी योगी निरन्तर सन्तुष्ट होता है।

मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः।
यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः॥७७॥

जो मुझमें ही मन और बुद्धि को अर्पित कर देता है वही मेरा प्रिय भक्त है। जिससे कोई भी लोक उद्विग्न नहीं होता और जो स्वयं भी लोक से उद्वेग प्राप्त नहीं करता।

हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स हि मे प्रियः।
अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः॥७८॥
सर्वारम्भपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः।
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्॥७९॥

हर्ष, अमर्ष, भय और उद्वेग से जो मुक्त होता है वही मेरा प्रिय भक्त है। जो किसी भी पदार्थ या व्यक्ति की अपेक्षा न करे, पवित्र, दक्ष, उदासीन और समस्त व्यथाओं से दूर रहता है एवं सब तरह के आरम्भों का त्याग करने वाला होता है और मेरी भक्ति से युक्त हो वही मेरा प्रिय हुआ करता है। जिसके लिए अपनी निन्दा और स्तुति दोनों ही समान हों, मौन व्रत रखने वाला हो, तथा जो कुछ भी प्राप्त हो उसी से सन्तोष करने वाला हो वही मेरा प्रिय भक्त है।

अनिकेतः स्थिरमतिर्मद्भक्तो मामुपैष्यति।
सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मत्परायणः॥८०॥
मत्प्रसादादवाप्नोपि शाश्वतं परमं पदम्।
चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः॥८१॥
निराशीर्निर्ममो भूत्वा मामेकं शरणं व्रजेत्।
त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः॥८२॥

अनिकेत (स्वगृहासक्ति से रहित), स्थिरमति से युक्त जो मेरा भक्त है वही मुझे प्राप्त करेगा। सभी कर्मों को भी करता हुआ जो मुझ में ही परायण रहता है और निराशी-निर्मम होकर एक मेरी ही शरण में आता है। सब कर्मों के फलों में आसक्ति को छोड़कर नित्य ही तृप्त रहता है तथा चित्त से सब कर्मों को मुझको ही समर्पित करके मुझ में ही तत्पर रहता है, वह मेरी कृपा से परम शाश्वत पद को प्राप्त कर लेता है।

कर्मण्यपि प्रवृत्तोऽपि कर्मणा तेन बुध्यते।
निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः॥८३॥
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति तत्पदम्।
यदृच्छालाभतृप्तस्य द्वन्द्वातीतस्य चैव हि॥८४॥

कर्म में प्रवृत्त रहता हुआ भी उस कर्म से बोध युक्त रहता है और निराशी-चित्त और आत्मा को संयत रखने वाला समस्त परिग्रह का त्याग करने वाला, मेरा भक्त होता है। यदृच्छा लाभ से तृप्त होने वाला, द्वन्द्वों से परे अर्थात् सुख-दुःखादि में समभाव रखने वाला केवल शरीर-सम्बन्धी कर्म करता हुआ भी मेरा स्थान प्राप्त करता है।

कुर्वतो मत्प्रसादार्थं कर्म संसारनाशनम्।
मन्मना मन्नमस्कारो मद्याजी मत्परायणः॥८५॥
मामुपास्यति योगीशो ज्ञात्वा मां परमेश्वरम्।
मामेवाहुः परं ज्योतिर्बोधयन्तः परस्परम्॥८६॥
कथयन्तश्च मां नित्यं मम सायुज्यमाप्नुयुः।

वह केवल मेरी प्रसन्नता के लिये ही संसार के नाश के हेतु कर्मों को करता हुआ— मुझ में ही परायण होकर, मुझे ही नमन करता हुआ और मेरा ही यजन करता हुआ योगीश्वर मुझे परमेश्वर जानकर मेरी ही उपासना करता है। वे सब मुझे ही परम ज्योति कहते हैं और परस्पर मेरा ही बोध कराते हैं। जो सदा मेरे बारे में ही कहते हैं, वे मेरे सायुज्य को प्राप्त करते हैं।

एवं नित्याभियुक्तानां मायेयं कर्म सान्वगम्॥८७॥
नाशयामि तमः कृत्स्नं ज्ञानदीपेन भास्वता।

इस प्रकार जो मुझ में ही नित्य संयुक्त और मेरे कर्मों में निरन्तर संलग्न होते हैं, उन पर यह मेरी माया कुछ भी प्रभाव नहीं करती है। मैं भासमान ज्ञानदीप के द्वारा समस्त अज्ञानरूप अंधकार को नष्ट कर देता हूँ।

मद्बुद्धयो मां सततं पूजयन्तीह ये जनाः॥८८॥
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।
ये चान्ये भोगकर्मार्था यजन्ते ह्यन्यदेवताः॥८९॥

तेषां तदन्तं विज्ञेयं देवतानुगतं फलम्।
ये चान्ये देवताभक्ता: पूजयन्तीह देवता:॥९०॥
मद्भावनासमायुक्ता मुच्यन्ते तेऽपि मानवा:।
तस्माद्विनश्वरानन्यांस्त्यक्त्वा देवानशेषत:॥९१॥
मामेव संश्रयेदीशं स याति परमं पदम्।

मेरे ही अन्दर बुद्धि रखने वाले जो मनुष्य यहाँ पर निरन्तर मेरी पूजा किया करते हैं उन नित्य अभियुक्त मेरे भक्तों के योगक्षेम (जीवन-निर्वाह) को मैं वहन करता हूँ। अन्य जो भोग के कर्मों में प्रयोजन रखते हैं अर्थात् इच्छित भोगों के लिए अन्य देवों का यजन किया करते हैं, उनका वैसा ही अन्त समझना चाहिए। उनको उसी देवता के ही अनुरूप फल मिलता है। परन्तु जो लोग अन्य देवों के भक्त होते हैं और यहाँ पर देवताओं का पूजन किया करते हैं किन्तु मेरी भावना से समायुक्त होते हैं तो वे मनुष्य भी मुक्त हो जाया करते हैं। इसीलिये विनश्वर अन्य देवों का सदा त्याग करके जो मेरा ही आश्रय ग्रहण करता है, वह परम पद को पा लेता है।

त्यक्त्वा पुत्रादिषु स्नेह नि:शोको निष्परिग्रह:॥९२॥
यजेच्चामरणाल्लिङ्गं विरक्त: परमेश्वरम्।
येऽर्चयन्ति सदा लिङ्गं त्यक्त्वा भोगानशेषत:॥९३॥
एकेन जन्मना तेषां ददामि परमं पदम्।
परात्मन: सदा लिङ्गं केवलं रजतप्रभम्॥९४॥
ज्ञानात्मकं सर्वगतं योगिनां हृदि संस्थितम्।
ये चान्ये नियता भक्ता भावयित्वा विधानत:॥९५॥
यत्र क्वचन तल्लिंगमर्चयन्ति महेश्वरम्।
जले वा वह्निमध्ये वा व्योम्नि सूर्येऽप्यथान्यत:॥९६॥
रत्नादौ भावयित्वेशमर्चयेल्लिंगमैश्वरम्।
सर्वलिङ्गमयं ह्येतत्सर्वं लिङ्गे प्रतिष्ठितम्॥९७॥
तस्माल्लिंगेऽर्चयेदीशं यत्र क्वचन शाश्वतम्।
अग्नौ क्रियावतामप्सु व्योम्नि सूर्ये मनीषिणाम्॥९८॥

अपने पुत्रादि में स्नेह को त्याग कर शोक से रहित होकर, परिग्रहशून्य होकर मरणपर्यन्त परम विरक्त हो परमेश्वर के लिङ्ग का यजन करे। जो सदा समस्त भोगों का परित्याग करके मेरे लिङ्ग की पूजा किया करते हैं उनको मैं एक ही जन्म में परम पद प्रदान करता हूँ। उस परमात्मा का लिङ्ग सदा रजत की प्रभावाला है। यह ज्ञानस्वरूप होने से, सर्वव्यापक और योगियों के हृदय में समवस्थित है। जो अन्य नियत भक्त विधिपूर्वक भावना करके महेश्वर के उस लिङ्ग का जहाँ-कहीं भी यजन किया करते हैं। जल में, अग्नि के मध्य, वायु, व्योम-सूर्य में तथा अन्य भी किसी में रत्नादि में ईश्वरीय लिङ्ग की भावना करके उसका अर्चन करना चाहिए। यह सब कुछ लिङ्गमय ही है अर्थात् यह सब लिङ्ग में ही प्रतिष्ठित है। इसलिये ईश अर्चन लिङ्ग में ही करना चाहिए। जहाँ कहीं भी हो यह शाश्वत है। यह (यज्ञादि) क्रिया सम्पादन करने वालों के लिए अग्नि में और मनीषियों के लिए जल, व्योम और सूर्य में विद्यमान है।

काष्ठादिष्वेव मूर्खाणां हृदि लिङ्गन्तु योगिनाम्।
यद्यनुत्पन्नविज्ञानो विरक्त: प्रीतिसंयुत:॥९९॥
यावज्जीवं जपेद्युक्त: प्रणवं ब्रह्मणो वपु:।
अथवा शतरुद्रीयं जपेदामरणाद्द्विज:॥१००॥

मूर्खों का लिङ्ग काष्ठ (दिशा) आदि में होता है और योगियों का लिङ्ग हृदय में रहता है। यदि विज्ञान के उत्पन्न न होने पर भी विरक्त हुआ प्रीति से संयुक्त है, तो उस द्विज को जीवनपर्यन्त परमात्मा के शरीररूप प्रणव (ॐ) का जप करना चाहिए अथवा मरणपर्यन्त शतरुद्रीय (वेद) का जप करना चाहिए।

एकाकी यतचित्तात्मा स याति परमं पदम्।
वसेच्चामरणाद्विप्रा वाराणस्यां समाहित:॥१०१॥
सोऽपीश्वरप्रसादेन याति तत्परमम्पदम्।
तत्रोत्क्रमणकाले हि सर्वेषामेव देहिनाम्॥१०२॥
ददाति परमं ज्ञानं येन मुच्येत बन्धनात्।

जो एकाकी, संयत-चित्तात्मा है, वही परम धाम को प्राप्त होता है। हे विप्रो! मरणपर्यन्त वाराणसी में समाहित होकर वास करता है, वह भी ईश्वर के प्रसाद से परम पद को प्राप्त करता है। क्यों कि वहाँ पर उत्क्रमण (मृत्यु) के समय समस्त देहधारियों को वे श्रेष्ठ ज्ञान प्रदान करते हैं जिसके द्वारा वह (संसाररूप) बन्धन से मुक्त हो जाता है।

वर्णाश्रमविधिं कृत्स्नं कुर्वाणो मत्परायण:॥१०३॥
तेनैव जन्मना ज्ञानं लब्ध्वा याति शिवं पदम्।
येऽपि तत्र वसन्तीह नीचा वै पापयोनय:॥१०४॥
सर्वे तरन्ति संसारमीश्वरानुग्रहाद् द्विजा:।
किन्तु विघ्ना भविष्यन्ति पापोपहतचेतसाम्॥१०५॥

वर्णाश्रम धर्म का शास्त्रविहित सम्पादन करते हुए जो मुझमें ही परायण (एकाग्रचित्त) रहता है, वह उसी जन्म से ज्ञान प्राप्त करके शिवपद को प्राप्त कर लेता है। जो भी नीच

तथा पाप योनि वाले लोग वहाँ पर निवास करते हैं, हे द्विजगण! वे सभी ईश्वर के अनुग्रह से इस संसार को तर जाते हैं किन्तु जो पापों से उपहत चित्त वाले (नीच) हैं, उनके लिए विघ्नकारक होंगे।

धर्मान्समाश्रयेत्तस्मान्मुक्तये सततं द्विजा:।
एतद्रहस्यं वेदानां न देयं यस्य कस्यचित्॥ १०६॥
धार्मिकायैव दातव्यं भक्ताय ब्रह्मचारिणे।

हे द्विजगण! इसलिये मुक्ति के लिये निरन्तर धर्मों का समाश्रय करना चाहिए। यह वेदों का परम रहस्य है। इसे जिस किसी को नहीं देना चाहिए। जो धार्मिक हो, भक्त हो और ब्रह्मचारी हो, उसी को यह विज्ञान देना चाहिए।

व्यास उवाच

इत्येतदुक्त्वा भगवान् शाश्वतो योगमुत्तमम्॥ १०७॥
व्याजहार समासीनं नारायणमनामयम्।
मयैतद्भाषितं ज्ञानं हितार्थं ब्रह्मवादिनाम्॥ १०८॥
दातव्यं शान्तचित्तेभ्य: शिष्येभ्यो भवता शिवम्।
उक्त्वैवमर्थं योगीन्द्रानब्रवीद्भगवानज:॥ १०९॥

व्यासजी बोले— इतना कहकर सर्वोत्तम आत्मयोग अथवा रहस्य ज्ञान का उपदेश शाश्वत भगवान् शंकर ने अपने पास आसीन सनातन नारायण को कहा था। वही यह ज्ञान ब्रह्मवादियों के हित-सम्पादन के लिये मैंने कहा है। यह शिवस्वरूप कल्याणकारी ज्ञान शान्तचित वाले शिष्यों को भी देने योग्य है। इतना कह कर भगवान् अज योगीन्द्रों से बोले।

हिताय सर्वभक्तानां द्विजातीनां द्विजोत्तमा:।
भवन्तोऽपि हि मज्ज्ञानं शिष्याणां विधिपूर्वकम्॥ ११०।
उपदेक्ष्यन्ति भक्तानां सर्वेषां वचनान्मम।
अयं नारायणो योऽसावीश्वरो नात्र संशय:॥ १११॥
नान्तरं ये प्रपश्यन्ति तेषां देयमिदं परम्।
ममैषा परमा मूर्तिर्नारायणसमाह्वया॥ ११२॥

हे उत्तम ब्राह्मणो! समस्त द्विजातियों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) के भक्तों के हित के लिये आप लोग मेरे इस ज्ञान को मेरे वचन से विधिपूर्वक शिष्यों को और सब भक्तों को प्रदान करेंगे। यह नारायण साक्षात् ईश्वर हैं— इसमें जरा भी संशय नहीं है। जो इनमें कोई अन्तर नहीं देखते हैं, उनको ही यह ज्ञान देना चाहिए। यह नारायण नाम वाली मेरी ही अन्य परमा मूर्ति है।

सर्वभूतात्मभूतस्था शान्ता चाक्षरसंस्थिता॥
येऽन्यथा मां प्रपश्यन्ति लोके भेददृशो जना:॥ ११३॥
न ते मुक्तिं प्रपश्यन्ति जायन्ते च पुन: पुन:।
ये त्वेनं विष्णुमव्यक्तं मां च देवं महेश्वरम्॥ ११४॥
एकीभावेन पश्यन्ति न तेषां पुनरुद्भव:।
तस्मादनादिनिधनं विष्णुमात्मानमव्ययम्॥ ११५॥
मामेव सम्प्रपश्यध्वं पूजयध्वं तथैव च।

यह मूर्ति समस्त भूतों की आत्मा में शान्त और अक्षर-अविनाशीरूप से संस्थित है, फिर भी जो इस लोक में भेददृष्टि वाले होकर अन्यथा देखते हैं, अर्थात् हम दोनों के स्वरूप को भिन्न-भिन्न मानते हैं, वे कभी भी मुक्ति का दर्शन नहीं करते हैं और बारम्बार इस संसार में जन्म लिया करते हैं। जो अव्यक्त इन विष्णुदेव को और महेश्वरदेव मुझको एकीभाव से ही देखते हैं, उनका संसार में पुनर्जन्म नहीं होता। इसीलिये अनादि निधन-अव्ययात्मा भगवान् विष्णुस्वरूप मुझको ही भलीभाँति देखो और उसी भावना से पूजन करो।

येऽन्यथा सम्प्रपश्यन्ति मत्वैवं देवतान्तरम्॥ ११६॥
ये यान्ति नरकान् घोरान्नाहं तेषु व्यवस्थित:।
मूर्खं वा पण्डितं वापि ब्राह्मणं वा मदाश्रयम्॥ ११७॥
मोचयामि श्वपाकं वा न नारायणनिन्दकम्।

जो लोग मुझे अन्य देवता मानकर अन्य प्रकार से ही देखा करते हैं, वे परम घोर नरकों को प्राप्त करते हैं। उनमें मैं स्थित नहीं रहता हूँ। मेरा आश्रय ग्रहण करने वाला मूर्ख हो अथवा पण्डित या ब्राह्मण अथवा नारायण की निन्दा न करने वाला चण्डाल भी हो, तो उसे मैं मुक्त कर देता हूँ।

तस्मादेष महायोगी मद्भक्तै: पुरुषोत्तम:॥ ११८॥
अर्चनीयो नमस्कार्यो मत्प्रीतिजननाय वै।
एवमुक्त्वा वासुदेवमालिंग्य स पिनाकधृक्॥ ११९॥
अन्तर्हितोऽभवत्तेषां सर्वेषामेव पश्यताम्।

इसीलिये यह महायोगी पुरुषोत्तम प्रभु मेरे भक्तों के द्वारा अर्चना करने के योग्य हैं। इनका अर्चन करना चाहिए— और मेरी ही प्रीति को उत्पन्न करने के लिये इनको प्रणाम करना चाहिए। इतना कहकर उन पिनाकधारी प्रभु शिव ने भगवान् वासुदेव का आलिङ्गन किया और वे भगवान् महेश्वर उन सबके देखते हुए अन्तर्धान हो गये।

नारायणोऽपि भगवांस्तापसं वेषमुत्तमम्॥ १२०॥
जग्राह योगिन: सर्वांस्त्यक्त्वा वै परमं वपु:।
ज्ञातं भवद्भिरमलं प्रसादात्परमेष्ठिन:॥ १२१॥
साक्षाद्देवमहेशस्य ज्ञानं संसारनाशनम्।
गच्छध्वं विज्वरा: सर्वे विज्ञानं परमेष्ठिन:॥ १२२॥

भगवान् नारायण ने भी योगियों के परम शरीर को त्यागकर उत्तम तापस का वेष ग्रहण कर लिया और उनसे कहा— आप सब लोगों ने परमेष्ठी—परमात्मा महेश्वर के प्रसाद से निर्मल ज्ञान प्राप्त कर लिया है। साक्षात् देव महेश का यह ज्ञान संसार का नाश करने वाला है। इसलिये सब संताप रहित होकर परमेष्ठी के इस विज्ञान को ग्रहण करो।

प्रवर्तयध्वं शिष्येभ्यो धार्मिकेभ्यो मुनीश्वरा:।
इदं भक्ताय शान्ताय धार्मिकायाहिताग्नये॥ १२३॥
विज्ञानमैश्वरं देयं ब्राह्मणाय विशेषत:।
एवमुक्त्वा स विश्वात्मा योगिनां योगवित्तम:॥ १२४॥
नारायणो महायोगी जगामादर्शनं स्वयम्।

हे मुनीश्वरो! यह ऐश्वरीय विज्ञान शिष्य, भक्त, शान्त, धार्मिक, आहिताग्नि और विशेषरूप से ब्राह्मण को ही देना चाहिए। इतना कह कर योगियों के उत्तम योग के ज्ञाता विश्वात्मा महायोगी नारायण स्वयं भी अदर्शन को प्राप्त हो गये।

ऋषयस्तेऽपि देवेशं नमस्कृत्य महेश्वरम्॥ १२५॥
नारायणञ्च भूतादिं स्वानि स्थानानि लेभिरे।
सनत्कुमारो भगवान् संवर्त्ताय महामुनि:॥ १२६॥
दत्तवानैश्वरं ज्ञानं सोऽपि सत्यव्रतायवै।

उन समस्त ऋषि भी देवेश महेश्वर को और प्राणियों के आदिस्वरूप नारायण को नमस्कार करके अपने-अपने स्थानों को चले गये थे। महामुनि भगवान् सनत्कुमार ने अपने शिष्य सम्वर्त के लिये यह ईश्वरीय ज्ञान प्रदान किया था, उसने भी अपने शिष्य सत्यव्रत को दिया था।

सनन्दनोऽपि योगीन्द्र: पुलहाय महर्षये॥ १२७॥
प्रददौ गौतमायाथ पुलहोऽपि प्रजापति:।
अङ्गिरा वेदविदुषे भारद्वाजाय दत्तवान्॥ १२८॥

योगीन्द्र सनन्दन ने भी महर्षि पुलह के लिये यह ज्ञान प्रदान किया था। पुलह प्रजापति ने भी गौतम को दिया था। फिर अङ्गिरा ने वेदों के महान् विद्वान् भरद्वाज को प्रदान किया था।

जैगीषव्याय कपिलस्तथा पञ्चशिखाय च।
पराशरोऽपि सनकात्पिता मे सर्वतत्त्वदृक्॥ १२९॥
लेभे तत्परमं ज्ञानं तस्माद्वाल्मीकिराप्तवान्।
ममोवाच पुरा देव: सतीदेहभवाङ्गज:॥ १३०॥
वामदेवो महायोगी रुद्र: कालपिनाकधृक्।
नारायणोऽपि भगवान्देवकीतनयो हरि:॥ १३१॥
अर्जुनाय स्वयं साक्षाद्दत्तवानिदमुत्तमम्।
यदाहं लब्धवान्रुद्राद्वामदेवादनुत्तमम्॥ १३२॥
विशेषाद् गिरिशे भक्तिस्तस्मादारभ्य मेऽभवत्।
शरण्यं गिरिशं रुद्रं प्रपन्नोऽहं विशेषत:॥ १३३॥

कपिल ने जैगीषव्य तथा पञ्चशिख को दिया था। सभी तत्त्वों के द्रष्टा मेरे पिता पराशर मुनि ने इसे सनक से प्राप्त किया था। उनसे उस परम ज्ञान को वाल्मीकि ने प्राप्त किया था। पहले सती के देह से उत्पन्न महायोगी वामदेव ने मुझे (व्यास को) कहा था। वे वामदेव महायोगी कालपिनाक को धारण करने वाले रुद्र हैं और नारायण भगवान् भी देवकी के पुत्र हरि हैं। उन्होंने साक्षात् स्वयं इस उत्तम योग को अर्जुन के लिये दिया था। जब मैंने यह उत्तम ज्ञान वामदेव रुद्र से प्राप्त किया था, तभी से विशेषरूप से गिरिश में मेरी भक्ति आरम्भ हुई थी। मैं विशेषरूप से शरण्य, गिरीश रुद्रदेव की शरण में हूँ।

भूतेशं गिरीशं स्थाणुं देवदेवं त्रिशूलिनम्।
भवन्तोऽपि हि तं देवं शम्भुं गोवृषवाहनम्॥ १३४॥
प्रपद्यन्तां सपत्नीका: सपुत्रा: शरणं शिवम्।
वर्त्तध्वं तत्प्रसादेन कर्मयोगेन शंकरम्॥ १३५॥

आप सब भी उन भूतेश, स्थाणु, देवदेव, त्रिशूली, गोवृषवाहन वाले शिव की शरण में सपत्नीक एवं पुत्रों सहित प्राप्त हों और उनके प्रसाद से कर्मयोग द्वारा उन शंकर की सेवा में तत्पर हों।

पूजयध्वं महादेवं गोपतिं व्यालभूषणम्।
एवमुक्ते पुनस्ते तु शौनकाद्या महेश्वरम्॥ १३६॥
प्रणेमु: शाश्वतं स्थाणुं व्यासं सत्यवतीसुतम्।
अब्रुवन् हृष्टमनस: कृष्णद्वैपायनं प्रभुम्॥ १३७॥

उस सर्पमाला के आभूषण वाले, गोपति, महादेव की पूजा करो। ऐसा कहने पर पुन: शौनकादि ऋषियों ने उस नित्य, स्थाणु, महेश्वर को प्रणाम किया और वे प्रसन्न होकर सत्यवतीपुत्र कृष्णद्वैपायन प्रभु व्यासजी से बोले।

साक्षाद्देवं हृषीकेशं शिवं लोकमहेश्वरम्।
भवत्प्रसादादचला शरण्ये गोवृषध्वजे॥ १३८॥
इदानीं जायते भक्तिर्या देवैरपि दुर्लभा।
कथयस्व मुनिश्रेष्ठ कर्मयोगमनुत्तमम्॥ १३९॥
येनासौ भगवानीशः समाराध्यो मुमुक्षुभिः।
त्वत्सन्निधावेव सूतः शृणोतु भगवद्वचः॥ १४०॥

वे शिव साक्षात् देव, हृषीकेश और लोकों के महान् ईश्वर हैं। आप के ही प्रसाद से उन शरण्य, गोवृषध्वज में हमारी अचल भक्ति उत्पन्न हुई है, जो देवताओं द्वारा भी दुर्लभ है। हे मुनिश्रेष्ठ! अत्युत्तम कर्मयोग के विषय में कहें, जिसके द्वारा मुमुक्षुओं द्वारा भगवान् ईश आराधन-योग्य हैं। आपके सान्निध्य में ये सूतजी भी इन भगवद्वचनों को सुनें।

तद्वद्याखिललोकानां रक्षणं धर्मसंग्रहम्।
यदुक्तं देवदेवेन विष्णुना कूर्मरूपिणा॥ १४१॥
पृष्टेन मुनिभिः सर्वं शक्रेणामृतमन्थने।

उसी प्रकार समस्त लोकों के रक्षणस्वरूप धर्मसंग्रह को भी कहें, जिसे इन्द्र के द्वारा अमृतमंथन के समय मुनियों के द्वारा पूछे जाने पर कूर्मरूपधारी देवदेव विष्णु ने कहा था।

श्रुत्वा सत्यवतीसूनुः कर्मयोगं सनातनम्॥ १४२॥
मुनीनां भाषितं कृत्स्नं प्रोवाच सुसमाहितः।
य इमं पठते नित्यं संवादं कृत्तिवाससः॥ १४३॥
सनत्कुमारप्रमुखैः सर्वपापैः प्रमुच्यते।
श्रावयेद्वा द्विजान् शुद्धान् ब्रह्मचर्यपरायणान्॥ १४४॥

सत्यवती पुत्र (व्यास) ने यह सब सुनकर मुनियों द्वारा कथित उस सनातन कर्मयोग को संपूर्णरूप से समाहित चित्त होकर कहा। कृत्तिवास के इस संवाद का जो नित्य पाठ करता है अथवा जो ब्रह्मचर्यपरायण पवित्र ब्राह्मणों को सुनाता है, वह भी उन सनत्कुमार आदि मुनियों सहित समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।

यो वा विचारयेदर्थं स याति परमां गतिम्।
यश्चैतच्छृणुयान्नित्यं भक्तियुक्तो दृढव्रतः॥ १४५॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पठितव्यो मनीषिभिः॥ १४६॥
श्रोतव्यश्चानुमन्तव्यो विशेषाद्ब्राह्मणैः सदा॥ १४७॥

अथवा जो इसके अर्थ का भलीभाँति विचार करता है, वह परम गति को प्राप्त होता है। जो दृढव्रती भक्तियुक्त होकर इसका नित्य श्रवण करता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर ब्रह्मलोक में पूजित होता है। अतः मनीषियों को सब प्रकार से प्रयत्नपूर्वक इसका पाठ करना चाहिए और विशेषरूप से ब्राह्मणों को सदा इसे सुनना और मनन करना चाहिए।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे ईश्वरगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे ऋषिव्याससंवादे एकादशोऽध्यायः॥ ११॥

द्वादशोऽध्यायः

(व्यासगीता)

व्यास उवाच

शृणुध्वमृषयः सर्वे वक्ष्यमाणं सनातनम्।
कर्मयोगं ब्राह्मणानामात्यन्तिकफलप्रदम्॥ १॥
आम्नायसिद्धमखिलं ब्राह्मणानां प्रदर्शितम्।
ऋषीणां शृण्वतां पूर्वं मनुराह प्रजापतिः॥ २॥

व्यास जी ने कहा— मैं ब्राह्मणों के आत्यन्तिक फल को प्रदान करने वाले सनातन कर्मयोग को कहता हूँ जिसे आप सब ऋषिगण श्रवण करें। यह वेदों द्वारा सम्पूर्णरूप से सिद्ध है और ब्राह्मणों द्वारा ही प्रदर्शित किया है। इसे श्रवणकर्ता ऋषियों के समक्ष पहले प्रजापति मनु ने कहा था।

सर्वपापहरं पुण्यमृषिसङ्घैर्निषेवितम्।
समाहितधियो यूयं शृणुध्वं गदतो मम॥ ३॥
कृतोपनयनो वेदानधीयीत द्विजोत्तमाः।
गर्भाष्टमेऽष्टमे वाब्दे स्वसूत्रोक्तविधानतः॥ ४॥

यह समस्त पापों को हरने वाला, परम पुण्यमय और ऋषि समुदायों के द्वारा निषेवित है। मैं इसे कहता हूँ, इसलिए समाहितबुद्धि होकर आप सब इसका श्रवण करें। हे द्विजोत्तमो! गर्भ से आठवें वर्ष में अथवा जन्म से आठवें वर्ष में अपने (गृह्य)सूत्रोक्त विधि के अनुसार ही उपनयन संस्कार सम्पन्न होकर वेदों का अध्ययन करना चाहिए।

दण्डी च मेखली सूत्री कृष्णाजिनधरो मुनिः।
भिक्षाचारी ब्रह्मचारी स्वाश्रमे निवसन् सुखम्॥ ५॥
कार्पासमुपवीतार्थं निर्मितं ब्रह्मणा पुरा।
ब्राह्मणानां त्रिवृत्सूत्रं कौशं वा वस्त्रमेव वा॥ ६॥

दण्डधारी, मेखला पहनने वाला, सूत्र (यज्ञोपवीत) को कृष्णमृगचर्म को धारण करने वाला मुनि ब्रह्मचारी होकर भिक्षाचरण करे और अपने आश्रम में सुख पूर्वक निवास करे। पहले ब्रह्मा ने यज्ञोपवीत के लिये कपास का निर्माण

किया था। ब्राह्मणों का सूत्र तीन आवृत्ति हो, वह कुश का बना हो अथवा वस्त्र ही हो।

सदोपवीती चैव स्यात्सदा बद्धशिखो द्विज:।
अन्यथा यत्कृतं कर्म तद्भवत्ययथाकृतम्॥७॥

ब्रह्मचारी को सदा उपवीत (जनोई) धारी ही होना चाहिए और सर्वदा उसकी शिखा भी बँधी हुई रहनी चाहिए। इसके अभाव में जो भी वह कर्म करता है, वह सब अयथाकृत अर्थात् निष्फल ही होता है।

वसेदविकृतं वास: कार्पासं वा कषायकम्।
तदेव परिधानीयं शुक्लमच्छिद्रमुत्तमम्॥८॥

सूती या रेशमी वस्त्र अविकृतरूप अर्थात् बिना कटा हुआ उत्तम कोटि का, छिद्र रहित और स्वच्छ ही धारण करना चाहिए।

उत्तरन्तु समाख्यातं वास: कृष्णाजिनं शुभम्।
अभावे दिव्यमजिनं रौरवं वा विधीयते॥९॥

ब्राह्मणों के लिए कृष्णवर्ण का मृगचर्म उत्तम उत्तरीय माना गया है। उसके अभाव में उत्कृष्ट कोटि के रुरुमृगचर्म के उत्तरीय का भी विधान है।

उद्धृत्य दक्षिणं बाहुं सव्ये बाहौ समर्पितम्।
उपवीतं भवेन्नित्यं निवीतं कण्ठसज्जने॥१०॥
सव्यं बाहुं समुद्धृत्य दक्षिणे तु धृतं द्विजा:।
प्राचीनावीतमित्युक्तं पैत्रे कर्मणि योजयेत्॥११॥

दाहिना हाथ ऊपर उठाकर वाम बाहुभाग (कन्धे) पर समर्पित 'उपवीत' होता है। नित्य कण्ठहार के रूप में धारण सूत्र 'निवीत' होता है। हे द्विजगण! वाम बाहु को समुद्धृत करके दक्षिण बाहु में धारण किया गया 'प्राचीनावीत' नाम से कहा गया है जिसे पैत्र्य कर्म में ही धारण करना चाहिए।

अग्न्यागारे गवां गोष्ठे होमे जप्ये तथैव च।
स्वाध्याये भोजने नित्यं ब्राह्मणानाञ्च सन्निधौ॥१२॥
उपासने गुरूणाञ्च सन्ध्ययो: साधुसंगमे।
उपवीती भवेन्नित्यं विधिरेष सनातन:॥१३॥

अग्निशाला, गौशाला, हवन, जप, स्वाध्याय, भोजन, ब्राह्मणों के सान्निध्य, गुरुओं की उपासना और सन्ध्या के समय तथा साधुओं के सान्निध्य में सदा यज्ञोपवीत धारण करने वाला होना चाहिए। यही सनानत विधि है।

मौञ्जी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा कार्या विप्रस्य मेखला।
कुशेन निर्मिता विप्रा ग्रन्थिनैकेन वा त्रिभि:॥१४॥

प्रत्येक ब्राह्मण को मूंज से बनी हुई, त्रिगुणित, सम और चिकनी मेखला बनानी चाहिए। मूंज के न रहने पर कुश की एक या तीन गाँठों वाली मेखला बनानी चाहिए।

धारयेद्बैल्वपालाशो दण्डौ केशान्तकौ द्विज:।
यज्ञार्हं वृक्षजं वाथ सौम्यमव्रणमेव च॥१५॥

ब्राह्मण केश के अग्रभाग तक लम्बा, सुन्दर तथा छेद रहित बेल या पलाश अथवा यज्ञ में प्रयुक्त होने वाले किसी भी वृक्ष का दण्ड धारण कर सकता है।

सायं प्रातर्द्विज: संध्यामुपासीत समाहित:।
कामाल्लोभाद्भयान्मोहात्त्यक्त्वैनां पतितो भवेत्॥१६॥

ब्राह्मण को प्रतिदिन एकाग्रचित्र होकर प्रात: और सांध्य वन्दन करना चाहिए। काम, लोभ, भय तथा मोहवश सन्ध्या वन्दन न करने से वह पतित होता है।

अग्निकार्यं तत: कुर्यात्सायम्प्रातर्यथाविधि:।
स्नात्वा सन्तर्पयेद्देवानृषीन् पितृगणांस्तथा॥१७॥

प्रात: तथा सन्ध्या के समय यथाविधि अग्निहोत्र करना चाहिए। (प्रात:काल) स्नान के अनन्तर देवता, ऋषि और पितरों का तर्पण करना चाहिए।

देवताभ्यर्चनं कुर्यात्पुष्पै: पत्रेण चाम्बुना।
अभिवादनशील: स्यान्नित्यं वृद्धेषु धर्मत:॥१८॥
असावहं भो नामेति सम्यक् प्रणतिपूर्वकम्।
आयुरारोग्यसन्सिद्ध्यै द्रव्यादिपरिवर्जितम्॥१९॥

इसके बाद पत्र, पुष्प और जल से देवताओं की पूजा करें। धर्म के अनुसार नित्य गुरुजनों को प्रणाम करना चाहिए। द्रव्यादि को छोड़कर केवल आयु और आरोग्य की कामना के साथ भलीभाँति प्रणाम करते हुए कहे— 'मैं अमुक नाम वाला ब्राह्मण (आपको प्रणाम करता हूँ)'।

आयुष्मान् भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवादने।
अकारश्चास्य नाम्नोऽन्ते वाच्य: पूर्वाक्षरप्लुत:॥२०॥

अभिवादन करने पर उस ब्राह्मण को 'हे सौम्य! आयुष्मान् भव अर्थात् दीर्घायु हो— ऐसा वाक्य प्रणाम करने वाले ब्राह्मण को कहना चाहिए। उसके नाम के अन्त में स्थित अकारादि स्वर वर्ण का अन्यथा अन्तिम वर्ण के ठीक पहले स्थित स्वर वर्ण का संक्षेप में उच्चारण करना चाहिए।

न कुर्याद्योऽभिवादस्य द्विज: प्रत्यभिवादनम्।
नाभिवाद्य: स विदुषा यथा शूद्रस्तथैव स:॥२१॥

जो द्विज अभिवादन करने वाले का प्रत्यभिवादन नहीं करता है, ऐसा द्विज विद्वान् के द्वारा कभी भी अभिवादन योग्य नहीं होता; क्योंकि वह शूद्र के समान ही है।

विन्यस्तपाणिना कार्यमुपसंग्रहणं गुरोः।
सव्येन सव्यः स्प्रष्टव्यो दक्षिणेन तु दक्षिणः॥२२॥
लौकिकं वैदिकञ्चापि तथाध्यात्मिकमेव वा।
आददीत यतो ज्ञानं तं पूर्वमभिवादयेत्॥२३॥

हाथों को चरणों में विन्यस्त करके ही गुरु का उपस्पर्शन करना चाहिए। वाम कर से वाम चरण का और दक्षिण कर से दक्षिण चरण का स्पर्श करें। लौकिक तथा वैदिक एवं आध्यात्मिक ज्ञान जिससे भी ग्रहण करे, उसका सर्वप्रथम अभिवादन करे।

नोदकं धारयेद्भैक्ष्यं पुष्पाणि समिधं तथा।
एवंविधानि चान्यानि च दैवाद्येषु कर्मसु॥२४॥
ब्राह्मणं कुशलं पृच्छेत्क्षत्रबन्धुमनामयम्।
वैश्यं क्षेमं समागत्य शूद्रमारोग्यमेव च॥२५॥

देवादि कर्मों में (बासी) जल, भिक्षा, पुष्प, समिधा तथा इस प्रकार के अन्य बासी पदार्थों को ग्रहण नहीं करना चाहिए (अपितु ताजे द्रव्य ही लेने चाहिए)। (रास्ते में मिलने पर) ब्राह्मण से कुशल पूछना चाहिए। क्षत्रिय बन्धु से अनामय, वैश्य से क्षेम-कुशल और शूद्र से मिलने पर भी आरोग्य पूछना चाहिए।

उपाध्यायः पिता ज्येष्ठो भ्राता चैव महीपतिः।
मातुलः श्वशुरश्चैव मातामहपितामहौ॥२६॥
वर्णज्येष्ठः पितृव्यश्च सर्वे ते गुरवः स्मृताः।
माता मातामही गुर्वी पितुर्मातुश्च सोदराः॥२७॥
श्वश्रूः पितामही ज्येष्ठा भ्रातृजाया गुरुस्त्रियः।
इत्युक्तो गुरुवर्गोऽयं मातृतः पितृतस्तथा॥२८॥

उपाध्याय, पिता, ज्येष्ठ भ्राता, राजा, मामा, श्वशुर, मातामह, पितामह वर्ण में ज्येष्ठ और पितृव्य— ये सभी गुरुजन कहे गये हैं। माता, मातामही, गुरुपत्नी, पिता और माता की सोदरा भगिनी, सास पितामही, ज्येष्ठ भ्रातृजाया ये सभी गुरु (ज्येष्ठ अतएव पूज्य) स्त्रियां ही होती हैं। यह माता और पिता के पक्ष से ज्येष्ठ-वर्ग बताया गया है।

अनुवर्त्तनमेतेषां मनोवाक्कायकर्मभिः।
गुरुं दृष्ट्वा समुत्तिष्ठेदभिवाद्य कृताञ्जलिः॥२९॥
नैतैरुपविशेत्सार्द्धं विवदेतार्थकारणात्।
जीवितार्थमपि द्वेषाद् गुरुभिर्नैव भाषणम्॥३०॥

इस उपर्युक्त गुरुवर्ग का सदा अनुवर्त्तन मन, वाणी और शरीर से करना चाहिए। गुरु को देखकर कृताञ्जलि होकर अभिवादन करते हुए खड़ा हो जाना चाहिए। उनके साथ बैठना नहीं चाहिए। अपने जीवन निर्वाह हेतु तथा द्वेषभावना के कारण गुरु के सामने कुछ नहीं बोलना चाहिए।

उदितोऽपि गुणैरन्यैर्गुरुद्वेषी पतत्यधः।
गुरूणामपि सर्वेषां पूज्याः पञ्च विशेषतः॥३१॥
तेषामाद्यास्त्रयः श्रेष्ठास्तेषां माता सुपूजिता।
यो भावयति या सूते येन विद्योपदिश्यते॥३२॥
ज्येष्ठो भ्राता च भर्त्ता च पञ्चैते गुरवः स्मृताः।

गुरु से द्वेष करने वाला व्यक्ति, दूसरे अनेक गुणों से सम्पन्न होने पर भी नरक में गिरता है। इन सभी प्रकार के गुरुओं में भी पाँच विशेष प्रकार से पूजनीय होते हैं— उनमें भी प्रथम तीन सर्वाधिक श्रेष्ठ होते हैं और उनमें भी माता को सबसे अधिक पूज्या कहा गया है। उत्पादक (पिता), प्रसूता (माता), विद्या का उपदेशक अर्थात् गुरु, बड़ा भाई और पति— इनको उपर्युक्त पाँच गुरुओं में गिना गया है।

आत्मनः सर्वयत्नेन प्राणत्यागेन वा पुनः॥३३॥
पूजनीया विशेषेण पञ्चैते भूतिमिच्छता।

ऐश्वर्य को चाहने वाले व्यक्ति को अत्यन्त यत्नपूर्वक अथवा प्राण त्याग करके भी उपर्युक्त पाँच गुरुओं की पूजा करनी चाहिए।

यावत्पिता च माता च द्वावेतौ निर्विकारिणौ॥३४॥
तावत्सर्वं परित्यज्य पुत्रः स्यात् तत्परायणः।

जब तक माता और पिता दोनों निर्विकारी हों अर्थात् जब तक दोनों में निर्दोष भाव बना रहे, तब तक प्रत्येक पुत्र को चाहिए कि वह अपना सब कुछ त्याग कर उनकी सेवा करने में तत्पर रहे।

पिता माता च सुप्रीतौ स्यातां पुत्रगुणैर्यदि॥३५॥
स पुत्रः सकलं धर्ममाप्नुयात्तेन कर्मणा।

यदि पुत्र के गुणों से माता-पिता बहुत सन्तुष्ट हों, तो माता-पिता की सेवारूपी कर्म से ही वह पुत्र समग्र धर्म को प्राप्त कर लेता है।

नास्ति मातृसमो देवो नास्ति तातसमो गुरुः॥३६॥
तयोः प्रत्युपकारो हि न कथञ्चन विद्यते।

संसार में माता के समान कोई देव नहीं है और पिता के समान गुरु नहीं है। इनके उपकार का बदला किसी भी रूप में नहीं चुकाया जा सकता।

तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यात्कर्मणा मनसा गिरा॥ ३७॥
न ताभ्यामननुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत्।
वर्जयित्वा मुक्तिफलं नित्यं नैमित्तिकं तथा॥ ३८॥

अतएव इनका नित्य ही मन, वाणी और कर्म के द्वारा सर्वदा प्रिय करना चाहिए। उनकी आज्ञा न मिलने पर मोक्षसाधक तथा नित्य या नैमित्तिक कर्म को छोड़कर अन्य धर्म का आचरण नहीं करना चाहिए।

धर्मसारः समुद्दिष्टः प्रेत्यानन्तफलप्रदः।
सम्यगाराध्य वक्तारं विसृष्टस्तदनुज्ञया॥ ३९॥
शिष्यो विद्याफलं भुङ्क्ते प्रेत्य वा पूज्यते दिवि।
यो भ्रातरं पितृसमं ज्येष्ठं मूर्खोऽवमन्यते॥ ४०॥
तेन दोषेण स प्रेत्य निरयं घोरमृच्छति।
पुंसां वर्त्मनि तिष्ठेत पूज्यो भर्त्ता च सर्वदा॥ ४१॥

यही धर्म का सार कहा गया है जो मृत्यु के पश्चात् फल प्रदान करने वाला है। वक्ता की भलीभाँति आराधना करके उसकी अनुज्ञा से विसृष्ट हुआ शिष्य विद्या का फल भोगता है और मृत्यु के बाद वह स्वर्ग लोक में पूजा जाता है। जो मूर्ख पिता के तुल्य बड़े भाई की अवमानना करता है, वह इसी दोष से मरणोपरान्त परम घोर नरक को प्राप्त करता है। पुरुषों के मार्ग में पूज्य भर्त्ता सर्वदा स्थित रहा करता है।

अपि मातरि लोकेऽस्मिन्नुपकाराद्धि गौरवम्।
ये नरा भर्तृपिण्डार्थं स्वान्प्राणान् सन्त्यजन्ति हि॥ ४२॥
तेषामथाक्षयाँल्लोकान् प्रोवाच भगवान्मनुः।

इस माता के लोक में उपकार से ही गौरव होता है, जो मनुष्य भर्तृपिण्ड के लिये अपने प्राणों का त्याग कर देते हैं। उन लोगों के लिये भगवान् मनु ने अक्षय लोकों की प्राप्ति कही है।

मातुलांश्च पितृव्यांश्च श्वशुरानृत्विजो गुरून्॥ ४३॥
असावहमिति ब्रूयुः प्रत्युत्थाय यवीयसः।
अवाच्यो दीक्षितो नाम्ना यवीयानपि यो भवेत्॥ ४४॥
भो भवत्पूर्वकत्वेन अभिभाषेत धर्मवित्।

मामा, चाचा, श्वशुर, ऋत्विज और गुरु वर्ग से यह मैं हूँ, ऐसा ही बोलना चाहिए चाहे वे युवा ही हो। जो दीक्षित ब्राह्मण हो वह भले ही युवा क्यों न हो उसे नाम लेकर नहीं बुलाना चाहिए। धर्मवेत्ता उसे (भवत्) आप शब्द के साथ अभिभाषण करे।

अभिवाद्यश्च पूज्यश्च शिरसा वन्द्य एव च॥ ४५॥
ब्राह्मणः क्षत्रियाद्यैश्च श्रीकामैः सादरं सदा।
नाभिवाद्यास्तु विप्रेण क्षत्रियाद्याः कथञ्चन॥ ४६॥
ज्ञानकर्मगुणोपेता ये यजन्ति बहुश्रुताः।
ब्राह्मणः सर्ववर्णानां स्वस्ति कुर्यादिति श्रुतिः॥ ४७॥

सम्पत्ति की कामना रखने वाले क्षत्रिय आदि के लिए ब्राह्मण सदा आदर के सहित अभिवादन योग्य, पूज्य, और सिर झुकाकर वन्दन करने योग्य होता है। परन्तु उत्तम ब्राह्मण के द्वारा क्षत्रियादि किसी भी रूप में अभिवादन योग्य नहीं होते चाहे वे ज्ञान, कर्म और गुणों से युक्त या विद्वान् तथा नित्य यजन करते हों। ब्राह्मण सभी वर्णों के प्रति तुम्हारा कल्याण हो— ऐसा कहे। यह श्रुति वचन है।

सवर्णेषु सवर्णानां काम्यमेवाभिवादनम्॥
गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः॥ ४८॥
पतिरेवः गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः।
विद्या कर्म तपो बन्धुर्वित्तं भवति पञ्चमम्॥ ४९॥

समान वर्ण के सभी लोगों को अपने सवर्णों का अभिवादन करना ही चाहिए। द्विजातियों का गुरु अग्नि है और सब वर्णों का गुरु ब्राह्मण होता है। स्त्रियों का गुरु एक उसका पति ही होता है। अभ्यागत जो होता है वह सबका गुरु होता है। विद्या, कर्म, तप, बन्धु और धन पाँचवा होता है।

मान्यस्थानानि पञ्चाहुः पूर्वं पूर्वं गुरूत्तरात्।
एतानि त्रिषु वर्णेषु भूयांसि बलवन्ति च॥ ५०॥
यत्र स्युः सोऽत्र मानार्हः शूद्रोऽपि दशमीं गतः।

ये पाँच ही मान्य-स्थान कहे गये हैं और इनमें उत्तर-उत्तर की अपेक्षा पूर्व-पूर्व गुरु (श्रेष्ठ) होता है। ये सभी (ब्राह्मणादि) तीनों वर्णों में अधिक होने पर प्रभावशाली हुआ करते हैं। जिन में ये होते हैं, वह सम्माननीय होता है। इसी प्रकार दशमी को प्राप्त (नब्बे वर्ष की) आयु वाला शूद्र भी सम्मान योग्य कहा गया है।

पन्था देयो ब्राह्मणाय स्त्रियै राज्ञे ह्यचक्षुषे॥ ५१॥
वृद्धाय भारभुग्नाय रोगिणे दुर्बलाय च।

यदि मार्ग में सामने ब्राह्मण, स्त्री, राजा, अन्धा, वृद्ध, भारवाहक, रोगी और दुर्बल आ जाए तो उसके लिए रास्ता छोड़ देना चाहिए।

भिक्षामाहृत्य शिष्टानां गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम्॥५२॥
निवेद्य गुरवेऽश्नीयाद्वाग्यतस्तदनुज्ञया।

प्रतिदिन यत्नपूर्वक सज्जनों के घर से भिक्षा को ग्रहण करके गुरु के सामने समर्पित करें, फिर उनकी आज्ञा से मौन होकर भोजन करना चाहिए।

भवत्पूर्वं चरेद्भैक्ष्यमुपनीतो द्विजोत्तमः॥५३॥
भवन्मध्यं तु राजन्यो वैश्यस्तु भवदुत्तरम्।

यज्ञोपवीती ब्राह्मण ब्रह्मचारी 'भवत्' शब्द पहले लगाकर भिक्षा याचना करें (अर्थात् 'भवति भिक्षां देहि' ऐसा कहेंगे)। यज्ञोपवीती क्षत्रिय वाक्य के बीच में 'भवत्' शब्द लगाकर भिक्षा याचना करेंगे (अर्थात् 'भिक्षां भवति देहि' कहेंगे) और यज्ञोपवीती वैश्य अन्त में 'भवत्' शब्द का उच्चारण कर भिक्षा याचना करें (अर्थात् 'भिक्षां देहि भवति')।

मातरं वा स्वसारं वा मातुर्वा भगिनीं निजाम्॥५४॥
भिक्षेत भिक्षां प्रथमं या चैनं न विमानयेत्।

माता, बहन, माता की सगी बहन (मौसी) अथवा ऐसी स्त्री जो ब्रह्मचारी को (खाली हाथ लौटाकर) अपमानित करने वाली न हो, इन सबसे पहले भिक्षा याचना करनी चाहिए।

स्वजातीयगृहेष्वेव सार्ववर्णिकमेव वा॥५५॥
भैक्ष्यस्य चरणं युक्तं पतितादिषु वर्जितम्।

अपनी जाति के लोगों के घर से ही भिक्षा मांगकर लानी चाहिए अथवा अपने से उच्चवर्ण के लोगों से भिक्षा मांगी जा सकती है। परन्तु पतित व्यक्तियों के यहां से भिक्षा ग्रहण वर्जित है।

वेदयज्ञैरहीनानां प्रशस्तानां स्वकर्मसु॥५६॥
ब्रह्मचारी हरेद्भैक्ष्यं गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम्।

वेदों के ज्ञाता, यज्ञादि सम्पन्न करने वाले और अपने वर्णानुकूल कर्मों का सम्पादन करने वाले लोगों से ही ब्रह्मचारी को प्रतिदिन यत्न से भिक्षाचरण करना चाहिए।

गुरोः कुले न भिक्षेत न ज्ञातिकुलबन्धुषु॥५७॥
अलाभे त्वन्यगेहानां पूर्वं पूर्वं विवर्जयेत्।

गुरु के कुल से, अपने सगे सम्बन्धियों के कुल (मामा आदि) और मित्र के परिवार से ब्रह्मचारी को भिक्षा नहीं माँगनी चाहिए। अन्य गृहस्थ से भिक्षा न मिलने पर उपरोक्त पूर्व-पूर्व कुलों को छोड़ देना चाहिए अर्थात् परवर्ती बन्धु-बांधव, मामा आदि के परिवार से भिक्षा माँग लेना चाहिए।

सर्वं वा विचरेद्ग्रामं पूर्वोक्तानामसम्भवे॥५८॥
नियम्य प्रयतो वाचं दिशस्त्वनवलोकयन्।

यदि पूर्वोक्त सभी गृहों से भिक्षा मिलना संभव न हो, तो यत्नपूर्वक वाणी को नियन्त्रित करके, इधर-उधर दूसरी दिशा में दृष्टि न डालनी चाहिए।

समाहृत्य तु तद्भैक्ष्यं पचेद्ग्राममायया॥५९॥
भुञ्जीत प्रयतो नित्यं वाग्यतोऽनन्यमानसः।

उपर्युक्त भिक्षाचार से प्राप्त (कच्चे) अन्नादि का संग्रह करके उसे सावधानीपूर्वक पकाना चाहिए। तत्पश्चात् वाणी को नियन्त्रित करके एकाग्रचित्त होकर खाना चाहिए।

भैक्ष्येण वर्त्तयेन्नित्यमेकान्नादी भवेद्व्रती॥६०॥
भैक्ष्येण व्रतिनो वृत्तिरुपवाससमा स्मृता।

ब्रह्मचारी नित्य भिक्षा से जीवन निर्वाह करे और किसी एक व्यक्ति का अन्न नहीं ग्रहण करना चाहिए, (प्रतिदिन भिन्न-भिन्न व्यक्ति के घर से भिक्षा संग्रह करनी चाहिए।) इसलिए ब्रह्मचारी को भिक्षा द्वारा जीवन-निर्वाह की विधि को उपवास के समान माना गया है।

पूजयेदशनं नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन्॥६१॥
दृष्ट्वा हृष्येत्प्रसीदेच्च ततो भुञ्जीत वाग्यतः॥६२॥

अन्न का (प्राणधारक देवरूप में मानकर) प्रतिदिन पूजन करें और आदरपूर्वक, बिना तिरस्कार के (अर्थात् यह अच्छा नहीं, वह अच्छा नहीं यह कहे बिना) उसे ग्रहण करना चाहिए। अन्न को देखते ही पहले स्वस्थ और प्रसन्न होकर, फिर वाणी को नियन्त्रित कर भोजन करना चाहिए।

अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यञ्चातिभोजनम्।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्ज्जयेत्॥६३॥
प्राङ्मुखोऽन्नानि भुञ्जीत सूर्याभिमुख एव वा।
नाद्यादुदङ्मुखो नित्यं विधिरेष सनातनः॥६४॥
प्रक्षाल्य पाणिपादौ च भुञ्जानो द्विरुपस्पृशेत्।
शुचौ देशे समासीनो भुक्त्वा च द्विरुपस्पृशेत्॥६५॥

अधिक मात्रा में भोजन करना आरोग्य से रहित, आयु को न बढ़ाने वाला, स्वर्गीय सुख न देने वाला, अपुण्य करने वाला तथा सभी लोकों में तिरस्कृत होता है, अतः उसका परित्याग कर देना चाहिए। पूर्व की ओर मुख करके अथवा सूर्य के सम्मुख होकर ही अन्न ग्रहण करे। उत्तर की ओर

मुख करके कभी भोजन न करे— यही सनातन काल से चला आ रहा नियम है। दोनों हाथ और पैर धोकर भोजन करने से पूर्व दो बार आचमन करे। किसी पवित्र स्थान में बैठकर ही भोजन करे और पुनः दो बार आचमन करे।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे ऋषिव्याससंवादे द्वादशोऽध्याय:॥ १२॥

त्रयोदशोऽध्याय:

(व्यासगीता-आचमन आदि कर्मयोग)

व्यास उवाच

भुक्त्वा पीत्वा च सुप्त्वा च स्नात्वा रथ्योपसर्पणे।
ओष्ठौ विलोमकौ स्पृष्ट्वा वासो विपरिधाय च॥ १॥
रेतोमूत्रपुरीषाणामुत्सर्गेऽयुक्तभाषणे।
ष्ठीवित्वाध्ययनारम्भे कासश्वासागमे तथा॥ २॥
चत्वरं वा श्मशानं वा समागम्य द्विजोत्तम:।
सन्ध्ययोरुभयोस्तद्वदाचान्तोऽप्याचमेत्पुन:॥ ३॥

व्यासजी बोले— भोजन करके, पानी पीकर, निद्रा से उठकर, स्नान करने पर, राह चलते समय, रोमविहीन होंठों का स्पर्श करने पर, वस्त्र पहनने पर, वीर्य-मूत्र-मल का त्याग करने पर, असंगत वार्तालाप करने या थूकने के बाद, अध्ययन से पहले खाँसी आने या सांस छोड़ने पर, आंगन या श्मशान को पार करने पर तथा दोनों संध्या समय ब्राह्मणों को पहले एक बार आचमन किए रहने पर भी, पुनः आचमन करना चाहिए।

चण्डालम्लेच्छसंभाषे स्त्रीशूद्रोच्छिष्टभाषणे।
उच्छिष्टं पुरुषं स्पृष्ट्वा भोज्यञ्चापि तथाविधम्॥ ४॥

चाण्डाल और म्लेच्छ से बात करने पर, स्त्री-शूद्र अथवा उच्छिष्ट व्यक्ति के साथ बातचीत करने, उच्छिष्ट पुरुष का या वैसे ही उच्छिष्ट भोजन स्पर्श करने पर आचमन करना चाहिए।

आचामेदश्रुपाते वा लोहितस्य तथैव च।
भोजने सन्ध्ययो: स्नात्वा त्यागे मूत्रपुरीषयो:॥ ५॥
आचान्तोऽप्याचमेत्सुप्त्वा सकृत्सकृदथान्यय:।
अग्नेर्गवामथालम्भे स्पृष्ट्वा प्रयतमेव च॥ ६॥

अश्रु या रक्त प्रवाहित होने पर, भोजन, संध्यावन्दन, स्नान करने और मल-मूत्र त्यागने पर, पहले आचमन किया हो, तब भी आचमन करना चाहिए। निद्रा के पश्चात् या अन्यान्य कारणों के लिए एक-एक बार आचमन अथवा अग्नि, गाय या पवित्र वस्तु (गंगाजल) का स्पर्श करना चाहिए।

स्त्रीणामथात्मन: स्पर्शे नीवीं वा परिधाय च।
उपस्पृशेज्जलञ्चान्तस्तृणं वा भूमिमेव च॥ ७॥

स्त्री का शरीर, उसका कटिबन्धन या वस्त्र छू लेने से शुद्धि के लिए जल, भीगा हुआ तृण या पृथ्वी का स्पर्श करना चाहिए।

केशानां चात्मन: स्पर्शे वाससोऽक्षालितस्य च।
अनुष्णाभिरफेनाभिर्विशुद्धाद्भिश्च वाग्यत:॥ ८॥
शौचेप्सु: सर्वदाचामेदासीन: प्रागुदङ्मुख:।

अपने ही केशों का स्पर्श तथा बिना धुले हुए वस्त्र का स्पर्श करके अनुष्ण (गरम न हो) फेन से रहित विशुद्ध जल से मौन होकर जलस्पर्श करे। इस प्रकार बाह्यशुद्धि की इच्छा रखने वाले को पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके बैठकर आचमन सर्वदा करना चाहिए।

शिर: प्रावृत्य कण्ठं वा मुक्तकच्छशिखोऽपि वा॥ ९॥
अकृत्वा पादयो: शौचमाचान्तोऽप्यशुचिर्भवेत्।
सोपानत्को जलस्थो वा नोष्णीषी चाचमेद्बुध:॥ १०॥

शिर को ढँककर अथवा कण्ठ को वस्त्र से ढँककर, कमरबंध और शिखा को खोल कर तथा पैरों को शुद्ध किये बिना आचमन करने वाला पुरुष अपवित्र ही होता है। जूते पहने हुए, जल में स्थित होकर और पगड़ी पहने हुए बुद्धिमान् पुरुष को कभी आचमन नहीं करना चाहिए।

न चैवं वर्षधाराभिर्हस्तोच्छिष्टे तथा बुध:।
नैकहस्तार्पितजलैर्विना सूत्रेण वा पुन:॥ ११॥
न पादुकासनस्थो वा बहिर्जानुकरोऽपि वा।
विट्शूद्रादिकरामुक्तैर्न नोच्छिष्टैस्तथैव च॥ १२॥
न चैवाङ्गुलिभि: शस्तं प्रकुर्वन्नान्यमानस:।

उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष को वर्षा की धाराओं से आचमन नहीं करना चाहिए। हाथ के उच्छिष्ट होने पर, एक ही हाथ से अर्पित जल से, यज्ञोपवीत के न होने से, पादुकासन (खड़ाऊँ)पर स्थित होकर, जानुओं के बाहर हाथों को रखते हुए, वैश्य और शूद्र आदि के हाथों से छोड़े हुए तथा उच्छिष्ट जल से आचमन नहीं करना चाहिए। आचमन के समय अङ्गुलियों से आवाज नहीं करनी चाहिए तथा

अन्यमनस्क होकर (एकाग्रताशून्य होकर) कभी आचमन नहीं करना चाहिए।

न वर्णरसदुष्टाभिर्न चैवाप्रचुरोदकैः॥ १३॥
न पाणिक्षुभिताभिर्वा न बहिष्कक्ष एव वा।

जो जल (स्वाभाविक) वर्ण और रस (स्वाद) से दूषित हो या बहुत ही थोड़ा हो तथा जिसमें हाथ डालकर क्षुभित कर दिया गया हो, उससे बगल से बाहर हाथ रखकर भी आचमन नहीं करना चाहिए।

हृद्गाभिः पूयते विप्रः कण्ठगाभिः क्षत्रियः शुचिः॥ १४
प्राशिताभिस्तथा वैश्यः स्त्रीशूद्रौ स्पर्शतोऽम्भसः।

ब्राह्मण हृदय तक पहुँचने वाले आचमन के जल से पवित्र हो जाता है और कण्ठ तक जाने वाले जल से क्षत्रिय की शुद्धि हो जाती है। वैश्य तो प्राशित (मुख में डाले) जल से ही शुद्ध हो जाता है तथा स्त्री और शूद्र जल के स्पर्श मात्र से ही शुद्धि को प्राप्त कर लेते हैं।

अङ्गुष्ठमूलरेखायां तीर्थं ब्राह्ममिहोच्यते॥ १५॥
प्रदेशिन्याश्च यन्मूलं पितृतीर्थमनुत्तमम्।
कनिष्ठामूलतः पश्चात्प्राजापत्यं प्रचक्षते॥ १६॥
अङ्गुल्यग्रे स्मृतं दैवं तद्देवार्थं प्रकीर्त्तितम्।
मूले वा दैवमादिष्टमाग्नेयं मध्यतः स्मृतम्॥ १७॥

अङ्गुष्ठ के मूल की रेखा में ब्रह्मतीर्थ कहा जाता है। अङ्गुष्ठ से प्रदेशिनी अङ्गुलि के मध्य का भाग उत्तम पितृतीर्थ कहा गया है। कनिष्ठा के मूल से पीछे प्राजापत्य तीर्थ कहा जाता है। अङ्गुलि के अग्रभाग में दैवतीर्थ है, जो देवों के लिये प्रसिद्ध है। अथवा (अङ्गुलि के) मूलभाग में दैव आदिष्ट है और मध्य में आग्नेय कहा गया है।

तदेव सौमिकं तीर्थमेवं ज्ञात्वा न मुह्यति।
ब्राह्मेणैव तु तीर्थेन द्विजो नित्यमुपस्पृशेत्॥ १८॥
कायेन वाथ दैवेन चाथाचान्ते शुचिर्भवेत्।
त्रिराचामेदपः पूर्वं ब्राह्मणः प्रयतस्ततः॥ १९॥

वही सौमिक (सोम) तीर्थ है, ऐसा जानकर मनुष्य कभी भी मोह को प्राप्त नहीं होता। ब्राह्मण को ब्राह्मतीर्थ से ही नित्य उपस्पर्शन करना चाहिए। काय (प्राजापत्य) तीर्थ अथवा दैवतीर्थ से भी उसी भाँति आचमन करने पर शुद्ध हो जाता है। ब्राह्मण को सब से पहले संयत होकर तीन बार आचमन करना चाहिए।

संवृताङ्गुष्ठमूलेन मुखं वै समुपस्पृशेत्।
अङ्गुष्ठानामिकाभ्यान्तु स्पृशेन्नेत्रद्वयं ततः॥ २०॥
तर्ज्जन्यङ्गुष्ठयोगेन स्पृशेन्नासापुटद्वयम्।
कनिष्ठाङ्गुष्ठयोगेन श्रवणे समुपस्पृशेत्॥ २१॥

संवृत अङ्गुष्ठ के मूलभाग से मुख का स्पर्श करना चाहिए। अनन्तर अङ्गुष्ठ और अनामिका से दोनों नेत्रों का स्पर्श करना चाहिए। तर्जनी और अङ्गुष्ठ के योग से दोनों नासिका के छिद्रों का स्पर्श करे और कनिष्ठिका और अङ्गुष्ठ के योग से दोनों कानों का स्पर्श करे।

सर्वाङ्गुलीभिर्बाहू च हृदयन्तु तलेन न वा।
नाभिः शिरश्च सर्वाभिरङ्गुष्ठेनाथ वा द्वयम्॥ २२॥

सभी अङ्गुलियों से दोनों भुजाओं, हथेली से हृदय तथा अङ्गूठे या सारी अङ्गुलियों से नाभि और सिर का स्पर्श करें।

त्रिः प्राश्नीयात्तदम्भस्तु सुप्रीतास्तेन देवताः।
ब्रह्मा विष्णुर्महेशश्च भवन्तीत्यनुशुश्रुम॥ २३॥

हमने यह सुना है कि जल का तीन बार आचमन करने से ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर— तीनों देव प्रसन्न होते हैं।

गंगा च यमुना चैव प्रीयेते परिमार्ज्जनात्।
संस्पृष्टयोर्लोचनयोः प्रीयेते शशिभास्करौ॥ २४॥

परिमार्जन (मुखप्रक्षालन) करने से गंगा और यमुना प्रसन्न होती हैं। तथा दोनों नेत्रों का स्पर्श करने से चन्द्रमा और सूर्य प्रसन्न होते हैं।

नासत्यदस्रौ प्रीयेते स्पृष्टे नासापुटद्वये।
श्रोत्रयोः स्पृष्टयोस्तद्वत्प्रीयेते चानिलानलौ॥ २५॥

नासापुटों का स्पर्श करने से अश्विनीकुमार प्रसन्न होते हैं। उसी प्रकार कानों के स्पर्श से वायु और अग्नि प्रसन्न होते हैं।

संस्पृष्टे हृदयेऽवास्य प्रीयन्ते सर्वदेवताः।
मूर्ध्नि संस्पर्शनादेव प्रीतस्तु पुरुषो भवेत्॥ २६॥

हृदय के स्पर्श से सारे देवता प्रसन्न होते हैं और सिर पर स्पर्श करने से परम पुरुषरूप विष्णु प्रसन्न होते हैं।

नोच्छिष्टं कुर्वते नित्यं विप्रुषोऽङ्गं नयन्ति याः।
दन्तान्तर्दन्तलग्नेषु जिह्वोष्ठैरशुचिर्भवेत्॥ २७॥

(आचमन करते समय) शरीर पर गिरने वाली अत्यन्त सूक्ष्म जल की बूँदों से अङ्ग जूठा नहीं होता। दाँतों में लगी हुई वस्तु, दाँतों के समान मानी जाती है, परन्तु जिह्वा और ओष्ठ के स्पर्श से वह अपवित्र हो जाती है।

स्पृशन्ति बिन्दवः पादौ य आचामयतः परान्।
भूमिकास्ते समाज्ञेया न तैरप्रयतो भवेत्॥ २८॥

दूसरे व्यक्ति को आचमन कराते समय, यदि जल की बूँदें देने वाले के पैरों पर गिर पड़े, तो उन जलकणों को विशुद्ध भूमि का जल के समान ही मानना चाहिए, उससे वह अपवित्र नहीं होता।

मधुपर्के च सोमे च ताम्बूलस्य च भक्षणे।
फले मूलेक्षुदण्डे च न दोषं प्राह वै मनुः॥२९॥

सोमरस और मधुपर्क (दही-घी-मिश्रित मधु) का पान करने तथा ताम्बूल (पान), फल-मूल और इक्षुदण्ड का भक्षण करने में मनु ने कोई दोष नहीं माना है।

प्रचुरान्नोदपानेषु यद्युच्छिष्टो भवेद्द्विजः।
भूमौ निक्षिप्य तद्द्रव्यमाचम्याभ्युक्षिपेत्ततः॥३०॥

परन्तु प्रभूत अन्न और जलपान कर लेने से यदि ब्राह्मण उच्छिष्ट हो जाय, तो उसे वे सभी द्रव्य भूमि पर रखकर आचमन कर लेना चाहिए। परन्तु आचमन के बाद फिर उन्हें ग्रहण नहीं करना चाहिए।

तैजसं वा समादाय यद्युच्छिष्टो भवेद्द्विजः।
भूमौ निक्षिप्य तद्द्रव्यमाचम्याह्रियते तु तत्॥३१॥

यदि तैजस् (गर्म घृत, सुवर्ण आदि) पदार्थ हाथ में लेकर ब्राह्मण जूठा हो जाय, तो उस वस्तु को भूमि पर रख कर पहले आचमन करके तत्पश्चात् उसे जल द्वारा ही सिञ्चित कर लेना चाहिए।

यद्यमन्त्रं समादाय भवेदुच्छेषणान्वितः।
अनिधायैव तद्द्रव्यमाचान्तः शुचितामियात्॥३२॥
वस्त्रादिषु विकल्पः स्यात्र स्पृष्ट्वा चैवमेव हि।

यदि तदतिरिक्त किसी अन्य को ग्रहण कर कोई उच्छिष्ट हो जाय, तो उस द्रव्य को (भूमि पर) बिना रखे ही आचमन कर लेने पर पवित्र हो जाता है। परन्तु वस्त्र आदि में विकल्प होता है। इस प्रकार से स्पर्श न करके ही होता है अर्थात् शुद्धि के लिए वस्त्र को अलग कर देना चाहिए।

अरण्येऽनुदके रात्रौ चौरव्याघ्राकुले पथि॥३३॥
कृत्वा मूत्रं पुरीषं वा द्रव्यहस्तो न दुष्यति।
निधाय दक्षिणे कर्णे ब्रह्मसूत्रमुदङ्मुखः॥३४॥
अह्नि कुर्याच्छकृन्मूत्रं रात्रौ चेद्दक्षिणामुखः।
अन्तर्द्धाय महीं काष्ठैः पत्रैर्लोष्ठैस्तृणेन वा॥३५॥
प्रावृत्य च शिरः कुर्याद्विण्मूत्रस्य विसर्जनम्।

अरण्य में, बिना जल वाले स्थान में, रात्रि में, चोर तथा व्याघ्र से समाकुलित मार्ग में, मूत्र तथा मल को करके भी जो हाथ में द्रव्य रखता है, वह दूषित नहीं होता। दक्षिण कर्ण में ब्रह्मसूत्र (यज्ञोपवीत) को रखकर उत्तर की ओर मुख करके दिन में मल और मूत्र का त्याग करना चाहिए और रात्रि में दक्षिणाभिमुख होकर त्याग करना चाहिए। उस भूमि को काष्ठ, पत्ते, ढेले और तृणों से ढँक दें। शिर को वस्त्र से लपेटकर ही मल-मूत्र का विसर्जन करना चाहिए।

छायाकूपनदीगोष्ठचैत्यान्तःपथि भस्मसु॥३६॥
अग्नौ वेश्म श्मशाने च विण्मूत्रे न समाचरेत्।
न गोपथे न कृष्टे वा महावृक्षे न शाड्वले॥३७॥
न तिष्ठन्वा न निर्वासा न च पर्वतमस्तके।
न जीर्णदेवायतने न वल्मीके समाचरेत्॥३८॥

छाया, कूप, नदी, गोष्ठ, चैत्य के अन्दर, मार्ग, भस्म, अग्निवेश्म, श्मशान में कभी भी मल-मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए। गोपथ में, जुती हुई भूमि में, महावृक्ष के नीचे, हरी घास वाली जमान पर, खड़े होकर या निर्वस्त्र होकर, पर्वत की चोटी पर, जीर्ण देवता के आयतन में, वल्मीक में कभी भी मल-मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए।

न ससत्त्वेषु गर्त्तेषु नागच्छन्वा समाचरेत्।
तुषाङ्गारकपालेषु राजमार्गे तथैव च॥३९॥
न क्षेत्रे विमले चापि न तीर्थे न चतुष्पथे।
नोद्याने न समीपे वा नोषरे न पराशुचौ॥४०॥

जीवों से युक्त गर्त्तों में, चलते हुए, तुषाङ्गार (छिलकों के अंगारों पर) कपाल (मिट्टी के बर्तनों) में तथा राजमार्गों, स्वच्छ क्षेत्र में, तीर्थ में, चौराहे पर, उद्यान में, ऊषर भूमि में तथा परम अपवित्र स्थल में भी मल-मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए।

न सोपानत्पादुको वा गन्ता यानान्तरिक्षगः।
न चैवाभिमुखं स्त्रीणां गुरुब्राह्मणयोर्न च॥४१॥

जूतें पहने हुए तथा पादुका पहने हुए गमन करने वाला, यान में अन्तरिक्ष गामी होकर, स्त्रियों के सामने और गुरुब्राह्मणों के समक्ष भी मल-मूत्र का उत्सर्ग नहीं करे।

न देवदेवालययोर्नद्यामपि कदाचन।
नदीं ज्योतींषि वीक्षित्वा न वाय्वभिमुखोऽथ वा।
प्रत्यादित्यं प्रत्यनलं प्रतिसोमं तथैव च॥४२॥

देवता, मन्दिर तथा नदी के भी सामने, ग्रह-नक्षत्रों को या इधर-उधर देखते हुए, वायु के बहाव के सामने तथा अग्नि-चन्द्रमा या सूर्य की ओर मुख करके मल-मूत्र का कभी भी त्याग न करें।

आहृत्य मृत्तिकां कूलाल्लेपगन्धापकर्षणात्।
कुर्यादतन्द्रितः शौचं विशुद्धैरुद्धृतोदकैः॥४३॥

लेप और दुर्गन्ध को दूर करने के लिए आलस्य त्यागकर नदी तट से लाई गई मिट्टी और उठाए गए शुद्ध जल से शौच करना चाहिए।

नाहरेन्मृत्तिकां विप्रः पांशुलान्न च कर्दमात्।
न मार्गान्नोषराद्देशाच्छौचोच्छिष्टात्तथैव च॥४४॥

ब्राह्मण को चाहिए कि वह धूल, कीचड़, मार्ग, ऊषर भूमि और दूसरे के शौच से बची हुई मिट्टी को कभी भी ग्रहण न करें।

न देवायतनात्कूपाद्ग्रामादन्तर्जलात्तथा।
उपस्पृशेत्ततो नित्यं पूर्वोक्तेन विधानतः॥४५॥

मन्दिर, कुँआ, गाँव या जल के भीतर से शौच के लिए मिट्टी नहीं लेनी चाहिए। शौच के अनन्तर पूर्वोक्त विधि से प्रतिदिन आचमन करना चाहिए।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे ऋषिव्याससंवादे त्रयोदशोऽध्यायः॥१३॥

चतुर्दशोऽध्यायः
(व्यासगीता-शिष्यब्रह्मचारी के धर्म)

व्यास उवाच

एवं दण्डादिभिर्युक्तः शौचाचारसमन्वितः।
आहूतोऽध्ययनं कुर्याद्वीक्षमाणो गुरोर्मुखम्॥१॥

व्यासजी बोले— पूर्वोक्त (पलाश)दण्डादि धारण करने वाले और शौचादि नियमों से युक्त ब्रह्मचारी को गुरु के द्वारा बुलाए जाने पर उनके मुख की ओर देखते हुए अर्थात् गुरु के सामने बैठकर अध्ययन करना चाहिए।

नित्यमुद्धृतपाणिः स्यात्सन्ध्याचारसमन्वितः।
आस्यतामिति चोक्तः सन्नासीताभिमुखं गुरोः॥२॥

सन्ध्या-वन्दन करने वाले, सदाचारी ब्रह्मचारी को दाहिना हाथ (उत्तरीय वस्त्र से) ऊपर उठाकर गुरु के द्वारा 'बैठ जाओ' ऐसा आदेश मिलने पर उनकी ओर अभिमुख होकर बैठना चाहिए।

प्रतिश्रवणसम्भाषे शयानो न समाचरेत्।
आसीनो न च तिष्ठन्वा उत्तिष्ठन्वा पराङ्मुखः॥३॥

लेटकर, बैठकर, भोजन करते हुए, दूर खड़े रहकर या पीछे की ओर मुँह करके (गुरु की) आज्ञा का ग्रहण या उनसे वार्तालाप नहीं करना चाहिए।

न च शय्यासनञ्चास्य सर्वदा गुरुसन्निधौ।
गुरोश्च चक्षुर्विषये न यथेष्टासनो भवेत्॥४॥

शिष्य का आसन तथा उसकी शय्या, सदैव गुरु के स्थान के बराबर नहीं होनी चाहिए अर्थात् उनसे नीची होनी चाहिए तथा गुरु की आँखों के सामने उसे अपनी इच्छानुसार हाथ-पैर फैलाकर नहीं बैठना चाहिए।

नोदाहरेदस्य नाम परोक्षमपि केवलम्।
न चैवास्यानुकुर्वीत गतिभाषितचेष्टितम्॥५॥

गुरु के परोक्ष में केवल उनके नाम का (उपाधि आदि से रहित) उच्चारण नहीं करना चाहिए और न ही उनके चलने-बोलने आदि विभिन्न चेष्टाओं का अनुकरण करना चाहिए।

गुरोर्यत्र प्रतीवादो निन्दा चापि प्रवर्त्तते।
कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गन्तव्यं वा ततोऽन्यतः॥६॥

जहाँ गुरु का विरोध या निन्दा हो रही हो, वहाँ शिष्य को अपने दोनों कान (हाथों से) ढँक लेने चाहिए या उस स्थान से अन्यत्र चला जाना चाहिए।

दूरस्थो नार्चयेदेनं न क्रुद्धो नान्तिके स्त्रियाः।
न चैवास्योत्तरं ब्रूयात् स्थिते नासीत सन्निधौ॥७॥

दूर खड़े होकर या क्रोधित अवस्था में अथवा स्त्री के समीप गुरु की पूजा नहीं करनी चाहिए। उनकी बातों का प्रत्युत्तर नहीं देना चाहिए और यदि वे खड़े हों तो उनके समक्ष शिष्य को बैठना नहीं चाहिए।

उदकुम्भं कुशान् पुष्पं समिधोऽस्याहरेत्सदा।
मार्जनं लेपनं नित्यमङ्गानां वा समाचरेत्॥८॥
नास्य निर्माल्य शयनं पादुकोपानहावपि।
आक्रमेदासनं छायामासन्दीं वा कदाचन॥९॥

(गुरु के लिये) सर्वदा जलकलश, कुशायें, पुष्प और समिधाओं का आहरण करना चाहिए। उनके अंगों का मार्जन (स्नान आदि), लेपन (चन्दन) नित्य करे। गुरु के निर्माल्य (गुरु की माला आदि) पर शयन न करे और इनकी पादुका तथा जूतों, आसन और छाया आदि का भी लंघन न करे और कभी भी उनके आसन पर न बैठे।

साधयेद्दन्तकाष्ठादीनं कृत्यञ्चास्मै निवेदयेत्।
अनापृच्छ्य न गन्तव्यं भवेत्प्रियहिते रतः॥१०॥

न पादौ सारयेदस्य सन्निधाने कदाचन।

(गुरु के लिये) दन्तकाष्ठ (दाँतुन) आदि का प्रबन्ध करें और जो भी कृत्य हो उन्हीं को समर्पित कर दें। गुरु से बिना पूछे ब्रह्मचारी शिष्य को कहीं भी नहीं जाना चाहिए और सदा गुरुदेव के प्रिय कार्य तथा हित में लगा रहना चाहिए। उनके सन्निधान में कभी भी अपने पैरों को नहीं फैलाना चाहिए।

जृम्भाहास्यादिकञ्चैव कण्ठप्रावरणं तथा॥ ११॥
वर्जयेत्सन्निधौ नित्यमथास्फोटनमेव च।
यथाकालमधीयीत यावन्न विमना गुरुः॥ १२॥

जँभाई, हास्यादि तथा कण्ठ का आच्छादन (गले में हार आदि पहनना) और ताली बजाना या उच्चस्वर से बोलना नित्य ही गुरु की सन्निधि में वर्जित रखना चाहिए। उस समय तक अध्ययन करता रहे, जब तक गुरुदेव थक न जायँ।

आसीताथ गुरोरूर्ध्वे फलके वा समाहितः।
आसने शयने याने नैकस्तिष्ठेत्कदाचन॥ १३॥
धावन्तमनुधावेत्तं गच्छन्तञ्चानुगच्छति।

गुरु के कहने पर ही समाहित होकर फलक (काष्ठासन) पर बैठे। आसन, शयन और यान में कभी भी एक साथ नहीं बैठना चाहिए। गुरुदेव के दौड़ने पर, स्वयं भी उनके पीछे दौड़े और उनके चलने पर शिष्य को पीछे चलना चाहिए।

गोऽश्वोष्ट्रयानप्रासादप्रस्तरेषु कटेषु च॥ १४॥
आसीत गुरुणा सार्द्धं शिलाफलकनौषु च।
जितेन्द्रियः स्यात्सततं वश्यात्माऽक्रोधनः शुचिः॥ १५॥
प्रयुञ्जीत सदा वाचं मधुरां हितभाषिणीम्।

बैल, अश्व, या ऊँट की सवारी, प्रासाद, प्रस्तर तथा चटाई पर अथवा शिलाखण्ड और नाव में गुरु के साथ बैठ सकता है। ब्रह्मचारी को निरन्तर जितेन्द्रिय, मन को वश में रखने वाला, शुचि और क्रोध रहित होना चाहिए। सर्वदा हितकारी और मधुर वाणी का प्रयोग करे।

गन्धमाल्यं रसं भव्यं शुक्लं प्राणिविहिंसनम्॥ १६॥
अभ्यङ्गञ्चाञ्जनोपानच्छत्रधारणमेव च।
कामं लोभं भयं निद्रां गीतवादित्रनर्तनम्॥ १७॥
द्यूतं जनपरीवादं स्त्रीप्रेक्षालम्भनं तथा।
परोपघातं पैशुन्यं प्रयत्नेन विवर्जयेत्॥ १८॥

ब्रह्मचारी को यत्नपूर्वक गन्ध, माल्य, भव्य सुगन्धित रस, प्राणियों की हिंसा, अभ्यङ्ग (मालिश) अञ्जन, उपानत्, छत्र धारण, काम, क्रोध, लोभ, भय, निद्रा, गीत, वादित्र, नृत्य, द्यूत, जनों की निन्दा, स्त्री को देखना, आलम्भन, दूसरों पर उपघात, पैशुन्य— इन सब का परिवर्जन कर देना चाहिए।

उदकुम्भं सुमनसो गोशकृन्मृत्तिकां कुशान्।
आहरेद्यावदर्थानि भैक्ष्यञ्चाहरहश्चरेत्॥ १९॥

गुरु के लिए उनकी आवश्यकतानुसार जल का घड़ा, फूल, गोबर, मिट्टी और कुश आदि लाने चाहिए और प्रतिदिन भिक्षाटन भी करना चाहिए।

कृतञ्च लवणं सर्वं वर्ज्यं पर्युषितञ्च यत्।
अनृत्यदर्शी सततं भवेद् गीतादिनिस्पृहः॥ २०॥

लवणयुक्त सब प्रकार की रसोई का त्याग करना चाहिए और बासी रसोई का भी त्याग करना चाहिए। कभी भी नृत्य न देखें और गायन आदि के प्रति उदासीन रहना चाहिए अर्थात् न तो गीत गाने और सुनने नहीं चाहिए।

नादित्यं वै समीक्षेत न चरेद्दन्तधावनम्।
एकान्तमशुचिस्त्रीभिः शूद्रान्त्यैरभिभाषणम्॥ २१॥

ब्रह्मचारी को सूर्य के सामने देखना नहीं चाहिए और न ही (अधिक) दाँत साफ करने चाहिए। एकान्त में बैठकर अपवित्र स्त्री, शूद्र और चाण्डालादि के साथ वार्तालाप भी नहीं करना चाहिए।

गुरुप्रियार्थं सर्वं हि प्रयुञ्जीत न कामतः।
मलापकर्षणं स्नानमाचरेद्धि कथञ्चन॥ २२॥

गुरु को जो प्रिय लगे वैसे सब कार्यों में प्रवृत्त रहना चाहिए। अपनी इच्छा से कोई कार्य न करे। ब्रह्मचारी को खूब मल-मल कर स्नान नहीं निकालना चाहिए (केवल शरीर पवित्र करने हेतु स्नान करना चाहिए)।

न कुर्यान्मानसं विप्रो गुरोस्त्यागं कदाचन।
मोहाद्वा यदि वा लोभात् त्यक्त्वैनं पतितो भवेत्॥ २३॥

ब्राह्मण को गुरुजनों को छोड़ने की बात मन में कदापि नहीं लानी चाहिए। लोभ या मोहवश गुरु का त्याग करने से पतित होना पड़ता है।

लौकिकं वैदिकञ्चापि तथाध्यात्मिकमेव च।
आददीत यतो ज्ञानं न तं द्रुह्येत्कदाचन॥ २४॥

ब्राह्मण ने जिस गुरु से लौकिक, वैदिक और आध्यात्मिक ज्ञान ग्रहण किया हो, उस आचार्य के प्रति द्रोह कभी नहीं करना चाहिए।

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः।
उत्पथं प्रतिपन्नस्य मनुस्त्यागं समब्रवीत्॥ २५॥

परन्तु यदि वह गुरु अहंकारी, कर्तव्य और अकर्तव्य को न जानने वाला, कुमार्गगामी हो तो, उस का भी त्याग कर देना चाहिए, ऐसा मनु ने कहा है।

गुरोर्गुरौ सन्निहिते गुरुवद्भक्तिमाचरेत्।
न चातिसृष्टो गुरुणा स्वान् गुरूनभिवादयेत्॥ २६॥

अपने विद्यागुरु के भी गुरु जब उपस्थित हों, तो गुरु के समान ही उनकी भक्ति करनी चाहिए तथा (गुरुगृह में रहते हुए) उनकी आज्ञा के बिना अपने पूज्यजनों का अभिवादन न करे।

विद्यागुरुष्वेतदेव नित्या वृत्तिः स्वयोनिषु।
प्रतिषेधत्सु चाधर्माद्धितं चोपदिशत्स्वपि॥ २७॥

इसी प्रकार अपने कुल में अधर्म का प्रतिषेध करने वालों में और हितकारी उपदेश देने वालों में भी सदा गुरु के समान ही वर्तन करना चाहिए।

श्रेयस्सु गुरुवद्वृत्तिं नित्यमेव समाचरेत्।
गुरुपुत्रेषु दारेषु गुरोश्चैव स्वबन्धुषु॥ २८॥

सदा हित चाहने वाले गुरु के पुत्रों, गुरु की पत्नियों और अपने बन्धुओं के प्रति भी अपने गुरु के समान ही आचरण करना चाहिए।

बालः संमानयन्मान्यान् शिष्यो वा यज्ञकर्मणि।
अध्यापयन् गुरुसुतो गुरुवन्मानमर्हति॥ २९॥
उत्सादनं वै गात्राणां स्नापनोच्छिष्टभोजने।
न कुर्याद्गुरुपुत्रस्य पादयोः शौचमेव च॥ ३०॥

मान्य व्यक्तियों का सम्मान करने वाला बालक या यज्ञकर्म में संयुक्त शिष्य और अध्यापन करता हुआ गुरु का पुत्र भी गुरु के समान ही सम्मान के योग्य होता है। परन्तु (यह ध्यान रहे कि) उस गुरुपुत्र के शरीर की मालिश करना, स्नान कराना, उसका उच्छिष्ट भोजन करना, पादप्रक्षालन करना आदि नहीं करना चाहिए।

गुरुवत्परिपूज्याश्च सवर्णा गुरुयोषितः।
असवर्णास्तु सम्पूज्याः प्रत्युत्थानाभिवादनैः॥ ३१॥

गुरु की जो पत्नियां समान वर्ण की हों तो वे गुरु के तुल्य ही पूजनीय होती हैं। किन्तु गुरु की असवर्णा पत्नियाँ उठकर तथा केवल नमस्कार कर अभिवादन के योग्य होती हैं।

अभ्यञ्जनं स्नापनञ्च गात्रोत्सादनमेव च।
गुरुपत्न्या न कार्याणि केशानाञ्च प्रसाधनम्॥ ३२॥

गुरु पत्नी के शरीर में उबटन लगाना, स्नान कराना, शरीर की मालिश करना और केश प्रसाधन करना निषिद्ध है।

गुरुपत्नी तु युवती नाभिवाद्येह पादयोः।
कुर्वीत वन्दनं भूमावसावहमिति ब्रुवन्॥ ३३॥

यदि गुरुपत्नी युवावस्था की हो, तो उसका चरणस्पर्श कर प्रणाम नहीं करना चाहिए, अपितु 'मैं अमुक नाम वाला आपका अभिवादन करता हूँ', ऐसा कहकर केवल भूमि पर दंडवत् प्रणाम कर लेना चाहिए।

विप्रोष्य पादग्रहणमन्वहं चाभिवादनम्।
गुरुदारेषु सर्वेषु सतां धर्ममनुस्मरन्॥ ३४॥

परन्तु यदि शिष्य बहुत समय बाद प्रवास से लौटता है, तो सज्जनों के आचार-व्यवहार का स्मरण कर सभी गुरुपत्नियों का चरणस्पर्शपूर्वक अभिवादन करे।

मातृष्वसा मातुलानी श्वश्रूश्चाथ पितृष्वसा।
संपूज्या गुरुपत्नी च समस्ता गुरुभार्यया॥ ३५॥

मौसी, मामी, सास और बुआ (पिता की बहन), गुरुपत्नी के समान पूजनीय होती हैं क्योंकि ये सभी गुरुपत्नी के समान ही हैं।

भ्रातुर्भार्या च संग्राह्या सवर्णाहन्यहन्यपि।
विप्रस्य तूपसंग्राह्या ज्ञातिसम्बन्धियोषितः॥ ३६॥
पितुर्भगिन्या मातुश्च ज्यायस्यां च स्वसर्यपि।
मातृवद्वृत्तिमातिष्ठेन्माता ताभ्यो गरीयसी॥ ३७॥

भाई की पत्नी जो सवर्णा हो, प्रतिदिन उसका भी अभिवादन करना चाहिए। विप्र की ज्ञाति-सम्बन्धी स्त्रियों का भी अभिवादन करना चाहिए। पिता तथा माता की बहन और अपनी बड़ी बहन का भी माता के समान ही आदर करना चाहिए किन्तु इन सबमें माता सब से अधिक गौरवयुक्त (श्रेष्ठ) होती है।

एवमाचारसंपन्नमात्मवन्तमदाम्भिकम्।
वेदमध्यापयेद्धर्मं पुराणाङ्गानि नित्यशः॥ ३८॥

इस प्रकार के सदाचारों से सम्पन्न, जितेन्द्रिय और अदाम्भिक (दंभ न करने वाले) को वेद का अध्यापन कराना चाहिए और नित्य ही धर्म, पुराण तथा छः अङ्गों को पढ़ाना चाहिए।

संवत्सरोषिते शिष्ये गुरुर्ज्ञानमनिर्दिशन्।

हरते दुष्कृतं तस्य शिष्यस्य वसतो गुरुः॥३९॥

जो शिष्य एक वर्ष तक गुरु के यहाँ (विद्याध्ययन के लिए) उनके पास रहता है, फिर भी शिष्य को गुरुज्ञान का निर्देश (उपदेश) प्राप्त नहीं होता, तो उस शिष्य के दुष्कृत (पाप) गुरु हरण कर लेते हैं अर्थात् उनमें आ जाते हैं।

आचार्यपुत्रः शुश्रूषुर्ज्ञानदो धार्मिकः शुचिः।
सूक्तार्थदोऽरसः साधुः स्वाध्याय्यादेशधर्मतः॥४०॥
कृतज्ञश्च तथाद्रोही मेधावी तूपकृन्नरः।
आप्तः प्रियोऽथ विधिवत् षडध्याप्या द्विजातयः॥४१॥
एतेषु ब्रह्मणो दानमन्यत्र च यथोदितान्।
आचम्य संयतो नित्यमधीयीत ह्युदङ्मुखः॥४२॥

आचार्य का पुत्र, शुश्रूषा करने वाला, ज्ञानदाता, धार्मिक, शुचि, वैदिक-सूक्तों का अर्थ देने वाला, अरसिक, सज्जन, दशलक्षणयुक्त धर्मानुसार स्वाध्याय करने वाला तथा कृतज्ञ, अद्रोही, मेधावी, उपकारी, आप्त, प्रिय — ये छः द्विजातियाँ विधिवत् अध्यापन के योग्य हैं। इनको वेदाध्यापनरूप दान देना चाहिए और अन्यत्र कहे हुओं को भी अध्यापित करें। आचमन करके, संयत होकर तथा उत्तर की ओर मुख करके नित्य ही अध्ययन करना चाहिए।

उपसंगृह्य तत्पादौ वीक्षमाणो गुरोर्मुखम्।
अधीष्व भो इति ब्रूयाद्विरामस्त्विति नारभेत्॥४३॥

गुरु के चरणों में बैठकर उनके मुख को देखता हुआ 'अध्ययन करो' ऐसा बोलना चाहिए। और (गुरु के द्वारा) 'विराम हो' ऐसा कहने पर आरम्भ नहीं करना चाहिए।

अनुकूलं समासीनः पवित्रैश्चैव पावितः।
प्राणायामैस्त्रिभिः पूतस्तत ओङ्कारमर्हति॥४४॥

जैसे अनुकूल हो, उस ढंग से समासीन होकर, पवित्र कुशों द्वारा पवित्र हुआ, तीन बार प्राणायाम करके शुद्ध होकर वह ओङ्कार का उच्चारण के योग्य होता है।

ब्राह्मणः प्रणवं कुर्यादन्ते च विधिवद्द्विजः।
कुर्यादध्ययनं नित्यं ब्रह्माञ्जलिकरस्थितः॥४५॥

हे ब्राह्मणो! वेदाध्ययन के अन्त में भी द्विजों को विधिवत् ओङ्कार का उच्चारण करना चाहिए तथा नित्य ब्रह्माञ्जलि (अध्ययन के समय गुरु के सामने विनयसूचक दोनों हाथ जोड़कर बैठने की स्थिति) बाँधकर वेदाध्ययन करना चाहिए।

सर्वेषामेव भूतानां वेदश्चक्षुः सनातनम्।
अधीयीताप्ययं नित्यं ब्राह्मण्याच्च्यवतेऽन्यथा॥४६॥

सभी प्राणियों के लिए वेद सनातन चक्षुस्वरूप है, इसीलिए प्रतिदिन वेदाध्ययन करना चाहिए, अन्यथा (वेदाध्ययन न करने से) ब्राह्मणत्व से च्युत हो जाता है।

योऽधीयीत ऋचो नित्यं क्षीराहुत्या सदेवताः।
प्रीणाति तर्पयन्त्येनं कामैस्तृप्ताः सदैव हि॥४७॥

जो नित्य ऋग्वेद की ऋचाओं का अध्ययन करता है और दूध की आहुति देकर देवताओं को प्रसन्न करता है। इससे तृप्त हुए देवता सभी कामनाओं की पूर्ति कर उसे सन्तुष्ट कर देते हैं।

यजूंष्यधीते नियतं दध्ना प्रीणाति देवताः।
सामान्यधीते प्रीणाति घृताहुतिभिरन्वहम्॥४८॥

प्रतिदिन यजुर्वेद का अध्ययन करने वाला दधिरूप आहुति से देवताओं को प्रसन्न करता है तथा सामवेद का अध्ययन करने वाला घृताहुति देकर प्रतिदिन देवों को प्रसन्न करता है।

अथर्वाङ्गिरसो नित्यं मध्वा प्रीणाति देवताः।
वेदाङ्गानि पुराणानि मांसैश्च तर्पयेत्सुरान्॥४९॥

प्रतिदिन अथर्ववेद का अध्ययन करने वाला मधु और वेदाङ्ग तथा पुराण का अध्ययन करने वाला विविध पदार्थों से देवताओं को प्रसन्न करते हैं।

अपां समीपे नियतो नैत्यिकं विधिमाश्रितः।
गायत्रीमप्यधीयीत गत्वारण्यं समाहितः॥५०॥

द्विज को अरण्य में जाकर पूर्णरूप से एकाग्रचित्त होते हुए किसी जलाशय के समीप संयतचित्त से नैत्यिक-विधि का आश्रय लेकर गायत्री का भी अध्ययन (जप) करें।

सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम्।
गायत्रीं वै जपेन्नित्यं जपयज्ञः प्रकीर्त्तितः॥५१॥

एक हजार बार गायत्री मंत्र का जप सर्वोत्तम माना गया है, सौ मन्त्र का जप मध्यम है और दश बार जप करना अवर है। (परन्तु किसी भी रूप में) गायत्री का नित्य जप करना चाहिए, यही जप यज्ञ कहा गया है।

गायत्रीञ्चैव वेदांस्तु तुलयातोलयत्प्रभुः।
एकतश्चतुरो वेदान् गायत्रीञ्च तथैकतः॥५२॥
ओङ्कारमादितः कृत्वा व्याहृतीस्तदनन्तरम्।
ततोऽधीयीत सावित्रीमेकाग्रः श्रद्धयान्वितः॥५३॥

एक बार प्रभु ने गायत्री मन्त्र और समस्त वेदों को तुला में रखकर तोला था। एक ओर पलड़े में चारों वेद थे और दूसरी ओर केवल एक गायत्री मन्त्र ही था (दोनों का वजन बराबर था, अत: दोनों का महत्त्व भी समान है)। सर्वप्रथम ओङ्कार को रखकर अनन्तर व्याहतियाँ (भूर्, भुव:, स्व:) करनी चाहिए। इसके पश्चात् सावित्री है उसका एकाग्र चित्त होकर तथा श्रद्धा से युक्त होकर जप करना चाहिए।

पुराकल्पे समुत्पन्ना भूर्भुव: स्व: सनातना:।
महाव्याहृतयस्तिस्र: सर्वा: शुभनिबर्हणा:॥५४॥
प्रधानं पुरुष: कालो विष्णुर्ब्रह्मा महेश्वर:।
सत्त्वं रजस्तमस्तिस्र: क्रमाद्व्याहृतय: स्मृता:॥५५॥
ओङ्कारस्तत्परं ब्रह्म सावित्री स्यात्तदक्षरम्।
एष मन्त्रो महायोग: सारात्सार उदाहृत:॥५६॥

पूर्वकल्प में (सृष्टि के प्रारंभ में) 'भू: भुव: स्व:' समुत्पन हुई ये सनातन तीनों महाव्याहतियाँ हैं। क्रम से ही ये व्याहतियाँ कही गई हैं। ये सभी शुभ को निर्वहण करने वाली हैं। प्रधान, पुरुष काल, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, सत्त्व, रज, तम— ये क्रमश: तीन-तीन व्याहतियाँ कही गई हैं। ओङ्कार उससे भी परब्रह्म है तथा सावित्री उसका अक्षर है। यह मन्त्र महायोग है, जो उत्तम साररूप कहा गया है।

योऽधीतेऽहन्यहन्येतां सावित्रीं वेदमातरम्।
विज्ञायार्थं ब्रह्मचारी स याति परमां गतिम्॥५७॥
गायत्री वेदजननी गायत्री लोकपावनी।
न गायत्र्या: परं जाप्यमेतद्विज्ञाय मुच्यते॥५८॥

सावित्री वेद माता है, जो पुरुष दिन-प्रतिदिन उसका अध्ययन किया करता है और जो ब्रह्मचारी इसके अर्थ को जानकर इसका जप करता है, वह परम गति को प्राप्त होता है। यह गायत्री वेदों की जननी और लोकों को पावन करने वाली है। गायत्री से परम अन्य कोई जप नहीं है— ऐसा जो जान लेता है, वह (पुरुष) मुक्त हो जाता है।

श्रावणस्य तु मासस्य पौर्णमास्यां द्विजोत्तमा:।
आषाढ्यां प्रोष्ठपद्यां वा वेदोपाकरणं स्मृतम्॥५९॥
उत्सृज्य ग्रामनगरं मासान्विप्रोर्ऽधपञ्चमान्।
अधीयीत शुचौ देशे ब्रह्मचारी समाहित:॥६०॥
पुष्ये तु छन्दसां कुर्याद्बहिरुत्सर्जनं द्विजा:।

हे द्विजोत्तमो! श्रावणमास की, आषाढ़ की अथवा भाद्रपद की पूर्णमासी में वेद का उपाकरण (वेदाध्ययन की साधन क्रिया) कहा गया है। हे विप्र! उस तिथि से आगे के पाँच मासों तक ग्राम-नगर को त्याग कर किसी पवित्र स्थान में ब्रह्मचारी को एकाग्रचित्त होकर वेदाध्ययन करना चाहिए। पुष्य नक्षत्र में छन्दों का बाहरी भाग में उत्सर्जनरूप वैदिक कर्म करना चाहिए।

माघशुक्लस्य वा प्राप्ते पूर्वाह्णे प्रथमेऽहनि॥६१॥
छन्दसां प्रीणनं कुर्यात् स्वेषु ऋक्षेषु वै द्विजा:।
वेदाङ्गानि पुराणानि कृष्णपक्षे च मानव:॥६२॥
इमान्नित्यमनध्यायानधीयानो विवर्ज्जयेत्।
अध्यापनं च कुर्वाणो ह्यनध्यायान्विवर्ज्जयेत्॥६३॥

हे द्विजगण! माघ शुक्ल के प्राप्त होने पर प्रथम दिन में पूर्वाह्न में छन्दों का स्वाध्याय करना चाहिए। अपने ही नक्षत्रों में वेदाङ्ग तथा पुराणों का मनुष्य को कृष्णपक्ष में स्वाध्याय करना चाहिए। इन सबको नित्य करता रहे परन्तु अध्ययन करने वाल अयोग्य काल को छोड़ दें और अध्यापन कराने वाले भी अनध्याय के दिनों को वर्जित करें।

कर्णश्रवेऽनिले रात्रौ दिवापांशुसमूहने।
विद्युत्स्तनितवर्षेषु महोल्कानाञ्च संप्लवे॥६४॥
आकालिकमनध्यायमेतेष्वाह प्रजापति:।

जिस समय रात्रि में हवा चलने की आवाज दोनों कानों से सुनाई पड़े और जब दिन में हवा के साथ धूल उड़ती हो, बिजली की चमक तथा बादलों की गड़गड़ाहट के साथ पानी बरसता हो या कहीं उल्कापात आदि उपद्रव होते हों, तो उसे आकालिक अध्ययन (अर्थात् प्रारम्भ होने से लेकर दूसरे दिन उसी समय तक अध्ययन वर्जित) जानें— ऐसा प्रजापति ने कहा है।

निर्घाते भूमिचलने ज्योतिषाञ्चोपसर्ज्जने॥६५॥
एतानाकालिकान्विद्यादनध्यायानृतावपि।

उसी प्रकार आकाश में गड़गड़ाहट हो, भूकम्प हो रहा हो, या आकाश से तारे गिर रहे हों— इस पूरे काल को किसी भी ऋतु में अनध्याय हेतु आकालिक मानना चाहिए।

प्रादुष्कृतेष्वग्निषु तु विद्युत्स्तनितनिस्वने॥६६॥
सज्योति: स्यादनध्यायमनृतौ चात्र दर्शने।
नित्यानध्याय एव स्याद्ग्रामेषु नगरेषु च॥६७॥

जिस समय होमाग्नि प्रज्वलित हो तथा बादलों की गड़गड़ाहट के साथ बिजली चमकती हो, तो भी अनध्याय करे और दिन रहते हुए भी आकाश में तारे दिखाई दें या

(वर्षा) ऋतु के बिना भी आकाश में बादल दिखाई दे रहे हों, तो भी ग्राम या नगरों में अनध्याय होता है।

धर्मनैपुण्यकामानां पूतिगन्धेन नित्यश:।
अन्त:शवगते ग्रामे वृषलस्य च सन्निधौ॥६८॥

धर्म में निपुणता चाहने वालों को आसपास दुर्गन्धमय वातावरण होने पर अनध्याय रखना चाहिए। यदि गाँव में कोई शव पड़ा हो, तथा शूद्रजाति के पुरुष के समीप भी सदा अनध्याय रखना चाहिए।

अनध्यायो भुज्यमाने समवाये जनस्य च।
उदके मध्यरात्रे च विण्मूत्रे च विवर्जयेत्॥६९॥
उच्छिष्ट: श्राद्धभुक् चैव मनसापि न चिन्तयेत्।
प्रतिगृह्य द्विजो विद्वानेकोद्दिष्टस्य केतनम्॥७०॥
त्र्यहं न कीर्तयेद्ब्रह्म राज्ञो राहोश्च सूतके।

यदि लोगों का समूह भोजन करता हो, तो अनध्याय रखना चाहिए। उसी प्रकार जल में, मध्यरात्रि में, विष्ठा और मूत्र के त्याग करते समय (वेदाध्ययन) अध्ययन वर्जित रखें। उच्छिष्ट और (पितृनिमित्त) श्राद्ध में भोजन करने वाले द्विज को मन से भी (वेद का) चिन्तन नहीं करना चाहिए। विद्वान् द्विज को एकोद्दिष्ट का निमंत्रण प्रतिग्रहण करके राजा और राहु के सूतक में तीन दिन तक वेदाध्ययन या स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।

यावदेकोऽनुदिष्टस्य स्नेहो लेपश्च तिष्ठति॥७१॥
विप्रस्य विपुले देहे तावद्ब्रह्म न कीर्त्तयेत्॥

विप्र के विशाल देह में जब तक एकोद्दिष्टश्राद्ध के निमित्त किया हुआ भोजन थोड़ी सी भी चीकनाहट या गन्ध की स्थिति रखता हो, तब तक ब्रह्म (वेद) का कीर्तन (अध्ययन) नहीं करना चाहिए।

शयान: प्रौढपादश्च कृत्वा वै चावसिक्थकाम्॥७२॥
नाधीयीतामिषं जग्ध्वा सूतकाद्यन्नमेव च।
नीहारे बाणपाते च सन्ध्ययोरुभयोरपि॥७३॥

सोते हुए, पैर ऊँचे रखकर (आसनयुक्त) होकर वेदाभ्यास न करें। जानुओं को वस्त्र से बाँधकर, मांस खाकर तथा सूतकादि के अन्न को खाकर, कुहरा छा जाने पर, बाण गिरने के समय और दोनों सन्ध्या काल में अध्ययन नहीं करना चाहिए।

अमावास्यां चतुर्दश्यां पौर्णमास्यष्टमीषु च।
उपाकर्मणि चोत्सर्गे त्रिरात्रं क्षपणं स्मृतम्॥७४॥

अमावास्या, चतुर्दशी, पूर्णमासी तथा अष्टमी तिथियों में, उपाकर्म संस्कार के समय और उत्सर्ग क्रिया के समय तीन रात्रि तक क्षपण (अनध्याय) कहा गया है।

अष्टकासु त्र्यहोरात्रमृत्वन्तासु च रात्रिषु।
मार्गशीर्षे तथा पौषे माघमासे तथैव च॥७५॥
तिस्रोऽष्टका: समाख्याता: कृष्णपक्षे तु सूरिभि:।
श्लेष्मातकस्य छायायां शाल्मलेर्मधुकस्य च॥७६॥
कदाचिदपि नाध्येयं कोविदारकपित्थयो:।
समानविद्ये च मृते तथा सब्रह्मचारिणि॥७७॥

अष्टका नामक श्राद्ध करम में एक रात-दिन का अनध्याय रहता है। ऋतु की अन्तिम रात्रियों में अनध्याय रखना चाहिए। मार्गशीर्ष, पौष, माघ मास के कृष्णपक्ष में विद्वानों ने तीन अष्टका (श्राद्ध) कही हैं (उस समय अनध्याय रखना चाहिए)। श्लेष्मातक,[1] शाल्मलि[2] और मधुक[3] की छाया में तथा कोविदार[4] और कपित्थ[5] की छाया में कभी भी अध्ययन नहीं करना चाहिए। किसी समान विद्या वाले साहध्यायी (सहपाठी) की मृत्यु हो जाने पर तथा ब्रह्मचारी की मृत्यु होने पर भी अनध्याय होता है।

आचार्ये संस्थिते वापि त्रिरात्रं क्षपणं स्मृतम्।
छिद्राण्येतानि विप्राणां येऽनध्याया: प्रकीर्त्तिता:॥७८॥
हिंसन्ति राक्षसास्तेषु तस्मादेतान्विसर्ज्जयेत्।
नैत्यिके नास्त्यनध्याय: सन्ध्योपासन एव च॥७९॥

आचार्य की मृत्यु होने पर भी तीन रात्रि का अनध्याय कहा गया है। जो उपर अनध्याय कहे गये हैं, ये विप्रो के बारे में छिद्र हैं। इनमें राक्षस प्रहार कर सकते हैं। इसीलिये इनका त्याग कर देना चाहिए। नित्य होने वाले कर्म में और सन्ध्योपासन में कभी भी अनध्याय नहीं होता है।

उपाकर्मणि कर्मान्ते होममन्त्रेषु चैव हि।
एकामृचमथैकं वा यजु: सामाथ वा पुन:॥८०॥
अष्टकाद्यास्वधीयीत मारुते चातिवायति।
अनध्यायस्तु नाङ्गेषु नेतिहासपुराणयो:॥८१॥
न धर्मशास्त्रेष्वन्येषु पर्वाण्येतानि वर्जयेत्।
एष धर्म: समासेन कीर्त्तितो ब्रह्मचारिणाम्॥८२॥

---

1. Cordia myxa Roxb. (Sebasten)
2. Bombax malabarium (Silk cottan tree)
3. Bassia latifolia
4. Bauhinia variageta (Mountain Ebony)
5. Acacia catechu

ब्रह्मणाभिहित: पूर्वमृषीणां भावितात्मनाम्।

उपाकर्म के समय कर्म के अंत में तथा होम के मन्त्रों में अनध्याय नहीं होता। अष्टका श्राद्ध में तथा वायु के वेगपूर्वक चलने पर ऋग्वेद, यजुर्वेद अथवा सामवेद का एक मंत्र, पढ़ा जा सकता है। वेदाङ्गों में तथा इतिहास-पुराणों में तथा अन्य धर्मशास्त्रों में अनध्याय नहीं होता है परन्तु पर्वों के दिन इनका अध्ययन वर्जित रखना चाहिए। ब्रह्मचारियों के इस धर्म को मैंने संक्षेप में कहा है। इसे पहले ब्रह्माजी ने शुद्धात्मा ऋषियों से कहा था।

योऽन्यत्र कुरुते यत्नमनधीत्य श्रुतिं द्विजा:॥८३॥
स संमूढो न सम्भाष्यो वेदबाह्यो द्विजातिभि:।
न वेदपाठमात्रेण सन्तुष्टो वै द्विजोत्तमा:॥८४॥
एवमाचारहीनस्तु पङ्के गौरिव सीदति।
योऽधीत्य विधिवद्वेदं वेदार्थं न विचारयेत्॥८५॥
स चान्य: शूद्रकल्पस्तु पदार्थं न प्रपद्यते।

हे द्विजो! जो वेदाध्ययन न करके अन्यत्र (अन्य शास्त्रों में ज्ञान प्राप्ति का) यत्न किया करता है, वह अतिशय मूढ होता है, उस वेदबाह्य व्यक्ति के साथ ब्राह्मणों को बातचीत भी नहीं करनी चाहिए। और भी हे ब्राह्मणो! केवल वेदपाठमात्र से संतुष्ट नहीं होना चाहिए। यदि वेदाध्यायी ब्राह्मण वेदोक्त सदाचारों का पालन नहीं करता है, तो वह कीचड़ में फंसी हुई गौ के समान दु:खी होता है। जो विधिपूर्वक वेदाध्ययन करके भी वेद के अर्थ पर विचार नहीं करता, उसका संपूर्ण वंश शूद्रतुल्य माना जाता है और वह दान लेने की योग्यता नहीं रखता है।

यदि चात्यन्तिकं वासं कर्तुमिच्छति वै गुरौ॥८६॥
युक्त: परिचरेदेनमाशरीराभिघातनात्।
गत्वा वनं वा विधिवज्जुहुयाज्जातवेदसम्॥८७॥
अभ्यसेत्स तदा नित्यं ब्रह्मनिष्ठ: समाहित:।
सावित्रीं शतरुद्रीयं वेदाङ्गानि विशेषत:।
अभ्यसेत्सततं युक्तो भस्मस्नानपरायण:॥८८॥

यदि कोई द्विज मरणपर्यन्त गुरुगृह में ही वास करने की इच्छा करता हो, तो उस निष्ठावान् ब्रह्मचारी को आजीवन एकाग्रचित्त होकर गुरु की सेवा करनी चाहिए। अथवा वन में जाकर विधिपूर्वक अग्नि में हवन करते हुए प्रतिदिन ब्रह्म-परमात्मा में निष्ठवान् और एकाग्रचित्त होकर वेदाभ्यास करना चाहिए और पूरे मनोयोग से गायत्री, शतरुद्रीय और वेदाङ्ग का विशेषरूप से अभ्यास करते हुए भस्म लगाकर ही स्नान परायण रहना चाहिए।

एतद्विधानं परमं पुराणं
वेदागमे सम्यगिहेरितञ्च।
पुरा महर्षिप्रवरानुपृष्ट:
स्वायम्भुवो यन्मनुराह देव:॥८९॥

वेदज्ञान की प्राप्ति में पूर्वोक्त यह उत्कृष्ट विधान पुरातन है, जिसे मैंने आप लोगों को सम्यक् बता दिया है। प्राचीन काल में देव स्वायम्भुव मनु ने श्रेष्ठ ऋषियों द्वारा पूछे जाने पर यह बताया था।

एवमीश्वरसमर्पितान्तरो योऽनुतिष्ठति विधिं विधानवित्।
मोहजालमपहाय सोऽमृतं याति तत्पदमनामयं शिवम्॥९०

ईश्वर में आत्मसमर्पण कर उपर्युक्त प्रकार से विधि विधानों का ज्ञाता जो मनुष्य इस उस क्रिया के अनुसार ही आचरण करता है, वह संसार के माया-मोह को त्याग कर निरामय (समग्र रोगो या दोषों से रहित), परम-कल्याणकारी मोक्ष को प्राप्त करता है।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासूपनिषत्सु
ब्रह्मचारिधर्मनिरूपणं नाम चतुर्दशोऽध्याय:॥१४॥

पञ्चदशोऽध्याय:

(व्यासगीता-ब्रह्मचारियों के गार्हस्थ्यधर्म)

व्यास उवाच

वेदं वेदौ तथा वेदान्विन्द्याद्वा चतुरो द्विजा:।
अधीत्य चाभिगम्यार्थं तत: स्नायाद्द्विजोत्तमा:॥१॥

श्रीव्यासदेव ने कहा— हे द्विजगण! हरकोई द्विज को एक वेद, दो वेद अथवा चारों ही वेदों को प्राप्त करना चाहिए। इन वेदों का अध्ययन करके और इनके अर्थ को जानकर पुन: ब्रह्मचारी को (स्वाध्याय का समाप्ति सूचक) स्नान करना चाहिए।

गुरवे तु धनं दत्त्वा स्नायीत तदनुज्ञया।
चीर्णव्रतोऽथ युक्तात्मा स शक्त: स्नातुमर्हति॥२॥

इसके बाद अपने गुरु देव को (दक्षिणानिमित्त) धन देकर उनकी आज्ञा से ही स्नान करना चाहिए। जिसने (ब्रह्मचर्य) व्रत का अनुष्ठान किया है, वह युक्तात्मा होकर शक्तिसम्पन्न होता है और स्नान (समावर्तन) करने की योग्यता को प्राप्त करता है।

वैणवीं धारयेद्यष्टिमन्तर्वासं तथोत्तरम्।
यज्ञोपवीतद्वितयं सोदकञ्च कमण्डलुम्॥ ३॥

इसके पश्चात् उसे बाँस का दण्ड धारण करना चाहिए। उसके बाद अन्तर्वास (कौपीन) और उत्तरीय (धोती आदि) वस्त्र, दो यज्ञोपवीत और जल के सहित एक कमण्डलु धारण करना चाहिए।

छत्रं चोष्णीषममलं पादुके चाप्युपानहौ।
रौक्मे च कुण्डले वेदं व्युप्तकेशनखः शुचिः॥ ४॥
स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्बहिर्माल्यं न धारयेत्।
अन्यत्र काञ्चनाद्विप्रः न रक्तां बिभृयात्स्रजम्॥ ५॥

इसके अतिरिक्त एक छत्र, स्वच्छ पगडी, पादुका और सुवर्ण के दो कुण्डल धारण करने चाहिए। वेद उसके पास हो। केश तथा नख काटकर पवित्र बनें। स्वाध्याय में नित्य ही युक्त रहे तथा बाहरी भाग में पुष्पमाला को धारण न करें। विप्र को सुवर्ण की माला के अतिरिक्त अन्य रक्तवर्ण की पुष्पमाला धारण नहीं करनी चाहिए।

शुक्लाम्बरधरो नित्यं सुगन्धः प्रियदर्शनः।
न जीर्णमलवद्वासा भवेद्वै वैभवे सति॥ ६॥
न रक्तमुल्वणञ्चान्यधृतं वासो न कुण्डिकाम्।
नोपानहौ स्रजं चाथ पादुके न प्रयोजयेत्॥ ७॥

वह श्वेत वस्त्र धारण करने वाला हो, नित्य सुगन्ध से युक्त और लोगों के लिए प्रियदर्शी हो। वैभवयुक्त होने पर फटे और मैले वस्त्र कभी धारण न करें। अत्यधिक गाढ़े लाल रंग का और दूसरे का पहना हुआ वस्त्र तथा कुण्डिका (पात्र), जूता, माला और पादुका का भी प्रयोग न करें।

उपवीतकरान् दर्भान्तथा कृष्णाजिनानि च।
नापसव्यं परीदध्याद्वासो न विकृतञ्च यत्॥ ८॥

यज्ञोपवीतरूप में निर्मित कुशाओं को तथा मृगचर्म को अपसव्य अर्थात् उलटा (दाहिने कन्धे पर) धारण नहीं करना चाहिए और विकृत वेषभूषा भी पहननी नहीं चाहिए।

आहरेद्विधिवद्दारान् सदृशानात्मनः शुभान्।
रूपलक्षणसंयुक्तानयोनिदोषविवर्जितान्॥ ९॥
अमातृगोत्रप्रभवामसमानर्षिगोत्रजाम्।
आहरेद्ब्राह्मणो भार्यां शीलशौचसमन्विताम्॥ १०॥

इसके बाद वह रूपलक्षण से सम्पन्न तथा योनि या गर्भाशय के दोष से रहित अपने ही समान (वर्णवाली) शुभ स्त्री के साथ विधिपूर्वक (गुरु की आज्ञा से) विवाह करे। वह स्त्री माता के गोत्र में उत्पन्न हुई न हो तथा ऋषि गोत्र भी समान न हो। इस प्रकार ब्राह्मण को शील गुण और पवित्रता से युक्त भार्या से विवाह करना चाहिए।

ऋतुकालाभिगामी स्याद्यावत्पुत्रोऽभिजायते।
वर्जयेत्प्रतिषिद्धानि दिनानि तु प्रयत्नतः॥ ११॥

जब तक उससे पुत्र की उत्पत्ति हो, तब तक ही ऋतुकाल में स्त्री के साथ अभिगमन करना चाहिए। (परन्तु) उसमें भी निषिद्ध दिनों का प्रयत्नपूर्वक त्याग करना चाहिए।

षष्ठ्यष्टमीं पञ्चदशीं द्वादशीं च चतुर्दशीम्।
ब्रह्मचारी भवेन्नित्यं ब्राह्मणः संयतेन्द्रियः॥ १२॥

वे दिन हैं— षष्ठी, अष्टमी, द्वादशी, चतुर्दशी, पूर्णिमा तथा अमावास्या। ब्राह्मण संयतेन्द्रिय होकर सदा (उन दिनों में) ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए।

आदधीतावसथ्याग्निं जुहुयाज्जातवेदसम्।
व्रतानि स्नातको नित्यं पावनानि च पालयेत्॥ १३॥

(गृहस्थ बना वह) स्नातक आवसथ्य अग्नि को स्थापित करके उसमें नित्य होम करे और पवित्र व्रतों का पालन करे।

वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः।
अकुर्वाणः पतत्याशु नरकानतिभीषणान्॥ १४॥

वेदों द्वारा निर्दिष्ट अपने कर्मों को आलस्य त्यागकर सदा करते रहना चाहिए। यदि वे इन कर्मों को नहीं करते हैं, तो शीघ्र ही (मृत्यु पश्चात्) भीषण नरकों में गिर जाते हैं।

अभ्यसेत्प्रयतो वेदं महायज्ञांश्च भावयेत्।
कुर्याद् गृह्याणि कर्माणि सन्ध्योपासनमेव च॥ १५॥

उसे प्रयत्नपूर्वक वेदों का अभ्यास करते रहना चाहिए और महायज्ञों का भी सम्पादन करे। इसी प्रकार अन्य गृह्यसूत्रोक्त कर्मों को तथा सन्ध्योपासना आदि नित्य कर्म भी करता रहे।

सख्यं समाधिकैः कुर्यादर्चयेदीश्वरं सदा।
दैवतान्यधिगच्छेत कुर्याद्भार्याविभूषणम्॥ १६॥

वह अपने समान या अधिक श्रेष्ठ व्यक्ति से साथ मित्रता करे और सदा ईश्वर की पूजा करे। देवों में भक्तिभाव रखे और पत्नी को आभूषण से सुसज्जित करें।

न धर्मं ख्यापयेद्विद्वान् न पापं गूहयेदपि।
कुर्वीतात्महितं नित्यं सर्वभूतानुकम्पनम्॥ १७॥

अपने द्वारा संपादित धर्म को किसी से न कहे और अपने पाप को भी न छिपाये। अपने आत्महित को करे और सदा प्राणियों पर दया रखे।

वयसः कर्मणोऽर्थस्य श्रुतस्याभिजनस्य च।
वेदवाग्बुद्धिसारूप्यमाचरेद्विहरेत्सदा॥ १८॥

वह सदा अपनी आयु, कर्म, सम्पत्ति, शास्त्रज्ञान और कुल की मर्यादा के अनुसार वेद, वाणी और बुद्धि को एकरूप करके आचरण करे और सदा जीवन यापन करे।

श्रुतिस्मृत्युदितः सम्यक् साधुभिर्यश्च सेवितः।
तमाचारं निषेवेत नेहेतान्यत्र कर्हिचित्॥ १९॥

श्रुति (वेद) और स्मृति (धर्मशास्त्र) द्वारा अनुमोदित तथा साधु पुरुषों द्वारा सेवित आचारों का ही सेवन करना चाहिए, इसके अतिरिक्त दूसरों के आचार-विचार का सेवन कभी न करे।

येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः।
तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन् तरिष्यति॥ २०॥

(क्योंकि कहा भी है कि) जिस (शास्त्रोक्त) मार्ग से माता-पिता गये हों और जिस मार्ग से दादा आदि गये हों, सज्जनों के उस मार्ग पर ही जाना चाहिए। उस मार्ग से जाते हुए वह संसार से तर जायेगा अर्थात् मुक्त हो जाता है।

नित्यं स्वाध्यायशीलः स्यान्नित्यं यज्ञोपवीतवान्।
सत्यवादी जितक्रोधो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥ २१॥

नित्य स्वाध्यायशील हो और सदा यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए। जो सत्यवादी है तथा जिसने क्रोध को जीत लिया है, वह ब्रह्मरूप होने की योग्यता रखता है।

सन्ध्यास्नानपरो नित्यं ब्रह्मयज्ञपरायणः।
अनसूयो मृदुर्दान्तो गृहस्थः प्रेत्य वर्द्धते॥ २२॥

नित्य सन्ध्या-स्नान करने वाला, ब्रह्मयज्ञ का अनुष्ठान करने वाला, ईर्ष्या न करने वाला, मृदु-स्वभाव वाला और जितेन्द्रिय गृहस्थ परलोक में अभ्युदय प्राप्त करता है।

वीतरागभयक्रोधो लोभमोहविवर्जितः।
सावित्रीजापनिरतः श्राद्धकृन्मुच्यते गृही॥ २३॥

राग, भय और क्रोध से रहित तथा लोभ-मोह से वर्जित, गायत्री का जप करने में तत्पर तथा श्राद्ध करने वाला गृहस्थ मुक्त हो जाता है।

मातापित्रोर्हिते युक्तो गोब्राह्मणहिते रतः।
दान्तो यज्वा देवभक्तो ब्रह्मलोके महीयते॥ २४॥

जो माता-पिता का हित करने में तत्पर, गौ तथा ब्राह्मण का हित लगा रहता है, दाता, यजनशील, देवों में भक्ति रखने वाला है, वह ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित होता है।

त्रिवर्गसेवी सततं देवतानाञ्च पूजनम्।
कुर्यादहरहर्नित्यं नमस्येत् प्रयतः सुरान्॥ २५॥

गृहस्थ को सतत त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) का सेवन करना चाहिए और प्रतिदिन नियमपूर्वक देवताओं को नमस्कार करे।

[1]विचारशीलः सततं क्षमायुक्तो दयालुकः।
गृहस्थस्तु समाख्यातो न गृहेण गृही भवेत्॥ २६॥

जो पुरुष सदा विचारशील, क्षमावान् और दयालु होता हो वही गृहस्थ कहा जाता है, केवल घर बनाकर उसमें रहने मात्र से गृहस्थ नहीं हो जाता।

क्षमा दया च विज्ञानं सत्यं चैव दमः शमः।
अध्यात्मनिरतज्ञानमेतद्ब्राह्मणलक्षणम्॥ २७॥
एतस्मान्न प्रमाद्येत विशेषेण द्विजोत्तमाः।
यथाशक्ति चरेत्कर्म निन्दितानि विवर्ज्जयेत्॥ २८॥

क्षमा, दया, अनुभवपूर्वक ज्ञान, सत्य, दम (बाह्येन्द्रियों को वश करना), शम (अभ्यन्तर-इन्द्रियों को वश करना) और अध्यात्मज्ञान में निरत होना ही ब्राह्मण का लक्षण है। श्रेष्ठ ब्राह्मणों को इनसे प्रमाद नहीं करना चाहिए और यथाशक्ति कर्म करना चाहिए और जो निन्दित कर्म हैं, उनका त्याग करना चाहिए।

विधूय मोहकलिलं लब्ध्वा योगमनुत्तमम्।
गृहस्थो मुच्यते बन्धात्तत्र कार्या विचारणा॥ २९॥

मोहरूप पाप को धोकर और उत्तम योग को प्राप्त कर गृहस्थ बन्धन से मुक्त हो जाता है, इस विषय में कोई विचार (तर्क) नहीं करना चाहिए।

विगर्हातिक्रमाक्षेपहिंसाबन्धवधात्मनाम्।
अन्यमन्युसमुत्थानां दोषाणां मर्षणं क्षमा॥ ३०॥

क्रोधवश दूसरे के द्वारा की गई निन्दा, अनादर, दोषारोपण, हिंसा, बंधन और ताड़नरूप दोषों को सहन करना ही क्षमा है।

स्वदुःखेष्विव कारुण्यं परदुःखेषु सौहृदात्।
दयेति मुनयः प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य साधनम्॥ ३१॥

---

1. विभागशील पाठ मानने से अर्थ होगा— अपनी संपत्ति का शास्त्रोक्त विधि से विभाग करने वाला।

स्वयं को जो दु:ख होता है, वैसा ही दूसरों के दु:ख में सौहार्दवश करुणा प्रकट करना ही दया है, ऐसा मुनियों ने कहा है। यही (दया) साक्षात् धर्म का साधन है।

चतुर्दशानां विद्यानां धारणं हि यथार्थतः।
विज्ञानमिति तद्विद्याद्यत्र धर्मो विवर्द्धते॥ ३२॥

चौदह विद्याओं (चार वेद, छः वेदाङ्ग, पुराण, न्यायशास्त्र, मीमांसा और धर्मशास्त्र) को यथार्थरूप से धारण करना ही विज्ञान जानना चाहिए। इसके द्वारा धर्म की वृद्धि होती है।

अधीत्य विधिवद्वेदानर्थञ्चैवोपलभ्य तु।
धर्मकार्यान्निवृत्तश्चेन्न तद्विज्ञानमिष्यते॥ ३३॥

विधिपूर्वक वेदों का अध्ययन करके तथा उसके अर्थ को जानकर भी जो धर्मकार्यों से विमुख रहता है, उसका वह ज्ञान विज्ञान इच्छा करने योग्य नहीं है।

सत्येन लोकाञ्जयति सत्यं तत्परमं पदम्।
यथाभूतप्रवादं तु सत्यमाहुर्मनीषिणः॥ ३४॥

वह सत्य से ही लोकों को जीत लेता है, वही सत्य परम पद है। जो जैसा है, उसका उसी रूप में वर्णन करना सत्य है, ऐसा मनीषियों ने कहा है।

दमः शरीरोपरमः शमः प्रज्ञाप्रसादजः।
अध्यात्ममक्षरं विद्याद्यत्र गत्वा न शोचति॥ ३५॥

शरीर का उपरम (चेष्टाओं की विश्रान्ति या इन्द्रियनिग्रह) दम है और शम (मन का निग्रह) बुद्धि की प्रसन्नता से उत्पन्न होता है तथा अध्यात्म को ही अविनाशी परमतत्त्व जानना चाहिए, जहां जाकर मनुष्य शोक नहीं करता।

यया स देवो भगवान्विद्यया वेद्यते परः।
साक्षाद्देवो महादेवस्तज्ज्ञानमिति कीर्तितम्॥ ३६॥

जिस विद्या के द्वारा परम देव भगवान् साक्षात् महादेव का ज्ञान होता है, वही (वस्तुतः) 'ज्ञान' कहा जाता है।

तन्निष्ठस्तत्परो विद्वान्नित्यमक्रोधनः शुचिः।
महायज्ञपरो विद्वान् लभते तदनुत्तमम्[1]॥ ३७॥

उनमें सदा निष्ठा रखने वाला, तत्परायण, क्रोध न करने वाला, पवित्र और महायज्ञपरायण विद्वान् ही उस उत्तम ज्ञान को प्राप्त करता है।

1. विद्वान् भवेत्तदनुत्तमम्' पाठ मिलता है, जो अनुचित जान पड़ता है।

धर्मस्यायतनं यत्नाच्छरीरं प्रतिपालयेत्।
न च देहं विना रुद्रो विद्यते पुरुषैः परः॥ ३८॥

धर्म के आयतनरूप उस शरीर का यत्नपूर्वक पालन करना चाहिए। बिना देह के मनुष्य परमात्मा रुद्र को नहीं जान सकते।

नित्यधर्मार्थकामेषु युज्येत नियतो द्विजः।
न धर्मवर्जितं काममर्थं वा मनसा स्मरेत्॥ ३९॥

संयतचित्त होकर सदा द्विज को धर्म, अर्थ और काम में संयुक्त रहना चाहिए। परन्तु धर्म से रहित काम या अर्थ का कदापि मन से भी स्मरण न करे।

सीदन्नपि हि धर्मेण न त्वधर्मं समाचरेत्।
धर्मो हि भगवान्देवो गतिः सर्वेषु जन्तुषु॥ ४०॥

धर्माचरण करते हुए कभी दु:ख भी उठाना पड़े तो भी अधर्म को ग्रहण न करें। धर्म ही देवस्वरूप भगवान् और सब प्राणियों के लिए गतिरूप है।

भूतानां प्रियकारी स्यान्न परद्रोहकर्मधीः।
न वेददेवतानिन्दां कुर्यात्तैश्च न संवदेत्॥ ४१॥

प्राणियों का सदा प्रिय करने वाला होना चाहिए और दूसरों के प्रति द्रोहबुद्धि वाला नहीं होना चाहिए। वेद तथा देवताओं की निन्दा नहीं करनी चाहिए और निन्दा करने वालों के साथ बोलना भी नहीं चाहिए।

यस्त्विमं नियतं विप्रो धर्माध्यायं पठेच्छुचिः।
अध्यापयेच्छ्रावयेद्वा ब्रह्मलोके महीयते॥ ४२॥

जो विप्र नियमपूर्वक पवित्र होकर इस धर्माध्याय को पढ़ता है, (दूसरे को) पढ़ाता है अथवा सुनाता है, वह ब्रह्मलोक में पूजित होता है।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे ऋषिव्याससंवादे ब्रह्मचारिणां गार्हस्थ्यधर्मनिरूपणं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥

षोडशोऽध्यायः

(गार्हस्थ्यधर्म-निरूपण)

व्यास उवाच

न हिंस्यात्सर्वभूतानि नानृतं वा वदेत्क्वचित्।
नाहितं नाप्रियं ब्रूयान्न स्तेनः स्यात्कथञ्चन॥ १॥

व्यास बोले— किसी भी प्राणी की हिंसा न करें और कभी भी असत्य न बोले। अहितकारी और अप्रिय लगने वाला भी न बोले और कभी भी चोरी न करें।

तृणं वा यदि वा शाकं मृदं वा जलमेव च।
परस्यापहरञ्जन्तुर्नरकं प्रतिपद्यते॥ २॥

कोई भी व्यक्ति दूसरे की घास, शाक, मिट्टी तथा जल को चुराता है तो वह प्राणी नरक को प्राप्त करता है।

न राज्ञः प्रतिगृह्णीयान्न शूद्रात्पतितादपि।
नान्यस्माद्याचकत्वञ्च निन्दिताद्वर्जयेद्बुधः॥ ३॥

(कोई भी ब्राह्मण) राजा से दान ग्रहण न करें तथा शूद्र और (वर्णाश्रमधर्म से) पतित व्यक्ति से भी न लें। अन्य निन्दित व्यक्तियों से भी बुद्धिमान् पुरुष को याचना नहीं करनी चाहिए।

नित्यं याचनको न स्यात्पुनस्तत्रैव याचयेत्।
प्राणानपहरत्येष याचकस्तस्य दुर्मतिः॥ ४॥

प्रतिदिन दान मांगने वाला नहीं होना चाहिए और एक ही व्यक्ति से बार-बार नहीं मांगना चाहिए। ऐसी दुर्बुद्धि वाला याचक दाता के प्राणों को ही हर लेता है।

न देवद्रव्यहारी स्याद्विशेषेण द्विजोत्तमः।
ब्रह्मस्वं वा नापहरेदापद्यपि कदाचन॥ ५॥
न विषं विषमित्याहुर्ब्रह्मस्वं विषमुच्यते।
देवस्वं चापि यत्नेन सदा परिहरेत्ततः॥ ६॥

विशेषरूप से श्रेष्ठ ब्राह्मण को देवताओं के निमित्त रखे द्रव्य को नहीं चुराना चाहिए। ब्राह्मण के धन को तो आपत्तिकाल में भी चुराना नहीं चाहिए; क्योंकि विष को ही विष नहीं कहा जाता, अपितु ब्राह्मण की सम्पत्ति या द्रव्य ही विष कहलाता है। इसी कारण देवद्रव्य का भी यत्नपूर्वक सदा त्याग कर देना चाहिए।

पुष्पे शाकोदके काष्ठे तथा मूले तृणे फले।
अदत्तादानमस्तेयं मनुः प्राह प्रजापतिः॥ ७॥

पुष्प, शाक, जल, काष्ठ तथा तृण, मूल और फल को बिना दिये हुए जो ग्रहण नहीं करता है, वह अस्तेय है, (बिना दिये ले लेना चोरी है) ऐसा प्रजापति मनु ने कहा है।

ग्रहीतव्यानि पुष्पाणि देवार्चनविधौ द्विजाः।
नैकस्मादेव नियतमननुज्ञाय केवलम्॥ ८॥

द्विज देवताओं की पूजा के लिए पुष्प ग्रहण कर सकते हैं परन्तु उन पुष्पों को भी प्रतिदिन केवल एक ही स्थान से बिना (स्वामी की) अनुमति के ग्रहण नहीं करना चाहिए।

तृणं काष्ठं फलं पुष्पं प्रकाशं वै हरेद्बुधः।
धर्मार्थं केवलं ग्राह्यं ह्यन्यथा पतितो भवेत्॥ ९॥

उसी प्रकार विद्वान् पुरुष को चाहिए कि तृण, काष्ठ, फल और पुष्प को प्रकटरूप में अर्थात् किसी की मौजूदगी (या मालिक की अनुमति से) केवल धर्मकार्य के लिए ग्रहण करे, अन्यथा वह नरक में गिरता है अथवा नीतिमार्ग से पतित हुआ माना जाता है।

तिलमुद्गयवादीनां मुष्टिर्ग्राह्या पथि स्थितैः।
क्षुधार्तैर्नान्यथा विप्रा धर्मविद्भिरिति स्थितिः॥ १०॥

(फिर भी) हे विप्रो! धर्मवेत्ताओं ने यह मर्यादा स्थित की है कि मार्ग में चलते समय (कभी) भूख से पीडित होने पर मुट्ठीभर तिल, मूँग और जौ (मालिक से बिना पूछे) ग्रहण किया जा सकता है, अन्यथा नहीं।

न धर्मस्यापदेशेन पापं कृत्वा व्रतं चरेत्।
व्रतेन पापं प्रच्छाद्य कुर्वन् स्त्रीशूद्रलम्भनम्॥ ११॥
प्रेत्येह चेदृशो विप्रो गर्ह्यते ब्रह्मवादिभिः।
छद्मना चरितं यच्च व्रतं रक्षांसि गच्छति॥ १२॥

वैसे ही धर्म के बहाने से (जानबूझ कर) पाप करके (प्रायश्चित्तरूप) व्रतादि का अनुष्ठान भी नहीं करना चाहिए। व्रत के द्वारा पाप को छिपाकर वह ब्राह्मण स्त्री या शूद्र का जन्म लेकर इस लोक में भी ब्रह्मवादियों द्वारा निन्दित होता है। छद्मरूप (कपट) से किया हुआ उसका व्रत का फल राक्षसों को जाता है अर्थात् राक्षस ही उसका भोग करते हैं।

अलिङ्गी लिङ्गिवेषेण यो वृत्तिमुपजीवति।
स लिङ्गिनां हरेदेनस्तिर्यग्योनौ च जायते॥ १३॥

जो अलिङ्गी अर्थात् साधु-संन्यासी के विशेष चिह्नों से रहित होते हुए भी जो (ढोंगपूर्वक) लिङ्गी अर्थात् साधु-संन्यासी के वेष को धारण करके उससे अपनी आजीविका चलाता है, वह लिङ्गधारियों के पापों को स्वयं हर लेता है (उसका भागी बनता है) और (अगले जन्म में) पक्षियों की योनि में उत्पन्न होता है।

वैडालव्रतिनः[1] पापा लोके धर्मविनाशकाः।
सद्यः पतन्ति पापेन कर्मणस्तस्य तत्फलम्॥ १४॥

---

1. वैडालव्रती से तात्पर्य है— बिल्ली के समान व्रतधारी। बिल्ली चूहे को पकडकर खाने लिए ध्यानमग्न होकर चुपचाप बैठी रहती है और अपने पापाचार का भाव प्रकट होने नहीं देती, वैसे ही दुराचारी का भी व्रत होता है।

जो इस लोक में वैडाल के समान व्रत रखने वाले पापाचारी हैं, वे (पाखण्डी) धर्म के विनाशक होते हैं और शीघ्र ही पाप से (नरक में) गिर जाते हैं। उसके कर्मों का यही फल है।

पाखण्डिनो विकर्मस्थान्वामाचारांस्तथैव च।
पञ्चरात्रान् पाशुपतान् वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत्॥ १५॥

पाखण्डी (ढोंगी), (शास्त्र) विपरीत कर्म करने वाले, वामाचारी (विपरीत आचरण करने वाले), पाञ्चरात्रसिद्धान्ती और पाशुपत मत के अनुयायी को वाणीमात्र से भी सत्कार नहीं देना चाहिए।

वेदनिन्दारतान् मर्त्यान्देवनिन्दारतांस्तथा॥
द्विजनिन्दारतांश्चैव मनसापि न चिन्तयेत्॥ १६॥
याजनं योनिसम्बन्धं सहवासञ्च भाषणम्।
कुर्वाणः पतते जन्तुस्तस्माद्यत्नेन वर्जयेत्॥ १७॥

वेद की निन्दा में तत्पर तथा देवों की निन्दा में आनन्द रखने वाले और ब्राह्मणों की निन्दा में आसक्त मनुष्यों का मन से भी चिन्तन नहीं करना चाहिए। इनका यज्ञ कराने, उनसे विवाह-संबन्ध रखने, उनके साथ वास करने और उनसे वार्तालाप करने से भी प्राणी पतित हो जाता है। इसलिए यत्नपूर्वक इनका त्याग करना चाहिए अर्थात् उनके साथ सभी व्यवहार त्याग देने चाहिए।

देवद्रोहाद्गुरुद्रोहः कोटिकोटिगुणाधिकः।
ज्ञानापवादो नास्तिक्यं तस्मात्कोटिगुणाधिकम्॥ १८॥

देवद्रोह करने से गुरुद्रोह करना करोडो गुना अधिक (दोषपूर्ण) है। ज्ञान की निन्दा करना और नास्तिकता उससे भी करोड गुना अधिक खराब है।

गोभिश्च दैवतैर्विप्रैः कृष्या राजोपसेवया॥
कुलान्यकुलतां यान्ति यानि हीनानि धर्मतः॥ १९॥

गौ-बैल द्वारा और देवताओं या ब्राह्मणों के निमित्त कृषिकर्म करने तथा राजा की सेवा द्वारा (जीविकोपार्जक व्यक्ति के) सारे कुल अकुलता को प्राप्त हो जाते हैं और ये सब धर्म से भी हीनता को प्राप्त होते हैं।

कुविवाहैः क्रियालोपैर्वेदानध्ययनेन च।
कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च॥ २०॥

निन्द्य से विवाह करने से, धार्मिक क्रियाओं का लोप होने से और वेदों के अनध्याय से तथा ब्राह्मणों का अपमान करने से भी (दोषयुक्त होकर) सभी उच्च कुल निम्नता को प्राप्त होते हैं।

अनृतात्पारदार्याच्च तथाऽभक्ष्यस्य भक्षणात्।
अश्रौतधर्माचरणात्क्षिप्रं नश्यति वै कुलम्॥ २१॥

असत्य भाषण करने से, दूसरे की स्त्री से सम्बन्ध रखने से, अभक्ष्य (मांसादि) पदार्थों का भक्षण करने से तथा अवैदिक धर्म का आचरण करने से निश्चय ही कुल शीघ्र नष्ट हो जाता है।

अश्रोत्रियेषु वै दानाद्वृषलेषु तथैव च।
विहिताचारहीनेषु क्षिप्रं नश्यति वै कुलम्॥ २२॥

उसी प्रकार अश्रोत्रियों को, शूद्रों को तथा शास्त्रविहित आचारों से हीन पुरुषों को दान देने से (उच्च जाति का) कुल भी अवश्य नष्ट हो जाता है।

नाधार्मिकैर्वृते ग्रामे न व्याधिबहुले भृशम्।
न शूद्रराज्ये निवसेन्न पाखण्डजनैर्वृते॥ २३॥

अधार्मिकों से व्याप्त तथा अनेक प्रकार की व्याधियों से अत्यन्त संकुल ग्राम में और पाखण्डी लोगों से घिरे हुए शूद्र के राज्य में निवास नहीं करना चाहिए।

हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये पूर्वपश्चिमयोः शुभम्।
मुक्त्वा समुद्रयोर्देशं नान्यत्र निवसेद्द्विजः॥ २४॥
कृष्णो वा यत्र चरति मृगो नित्यं स्वभावतः।
पुण्याश्च विश्रुता नद्यस्तत्र वा निवसेद्द्विजः॥ २५॥

हिमवान् और विन्ध्याचल के मध्य का शुभ प्रदेश और पूर्व तथा पश्चिम के उत्तम समुद्री भागों को छोडकर अन्यत्र कहीं पर भी द्विज को वास नहीं करना चाहिए अथवा उस स्थान पर जहाँ कृष्णमृग स्वच्छन्दतापूर्वक विचरते हों तथा जहाँ प्रसिद्ध पवित्र नदियाँ बहती हों, वहीं पर द्विज को निवास करना चाहिए।

अर्द्धक्रोशान्नदीकूलं वर्जयित्वा द्विजोत्तमः।
नान्यत्र निवसेत्पुण्यां नान्त्यजग्रामसन्निधौ॥ २६॥

अथवा प्रत्येक उत्तम द्विज को किसी भी नदी के किनारे आधा मील पवित्र प्रदेश को छोडकर अन्यत्र कहीं भी निवास नहीं करना चाहिए और निम्नवर्णों के ग्राम के समीप भी निवास नहीं करना चाहिए।

न संवसेच्च पतितैर्न चण्डालैर्न पुक्कसैः[1]।
न मूर्खैर्नावलिप्तैश्च नान्त्यैर्नान्त्यावसायिभिः॥ २७॥

उसी प्रकार धर्म से पतित लोगों के साथ, चांडालों के साथ, पुक्कस जाति के लोगों के साथ, मूर्खों के साथ, घमंडियों के साथ, निम्न जाति के लोगों के साथ तथा उनके साथ रहने वालों के साथ भी (द्विज को) निवास नहीं करना चाहिए।

एकशय्यासनं पंक्तिर्भाण्डपक्वान्नमिश्रणम्।
याजनाध्यापनं योनिस्तथैव सहभोजनम्॥ २८॥
सहाध्यायस्तु दशमः सहयाजनमेव च।
एकादशैते निर्दिष्टा दोषाः साङ्कर्यसंज्ञिताः॥ २९॥

(उन लोगों के साथ) एक शय्या पर सोना और बैठना, एक पंक्ति में भोजन करना, उनके बर्तनों में खाना, पके हुए अन्न को मिश्रित करना, उनका यज्ञ करना, उनको पढ़ाना, उनके साथ विवाहादि करना, एक साथ भोजन करना, एक साथ पढ़ना और एक साथ यज्ञ करना— ये एकादश दोष सांकर्य नाम वाले कहे गये हैं अर्थात् वर्णसंकरता के कारण होने वाले दोष हैं।

समीपे वा व्यवस्थानात्पापं संक्रमते नृणाम्।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन संकरं वर्जयेद्बुधः॥ ३०॥
एकपंक्त्युपविष्टा ये न स्पृशन्ति परस्परम्।
भस्मना कृतमर्यादा न तेषां संकरो भवेत्॥ ३१॥

(इतना ही नहीं) ऐसे लोगों के समीप उठने-बैठने से भी उनका पाप संक्रमित हो जाता है, इसलिए बुद्धिमान् को सब प्रकार से प्रयत्नपूर्वक वर्णसंकरों का त्याग करना चाहिए। परन्तु कुछ लोग जो उनके साथ एक पंक्ति में बैठे हों और परस्पर एक-दूसरे को स्पर्श न करते हों तथा भस्म द्वारा (रेखा से) जिसने सीमा बाँध दी हो, उनको सांकर्य दोष नहीं लगता।

अग्निना भस्मना चैव सलिलेन विशेषतः।
द्वारेण स्तम्भमार्गेण षड्भिः पंक्तिर्विभिद्यते॥ ३२॥

इस प्रकार अग्नि से, भस्म से, विशेषतः जल के प्रोक्षण से, द्वार खड़ा कर देने से, स्तम्भ लगा देने से तथा मार्ग में अवरोध खड़ा कर देने से— इन छः प्रकार की क्रियाओं से पंक्ति का भेदन हो जाता है।

न कुर्याद्दुःखवैराणि विवादं चैव पैशुनम्।
परक्षेत्रे गां चरन्तीं न चाचक्षति कस्यचित्॥ ३३॥

किसी से भी अकारण शत्रुता, झगड़ा और चुगलखोरी नहीं करनी चाहिए। दूसरे के खेत में चरती हुई गौ के बारे में किसी को नहीं कहना चाहिए।

न संवसेत्सूतकिना न कञ्चिन्मर्मणि स्पृशेत्।
न सूर्यपरिवेषं वा नेन्द्रचापं शवाग्निकम्॥ ३४॥
परस्मै कथयेद्विद्वाञ्छशिनं वा कदाचन।
न कुर्याद्बहुभिः सार्द्धं विरोधं वा कदाचन॥ ३५॥

किसी भी सूतकी के साथ नहीं सोना चाहिए। किसी को भी मर्मस्थान में स्पर्श न करें। सूर्य के चारों ओर का मंडल, इन्द्रधनुष, चिताग्नि तथा चन्द्र-मंडल को देखकर भी विद्वान् पुरुष दूसरे से न कहें। बहुत से लोगों के साथ और बन्धु-बान्धवों के साथ कभी भी विरोध नहीं करना चाहिए।

आत्मनः प्रतिकूलानां परेषां न समाचरेत्।
तिथिं पक्षस्य न ब्रूयान्नक्षत्राणि विनिर्दिशेत्॥ ३६॥

जो कुछ अपने प्रतिकूल हो अथवा स्वयं को अच्छी न लगती हो, वैसा आचरण दूसरों के लिए भी नहीं करना चाहिए। कोई भी पक्ष की तिथि को न बतावे और नक्षत्रों के विषय में भी निर्देश न करे।

नोदक्यामभिभाषेत नाशुचिं वा द्विजोत्तमः।
न देवगुरुविप्राणां दीयमानं तु वारयेत्॥ ३७॥

श्रेष्ठ द्विज रजस्वला स्त्री से बात न करे और अपवित्र व्यक्ति के सामने भी वार्तालाप न करे। यदि देवता, गुरु या विप्रों के निमित्त कुछ दिया जा रहा हो तो उसको रोकना नहीं चाहिए।

न चात्मानं प्रशंसेद्वा परनिन्दाञ्च वर्जयेत्।
वेदनिन्दां देवनिन्दां प्रयत्नेन विसर्ज्जयेत्॥ ३८॥

अपनी प्रशंसा कभी न करे और दूसरों की निन्दा का त्याग करें। उसी प्रकार वेदनिन्दा तथा देवनिन्दा का भी यत्नपूर्वक त्याग करना चाहिए।

यस्तु देवानृषीन् विप्रान् वेदान्वा निन्दति द्विजः।
न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा शास्त्रेष्विह मुनीश्वराः॥ ३९॥
निन्दयेद्वै गुरून्देवान्वेदं वा सोपबृंहणम्।

1. एक अधम जाति। मनु के अनुसार शूद्रा में उत्पन्न निषाद की सन्तान को पुक्कस कहा जाता है— जातो निषादाच्छूद्रायां जात्या भवति पुक्कसः (मनु० १०.१८)

कल्पकोटिशतं साग्रं रौरवे पच्यते नरः॥४०॥

क्योंकि हे मुनीश्वरो! जो द्विज देवों, ऋषियों, विप्रों अथवा वेदों की निन्दा करता है, उनके लिए शास्त्रों में इस लोक में कोई प्रायश्चित्त नहीं देखा गया है। और भी जो गुरुओं, देवों तथा उपबृंहण (अंग) सहित वेद की निन्दा करता है, वह सौ करोड कल्पों से भी अधिक समय तक रौरव नामक नरक में पकाया जाता है अर्थात् कष्ट भोगता है।

तूष्णीमासीत निन्दायां न ब्रूयात्किञ्चिदुत्तरम्।
कर्णौ पिधाय गन्तव्यं न चैतानवलोकयेत्॥४१॥

उसी प्रकार इन सबकी जहाँ निन्दा हो रही हो, वहां सुनने वाला चुप रहे और कोई भी उत्तर न दे तथा दोनों कान बंद करके कहीं अन्यत्र चला जाना चाहिए और निन्दा करने वालों को देखना भी नहीं चाहिए।

वर्जयेद्वै रहस्यञ्च परेषां गूहयेद्बुधः।
विवादं स्वजनैः सार्द्धं न कुर्याद्वै कदाचन॥४२॥

बुद्धिमान् पुरुष दूसरों के रहस्य को किसी के सामने प्रकट न करे। अपने बन्धुओं के साथ कभी भी विवाद नहीं करना चाहिए।

न पापं पापिनं ब्रूयादपापं वा द्विजोत्तमाः।
स तेन तुल्यदोषः स्यान्मिथ्यादिदोषवान् भवेत्॥४३॥

हे द्विजोत्तमो! पापी को उसके पाप के विषय में न कहें और वैसे ही अपाप को भी पापी न कहें। ऐसा करने वाला वह पुरुष उसके समान ही दोषयुक्त होता है अर्थात् जो पापी को दोष लगता है, वही उसको भी लगता है और (अपापी को पापी कहने से) मिथ्यादि दोषयुक्त भी वह हो जाता है अर्थात् झूठा आरोप लगाने से वह उस दोष का भी भागी होता है।

यानि मिथ्याभिशस्तानां पतन्त्यश्रूणि रोदनात्।
तानि पुत्रान् पशून् घ्नन्ति तेषां मिथ्याभिशंसिनाम्॥४४॥

उसी प्रकार जिन पर यह मिथ्या आरोप किया गया हो, (इस दुःख के कारण) रोने से, उनके जितने आँसू गिरते हैं, उतने ही संख्या में उन मिथ्या आरोप करने वालों के पुत्रों और पशुओं का हनन होता है।

ब्रह्महत्यासुरापाने स्तेयगुर्वङ्गनागमे।
दृष्टं विशोधनं सद्भिर्नास्ति मिथ्याभिशंसने॥४५॥

ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी तथा गुरुपत्नी के साथ व्यभिचार करने वाले पापी को शुद्ध करने वाला प्रायश्चित्त सज्जनों द्वारा (शास्त्र में) देखा गया है, परन्तु मिथ्यारोपी के लिए कोई प्रायश्चित्त नहीं है।

नेक्षेतोद्यन्तमादित्यं शशिनञ्चानिमित्ततः।
नास्तं यान्तं न वारिस्थं नोपसृष्टं न मध्यगम्॥४६॥

बिना निमित्त के किसी भी पुरुष को उदित होता हुआ सूर्य और चन्द्र को नहीं देखना चाहिए। वैसे ही अस्त होते हुए, जल में प्रतिबिम्बित, ग्रहण से उपसृष्ट और आकाश के मध्य में स्थित सूर्य और चन्द्र को नहीं देखना चाहिए।

तिरोहितं वाससा वा न दर्शान्तरगामिनम्।
न नग्नां स्त्रियमीक्षेत पुरुषं वा कदाचन॥४७॥
न च मूत्रं पुरीषं वा न च संसृष्टमैथुनम्।
नाशुचिः सूर्यसोमादीन् ग्रहानालोकयेद्बुधः॥४८॥

उसी प्रकार वस्त्र से ढँके हुए अथवा दर्पण के भीतर प्रतिबिम्बित सूर्य और चन्द को कभी नहीं देखना चाहिए। नग्न स्त्री अथवा पुरुष को कभी भी न देखें। वैसे ही (अपने या अन्य के) मूत्र या विष्ठा को नहीं देखना चाहिए तथा मैथुनासक्त किसी भी मिथुन को नहीं देखना चाहिए। उसी प्रकार बुद्धिमान् पुरुष को अपनी अपवित्र अवस्था में सूर्य-चन्द्रादि किसी भी ग्रह को नहीं देखना चाहिए।

पतितव्यङ्गचण्डालानुच्छिष्टान्नावलोकयेत्।
नाभिभाषेत च परमुच्छिष्टो वावगर्वितः॥४९॥

उसी प्रकार पतित, विकलाङ्ग, चाण्डाल तथा अशुद्ध लोगों को नहीं देखना चाहिए। अथवा स्वयं उच्छिष्ट हो और मुख ढँककर बैठा हो, तब उसे किसी से वार्तालाप नहीं करना चाहिए।

न स्पृशेत्प्रेतसंस्पर्शं न क्रुद्धस्य गुरोर्मुखम्।
न तैलोदकयोश्छायां न पत्नीं भोजने सति।
नियुक्तबन्धनान्डुहं वा नोन्मत्तं मत्तमेव वा॥५०॥

जिसने मृतशरीर का स्पर्श किया हो, उसे स्पर्श न करें और क्रुद्ध हुए गुरुजन के मुख को, तेल या जल में अपनी छाया को, भोजन करते समय पत्नी को, अयोग्य ढँग से बँधे हुए गाय-बैल को, उन्मत्त एवं मदमत्त व्यक्ति को नहीं देखना चाहिए।

नाश्नीयात् भार्यया सार्द्धं नैनामीक्षेत मेहनीम्।
क्षुवन्तीं जृम्भमाणां वा नासनस्थां यथासुखम्॥५१॥

अपनी भार्या के साथ कभी भोजन न करे। वह जब पेशाब कर रही हो, छींक कर रही हो, जम्हाई ले रही हो या

सुखपूर्वक आसन पर बैठी हो, तो उस अवस्था में भी उसे न देखें।

नोदके चात्मनो रूपं शुभं वाशुभमेव वा।
न लङ्घयेच्च मूत्रं वा नाधितिष्ठेत्कदाचन॥५२॥

अपना रूप शुभ हो अथवा अशुभ, उसे जल में नहीं देखना चाहिए। किसी के भी मूत्र को कभी लाँघे नहीं और न उसके ऊपर खड़ा रहे।

न शूद्राय मतिन्दद्यात्कृशरं पायसं दधि।
नोच्छिष्टं वा घृतम्मधु न च कृष्णाजिनं हविः॥५३॥

कोई भी द्विज शूद्र जाति के मनुष्य को सद्बुद्धि (उपदेश) प्रदान न करे (क्योंकि उसके लिए वह योग्य ही नहीं है)। उसे कृशर (खीचड़ी), खीर, दहीं तथा अपवित्र घृत या मधु भी न दे। उसी तरह उसे कृष्णमृगचर्म और हविष्यान्न भी न दें।

न चैवास्मै व्रतं दद्यान्न च धर्मं वदेद्बुधः।
न च क्रोधवशङ्गच्छेद्द्वेषं रागञ्च वर्जयेत्॥५४॥
लोभं दम्भं तथा यत्नादसूयां ज्ञानकुत्सनम्।[1]
मानं मोहं तथा क्रोधं द्वेषञ्च परिवर्जयेत्॥५५॥

कोई भी विद्वान् उस शूद्र को व्रत धारण न करावे और धर्म का उपदेश भी न दे। उसके सामने क्रोध के वशीभूत न हो और द्वेष तथा राग को भी त्याग दे। लोभ, घमण्ड, असूया (दूसरों के गुणों में दोषारोपण करना), ज्ञान की निन्दा, मान, मोह, क्रोध तथा द्वेष को यत्नपूर्वक त्याग देना चाहिए।

न कुर्यात्कस्यचित्पीडां सुतं शिष्यञ्च ताडयेत्।
न हीनानुपसेवेत न च तीक्ष्णमतीन् क्वचित्॥५६॥

किसी भी व्यक्ति को पीडित न करे (परंतु हित की दृष्टि से) अपने पुत्र और शिष्य को प्रताडित किया जा सकता है। कभी भी हीन व्यक्ति का आश्रय ग्रहण न करे और वैसे ही तीखी बुद्धि वाले का भी आश्रय न ले।

नात्मानञ्चावमन्येत दैन्यं यत्नेन वर्जयेत्।
न[2] विशिष्टानसत्कुर्यान्नात्मानं शंसयेद्बुधः॥५७॥

बुद्धिमान् पुरुष को अपनी अवमानना नहीं करनी चाहिए और दीनभाव को भी प्रयत्नपूर्वक त्याग देना चाहिए। अपने से उत्तम व्यक्तियों का अनादर नहीं करना चाहिए और स्वयं को संशयग्रस्त नहीं होना चाहिए।

न नखैर्विलिखेद्भूमिं गां च संवेशयेन्न हि।
न नदीषु नदीं ब्रूयात्पर्वते न च पर्वतान्॥५८॥

नखों से भूमि को कुतरना नहीं चाहिए और गाय पर सवारी नहीं करनी चाहिए। नदी में स्थित रहते हुए (अन्य) नदी के विषय में कुछ न कहे और पर्वत में विचरते हुए (दूसरे) पर्वतों के विषय में चर्चा न करे।

आ वसेत्तेन नैवापि न त्यजेत्सहवासिनम्।
नावगाहेदपो नग्नो वह्निञ्चापि व्रजेत्पदा॥५९॥

आवास और भोजन के समय अपने साथ रहने वाले साथी को कभी छोड़ना नहीं चाहिए। जल में नग्न होकर स्नान न करे तथा अग्नि पर पैर रखकर कभी न चले।

शिरोऽभ्यङ्गावशिष्टेन तैलेनाङ्गं न लेपयेत्।
न शस्त्रसर्पैः क्रीडेत न स्वानि खानि च स्पृशेत्॥६०॥

शिर पर मालिस करने के बाद बचे हुए तेल से दूसरे अङ्गों पर लेप न करें। शस्त्र और सर्प से खिलवाड न करे और अपनी इन्द्रियों को भी स्पर्श न करें।

रोमाणि च रहस्यानि नाशिष्टेन सह व्रजेत्।
न पाणिपादवाग्नौ च चापलानि समाश्रयेत्॥६१॥

अपने गुप्तस्थानों के रोमों को स्पर्श न करे तथा असभ्य व्यक्ति के साथ गमन न करे। अग्नि में हाथ-पैर डालने की चपलता ग्रहण न करे।

न शिश्नोदरयोर्नित्यं न च श्रवणयोः क्वचित्।
न चाङ्गनखवादं वै कुर्यान्नाञ्जलिना पिबेत्॥६२॥

उसी प्रकार लिङ्ग, उदर और कानों की चपलता भी कभी न करे। अपने किसी अंग या नख को नहीं बजाना चाहिए तथा अञ्जलि करके जलादि पीना नहीं चाहिए।

नाभिहन्याज्जलं पद्भ्यां पाणिना वा कदाचन।
न शातयेदिष्टकाभिः फलानि सफलानि च॥६३॥

कभी भी अपने हाथ या पैरों से जल को आहत नहीं करना चाहिए। ईंट-पत्थर लेकर फलों को नहीं तोडना चाहिए और फलों से भी फलों को नहीं तोडना चाहिए।

न म्लेच्छभाषणं शिक्षेन्नाकर्षेच्च पदासनम्।
न भेदनमवस्फोटं छेदनं वा विलेखनम्॥६४॥
कुर्याद्विमर्दनं धीमाननाकस्मादेव निष्फलम्।
नोत्सङ्गे भक्षयेद्भक्ष्यान् वृथाचेष्टाञ्च नाचरेत्॥६५॥

---

1. वर्ज्यं यात्राविज्ञानकुत्सनम्। इति पाठः
2. न चाशिष्यं न.. इति पाठः।

म्लेच्छ लोगों की भाषा को सीखना नहीं चाहिए और पैर से आसन को खींचना नहीं चाहिए। बुद्धिमान् को अकस्मात् व्यर्थ ही नाखूनों से चीरना, बजाना, उससे काटना या कुतरना आदि नहीं करना चाहिए और व्यर्थ ही अंगों का मर्दन नहीं करना चाहिए। भक्ष्य पदार्थों को अपनी गोद में रखकर नहीं खाना चाहिए और व्यर्थ चेष्टाएँ भी नहीं करनी चाहिए।

न नृत्येदथवा गायेन्न वादित्राणि वादयेत्।
न संहताभ्यां पाणिभ्यां कण्डूयेदात्मनः शिरः॥६६॥

उसी प्रकार (बिना प्रयोजन के) नृत्य और गायन नहीं करना चाहिए तथा वाद्य-यन्त्र भी नहीं बजाने चाहिए। अपने शिर को दोनों हाथों से खुजलाना नहीं चाहिए।

न लौकिकैः स्तवैर्देवांस्तोषयेद्भेषजैरपि।
नाक्षैः क्रीडेन्न धावेत नाप्सु विण्मूत्रमाचरेत्॥६७॥

लौकिक स्तोत्रों द्वारा देवों की स्तुति नहीं करनी चाहिए और औषधियों से भी उन्हें सन्तुष्ट करने का प्रयत्न न करे। पाशों से जुआ नहीं खेलना चाहिए और जलाशय में मल-मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए।

नोच्छिष्टः संविशेन्नित्यं न नग्नः स्नानमाचरेत्।
न गच्छेन्न पठेद्वापि न चैव स्वशिरः स्पृशेत्॥६८॥

अपवित्र होकर कभी सोना नहीं चाहिए और निर्वस्त्र होकर स्नान नहीं करना चाहिए। उसी अवस्था में न चले, न पढे और न अपने शिर को स्पर्श करे।

न दन्तैर्नखरोमाणि छिन्द्यात्सुप्तं न बोधयेत्।
न बालातपमासेवेत् प्रेतधूमं विवर्जयेत्॥६९॥

दाँतों से नाखून और रोएँ न काटे। सोये हुए को जगाना नहीं चाहिए। प्रातःकालीन सूर्य की धूप का सेवन न करे और शवाग्नि के धूएँ का त्याग कर देना चाहिए।

नैकः सुप्याच्छून्यगृहे स्वयं नोपानहौ हरेत्।
नाकारणाद्वा निष्ठीवेन्न बाहुभ्यां नदीं तरेत्॥७०॥

सूने घर में अकेले सोना नहीं चाहिए और स्वयं अपने जूतों को उठाकर नहीं ले जाना चाहिए। अकारण थूकते नहीं रहना चाहिए तथा मात्र भुजाओं के बल से नदी को पार नहीं करना चाहिए।

न पादक्षालनं कुर्यात्पादेनैव कदाचन।
नाग्नौ प्रतापयेत्पादौ न कांस्ये धावयेद्बुधः॥७१॥

कभी भी अपने पैरों से पैरों को धोना नहीं चाहिए। विद्वान् पुरुष को दोनों पैर अग्नि में तपाने नहीं चाहिए और कांस्य पात्र में भी पाँव धोने नहीं चाहिए।

नातिप्रसारयेद्देवं ब्राह्मणान् गामथापि वा।
वाय्वग्निगुरुविप्रान्वा सूर्यं वा शशिनं प्रति॥७२॥

देवताओं, ब्राह्मणों तथा गौओं, वायु, अग्नि, गुरु, विप्र तथा सूर्य और चन्द्रमा को तिरस्कृत नहीं करना चाहिए।

अशुद्धशयनं यानं स्वाध्यायं स्नानभोजनम्।
बहिर्निष्क्रमणञ्चैव न कुर्वीत कथञ्चन॥७३॥

अशुद्ध स्थिति में शयन करना, यात्रा करना, स्वाध्याय करना, स्नान और भोजन करना तथा घर से बाहर जाना आदि कभी भी नहीं करना चाहिए।

स्वप्नमध्ययनं यानमुच्चारं भोजनं गतिम्।
उभयोः सन्ध्ययोर्नित्यं मध्याह्ने तु विवर्जयेत्॥७४॥

दोनों सन्ध्या काल में तथा मध्याह्न में सोना, अध्ययन करना, वाहन पर चढ़ना, भोजन करना और मल-मूत्र का त्याग करना आदि का त्याग कर देना चाहिए।

न स्पृशेत्पाणिनोच्छिष्टो विप्रो गोब्राह्मणानलान्।
न चैवान्नं पदा वापि न देवप्रतिमां स्पृशेत्॥७५॥

द्विज अपवित्र होने पर अपने हाथों से गौ, ब्राह्मण और अग्नि का स्पर्श न करे तथा कोई भी अपने पैरों से अन्न तथा देवप्रतिमा का स्पर्श न करे।

नाशुद्धोऽग्निं परिचरेन्न देवान् कीर्तयेदृषीन्।
नावगाहेदगाधाम्बु धारयेन्नाग्निमेकतः॥७६॥

अपवित्र होने पर अग्नि की परिचर्या, देवों तथा ऋषियों का कीर्तन न करे। गहरे जल में स्नानार्थ प्रवेश न करे तथा अपने किसी भी एक भाग में अग्नि को धारण न करे।

न वामहस्तेनोद्धृत्य पिबेद्वक्त्रेण वा जलम्।
नोत्तरेदनुपस्पृश्य नाप्सु रेतः समुत्सृजेत्॥७७॥

अपने बाँये हाथ को उठाकर मुख से जल को नहीं पीना चाहिए। जल का उपस्पर्श करके ही उसमें प्रवेश करे और जल में वीर्य का त्याग न करे।

अमेध्यलिप्तमन्यद्वा लोहितं वा विषाणि वा।
व्यतिक्रमेन्न स्रवन्तीं नाप्सु मैथुनमाचरेत्॥७८॥

अपवित्र वस्तु से लिप्त किसी पदार्थ का, खून का, विष का तथा नदी का अतिक्रमण कभी न करे और कभी भी जलाशय आदि में मैथुन न करे।

चैत्यं वृक्षं न वै छिन्द्यान्नाप्सु ष्ठीवनमुत्सृजेत्।
नास्थिभस्मकपालानि न केशान्न च कण्टकान्।
ओषांगारकरीषं वा नाधितिष्ठेत्कदाचन॥७९॥

चैत्य (यज्ञस्थान) या चौराहे के वृक्ष को कभी न काटे और पानी में कभी थूकना नहीं चाहिए। जल में कभी भी अस्थि, भस्म, कपाल, केश, काँटे, धान के छिलके, अंगार और गोबर नहीं डालना चाहिए।

न चाग्निं लंघयेद्धीमान्नोपदध्यादधः क्वचित्।
न चैनं पादतः कुर्यान्मुखेन न धमेद्बुधः॥८०॥

बुद्धिमान् पुरुष कभी भी अग्नि को लाँघे नहीं और उसे अपने पास भी न रखे। उसी प्रकार अपने पैरों की तरफ अग्नि को न रखे और मुख से अग्नि को फूँकना भी नहीं चाहिए।

न कूपमवरोहेत नावेक्षीताशुचिः क्वचित्।
अग्नौ न प्रक्षिपेदग्निं नाद्भिः प्रशमयेत्तथा॥८१॥

अपवित्र व्यक्ति को कुएँ के ऊपर चढ़ना चाहिए और न कभी उस में मुँह डालकर देखना चाहिए। अग्नि में अग्नि का प्रक्षेप न करे और जल से उसे बुझाना भी नहीं चाहिए।

सुहृन्मरणमार्त्तिं वा न स्वयं श्रावयेत्परान्।
अपण्यमथ पण्यं वा विक्रये न प्रयोजयेत्॥८२॥

किसी को भी अपने मित्र की मृत्यु अथवा उसके दुःख का समाचार स्वयं दूसरों को सुनाना नहीं चाहिए। जो विक्रय के अयोग्य हों और जो छल-कपट द्वारा प्राप्त हों, ऐसे पदार्थों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

न वह्निं मुखनिश्वासैर्ज्वालयेन्नाशुचिर्बुधः।
पुण्यस्नानोदकस्नाने सीमान्तं वा कृषेन्न तु॥८३॥

उसी प्रकार बुद्धिमान् पुरुष अपवित्र अवस्था में अग्नि को अपने मुख से फूँक देकर प्रज्वलित न करे। ऐसी अवस्था में तीर्थस्थान के पवित्र जल में स्नान न करे तथा उसकी सीमा पर्यन्त भूमि को भी न जोते।

न भिन्द्यात्पूर्वसमयं सत्योपेतं कदाचन।
परस्परं पशून् व्यालान् पक्षिणो नावबोधयेत्॥८४॥

इसी प्रकार सत्य से युक्त पूर्व प्रतिज्ञ नियम को तोड़ना नहीं चाहिए तथा परस्पर पशुओं को, सर्पों को और पक्षियों को लड़ाने के लिए प्रेरित नहीं करना चाहिए।

परबाधां न कुर्वीत जलपानायनादिभिः।
कारयित्वा सुकर्माणि कारून् पश्चान्न वर्जयेत्।
सायं प्रातर्गृहद्वारान् भिक्षार्थं नावघाटयेत्॥८५॥

जल, वायु और धूप द्वारा दूसरे को बाधा नहीं पहुँचानी चाहिए। अच्छे काम करा लेने के बाद बाद में कारीगरों को (पारिश्रमिक दिये बिना) छोड़ नहीं देना चाहिए। उसी प्रकार सायं तथा प्रातः काल भिक्षा के उद्देश्य से आने वालों के लिए घर के द्वार बन्द नहीं कर देने चाहिए।

बहिर्माल्यं बहिर्गन्धं भार्यया सह भोजनम्।
विगृह्यवादं कुद्वारप्रवेशं च विवर्जयेत्॥८६॥

उसी प्रकार बाहर की कोई दूसरे अनजाने व्यक्ति की माला धारण न करे। बाहर के गन्ध-चन्दन आदि, पत्नी के साथ भोजन करना, विग्रहपूर्वक विवाद और कुत्सित द्वार से प्रवेश आदि का त्याग कर देना चाहिए।

न खादन् ब्राह्मणस्तिष्ठेन्न जल्पन्न हसन् बुधः।
स्वमग्निं नैव हस्तेन स्पृशेन्नाप्सु चिरं वसेत्॥८७॥

किसी भी विद्वान् ब्राह्मण को खाते हुए खड़ा नहीं होना चाहिए और हँसते हुए बोलना नहीं चाहिए। अपने हाथ से अपनी अग्नि का स्पर्श नहीं करना चाहिए और देर तक पानी के भीतर नहीं रहना चाहिए।

न पक्षकेणोपधमेन्न शूर्पेण न पाणिना।
मुखेनैव धमेदग्निं मुखादग्निरजायत॥८८॥

अग्नि को पंखे से, सूप से या हाथ से (हवा देकर) प्रज्वलित नहीं करना चाहिए। मुख से (फुँकनी द्वारा) अग्नि को जलाना चाहिए क्योंकि (परमात्मा के) मुख से ही अग्नि की उत्पत्ति हुई है।

परस्त्रियं न भाषेत नायाज्यं याजयेद् द्विजः।
नैकश्चरेत् सभां विप्रसमवायं च वर्जयेत्।
देवतायतनं गच्छेत्कदाचिन्नाप्रदक्षिणम्॥८९॥
न वीजयेद्वा वस्त्रेण न देवायतने स्वपेत्।

द्विज को परस्त्री के साथ बात नहीं करनी चाहिए और जो यज्ञ कराने के लिए योग्य न हो, उसके यज्ञादि नहीं कराने चाहिए। ब्राह्मण को सभा में अकेले नहीं जाना चाहिए तथा मण्डली का भी त्याग कर देना चाहिए अर्थात् एक-दो व्यक्तियों के साथ ही जाना चाहिए। देवालय में बायीं ओर से कभी भी प्रवेश नहीं करना चाहिए अथवा बिना प्रदक्षिणा के देवमन्दिर में नहीं जाना चाहिए। किसी भी वस्त्र से हवा नहीं करनी चाहिए और देवमन्दिर में सोना नहीं चाहिए।

नैकोऽध्वानं प्रपद्येत नाधार्मिकजनैः सह॥९०॥
न व्याधिदूषितैर्वापि न शूद्रैः पतितैर्न वा।

नोपानद्वर्जितोऽध्वानं जलादिरहितस्तथा॥ ११॥

मार्ग में कभी भी अकेले, अधार्मिक जनों के साथ, रोगग्रस्त मनुष्यों, शूद्रों और पतितों के साथ नहीं जाना चाहिए। बिना जूता पहने तथा बिना जल लिये हुए भी यात्रा नहीं करनी चाहिए।

न रात्रौ वारिणा सार्द्धं न विना च कमण्डलुम्।
नाग्निगोब्राह्मणादीनामन्तरेण व्रजेत्क्वचित्॥ १२॥

रात्रि में, शत्रु के साथ और बिना कमण्डलु लिए तथा अग्नि, गौ अथवा ब्राह्मण आदि को साथ लिये बिना कहीं नहीं जाना चाहिए।

निवत्स्यन्तीं न वनितामतिक्रामेद् द्विजोत्तमाः।
न निन्देद्योगिनः सिद्धान् गुणिनो वा यतींस्तथा॥ १३॥

हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! अच्छे आचरण वाली नम्र स्वभाव की स्त्री का तिरस्कार न करें। उसी प्रकार योगियों, सिद्धों और गुणवान् संन्यासियों की भी निन्दा न करे।

देवतायतने प्राज्ञो न देवानां च सन्निधौ।
नाक्रामेत्कामतश्छायां ब्राह्मणानां गवामपि॥ १४॥

बुद्धिमान् पुरुष को देवमन्दिर में या देवमूर्तियों के सामने ब्राह्मणों की तथा गौओं की परछाई को जानबूझकर नहीं लाँघना चाहिए।

स्वां तु नाक्रमयेच्छायां पतिताद्यैर्न रोगिभिः।
नाङ्गारभस्मकेशादिष्वधितिष्ठेत्कदाचन॥ १५॥

उसी प्रकार पतित आदि नीच लोगों से अथवा रोगियों से अपनी छाया को लाँघने नहीं देना चाहिए और कभी भी अंगार, भस्म, केश आदि पर खड़े नहीं होना चाहिए।

वर्जयेन्मार्जनीरेणु स्नानवस्त्रघटोदकम्।
न भक्षयेदभक्ष्याणि नापेयञ्चापिबेद्द्विजाः॥ १६॥

हे द्विजो! झाड़ू की धूल, स्नान किया हुआ वस्त्र और उस घड़े के जल का त्याग कर देना चाहिए अर्थात् उस जल को पुनः काम में नहीं लाना चाहिए। उसी प्रकार अभक्ष्य पदार्थों का भक्षण नहीं करना चाहिए और अपेय पदार्थों को पीना भी नहीं चाहिए।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे गार्हस्थ्यधर्मनिरूपणं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

सप्तदशोऽध्यायः

(भक्ष्याभक्ष्यनिर्णय)

व्यास उवाच

नाद्याच्छूद्रस्य विप्रोऽन्नं मोहाद्वा यदि वान्यतः।
स शूद्रयोनिं व्रजति यस्तु भुङ्क्ते ह्यनापदि॥ १॥

ब्राह्मण को शूद्र का अन्न नहीं खाना चाहिए। आपात्काल को छोड़कर जो मोहवश या अन्य प्रयोजन से शूद्र का अन्न खाता है, वह शूद्रयोनि को ही प्राप्त होता है।

षण्मासान्यो द्विजो भुंक्ते शूद्रस्यान्नं विगर्हितम्।
जीवन्नेव भवेच्छूद्रो मृत एवाभिजायते॥ २॥

जो द्विज छः मास तक निरन्तर शूद्र का निन्दित आहार ग्रहण करता है, वह जीवित अवस्था में ही शूद्र हो जाता है और मरणोपरान्त भी उसी योनि को प्राप्त होता है (या श्वान-योनि में जाता है।

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्रस्य च मुनीश्वराः।
यस्यान्नेनोदरस्थेन मृतस्तद्योनिमाप्नुयात्॥ ३॥

हे मुनीश्वरो! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में से जिसका भी अन्न उदर में स्थित रहता है, मृत्यु के पश्चात् वह उसी योनि को प्राप्त करता है।

नटान्नं नर्त्तकान्नञ्च तक्ष्णोऽन्नं चर्मकारिणः।
गणान्नं गणिकान्नञ्च षडन्नानि च वर्जयेत्॥ ४॥

नट (अथवा राजा), नर्तक, बढ़ई, चर्मकार (मोची) किसी जनसमूह का और वेश्या का अन्न— इन छः प्रकार के अन्नों का त्याग करना चाहिए।

चक्रोपजीविरजकतस्करध्वजिनां तथा।
गन्धर्वलोहकारान्नं सूतकान्नञ्च वर्जयेत्॥ ५॥

उसी प्रकार चक्रोपजीवि अर्थात् चक्र निर्माण करके आजीविका चलाने वाला या तैली, कपड़े रंगने वाला या धोबी, चोर,, मद्यविक्रयी, गायक, लुहार तथा सूतक के अन्न का भी त्याग करना चाहिए।

कुलालचित्रकर्मान्नं वार्धुषिः पतितस्य च।
सुवर्णकारशैलूषव्याधबद्धातुरस्य च॥ ६॥
चिकित्सकस्य चैवान्नं पुंश्चल्या दण्डकस्य च।
स्तेननास्तिकयोरन्नं देवतानिन्दकस्य च॥ ७॥
सोमविक्रयिणश्चान्नं श्वपाकस्य विशेषतः।

उसी प्रकार कुम्हार, चित्रकार, व्याज लेने वाले, पतित (धर्माचरण से रहित) सुनार, नट, व्याध, कैदी, रोगी, चिकित्सक, व्यभिचारिणी स्त्री, पाखण्डी, चोर, नास्तिक, देवनिन्दा करने वाला, सोम बेचने वाले तथा श्वपाक-चाण्डाल के अन्न का विशेषरूप से त्याग कर देना चाहिए।

भार्याजितस्य चैवान्नं यस्य चोपपतिर्गृहे॥ ८॥
उच्छिष्टस्य कदर्यस्य तथैवोच्छिष्टभोजिन:।

जो स्त्री का वंशगामी हो और जिसके घर में पत्नी का प्रेमी (जार पुरुष) रहता हो, जो अपवित्र रहता हो, जो कंजूस हो और जो सदा उच्छिष्ट अन्न खाने वाला हो, उसके अन्न को भी त्याग दे।

अपंक्त्यन्नञ्च संघान्नं शस्त्रजीवस्य चैव हि॥ ९॥
क्लीबसन्यासिनश्चान्नं मत्तोन्मत्तस्य चैव हि।
भीतस्य रुदितस्यान्नमवक्रुष्टं परिग्रहम्॥ १०॥

पंक्ति (अपनी बिरादरी) से बाहर हुए व्यक्ति का अन्न, समुदाय विशेष का अन्न, जो मनुष्य शस्त्रजीवि हो, नपुंसक हो, संन्यासी हो, शराबी, उन्मत्त और भयभीत हो, जो रोते रहता हो, जो तिरस्कृत हुआ हो और जिस पर छींका गया हो, ऐसे अन्न को ग्रहण नहीं करना चाहिए।

ब्रह्मद्विष: पापरुचे: श्राद्धान्नं सूतकस्य च।
वृथापाकस्य चैवान्नं शठान्नं चतुरस्य च॥ ११॥

ब्रह्मद्वेशी का, पापासक्त का, श्राद्ध का और सूतक का अन्न नहीं खाना चाहिए। देवों को त्यागकर अपने निमित्त पकाया हुआ, धूर्त और चतुर व्यक्ति का अन्न भी नहीं खाना चाहिए।

अप्रजानान्तु नारीणां भृतकस्य तथैव च।
कारुकान्नं विशेषेण शस्त्रविक्रयिणस्तथा॥ १२॥
शौण्डान्नं घातिकान्नं च भिषजामन्नमेव च।
विद्धप्रजननस्यान्नं परिवेत्रन्नमेव च॥ १३॥
पुनर्भुवो विशेषेण तथैव दिधिषूपते:।
अवज्ञातं चावधूतं सरोषं विस्मयान्वितम्॥ १४॥
गुरोरपि न भोक्तव्यमन्नं संस्कारवर्जितम्।
दुष्कृतं हि मनुष्यस्य सर्वमन्ने व्यवस्थितम्॥ १५॥
यो यस्यान्नं समश्नाति स तस्याश्नाति किल्बिषम्।

सन्तानहीन नारी, नौकर, शिल्पी और विशेषत: शस्त्र विक्रेता का अन्न नहीं खाना चाहिए। सुरा बेचने वाले का अन्न, भाट-चारण तथा वैश्या का अन्न, विद्धलिङ्गी का अन्न, परिवेत्ता-ज्येष्ठ भाई के अविवाहित रहने पर जिसने विवाह कर लिया हो उसका अन्न, दो बार विवाहिता स्त्री या ऐसी स्त्री के पति का अन्न विशेषरूप से त्याज्य है। जो अन्न अवज्ञात-अनजाना हो या अवज्ञा-तिरस्कारपूर्ण हो, जो अवधूत हुआ हो, जो क्रोधपूर्वक दिया गया हो, जो सन्देहयुक्त हो तथा गुरु के द्वारा दिया गया संस्कारहीन अन्न भी ग्रहण नहीं करना चाहिए। मनुष्य का जो कुछ पापकर्म होता है, वह उसके अन्न में ही रहता है। इस कारण जो मनुष्य जिसका अन्न खाता है वस्तुत: वह उस अन्न विक्रेता के पाप का ही भक्षण करता है।

आर्द्धिक: कुलमित्रश्च स्वगोपालश्च नापित:॥ १६॥
कुशीलव: कुम्भकार: क्षेत्रकर्मक एव च।
एते शूद्रेषु भोज्यान्नं दत्त्वा स्वल्पं पणं बुधै:।

इन शूद्रों में जो आर्द्धिक (जो शूद्र द्विजाति के यहाँ खेत का आधा भाग लेकर खेती करता है) कुलमित्र (जो कुल में परम्परागत चला आ रहा हो, दाश नामक शूद्र) जो अपनी गौओं का पालन करने वाला हो और जो नापित हो, जो कुशीलव नाम से प्रसिद्ध शूद्र जाति में यश फैलाने वाले नट हों, चारण या भाट हों अथवा गायकरूप से प्रसिद्ध हों, कुम्हार जाति के हों, क्षेत्रकर्मक अर्थात् खेतों में काम करने वाले हों— ऐसे शूद्र जाति के लोगों को थोड़ा बहुत धन देकर बुद्धिमान् पुरुष उनका अन्न ग्रहण कर सकते हैं।

पायसं स्नेहपक्वं यत् गोरसं चैव सक्तव:॥ १७॥
पिण्याकं चैव तैलं च शूद्राद्ग्राह्यं तथैव च।

दूध से निर्मित तथा घी में पकाई हुई वस्तुएं, दूध, सत्तु, पिण्याक (तिल या सरसों की खली या गन्धद्रव्य) और तेल आदि शूद्र से लिये जा सकते हैं।

वृन्ताकं जालिका[1] शाकं कुसुम्भाश्मन्तकं तथा॥ १८॥
पलाण्डुं लसुनं सूक्तं निर्यासं चैव वर्जयेत्।
छत्राकं विड्वराहञ्च शैलं पीयूषमेव च॥ १९॥
विलयं सुमुखञ्चैव कवकानि च वर्जयेत्।

बैंगन, नालिकासाग, कुसुम्भ (पुष्पविशेष) अश्मन्तक (अम्लोटक) प्याज, लहसून, सूक्त (कांजी) और निर्यास अर्थात् किसी भी वृक्ष का गोंद आदि- ये सब अभक्ष्य होने

1. जालिका के स्थान पर 'नालिका' पाठ मिलता है। यह तालाब में होता है, जो डंठलमात्र रहता है।

से नहीं लेने चाहिए। उसी प्रकार मशरूम, जंगली सूअर, लसोडा (बहुवार)[1], पीयूष-ताजी व्यायी हुई गौ का दूध विलय और सुमुख नामक खाद्य पदार्थ तथा कुकुरमुत्ते का त्याग करना चाहिए।

गृञ्जनं[2] किंशुकं[3] चैव कुक्कुटं च तथैव च॥ २०॥
उदुम्बरमलाबुं च जग्ध्वा पतति वै द्विजः।
कृशा कृशरसंयावं पायसापूपमेव च॥ २१॥
अनुपाकृतमांसं च देवान्नानि हवींषि च।
यवागुं मातुलिङ्गञ्च मत्स्यानप्यनुपाकृतान्॥ २२॥
नीपं कपित्थं प्लक्षं च प्रयत्नेन विवर्जयेत्।

गाजर, पलाश, कुकुट, गूलर (Fig tree) लौकी खाने से द्विज पतित हो जाता है। कृशर (तिल का चावल से निर्मित पदार्थ) संयाव (हलूआ) खीर, मालपुआ, असंस्कारित मांस, देवों को अर्पित अन्न, हविष, यवागु (जौ की खीर) मातुलिङ्ग, मन्त्रों द्वारा असंस्कृत मत्स्यादि, नीम-कदम्ब, कपित्थ, कोठफल और पीपल के फलों का त्याग करना चाहिए।

पिण्याकं चोद्धृतस्नेहं दिवाधानास्तथैव च॥ २३॥
रात्रौ च तिलसम्बद्धं प्रयत्नेन दधि त्यजेत्।
नाश्नीयात्पयसा तक्रं न बीजान्युपजीवयेत्॥ २४॥
क्रियादुष्टं भावदुष्टमसत्संगं विवर्जयेत्।

दिन में घृतादि रहित द्रव्य या तिल की खली या उससे युक्त धान्य और रात्रि में तिल मिश्रित दहीं का सावधानी से त्याग कर देना चाहिए। इसी प्रकार बीज वाले द्रव्यों का आजीविका के साधनरूप में उपयोग नहीं करना चाहिए। मनुष्य आदि को क्रिया से दूषित अथवा भाव से दूषित द्रव्य का भी त्याग करना चाहिए उसी प्रकार दुर्जनों के संग का भी विशेषरूप से संग नहीं करना चाहिए।

केशकीटावपन्नं च स्वभूर्लेखं च नित्यशः॥ २५॥
श्वाघ्रातं च पुनः सिद्धं चण्डालावेक्षितं तथा।
उदक्यया च पतितैर्गवा चाघ्रातमेव च॥ २६॥
अनर्चितं पर्युषितं पर्याघ्रातं च नित्यशः।
काककुक्कुटसंस्पृष्टं कृमिभिश्चैव संयुतम्॥ २७॥
मनुष्यैरथवा घ्रातं कुष्ठिना स्पृष्टमेव च।

यदि अन्न में बाल और कीड़ें हों तथा नाखून या रक्त आदि से युक्त हो तो उसे निश्चित ही छोड़ देना चाहिए। जिस द्रव्य को कुत्ते ने सूंघ लिया हो, जो फिर से पकाया गया हो, जिस पर चाण्डाल की नजर पड़ी हो, उसे भी छोड़ देना चाहिए। उसी प्रकार जिस पदार्थ पर किसी अशुद्ध स्त्री की दृष्टि पड़ जाये, जिसे पतित व्यक्ति ने सूँघ लिया हो अथवा देख लिया हो, जिसका सत्कार न किया गया हो, ,जो बासी हो गया हो, जिस पर सदाभ्रान्ति बनी हुई हो, जिस द्रव्य को कौए ने तथा मुर्गे ने स्पर्श किया हो, जिसमें कीड़ा लग गया हो और जिस द्रव्य को मनुष्यों ने सूँघ लिया हो अथवा जिसे किसी कोढ़ी व्यक्ति ने स्पर्श किया हो उसे अवश्य ही त्याग देना चाहिए।

न रजस्वलया दत्तं न पुंश्चल्या सरोषकम्॥ २८॥
मलवद्वाससा चापि परयाचोपयोजयेत्।
विवत्सायाश्च गोः क्षीरमौष्ट्रं वा निर्दशस्य च॥ २९॥
आविकं सन्धिनीक्षीरमपेयं मनुरब्रवीत्।

जो वस्तु किसी रजस्वला स्त्री ने दी हो उसका प्रयोग न करें उसी प्रकार किसी व्यभिचारिणी स्त्री द्वारा दी गयी और रोष के साथ दी गयी वस्तु का भी उपयोग नहीं करना चाहिए। जिस वस्तु को मलीन वस्त्र पहने हुए किसी दूसरे की स्त्री ने दिया हो उसका भी उपयोग नहीं करना चाहिए। भगवान मनु ने ऐसा भी कहा है कि बिना बछड़े की गौ का दूध पीने योग्य नहीं होता। ऊँटनी का दूध भी न पियें।

बलाकं हंसदात्यूहं कलविङ्कं शुकं तथा॥ ३०॥
तथा कुररवल्लूरं जालपादञ्च कोकिलम्।
चाषांश्च खञ्जरीटांश्च श्येनं गृध्रं तथैव च॥ ३१॥
उलूकं चक्रवाकञ्च भासं पारावतं तथा।
कपोतं टिट्टिभञ्चैव ग्रामकुक्कुटमेव च॥ ३२॥
सिंहं व्याघ्रञ्च मार्जारं श्वानं कुक्कुरमेव च।
शृगालं मर्कटं चैव गर्दभञ्च न भक्षयेत्।

यदि कोई मांसाहारी हो उसे भी बगुला, हंस, चातक, जल कौआ, चिड़िया, तोता, कुरर, सुखा हुआ मांस, जिन पक्षियों के नाखून आपस में जुड़े हुए हो कोयल नीलकंठ, कंजन, बाज, गिद्ध, उल्लू, चक्रवाक, भास पक्षी, कबूतर, पंडूक, टिटहरी, ग्राम्य मुर्गा, सिंह, बाघ, बिल्ली, कुत्ता, ग्रामीण सूअर, सियार, बन्दर और गधे का मांस नहीं खाना चाहिए।

1. Cordia myza.
2. गृञ्जनं गाजरं प्रोक्तं तथा नारङ्गवर्णकम् (भा०नि० शाकवर्ग)
3. पलाशः किंशुकः पर्णो... (भा०नि० शाकवर्ग)

न भक्षयेत्सर्वमृगान्पक्षिणोऽन्यान्वनचरान् द्विजान्॥ ३३॥
जलेचरान् स्थलचरान् प्राणिनश्चेति धारणा॥

उसी प्रकार सभी जाति के मृग और अन्य जो भी जंगली पक्षियों का मांस, जलचर तथा स्थलचर प्राणियों का मांस कभी नहीं खाना चाहिए ऐसा शास्त्रीय नियम है।

गोधा कूर्मः शशः श्वावित् सल्लकी चेति सत्तमाः॥ ३४
भक्ष्याः पञ्चनखा नित्यं मनुराह प्रजापतिः।

और भी मनु कहते हैं कि गोह, कछुआ, खरगोश, गेंडा और शाही जैसे पाँच नख वाले प्राणीयों का मांस नहीं खाना चाहिए।

मत्स्यान् सशल्कान् भुञ्जीयान्मांसं रौरवमेव च॥ ३५॥
निवेद्य देवताभ्यस्तु ब्राह्मणेभ्यस्तु नान्यथा॥

परन्तु जो मछलियाँ शल्क नाम के चमड़े से युक्त हो उसका मांस और रुरु नाम के मृगों का मांस देवताओं को तथा ब्राह्मणों को अर्पित करने के बाद ही खा सकते हैं परन्तु अन्य प्रकार से उन्हें नहीं खाना चाहिए।

मयूरन्तित्तिरश्चैव कपिञ्जलकमेव च॥ ३६॥
वार्ध्रीणसं द्वीपिनञ्च भक्ष्यानाह प्रजापतिः।

मयूर, तित्तिर, श्वेत तित्तिर या चातक, गेंडा अथवा इस नाम का एक प्रकार का पक्षी, चिड़िया इन सब को प्रजापति मनु ने भक्ष्य बताया है।

राजीवान् सिंहतुण्डांश्च तथा पाठीनरोहितौ॥ ३७॥
मत्स्येष्वेते समुद्दिष्टा भक्षणीया मुनीश्वराः।
प्रोक्षितं भक्षयेदेषां मांसञ्च द्विजकाम्यया॥ ३८॥
यथाविधि नियुक्तं च प्राणानामपि चात्यये।
भक्षयेदेव मांसानि शेषभोजी न लिप्यते॥ ३९॥
औषधार्थमशक्तौ वा नियोगाद्यं न कारयेत्।

उसी प्रकार हे मुनीश्वरो! मत्स्य, सिंह के समान मुख वाला मत्स्य, पाठीन नामक मत्स्य तथा रोहित मत्स्य इतने मत्स्यों को भक्षण करने योग्य कहा गया है। परन्तु इन ऊपर कहे हुए प्राणियों का मांस मन्त्रों द्वारा या अभिमन्त्रित जल से सिंचित हो तभी द्विज वर्ण को अपनी इच्छा होने पर विधि के अनुसार देवों को अर्पित करने के बाद अथवा प्राण संकट में आ गये हों, तभी खाना चाहिए। वस्तुतः कोई भी मांस भक्ष्य नहीं होता फिर भी देवों को अर्पित करने के बाद अवशिष्ट प्रसादरूप में ही जो मनुष्य उसे खाता है उसे पाप नहीं लगता अथवा जो मनुष्य औषधरूप में, अशक्ति होने पर अथवा किसी की विशेष प्रेरणा से अथवा यज्ञ के निमित्त उसे खाता है, वह भी पाप से लिप्त नहीं होता।

आमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे दैवे वा मांसमुत्सृजेत्।
यावन्ति पशुरोमाणि तावतो नरकान् व्रजेत्॥ ४०॥
अदेयं चाप्यपेयञ्च तथैवास्पृश्यमेव च।
द्विजातीनामनालोच्यं नित्यं मद्यमिति स्थितिः॥ ४१॥

जिसे श्राद्धरूप पितृकर्म में आमन्त्रित किया गया हो अथवा किसी देवकर्म में आमन्त्रित किया हो फिर भी जो मनुष्य उस समय उस नैवेद्यरूप मांस का त्याग करता है तो वह जिस पशु का मांस परोसा गया हो, उसके जितने रोम होते हैं, उतने ही काल तक वह नरक में जाता है।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मद्यं नित्यञ्च वर्जयेत्।
पीत्वा पतितः कर्मभ्यो न सम्भाष्यो भवेद्द्विजैः॥ ४२॥
भक्षयित्वा ह्यभक्ष्याणि पीत्वापेयान्यपि द्विजः।
नाधिकारी भवेत्तावद्यावत्तन्न व्रजत्यधः॥ ४३॥
तस्मात्परिहरेन्नित्यमभक्ष्याणि प्रयत्नतः।
अपेयानि च विप्रा वै तथा चेद्याति रौरवम्॥ ४४॥

उसी प्रकार जो वस्तु दान देने अयोग्य हो, जो पीने योग्य न हो और जो स्पर्श करने योग्य न हो तो वह ब्राह्मण आदि को भी देखने के लिए अयोग्य होती है। क्योंकि वे सभी वस्तुएँ मदिरा के समान हैं अथवा द्विज को मदिरा आदि देना योग्य नहीं है। वैसे ही पीने, स्पर्श करने तथा देखने योग्य भी नहीं है ऐसी मर्यादा है। इस कारण सावधानीपूर्वक मदिरा का त्याग कर देना चाहिए। जो विप्र इन अभक्ष्यों तथा अपेयों को ग्रहण करता है वह रौरव नामक नरक में जाता है।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे भक्ष्याभक्ष्यनिर्णये व्यासगीतासु सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

अष्टादशोऽध्यायः

(ब्राह्मणों के नित्यकर्तव्यकर्म)

ऋषय ऊचुः

अहन्यहनि कर्तव्यं ब्राह्मणानां महामुने।
तदाचक्ष्वाखिलं कर्म येन मुच्येत बन्धनात्॥ १॥

ऋषियों ने कहा— हे महामुनि! ब्राह्मणों के प्रतिदिन के करने योग्य सभी नित्य कर्मों के विषय में कहिए, जिसे करने से वह संसार-बंधन से मुक्त हो जाता है।

व्यास उवाच

वक्ष्ये समाहिता यूयं शृणुध्वं गदतो मम।
अहन्यहनि कर्त्तव्यं ब्राह्मणानां क्रमाद्विधिम्॥ २॥

व्यासजी बोले— ब्राह्मणों को जो कर्म प्रतिदिन करने योग्य है, उसकी विधि मैं यथाक्रम से कहता हूँ, आप सब एकाग्रचित्त होकर श्रवण करें।

ब्राह्मे मुहूर्ते तूत्थाय धर्ममर्थञ्च चिन्तयेत्।
कायक्लेशञ्च यन्मूलं ध्यायेत मनसेश्वरम्॥ ३॥

प्रत्येक ब्राह्मण को प्रातः ब्राह्म मुहूर्त (सूर्योदय से पूर्व) में उठकर धर्म और अर्थ का चिन्तन करना चाहिए तथा उसके मूलरूप कायक्लेशों पर भी विचार करें और मन से ईश्वर का ध्यान करता रहे।

उषःकाले च सम्प्राप्ते कृत्वा चावश्यकं बुधः।
स्नायान्नदीषु शुद्धासु शौचं कृत्वा यथाविधि॥ ४॥
प्रातः स्नानेन पूयन्ते येऽपि पापकृतो जनाः।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन प्रातः स्नानं समाचरेत्॥ ५॥

इसके बाद प्रातःकाल हो जाने पर विद्वान् को आवश्यक शौचादि कर्म करके पवित्र नदियों में यथाविधि स्नान करना चाहिए। इस प्रकार प्रातः काल में स्नान करने से पापाचारी मनुष्य भी पवित्र हो जाते हैं। इसलिए सब प्रकार के प्रयत्न से प्रातः काल का स्नान करना चाहिए।

प्रातः स्नानं प्रशंसन्ति दृष्टादृष्टकरं हि तत्।
ऋषीणामृषिता नित्यं प्रातः स्नानान्न संशयः॥ ६॥

विद्वान् लोग इस प्रातःकालीन स्नान की प्रशंसा करते हैं, क्योंकि यह दृष्ट (प्रत्यक्ष शुभ) और अदृष्ट (पुण्य आदि) दोनों प्रकार का फल देने वाला है। नित्य प्रातः स्नान से ही ऋषियों का भी ऋषित्व स्थायी है, इसमें कोई संशय नहीं है।

मुखे सुप्तस्य सततं लाला याः संस्रवन्ति हि।
ततो नैवाचरेत्कर्म अकृत्वा स्नानमादितः॥ ७॥

सोते हुए व्यक्ति के मुख से जो निरन्तर लार बहती है, उसकी मलिनता को प्रातःकालीन स्नान से दूर किये बिना किसी भी कर्म का अनुष्ठान वस्तुतः करना ही नहीं चाहिए।

अलक्ष्मको जलं किञ्चित् दुःस्वप्नं दुर्विचिन्तितम्।
प्रातः स्नानेन पापानि पूयन्ते नात्र संशयः॥ ८॥

उस प्रातः कालीन स्नान से दरिद्रता, जलदोष, दुःस्वप्न, और खराब विचार नष्ट होते हैं और सारे पाप भी धुल जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं है।

अतः स्नानं विना पुंसां प्रभातं कर्म संस्मृतम्।
होमे जप्ये विशेषेण तस्मात्स्नानं समाचरेत्॥ ९॥

अतः प्रातः स्नान किये बिना मनुष्यों का कोई भी कर्म करने में पवित्रता नहीं मानी जाती, होम और जप करने में तो विशेष आवश्यक है। इसलिए प्रातःकाल स्नान करना ही चाहिए।

अशक्तावशिरस्कं वा स्नानमस्य विधीयते।
आर्द्रेण वाससा वाथ मार्ज्जनं कापिलं स्मृतम्॥ १०॥

(रुग्णावस्था में) स्नान करने में असमर्थ होने पर शिर पर बिना पानी डाले स्नान किया जा सकता है अथवा गीले वस्त्र से शरीर पोंछकर भी पवित्र होना कहा गया है।

आयत्ये वै समुत्पन्ने स्नानमेव समाचरेत्।
ब्राह्मादीनामथाशक्तौ स्नानान्याहुर्मनीषिणः॥ ११॥

असहाय (असमर्थ) होने पर भी (किसी भी विधि से) स्नान करना चाहिए। इसलिए अशक्त होने पर विद्वानों ने ब्रह्मादि स्नानों की विधि कही है।

ब्राह्ममाग्नेयमुद्दिष्टं वायव्यं दिव्यमेव च।
वारुणं यौगिकं यच्च षोढा स्नानं समासतः॥ १२॥
ब्राह्मं तु मार्ज्जनं मन्त्रैः कुशैः सोदकबिन्दुभिः।
आग्नेयं भस्मना पादमस्तकाद्देहधूलनम्॥ १३॥
गवां हि रजसा प्रोक्तं वायव्यं स्नानमुत्तमम्।
यत्तु सातपवर्षेण स्नानं तद्दिव्यमुच्यते॥ १४॥
वारुणञ्चावगाहस्तु मानसं स्वात्मवेदनम्।
योगिनां स्नानमाख्यातं योगे विश्वातिचिन्तनम्॥ १५॥
आत्मतीर्थमिति ख्यातं सेवितं ब्रह्मवादिभिः।
मनःशुद्धिकरं पुंसां नित्यं तत्स्नानमाचरेत्॥ १६॥
शक्तश्चेद्वारुणं विद्वान् प्राजापत्यं तथैव च।

ब्राह्म, आग्नेय, वायव्य, दिव्य, वारुण और यौगिक ये छः प्रकार के स्नान संक्षेपतः कहे गये हैं। कुशों को लेकर जलबिन्दुओं से मन्त्रपूर्वक मार्जन करना 'ब्राह्म' स्नान है। भस्म द्वारा मस्तक से लेकर पाँव तक शरीर को लिप्त करना 'आग्नेय' स्नान है। गोधूलि से सर्वाङ्ग लेप करना उत्तम 'वायव्य' स्नान कहा गया है और जो सूर्य के आतप के साथ वर्षा के जल से किया जाने वाला स्नान 'दिव्य' स्नान कहा जाता है। जलाशय के अन्दर स्नान करना 'वारुण' स्नान है। इसी प्रकार अपने मन को आत्मा में निवेदित करना योगियों का यौगिक स्नान कहा गया है। इस योग में सम्पूर्ण

विश्व का आत्म-चिन्तन होता है। यही आत्मतीर्थ नाम से कहा गया है, जो ब्रह्मवादियों द्वारा सेवित है। यह स्नान मनुष्यों के मन को नित्य शुद्ध करने वाला होता है, अतः इसे अवश्य करना चाहिए। परन्तु जो विद्वान् समर्थ हो, उसे वारुण स्नान या प्राजापत्य स्नान करना चाहिए।

प्रक्षाल्य दन्तकाष्ठं वै भक्षयित्वा विधानतः॥ १७॥
आचम्य प्रयतो नित्यं स्नानं प्रातः समाचरेत्।
मध्याङ्गुलिसमस्थौल्यं द्वादशांगुलसम्मितम्॥ १८॥
सत्वचं दन्तकाष्ठं स्यात्तदग्रेण तु धावयेत्।

दातुन को अच्छी तरह धोकर विधिपूर्वक उसको चबाना चाहिए। फिर आचमन करके मुख स्वच्छ करके नित्य प्रातः स्नान करना चाहिए। दातुन भी मध्यम उंगली के तुल्य स्थूल और बारह अंगुल जितना लम्बा तथा छाल से युक्त होना चाहिए। उसके अग्रभाग से दन्तधावन करना चाहिए।

क्षीरवृक्षसमुद्भूतं मालतीसम्भवं शुभम्।
अपामार्गञ्च बिल्वञ्च करवीरं विशेषतः॥ १९॥

वह दातुन बरगद आदि क्षीरवृक्ष[1] का हो, मालती[2] का हो, अपामार्ग[3] या बिल्व का हो। कनेर[4] का विशेषरूप से उत्तम है।

वर्जयित्वा निन्दितानि गृहीत्वैकं यथोदितम्।
परिहृत्य दिनं पापं भक्षयेद्दै विधानवित्॥ २०॥

अन्य निन्दित वृक्षों को छोड़कर यथाविधि एक दातून लेकर प्रातःकाल कर लेना चाहिए। दिन निकल जाने के बाद जो दातुन करता है, वह पाप को ही खाता है, ऐसा विधिज्ञ जन कहते हैं।

नोत्पाटयेद्दन्तकाष्ठं नाङ्गुल्यग्रेण धारयेत्।
प्रक्षाल्य भंक्त्वा तज्जह्याच्छुचौ देशे समाहितः॥ २१॥

उस दन्तकाष्ठ को कहीं से उखाड़ना नहीं चाहिए और उंगलियों के अग्रभाग से भी उसे पकड़ना नहीं चाहिए। उसे करने के बाद धोकर, तोड़कर किसी पवित्र स्थान में छोड़ देना चाहिए।

स्नात्वा सन्तर्पयेद्देवानृषीन् पितृगणांस्तथा।
आचम्य मन्त्रविन्नित्यं पुनराचम्य वाग्यतः॥ २२॥

1. Ficus Indicus.
2. Jasminum grandiflorum.
3. Achyranthes aspera.
4. Nerium odorum soland.

इसके बाद स्नान करके, आचमन करके मन्त्रवेत्ता को देवताओं, ऋषियों तथा पितरों को तर्पण करना चाहिए और पुनः आचमन कर मौन धारण कर लेना चाहिए।

सम्मार्ज्य मन्त्रैरात्मानं कुशैः सोदकबिन्दुभिः।
आपोहिष्ठाव्याहृतिभिः सावित्र्या वारुणैः शुभैः॥ २३॥
ओङ्कारव्याहृतियुतां गायत्रीं वेदमातरम्।
जप्त्वा जलाञ्जलिं दद्याद् भास्करं प्रति तन्मनाः॥ २४॥

फिर मंत्रोच्चारपूर्वक अपने शरीर पर कुशाओं से जलबिन्दुओं द्वारा मार्जन करके 'आपोहिष्ठा' इस मंत्र और गायत्री तथा वरुणदेव की शुभ व्याहृतियों सहित ओंकार-व्याहृतियुक्त वेदमाता गायत्री का जप करके सूर्य के प्रति मन लगाकर जलाञ्जलि देनी चाहिए।

प्राक्कल्पेषु ततः स्थित्वा दर्भेषु सुसमाहितः।
प्राणायामत्रयं कृत्वा ध्यायेत्सन्ध्यामितः स्मृतिः॥ २५॥

पहले से बिछाई हुई कुशासनों पर एकाग्रचित्त से बैठकर तीन प्रकार से प्राणायाम करके सध्या-ध्यान करना चाहिए, ऐसा स्मृतिवचन है।

या च सन्ध्या जगत्सूतिर्मायातीता हि निष्कला।
ऐश्वरी केवला शक्तिस्तत्त्वत्रयसमुद्भवा॥ २६॥

वह सन्ध्या जगत् को उत्पन्न करने वाली होने से माया से रहित और कलातीत है। वही परिपूर्ण केवल ऐश्वरी शक्ति है, जो तीनों तत्त्वों (ब्रह्मा-विष्णु-महेश) से उत्पन्न है।

ध्यात्वार्कमण्डलगतां सावित्रीं वै जपेद्बुधः।
प्राङ्मुखः सततं विप्रः सन्ध्योपासनमाचरेत्॥ २७॥

विद्वान् ब्राह्मण को चाहिए कि सूर्यमण्डल में स्थित सावित्री का जप करे और सदा पूर्व का ओर मुख करके ही सन्ध्योपासना करे।

सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु।
यदन्यत्कुरुते किञ्चिन्न तस्य फलमाप्नुयात्॥ २८॥
अनन्यचेतसः शान्ता ब्राह्मणा वेदपारगाः।
उपास्य विधिवत् सन्ध्यां प्राप्ताः पूर्वेऽपरां गतिम्॥ २९॥

सन्ध्या न करने वाला सदा अपवित्र ही होता है और सभी कार्यों में अयोग्य माना जाता है। सन्ध्योपासना के अतिरिक्त जो अन्य कर्म करता है, उसका उसे फल ही नहीं मिलता है। ऐसा जानकर अन्यत्र चित्त को न लगाते हुए वेद के पारगामी ब्राह्मण शान्त होकर विधिवत् सन्ध्योपासना कर्म करके परम गति को प्राप्त हुए हैं।

योऽन्यत्र कुरुते यत्नं धर्मकार्ये द्विजोत्तमः।
विहाय सन्ध्याप्रणतिं स याति नरकायुतम्॥ ३०॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सन्ध्योपासनमाचरेत्।
उपासितो भवेत्तेन देवो योगतनुः परः॥ ३१॥

जो द्विजोत्तम सन्ध्योपासना को छोड़कर अन्य किसी धर्मकार्य में प्रयत्न करता है, वह हजारों नरकों को प्राप्त होता है। इसलिए सब प्रकार से प्रयत्नपूर्वक सन्ध्योपासना करनी चाहिए। ऐसा करने से योगशरीरधारी परम देव ही उपासित होते हैं।

सहस्रपरमां नित्यं शतमध्यां दशावराम्।
सावित्रीं वै जपेद्विद्वान् प्राङ्मुखः प्रयतः स्थितः॥ ३२॥

विद्वान् पुरुष को प्रयत्नपूर्वक पूर्व की ओर खड़े होकर नित्य उत्तमरूप से एक हजार, मध्यमरूप से एक सौ और निम्नरूप से दस सावित्री मन्त्र का जप करना चाहिए।

अथोपतिष्ठेदादित्यमुद्यन्तं वै समाहितः।
मन्त्रैस्तु विविधैः सौरैः ऋग्यजुःसामसम्भवैः॥ ३३॥

इसके बाद सावधान होकर उगते हुए सूर्य का उपस्थान और आराधन भी ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के सूर्यपरक विविध मंत्रों से करना चाहिए।

उपस्थाय महायोगं देवदेवं दिवाकरम्।
कुर्वीत प्रणतिं भूमौ मूर्ध्ना तेनैव मन्त्रतः॥ ३४॥

इस प्रकार महायोगी देवदेव दिवाकर का उपस्थान करके भूमि पर मस्तक रखकर उन्हीं के मंत्रों द्वारा प्रणामपूर्वक प्रार्थना करनी चाहिए।

ओं खद्योताय च शान्ताय कारणत्रयहेतवे।
निवेदयामि चात्मानं नमस्ते विश्वरूपिणे॥ ३५॥

खद्योतस्वरूप, शान्तस्वरूप और तीनों कारणों के हेतुरूप आपको मैं आत्मनिवेदन करता हूँ। विश्वरूप आपको नमस्कार है।

नमस्ते घृणिने तुभ्यं सूर्याय ब्रह्मरूपिणे।
त्वमेव ब्रह्म परममापोज्योतीरसोऽमृतम्।
भूर्भुवः स्वस्त्वमोङ्कारः शर्वो रुद्रः सनातनः॥ ३६॥

प्रकाशस्वरूप, ब्रह्मस्वरूप आप सूर्य को नमस्कार है। आप ही परब्रह्म, जल, ज्योति, रस और अमृतस्वरूप हो। भूः, भुवः, स्वः, व्याहृति, ओंकार, शर्व और सनातन रुद्र हैं।

पुरुषः सन्महोऽन्तस्थं प्रणमामि कपर्दिनम्।
त्वमेव विश्वं बहुधा जात यज्जायते च यत्।
नमो रुद्राय सूर्याय त्वामहं शरणं गतः॥ ३७॥

आप ही परम पुरुष होकर प्राणियों के भीतर रहने वाले महान् तेजरूप हो। जटाधारी शिवस्वरूप आपको प्रणाम है। आप ही विश्वरूप हैं, जो बहुधा उत्पन्न हुआ है और होता रहता है। रुद्ररूप सूर्य को नमस्कार है, मैं आपकी शरण में आया हूँ।

प्रचेतसे नमस्तुभ्यं नमो मीढुष्टमाय च।
नमो नमस्ते रुद्राय त्वामहं शरणं गतः।
हिरण्यबाहवे तुभ्यं हिरण्यपतये नमः॥ ३८॥

प्रचेतस् वरुणरूप आपको नमस्कार है और मीढुष्टमरूप आपको नमस्कार है। रुद्ररूप आपको बार बार नमस्कार है, मैं आपकी शरण में आया हूँ। हिरण्यबाहु और हिरण्यपति आपको नमस्कार है।

अम्बिकापतये तुभ्यमुमायाः पतये नमः।
नमोऽस्तु नीलग्रीवाय नमस्तुभ्यं पिनाकिने॥ ३९॥
विलोहिताय भर्गाय सहस्राक्षाय ते नमः।
तमोऽपहाय ते नित्यमादित्याय नमोऽस्तु ते॥ ४०॥

अम्बिकापति, पार्वतीपति, नीलग्रीव, पिनाकपाणि आपको नमस्कार है। विशेष लाल रंग वाले, भर्ग तथा सहस्राक्ष आपको नमस्कार है। नित्य अंधकार को नष्ट करने वाले आदित्यरूप आपको नमस्कार है।

नमस्ते वज्रहस्ताय त्र्यम्बकाय नमो नमः।
प्रपद्ये त्वां विरूपाक्षं महान्तं परमेश्वरम्॥ ४१॥
हिरण्मये गृहे गुप्तमात्मानं सर्वदेहिनाम्।
नमस्यामि परं ज्योतिर्ब्रह्माणं त्वां परामृतम्॥ ४२॥

हाथ में वज्र धारण करने वाले और त्रिनेत्रधारी आपको नमस्कार है। आप विरूपाक्ष तथा महान् परमेश्वर की शरण में जाता हूँ। सर्वप्राणियों के अन्तःकरणरूप सुवर्णमय गृह में गुप्त आत्मरूप में विराजमान परम ज्योतिस्वरूप, ब्रह्मारूप, परम अमृतस्वरूप आपको नमस्कार करता हूँ।

विश्वं पशुपतिं भीमं नरनारीशरीरिणम्।
नमः सूर्याय रुद्राय भास्वते परमेष्ठिने॥ ४३॥
उग्राय सर्वभक्षाय त्वां प्रपद्ये सदैव हि।

विश्वमय, पशुपतिरूप, भीम और अर्धनारीश्वररूप, रुद्रस्वरूप, परमेष्ठीरूप प्रकाशमान सूर्य को नमस्कार है। उग्ररूप होने से सब का भक्षण करने वाले आपकी शरण में आता हूँ।

एतद्वै सूर्यहृदयं जप्त्वा स्तवमनुत्तमम्॥४४॥
प्रातःकालेऽथ मध्याह्ने नमस्कुर्याद्दिवाकरम्।
इदं पुत्राय शिष्याय धार्मिकाय द्विजातये॥४५॥
प्रदेयं सूर्यहृदयं ब्रह्मणा तु प्रदर्शितम्।

इस सर्वोत्तम सूर्यहृदय स्तोत्र का मन में पाठ करके प्रातःकाल अथवा मध्याह्न काल में सूर्य को नमस्कार करें। ब्रह्मा द्वारा बताये गये इस सूर्यहृदय स्तोत्र को अपने पुत्र, शिष्य तथा द्विजाति के धार्मिक पुरुष को अवश्य देना चाहिए।

सर्वपापप्रशमनं वेदसारसमुद्भवम्।
ब्राह्मणानां हितं पुण्यमृषिसङ्घैर्निषेवितम्॥४६॥

यह स्तोत्र समस्त पापों को शान्त करने वाला, वेदों के साररूप में उत्पन्न, ब्राह्मणों के लिए हितकारी, पुण्यमय और ऋषियों के समुदाय द्वारा सुसेवित है।

अथागम्य गृहं विप्रः समाचम्य यथाविधि।
प्रज्वाल्य वह्निं विधिवज्जुहुयाज्जातवेदसम्॥४७॥

इसके बाद ब्राह्मण को अपने घर आकर विधिपूर्वक आचमन करके अग्नि को प्रज्वलित करके यथाविधि उसमें होम करना चाहिए।

ऋत्विक् पुत्रोऽथ पत्नी वा शिष्यो वापि सहोदरः।
प्राप्यानुज्ञां विशेषेण ह्यध्वर्युर्वा यथाविधि॥४८॥
पवित्रपाणिः पूतात्मा शुक्लाम्बरधरः शुचिः।
अनन्यमनसा नित्यं जुहुयात्संयतेन्द्रियः॥४९॥

ऋत्विक्, पुत्र, पत्नी, शिष्य, सहोदर अथवा अध्वर्यु भी विशेष अनुज्ञा प्राप्त करके विधिपूर्वक पवित्री हाथ में धारण कर पवित्रात्मा होकर, श्वेत वस्त्र धारण करके, पवित्र होकर इन्द्रियों को संयत करके अनन्यचित्त से नित्य होम कर सकते हैं।

विना दर्भेण यत्कर्म विना सूत्रेण वा पुनः।
राक्षसं तद्भवेत्सर्वं नामुत्रेह फलप्रदम्॥५०॥

बिना कुश के और बिना यज्ञोपवीत के जो कर्म किया जाता है, वह सब राक्षस के लिए होता है। उसका फल न तो इस लोक में मिलता है न परलोक में।

दैवतानि नमस्कुर्यादुपहारान्निवेदयेत्।
दद्यात्पुष्पादिकं तेषां वृद्धांश्चैवाभिवादयेत्॥५१॥

प्रत्येक द्विज को चाहिए कि वह देवताओं को नमस्कार करे और उन्हें नैवेद्यादि अर्पित करे। बाद में पुष्पाञ्जलि अर्पित करे तथा अपने से बड़े लोगों का अभिवादन करे।

गुरुञ्चैवाप्युपासीत हितञ्चास्य समाचरेत्।
वेदाभ्यासं ततः कुर्यात्प्रयत्नाच्छक्तितो द्विजः॥५२॥

उसी तरह गुरु की भी सेवा करे तथा उनके हित के लिए आचरण करे। तदनन्तर द्विज को अपनी शक्ति के अनुसार वेदाभ्यास करना चाहिए।

जपेदध्यापयेच्छिष्यान्धारयेद्वै विचारयेत्।
अवेक्ष्य तच्च शास्त्राणि धर्मादीनि द्विजोत्तमाः॥५३॥

श्रेष्ठ ब्राह्मणों को धर्मशास्त्रों का अवलोकन करते हुए जप करना चाहिए तथा शिष्यों को उसका अध्यापन कराना चाहिए, उसे कण्ठस्थ करावें और उन पर विचार-विमर्श करना चाहिए।

वैदिकांश्चैव निगमान्वेदांगानि च सर्वशः।
उपेयादीश्वरं वाथ योगक्षेमप्रसिद्धये॥५४॥
साधयेद्विविधानर्थान् कुटुम्बार्थे ततो द्विजः।
ततो मध्याह्नसमये स्नानार्थं मृदमाहरेत्॥५५॥

इसके अतिरिक्त वेदशास्त्र, आगम और सभी वेदांगों का स्वाध्याय करें और अपने जीवन के सुन्दर निर्माण हेतु ईश्वर की शरण में जाय। द्विज को चाहिए कि वह अपने परिवार के लिए विविध पदार्थों का संपादन करे। इसके बाद मध्याह्न काल में स्नान के लिए मिट्टी का संग्रह करे।

पुष्पाक्षतान् कुशतिलान् गोशकृच्छुद्धमेव वा।
नदीषु देवखातेषु तडागेषु सरस्सु च।
स्नानं समाचरेन्नित्यं गर्तप्रस्रवणेषु च॥५६॥

पुष्प, आक्षत, कुश, तिल तथा पवित्र गाय का गोबर भी लाना चाहिए। सदा नदियों, जलाशयों, तालाबों, सरोवरों, स्वाभाविक गर्त से प्रवाहित झरनों आदि में स्नान करना चाहिए।

परकीयनिपानेषु न स्नायाद्वै कदाचन।
पञ्चपिण्डान्समुद्धृत्य स्नायाद्वा सम्भवे पुनः॥५७॥
मृदैकया शिरः क्षाल्यं द्वाभ्यां नाभेस्तथोपरि।
अधस्तु तिसृभिः कार्यः पादौ षड्भिस्तथैव च॥५८॥

दूसरों के जलाशयों में कभी भी स्नान नहीं करना चाहिए। यदि सार्वजनिक जलाशय उपलब्ध न हों, तो दूसरे के जलाशय में से पाँच पिण्डों को निकालकर फिर उसमें स्नान करना चाहिए। सबसे पहले मिट्टी से शिर को, फिर दो बार नाभि और उसके ऊपरी भाग को धोये। उसी तरह तीन बार नाभि से नीचे का भाग और पैरों को छः बार प्रक्षालित करे।

मृत्तिका च समुद्दिष्टा सार्द्रामलकमात्रिका।
गोमयस्य प्रमाणस्तु तेनाङ्गं लेपयेत्पुन:॥५९॥
लेपयित्वा तीरसंस्थं तल्लिङ्गैरेव मन्त्रत:।
प्रक्षाल्याचम्य विधिवत्तत: स्नायात्समाहित:॥६०॥

मिट्टी गीली होनी चाहिए और उसका प्रमाण एक आँवले के बराबर बताया गया है। पुन: उतने ही प्रमाण का गोबर लेकर शरीर पर लेप करना चाहिए। (जलाशयादि के) तट पर रखे हुए उस गोबर से उस उस अंग से संबंधित मंत्र से उस उस अंग पर लेप करने के बाद पुन: उसे धोकर विधिवत् आचमन करके एकाग्रचित्त होकर स्नान करना चाहिए।

अभिमन्त्र्य जलं मन्त्रैस्तल्लिङ्गैर्वारुणै: शुभै:।
भावपूतस्तदव्यक्तं धारयेद्विष्णुमव्ययम्॥६१॥

उस समय तत्सम्बन्धी वरुण देवता के शुभ मंत्रों से जल को अभिमंत्रित करके पुन: पवित्र भावों से युक्त होकर अव्यक्त, अविनाशी विष्णु का ध्यान करना चाहिए।

आपो नारायणोद्भूतास्ता एवास्यायनं पुन:।
तस्मान्नारायणं देवं स्नानकाले स्मरेद्बुध:॥६२॥
प्रेक्ष्य सोङ्कारमादित्यं त्रिर्निमज्जेज्जलाशये॥६३॥
आचान्त: पुनराचामेन्मन्त्रेणानेन मन्त्रवित्॥६४॥

ये जल नारायण से ही समुद्भूत हैं और ये ही जल उनका भी आश्रयस्थान है। इसलिए स्नान के समय विद्वान् पुरुष को नारायण देव का अवश्य स्मरण करना चाहिए। ओम् का उच्चारण करते हुए सूर्य का ओर देखकर जलाशय में तीन बार डूबकी लगानी चाहिए। इसके बाद मन्त्रवेत्ता को निम्न मंत्र के द्वारा एक बार आचमन किया होने पर भी पुन: आचमन करना चाहिए।

अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतोमुख:।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार आपो ज्योतीरसोऽमृतम्॥६५॥

हे विश्वतोमुख! आप प्राणिमात्र के अन्त:करणरू गुफा में विचरण करते हैं। आप ही यज्ञ, वषट्कार, जल, ज्योति, रस और अमृतस्वरूप हैं।

द्रुपदां वा त्रिरभ्यस्येद्व्याहृतिं प्रणवान्विताम्।
सावित्रीं वा जपेद्विद्वांस्तथा चैवाघमर्षणम्॥६६॥

अथवा तीन बार 'द्रुपदा' मंत्र का उच्चारण करना चाहिए तथा ओंकार सहित व्याहृतियों का पाठ करना चाहिए अथवा प्रणव सहित गायत्री का जप करे। इस प्रकार विद्वान् को अघमर्षण सूक्त का भी जप करना चाहिए।

तत: सम्मार्ज्जनं कुर्यात् आपोहिष्ठा मयो भुव:।
इदमाप: प्रवहतो व्याहृतिभिस्तथैव च॥६७॥
तथाभिमन्त्र्य तत्तोयमापो हिष्ठादिभिस्त्रिभि:।
अन्तर्जलगतो मग्नो जपेत्त्रिरघमर्षणम्॥६८॥

इसके पश्चात् 'आपोहिष्ठा मयो भुव:' और 'इदमाप: प्रवहतो' मंत्र और व्याहृतियों से सम्मार्जन करना चाहिए। उस प्रकार 'आपो हिष्ठा' आदि तीन मंत्रों से जल को अभिमंत्रित करके जल के अन्दर डूबकी लगाते हुए अघमर्षण मंत्र का तीन बार जप करना चाहिए।

द्रुपदां वाथ सावित्रीं तद्विष्णो: परमं पदम्।
आवर्तयेद्वा प्रणवं देवं वा संस्मरेद्धरिम्॥६९॥

उसी प्रकार द्रुपदा और सावित्री का भी पाठ करना चाहिए क्यों कि यह विष्णु का ही परम पद है। अथवा ओंकार का बार-बार जप करना चाहिए या भगवान् विष्णु का स्मरण करते रहना चाहिए।

द्रुपदादिव यो मन्त्रो यजुर्वेदे प्रतिष्ठित:।
अन्तर्जले त्रिरावर्त्य सर्वपापै: प्रमुच्यते॥७०॥

यजुर्वेद में प्रतिष्ठित द्रुपदादि मंत्र को जल के भीतर रहते हुए जो तीन बार आवृत्ति करता है वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।

अप: पाणौ समादाय जप्त्वा वै मार्जने कृते।
विन्यस्य मूर्ध्नि तत्तोयं मुच्यते सर्वपातकै:॥७१॥

शरीर की शुद्धि करने के बाद अथेली में जल लेकर मन्त्र का जप करते हुए उस जल को सिर पर डालने से समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।

यथाश्वमेध: क्रतुराट् सर्वपापापनोदन:।
तथाघमर्षणं प्रोक्तं सर्वपापापनोदनम्॥७२॥

जैसे यज्ञों में सर्वश्रेष्ठ अश्वमेध यज्ञ समस्त पापों का नाश करना वाला होता है वैसे ही अघमर्षण सूक्त सम्पूर्ण पापों को दूर करता है।

अथोपतिष्ठेदादित्यमूर्ध्वं पुष्पाक्षतान्वितम्।
प्रक्षिप्यालोकयेद्देवं मूर्ध्वं यस्तमस: पर:॥७३॥

इसके अनन्तर पुष्प और अक्षत युक्त जल को ऊपर की ओर छिड़क कर अन्धकार से रहित उदित होने वाले सूर्य को ऊपर की ओर मुँह करके देखना चाहिए।

उदुत्यं चित्रमित्येते तच्चक्षुरिति मन्त्रत:।
हंस: शुचिषदन्तेन सावित्र्या सविशेषत:॥७४॥

अन्यैश्च वैदिकैर्मन्त्रैः सौरैः पापप्रणाशनैः।
सावित्रीं वै जपेत्पश्चाज्जपयज्ञः स वै स्मृतः॥७५॥

'उदुत्यं' 'चित्रं' तच्चक्षुः', हंसः 'शुचिषत्', इन वैदिक मन्त्रों से सूर्योपस्थान करना चाहिए। तत्पश्चात् सावित्री मन्त्र जपना चाहिए, सावित्री जप को ही जपयज्ञ कहा गया है।

विविधानि पवित्राणि गुह्यविद्यास्तथैव च।
शतरुद्रीयं शिरसं सौरान्मन्त्रांश्च सर्वतः॥७६॥

इस के अतिरिक्त पवित्र, विविध मन्त्र और गुप्त विद्याएँ शतरुद्रीय और अथर्वशिरस् स्तोत्र और अपनी इच्छा अनुसार अन्य सूर्य सम्बन्धी मन्त्रों का भी यथाशक्ति पाठ करना चाहिए।

प्राक्कूलेषु समासीनः कुशेषु प्राङ्मुखः शुचिः।
तिष्ठंश्च वीक्षमाणोऽर्कं जप्यं कुर्यात् समाहितः॥७७॥

जलाशय के पूर्व दिशा की ओर कुशासन पर बैठकर पूर्व की ओर मुख करके शुद्ध और एकाग्रचित्त होकर सूर्य की ओर देखते हुए जप करना चाहिए।

स्फाटिकेन्द्राक्षरुद्राक्षैः पुत्रजीवसमुद्भवैः।
कर्तव्या त्वक्षमाला स्यादुत्तरादुत्तमा स्मृता॥७८॥

जप करते समय स्फटिक की माला इन्द्राक्ष, रुद्राक्ष या पुत्रजीव औषधि विशेष से उत्पन्न बीजों की माला लेकर जप करना चाहिए। इसमें यदि रुद्राक्ष की माला हो तो उत्तरोत्तर श्रेष्ठ मानी गई है।

जपकाले न भाषेत व्यंगा न प्रक्षयेद्बुधः।
न कंपयेच्छिरो ग्रीवां दन्तान्नैव प्रकाशयेत्॥७९॥

जिस समय जप किया जा रहा हो उस समय बुद्धिमान मनुष्य को कुछ भी बोलना नहीं चाहिए। दूसरी ओर देखना नहीं चाहिए, सिर तथा गर्दन कम्पाना नहीं चाहिए और दाँत भी नहीं निकालने चाहिए।

गुह्यका राक्षसा सिद्धा हरन्ति प्रसभं यतः।
एकान्तेषु शुचौ देशे तस्माज्जप्यं समाचरेत्॥८०॥

जप करते समय एकान्त और पवित्र स्थान में बैठ कर ही जप करना चाहिए अन्यथा गुह्यक, राक्षस और सिद्धगण उस जप के फल को बलपूर्वक हरण कर लेते हैं।

चण्डालाशौचपतितान् दृष्ट्वा चैव पुनर्जपेत्।
तैरेव भाषणं कृत्वा स्नात्वा चैव पुनर्जपेत्॥८१॥

उस समय चाण्डाल, पतित और अपवित्र अर्थात् सूतकी व्यक्ति को देख लेने पर आचमन करके पुनः जप करना चाहिए। ऐसे नीच लोगों के साथ यदि बातचीत हो जाए तो स्नान करके ही पुनः जप करना चाहिए।

आचम्य प्रयतो नित्यं जपेदशुचिदर्शने।
सौरान्मन्त्रान् शक्तितो वै पावमानीस्तु कामतः॥८२॥

प्रतिदिन नियमानुसार आचमन करके अपनी शक्ति के अनुसार स्वाध्याय भी करना चाहिए और अपवित्र व्यक्ति को देख लेने पर सूर्य के मन्त्र अथवा पावमानी मन्त्र का जप करना चाहिए।

यदि स्यात् क्लिन्नवासा वै वारिमध्ये गतोऽपि वा।
अन्यथा तु शुचौ भूम्यां दर्भेषु सुसमाहितः॥८३॥

यदि गीले वस्त्र पहनकर जप करना हो तो उसे जल के भीतर रह कर ही जप करना चाहिए अन्यथा सूखा वस्त्र पहनकर पवित्र भूमि पर कुशासन पर एकाग्रचित्त से जप करना चाहिए।

प्रदक्षिणं समावृत्य नमस्कृत्य ततः क्षितौ।
आचम्य च यथाशास्त्रं भक्त्या स्वाध्यायमाचरेत्॥८४॥

इसके पश्चात् सूर्य की परिक्रमा करके भूमि को नमस्कार करके आचमन करने के बाद शास्त्र विधि के अनुसार स्वाध्याय करना चाहिए।

ततः सन्तर्पयेद्देवानृषीन् पितृगणास्तथा।
आदावोङ्कारमुच्चार्य नामान्ते तर्पयामि वः॥८५॥

इसके अनन्तर देवताओं, ऋषियों तथा पित्रों का तर्पण करना चाहिए, उस समय हाथ में जल लेकर ॐ का उच्चारण करते हुए नाम के अन्त में 'तर्पयामि वः' अर्थात् मैं आपको तृप्त करता हूँ— ऐसा कहना चाहिए।

देवान् ब्रह्मऋषींश्चैव तर्पयेदक्षतोदकैः।
तिलोदकैः पितृन् भक्त्या स्वसूत्रोक्तविधानतः॥८६॥

उस समय अपनी शाखा के गृह्यसूत्र में बताए हुए नियम के अनुसार ही देवताओं तथा ऋषियों को अक्षतयुक्त जल से तथा पितरों को तिल युक्त जल से भक्तिपूर्वक तर्पण करना चाहिए।

अन्वारब्धेन सव्येन पाणिना दक्षिणेन तु।
देवर्षींस्तर्पयेद्धीमानुदकाञ्जलिभिः पितृन्।
यज्ञोपवीती देवानां निवीती ऋषितर्पणे॥८७॥
प्राचीनावीती पित्र्ये तु स्वेन तीर्थेन भावितः।

बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि वह देवों को तथा ऋषियों को बाँये तथा दाहिने हाथ की अंजलि में जल लेकर तर्पण

करें। उसी प्रकार देवों को तर्पण करते समय द्विज को तर्पणरूप कर्म में यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए। ऋषियों के तर्पण में यज्ञोपवीत को माला के रूप में और पितरों के तर्पण में दक्षिण की ओर यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए और अपने तीर्थ स्थान के द्वारा भक्ति भाव से युक्त होना चाहिए।

निष्पीड्य स्नानवस्त्रं तु समाचम्य च वाग्यत:।
स्वैर्मन्त्रैरर्चयेद्देवान् पुष्पै: पत्रैरथाम्बुभि:॥८८॥

तदनन्तर भीगे वस्त्रों को निचोड़ कर आचमन करके, वाणी को संयमित रखते हुए, देवताओं का तत्संबन्धित मन्त्रों द्वारा पुष्प, पत्र और जल से पूजन करना चाहिए।

ब्रह्माणं शङ्करं सूर्यं तथैव मधुसूदनम्।
अन्यांश्चाभिमतान्देवान् भक्त्याचारो नरोत्तम:॥८९॥

हे नरोत्तम! ब्रह्मा, शिव, सूर्य, मधुसूदन-विष्णु एवं अन्यान्य अभीष्ट देवताओं को भक्तिभाव से पूजना चाहिए।

प्रदद्याद्वाथ पुष्पाणि सूक्तेन पौरुषेण तु।
आपो वै देवता: सर्वास्तेन सम्यक् समर्चिता:॥९०॥

अथवा पुरुषसूक्त के मन्त्रों से स्तुति करते हुए पुष्प और जल प्रदान करना चाहिए। ऐसा करने से सभी देवता भलीभाँति पूजित हो जाते हैं।

ध्यात्वा प्रणवपूर्वं दैवतानि समाहित:।
नमस्कारेण पुष्पाणि विन्यसेद्वै पृथक् पृथक्॥९१॥

समाहितचित्त होकर ॐ का उच्चारण करने के पश्चात्, सभी देवताओं का ध्यान करके पृथक्-पृथक् रूप से सभी देवताओं को नमस्कारपूर्वक पुष्प अर्पित करने चाहिए।

विष्णोराराधनात्पुण्यं विद्यते कर्म वैदिकम्।
तस्मादनादिमध्यान्तं नित्यमाराधयेद्धरिम्॥९२॥

विष्णु की आराधना के अतिरिक्त अन्य कोई भी पुण्य प्रदान करने वाला वैदिक कर्म नहीं है, इसलिए आदि, मध्य और अन्त रहित विष्णु की नित्य आराधना करनी चाहिए।

तद्विष्णोरिति मन्त्रेण सूक्तेन सुसमाहितो:।
न ताभ्यां सदृशो मन्त्रो वेदेषूक्तश्चतुर्ष्वपि॥
तदात्मा तन्मना: शान्तस्तद्विष्णोरिति मन्त्रत:॥९३॥
अथवा देवमीशानं भगवन्तं सनातनम्।
आराधयेन्महादेवं भावपूतो महेश्वरम्॥९४॥

उस समय 'तद्विष्णो:' इस मन्त्र से और पुरुषसूक्त से समाहितचित्त होकर मंत्र जपना चाहिए क्योंकि इनके समान मन्त्र चारों वेदों में भी नहीं है। अत: तन्मय होकर विष्णु में चित्त लगाकर, शान्त भाव से, 'तद्विष्णो:' मन्त्र का पाठ करना चाहिए। अथवा सनातन, महादेव, ईशानदेव, भगवान् शंकर की भक्तिभाव से आराधना करनी चाहिए।

मन्त्रेण रुद्रगायत्र्या प्रणवेनाथ वा पुन:।
ईशानेनाथवा रुद्रैस्त्र्यम्बकेन समाहित:॥९५॥
पुष्पै: पत्रैरथाद्भिर्वा चन्दनाद्यैर्महेश्वरम्।
उक्त्वा नम: शिवायेति मन्त्रेणानेन वा जपेत्॥९६॥

एकाग्रचित्त होकर रुद्रगायत्री, प्रणव, ईशान, शतरुद्रिय और त्र्यम्बक मन्त्र का उच्चारण करके पुष्प, विल्वपत्र अथवा चन्दनादियुक्त केवल जल से 'नम: शिवाय' मन्त्र से उसका जप करते हुए भगवान् शङ्कर की पूजा करनी चाहिए।

नमस्कुर्यान्महादेवं त मृत्युंजयमीश्वरम्।
निवेदयीत स्वात्मानं यो ब्रह्माणमितीश्वरम्॥९७॥

तदनन्तर मृत्युञ्जय, देवेश्वर महादेव को नमस्कार करके 'यो ब्रह्माणं' आदि मन्त्र का पाठ करते हुए, ईश्वर के प्रति आत्म-समर्पण करना चाहिए।

प्रदक्षिणं द्विज: कुर्यात्पञ्च वर्षाणि वै बुध:।
ध्यायीत देवमीशानं व्योममध्यगतं शिवम्॥९८॥

विद्वान् ब्राह्मण को पाँच वर्षों तक प्रदक्षिणा करनी चाहिए और आकाश के मध्यस्थित ईशानदेव, भगवान् शिव का ध्यान करना चाहिए।

अथावलोकयेदर्कं हंस: शुचिषदित्यृचा।
कुर्वन् पंच महायज्ञान् गृहं गत्वा समाहित:॥९९॥
देवयज्ञं पितृयज्ञं भूतयज्ञं तथैव च।
मानुष्यं ब्रह्मयज्ञं च पंचयज्ञान् प्रचक्षते॥१००॥

'हंस: शुचिषत्' ऋक् स्तुति द्वारा सूर्य का दर्शन करना चाहिए। तदन्तर घर जाकर एकाग्रचित्त से पंच महायज्ञ करने चाहिए। वे पंचयज्ञ हैं— देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ, मनुष्ययज्ञ तथा ब्रह्मयज्ञ।

यदि स्यात्तर्पणादर्वाक् ब्रह्मयज्ञ: कृतो न हि।
कृत्वा मनुष्ययज्ञं वै तत: स्वाध्यायमाचरेत्॥१०१॥

यदि तर्पण से पूर्व ब्रह्मयज्ञ न किया जाय तो मनुष्ययज्ञ (अतिथि सेवा) सम्पन्न करने के उपरान्त वेदाध्ययनरूप स्वाध्याय (ब्रह्मयज्ञ) करना चाहिए।

अग्ने: पश्चिमतो देशे भूतयज्ञान्त एव च।
कुशपुञ्जे समासीन: कुशपाणि: समाहित:॥ १०२॥

समाहित होकर कुशपुञ्ज पर बैठकर तथा हाथ में कुशा धारण करके अग्नि के पश्चिम भाग में भूतयज्ञ (पशु आदि को अन्न देना) सम्पन्न करना चाहिए।

शालाग्नौ लौकिके वाथ जले भूम्यामथापि वा।
वैश्वदेवश्च कर्तव्यो देवयज्ञ: स वै स्मृत:॥ १०३॥

यज्ञशाला की अग्नि, लौकिकाग्नि, जल या भूमि में वैश्वदेव होम करना चाहिए, उसे देवयज्ञ कहा जाता है।

यदि स्याल्लौकिके पक्षे ततोऽन्नं तत्र हूयते।
शालाग्नौ तत्पचेदन्नं विधिरेष सनातन:॥ १०४॥

यदि लौकिकाग्नि में भोजन पकाया गया हो तो लौकिकाग्नि में और शालाग्नि में बनाया गया हो तो शालाग्नि में ही वैश्वदेव होम करना चाहिए, यही सनातन विधान है।

देवेभ्यश्च हुतादन्नाच्छेषाद्भूतबलिं हरेत्।
भूतयज्ञ: स विज्ञेयो भूतिद: सर्वदेहिनाम्॥ १०५॥

वैश्वदेव होम से बचे हुए अन्न से भूतबलि कर्म करना चाहिए। यह भूतयज्ञ समस्त प्राणियों को ऐश्वर्य प्रदान करने जानना चाहिए।

श्वभ्यश्च श्वपचेभ्यश्च पतितादिभ्य एव च।
दद्याद्भूमौ बहिश्चान्नं पक्षिभ्यो द्विजसत्तमा:॥ १०६॥

हे द्विजश्रेष्ठो! पतित, चाण्डाल, कुक्कुर और पक्षियों को वह अन्न घर से बाहर भूमि पर देना चाहिए।

सायञ्चान्नस्य सिद्धस्य पत्न्यमन्त्रं बलिं हरेत्।
भूतयज्ञस्त्वयं नित्यं सायम्प्रातर्यथाविधि॥ १०७॥

सायंकाल पके हुए अन्न से बिना मन्त्र बोले ही पत्नी बलि प्रदान करे तथा प्रतिदिन प्रात: और सायंकाल विधिपूर्वक भूतयज्ञ करे।

एकन्तु भोजयेद्विप्रं पितॄनुद्दिश्य सन्ततम्।
नित्यश्राद्धं तदुद्दिष्टं पितृयज्ञो गतिप्रद:॥ १०८॥

पितरों के निमित्त प्रतिदिन एक ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए। यही नित्यश्राद्ध कहा गया है और यही गतिप्रद पितृयज्ञ है।

उद्धृत्य वा यथाशक्ति किञ्चिदन्नं समाहित:।
वेदतत्त्वार्थविदुषे द्विजायैवोपपादयेत्॥ १०९॥

वेद के तत्त्वार्थ को जानने वाले किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण को यथाशक्ति थोड़ा सा अन्न लेकर सावधानीपूर्वक दान करना चाहिए।

पूजयेदतिथिं नित्यं नमस्येदर्चयेद्विभुम्।
मनोवाक्कर्मभि: शान्तं स्वागतं स्वगृहं गत:॥ ११०॥

इसी प्रकार घर पर आए हुए शान्त स्वभाव वाले अतिथि की मन, वचन और कर्म से सदा पूजा करनी चाहिए तथा नमस्कार और यथाशक्ति आदर सत्कार भी करना चाहिए।

अन्वारब्धेन सव्येन पाणिना दक्षिणेन तु।
हन्तकारमथान्नं वा भिक्षां वा शक्तितो द्विज:॥ १११॥
दद्यादतिथये नित्यं बुध्येत परमेश्वरम्।

बाएँ हाथ से थामकर, दाहिने हाथ से अतिथियों को प्रतिदिन अपने सामर्थ्य के अनुसार हन्तकार, अग्र या भिक्षा करनी चाहिए। अतिथि को सदा परमेश्वररूप ही मानना चाहिए।

भिक्षामाहुर्ग्रासमात्रामग्रं तत्स्याच्चतुर्गुणम्॥ ११२॥
पुष्कलं हन्तकारन्तु तच्चतुर्गुणमुच्यते।

एक ग्रास के बराबर अन्न देना भिक्षा कहलाती है, उसका चौगुना अग्र होता है और अग्र का चौगुना पुष्कल अन्न हन्तकार कहलाता है।

गोदोहकालमात्रं वै प्रतीक्ष्यो ह्यतिथि: स्वयम्॥ ११३॥
अभ्यागतान्यथाशक्ति पूजयेदतिथीन्सदा॥

गो-दोहन के समय तक ही किसी अतिथि की भिक्षा के लिए प्रतीक्षा करनी चाहिए। स्वयं अतिथि को भी उतने ही काल तक रुकना चाहिए। आए हुए अतिथियों की सदैव अपनी शक्ति के अनुसार पूजा करनी चाहिए।

भिक्षां वै भिक्षवे दद्याद्विधिवद्ब्रह्मचारिणे।
दद्यादन्नं यथाशक्ति ह्यर्थिभ्यो लोभवर्जित:॥ ११४॥

भिक्षु और ब्रह्मचारी को विधिवत् भिक्षा देनी चाहिए और लोभवर्जित होकर यथाशक्ति याचकों को अन्न देना चाहिए।

सर्वेषामप्यलाभे हि त्वन्नं गोभ्यो निवेदयेत्।
भुञ्जीत बहुभि: सार्द्धं वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन्॥ ११५॥

यदि ये सभी (याचक) न मिले अर्थात् घर पर न आवे तो, वह अन्न गाय को ही दे देना चाहिए। तत्पश्चात् बहुत से लोगों के साथ अर्थात् परिजनों के साथ मौन होकर अन्न की निन्दा न करते हुए भोजन करना चाहिए।

अकृत्वा तु द्विज: पञ्च महायज्ञान् द्विजोत्तमा:।
भुञ्जीत चेत्स मूढात्मा तिर्यग्योनिं स गच्छति॥ ११६॥

हे उत्तम ब्राह्मणो! परन्तु यदि कोई द्विज पंच महायज्ञ किए बिना अन्न ग्रहण करता है, तो वह दुर्बुद्धि युक्त मनुष्य पक्षी-योनि में जन्म ग्रहण करता है।

वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्त्या महायज्ञ: क्रियाक्षया।
नाशयन्त्याशु पापानि देवताभ्यर्चनं तथा॥ ११७॥

पंच महायज्ञ करने में असमर्थ होने पर प्रतिदिन शक्ति के अनुसार वेदाभ्यास तथा देवताओं का पूजन करना चाहिए। ऐसा करने से सभी पाप शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।

यो मोहादथवाज्ञानादकृत्वा देवतार्चनम्।
भुंक्ते स याति नरकं सूकरं नात्र संशय:॥ ११८॥

जो मोहवश अथवा अज्ञानवश, देवपूजन किए बिना भोजन करता है, वह मरणोपरान्त नरक में जाता है और शूकर योनि में जन्म लेता है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कृत्वा कर्माणि वै द्विजा:।
भुञ्जीत स्वजनै: सार्द्धं स याति परमां गतिम्॥ ११९॥

अत: सभी प्रकार से यत्नपूर्वक जो ब्राह्मण विधिपूर्वक कर्म संपादित करके सगे-सम्बन्धियों के साथ बैठकर भोजन करता है, वह परम गति को प्राप्त करता है।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासु ब्राह्मणानां नित्यकर्तव्यकर्मनिरूपणं नाम अष्टादशोऽध्याय:॥ १८॥

एकोनविंशोऽध्याय:
(ब्राह्मणों के नित्यकर्मों में भोजनादिप्रकार)

व्यास उवाच

प्राङ्मुखोऽन्नानि भुञ्जीत सूर्याभिमुख एव वा।
आसीन: स्वासने शुद्धे भूम्यां पादौ निधाय च॥ १॥

व्यास बोले— शुद्ध और अपने ही आसन पर बैठकर पैरों को भूमि पर रखकर, पूर्व दिशा की ओर अथवा सूर्य की तरफ मुँह करके अन्न ग्रहण करना चाहिए।

आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्यं दक्षिणामुख:।
श्रियं प्रत्यङ्मुखो भुङ्क्ते ऋतं भुङ्क्ते ह्युदङ्मुख:॥ २॥

दीर्घायु की कामना करने वालों को पूर्व दिशा की ओर, यश की इच्छा रखने वाले को दक्षिण दिशा की ओर, सम्पत्ति की कामना करने वालों को पश्चिम दिशा की ओर सत्य-फल की प्राप्ति की इच्छा रखने वालों को उत्तर दिशा की ओर मुख करके भोजन करना चाहिए।

पञ्चार्द्रो भोजनं कुर्याद्भूमौ पात्रं निधाय च।
उपवासेन तत्तुल्यं मनुराह प्रजापति:॥ ३॥

पाँचों अङ्गों को धोकर और भोजन के पात्र को भूमि पर रखकर भोजन करना चाहिए। प्रजापति मनु ने ऐसे भोजन को उपवास के तुल्य कहा है (माना है)।

उपलिप्ते शुचौ देशे पादौ प्रक्षाल्य वै करौ।
आचम्यार्द्राननोऽक्रोध: पञ्चार्द्रो भोजनं चरेत्॥ ४॥

दोनों पैर, दोनों हाथ और मुख— ये पाँच अङ्ग धोकर, गोबर से लिपे हुए स्वच्छ स्थान पर बैठकर, आचमन करके, क्रोध रहित अवस्था में भोजन करना चाहिए।

महाव्याहृतिभिस्त्वन्नं परिधायोदकेन तु।
अमृतोपस्तरणमसीत्यापोशानक्रियाञ्चरेत्॥ ५॥

महाव्याहृति का पाठ करते हुए, अन्न को जल से चारों ओर से परिधि बनाकर 'अमृतोपस्तरणमसि'[1] मन्त्र का पाठ करके, जल की आचमनरूप अपाशन क्रिया करनी चाहिए।

स्वाहाप्रणवसंयुक्तां प्राणायाद्याहुतिं तत:।
अपानाय ततो भुक्त्वा व्यानाय तदनन्तरम्॥ ६॥
उदानाय तत: कुर्यात्समानायेति पञ्चमम्।
विज्ञाय तत्त्वमेतेषां जुहुयादात्मनि द्विज:॥ ७॥

उसके बाद ॐ के साथ (पंच)प्राणादि आहुति करनी चाहिए अर्थात् ''ॐ प्राणाय स्वाहा' कहकर प्राणाहुति, 'ॐ अपानाय स्वाहा' कहकर अपानाहुति, 'ॐ व्यानाय स्वाहा' कहकर व्यानाहुति, 'ॐ उदानाय स्वाहा' कहकर उदानाहुति और अन्त में 'ॐ समानाय स्वाहा' कहकर पाँचवीं आहुति देनी चाहिए। इन आहुतियों का तत्त्वज्ञान कर लेने के बाद ही ब्राह्मण को स्वयं आत्मा में आहुति प्रदान करनी चाहिए।

शेषमन्नं यथाकामं भुञ्जीत व्यंजनैर्युतम्।
ध्यात्वा तन्मनसा देवानात्मानं वै प्रजापतिम्॥ ८॥

इसके बाद शेष अन्न को व्यंजनों के साथ, अपनी इच्छानुसार देवता, आत्मा और प्रजापति का मन से ध्यान करके भोजन करना चाहिए।

अमृतापिधानमसीत्युपरिष्टादप: पिबेत्।

---

1. यह जलरूप आसन अमृतस्वरूप बिछौना है।

आचान्तः पुनराचामेदयंगौरिति मन्त्रतः॥ ९॥

भोजनोपरान्त 'अमृतापिधानमसि' मन्त्रोच्चारणपूर्वक जल पीना चाहिए। उसके उपरान्त 'अयं गौः' मन्त्र से पुनः आचमन करना चाहिए।

द्रुपदां वा त्रिरावर्त्य सर्वपापप्रणाशनीम्।
प्राणानां ग्रन्थिरसीत्यालभेदुदरं ततः॥ १०॥

सर्वपापनाशक 'द्रुपदा' मन्त्र की तीन बार आवृत्ति करके फिर 'प्राणानां ग्रन्थिरसि' मन्त्र से उदर को स्पर्श करना चाहिए।

आचम्यांगुष्ठमात्रेण पादांगुष्ठेन दक्षिणे।
निस्रावयेद्धस्तजलमूर्ध्वहस्तः समाहितः॥ ११॥
कृतानुमन्त्रणं कुर्यात्सन्ध्यायामिति मन्त्रतः।
अथाक्षरेण स्वात्मानं योजयेद्ब्रह्मणेति हि॥ १२॥

अंगुष्ठमात्र जल से आचमन करके, उसे दक्षिणपाद के अंगूठे पर गिराना चाहिए, फिर एकाग्रचित्त होकर हाथों को ऊपर उठाना चाहिए। तब 'सन्ध्यायां' इस मन्त्र से पूर्वकृत का अनुस्मरण करना चाहिए। इसके अनन्तर 'ब्राह्मण' इस मन्त्र से अपनी आत्मा को अक्षर-ब्रह्म के साथ जोड़ना चाहिए।

सर्वेषामेव योगानामात्मयोगः स्मृतः परः।
योऽनेन विधिना कुर्यात्स कविर्ब्राह्मणः स्वयम्॥ १३॥

सभी योगों में आत्मयोग को श्रेष्ठ माना गया है। जो उपर्युक्त विधि के अनुसार आत्म का संयोजन करता है, वह विद्वान् स्वयं ब्रह्मस्वरूप हो जाता है।

यज्ञोपवीती भुञ्जीत स्रग्गन्धालंकृतः शुचिः।
सायम्प्रातर्नान्तरा वै सन्ध्यायान्तु विशेषतः॥ १४॥

यज्ञोपवीत धारण करके, पवित्र होकर चन्दनादि गन्ध से अलंकृत होकर और माला धारण करके भोजन करना चाहिए और वह भी सायं और प्रातः भोजन करें अन्य समय में भोजन नहीं करना चाहिए। विशेषकर सन्ध्याकाल में तो भोजन अवश्य नहीं करना चाहिए।

नाद्यात्सूर्यग्रहात्पूर्वं प्रतिसायं शशिग्रहात्।
ग्रहकाले न चाश्नीयात्स्नात्वाश्नीयाद्विमुक्तये॥ १५॥

उसी प्रकार सूर्यग्रहण से पूर्व कुछ समय पहले भोजन नहीं करना चाहिए और चन्द्रग्रहण से पूर्व भी सायंकाल में भोजन न करें। ग्रहण काल में भी भोजन न करें, परन्तु ग्रहण समाप्ति के अनन्तर स्नान करने के पश्चात् भोजन करना चाहिए।

मुक्ते शशिनि चाश्नीयाद्यदि न स्यान्महानिशा।
अमुक्तयोरस्तगयोरद्याद्दृष्ट्वा परेऽहनि॥ १६॥

चन्द्रग्रहण छूट जाने पर यदि वह मध्यरात्रि का समय न हो, तो भोजन किया जा सकता है अर्थात् मध्यरात्रि के समय भोजन नहीं करना चाहिए। यदि ग्रहण से मुक्त हुए बिना ही चन्द्र अथवा सूर्य अस्त हो जाते हैं तो दूसरे दिन ग्रहण से मुक्त हुए चन्द्र अथवा सूर्य के दर्शन करने के बाद ही भोजन करना चाहिए।

नाश्नीयात्प्रेक्षमाणानामप्रदाय च दुर्मतिः।
यज्ञावशिष्टमद्याद्वा न क्रुद्धो नान्यमानसः॥ १७॥

भोजन के समय जो (भूखा व्यक्ति) हमारी ओर देख रहा हो, उसे बिना दिए भोजन नहीं करना चाहिए। ऐसा न करने वाला अर्थात् भोजन बिना दिए स्वयं खाने वाला दुर्बुद्धि माना जाता है अथवा पञ्चमहायज्ञ करने के उपरान्त ही जो अन्न शेष रहता है उसे ही खाना चाहिए और क्रोधयुक्त और अन्यमनस्क होकर नहीं खाना चाहिए।

आत्मार्थं भोजनं यस्य रत्यर्थं यस्य मैथुनम्।
वृत्त्यर्थं यस्य चाधीतं निष्फलं तस्य जीवितम्॥ १८॥

जो मनुष्य केवल अपनी तृप्ति के लिए ही भोजन पकाता है, जो मैथुन केवल रति के लिए ही अर्थात् सन्तान प्राप्ति के उद्देश्य से रहित मात्र आनन्द के लिए ही करता है और जो धन कमाने के लिए ही अध्ययन करता है उसका जीवन व्यर्थ ही होता है।

यद्भुङ्क्ते वेष्टितशिरा यच्च भुङ्क्ते ह्युदङ्मुखः।
सोपानत्कश्च यो भुङ्क्ते सर्वं विद्यात्तदासुरम्॥ १९॥

जो मनुष्य अपने मस्तक को ढँक कर (पगडी या टोपी पहनकर) उत्तर दिशा की ओर मुख करके, सीढ़ी पर बैठ कर भोजन करता है, वह सब उसका भोजन राक्षसों के लिए ही जानना चाहिए।

नार्द्धरात्रे न मध्याह्ने नाजीर्णे नार्द्रवस्त्रधृक्।
न च भिन्नासनगतो न यानसंस्थितोऽपि वा॥ २०॥

आधी रात को, मध्याह्नकाल में, अजीर्ण (बदहजमी) के समय, गीले कपड़े पहनकर, टूटे हुए आसन पर तथा किसी भी वाहन पर बैठे हुए भोजन नहीं करना चाहिए।

न भिन्नभाजने चैव न भूम्यां न च पाणिषु।
नोच्छिष्टो घृतमादद्यात् न मूर्द्धानं स्पृशेदपि॥ २१॥

किसी टूटे हुए पात्र में, भूमि पर अथवा हाथ में अन्न रखकर भोजन नहीं करना चाहिए। भोजन करते समय जूठे हाथों से घी नहीं लेना चाहिए और उस समय सिर में स्पर्श भी नहीं करना चाहिए।

न ब्रह्म कीर्त्तयेद्वापि न निःशेषं न भार्यया।
नान्धकारे न सन्ध्यायां न च देवालयादिषु॥ २२॥

भोजन करते समय वेद का उच्चारण न करें और परोसा हुआ अन्न पूरा का पूरा न खा जाय अर्थात् कुछ बचा कर रखें। अपनी पत्नी के साथ अन्धेरे में, सन्ध्याकाल में और देवालय आदि में भोजन नहीं करना चाहिए।

नैकवस्त्रस्तु भुञ्जीत न यानशयनस्थितः।
न पादुकानिर्गतोऽथ न हसन्विलपन्नपि॥ २३॥
भुक्त्वा वै सुखमास्थाय तदन्नं परिणामयेत्।
इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थानुपबृंहयेत्॥ २४॥

एक वस्त्र धारण कर (बिना उपवस्त्र के) वाहन में बैठकर या सोते हुए, खड़ाऊँ पहन कर, हँसते हुए या विलाप करते हुए भोजन नहीं करना चाहिए। भोजन के बाद सुखपूर्वक बैठकर जब तक अन्न ठीक से पचने की स्थिति में न आ जाय तब तक विश्राम करें और इतिहास तथा पुराणों द्वारा वेदों के अर्थ का मनन करें।

ततः सन्ध्यामुपासीत पूर्वोक्तविधिना शुचिः।
आसीनस्तु जपेद्देवीं गायत्रीं पश्चिमां प्रति॥ २५॥

इसके पश्चात् पवित्र होकर पूर्वोक्त विधि के अनुसार सन्ध्योपासना करें और पश्चिम की ओर मुख करके आसनस्थ होकर गायत्री मन्त्र का जप करें।

न तिष्ठति तु यः पूर्वामास्ते सन्ध्यां तु पश्चिमाम्।
स शूद्रेण समो लोके सर्वकर्मविवर्जितः॥ २६॥

जो मनुष्य विधि-पूर्वक प्रातः और सायंकाल सन्ध्योपासना नहीं करता है, वह शूद्र के समान इस लोक में सभी कर्मों से अयोग्य बन जाता है।

हुत्वाग्निं विधिवन्मन्त्रैर्भुक्त्वा यज्ञावशिष्टकम्।
सभृत्यबान्धवजनः स्वपेच्छुष्कपदो निशि॥ २७॥

सायंकाल विधिवत् मन्त्रोच्चारपूर्वक अग्नि में आहुति देकर यज्ञ से बचे हुए अन्न को भक्षण कर रात्रि में अपने सेवकों तथा बन्धु-बान्धवों के साथ सूखे पैर ही सो जाना चाहिए।

नोत्तराभिमुखः स्वप्यात्पश्चिमाभिमुखो न च।
न चाकाशे न नग्नो वा नाशुचिर्नासने क्वचित्॥ २८॥
न शीर्णायान्तु खट्वायां शून्यागारे न चैव हि।
नानुवंशे न पालाशे शयने वा कदाचन॥ २९॥

उत्तर या पश्चिम दिशा की ओर सिर करके नहीं सोना चाहिए, उसी प्रकार खुले स्थान में, वस्त्ररहित, अपवित्र स्थिति में किसी आसन पर नहीं सोना चाहिए। टूटी हुई खाट पर, सूने घर में बाँस और वंश परम्परा से प्राप्त या पलाश की बनी हुई चारपाई पर कभी भी नहीं सोना चाहिए।

इत्येतदखिलेनोक्तमहन्यहनि वै मया।
ब्राह्मणानां कृत्यजातमपवर्गफलप्रदम्॥ ३०॥
नास्तिक्यादथवालस्याद्ब्राह्मणो न करोति यः।
स याति नरकान्घोरान् काकयोनौ च जायते॥ ३१॥

इस प्रकार मैंने ब्राह्मणों के लिए प्रतिदिन करने योग्य शास्त्रोक्त कर्म बता दिए हैं। वे सभी मोक्षरूप फल को देने वाले हैं। इन सब कर्मों को जो ब्राह्मण नास्तिकता के कारण या आलस्यवश नहीं करता है वह मृत्युके बाद घोर नरक में जाता है और काकयोनि में जन्म लेता है।

नान्यो विमुक्तये पन्था मुक्त्वाश्रमविधिं स्वकम्।
तस्मात्कर्माणि कुर्वीत तुष्टये परमेष्ठिनः॥ ३२॥

अपने-अपने आश्रमों में बताए गए नियमों का पालन करने के अतिरिक्त मुक्ति का दूसरा कोई अन्य रास्ता नहीं है (उपाय नहीं है)। इसलिए ईश्वर की सन्तुष्टि के लिए बताए गए कर्मों का यत्नपूर्वक पालन करना चाहिए।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासु ब्राह्मणानां
नित्यकर्त्तव्यकर्मसु भोजनादिप्रकारवर्णनं
नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

विंशोऽध्यायः

(श्राद्धकल्प)

व्यास उवाच

अथ श्राद्धममावास्यां प्राप्य कार्यं द्विजोत्तमैः।
पिण्डान्वाहार्यकं भक्त्या भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥ १॥

व्यासजी बोले— प्रत्येक श्रेष्ठ द्विज को अमावस्या के दिन भक्तिपूर्वक पिण्डदानसहित अन्वाहार्यक नामक श्राद्ध अवश्य करना चाहिए, यह भोग और मोक्षरूपी फल देने वाला है।

पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं क्षीणे राजनि शस्यते।
अपराह्ने द्विजातीनां प्रशस्तेनामिषेण च॥ २॥

चन्द्रमा जब क्षीण होता है अर्थात् कृष्णपक्ष में, पिण्ड-दानयुक्त अन्वाहार्यक श्राद्ध करना श्रेष्ठ माना गया है। इसलिए सभी द्विजातियों को अपराह्न के समय उत्तम प्रकार के आमिष या भोज्य पदार्थों द्वारा यह श्राद्ध करना चाहिए।

प्रतिपत्प्रभृति ह्यन्यास्तिथय: कृष्णपक्षके।
चतुर्दशीं वर्जयित्वा प्रशस्ता ह्युपरोत्तरा:॥ ३॥
अमावास्याष्टकास्तिस्र: पौषमासादिषु त्रिषु।
तिस्रस्तास्त्वष्टका: पुण्या माघी पञ्चदशी तथा॥ ४॥
त्रयोदशी मघायुक्ता वर्षासु च विशेषत:।
शस्यपाकश्राद्धकाला: नित्या: प्रोक्ता दिने दिने॥ ५॥

प्रत्येक कृष्णपक्ष में प्रतिपदा से लेकर सभी तिथियों में केवल चतुर्दशी को छोड़कर उत्तरोत्तर सभी तिथियां प्रशस्त मानी गई हैं। पौसमास आदि तीनों मास की सभी अमावस्याएँ और तीनों अष्टकाएँ (सप्तमी, अष्टमी और नवमी ये तीन अष्टका कहलाती हैं) श्राद्ध के लिए उपयुक्त हैं। तीनों अष्टकाएँ और माघ मास की पूर्णिमा पुण्यदायी मानी गई है। उसी प्रकार वर्षा ऋतु की मघा नक्षत्र से युक्त त्रयोदशी तिथि तो विशेष उत्तम है।

नैमित्तिकन्तु कर्त्तव्यं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययो:।
बान्धवानां विस्तरेण नारकी स्यादतोऽन्यथा॥ ६॥

चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण के समय नैमित्तिक श्राद्ध करना चाहिए। उसी प्रकार बन्धु-बान्धवों के मरणोपरान्त यह श्राद्ध करना चाहिए अन्यथा (श्राद्ध न करने वाला) नरक को भो ता है।

काम्यानि चैव श्राद्धानि शस्यन्ते ग्रहणादिषु।
अयने विषुवे चैव व्यतीपाते त्वनन्तकम्॥ ७॥

इसी प्रकार ग्रहण आदि के समय किए जाने वाले सभी काम्य-श्राद्ध करना भी प्रशंसनीय माना गया है। दक्षिणायन, उत्तरायण के समय विषुव काल में तथा व्यतिपात होने पर जो श्राद्ध किया जाता है वह अनन्त पुण्यदायी होता है।

संक्रान्त्यामक्षयं श्राद्धं तथा जन्मदिनेष्वपि।
नक्षत्रेषु च सर्वेषु कार्यं काले विशेषत:॥ ८॥
स्वर्गञ्च लभते कृत्वा कृत्तिकासु द्विजोत्तम:।
अपत्यमथ रोहिण्यां सौम्ये तु ब्रह्मवर्चसम्॥ ९॥
रौद्राणां कर्मणां सिद्धिमार्द्रायां शौर्यमेव च।
पुनर्वसौ तथा भूमिं श्रियं पुष्ये तथैव च॥ १०॥

संक्रान्ति काल में तथा प्रत्येक जन्मदिन पर अक्षय-श्राद्ध करना चाहिए, उसी प्रकार सभी नक्षत्रों में भी विशेषकर काम्य-श्राद्ध करना चाहिए। प्रत्येक द्विज श्रेष्ठ को कृतिका नक्षत्र में श्राद्ध करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है, रोहिणी नक्षत्र में श्राद्ध करने से सन्तान की प्राप्ति होती है और मृगशिरा नक्षत्र में श्राद्ध करने से ब्रह्मतेज की प्राप्ति होती है। आर्द्रा नक्षत्र में श्राद्ध करके प्रत्येक व्यक्ति रौद्र कर्मों की सिद्धि और पराक्रम प्राप्त करता है। पुनर्वसु नक्षत्र में भूमि तथा पुष्य में लक्ष्मी प्राप्त होती है।

सर्वान्कामांस्तथा सार्प्ये पित्र्ये सौभाग्यमेव च।
अर्यम्णे तु धनं विन्देत् फाल्गुन्यां पापनाशनम्॥ ११॥

उसी प्रकार सर्प के 'आश्लेषा नक्षत्र' में श्राद्ध करने से मनुष्य सभी कामनाओं की पूर्ति कर लेता है और पितरों के मघा नक्षत्र में श्राद्ध करने में सौभाग्य प्राप्त करता है। पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र में श्राद्ध करने से धन प्राप्त करता है और उत्तराफाल्गुनी में समस्त पापों का नाश होता है।

ज्ञातिश्रैष्ठ्यं तथा हस्ते चित्रायां च बहून् सुतान्।
वाणिज्यसिद्धिं स्वातौ तु विशाखासु सुवर्णकम्॥ १२॥

हस्त नक्षत्र में किया गया श्राद्ध जातिबन्धुओं में श्रेष्ठता प्रदान करता है। चित्रा में अनेक पुत्रों की प्राप्ति होती है। स्वाति में श्राद्ध करने से व्यापार में लाभ होता है और विशाखा में किया गया श्राद्ध स्वर्णदायक होता है।

मैत्रे बहूनि मित्राणि राज्यं शाक्रे तथैव च।
मूले कृषिं लभेज्ज्ञानं सिद्धिमाप्ये समुद्रत:॥ १३॥
सर्वान् कामान्वैश्वदेवे श्रैष्ठ्यन्तु श्रवणे पुन:।
धनिष्ठायां तथा कामानम्बुपे च परम्बलम्॥ १४॥

अनुराधा में श्राद्ध करने से अनेक मित्रों की प्राप्ति होती है और ज्येष्ठा नक्षत्र में राज्य की प्राप्ति होती है। मूल में कृषि लाभ होता है और पूर्वाषाढ़ में सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं। उत्तराषाढ़ में श्राद्ध करने से सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं। श्रवण नक्षत्र में श्रेष्ठता और धनिष्ठा में सभी इच्छाएँ पूर्ण होती हैं तथा शतभिषा नक्षत्र में श्राद्ध करने से तो श्रेष्ठ बल की प्राप्ति होती है।

अजैकपादे कुप्यं स्यादाहिर्बुध्ने गृहं शुभम्।
रेवत्याम्बहवो गावो ह्यश्विन्यान्तुरगांस्तथा।
याम्ये तु जीवितन्तु स्याद्य: श्राद्धं सम्प्रयच्छति॥ १५॥

पूर्वभाद्रपद में श्राद्ध करने से कुप्य (सोने और चाँदी से भिन्न) धन की प्राप्ति होती है। उत्तराभाद्रपद नक्षत्र में उत्तम घर, रेवती में अनेक गाय, अश्विनी में अनेक अश्व और भरणी में श्राद्ध करने से दीर्घायु की प्राप्ति होती है।

आदित्यवारेऽप्यारोग्यं चन्द्रे सौभाग्यमेव च।
कुजे सर्वत्र विजयं सर्वान् कामान् बुधस्य तु॥ १६॥
विद्यामभीष्टानु गुरौ धनं वै भार्गवे पुन:।
शनैश्चरे लभेदायु: प्रतिपत्सु सुतान् शुभान्॥ १७॥

उसी प्रकार रविवार को श्राद्ध करने से आरोग्य, सोमवार को करने से सौभाग्य, मंगल को करने से सर्वत्र विजय और बुधवार को करने से सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं। गुरुवार को किया गया श्राद्ध इच्छित विद्या को देता है। शुक्रवार को करने पर धन लाभ होता है। शनिवार को दीर्घायु और प्रतिपदा को करने से उत्तम पुत्र की प्राप्ति होती है।

कन्यका वै द्वितीयायां तृतीयायान्तु विन्दति।
पशून् क्षुद्रांश्चतुर्थ्यां वै पञ्चम्यां शोभनान् सुतान्॥ १८॥
षष्ठ्यां द्युतिं कृषिञ्चापि सप्तम्यां च धनं नर:।
अष्टम्यामपि वाणिज्यं लभते श्राद्धद: सदा॥ १९॥
स्यान्नवम्यामेकखुरं दशम्यां द्विखुरं बहु।
एकादश्यान्तथा रूप्यं ब्रह्मवर्चस्विन: सुतान्॥ २०॥

उसी प्रकार द्वितीया में श्राद्ध करने से उत्तम कन्या की प्राप्ति होती है, तृतीया में उत्तम ज्ञान, चतुर्थी में छोटे पशुओं की प्राप्ति तथा पञ्चमी में श्राद्ध करने से उत्तम पुत्रों की प्राप्ति होती हैं। षष्ठी में श्राद्ध करने वाला द्युति (तेज) और कृषि लाभ करता है। सप्तमी में मनुष्य धन प्राप्त करता है। अष्टमी में श्राद्ध करने वाला सदा वाणिज्य को प्राप्त करता है। नवमी में श्राद्ध करने से एक खुर वाले पशु, दशमी में दो खुर वाले पशु और एकादशी में श्राद्ध करने से बहुत सी चाँदी और ब्रह्मवर्चस्वी पुत्रों को प्राप्त करता है।

द्वादश्यां जातरूपं च रजतं कुप्यमेव च।
ज्ञातिश्रैष्ठ्यं त्रयोदश्यां चतुर्दश्यान्तु कुप्रजा:।
पञ्चदश्यां सर्वकामान् प्राप्नोति श्राद्धद: सदा॥ २१॥

द्वादशी में श्राद्ध करने से स्वर्ण, रजत तथा कुप्य नामक द्रव्य को प्राप्त करता है। त्रयोदशी में श्राद्ध करने वाला अपनी जाति में श्रेष्ठता को प्राप्त करता है परन्तु चतुर्दशी में श्राद्ध करने से कुसन्तान की प्राप्ति होती है। पञ्चदशी तिथि को श्राद्ध करने वाला सदा सभी कामनाओं को पा लेता है।

तस्माच्छ्राद्धं न कर्तव्यं चतुर्दश्यां द्विजातिभि:।
शस्त्रेण तु हतानान्तु श्राद्धं तत्र प्रकल्पयेत्॥ २२॥

इसलिए द्विजाति के लोगों को चतुर्दशी में श्राद्ध नहीं करना चाहिए, केवल शस्त्र द्वारा मारे गए व्यक्ति का ही श्राद्ध इस तिथि में करना चाहिए।

द्रव्यब्राह्मणसम्पत्तौ न कालनियम: कृत:।
तस्माद्भोगापवर्गार्थं श्राद्धं कुर्युं द्विजातय:॥ २३॥

द्रव्य, ब्राह्मण और सम्पत्ति की प्राप्ति होने पर समय सम्बन्धी नियमों पर विचार किए बिना किसी भी दिन श्राद्ध किया जा सकता है। इसीलिए भोग मोक्ष के लिए द्विजातियों को (किसी भी समय) श्राद्ध करना चाहिए।

कर्मारम्भेषु सर्वेषु कुर्यादभ्युदये पुन:।
पुत्रजन्मादिषु श्राद्धं पार्वणं पर्वसु स्मृतम्॥ २४॥

सभी कार्य आरम्भ करने से पूर्व, उन्नति के निमित्त किए जाने वाले कार्य से पहले, पुत्र जन्म पर और पर्व के दिन पार्वण श्राद्ध करना चाहिए।

अहन्यहनि नित्यं स्यात्काम्यं नैमित्तिकं पुन:।
एकोद्दिष्टादि विज्ञेयं द्विधा श्राद्धन्तु पार्वणम्॥ २५॥
एतत्पञ्चविधं श्राद्धं मनुना परिकीर्त्तितम्।
यात्रायां षष्ठमाख्यातं तत्प्रयत्नेन पालयेत्॥ २६॥

प्रतिदिन किए जाने वाले श्राद्ध, नित्य श्राद्ध, काम्य श्राद्ध, नैमित्तिक श्राद्ध और पार्वण श्राद्ध— इन पाँच प्रकार के श्राद्धों को मनु ने बताया हैं। यात्रा के निमित्त अर्थात् तीर्थयात्रा के निमित्त किया जाने वाला श्राद्ध छठा श्राद्ध कहलाता है, इस श्राद्ध को यत्नपूर्वक करना चाहिए।

शुद्धये सप्तमं श्राद्धं ब्रह्मणा परिभाषितम्।
दैविकञ्चाष्टमं श्राद्धं यत्कृत्वा मुच्यते भयात्॥ २७॥

ब्रह्मा ने प्रायश्चित्त के समय किया जाने वाला श्राद्ध सप्तम कहा है तथा दैविक श्राद्ध को आठवाँ बताया है जिसको करने से भय से मुक्ति मिलती है।

सन्ध्यां रात्रौ न कर्त्तव्यं राहोरन्यत्र दर्शनात्।
देशानान्तु विशेषेण भवेत्पुण्यमनन्तकम्॥ २८॥

सन्ध्या समय और रात को श्राद्ध नहीं करना चाहिए परन्तु राहु के दर्शन अर्थात् ग्रहण लग जाए तो श्राद्ध करना चाहिए। स्थान विशेषों में किए जाने वाले श्राद्ध अनन्त पुण्य फलदायक होते हैं।

गंगायामक्षयं श्राद्धं प्रयागेऽमरकण्टके।
गायन्ति पितरो गाथां नर्तयन्ति मनीषिण:॥ २९॥

गंगा किनारे प्रयाग तथा अमरकंटक क्षेत्र में जो श्राद्ध किया जाता है वह अक्षय फलदायी होता है। उस समय पितर गाथा का गान करते हैं और मनीषी उत्साहित होते हैं।

एष्टव्या बहव: पुत्रा: शीलवन्तो गुणान्विता:।
तेषान्तु समवेतानां यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्॥ ३०॥
गयां प्राप्यानुषंगेण यदि श्राद्धं समाचरेत्।
तारिता: पितरस्तेन स याति परमाङ्गतिम्॥ ३१॥

मनुष्य को अनेक शीलवान् और गुणवान् पुत्रों की इच्छा करनी चाहिए, क्योंकि उनमें से कोई एक भी गया तीर्थ में जाता है और वहां श्राद्ध करता है, तो वह अपने पितरों को तार देता है एवं स्वयं परम गति को प्राप्त करता है।

वाराहपर्वते चैव गयायां वै विशेषत:।
वाराणस्यां विशेषेण यत्र देव: स्वयं हर:॥ ३२॥
गंगाद्वारे प्रभासे तु बिल्वके नीलपर्वते।
कुरुक्षेत्रे च कुब्जाम्रे भृगुतुंगे महालये॥ ३३॥
केदारे फल्गुतीर्थे च नैमिषारण्य एव च।
सरस्वत्या विशेषेण पुष्करे तु विशेषत:॥ ३४॥
नर्मदायां कुशावर्ते श्रीशैले भद्रकर्णके।
वेत्रवत्यां विशाखायां गोदावर्यां विशेषत:॥ ३५॥
एवमादिषु चान्येषु तीर्थेषु पुलिनेषु च।
नदीनाञ्चैव तीरेषु तुष्यन्ति पितर: सदा॥ ३६॥

यदि कोई वाराह पर्वत पर विशेषकर गया में और विशेषरूप से वाराणसी में जहां महादेव स्वयं विराजमान हैं, गंगाद्वार में, प्रभास क्षेत्र में, बिल्वक तीर्थ में, नीलपर्वत पर, कुरुक्षेत्र में कुब्जाम्र क्षेत्र में, भृगुतुंग में, उसी प्रकार महालय, केदार, फल्गुतीर्थ, नैमिषारण्य, विशेषरूप से सरस्वती नदी या पुष्कर क्षेत्र, नर्मदा तट, कुशावर्त, श्रीशैल, भद्रकर्णक, वेत्रवती नदी पर, विपाशा के तट पर, तथा विशेषकर गोदावरी के तट पर और भी दूसरे तीर्थों में या नदियों के किनारे जो श्राद्ध करता है, तो पितृगण सर्वकाल प्रसन्न रहते हैं।

व्रीहिभिश्च यवैर्माषैरद्भिर्मूलफलेन वा।
श्यामाकैश्च सर्वै: कार्शैर्नीवारैश्च प्रियङ्गुभि:।
गोधूमैश्च तिलैर्मुद्‌गैर्मासं प्रीणयते पितॄन्॥ ३७॥

धान्य, यव, उडद, जल, कन्दमूल, फल, श्यामाक, उत्तम शालधान्य, नीवार, प्रियंगु, गेहूं, तिल, मुद्ग आदि पदार्थों से श्राद्ध करने पर पितर तृप्त होते हैं।[1]

आम्रान् पाने रतानिक्षून् मृद्वीकांश्च सदाडिमान्।
विदस्वांश्च कुरण्डांश्च श्राद्धकाले प्रदापयेत्॥ ३८॥
लाजान्मधुयुतान् दद्यात्सक्तून् शर्करया सह।
दद्याच्छ्राद्धे प्रयत्नेन शृंगाटककशेरुकान्॥ ३९॥

श्राद्ध में आम, रक्त गन्ना, दाडिम सहित द्राक्षा, विदारीकंद,[2] कुरण्ड फल अर्पित करना चाहिए। मधुयुक्त लाजा, शर्करा मिश्रित सक्तु, सिंघाडे तथा कसेरुक[3] आदि पदार्थ प्रयत्नपूर्वक अर्पित करने चाहिए।

द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन त्रीन्मासान् हरिणेन तु।
औरभ्रेणाथ चतुर: शाकुनेनेह पञ्च तु।
षण्मासांश्छागमांसेन पार्षतेनेह सप्त वै॥ ४०॥
अष्टावेणस्यमांसेन रौरवेण नवैव तु।
दशमासांस्तु तृप्यन्ति वराहमहिषामिषै:॥ ४१॥
शशकूर्मयोर्मांसेन मासानेकादशैव तु।
संवत्सरन्तु गव्येन पयसा पायसेन तु।
वार्ध्रीणसस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी॥ ४२॥
कालशाकं महाशल्क: खड्गलोहामिषं मधु।
आनन्त्यायैव कल्पन्ते मुन्यन्नानि च सर्वश:॥ ४३॥
क्रीत्वा लब्ध्वा स्वयं वाथ मृतानाहृत्य वै द्विज:।
दद्याच्छ्राद्धे प्रयत्नेन तदस्याक्षयमुच्यते॥ ४४॥
पिप्पली रुचकञ्चैव तथा चैव मसूरकम्।
कूष्माण्डालाबुवार्त्ताकभूतृणं सरसं तथा॥ ४५॥
कुसुम्भपिण्डमूलं वै तन्दुलीयकमेव च।
राजमाषांस्तथा क्षीरं माहिषाजं विवर्जयेत्॥ ४६॥
आढक्य: कोविदाराश्च पालक्या मरिचास्तथा।
सर्जयेत्सतयत्नेन श्राद्धकाले द्विजोत्तम:॥ ४७॥[4]

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासु श्राद्धकल्पे विंशोऽध्याय:॥ २०॥

---

1. श्राद्धकर्म में मनु ने भी इसी प्रकार का विधान बताया है। देखें- मनु० ३.२६७-७२
2. Convolvulus Paniculatus willd.
3. Scripus Kessoor.
4. उपर्युक्त इन श्लोकों में श्राद्ध क्रिया में विभिन्न मांसो को अर्पित करने का विधान बताया है, जो मांसाहारी आदिम जाति के लोगों को उद्देश्य करके लिखा गया है अत: यह सब के लिए अनुकरणीय नहीं है।

एकविंशोऽध्यायः

(श्राद्धकल्प)

व्यास उवाच

स्नात्वा यथोक्तं सन्तर्प्य पितॄंश्चन्द्रक्षये द्विजः।
पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं कुर्यात्सौम्यमनाः शुचिः॥१॥

द्विजवर्ण ब्राह्मणादि को चन्द्रक्षय (अमावास्या) के दिन यथोक्त प्रकार से स्नान करके, सौम्यमन और पवित्र होकर पितरों को तर्पण कर पिण्डदान सहित अन्वाहार्य श्राद्ध करना चाहिए।

पूर्वमेव समीक्षेत ब्राह्मणं वेदपारगम्।
तीर्थं तद्धव्यकव्यानां प्रदानानाञ्च स स्मृतः॥२॥

उस समय पहले ही वेदपारग ब्राह्मण की परीक्षा कर लेनी चाहिए क्यों कि वही वेद-पारंगत ब्राह्मण ही हव्य और कव्य प्रदान करने का तीर्थ कहा जाता है।

ये सोमपा विरजसो धर्मज्ञाः शान्तचेतसः।
व्रतिनो नियमस्थाश्च ऋतुकालाभिगामिनः॥३॥
पञ्चाग्निरप्यधीयानो यजुर्वेदविदेव च।
बह्वृचश्च त्रिसौपर्णस्त्रिमधुर्वा च योऽभवत्॥४॥

वे ब्राह्मण सोमपान करने वाला, रजोगुण से रहित, धर्मज्ञ, शान्तचित्त, व्रती, नियमनिष्ठ, ऋतुकाल में ही पत्नी के साथ सहवास करने वाला, पंचाग्नियुक्त, वेदाध्यायी, यजुर्वेद का ज्ञाता, ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं को जानने वाला, सुपर्ण ऋषि द्वारा कथित व्रत करने वाला और मधु-शर्करा-दूध प्राशन करने वाला हो।

त्रिणाचिकेतच्छन्दोगो ज्येष्ठसामग एव च।
अथर्वशिरसोऽध्येता रुद्राध्यायी विशेषतः॥५॥
अग्निहोत्रपरो विद्वान्न्यायविच्च षडङ्गवित्।
मन्त्रब्राह्मणविच्चैव यश्च स्याद्धर्मपाठकः॥६॥

वह नचिकेता के तीन व्रत करने वाला, छन्दों का गान करने वाला, ज्येष्ठ साम का गायक, तथा अथर्वशिरस् का अध्येता और विशेषतः रुद्राध्यायी का अध्येता हो। वह अग्निहोत्रपरायण, विद्वान्, न्यायविद्, छः वेदाङ्गों का ज्ञाता, मंत्रवेत्ता तथा ब्राह्मणग्रन्थों का ज्ञाता, धर्म का पठन-पाठन करने वाला हो।

ऋषिव्रती ऋषीकश्च शान्तचेता जितेन्द्रियः।
ब्रह्मदेयानुसन्तानो गर्भशुद्धः सहस्रदः॥७॥

ऋषियों का व्रत करने वाला, ऋषिपत्नी से उत्पन्न, शान्तचित्त, जितेन्द्रिय, ब्राह्मणों को देय मंत्रादि की परम्परा निभाने वाला, गर्भावस्था से ही शुद्ध, हजारों के दान देने वाला हो।

चान्द्रायणव्रतचरः सत्यवादी पुराणवित्।
गुरुदेवाग्निपूजासु प्रसक्तो ज्ञानतत्परः॥८॥
विमुक्तः सर्वतो धीरो ब्रह्मभूतो द्विजोत्तमः।
महादेवार्चनरतो वैष्णवः पंक्तिपावनः॥९॥

चान्द्रायण व्रत करने वाला, सत्यवादी, पुराणवेत्ता, गुरु-अग्नि-देवादि के पूजन में प्रसक्त, ज्ञानतत्पर, विमुक्त, सर्व प्रकार से धीर, ब्रह्मस्वरूप, उत्तम ब्राह्मण, महादेव की पूजा में आसक्त वैष्णव जो पूरी ब्राह्मण पंक्ति को पवित्र करने वाला हो।

अहिंसानिरतो नित्यमप्रतिग्रहणस्तथा।
सत्री च दाननिरतो विज्ञेयः पंक्तिपावनः॥१०॥

अहिंसा व्रत में संलग्न, सदा किसी के प्रतिग्रह से रहित, किसी का दान न लेने वाला, यज्ञादि करने वाला पंक्तिपावन होता है।

मातापित्रोर्हिते युक्तः प्रातः स्नायी तथा द्विजः।
अध्यात्मविन्मुनिर्दान्तो विज्ञेयः पंक्तिपावनः॥११॥

माता-पिता के हित में संयुक्त, प्रातःकाल स्नान करने वाला, अध्यात्मशास्त्र का ज्ञाता, मुनि और दान्त—इन्द्रियों का दमन करने वाला पंक्तिपावन जाना जाता है।

ज्ञाननिष्ठो महायोगी वेदान्तार्थविचिन्तकः।
श्रद्धालुः श्राद्धनिरतो ब्राह्मणः पंक्तिपावनः॥१२॥

ज्ञाननिष्ठ, महायोगी, वेदान्त के अर्थ का विशेष चिन्तक, श्रद्धालु, श्राद्धनिरतो ब्राह्मण ही पंक्तिपावन होता है।

वेदविद्यारतः स्नातो ब्रह्मचर्यपरः सदा।
अथर्वणो मुमुक्षुश्च ब्राह्मणः पंक्तिपावनः॥१३॥

वेदविद्या में निरत, स्नातक, सदा ब्रह्मचर्यपरायण, अथर्व वेद का अध्ययन करने वाला, मुमुक्षु ब्राह्मण ही पंक्तिपावन होता है।

असमानप्रवरको ह्यसगोत्रस्तथैव च।
सम्बन्धशून्यो विज्ञेयो ब्राह्मणः पंक्तिपावनः॥१४॥

जिसकी श्रेष्ठता अन्य के समान न हो, उसका गोत्र भी असमान हो, जिसका किसीसे विशेष सम्बन्ध न हो, वही ब्राह्मण पंक्तिपावन जानना चाहिए।

भोजयेद्योगिनं शान्तं तत्त्वज्ञानरतं यत:।
अभावे नैष्ठिकं दान्तमुपकुर्वाणकं तथा॥ १५॥
तदलाभे गृहस्थं तु मुमुक्षुं सङ्गवर्जितम्।
सर्वालाभे साधकं वा गृहस्थमपि भोजयेत्॥ १६॥

क्योंकि योगी, शांत, तत्त्वज्ञानपरायण योगी को भोजन कराना चाहिए। यदि वह न मिले तो नैष्ठिक, दान्त, उपकुर्वाणक— बाल्यकाल से ही ब्रह्मचारी रहने की इच्छा वाला हो उसे कराये। वह भी यदि न मिले तो संगवर्जित मुमुक्षु गृहस्थ को और कोई भी न मिले तो किसी सुपात्र गृहस्थ साधक को भोजन कराना चाहिए।

प्रकृतेर्गुणतत्त्वज्ञो यस्याश्नाति यतिर्हवि:।
फलं वेदान्तवित्तस्य सहस्रादतिरिच्यते॥ १७॥

प्रकृति के गुणों का रहस्य जानने वाला कोई यति या संन्यासी गहस्थ का हविष्यान्न भोजन करता है, तो हजार वेदान्तवेत्ताओं को भोजन कराने से भी अधिक फलदायी होता है।

तस्माद्यत्नेन योगीन्द्रमीश्वरज्ञानतत्परम्।
भोजयेद्हव्यकव्येषु अलाभादितरान्द्विजान्॥ १८॥

इसलिए ईश्वर के ज्ञान में तत्पर रहने वाले उत्तम योगी को सबसे पहले हव्य-कव्य का भोजन कराना चाहिए, उसके न मिलने पर ही अन्य द्विजों को करा सकते हैं।

एष वै प्रथम: कल्प: प्रदाने हव्यकव्ययो:।
अनुकल्पस्त्वयं ज्ञेय: सदा सद्भिरनुष्ठित:॥ १९॥

देवबलि और पितृबलि का दान करने के लिए यही प्रथम कल्प-आचार है। इसके पीछे दूसरा भी अनुकल्प सज्जनों द्वारा निर्दिष्ट है।

मातामहं मातुलञ्च स्वस्रीयं श्वशुरं गुरुम्।
दौहित्रं विट्पतिं बन्धुमृत्विग्याज्यौ च भोजयेत्॥ २०॥
न श्राद्धे भोजयेन्मित्रं धनै: कार्योऽस्य संग्रह:।
पैशाची दक्षिणाशा हि नेहामुत्र फलप्रदा॥ २१॥

मातामह, मामा, बहन का पुत्र, ससुर, गुरु, पुत्री का पुत्र, वैश्यों का स्वामी, बन्धु या ऋत्विज तथा याज्ञिक ब्राह्मण को भी भोजन कराया जा सकता है।

कामं श्राद्धेऽर्चयेन्मित्रं नाभिरूपमपि त्वरिम्।
द्विषतां हि हविर्भुक्तं भवति प्रेत्य निष्फलम्॥ २२॥

अपने मित्र का श्राद्ध में इच्छानुसार आदर सत्कार करना चाहिए परन्तु यदि कोई शत्रु अनुकूल भी क्यों न हो, उसे आदर नहीं देना चाहिए। शत्रु को तो श्राद्ध में कराया हुआ भोजन भी परलोक में निष्फल जाता है।

ब्राह्मणो ह्यनधीयानस्तृणाग्निरिव शाम्यति।
तस्मै हव्यं न दातव्यं न हि भस्मनि हूयते॥ २३॥

वेदशास्त्र के अध्ययन से रहित ब्राह्मण तृण की अग्नि के समान शांत होता है अर्थात् शीघ्र निस्तेज हो जाता है। उसे हव्य प्रदान नहीं करना चाहिए क्यों कि राख में होम नहीं किया जाता।

यथोषरे बीजमुप्त्वा न वप्ता लभते फलम्।
तथाऽनृचे हविर्दत्त्वा न दाताल्लभते फलम्॥ २४॥
यावतो ग्रसते पिण्डान्हव्यकव्येष्वमन्त्रवित्।
तावतो ग्रसते प्रेत्य दीप्तान् स्थूलांस्त्वयोगुडान्॥ २५॥

जैसे उषर (क्षारयुक्त) भूमि में बीज बोने पर कोई फल नहीं प्राप्त होता, उसी तरह वेदाध्ययनरहित पुरुष को भोजन कराने से दाता को कोई फल नहीं मिलता। इतना ही नहीं, मंत्र को न जानने वाला देव-पितृ कार्यों में जितने ग्रास अन्न ग्रहण करता है, मृत्यु के पश्चात् दाता उतने ही लोहे के गोलों को ग्रसता है।

अपि विद्याकुलैर्युक्ता हीनवृत्ता नराधमा:।
यत्रैते भुञ्जते हव्यं तद्भवेदासुरं द्विजा:॥ २६॥

जो अधम पुरुष हीन कर्म में प्रवृत्त हों, भले ही वे विद्यावान् और उच्च कुल के हों, वे जहां हव्य का भोजन करते हैं, वह सब आसुरी हो जाता है।

यस्य वेदश्च वेदी च विच्छिद्येते त्रिपूरुषम्।
स वै दुर्ब्राह्मणो नार्ह: श्राद्धादिषु कदाचन॥ २७॥

अपने तीन कुलों से जो ब्राह्मण वेद और अग्निहोत्र से दूर रहा होता है, ऐसा दुष्ट ब्राह्मण श्राद्धादि में कभी योग्य नहीं होता।

शूद्रप्रेष्यो भृतो राज्ञो वृषलानाञ्च याजक:।
वधबन्धोपजीवी च षडेते ब्रह्मबन्धव:॥ २८॥

जो ब्राह्मण शूद्र का दास हो, राजा का सेवक रहा हो, अन्त्यजों का याजक रहा हो, किसी का वध करके या अपहरण करके आजीविका चलाता हो— ये छ: ब्रह्मबन्धु अर्थात् नीच ब्राह्मण कहे गये हैं।

दत्त्वानुयोगो द्रव्यार्थं पतितान्मनुरब्रवीत्।
वेदविक्रयिणो ह्येते श्राद्धादिषु विगर्हिता:॥ २९॥

और जिसने द्रव्य के लिए अपनी स्त्री को परपुरुष के साथ सहमति दी हो, उन्हें मनु ने पतित कहा है। धन लेकर वेदाध्यापन कराने वाले भी श्राद्धादि में निन्दित हैं।

सुतविक्रयिणो ये तु परपूर्वासमुद्भवाः।
असामान्यान् यजन्ते ये पतितास्ते प्रकीर्तिताः॥ ३०॥

जो पुत्र को बेचने वाले हों, जो पूर्व पुरुष को छोड़कर पुनः दूसरे से विवाहिता स्त्री से उत्पन्न हों, जो असमान व्यक्तियों का यजन करते हों, वे पतित कहे गये हैं।

असंस्कृताध्यापका ये भृत्यर्थेऽध्यापयन्ति ये।
अधीयते तथा वेदान् पतितास्ते प्रकीर्त्तिताः॥ ३१॥

जो अध्यापक संस्कारहीन हों, जो धन के लिए अध्यापन करते हों, या वेतन के लिए वेद पढ़ाते हों, वे पतित कहे गये हैं।

वृद्धश्रावकनिर्ग्रन्थाः पञ्चरात्रविदो जनाः।
कापालिकाः पाशुपताः पाषण्डा ये च तद्विधाः॥ ३२॥
यस्याश्नन्ति हवींष्येते दुरात्मानस्तु तामसाः।
न तस्य तद्भवेच्छ्राद्धं प्रेत्य चेह फलप्रदम्॥ ३३॥

अनपढ़ वृद्धश्रावक, पंचरात्र सिद्धान्त का ज्ञाता, कापालिक, पाशुपत मत वाले पाखंडी या उनके जैसे लोग जिनका हविष्यान्न खाते हैं, वे दुरात्मा तामसी होते हैं। उसका वह श्राद्ध इस लोक में तथा मरण पश्चात् परलोक में भी फलदायक नहीं होता।

अनाश्रमी द्विजो यः स्यादाश्रमी वा निरर्थकः।
मिथ्याश्रमी च ते विप्रा विज्ञेयाः पंक्तिदूषकाः॥ ३४॥
दुश्चर्मा कुनखी कुष्ठी श्वित्री च श्यावदन्तकः।
विद्धजननश्चैव स्तेनः क्लीबोऽथ नास्तिकः॥ ३५॥
मद्यपो वृषलीसक्तो वीरहा दिधिषूपतिः।
अगारदाही कुण्डाशी सोमविक्रयिणो द्विजाः॥ ३६॥
परिवेत्ता च हिंस्रश्च परिवित्तिर्निराकृतिः।
पौनर्भवः कुसीदश्च तथा नक्षत्रदर्शकः॥ ३७॥
गीतवादित्रशीलश्च व्याधितः काण एव च।
हीनाङ्गश्चातिरिक्ताङ्गो ह्यवकीर्णो तथैव च॥ ३८॥
अन्नदूषी कुण्डगोलौ अभिशस्तोऽथ देवलः।
मित्रध्रुक् पिशुनश्चैव नित्यं भार्यानुवर्त्तितः॥ ३९॥
मातापित्रोर्गुरोस्त्यागी दारत्यागी तथैव च।
गोत्रस्पृक् भ्रष्टशौचश्च काण्डपृष्टस्तथैव च॥ ४०॥
अनपत्यः कूटसाक्षी याचको रङ्गजीवकः।
समुद्रयायी कृतहा तथा समयभेदकः॥ ४१॥
वेदनिन्दारतश्चैव देवनिन्दापरस्तथा।
द्विजनिन्दारतश्चैव वर्ज्याः श्राद्धादिकर्मणि॥ ४२॥

जो कोई ब्राह्मण आश्रम धर्मरहित हो या उससे युक्त हो परन्तु निरर्थक-आचारशून्य हो, तथा जो मिथ्या आश्रमी हो, उनको पथभ्रष्ट जानना चाहिए। चर्मरोगी, कुनखी, कुष्ठरोगी, काले-पीले दाँत वाला, प्रजननेन्द्रिय से विद्ध, चोर, नपुंसक, नास्तिक, मद्यपान करने वाला, शूद्रजाति की स्त्री में आसक्त, वीर पुरुष का हत्यारा, जो बड़ी बहन के अविवाहिता होने पर भी उसकी छोटी बहन का पति हो, किसी का घर जलाने वाला, कुंड नामक वर्णसंकर का अन्न खाने वाला, सोमविक्रय करने वाला, बड़े भाई के रहते विवाह कर लिया हो, हिंसक वृत्ति वाला, स्वयं विवाह करके अविवाहित बड़े भाई का अनादर करने वाला, पुनः विवाहिता स्त्री से उत्पन्न, व्याजखोर, नक्षत्रदर्शक, गीतवादित्रपरायण, रोगी, काना, अङ्गहीन या अधिक अङ्गयुक्त, अवकीर्ण, अन्नदूषी, कुण्ड और गोलक वर्णसंकर से धिक्कारित, वेतन लेकर देवपूजा करने वाला, मित्रद्रोही, चुगलखोर, सदा स्त्री का अनुगामी, माता-पिता और गुरु को त्यागने वाला, स्त्रीत्यागी, गोत्र का उच्चार करने वाला, पवित्रता से भ्रष्ट, शस्त्रविक्रेता, संतानहीन, खोटी साक्षी करने वाला, याचक, रंग-रोगन करके आजीविका चलाने वाला, समुद्र में यात्रा करने वाला, कृतघ्न, वचन तोड़ने वाला, वेदनिन्दारत, देवनिन्दापरायण तथा द्विजनिन्दा करने वाला सदा श्राद्धकर्म में त्याज्य हैं।

कृतघ्नः पिशुनः क्रूरो नास्तिको वेदनिन्दकः।
मित्रध्रुक् कुहकश्चैव विशेषात्पंक्तिदूषकः॥ ४३॥
सर्वे पुनरभोज्यान्ना न दानार्हाः स्वकर्मसु।
ब्रह्महा चाभिशस्ताश्च वर्ज्जनीयाः प्रयत्नतः॥ ४४॥

इसमें भी जो कृतघ्न, चुगलखोर, क्रूर, नास्तिक, वेदनिन्दक, मित्रद्रोही और कपटी है, वह तो विशेषरूप से पंक्ति को दूषित करने वाला है। इन सबका अन्न खाने योग्य नहीं होता और वे अपने कर्मों में दान देने भी योग्य नहीं माने जा सकते। इसी प्रकार ब्रह्महत्या करने वाले और समाज में धिक्कार के योग्य हों, उनको भी प्रयत्नपूर्वक त्याग देना चाहिए।

शूद्रान्नरसपुष्टांगः सन्ध्योपासनवर्जितः।
महायज्ञविहीनश्च ब्राह्मणः पंक्तिदूषकः॥ ४५॥

अधीतनाशनश्चैव स्नानदानविवर्जितः।
तामसो राजसश्चैव ब्राह्मणः पंक्तिदूषकः॥४६॥

जिस द्विज का शरीर शूद्र का अन्न खाकर पुष्ट हुआ हो, जो सन्ध्योपासनादि कर्म से रहित हो और जो पंच महायज्ञों को न करने वाला हो, वह पूरी पंक्ति को दूषित करने वाला होता है। जो अधीत विद्या का नाश करने वाला हो, जो स्नान तथा दान से रहित हो, जो तामस और राजस प्रकृति का हो, वह ब्राह्मण पूरी पंक्त को जूषित करता है।

बहुनात्र किमुक्तेन विहितान् ये न कुर्वते।
निन्दितानाचरन्त्येते वर्ज्याः श्राद्धे प्रयत्नतः॥४७॥

इस विषय में बहुत क्या कहना? वस्तुतः जो शास्त्रविहित कर्म नहीं करता, और जो निन्दित कर्मों का आचरण करता है— इन सबको श्राद्ध कर्म में सावधानी से त्याग देना चाहिए।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासु श्राद्धकल्पे एकविंशोऽध्यायः॥२१॥

द्वाविंशोऽध्यायः

(श्राद्धकल्प)

व्यास उवाच

गोमयेनोदकैर्भूमिं शोधयित्वा समाहितः।
सन्निमन्त्र्य द्विजान् सर्वान् साधुभिः सन्निमन्त्रयेत्॥१॥

व्यासजी बोले— गाय के गोबर और जल से भूमि को शुद्ध करने के अनन्तर सावधान और एकाग्र चित्त होकर सभी ब्राह्मणों को सज्जनों द्वारा आमन्त्रित करना चाहिए।

श्वो भविष्यति मे श्राद्धं पूर्वेद्युरभिपूज्य च।
असम्भवे परेद्युर्वा यथोक्तैर्लक्षणैर्युतान्॥२॥
तस्य ते पितरः श्रुत्वा श्राद्धकालमुपस्थितम्।
अन्योऽन्यं मनसा ध्यात्वा संपतन्ति मनोजवाः॥३॥

"मेरे यहाँ कल श्राद्ध होगा" ऐसा कहकर श्राद्ध के पहले दिन ब्राह्मणों का अभिवादन करना चाहिए और यदि ऐसा सम्भव न हो तो पूर्वोक्त लक्षणों से युक्त ब्राह्मणों की दूसरे दिन पूजा करें। श्राद्ध करने वाले व्यक्ति के पितृगण श्राद्ध का समय आ गया है, ऐसा सोच कर, मन के समान तीव्र गति से परस्पर एक-दूसरे का मन से ध्यान करके तत्काल ही श्राद्ध स्थल पर आ पहुँचते हैं।

तैर्ब्राह्मणैः सहाश्नन्ति पितरो ह्यन्तरिक्षगाः।
वायुभूतास्तु तिष्ठन्ति भुक्त्वा यान्ति परां गतिम्॥४॥

इसके बाद अन्तरिक्ष में रहने वाले वे पितर वायुस्वरूप होकर वहाँ उपस्थित रहते हैं और उन आमन्त्रित ब्राह्मणों के साथ भोजन करते हैं और भोजनोपरान्त वे परमश्रेष्ठ गति को प्राप्त करते हैं।

आमन्त्रिताश्च ते विप्राः श्राद्धकाल उपस्थिते।
वसेयुर्नियताः सर्वे ब्रह्मचर्यपरायणाः॥५॥

उसी प्रकार आमन्त्रित वे ब्राह्मण भी श्राद्ध का समय उपस्थित होने पर नियमपूर्वक तथा ब्रह्मचर्यपरायण होकर वहाँ आ कर रहे।

अक्रोधनोऽत्वरोऽमत्तः सत्यवादी समाहितः।
भारं मैथुनमध्वानं श्राद्धकृद्वर्जयेद्ध्रुवम्॥६॥

उस समय श्राद्ध करने वाले को क्रोधरहित, एकाग्रचित्त, और सत्यवादी होना चाहिए तथा भार उठाना, मैथुन करना और मार्ग में जाना (यात्रा करना) भी छोड़ देना चाहिए।

आमन्त्रितो ब्राह्मणो वै योऽन्यस्मै कुरुते क्षणम्।
स याति नरकं घोरं सूकरत्वं प्रयाति च॥७॥

जो ब्राह्मण श्राद्ध में आमन्त्रित हो, वह यदि उस समय किसी अन्य को अपना समय देता है अथवा दूसरे के लिए कार्य करता है, तो वह घोर नरक में गिरता है और शूकर की योनि को प्राप्त होता है।

आमन्त्रयित्वा यो मोहादन्यं चामन्त्रयेद्द्विजः।
स तस्मादधिकः पापी विष्ठाकीटोऽभिजायते॥८॥

जो व्यक्ति एक ब्राह्मण को निमन्त्रित करने के पश्चात् मोहवश किसी अन्य को आमन्त्रित करता है, उससे अधिक दूसरा कोई भी पापी नहीं होता। ऐसा व्यक्ति मरणोपरान्त विष्ठा का कीड़ा होता है।

श्राद्धे निमन्त्रितो विप्रो मैथुनं योऽधिगच्छति।
ब्रह्महत्यामवाप्नोति तिर्यग्योनौ विधीयते॥९॥

जो ब्राह्मण श्राद्ध में आमन्त्रित होने के बाद मैथुन कार्य करता है वह ब्रह्महत्या के पाप का भागी बनता है और पक्षी की जाति में जन्म लेता है।

निमन्त्रितस्तु यो विप्रो ह्यध्वानं याति दुर्मतिः।
भवन्ति पितरस्तस्य तन्मासं पापभोजनाः॥१०॥
निमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे कुर्याद्वै कलहं द्विजः।
भवन्ति पितरस्तस्य तन्मासं मलभोजनाः॥११॥

जो ब्राह्मण श्राद्ध में निमन्त्रित है, फिर भी दुर्बुद्धि के कारण यात्रा करने चला जाता है, तो उसके पितृगण एक मास तक धूल खाने वाले होते हैं। श्राद्ध में निमन्त्रित ब्राह्मण किसी से झगड़ा करता है उसके पितर मल खाने वाले होते हैं।

तस्मान्निमन्त्रित: श्राद्धे नियतात्मा भवेद्द्विज:।
अक्रोधन: शौचपर: कर्त्ता चैव जितेन्द्रिय:॥ १२॥

निमन्त्रित ब्राह्मण को सावधानचित्त, क्रोधरहित और पवित्रता से युक्त होना चाहिए। उसे सदा जितेन्द्रिय रह कर सभी आचरणों का पालन करना चाहिए।

श्वोभूते दक्षिणां गत्वा दिशं दर्भान्समाहित:।
समूलानाहरेद्वारि दक्षिणाग्रान् सुनिर्मलान्॥ १३॥

श्राद्ध करने के लिए दूसरा दिन आ जाने पर श्राद्धकर्त्ता को दक्षिण दिशा में जाना चाहिए और सावधानीपूर्वक वहाँ से मूलसहित दक्षिणाग्र भाग वाले अतिशय निर्मल कुश और जल लाना चाहिए।

दक्षिणाप्रवणं स्निग्धं विभक्तं शुभलक्षणम्।
शुचि देशं विविक्तञ्च गोमयेनोपलेपयेत्॥ १४॥

फिर घर आकर दक्षिण दिशा में तैयार किया हुआ स्निग्ध, ताजा, विभाजित, एवं शुभ लक्षणों से युक्त एक तरफ अलग पवित्र भूमि को गोबर से लीपना चाहिए।

नदीतीरेषु तीर्थेषु स्वभूमौ चैव नाम्बुषु।
विविक्तेषु च तुष्यन्ति दत्तेन पितर: सदा॥ १५॥

नदी तट, तीर्थ स्थान, अपनी भूमि, पर्वतों के पठार और निर्जन स्थान पर श्राद्ध करने से पितृगण सर्वकाल में प्रसन्न रहते हैं।

पारक्ये भूमिभागे तु पितॄणां नैव निर्वपेत्।
स्वामिभिस्तद्विहन्येत मोहाद्यत् क्रियते नरै:॥ १६॥

दूसरों के भूभाग में पितरों के लिए श्राद्ध अर्पण नहीं करना चाहिए। परायी भूमि पर मोहवश कुछ भी श्राद्ध आदि पितृकर्म किया जाता है, तो कदाचित् उस भूमि का स्वामी उसे नष्ट कर दे अथवा उसमें कोई विघ्न उपस्थित कर सकता है।

अटव्य: पर्वता: पुण्यास्तीर्थान्यायतनानि च।
सर्वाण्यस्वामिकान्याहुर्न ह्येतेषु परिग्रह:॥ १७॥

किसी भी जंगल, पर्वत, पवित्र तीर्थ तथा देवमन्दिरों में जो किसी के स्वामित्व में नहीं होते, इसलिए श्राद्ध आदि करने के लिए ये स्थान स्वीकार करने योग्य होते हैं।

तिलान्प्रविकिरेत्तत्र सर्वतो बन्धयेदजम्।
असुरोपहतं श्राद्धं तिलै: शुध्यत्यजेन तु॥ १८॥

इस प्रकार जो श्राद्ध के उपयुक्त भूमि हो, वहाँ गाय के गोबर से शुद्धि करके चारों ओर तिलों को बिखेर देना चाहिए और बकरा बाँध देना चाहिए। क्योंकि जो प्रदेश असुरों द्वारा शुद्ध किये गये हों, वे तिल फैलाने और बकरा बाँधने से शुद्ध हो जाते हैं।

ततोऽन्नं बहुसंस्कारं नैकव्यञ्जनमव्ययम्।
चोष्यं पेयं संमृतं च यथाशक्ति प्रकल्पयेत्॥ १९॥

इसके बाद अनेक प्रकार से शुद्ध किए हुए तथा अनेक प्रकार के व्यञ्जनों से युक्त चूसने और पीने योग्य पदार्थों का अपनी सामर्थ्य के अनुसार संग्रह करना चाहिए।

ततो निवृत्ते मध्याह्ने लुप्तरोमनखान्द्विजान्।
अवगम्य यथामार्गं प्रयच्छेद्दन्तधावनम्॥ २०॥
आसध्वमिति संजल्पन्नासीरन्ते पृथक् पृथक्।
तैलमभ्यञ्जनं स्नानं स्नानीयञ्च पृथग्विधम्।
पात्रैरोदुम्बरै[1]र्दद्याद्वैश्वदेवत्यपूर्वकम्॥ २१॥

मध्याह्न समय बीत जाने पर जिन ब्राह्मणों ने क्षौर-कर्म कर लिया हो तथा नख आदि काट लिए हों, उन्हें नियमपूर्वक दातुन आदि देना चाहिए। फिर उन्हें 'बैठिये' ऐसा कहकर अन्त में सबसे अलग-अलग आशीर्वाद ले। इसके बाद तेल की मालिश, स्नान आदि के लिए विभिन्न प्रकार के सुगन्धित चूर्ण, वस्त्र और स्नानीय जल, गूलर के पात्र में रखकर वैश्वदेव मन्त्र का पाठ करके ब्राह्मणों को देना चाहिए।

तत: स्नानान्निवृत्तेभ्य: प्रत्युत्थाय कृताञ्जलि:।
पाद्यमाचमनीयं च संप्रयच्छेद्यथाक्रमम्॥ २२॥

इसके बाद स्नान से निवृत्त हो जाने पर उन ब्राह्मणों के सामने दोनों हाथ जोड़कर श्राद्धकर्त्ता क्रमश: पाद प्रक्षालन के लिए जल और आचमन के लिए भी जल अर्पित करे।

ये चात्र विश्वदेवानां द्विजा: पूर्वं निमन्त्रिता:।
प्राङ्मुखान्यासनान्येषां त्रिदर्भोपहतानि च॥ २३॥

जो ब्राह्मण विश्वदेव के लिए प्रतिनिधिरूप में आमन्त्रित किये जाते हैं उनके आसन पूर्व दिशा की ओर मुख करके बिछाने चाहिए और उन पर तीन कुशाएँ रखनी चाहिए।

---

1. उदुम्बरो जन्तुफलो यज्ञाङ्गो हेमदुग्धक:। (भा.प्र.नि.)
Fig tree.

दक्षिणामुखमुक्तानि पितॄणामासनानि च।
दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु प्रोक्षितानि तिलोदकैः॥ २४॥
तेषूपवेशयेदेतानासनं संस्पृशन्नपि।
आसध्वमिति सञ्जल्पन्नासीरस्ते पृथक् पृथक्॥ २५॥

जो आसन दक्षिणाभिमुख करके पितरों के लिए स्थापित किये गये हों, उन दक्षिणाग्र दर्भों पर तिल युक्त जल से प्रोक्षण करना चाहिए फिर उन पर ब्राह्मणों को बैठाना चाहिए। उन आसनों को उस समय अपने हाथों से स्पर्श करते रहना चाहिए और 'इस पर बैठिए' ऐसा कहे जाने पर उन ब्राह्मणों को भी अलग-अलग आसनों पर बैठ जाना चाहिए।

द्वौ दैवे प्राङ्मुखौ पित्रे त्रयश्चोदङ्मुखास्तथा।
एकैकं तत्र देवन्तु पितृमातामहेष्वपि॥ २६॥
सत्क्रियां देशकालौ च शौचं ब्राह्मणसम्पदम्।
पंचैतान्विस्तरो हन्ति तस्मान्नेहेत विस्तरम्॥ २७॥
अपि वा भोजयेदेकं ब्राह्मणं वेदपारगम्।
श्रुतशीलादिसम्पन्नमलक्षणविवर्जितम्॥ २८॥

उस समय देवकर्म में वहाँ दो ब्राह्मणों को पूर्व दिशा की ओर मुख करके और पितृकर्म में तीन ब्राह्मणों को उत्तर दिशा की ओर बैठाना चाहिए, क्योंकि वहाँ देवकर्म और पितामह, मातामह के उद्देश्य से भी एक-एक ही कर्म करना होता है। उसमें भी यही कारण होता है कि प्रत्येक श्राद्ध में सत्कार, देशकाल, ब्राह्याभ्यन्तर पवित्रता और ब्राह्मणों की उपस्थिति— ये सब अधिक मात्रा में हो तो वह ऐसा विस्तार श्राद्धक्रिया के लिए नाश का कारण होता है। इसलिए विस्तार की इच्छा नहीं करनी चाहिए अथवा श्राद्ध में वेदज्ञ एक ही ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए, जो शास्त्रज्ञानी शील, उत्तम स्वभाव वाला, कुलक्षण से रहित और सदाचार से युक्त हो।

उद्धृत्य पात्रे चान्नं तत्सर्वस्मात्प्रकृतात्ततः।
देवतायतने चासौ निवेद्यान्यत्प्रवर्त्तयेत्॥ २९॥
प्रास्येदन्नं तदग्नौ तु दद्याद्वै ब्रह्मचारिणे।
तस्मादेकमपि श्रेष्ठं विद्वांसं भोजयेद्विजम्॥ ३०॥
भिक्षुको ब्रह्मचारी वा भोजनार्थमुपस्थितः।
उपविष्टस्तु यः श्राद्धे कामं तमपि भोजयेत्॥ ३१॥

श्राद्ध के समय जितने प्रकार के व्यञ्जन तैयार हों, उनमें से थोड़ा-थोड़ा अन्न एक पात्र में निकाल कर परोसकर उस नैवेद्य का थाल किसी देवमन्दिर में सर्वप्रथम भेजना चाहिए। उसके बाद ही शेष अन्न का उपयोग दूसरे काम में करना चाहिए। (जैसा कि) उस शेष अन्न से थोड़ा अग्नि को, फिर किसी ब्रह्मचारी को, फिर उसमें से शेष अन्न में से किसी श्रेष्ठ विद्वान् ब्राह्मण को, भोजन कराना चाहिए। उस श्राद्ध के समय यदि कोई भिखारी अथवा संन्यासी या ब्रह्मचारी भोजन हेतु आ जाय और उस श्राद्ध में भोजन की इच्छा से वहाँ बैठा हो, तो उसे भी इच्छानुसार अवश्य ही भोजन कराना चाहिए।

अतिथिर्यस्य नाश्नाति न तच्छ्राद्धं प्रशस्यते।
तस्मात् प्रयत्नाच्छ्राद्धेषु पूज्या ह्यतिथयो द्विजैः॥ ३२॥
आतिथ्यरहिते श्राद्धे भुञ्जते ये द्विजातयः।
काकयोनिं व्रजन्त्येते दाता चैव न संशयः॥ ३३॥

जिस श्राद्ध में किसी अतिथि के आ जाने पर उसे भोजन नहीं कराया जाता है तो वह श्राद्ध प्रशंसा योग्य नहीं होता। इस कारण द्विजों को श्राद्ध में प्रयत्नपूर्वक अतिथियों को भोजन और सत्कार देना चाहिए। यदि अतिथिसत्कार से रहित जिस श्राद्धकर्म में ब्राह्मणादि लोग भोजन करते हैं, वे काक-योनि में जन्म लेते हैं और भोजन देने वाला भी उस योनि को प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं है।

हीनाङ्गः पतितः कुष्ठी व्रणयुक्तस्तु नास्तिकः।
कुक्कुटः शूकरश्वानौ वर्ज्याः श्राद्धेषु दूरतः॥ ३४॥
बीभत्सुमशुचिं नग्नं मत्तं धूर्तं रजस्वलाम्।
नीलकाषायवसनपाषण्डांश्च विवर्जयेत्॥ ३५॥

यदि कोई अतिथि अङ्गहीन, पतित, कुष्ठरोगी, घावयुक्त, चाण्डाल या नास्तिक हो अथवा वहाँ कुक्कुट, शूकर और कुत्ता आ जाए तो उस श्राद्धकर्म में उसे दूर से ही भगा देना चाहिए। उसी प्रकार बीभत्स, अपवित्र, नग्न, पागल, धूर्त, रजस्वला स्त्री, नीला या काषाय वस्त्रधारी कोई पाखण्डी आ पहुँचे, तो श्राद्ध के समय उसका त्याग कर देना चाहिए।

यत्तत्र क्रियते कर्म पैतृकं ब्राह्मणान्प्रति।
तत्सर्वमेव कर्त्तव्यं वैश्वदैवत्यपूर्वकम्॥ ३६॥
यथोपविष्टान् सर्वांस्तानलङ्कुर्याद्विभूषणैः।
स्रग्दामभिः शिरोवेष्टैर्धूपवासोऽनुलेपनैः॥ ३७॥
ततस्त्वावाहयेद्देवान् ब्राह्मणानामनुज्ञया।
उदङ्मुखो यथान्यायं विश्वेदेवास इत्यृचा॥ ३८॥

श्राद्ध में जो कोई कर्म ब्राह्मणों को लक्ष्य करके कराये जाते हैं वे सब वैश्वदेव की क्रिया के अनुसार ही होने चाहिए। श्राद्ध कर्म हेतु जो ब्राह्मण वहाँ आकर बैठे हों उन

सबको आभूषणों से अलंकृत करना चाहिए। माला, यज्ञोपवीत, सुगन्धित द्रव्य, पगड़ी आदि अर्पित करके उन्हें वस्त्र और चन्दनादि से अलंकृत करना चाहिए। इसके पश्चात् ब्राह्मणों से अनुमति लेकर उत्तर दिशा की ओर मुख करके देवों का भी आह्वान करना चाहिए। उस समय 'विश्वेदेवास' इस ऋचा का उच्चारण करके यथायोग्य देवों का आह्वान करना चाहिए।

द्वे पवित्रे गृहीत्वास्य भाजने क्षालिते पुन:।
शन्नो देवी जलं क्षिप्त्वा यवोऽसीति यवांस्तथा॥३९॥
या दिव्या इति मन्त्रेण हस्ते त्वर्घं विनिक्षिपेत्।
प्रदद्याद्गन्धमाल्यानि धूपादीनि च शक्तित:॥४०॥

दो पवित्री धारण कर 'शन्नो देवी:' इस मन्त्र का उच्चारण करके जल छिड़कना चाहिए और 'यवोऽसि' यह मन्त्र पढ़कर पात्र में जौ डालने चाहिए। उसके बाद 'या दिव्या' इस मन्त्र से हाथ में अर्घ्य लेकर अपने सामर्थ्यानुसार चन्दन, पुष्प तथा धूप आदि को अर्पित करना चाहिए।

अपसव्यं तत: कृत्वा पितृणां दक्षिणामुख:।
आवाहनं तत: कुर्यादुशन्तस्त्वेत्यृचा बुध:॥४१॥
आवाह्य तदनुज्ञातो जपेदायन्तुनस्तत:।
शन्नो देव्योदकं पात्रे तिलोऽसीति तिलांस्तथा॥४२॥

तदनन्तर श्राद्ध करने वाला विद्वान् दक्षिणाभिमुख होकर यज्ञोपवीत को दाहिनी ओर धारण करके 'उशन्तस्त्वा' इस ऋचा से पितरों का आह्वान करे। आवाहन के अनन्तर ब्राह्मणों की अनुमति से 'आयन्तु न:' मन्त्र का जप करना चाहिए तथा 'शन्नोदेवी' मन्त्र द्वारा जल और 'तिलोऽसि' मन्त्र द्वारा तिलों को अर्घ्यपात्र में डालना चाहिए।

क्षिप्त्वा चार्घं यथापूर्वं दत्त्वा हस्तेषु वा पुन:।
संस्रवांश्च तत: सर्वान् पात्रे कुर्यात्समाहित:॥४३॥
पितृभ्य: स्थानमेतच्च न्युब्जपात्रं निधापयेत्।
अग्नौ करिष्यन्नादाय पृच्छेदन्नं घृतप्लुतम्।
कुरुष्वेत्यभ्यनुज्ञातो जुहुयादुपवीतवित्॥४४॥

पूर्वोक्त विधि के अनुसार अर्घ्य देकर फिर (पितृस्वरूप ब्राह्मणों के) हाथ में उसे अर्पित करना चाहिए। तदनन्तर एकाग्रचित्त होकर पात्र में सभी संस्त्रवों को स्थापित करे। तत्पश्चात् 'पितृभ्य: स्थानमसि' यह मन्त्र पढ़कर अर्घ्यपात्र को उलटा कर दे। फिर 'अग्नौ करिष्ये' ऐसा कहकर घी-मिश्रित अन्न को ग्रहण कर ब्राह्मणों से पूछे। तब ब्राह्मणों द्वारा 'कुरुष्व' (होम करो) ऐसा कहने पर यज्ञोपवीत धारण करके होम प्रारम्भ करे।

यज्ञोपवीतिना होम: कर्तव्य: कुशपाणिना।
प्राचीनावीतिना पित्र्यं वैश्वदेवं तु होमवित्॥४५॥

सदैव यज्ञोपवीत धारण करके और हाथ में कुशा लेकर ही होम करना चाहिए। होम की विधि को जानने वाला पितरों और वैश्वदेवों के निमित्त होम करते समय पूर्व की तरह अपसव्य होकर ही हवन करे।

दक्षिणं पातयेज्जानुं देवान् परिचरन्सदा।
पितृणां परिचर्यासु पातयेदितरं तथा॥४६॥
सोमाय वै पितृमते स्वधा नम इति ब्रुवन्।
अग्नये कव्यवाहनाय स्वधेति जुहुयात्तत:॥४७॥

देवताओं की परिचर्या करते हुए सदा दाहिने घुटने को भूमि पर गिरा ले और पितरों के प्रति सेवा अर्पित करते समय बायें घुटने को भूमि पर गिरा ले। तब होमक्रिया प्रारम्भ करते समय 'सोमाय पितृमते स्वधा' और 'अग्नये कव्यवाहाय स्वधा' ऐसा उच्चारण करते हुए पितरों के निमित्त होम करना चाहिए।

अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणावेवोपपादयेत्।
महादेवान्तिके वाथ गोष्ठे वा सुसमाहित:॥४८॥

यदि उस स्थान पर अग्नि का अभाव हो तो ब्राह्मण के हाथ में होमद्रव्य अर्पित करे अथवा सुसमाहित होकर शिवलिङ्ग के समीप या गोष्ठ (गायों के रहने के स्थान) में वह होमद्रव्य अर्पित करना चाहिए।

ततस्तैरभ्यनुज्ञातो गत्वा वै दक्षिणां दिशम्।
गोमयेनोपलिप्याथ स्थानं कुर्यात्ससैकतम्॥४९॥
मण्डलं चतुरस्रं वा दक्षिणाप्रवणं शुभम्।
त्रिरुल्लिखेत्तस्य मध्यं दर्भेणैकेन चैव हि॥५०॥

इसके पश्चात् पितृस्वरूप ब्राह्मण से आज्ञा प्राप्त कर दक्षिण दिशा की ओर जाकर किसी (पवित्र) स्थान को गोबर से लीप कर, उस पर नदी की रेत डालनी चाहिए। वहाँ दक्षिण की तरफ चार कोण वाले मण्डल का निर्माण करना चाहिए और उस मण्डल के मध्य एक कुशा लेकर तीन बार रेखा खिंचनी चाहिए।

तत: संस्तीर्य तत्स्थाने दर्भान्वै दक्षिणाग्रगान्।
त्रीन् पिण्डान्निर्वपेत् तत्र हवि:शेषात्समाहित:॥५१॥
उप्य पिण्डांस्तु तद्धस्तं निमृज्याल्लेपभोजनान्।

तेषु दर्भेष्वथाचम्य त्रिराचम्य शनैरसून्।
तदन्नं तु नमस्कुर्यात्पितॄनेव च मन्त्रवित्॥ ५२॥
उदकं निनयेच्छेषं शनैः पिण्डान्तिके पुनः।
अवजिघ्रेच्च तान् पिण्डान् यथा न्युप्त्वा समाहितः॥ ५३॥

उस स्थान पर दक्षिणाग्र (दाहिनी ओर अणीदार) कुशों को बिछाकर उसके ऊपर अवशिष्ट हवि से तीन पिण्ड बनाकर समाहितचित्त होकर स्थापित करना चाहिए। पिण्डदान के पश्चात् उस पिण्डयुक्त हाथ को लेपभोजी पितरों को उद्दिष्ट करके कुशाओं से पोंछकर, तीन बार आचमन करके धीरे-धीरे श्वास छोड़ते हुए मन्त्रवेत्ता पुरुष को उस अन्न को तथा पितरों को नमस्कार करना चाहिए। इसके पश्चात् जो जल शेष रहा हो, उसे पिण्डों के समीप धीरे-धीरे गिराना चाहिए। फिर एकाग्रचित्त होकर स्थापित पिण्डों को क्रमशः सूँघना चाहिए।

अथ पिण्डाच्च शिष्टान्नं विधिवद्भोजयेद्द्विजान्।
मांसान् पूपांश्च विविधान्श्राद्धकल्यांस्तु शोभनान्॥ ५४॥

इसके अनन्तर पिण्डों से अवशिष्ट अन्न को तथा मांस, मालपुए तथा विविध प्रकार के श्राद्धोपयोगी अच्छे व्यंजनों को विधिवत् ब्राह्मणों को खिलाना चाहिए।

ततोऽन्नमुत्सृजेद्भुक्तेष्वग्रतो विकिरन्भुवि।
पृष्ट्वा तदन्नमित्येव तृप्तानाचामयेत्ततः॥ ५५॥

तत्पश्चात् ब्राह्मणों के भोजन कर लेने पर उनके आगे भूमि पर उनसे पूछकर अवशिष्ट अन्न को बिखेर दें। फिर तृप्त हुए उन ब्राह्मणों को आचमनादि करायें।

आचान्ताननुजानीयादभितो रम्यतामिति।
स्वधास्त्विति च ते ब्रूयुर्ब्राह्मणास्तदनन्तरम्॥ ५६।

आचमन करने के अनन्तर उनसे विश्राम करने के लिए कहें। उसके उत्तर में ब्राह्मणों को भी 'स्वधास्तु' ऐसा कहना चाहिए।

ततो भुक्तवतां तेषामन्नशेषं निवेदयेत्।
यथा ब्रूयुस्तथा कुर्यादनुज्ञातस्तु तैर्द्विजैः॥ ५७॥

ब्राह्मणों द्वारा भोजन कर लेने पर जो अन्न शेष रह गया हो, उसे सम्पूर्णरूप से उसे निवेदित कर देना चाहिए। फिर वे ब्राह्मण जैसा कहें उनकी आज्ञानुसार वैसा ही करे।

पित्र्ये स्वदितमित्येव वाच्यं गोष्ठेषु सुश्रितम्।
सम्पन्नमित्यभ्युदये दैवे सेवितमित्यपि॥ ५८॥

पितरों को उद्दिष्ट करके श्राद्धकर्त्ता 'स्वदितम्' बोले, सामूहिक श्राद्ध के समय 'सुश्रितम्' कहे, मंगल-कर्म में 'सम्पन्नम्' और देवकर्म में 'सेवितम्' कहे।

विसृज्य ब्राह्मणान् तान्वै पितृपूर्वन्तु वाग्यतः।
दक्षिणान्दिशमाकांक्षन्याचेतेमान्वरान् पितॄन्॥ ५९॥

पहले पितरों का विसर्जन करके पश्चात् ब्राह्मणों को विदा करे। फिर वाणी को संयमित करके दक्षिण दिशा की ओर पितरों की आकांक्षा करते हुए याचना करें।

दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च।
श्रद्धा च नो मा विगमद्बहुदेयञ्च नोऽस्त्विति॥ ६०॥

हमारे दाताओं वेदों और सन्तान की अभिवृद्धि हो। हमारे भीतर से श्रद्धा न जाये। हमारे पास बहुत देय सामग्री हो।

पिण्डांस्तुगोऽजविप्रेभ्यो दद्यादग्नौ जलेऽपि वा।
मध्यमन्तु ततः पिण्डमद्यात्पत्नी सुतार्थिनी॥ ६१॥

दान किये हुए पिण्डों को गाय, बकरी, ब्राह्मण को दे दें। अथवा अग्नि या जल में डाल दे। पुत्र चाहने वाली पत्नी को मध्यम पिण्ड स्वयं ग्रहण करना चाहिए।

प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य ज्ञातिं शेषेण तोषयेत्।
सूपशाकफलानीक्षून् पयो दधि घृतं मधु॥ ६२॥

फिर दोनों हाथ धोकर आचमन करे और बचे हुए अन्न से बन्धुओं को तृप्त करे। सूप, साग, फल, ईख, दूध, घी और मधु ब्राह्मणों को खिलाये।

अन्नञ्चैव यथाकामं विविधं भोज्यपेयकम्।
यद्यदिष्टं द्विजेन्द्राणां तत्सर्वं विनिवेदयेत्॥ ६३॥

ब्राह्मणों को यथेष्ट अन्न और विविध प्रकार के भोज्य और पेय पदार्थ देने चाहिए। इसके अतिरिक्त उन्हें जो इष्ट हो, वह सब कुछ देना चाहिए।

धान्यांस्तिलांश्च विविधान् शर्करा विविधास्तथा।
उष्णमन्नं द्विजातिभ्यो दातव्यं श्रेय इच्छता।
अन्यत्र फलमूलेभ्यो पानकेभ्यस्तथैव च॥ ६४॥

विविध प्रकार के धान्य, तिल और विविध मिष्ठान्न (शर्करा) देने चाहिए और कल्याण चाहते हुए ब्राह्मणों को गरम भोजन कराना चाहिए, परन्तु अन्य फल-मूल और पेय पदार्थ शीतल ही देने चाहिए।

न भूमौ पातयेज्जानुं न कुप्येन्नानृतं वदेत्।
मा पादेन स्पृशेदन्नं न चैवमवधूनयेत्॥ ६५॥

उस समय घुटनों को भूमि पर न टिकाये, क्रोध न करे और असत्य भी नहीं बोलना चाहिए, पैरों से अन्न को छूना नहीं चाहिए और पैरों को हिलाना नहीं चाहिए।

क्रोधेनैव च यद्भुक्तं यद्भुक्तं त्वयथाविधि।
यातुधानां विलुम्पन्ति जल्पता चोपपादितम्॥ ६६॥

क्रोधपूर्वक जो खाया जाता है, या अविधिपूर्वक-अत्यन्त व्यस्तता के साथ और बातें करते हुए जो खाया जाता है, उसे राक्षस हर लेते हैं।

स्विन्नगात्रो न तिष्ठेत सन्निधौ च द्विजोत्तमा:।
न च पश्यते काकादीन् पक्षिण: प्रतिलोमगान्।
तद्रूपा: पितरस्तत्र समायान्ति बुभुक्षव:॥ ६७॥

शरीर पसीने से युक्त हो, तो ब्राह्मणों के समीप खड़ा नहीं होना चाहिए और श्राद्ध के समय आने वाले कौए-बाज आदि पक्षियों की ओर न तो देखना चाहिए और न ही उन्हें भगा देना चाहिए, क्योंकि भोजन की इच्छा से पितर उसी रूप में वहाँ आते हैं।

न दद्यात्तत्र हस्तेन प्रत्यक्षं लवणं तथा।
न चायसेन पात्रेण न चैवाश्रद्धया पुन:॥ ६८॥

सीधे ही हाथ में लेकर नमक को नहीं देना चाहिए। उसे लोहे के पात्र में रखकर भी नहीं परोसना चाहिए और बिना श्रद्धा के भी किसी को नहीं देना चाहिए।

काञ्चनेन तु पात्रेण राजतोदुम्बरेण वा।
दत्तमक्षयतां याति खड्गेन च विशेषत:॥ ६९॥

यदि वह सोने-चाँदी और उदुम्बर (गूलर) से निर्मित पात्र में दिया जाय तो अक्षय फल देने वाला होता है और यदि उसे खड्ग के ऊपर रखकर दिया जाय, तो विशेषरूप से अक्षय फल देता है।

पात्रे तु मृण्मये यो वै श्राद्धे वै भोजयेद्द्विजान्।
स याति नरकं घोरं भोक्ता चैव पुरोधस:॥ ७०॥

श्राद्ध के समय जो कोई ब्राह्मणों को मिट्टी के पात्र में भोजन कराता है, तो दाता, पुरोहित और भोजन करने वाला— ये तीनों घोर नरक में जाते हैं।

न पंक्त्यां विषमं दद्यान्न याचेत न दापयेत्।
याचिता दापिता दाता नरकान्याति भीषणान्॥ ७१॥

एक पंक्ति में बैठकर भोजन करने वाले ब्राह्मणों को भोजन परोसने में भेदभाव नहीं करना चाहिए, किसी को माँगना नहीं चाहिए तथा किसी को भोजन दिलाना भी नहीं चाहिए। क्यों कि मांगने वाला, देने वाला और दिलाने वाला— ये तीनों घोर नरक में जाते हैं।

भुञ्जीरन्वाग्यता: श्रेष्ठं न ब्रूयु: प्राकृतान् गुणान्।
तावद्धि पितरोऽश्नन्ति यावन्नोक्ता हविर्गुणा:॥ ७२॥

सभी शिष्टजनों को भोज्य पदार्थों के प्राकृत गुणों का गान किए बिना मौन होकर भोजन करना चाहिए, क्योंकि पितर तभी तक भोजन करते हैं, जब तक हवि का गुणगान नहीं किया जाता।

नाग्रासनोपविष्टस्तु भुञ्जीत प्रथमं द्विज:।
बहूनां पश्यतां सोऽन्य: पंक्त्या हरति किल्बिषम्॥ ७३॥

जो कोई ब्राह्मण पहले से ही आसन पर उपविष्ट होकर सबसे पहले भोजन प्रारम्भ कर लेता है, वह अकेला बहुत लोगों के देखते हुए उस पंक्ति के सभी लोगों के पापों को ग्रहण कर लेता है।

न किंचिद्वर्जयेच्छ्राद्धे नियुक्तस्तु द्विजोत्तम:।
न मांसस्य निषेधेन न चान्यस्यान्नमीक्षयेत्॥ ७४॥

श्राद्धकर्म में नियुक्त ब्राह्मण को कुछ भी छोड़ना नहीं चाहिए। मांस का निषेध करके दूसरे के अन्न को भी नहीं दिखाना चाहिए।

यो नाश्नाति द्विजो मांसं नियुक्त: पितृकर्मणि।
स प्रेत्य पशुतां याति सम्भवानेकविंशतिम्॥ ७५॥

जो ब्राह्मण (मांसाहारी हो, और) श्राद्धकर्म में नियुक्त होकर मांस भक्षण नहीं खाता, वह इक्कीस जन्मों तक पशुओं की योनि में जन्म लेता है।

स्वाध्यायाञ्छ्रावयेदेषां धर्मशास्त्राणि चैव हि।
इतिहासपुराणानि श्राद्धकल्पांश्च शोभनान्॥ ७६॥

(श्राद्धकर्म में नियुक्त विद्वान्) ब्राह्मणों को धर्मशास्त्र, इतिहास, पुराण, और उत्तम श्राद्धकल्प ग्रन्थों को स्वाध्याय हेतु सुनाना चाहिए।

ततोऽन्नमुत्सृजेद्भोक्ता साग्रतो विकिरन्भुवि।
पृष्ट्वा स्वदितमित्येवं तृप्तानाचामयेत्तत:॥ ७७॥

तत्पश्चात्— अन्न उत्सर्ग कर भोजन किए हुए ब्राह्मणों के सामने भूमि पर उस अन्न को फैलाने के बाद 'स्वदित' (क्या आपने भोजन अच्छी प्रकार किया?) यह वाक्य पूछकर तृप्त ब्राह्मणों को आचमन कराना चाहिए।

आचान्ताननुजानीयादभितो रम्यतामिति।
स्वधास्त्विति च तं ब्रूयुर्ब्राह्मणास्तदनन्तरम्॥७८॥

आचमन के पश्चात् शुद्ध हुए ब्राह्मणों को 'अभिरम्यताम् अर्थात् अब आप जा सकते हैं' ऐसा कहकर अनुमति मिलने पर ब्राह्मणगण श्राद्धकर्त्ता यजमान को 'स्वधास्तु अर्थात् तुम्हारे पितर तृप्त हों' ऐसा कहें।

ततो भुक्तवतां तेषामन्नशेषं निवेदयेत्।
यथा ब्रूयुस्तथा कुर्यादनुज्ञातस्तु तैर्द्विजैः॥७९॥

इसके बाद भोजन कर लेने पर वहां शेष अन्न को ब्राह्मणों को निवेदित करे, फिर उनकी आज्ञा से वे जो कुछ करने के लिए कहें, वैसी व्यवस्था करनी चाहिए।

पित्र्ये स्वदित इत्येव वाक्यं गोष्ठेषु सूत्रितम्।
संपन्नमित्यभ्युदये दैवे रोचत इत्यपि॥८०॥

इस प्रकार यजमान को पितृश्राद्ध में 'स्वदितं' (ठीक से भोजन किया है?), गोष्ठ में जाकर 'सूत्रितम्' (अच्छी व्यवस्था है?) आभ्युदयिक कर्म में 'सम्पन्नम्' (अच्छी प्रकार पूर्ण हुआ?) और देवश्राद्ध में 'रोचते' (अच्छी प्रकार पसंद आया?) ऐसा कहना चाहिए।

विसृज्य ब्राह्मणान् स्तुत्वा पितृपूर्वं तु वाग्यतः।
दक्षिणां दिशमाकांक्षन्याचेतेमान् वरान्पितॄन्॥८१॥
दातारो नोभिवर्द्धन्तां वेदाः संततिरेव च।
श्रद्धा च नो माव्यगमद्बहुदेयं च नोस्त्विति॥८२॥

(भोजनानन्तर) मौन रहकर पितृपूर्वक ब्राह्मणों को स्तुति करके उन्हें विदाई देने बाद दक्षिण दिशा की आकांक्षा करते हुए पितरों को सम्बोधित कर यह वह माँगना चाहिए— हमारे सभी दाता, वेद और सन्तान की अभिवृद्धि हो, हमारी श्रद्धा चली न जाय, हमारे पास दान देने के लिए प्रभूत सम्पत्ति हो।

पिंडांस्तु गोजविप्रेभ्यो दद्यादग्नौ जलेऽपि वा।
मध्यमं तु ततः पिंडमद्यात्पत्नी सुतार्थिनी॥८३॥

श्राद्ध से बचे हुए पिण्डों को गाय, बकरी तथा ब्राह्मण को देना चाहिए अथवा जल में या अग्नि में डालना चाहिए। परन्तु एक मध्यम पिण्ड पुत्र की कामना करने वाली पत्नी को ही सेवन करना चाहिए।

प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य ज्ञातीन् शेषेण भोजयेत्।
ज्ञातिष्वपि चतुर्थेषु स्वान् भृत्यान् भोजयेत्ततः॥८४॥

तत्पश्चात् दोनों हाथ धोकर, आचमन करके शेष भोजन-सामग्री से अपने सम्बन्धियों को खिलाकर संतुष्ट करना चाहिए। सगे-संबन्धियों में भी चौथी पीढि तक सब को संतुष्ट करे और अन्त में अपने सेवकों को भोजन कराना चाहिए।

पश्चात्स्वयञ्च पत्नीभिः शेषमन्नं समाचरेत्।
नोद्वासयेत् तदुच्छिष्टं यावन्नास्तङ्गतो रविः॥८५॥

इन सब के बाद बचा हुआ अन्न पत्नी के साथ बैठकर स्वयं खाना चाहिए और जब तक सूर्यास्त न हो जाय तब तक जूठे अन्न को उद्वासित नहीं करना चाहिए।

ब्रह्मचारी भवेतान्तु दम्पती रजनीन्तु ताम्।
दत्त्वा श्राद्धं तथा भुक्त्वा सेवते यस्तु मैथुनम्॥८६॥
महारौरवमासाद्य कीटयोनिं व्रजेत्पुनः॥८७॥

श्राद्ध की रात्रि में पति-पत्नी को ब्रह्मचारी रहना चाहिए। क्योंकि श्राद्ध करके तथा श्राद्ध का अन्न खाकर जो व्यक्ति मैथुन सेवन करता है, वह महारौरव नरक भोगकर पुनः कीटयोनि को प्राप्त करता है।

शुचिरक्रोधनः शान्तः सत्यवादी समाहितः।
स्वाध्यायञ्च तथाध्वानं कर्त्ता भोक्ता च वर्ज्जयेत्॥८८॥

उस श्राद्धकर्त्ता को और श्राद्ध में भोजन करने वाले को पवित्र, क्रोधरहित, शान्त और सत्यवादी होना चाहिए तथा एकाग्रचित्त होकर स्वाध्याय और यात्रा का भी त्याग करना चाहिए।

श्राद्धं भुक्त्वा परश्राद्धे भुञ्जते ये द्विजातयः।
महापातकिभिस्तुल्या यान्ति ते नरकान् बहून्॥८९॥

जो ब्राह्मण एक श्राद्ध में भोजन करने के बाद दूसरे के श्राद्ध में जाकर भोजन करते हैं, वे ब्राह्मण महापापी के तुल्य अनेक नरकों को प्राप्त करते हैं।

एष वो विहितः सम्यक् श्राद्धकल्पः समासतः।
अनेन वर्द्धयेन्नित्यं ब्राह्मणोऽव्यसनान्वितः॥९०॥

इस प्रकार यह समस्त श्राद्धकल्प मैंने संक्षेप में बता दिया। इसके द्वारा ब्राह्मण व्यसनरहित होकर नित्य वृद्धि प्राप्त करता है।

आमश्राद्धं यदा कुर्याद्विधिज्ञः श्रद्धयान्वितः।
तेनाग्नौकरणं कुर्यात्पिण्डांस्तेनैव निर्वपेत्॥९१॥

विधि-विधान को जानने वाला श्रद्धायुक्त होकर जब "आमश्राद्ध" करता है, उसे उसी प्रकार के आमान्न (कच्चे अन्न) से अग्निहोम और पिण्डदान भी करना चाहिए।

योऽनेन विधिना श्राद्धं कुर्याद्वै शान्तमानस:।
व्यपेतकल्मषो नित्यं यतीनां वर्त्तयेत्पदम्॥९२॥

जो व्यक्ति शान्तमन से इसी विधि के अनुसार श्राद्ध करता है, वह भी समस्त पापों से रहित होकर संन्यासियों द्वारा प्राप्त करने योग्य, नित्य पद को प्राप्त कर लेता है।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्राद्धं कुर्याद्द्विजोत्तम:।
आराधितो भवेदीशस्तेन सम्यक् सनातन:॥९३॥

इसलिए सभी प्रकार से यत्नपूर्वक उत्तम ब्राह्मण को श्राद्ध करना चाहिए। ऐसा करने से सनातन ईश्वर की ही सम्यक् आराधना हो जाती है।

अपि मूलै: फलैर्वापि प्रकुर्यान्निर्धनो द्विज:।
तिलोदकैस्तर्पयित्वा पितॄन् स्नात्वा समाहित:॥९४॥

निर्धन ब्राह्मण को भी स्नान करके, एकाग्रचित्त होकर तिलोदक से पितरों का तर्पण करके फल-मूल से अवश्य श्राद्ध करना चाहिए।

न जीवत्पितृको दद्याद्धोमान्तं वा विधीयते।
येषां वापि पिता दद्यात्तेषाञ्चैके प्रचक्षते॥९५॥

पिता के जीवित रहने पर व्यक्ति को उस प्रकार श्राद्ध, पिण्डदान या तर्पण नहीं करना चाहिए। अथवा, वह होमकर्म कर सकता है। कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि पिता जिनका श्राद्ध करता हो, पुत्र भी उनका श्राद्ध कर सकता है।

पितां पितामहश्चैव तथैव प्रपितामह:।
यो यस्य प्रीयते तस्मै देयं नान्यस्य तेन तु॥९६॥

पिता, पितामह और प्रपितामह इनमें से जिनकी मृत्यु हो जाय, केवल उन्हीं के निमित्त श्राद्ध करना चाहिए, दूसरे किसी को उद्देश्य करके नहीं करना चाहिए।

भोजयेद्वापि जीवन्तं यथाकामन्तु भक्तित:।
न जीवन्तमतिक्रम्य ददाति प्रयत: शुचि:॥९७॥

यदि ये पिता आदि जीवित हों, तो इन्हें इच्छानुसार भक्तिपूर्वक पवित्र होकर भोजन कराना चाहिए। जीवित को छोड़कर केवल मृत व्यक्ति को उद्देश्य कर भोजन नहीं करना चाहिए।

द्व्यामुष्यायणिको दद्याद्बीजिक्षेत्रिकयो: समम्।
अधिकारी भवेत्सोऽत्र नियोगोत्पादितो यदि॥९८॥

द्व्यामुष्याणिक (दूसरे भाई से दत्तकरूप में गृहीत दायभाग का अधिकारी) पुत्र भी अपने सगे पिता और क्षेत्रिक में समानरूप से श्राद्धादि अर्पित कर सकता है। यदि वह नियोग विधि से उत्पन्न हुआ हो तो वह भी अधिकारी होता है।

अनियुक्तात्सुतो यश्च शुक्रतो जायतेत्विह।
प्रदद्याद्बीजिने पिण्डं क्षेत्रिणे तु ततोऽन्यथा॥९९॥
द्वौ पिण्डौ निर्वपेताभ्यां क्षेत्रिणे बीजिने तथा।
कीर्त्तयेदथवैवास्मिन् बीजिनं क्षेत्रिणं तत:।
मृताहनि तु कर्त्तव्यमेकोद्दिष्टं विधानत:॥१००॥

परन्तु जो पुत्र नियोगविधि से रहित (उसके जीवनकाल में अपनी स्त्री में व्यभिचार से) उत्पन्न हुआ हो, वह केवल बीजी (मुख्य पिता) को ही एक पिण्डदान कर सकता है और यदि नियोगोत्पादित पुत्र हो, तो वह क्षेत्री को भी पिण्डदान कर सकता है। वह पहले बीजी और बाद में क्षेत्री का नामोच्चारण करके दो-दो पिण्डों का दान करेगा। मृत्यु की तिथि में तो विधि के अनुसार एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना चाहिए।

अशौचे स्वे परिक्षीणे काम्यं वै कामत: पुन:।
पूर्वाह्णे चैव कर्तव्यं श्राद्धमभ्युदयार्थिना॥१०१॥

अपना मरण-सूतक पूरा हो जाने के बाद अपनी इच्छानुसार पुन: काम्यश्राद्ध करना चाहिए। अपनी उन्नति चाहने वाले व्यक्ति को पूर्वाह्ण में ही श्राद्ध करना चाहिए।

देववत्सर्वमेव स्यान्नैव कार्यास्तिलै: क्रिया:।
दर्भाश्च ऋजव: कार्या युग्मान्वै भोजयेद्द्विजान्॥१०२॥

देवश्राद्ध की तरह ही इस श्राद्ध में सब कार्य होते हैं। इसमें तिलों से क्रिया नहीं करनी चाहिए और दर्भ भी सीधे रखने चाहिए तथा दो ब्राह्मणों को एक साथ भोजन कराना चाहिए।

नान्दीमुखास्तु पितर: प्रीयन्तामिति वाचयेत्।
मातृश्राद्धन्तु पूर्वं स्यात्पितॄणां तदनन्तरम्॥१०३॥
ततो मातामहानान्तु वृद्धौ श्राद्धत्रयं स्मृतम्।
देवपूर्वं प्रदद्याद्वै न कुर्यादप्रदक्षिणम्॥१०४॥

'नान्दीमुखा पितर प्रसन्न हों' ऐसा ब्राह्मणों को कहना चाहिए। नान्दीमुख श्राद्ध में पहले मातृश्राद्ध और फिर पितृश्राद्ध होता है। इसके अनन्तर मातामहों का श्राद्ध होता है। ये तीन प्रकार के श्राद्ध करने चाहिए। इन तीनों श्राद्धों से पहले देवश्राद्ध करना चाहिए और प्रदक्षिणा किए बिना श्राद्ध नहीं करना चाहिए।

प्राङ्मुखो निर्वपेद्विद्वानुपवीती समाहित:।
पूर्वं तु मातर: पूज्या भक्त्या वै सगणेश्वरा:॥१०५॥

विद्वान् पुरुष को एकाग्रचित्त होकर यज्ञोपवीत धारण करके पूर्व दिशा की ओर मुख करके पिण्डदान करना चाहिए। सर्वप्रथम गणेश्वरों सहित षोडश मातृकाओं की भक्तिभाव से पूजा करना चाहिए।

स्थण्डिलेषु विचित्रेषु प्रतिमासु द्विजातिषु।
पुष्पैर्धूपैश्च नैवेद्यैर्भूषणैरपि पूजयेत्॥१०६॥
पूजयित्वा मातृगणं कुर्याच्छ्राद्धत्रयं द्विज:।

यह पूजन अनेक प्रकार के स्थण्डिलों में, प्रतिमाओं में और द्विजातियों में करना चाहिए। उसमें पुष्प, धूप, नैवेद्य और आभूषणों से पूजा करनी चाहिए। इस प्रकार मातृकाओं की पूजा करके ब्राह्मण को तीनों श्राद्ध सम्पन्न करने चाहिए।

अकृत्वा मातृयोगन्तु य: श्राद्धन्तु निवेशयेत्।
तस्य क्रोधसमाविष्टा हिंसां गच्छन्ति मातर:॥१०७॥

जो ब्राह्मण इन षोडश मातृकाओं की पूजा किए बिना श्राद्ध करता है, तो मातृकाएँ उन पर क्रोधित होकर हिंसा करती हैं।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासु श्राद्धकल्पो नाम द्वाविंशोऽध्याय:॥२२॥

त्रयोविंशोऽध्याय:

(अशौचविधि कथन)

व्यास उवाच

दशाहं प्राहुराशौचं सपिण्डेषु विधीयते।
मृतेषु वापि जातेषु ब्राह्मणानां द्विजोत्तमा:॥१॥

व्यास बोले— हे ब्राह्मणश्रेष्ठो! मुनियों का कहना है कि किसी सगोत्रीय का जन्म हो या मृत्यु हो, तो ब्राह्मणों को दस दिन तक का सूतक कहा है।

नित्यानि चैव कर्माणि काम्यानि च विशेषत:।
न कुर्याद्विहितं किञ्चित्स्वाध्यायं मनसापि च॥२॥

इस सूतकावस्था में नित्यकर्म, काम्यकर्म और अन्य कोई शास्त्रोक्त कर्म भी नहीं करने चाहिए तथा स्वाध्याय तो मन से भी नहीं करना चाहिए।

शुचीनक्रोधनान् भूम्यान् शालाग्नौ भावयेद्द्विजान्।
शुष्कान्नेन फलैर्वापि वैतानान् जुहुयात्तथा॥३॥

ऐसी अवस्था में शालाग्नि में (प्रतिदिन) हवन के लिए पवित्र, क्रोधहीन और शान्तस्वभाव वाले ब्राह्मणों को नियुक्त करना चाहिए। उन ब्राह्मणों को सूखे अन्न और फलों से वैतान अग्नि में होम करना चाहिए।

न स्पृशेदुरिमानन्ये न च तेभ्य: समाहरेत्।
चतुर्थे पंचमे चाह्नि संस्पर्श: कथितो बुधै:॥४॥

अन्य लोग, सूतकी ब्राह्मणों का न तो स्पर्श करेंगे और नहीं उनके पास से कोई चीज मंगवायेंगे। विद्वानों का मत है कि चौथे या पाँचवें दिन उनका स्पर्श किया जा सकता है।

सूतके तु सपिण्डानां संस्पर्शो नैव दुष्यति।
सूतकं सूतिकां चैव वर्जयित्वा नृणां पुन:॥५॥

अशौच काल में सगोत्रीय जनों के स्पर्श से कोई दोष नहीं लगता है, केवल जिन्हें सूतक लगा हो, या जो सूतिका (जन्म देने वाली माता) हो, उन लोगों को स्पर्श करना वर्जित है।

अधीयानस्तथा वेदान् वेदविच्च पिता भवेत्।
संस्पृश्या: सर्व एवैते स्नानान्माता दशाहत:॥६॥

वेदाध्ययन करने वाले तथा वेदों को जानने वाला पिता, ये सब लोग स्नान के बाद स्पर्श करने योग्य हो जाते हैं, परन्तु दसवाँ दिन बीत जाने पर माता स्नान के बाद ही स्पृश्य होती है।

दशाहं निर्गुणे प्रोक्तमाशौचं चातिनिर्गुणे।
एकद्वित्रिगुणैर्युक्तश्चतुर्स्त्र्येकदिनै: शुचि:॥७॥

गुणहीन अथवा अतिनिर्गुण होने पर उस (पिता) के लिए दस दिन का ही सूतक कहा गया है। परन्तु यदि वह एक गुण, द्विगुण या त्रिगुण युक्त हो, तो क्रमश: चार दिन, तीन दिन और एक दिन बीत जाने पर शुद्धि मानी गयी है।

दशाहादपरं सम्यगधीयीत जुहोति च।
चतुर्थे तस्य संस्पर्शं मनु: प्राह प्रजापति:॥८॥

प्रजापति मनु ने कहा है— दसवें दिन के बाद वेदाध्ययन और हवनादि सम्यग् रूप से कर सकता है तथा (ऐसा गुणयुक्त होने पर) उसका चौथे दिन स्पर्श किया जा सकता है।

क्रियाहीनस्य मूर्खस्य महारोगिण एव च।
यथेष्टाचरणस्येह मरणान्तमशौचकम्॥९॥

परन्तु जो कोई शास्त्रीय क्रियाओं से रहित, मूर्ख, महारोगी और अपनी इच्छानुसार आचरण करने वाले को जीवनभर सूतक रहता है।

त्रिरात्रं दशरात्रं वा ब्राह्मणानामशौचकम्।
प्राक्संस्कारात् त्रिरात्रं वै दशरात्रमतः परम्॥ १०॥

ब्राह्मणों का सूतक तीन या दस रात का होता है। परन्तु द्विजातीय संस्कारों से पूर्व तीन रात का और बाद में तो दस रात का सूतक होता है।

ऊनद्विवार्षिके प्रेते मातापित्रोस्तदिष्यते।
(त्रिरात्रेण शुचिस्त्वन्यो यदि ह्यत्यन्तनिर्गुणः।
अदन्तजातमरणे पित्रोरेकाहमिष्यते।)
जातदन्ते त्रिरात्रं स्याद्यदि स्यातान्तु निर्गुणौ॥ ११॥

दो वर्ष से कम आयु के बालक की मृत्यु हो जाने पर उसके माता-पिता को वैसा ही सूतक लगता है। (उनसे अतिरिक्त दूसरे की अत्यन्त निर्गुण होने पर भी तीन रात्रि में शुद्धि हो जाती है और जो बालक के दाँत न निकले हों और मृत्यु हो जाय, तो माता-पिता को एक दिन का सूतक होता है) दाँत निकलने के बाद बालक की मृत्यु हो जाने पर अत्यन्त निर्गुण माता-पिता को तीन रात का सूतक होता है।

आदन्तजननात्सद्य आचूडादेकरात्रकम्।
त्रिरात्रमौपनयनात्सपिण्डानामशौचकम्॥ १२॥

दाँत निकलने तक ही बालक की मृत्यु हो जाय तो सगोत्रीय तत्काल स्नान करने से शुद्ध हो जाते हैं। चूड़ाकर्म संस्कार होने से पूर्व (मृत्यु हो जाने से) एक रात का और उपनयन से पूर्व मृत्यु हो जाने से तीन रात का सूतक सगोत्रियों को लगता है।

जातमात्रस्य बालस्य यदि स्यान्मरणं पितुः।
मातुश्च सूतकं तत्स्यात्पितास्यात्स्पृश्य एव च॥ १३॥
सद्यः शौचं सपिण्डानां कर्त्तव्यं सोदरस्य तु।
ऊर्ध्वं दशाहादेकाहं सोदरो यदि निर्गुणः॥ १४॥

जिस बालक की जन्म लेते ही मृत्यु हो जाती है, तो पिता-माता को सूतक लगता है। अथवा (स्नान के बाद) केवल पिता को स्पर्श काया जा सकता है। सपिण्डों और सहोदरों की सद्यः शुद्धि हो जाती है, परन्तु सहोदर यदि निर्गुण (उत्तम गुणों से रहित) हो तो दस दिन के बाद भी एक दिन का सूतक होता है।

ततोर्ध्वं दन्तजननात्सपिण्डानामशौचकम्।
एकरात्रं निर्गुणानां चौडादूर्ध्वन्त्रिरात्रकम्॥ १५॥

जिस बालक की दाँत निकलने के बाद मृत्यु हो जाती है, तो एक रात का और चूड़ाकर्म के बाद मृत्यु होने पर तीन रात का निर्गुण सगोत्रियों को सूतक लगता है।

अदन्तजातमरणं सम्भवेद्यदि सत्तमाः।
एकरात्रं सपिण्डानां यदि तेऽत्यन्तनिर्गुणाः॥ १६॥

हे ब्रह्मणश्रेष्ठो! जिस बालक की दाँत निकलने से पूर्व ही मृत्यु हो जाय, तो अत्यन्त निर्गुण सगोत्रियों के लिए एक रात का सूतक माना गया है।

व्रतादेशात्सपिण्डानां गर्भस्रावात्स्वपाततः।
(सर्वेषामेव गुणिनामूर्ध्वन्तु विषमः पुनः।
अर्वाक् षण्मासतः स्त्रीणां यदि स्याद्गर्भसंस्रवः।
तदा माससमैस्तासामशौचं दिवसैः स्मृतम्।
तत ऊर्ध्वन्तु पतने स्त्रीणां द्वादशरात्रिकम्।
सद्यः शौचं सपिण्डानां गर्भस्रावाच्च धातुतः।)
गर्भच्युतादहोरात्रं सपिण्डेऽत्यन्तनिर्गुणे।
यथेष्टाचरणे ज्ञातौ त्रिरात्रमिति निश्चयः॥ १७॥

स्वयं गर्भपात हो जाने पर सभी सगोत्रियों की व्रतादि करने से शुद्धि हो जाती है। यदि छः मास से पूर्व स्त्रियों का गर्भस्राव हो जाय, तो उन महीनों के बराबर के दिनों का सूतक लगेगा। यदि छः मास से अधिक समय के बाद पतन हो तो स्त्रियों को बारह रात तक सूतक लगता है। किसी धातु विशेष के कारण गर्भस्राव होता है, तो सपिण्डों की सद्यः शुद्धि हो जाती है। गर्भस्राव होने पर अत्यन्त निर्गुण सपिण्डों को एक दिन और एक रात का सूतक लगता है, परंतु कुलाचाररहित आचरण करने वाले जातिबन्धु को तो तीन रात का सूतक निश्चित हुआ है।

यदि स्यात्सूतके सूतिर्मरणे वा मृतिर्भवेत्।
शेषेणैव भवेच्छुद्धिरहःशेषे त्रिरात्रकम्॥ १८॥

यदि एक मरणाशौच (या जन्मसूतक) के चलते दूसरा मरणाशौच (या जननाशौच) आ जाय, तो पहले से चल रहे सूतक के जितने दिन शेष हों उतने ही दिनों में दोनों अशौच पूरे हो जाते हैं। परन्तु पहले वाले सूतक का एक ही दिन शेष हो और फिर कोई नया अशौच प्रारम्भ हो जाय, तो उसकी पुनः तीन रात्रि में शुद्धि होती है।

मरणोत्पत्तियोगेन मरणेन समाप्यते।
आद्यं वृद्धिमदाशौचं तदा पूर्वेण शुद्ध्यति॥ १९॥

अरण्येऽनुदके रात्रौ चौरव्याघ्राकुले पथि।
कृत्वा मूत्रं पुरीषं वा द्रव्यहस्तो न दुष्यति॥ ३३॥

उसका स्पर्श होनेपर आचमन करना चाहिये। उच्छिष्ट दशामें वस्त्रका स्पर्श होनेपर आचमन एवं वस्त्रका प्रोक्षण करना चाहिये। जंगलमें, जलहीन स्थानमें, रात्रिमें और चोर तथा व्याघ्र आदिसे आक्रान्त मार्गमें मल-मूत्र करनेपर भी व्यक्ति आचमन, प्रोक्षण आदि शुद्धिके अभावमें भी दूषित नहीं होता, साथ ही उसके हाथमें रखा हुआ द्रव्य भी अशुचि नहीं होता (पर शुद्धिका अवसर मिल जानेपर यथाशास्त्र शुद्धि आवश्यक है।)॥ ३३॥

निधाय दक्षिणे कर्णे ब्रह्मसूत्रमुदङ्मुखः।
अह्नि कुर्याच्छकृन्मूत्रं रात्रौ चेद् दक्षिणामुखः॥ ३४॥

अन्तर्धाय महीं काष्ठैः पत्रैर्लोष्ठतृणेन वा।
प्रावृत्य च शिरः कुर्याद् विण्मूत्रस्य विसर्जनम्॥ ३५॥

दाहिने कानपर यज्ञोपवीत चढ़ाकर दिनमें उत्तरकी ओर मुख करके तथा रात्रिमें दक्षिणाभिमुख होकर मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये। पृथ्वीको लकड़ी, पत्तों, ढेलों अथवा घाससे ढककर तथा शिरको वस्त्रसे आवृतकर मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये॥ ३४-३५॥

छायाकूपनदीगोष्ठचैत्याम्भःपथि भस्मसु।
अग्नौ चैव श्मशाने च विण्मूत्रे न समाचरेत्॥ ३६॥

न गोमये न कृष्टे वा महावृक्षे न शाड्वले।
न तिष्ठन् न निर्वासा न च पर्वतमस्तके॥ ३७॥

न जीर्णदेवायतने न वल्मीके कदाचन।
न ससत्त्वेषु गर्तेषु न गच्छन् वा समाचरेत्॥ ३८॥

तुषाङ्गारकपालेषु राजमार्गे तथैव च।
न क्षेत्रे न विले वापि न तीर्थे न चतुष्पथे॥ ३९॥

नोद्यानोदसमीपे वा नोषरे न पराशुचौ।
न सोपानत्पादुको वा छत्री वा नान्तरिक्षके॥ ४०॥

न चैवाभिमुखे स्त्रीणां गुरुब्राह्मणयोर्गवाम्।
न देवदेवालययोरपामपि कदाचन॥ ४१॥

छायामें, कूपमें या उसके अति समीप, नदीमें, गोशाला, चैत्य (गाँवके सीमाका वृक्षसमूह, ग्राम्य देवताका स्थान—टीला, डीह आदिपर), जल, मार्ग, भस्म, अग्नि तथा श्मशानमें मल-मूत्र नहीं करना चाहिये। गोबरमें, जुती हुई भूमिमें, महान् वृक्षके नीचे, हरी घाससे युक्त मैदानमें और पर्वतकी चोटीपर तथा खड़े होकर एवं नग्न होकर मल-मूत्रका त्याग नहीं करना चाहिये। न जीर्ण देवमन्दिरमें, न दीमककी बाँबीमें, न जीवोंसे युक्त गड्ढेमें और न चलते हुए मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये। धान इत्यादिकी भूसी, जलते हुए अंगार, कपाल[1], राजमार्ग, खेत, गड्ढे, तीर्थ, चौराहे, उद्यान, जलके समीप, ऊसर भूमि और अत्यधिक अपवित्र स्थानमें मल-मूत्रका त्याग न करे। जूता या खड़ाऊँ पहने, छाता लिये, अन्तरिक्षमें (भूमि-आकाशके मध्यमें), स्त्री, गुरु, ब्राह्मण, गौके सामने, देवविग्रह तथा देवमन्दिर और जलके समीपमें तो कभी भी मल-मूत्रका विसर्जन न करे॥ ३६—४१॥

न ज्योतींषि निरीक्षन् वा न संध्याभिमुखोऽपि वा।
प्रत्यादित्यं प्रत्यनलं प्रतिसोमं तथैव च॥ ४२॥

नक्षत्रोंको देखते हुए, संध्याकालका समय आनेपर, सूर्य, अग्नि तथा चन्द्रमाकी ओर मुख करके मल-मूत्रका त्याग नहीं करना चाहिये॥ ४२॥

१-कपालके ये अर्थ हैं—सिरकी अस्थि, घटके दोनों अर्धभाग, मिट्टीका भिक्षापात्र,यज्ञीय पुरोडाशको पकानेके लिये मिट्टीका बना हुआ पात्रविशेष।

शुध्येद्विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः।
वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति॥ २९॥

(जन्म-मृत्यु के सूतक काल में) ब्राह्मण दस दिनों में शुद्ध हो जाता है। क्षत्रिय की बारह, वैश्य की पन्द्रह और शूद्र की एक मास में शुद्धि होती है।

क्षत्रविट्शूद्रदायादा ये स्युर्विप्रस्य बान्धवाः।
तेषामशौचे विप्रस्य दशाहाच्छुद्धिरिष्यते॥ ३०॥

जो क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और विप्र के कुटुम्बीजन हों, उनके यहाँ सूतक हो जाने पर ब्राह्मण की शुद्धि दस दिन में ही अभीष्ट बताई गई है।

राजन्यवैश्यावप्येवं हीनवर्णासु योनिषु।
तमेव शौचं कुर्यातां विशुद्ध्यर्थमसंशयम्॥ ३१॥

यदि हीनवर्ण की जाति में क्षत्रिय और वैश्यों का सम्बन्ध हो, उनकी मृत्यु हो जाय, तो अपने वर्ण के नियमानुसार ही सूतक लगेगा, इसी में उनकी शुद्धि निश्चित है।

सर्वे तूत्तरवर्णानामशौचं कुर्युरादृताः।
तद्वर्णविधिदृष्टेन स्वन्तुशौचं स्वयोनिषु॥ ३२॥

सभी वर्णों के लोगों को अपने अपने उत्तर वर्ण वालों से सम्बन्ध होने पर, उनके अशौच काल को आदरपूर्वक उनके नियमों के अनुसार ही पालन करना चाहिए और अपने वर्ण के सपिण्डों के अशौच में अपने वर्ण के अनुकूल ही पालन करना योग्य है।

षड्रात्रं तु त्रिरात्रं स्यादेकरात्रं क्रमेण तु।
वैश्यक्षत्रियविप्राणां शूद्रेष्वाशौचमेव च॥ ३३॥

शूद्र के यहाँ सूतक लगने पर वैश्यों को छः रात का क्षत्रियों को तीन रात का और ब्राह्मणों को एक रात का सूतक लगता है।

अर्द्धमासोऽथ षड्रात्रं त्रिरात्रं द्विजपुंगवाः।
शूद्रक्षत्रियविप्राणां वैश्यस्याशौचमेव च॥ ३४॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठो! वैश्य के यहाँ सूतक लगने से शूद्रों को आधे महीने (१५ दिन) का क्षत्रियों को छः रात और ब्राह्मणों को तीन रात का सूतक होता है।

षड्रात्रं वै दशाहञ्च विप्राणां वैश्यशूद्रयोः।
अशौचं क्षत्रिये प्रोक्तं क्रमणे द्विजपुङ्गवाः॥ ३५॥

क्षत्रिय के यहाँ सूतक लगने पर ब्राह्मणों को छः रात का तथा वैश्यों और शूद्रों को दस दिन का सूतक लगना कहा गया है।

शूद्रविट्क्षत्रियाणान्तु ब्राह्मणस्य तथैव च।
दशरात्रेण शुद्धिः स्यादित्याह कमलापतिः॥ ३६॥

वैसे ही यदि ब्राह्मण को किसी शूद्र, वैश्य अथवा क्षत्रिय का सूतक लगता है, तो दस रात्रियों के बाद उसकी शुद्धि होती है, ऐसा स्वयं कमलापति ने कहा है।

असपिण्डं द्विजं प्रेतं विप्रो निर्हृत्य बन्धुवत्।
अशित्वा च सहोषित्वा दशरात्रेण शुद्ध्यति॥ ३७॥

यदि किसी असपिण्ड द्विज की मृत्यु हो जाय, और उसके शव को लेकर कोई ब्राह्मण, मित्रवत् अग्निसंस्कार करता है तथा उसके असपिण्डों के साथ भोजन ग्रहण करके उसी घर में निवास करता है, तो उस ब्राह्मण की शुद्धि दस रात्रियों के बाद होती है।

यद्यन्नमत्ति तेषान्तु त्रिरात्रेण ततः शुचिः।
अन्नदंस्त्वन्नमह्ना तु न च तस्मिन् गृहे वसेत्॥ ३८॥

यदि वह ब्राह्मण, असपिण्ड द्विज के घर का केवल अन्न ग्रहण करता है, तो तीन रात के बाद शुद्धि होती है। यदि न अन्न ग्रहण करे और न उसके घर में निवास करे, तो उसी एक दिन में शुद्धि हो जाती है।

सोदकेऽथ तदेव स्यान्मातुराप्तेषु बन्धुषु।
दशाहेन शवस्पर्शी सपिण्डश्चैव शुद्ध्यति॥ ३९॥

यदि समानोदकों और माता के आप्तबन्धुओं की मृत्यु होने पर जो अग्निसंस्कार करता है, तो उसकी तीन रात्रियों के बाद शुद्धि होती है और शव का स्पर्श करने वाले सपिण्डों की दस दिनों के बाद शुद्धि होती है।

यदि निर्हरति प्रेतं लोभादाक्रान्तमानसः।
दशाहेन द्विजः शुद्ध्येद्द्वादशाहेन भूमिपः॥ ४०॥
अर्द्धमासेन वैश्यस्तु शूद्रो मासेन शुध्यति।
षड्रात्रेणाथवा सर्वे त्रिरात्रेणाथवा पुनः॥ ४१॥

यदि कोई द्विजवर्ण मन में लोभ-लालच करके किसी का प्रेतकर्म करता है, तो ऐसा ब्राह्मण दस दिन के बाद शुद्ध होता है, क्षत्रिय बारह दिन, वैश्य आधे महीने और शूद्र एक महीने में शुद्ध होते हैं अथवा ये सभी द्विज प्रेतकर्म करने से छः या तीन रात्रियों के बाद भी शुद्ध हो जाते हैं।

अनाथञ्चैव निर्हृत्य ब्राह्मणं धनवर्जितम्।
स्नात्वा सम्प्राश्य च घृतं शुध्यन्ति ब्राह्मणादयः॥ ४२॥

किसी अनाथ और निर्धन ब्राह्मण का अग्निसंस्कार करने पर स्नान करके घी का सेवन कर लेने पर सभी द्विज शुद्ध हो जाते हैं।

अपरश्चेत् परं वर्णमपरञ्चापरे यदि।
अशौचे संस्पृशेत्स्नेहात्तदाशौचेन शुद्ध्यति॥४३॥

यदि निम्न वर्ण वाला अपने से उच्च वर्ण के शव का अग्निसंस्कार करता है, अथवा वह अपने से निम्न वर्ण के मरण में प्रेतकर्म में साथ देता है, या अशौच काल में उसका स्पर्श करता है, तो भी वह स्नेह के कारण (स्नान के बाद) शुद्ध हो जाता है।

प्रेतीभूतं द्विजं विप्रो ह्यनुगच्छेत कामतः।
स्नात्वा सचैलं स्पृष्ट्वाग्निं घृतं प्राश्य विशुध्यति॥४४॥

किसी द्विजवर्ण की मृत्यु पर जो ब्राह्मण अपनी इच्छा से अग्निसंस्कार में उसके पीछे जाता है, वह वस्त्रसहित स्नान के बाद अग्नि को स्पर्श करके और घी पीकर शुद्ध होता है।

एकाहात्क्षत्रिये शुद्धिर्वैश्ये स्याच्च द्व्यहेन तु।
शूद्रे दिनत्रयं प्रोक्तं प्राणायामशतं पुनः॥४५॥

(शव का अनुगमन करने पर) क्षत्रिय एक दिन, वैश्य दो दिन और शूद्र तीन दिन के बाद शुद्ध होते हैं, और उन सब के लिए सौ बार प्राणायाम करना भी कहा गया है।

अनस्थिसञ्चिते शूद्रे रौति चेद्ब्राह्मणः स्वकैः।
त्रिरात्रं स्यात्तथा शौचमेकाहं त्वन्यथा स्मृतम्॥४६॥

यदि ब्राह्मण, शूद्र के यहाँ अस्थिसंचय से पूर्व विलाप करता है, तो उसे तीन रात का सूतक होता है, अन्यथा (अस्थिसंचय के बाद) एक दिन का सूतक होता है।

अस्थिसञ्चयनादर्वागेकाहः क्षत्रवैश्ययोः।
अन्यथा चैव सज्योतिर्ब्राह्मणे स्नानमेव तु॥४७॥

अस्थिसंचय से पूर्व कोई क्षत्रिय या वैश्य, शूद्र के घर जाकर रुदन करें, तो एक दिन का और अस्थिसंचय के बाद सज्योति अशौच होता है। ब्राह्मण के अस्थिसंचय से पहले यदि वैश्य और शूद्र इस प्रकार रोएं तो केवल स्नान कर लेने पर ही शुद्धि हो जाती है।

अनस्थिसञ्चिते विप्रो ब्राह्मणो रौति चेत्तदा।
स्नानेनैव भवेच्छुद्धिः सचैलेनात्र संशयः॥४८॥

ब्राह्मण के अस्थिसंचय से पहले यदि कोई दूसरा ब्राह्मण उसके घर जाकर रोता है तो वस्त्र पहनकर स्नान करने से ही उसकी शुद्धि हो जाती है, इसमें तनिक भी संशय नहीं है।

यस्तैः सहाशनं कुर्याच्छयनादीनि चैव हि।
बान्धवो वापरो वापि स दशाहेन शुध्यति॥४९॥

जो मनुष्य अशौची व्यक्तियों के साथ बैठकर भोजन और शयनादि कार्य करता है, वह चाहे सम्बन्धी हो या न हो, उसकी दस दिन के बाद ही शुद्धि होती है।

यस्तेषां सममश्नाति सकृदेवापि कामतः।
तदाशौचे निवृत्तेऽसौ स्नानं कृत्वा विशुध्यति॥५०॥

जो व्यक्ति अपनी इच्छा से मृत व्यक्ति के सम्बन्धियों के साथ एक बार भी भोजन कर लेता है, वह अशौच की निवृत्ति होने के बाद स्नान करके ही शुद्ध होता है।

यावत्तदन्नमश्नाति दुर्भिक्षाभिहतो नरः।
तावन्त्यहान्यशौचं स्यात्प्रायश्चित्तं ततश्चरेत्॥५१॥

यदि दुर्भिक्ष से पीड़ित कोई मनुष्य जितने दिनों तक किसी अशौची का अन्न खाता है, उसे उतने दिनों का अशौच होगा और उसके बाद उसे प्रायश्चित्त भी करना पड़ेगा।

दाहाद्यशौचं कर्तव्यं द्विजानामग्निहोत्रिणाम्।
सपिण्डानाञ्च मरणे मरणादितरेषु च॥५२॥

अग्निहोत्री ब्राह्मणों की मृत्यु होने पर उनके अग्निसंस्कार होने तक ही सूतक रहता है। सपिण्डों के या अन्यों के जन्म और मृत्यु पर सूतक का पालन करना पड़ता है।

सपिण्डता च पुरुषे सप्तमे विनिवर्त्तते।
समानोदकभावस्तु जन्मनाम्नोरवेदने॥५३॥

सातवीं पीढ़ि के पुरुष के बाद सपिण्डता समाप्त हो जाती है तथा जब किसी पुरुष के जन्म या नाम की जानकारी न हो, तो समानोदकता (जलतर्पणक्रिया) रुक जाती है।

पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः।
लेपभाजस्त्रयो ज्ञेयाः सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम्॥५४॥

पिता, पितामह और प्रपितामह ये तीनों को लेपभोजी (पिण्ड ग्रहण करने वाले) जानना चाहिए और तीनों की सपिण्डता सात पीढ़ि तक होती है।

अप्रत्तानां तथा स्त्रीणां सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम्।
तासान्तु भर्तृसापिण्ड्यं प्राह देवः पितामहः॥५५॥

जो स्त्रियां अविवाहिता हों, उनकी सपिण्डता सात पीढ़ियों तक की है और विवाहिता कन्या की सपिण्डता पति के कुल में होती है, ऐसा देव पितामह ने कहा है।

ये चैकजाता बहवो भिन्नयोनय एव च।
भिन्नवर्णास्तु सापिण्ड्यं भवेत्तेषां त्रिपूरुषम्॥५६॥

जो एक ही व्यक्ति से अनेक भिन्न वर्ण की माताओं से उत्पन्न हैं, उन भिन्नवर्ण वाले पुत्रों की सपिण्डता तीन पीढ़ियों तक की होती है।

कारवः शिल्पिनो वैद्या दासीदासास्तथैव च।
दातारो नियमाश्चैव ब्रह्मविद्ब्रह्मचारिणौ।
सत्रिणो व्रतिनस्तावत्सद्यःशौचमुदाहृतम्॥५७॥
राजा चैवाभिषिक्तश्च अन्नसत्रिण एव च।

कारीगर, शिल्पी, वैद्य, दासी, दास, नियमपूर्वक दान करने वाले, ब्रह्मज्ञ, ब्रह्मचारी, यज्ञादि चलाने वाले और व्रतधारियों की, जो राजा हो, जिसका अभिषेक किया गया हो, जो अन्नसत्र चलाते हों, उनकी शुद्धि सद्यः कही गयी है।

यज्ञे विवाहकाले च दैवयागे तथैव च।
सद्यः शौचं समाख्यातं दुर्भिक्षे चाप्युपप्लवे॥५८॥

अथवा यज्ञ में, विवाहकाल में, और देवपूजादि निमित्त यज्ञ में, दुर्भिक्ष के समय तथा किसी प्रकार के उपद्रव के समय सद्यःशौच कहा गया है।

डिम्बाहवहतानाञ्च सर्पादिमरणेऽपि च।
सद्यः शौचं समाख्यातं स्वज्ञातिमरणे तथा॥५९॥

भ्रूणहत्या होने पर, युद्ध में अथवा सर्पादि के काटने से (बिजली से, ब्राह्मण से, राजा से और पक्षी से मृत्यु हो जाने पर) अपने बन्धुजनों की मृत्यु होने पर सद्यः शौच कहा गया है।

अग्निमरुत्प्रपतने वीराध्वन्यप्यनाशके।
गोब्राह्मणार्थे संन्यस्ते सद्यःशौचं विधीयते॥६०॥

अग्नि या वायु के कारण मृत्यु होने पर, दुर्गम मार्ग में जाते हुए या अनशन करते हुए, गाय और ब्राह्मण के लिए मृत्यु होने पर और संन्यास धारण करने के बाद मृत्यु हो जाने से सद्यःशौच होता है।

नैष्ठिकानां वनस्थानां यतीनां ब्रह्मचारिणाम्।
नाशौचं कीर्त्यते सद्भिः पतिते च तथा मृते॥६१॥

जो जीवनपर्यन्त नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहे हों, वानप्रस्थी तथा संन्यासी हों अथवा जो ब्रह्मचर्य अवस्था में हों, उनकी और पतित की मृत्यु हो जाने पर अशौच के नियम को सज्जनों ने नहीं बताया है।

पतितानां न दाहः स्यान्नान्त्येष्टिर्नास्थिसञ्चयः।
नाश्रुपातो न पिण्डो वा कार्यं श्राद्धादिकं क्वचित्॥६२॥

पतितों की मृत्यु हो जाने पर दाहसंस्कार, अन्त्येष्टि और अस्थिसंचय आदि कार्य नहीं किए जाते। इसके अतिरिक्त उसकी मृत्यु पर रोना, पिण्डदान और श्राद्धादि भी नहीं करने चाहिए।

व्यापादयेत्तथात्मानं स्वयं योऽग्निविषादिभिः।
विहितं तस्य नाशौचं नाग्निर्नाप्युदकादिकम्॥६३॥

जो पुरुष स्वयं को अग्नि में जलाकर या विष खाकर अपने को नष्ट करता है, उसके लिए अशौच, अग्निसंस्कार या जलतर्पण आदि कार्यों का विधान नहीं है।

अथ किञ्चित्प्रमादेन म्रियतेऽग्निविषादिभिः।
तस्याशौचं विधातव्यं कार्यञ्चैवोदकादिकम्॥६४॥

यदि प्रमादवश, किसी की मृत्यु अग्नि या विष के द्वारा हो जाती है, तो उसके लिए श्राद्ध करना चाहिए तथा ऐसे मृतकों के लिए अशौच का विधान भी है।

जाते कुमारे तदहः कामं कुर्यात्प्रतिग्रहम्।
हिरण्यधान्यगोवासस्तिलांश्च गुडसर्पिषा॥६५॥
फलानि पुष्पं शाकञ्च लवणं काष्ठमेव च।
तक्रं दधि घृतं तैलमौषधं क्षीरमेव च।
अशौचिनो गृहाद् ग्राह्यं शुष्कान्नञ्चैव नित्यशः॥६६॥

पुत्र उत्पन्न होने पर (सूतक काल में), उस दिन सोना, वस्त्र, गाय, धान्य, तिल, अन्न, गुड़ और घी, इन सभी वस्तुओं का दान इच्छानुसार ले सकता है। उसी प्रकार सूतकी व्यक्ति के घर से प्रतिदिन फल, फूल, साग, नमक, लकड़ी, जल, दही, घी, तेल, औषधि, दूध और सूखा अन्न लिया जा सकता है।

आहिताग्निर्यथान्यायं दग्धव्यस्त्रिभिरग्निभिः।
अनाहिताग्निर्गृह्येण लौकिकेनेतरो जनः॥६७॥

अग्निहोत्री ब्राह्मण का दाहसंस्कार, शास्त्रों के अनुसार, तीन प्रकार की अग्नि से करना चाहिए और जो अग्निहोत्री नहीं हैं, उनका गृह्यसूत्रोक्त (अग्नि) नियमों से तथा दूसरों को लौकिक विधान से दाहसंस्कार करना चाहिए।

देहाभावात्पलाशैस्तु कृत्वा प्रतिकृतिं पुनः।
दाहः कार्यो यथान्यायं सपिण्डैः श्रद्धयान्वितैः॥६८॥

यदि किसी मृत व्यक्ति का देह न मिले, तो पलाश से उसकी प्रतिमूर्ति बनाकर श्रद्धायुक्त आस्तिक जनों के द्वारा शास्त्रोक्तविधि से पिण्डदान सहित दाहसंस्कार होना चाहिए।

सकृत्प्रसिञ्चेदुदकं नामगोत्रेण वाग्यतः।
दशाहं बान्धवाः श्राद्धं सर्वे चैवार्द्रवाससः॥६९॥

सभी सम्बन्धिजनों को निरन्तर दस दिनों तक, संयमित वाणी से (मृतक के) नाम और गोत्र का उच्चारण करते हुए गीले वस्त्र में, एक बार तर्पण करना चाहिए।

पिण्डं प्रतिदिनं दद्यु: सायं प्रातर्यथाविधि।
प्रेताय च गृहद्वारि चतुर्थे भोजयेद्द्विजान्॥७०॥
द्वितीयेऽहनि कर्त्तव्यं क्षुरकर्म सबान्धवै:।
चतुर्थे बान्धवै: सर्वैरस्थ्नां सञ्चयनं भवेत्।
पूर्वान्त्रयुञ्जयेद्विप्रान् युग्मान् सुश्रद्धया शुचीन्॥७१॥
पंचमे नवमे चैव तथैवैकादशेऽहनि।
युग्मांश्च भोजयेद्विप्रान्नवश्राद्धन्तु तद्विदुज:॥७२॥

प्रतिदिन प्रात: और सायंकाल घर के द्वार पर प्रेत के लिए पिण्डदान करना चाहिए। चौथे दिन ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए। दूसरे दिन सगे-सम्बन्धियों के साथ क्षौरकर्म और चौथे दिन अस्थिसंचय करना चाहिए। दो पवित्र ब्राह्मणों को पूर्वाभिमुख बैठाकर श्रद्धापूर्वक भोजन कराना चाहिए। मृत्यु के पाँचवें, नौवें और ग्यारहवें दिन उसी प्रकार दो ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए। ब्राह्मण लोग इसी को नवश्राद्ध कहते हैं।

एकादशेऽह्नि कुर्वीत प्रेतमुद्दिश्य भावत:।
द्वादशे वाह्नि कर्त्तव्यं नवमेऽप्यथवाहनि।
एकं पवित्रमेकोऽर्घ: पिंडपात्रं तथैव च॥७३॥

प्रेत को उद्देश्य करके ग्यारहवें, बारहवें या नवें दिन श्राद्ध करना चाहिए। इस श्राद्ध में एक पवित्री, एक अर्घ्य और एक पिण्डपात्र होना चाहिए।

एवं मृताह्नि कर्त्तव्यं प्रतिमासन्तु वत्सरम्।
सपिण्डीकरणं प्रोक्तं पूर्णे संवत्सरे पुन:॥७४॥

इस प्रकार प्रतिमास और प्रतिवर्ष, मृत्यु के दिन श्राद्ध करना चाहिए तथा इस प्रकार एक वर्ष पूर्ण हो जाने पर इसे सपिण्डीकरण कहा जाता है।

कुर्याच्चत्वारि पात्राणि प्रेतादीनां द्विजोत्तमा:।
प्रेतार्थे पितृपात्रेषु पात्रमासेचयेत्तत:॥७५॥

ब्राह्मणों को प्रेतादि के (मृतक, पितामह, प्रपितामह और वृद्धपितामह) चार पात्रों को तैयार करना चाहिए। इसके बाद पितरों के पात्रों में प्रेतार्थ अन्न रखकर उस पात्र को जल से सिंचित करें।

ये समाना इति द्वाभ्यां पिण्डानप्येवमेव हि।
सपिण्डीकरणश्राद्धं देवपूर्वं विधीयते॥७६॥

'ये समाना:' इन दो मन्त्रों का उच्चारण कर पात्र में पिण्ड अर्पित किये जाते हैं। इस सपिण्डीकरण श्राद्ध से पूर्व देवश्राद्ध करना चाहिए।

पितॄनावाहयेत्तत्र पुन: प्रेतं विनिर्दिशेत्।
ये सपिण्डीकृता: प्रेता न तेषां स्यु: प्रतिक्रिया:।
यस्तु कुर्यात्पृथक् पिण्डं पितृहा सोऽभिजायते॥७७॥

तत्पश्चात् पितरों का आह्वान करना चाहिए। इसके बाद प्रेत का विशेष निर्देश करें। परन्तु जिन प्रेतों का सपिण्डीकरण श्राद्ध हो चुका हो, उनके निमित्त कोई भी अलग कार्य नहीं करना चाहिए और यदि कोई उनके लिए पृथक् पिण्डदान करता है, तो वह अपने पितरों की हत्या करने वाला होता है।

मृते पितरि वै पुत्र: पिण्डानब्दं समाचरेत्।
दद्याच्चान्नं सोदकुम्भं प्रत्यहं प्रेतधर्मत:॥७८॥

पिता की मृत्यु हो जाने पर पुत्र को एक वर्ष तक पिण्डदान करना चाहिए और पूरे वर्ष प्रेतधर्म का अनुसरण करते हुए प्रतिदिन जल के घड़े के साथ अन्न देना चाहिए।

पार्वणेन विधानेन सांवत्सरिकमिष्यते।
प्रतिसंवत्सरं कुर्याद्विधिरेष सनातन:॥७९॥

सांवत्सरिक श्राद्ध भी पार्वणश्राद्ध की विधि के अनुसार होता है और वह प्रतिवर्ष करना चाहिए, यही सनातन विधि है।

मातापित्रो: सुतै: कार्यम्पिण्डदानादिकं च यत्।
पत्नी कुर्यात्सुताभावे पत्न्यभावे तु सोदर:॥८०॥

मृत माता-पिता के पिण्डदानादि सारे कार्य पुत्र द्वारा होने चाहिए। यदि पुत्र न हों तो (पति के निमित्त) पत्नी को करना चाहिए और पत्नी के अभाव में सगे भाई को ये कार्य करने चाहिए।

अनेनैव विधानेन जीव: श्राद्धं समाचरेत्।
कृत्वा दानादिकं सर्वं श्रद्धायुक्त: समाहित:॥८१॥

उपर्युक्त विधि के अनुसार जीवित मनुष्य भी एकाग्रचित्त होकर, श्रद्धापूर्वक दानादि करके श्राद्ध कर सकता है।

एष व: कथित: सम्यग्गृहस्थानां क्रियाविधि:।
स्त्रीणां भर्तृषु शुश्रूषा धर्मो नान्य इहोच्यते॥८२॥

इस प्रकार गृहस्थों की क्रियाविधि मैंने सम्यक् रूप से आप लोगों को कह दी है। परन्तु स्त्रियों के लिए तो पतिसेवा के अतिरिक्त दूसरा कोई धर्म नहीं कहा गया है।

स्वधर्मतत्परा नित्यमीश्वरार्पितमानसा:।
प्राप्नुवन्ति परं स्थानं यदुक्तं वेदवादिभि:॥८३॥

इस प्रकार जो अपने धर्म में तत्पर होकर सदैव ईश्वरार्पित मन वाले होते हैं, वे वेदज्ञ विद्वानों द्वारा बताए गए श्रेष्ठ स्थान को प्राप्त करते हैं।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासु श्राद्धकल्पे त्रयोविंशोऽध्यायः॥२३॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

(द्विजों के अग्निहोत्रादि कर्म)

व्यास उवाच

अग्निहोत्रन्तु जुहुयात्सायम्प्रातर्यथाविधि।
दर्शे चैव हि तस्यान्ते नवसस्ये तथैव च॥१॥
इष्ट्वा चैव यथान्यायमृत्वन्ते च द्विजोऽध्वरः।
पशुना त्वयनस्यान्ते समान्ते सोऽग्निकैर्मखैः॥२॥

व्यास बोले— प्रत्येक ब्राह्मण को सायंकाल और प्रातःकाल विधिपूर्वक अग्निहोत्र करना चाहिए। कृष्णपक्ष के अन्त में (अमावस्या में) दर्शयाग और शुक्लपक्ष के अन्त में (पूर्णिमा में) पौर्णमास याग करना चाहिए। नूतन धान के पकने पर 'नवशस्या याग के साथ ब्राह्मण को प्रत्येक ऋतु के अन्त में अग्निहोत्र करना चाहिए। उत्तरायण या दक्षिणायन में होने वाले तथा संवत्सर के अन्त में सोमयज्ञों के साथ अग्निहोत्र करना चाहिए।

नानिष्ट्वा नवसस्येष्ट्या पशुना वाग्निमान्द्विजः।
न चान्नमद्यान्मांसं वा दीर्घमायुर्जिजीविषुः॥३॥

दीर्घायु प्राप्त करने की इच्छा वाले अग्निहोत्री ब्राह्मण को नवशस्येष्टि और पशु याग किए बिना अन्न या मांस भक्षण नहीं करना चाहिए।

नवेनान्नेन चानिष्ट्वा पशुहव्येन चाग्नयः।
प्राणानेवात्तुमिच्छन्ति नवान्नामिषगृद्धिनः॥४॥

जो अग्निहोत्री ब्राह्मण नूतन धान्य द्वारा नवशस्येष्टि तथा पशुयाग न करके अन्न या मांस भक्षण करते हैं तो उस अग्निहोत्री की अग्नियाँ उस के प्राणों को ही खाने की इच्छा करती हैं।

सावित्रान्शान्तिहोमांश्च कुर्यात्पर्वसु नित्यशः।
पितॄंश्चैवाष्टकाः सर्वे नित्यमन्वष्टकासु च॥५॥

वह अग्निहोत्री प्रत्येक पर्व पर सावित्र और शान्ति निमित्त होम करना चाहिए और सभी को 'अष्टका' श्राद्ध में, पितरों को सदा तृप्त करना चाहिए।

एष धर्मः परो नित्यमपधर्मोऽन्य उच्यते।
त्रयाणामिह वर्णानां गृहस्थाश्रमवासिनाम्॥६॥

यही उपर्युक्त धर्म सदा श्रेष्ठ है, इसके अतिरिक्त अन्य 'अपधर्म' कहा जाता है। यह ब्राह्मणादि तीनों वर्णों के गृहस्थों के लिए कहा है।

नास्तिक्यादथवालस्याद्योऽग्नीन्नाधातुमिच्छति।
यजेत वा न यज्ञेन स याति नरकान् बहून्॥७॥

जो नास्तिकता अथवा आलस्य के कारण अग्निहोत्र करने की इच्छा नहीं करता या यज्ञ द्वारा उनके देवों का पूजन नहीं करता उसे अनेकों नरक भोगने पड़ते हैं।

(तामिस्रमन्धतामिस्रं महारौरवरौरवौ।
कुम्भीपाकं वैतरणीमसिपत्रवनं तथा।
अन्यांश्च नरकान् घोरान् सम्प्राप्नोति सुदुर्मतिः।
अन्त्यजानां कुले विप्राः शूद्रयोनौ च जायते।)
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन ब्राह्मणो हि विशेषतः।
आधायाग्निं विशुद्धात्मा यजेत परमेश्वरम्॥८॥

हे विप्रो! वह दुष्टबुद्धि व्यक्ति तामिस्र, अन्धतामिस्र, महारौरव, कुम्भीपाक, वैतरणी, असिपत्रवन तथा अन्य घोर नरकों को प्राप्त करता है और बाद में चाण्डालों के कुल में एवं शूद्रयोनि में उत्पन्न होता है।) इसीलिए ब्राह्मण को सब प्रकार से यत्नपूर्वक विशुद्धात्मा होकर अग्न्याधान करके, परमेश्वर की पूजा करनी चाहिए।

अग्निहोत्रात्परो धर्मो द्विजानां नेह विद्यते।
तस्मादाराधयेन्नित्यमग्निहोत्रेण शाश्वतम्॥९॥

इस लोक में ब्राह्मणों के लिए अग्निहोत्र से बढ़कर दूसरा कोई श्रेष्ठ धर्म नहीं है, अतः उन्हें निरन्तर अग्निहोत्र के द्वारा ईश्वर की आराधना करनी चाहिए।

यस्त्वाधायाग्निमांश्च स्यान्न यष्टुं देवमिच्छति।
स संमूढो न सम्भाष्यः किं पुनर्नास्तिको जनः॥१०॥

जो पुरुष अग्निहोत्री होकर भी आलस्यवश देव का यजन नहीं करना चाहता, वह अतिशय मूढ़ व्यक्ति वार्तालाप के योग्य नहीं होता। फिर जो नास्तिक हो उसके विषय में तो कहना ही क्या? अर्थात् वह तो सदा ही सम्भाषण के योग्य नहीं रहता।

यस्य त्रैवार्षिकं भक्तं पर्याप्तं भृत्यवृत्तये।
अधिकं वा भवेद्यस्य स सोमं पातुमर्हति॥११॥

जिस व्यक्ति के पास तीन साल तक अपने आश्रितों का पेट भरने की सामग्री हो अथवा इससे अधिक हो, वही सोमपान के लिए योग्य होता है। अर्थात् उस उस धान्य से सोमयाग करना चाहिए।

एष वै सर्वयज्ञानां सोमः प्रथम इष्यते।
सोमेनाराधयेद्देवं सोमलोकमहेश्वरम्॥ १२॥

सभी यज्ञों में वह सोमयाग प्रथम—प्रधान अर्थात् अत्यन्त श्रेष्ठ जाना जाता है। इस सोमयज्ञ द्वारा सोमलोक (चन्द्रलोक) में स्थित महेश्वर देव की आराधना करनी चाहिए।

न सोमयागादधिको महेशाराधनात्परः।
न सोमो विद्यते तस्मात्सोमेनाभ्यर्चयेत्परम्॥ १३॥

महेश्वर शिव की आराधना के लिए सोमयज्ञ में अधिक श्रेष्ठ या उसके समान कोई दूसरा यज्ञ नहीं होता, इसलिए इस सोमयाग द्वारा उस परमेश्वर की आराधना करनी चाहिए।

पितामहेन विप्राणामादाय विहितः पशुः।
धर्मो विमुक्तये साक्षाच्छ्रौतः स्मार्त्तो भवेत्पुनः॥ १४॥

आदिकाल में पितामह (ब्रह्मा) ने, ब्राह्मणों की साक्षात् मुक्ति के लिए जिस श्रेष्ठ धर्म का वर्णन किया था, वह पुनः श्रौत और स्मार्त भेद से दो प्रकार का हुआ है।

श्रौतस्त्रेताग्निसम्बन्धात् स्मार्तः पूर्वं मयोदितः।
श्रेयस्करतमः श्रौतस्तस्माच्छ्रौतं समाचरेत्॥ १५॥

(उसमें प्रथम) श्रौतधर्म त्रेताग्नि से (दक्षिणाग्नि गार्हपत्य तथा आहवनीय) सम्बन्धित रहा है और दूसरे स्मार्त धर्म का वर्णन मैंने पहले ही कर दिया है। (उन दोनों में) श्रौत धर्म अधिक कल्याणकारी है, अतः उसका पालन अवश्य करना चाहिए।

उभावपि हितौ धर्मौ वेदवेदविनिःसृतौ।
शिष्टाचारस्तृतीयः स्याच्छ्रुतिस्मृत्योरभावतः॥ १६॥

ये दोनों ही धर्म वेद से ही उत्पन्न हुए हैं, (अतः) हितकारी हैं। श्रुति और स्मृति के अभाव में शिष्टजनों के द्वारा किया गया आचरण (शिष्टाचार) तृतीय है।

धर्मेणाधिगतो यैस्तु वेदः सपरिबृंहणः।
ते शिष्टा ब्राह्मणाः प्रोक्ताः नित्यमात्मगुणान्विताः॥ १७॥

जिनके द्वारा धर्मानुसार, विस्तृत वेदों को आत्मसात किया गया हो, ऐसे आत्मगुणों से युक्त ब्राह्मणों को शिष्ट कहा गया है।

तेषामभिमतो यः स्याच्चेतसा नित्यमेव हि।
स धर्मः कथितः सद्भिर्नान्येषामिति धारणा॥ १८॥

ऐसे शिष्ट ब्राह्मणों द्वारा अभिमत नित्य चित्त से भी स्वीकार किया गया है, सज्जनों नें वही शिष्टाचर धर्म कहा है दूसरों के द्वारा किया गया आचण धर्म नहीं है, यही शास्त्र नियम है।

पुराणं धर्मशास्त्राणि वेदानामुपबृंहणम्।
एकस्माद्ब्रह्मविज्ञानं धर्मज्ञानं तथैकतः॥ १९॥

पुराण और धर्मशास्त्र वेदों का विस्तार करन वाले हैं। इनमें से एक (पुराण) से ब्रह्म या परमेश्वर का ज्ञान होता है, तथा और दूसरे से धर्म ज्ञान होता है।

धर्मं जिज्ञासमानानां तत्प्रमाणतरं स्मृतम्।
धर्मशास्त्रं पुराणानि ब्रह्मज्ञानेतराश्रमम्॥ २०॥

इसलिए धर्म के जिज्ञासा करने वालों के लिए उत्कृष्ट प्रमाणरूप है और ब्रह्मज्ञानपरायणों के लिए पुराण श्रेष्ठ प्रमाण हैं।

नान्यतो जायते धर्मो ब्राह्मी विद्या च वैदिकी।
तस्माद्धर्मं पुराणं च श्रद्धातव्यं मनीषिभिः॥ २१॥

इन दोनों से भिन्न किसी अन्य मार्ग से, धर्म और वैदिक ब्रह्मविद्या की ज्ञान प्राप्ति नहीं हो सकती, इसीलिए विद्वानों को धर्मशास्त्र और पुराण के प्रति श्रद्धालु होना चाहिए।[1]

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासु
द्विजानामग्निहोत्रादिकृत्यनिरूपणं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

पञ्चविंशोऽध्यायः
(द्विजातियों की वृत्ति)

व्यास उवाच

एष वोऽभिहितः कृत्स्नो गृहस्थाश्रमवासिनः।
द्विजातेः परमो धर्मो वर्त्तनानि निबोधत॥ १॥

व्यास बोले— इस प्रकार मैंने गृहस्थाश्रम में रहने वाले द्विजातियों के परम धर्म का पूर्णतः वर्णन कर दिया है, अब उनके आचरण के विषय में ध्यानपूर्वक सुनो।

1. मनीषी तथा बुद्धिमान् पुरुषों को धर्मशास्त्र और पुराणों में श्रद्धा रखनी चाहिए

द्विविधस्तु गृही ज्ञेय: साधकश्चाप्यसाधक:।
अध्यापनं याजनं च पूर्वस्याहु: प्रतिग्रहम्।
कुसीदकृषिवाणिज्यं प्रकुर्वन्त: स्वयं कृतम्॥ २॥

गृहस्थ साधक और असाधक दो प्रकार के होते हैं। इनमें से प्रथम साधक गृहस्थ के कर्म अध्यापन, यज्ञ और दान लेना कहा गया है। ये व्याजकर्म, कृषि और व्यापार भी कर सकते हैं अथवा दूसरों द्वारा करा सकते हैं।

कृषेरभावे वाणिज्यं तदभावे कुसीदकम्।
आपत्कल्पस्त्वयं ज्ञेय: पूर्वोक्तो मुख्य इष्यते॥ ३॥

कृषि के अभाव में व्यापार और व्यापार के अभाव में ब्याज लेने का कार्य किया जाना चाहिए। यह (ब्याजकर्म) आपत्काल में ही मान्य है पूर्वोक्त (अध्यापन, याजन और दान) साधनों को ही प्रमुख्य जानना चाहिए।

स्वयं वा कर्षणाकुर्याद्वाणिज्यं वा कुसीदकम्।
कष्टा पापीयसी वृत्ति: कुसीदं तद्विवर्ज्जयेत्॥ ४॥

अथवा स्वयं कृषि, व्यापार या सूदखोरी का काम स्वयं करना चाहिए। ब्याजकर्म की जीविका अतिशय पापजनक होती है, इसीलिए सदा ही अवश्य त्याग करना चाहिए।

क्षात्रवृत्तिं परां प्राहुर्न स्वयं कर्षणं द्विजै:।
तस्मात्क्षात्रेण वर्त्तेत वर्तितेऽनापदि द्विज:॥५॥

विद्वानों ने ब्राह्मणों के लिए स्वयं कृषि कर्म करने की अपेक्षा, क्षत्रिय वृत्ति अपनाने को श्रेष्ठ माना है। इसलिए आपत्काल में, ब्राह्मण यदि क्षत्रिय वृत्ति को अपनाता है तो वह पतित नहीं होता।

तेन चावाप्यजीवंस्तु वैश्यवृत्ति: कृषिं व्रजेत्।
न कथंचन कुर्वीत ब्राह्मण: कर्म कर्षणम्॥ ६॥

यदि ब्राह्मण क्षत्रिय वृत्ति नहीं ग्रहण कर पाता तो वैश्य ग्रहण कर लेना चाहिए, परन्तु स्वयं कृषि कार्य नहीं करना चाहिए।

लब्धलाभ: पितृन्देवान् ब्राह्मणांश्चापि पूजयेत्।
ते तृप्तास्तस्य तं दोषं शमयन्ति न संशय:॥७॥

लाभ होने से पितरों, देवताओं और ब्राह्मणों की पूजा करना चाहिए। इसमें कोई संशय नहीं कि ये लोग तृप्त होकर (कृषि कर्म के कारण उत्पन्न) सारे दोश नष्ट कर देते हैं।

देवेभ्यश्च पितृभ्यश्च दद्याद्भागन्तु विंशकम्।
त्रिंशद्भागं ब्राह्मणानां कृषिं कुर्वन्न दुष्यति॥ ८॥

उपार्जित वस्तु के बीसवें भाग से देवताओं और पितरों को एक भाग तथा बीसवें भाग से ब्राह्मणों को एक भाग देने से, कृषि कर्म में दोष नहीं लगता।

वाणिज्ये द्विगुणं दद्यात् कुसीदी त्रिगुणं पुन:।
कृषिपालान्न दोषेण युज्यते नात्र संशय:॥ ९॥

कृषि की तुलना में, व्यापार से हुए लाभ में दुगुना और सूदखोरी में तिगुना देना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रकार भाग देने से इन कार्यों में दोष नहीं लगता।

शिलोञ्छं वाप्याददीत गृहस्थ: साधक: पुन:।
विद्याशिल्पादयस्त्वन्ये बहवो वृत्तिहेतव:॥ १०॥

साधक गृहस्थ शिलोच्छ वृत्ति भी ग्रहण कर सकता है। उसके लिए विद्या शिल्पादि अन्य और भी बहुत से जीविकोपार्जन के साधन हैं।

असाधकस्तु य: प्रोक्तो गृहस्थाश्रमसंस्थित:।
शिलोञ्छे तस्य कथिते द्वे वृत्ती परमर्षिभि:॥ ११॥

असाधक गृहस्थों के लिए, ऋषियों ने, शिल और उञ्छ जीविकायें बताई हैं।

अमृतेनाथवा जीवेन्मृतेनाप्यथवा यदि।
अयाचितं स्यादमृतं मृतं भैक्षन्तु याचितम्॥ १२॥

अथवा अमृत के द्वारा या आपत्काल में मृत के द्वारा जीविका निर्वाह कर सकते हैं। बिना माँगी हुई वस्तु अमृत और भिक्षा में प्राप्त वस्तु मृत होती है।

कुशूलधान्यको वा स्यात्कुम्भीधान्यक एव वा।
त्र्यहिको वापि च भवेदश्वस्तनिक एव वा॥ १३॥

कुशूल्यधान्यक (संचित अन्न से तीन साल तक या उससे अधिक जीविका निर्वाह करने वाला) कुम्भीधान्यक (संचित अन्न से एक साल तक जीविका निर्वाह करने वाला) अथवा त्र्यहिक (संचित अन्न से तीन दिन तक सपरिवार पेट भरने वाला) अथवा अश्वस्तनिक (आने वाले कल को पेट भरने के लिए जिसके पास अंशमात्र भी अन्न संचित न हो) होना चाहिए।

चतुर्णामपि वै तेषां द्विजानां गृहमेधिनाम्।
श्रेयान्पर: परो ज्ञेयो धर्मतो लोकजित्तम:॥ १४॥

कुशूलधान्यादि तीन प्रकार, संचयी और असंचयी एक प्रकार, ऐसे चार प्रकार के गृहस्थ ब्राह्मणों में, उत्तरोत्तर को श्रेष्ठ जानो। क्योंकि धर्मानुसार ये परलोक में श्रेष्ठ लोकजयी होते हैं।

षट्कर्मको भवेत्तेषां त्रिभिरन्य: प्रवर्तते।
द्वाभ्यामेकश्चतुर्थस्तु ब्रह्मसत्रेण जीवति॥ १५॥

(बड़े परिवार वाले) गृहस्थ ब्राह्मण, छ: जीविकाओं ऋत, अयाचित, भिक्षा, कृषि, व्यापार और सूदखोरी) के द्वारा, दूसरे (उससे छोटे परिवार वाले) ब्राह्मण तीन जीविकाओं (याजन, अध्यापन और दान) के द्वारा, तीसरे (उनसे भी छोटे परिवार वाले ब्राह्मण) प्रकार के ब्राह्मण दो कर्मों (अध्यापन और याजन) से तथा चौथे प्रकार के ब्राह्मण केवल एक (अध्यापन) जीविका के द्वारा अपने परिवार का पालन पोषण करेंगे।

वर्तयंस्तु शिलोञ्छाभ्यामग्निहोत्रपरायण:।
इष्टि: पार्वायणान्ता या: केवला न निर्वपेत्सदा॥ १६॥

शिल और उञ्छ वृत्ति के द्वारा जीविकोपार्जन करने वाले ब्राह्मण, यदि घर से सम्पन्न होने वाले पुण्यकर्मों को करने में अक्षम हों, तो उसे केवल अग्निहोत्र पराजय होना चाहिए और पर्व तथा अयन के अन्त से सम्पन्न होने वाले यज्ञों को करना चाहिए।

न लोकवृत्तं वर्तेत वार्त्तानो वृत्तिहेतवे।
अजिह्मामशठां शुद्धां जीवेद्ब्राह्मणजीविकाम्॥ १७॥

जीविकोपार्जन के लिए लोकवृत्ति का अनुसरण नहीं करना चाहिए। जीविका का जो साधन अहंकार और छल से शून्य हो, सर हों, जिसमें लेशमात्र भी कुटिलता न हो और जो अत्यन्त शुद्ध हो गृहस्थ ब्राह्मण को वही जीविका अपनानी चाहिए।

याचित्वा चार्थसद्भ्योऽन्नं पितॄन्देवांस्तु तोषयेत्।
याचयेद्वा शुचीन्दान्तान् तेन तृप्येत् स्वयं तत:॥ १८॥

शिष्टजनों से अन्न माँगर, पितरों को तृप्त करना चाहिए या पवित्र संन्यासियों को दान देना चाहिए, परन्तु उससे स्वयं अपना पेट नहीं भरना चाहिए।

यस्तु द्रव्यार्जनं कृत्वा गृहस्थस्तोषयेन्न तु।
देवान्पितृंस्तु विधिना शुनां योनिं व्रजत्यध:॥ १९॥

जो व्यक्ति द्रव्य कमाकर परिवारजनों, देवताओं और पितरों को विधिपूर्वक सन्तुष्ट नहीं करता, वह कुकुरयोनि प्राप्त करता है।

धर्मश्चार्थश्च कामश्च श्रेयो मोक्षश्चतुष्टयम्।
धर्माविरुद्ध: काम: स्याद्ब्राह्मणानान्तु नेतर:॥ २०॥

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में चारों श्रेयस्कर हैं। धर्म के अविरोधी काम का आश्रय लिया जा सकता है परन्तु धर्म विरोधी काम कभी भी पालनयी नहीं होता।

योऽर्थो धर्माय नात्मार्थ सोऽर्थोनार्थस्तथेतर:।
तस्मादर्थं समासाद्य दद्याद्वै जुहुयाद्द्विज:॥ २१॥

केवल धर्म के लिए संचित अर्थ ही अर्थ है और जो अर्थ अपने लिए संग्रह किया जाता है, वह अर्थ नहीं होता। अत: ब्राह्मण को अर्थ संचित कर सुपात्र को दान देना चाहिए या यज्ञ करना चाहिए।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासु द्विजातीनां वृत्तिनिरूपणं नाम पञ्चविंशोऽध्याय:॥ २५॥

षड्विंशोऽध्याय:
(दानधर्म कथन)

व्यास उवाच

अथात: सम्प्रवक्ष्यामि दानधर्ममनुत्तमम्।
ब्रह्मणाभिहितं पूर्वमृषीणां ब्रह्मवादिनाम्॥ १॥

व्यास बोले— पहले स्वयं ब्रह्मा ने ब्रह्मवादी ऋषियों के जिस अतिश्रेष्ठ दानधर्म को बताया था, अब मैं उसीको कहूँगा।

अर्थानामुचिते पात्रे श्रद्धया प्रतिपादनम्।
दानमित्यभिनिर्दिष्टं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥ २॥

सुपात्र में श्रद्धापूर्वक धन का प्रतिपादन ही 'दान' नाम से अभिहित है। यह भोग और मोक्ष— दोनों प्रकार का फल देने वाला है।

यद्ददाति विशिष्टेभ्य: शिष्टेभ्य: श्रद्धया युत:।
तद्विचित्रमहं मन्ये शेषं कस्यापि रक्षति॥ ३॥

जो कोई अपने धन का विशिष्ट सभ्यजनों को श्रद्धापूर्वक दान करता है, वही सच्चा धन मैं मानता हूँ। शेष धन को तो दूसरे किसी के लिए रक्षा करता है।

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं दानमुच्यते।
चतुर्थं विमलं प्रोक्तं सर्वदानोत्तमोत्तमम्॥ ४॥

नित्य, नैमित्तिक और काम्य भेद से दान तीन प्रकार का कहा गया है। चौथे प्रकार का दान, निर्मल दान कहा जाता है, जो समस्त दानों की तुलना में श्रेष्ठ होता है।

अहन्यहनि यत्किञ्चिद्दीयतेऽनुपकारिणे।
अनुद्दिश्य फलं तस्माद्ब्राह्मणाय तु नित्यकम्॥५॥

फल की इच्छा न रखकर, प्रतिदिन किसी अनुपकारी (उपकार करने में असमर्थ) साधारण ब्राह्मण को दिया जाने वाला दान 'नित्य' दान कहलाता है।

यत्तु पापोपशान्त्यर्थं दीयते विदुषां करे।
नैमित्तिकन्तदुद्दिष्टं दानं सद्भिरनुष्ठितम्॥६॥

अपने पाप का शमन करने के लिए जो दान पण्डितों के हाथों में दिया जाता है, वह नैमित्तिक दान कहा गया है और यह सज्जनों द्वारा अनुष्ठित भी है।

अपत्यविजयैश्वर्यस्वर्गार्थं यत्प्रदीयते।
दानं तत्काम्यमाख्यातमृषिभिर्धर्मचिन्तकै:॥७॥

सन्तान, विजय, ऐश्वर्य या स्वर्गादि की कामना से जो दान दिया जाता है, वह धर्मचिन्तक ऋषियों द्वारा 'काम्य' दान कहा गया है।

यदीश्वरप्रीणनार्थं ब्रह्मवित्सु प्रदीयते।
चेतसा धर्मयुक्तेन दानं तद्विमलं शिवम्॥८॥

ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए, धर्मपरायण होकर वेदज्ञ ब्राह्मणों को जो दान दिया जाता है, वह मंगलकारी दान, विमल (निर्मल) दान के नाम से जाना जाता है।

दानधर्मं निषेवेत पात्रमासाद्य शक्तित:।
उत्पत्स्यते हि तत्पात्रं यत्तारयति सर्वत:॥९॥

सुपात्र मिलने पर ही सामर्थ्यानुसार दानरूप धर्म की सेवा करनी चाहिए, क्योंकि ऐसा पात्र कदाचित् ही उपस्थित होता है, जो दाता को सभी प्रकार के पापों से मुक्ति दिलाने में समर्थ होता है।

कुटुम्बभक्तवसनाद्देयं यदतिरिच्यते।
अन्यथा दीयते यद्धि न तद्दानं फलप्रदम्॥१०॥

कुटुम्ब का पेट भरने के बाद, जो बचे, उसका दान करना चाहिए। अन्यथा जो दान दिया जाता है, वह फलदायक नहीं होता।

श्रोत्रियाय कुलीनाय विनीताय तपस्विने।
व्रतस्थाय दरिद्राय प्रदेयं भक्तिपूर्वकम्॥११॥

वेदज्ञ ब्राह्मण, कुलीन, विनीत, तपस्वी, ब्रह्मचारी और दरिद्रों को भक्तिभाव से दान देना चाहिए।

यस्तु दद्यान्महीम्भक्त्या ब्राह्मणायाहिताग्नये।
स याति परमं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति॥१२॥

जो व्यक्ति भक्तिभाव से अग्निहोत्री ब्राह्मण को भूमि दान करता है, वह उस परम स्थान पर पहुँचता है, जहाँ जाकर व्यक्ति किसी प्रकार का दु:ख नहीं भोगता।

इक्षुभि: सन्ततां भूमिं यवगोधूमशालिनीम्।
ददाति वेदविदुषे य: स भूयो न जायते॥१३॥

जो व्यक्ति गन्ने से आच्छादित, जौ और गेहूँ की फसलों से सुशोभित भूमि को वेदज्ञ ब्राह्मण के लिए दान करता है, वह सारे पापों से मुक्त हो जाता है।

गोचर्ममात्रामपि वा यो भूमिं सम्प्रयच्छति।
ब्राह्मणाय दरिद्राय सर्वपापै: प्रमुच्यते॥१४॥
भूमिदानात्परं दानं विद्यते नेह किञ्चन।
अन्नदानन्तेन तुल्यं विद्यादानं ततोऽधिकम्॥१५॥

जो व्यक्ति गोचर्म जितनी भी भूमि, निर्धन ब्राह्मण को दान करता है, वह सारे पापों से मुक्त हो जाता है। क्योंकि इस भूमिदान से बढ़कर कोई श्रेष्ठ दान नहीं है। परन्तु अन्न दान भी भूमि दान के समान होता है, तथापि विद्यादान उससे भी अधिक फलदायक होता है।

यो ब्राह्मणाय शुचये धर्मशीलाय शीलिने।
ददाति विद्यां विधिना ब्रह्मलोके महीयते॥१६॥

जो व्यक्ति शान्त, पवित्र और धर्मशील ब्राह्मण को विधि पूर्वक विद्यादान करता है, वह ब्रह्मलोक में पूजित होता है।

दद्यादहरहस्त्वन्नं श्रद्धया ब्रह्मचारिणे।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्राह्मणं स्थानमाप्नुयात्॥१७॥

जो व्यक्ति नित्य प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक ब्रह्मचारी ब्राह्मण को अन्न दान करता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर, ब्रह्मलोक में जाता है।

गृहस्थायान्नदानेन फलं नाप्नोति मानव:।
आगमे चास्य दातव्यं दत्त्वाप्नोति परां गतिम्॥१८॥

गृहस्थ को भी (कच्चा) अन्न दान करने से मनुष्य को फल मिलता है। परन्तु उसके आने पर ही गृहस्थ को दान करना चाहिए। ऐसा दान देकर दाता श्रेष्ठ गति प्राप्त करता है।

वैशाख्यां पौर्णमास्यान्तु ब्राह्मणान्सप्त पञ्च वा।
उपोष्य विधिना शान्ताञ्छुचीअयतमानसा:॥१९॥
पूजयित्वा तिलै: कृष्णैर्मधुना च विशेषत:।
गन्धादिभि: समभ्यर्च्य वाचयेद्वा स्वयं वदेत्॥२०॥
प्रीयतां धर्मराजेति यद्वा मनसि वर्त्तते।

यावज्जीवं कृतम्पापं तत्क्षणादेव नश्यति॥ २१॥

वैशाख मास की पूर्णिमा के दिन उपवास रखकर शान्त, पवित्र और एकाग्रचित्त से सात या पाँच ब्राह्मणों को काले तिल और मधु से भली-भाँति पूजकर, गन्धादि द्रव्यों से आरती उतारकर, "हे धर्मराज! आप प्रसन्न हों," यह वाक्य स्वयं कहें और जो कुछ भी मन में कामना हो, वह भी कहे या उन ब्राह्मणों से बोलने को कहें। ऐसा करने से जीवन भर किये हुए सभी पाप क्षण में नष्ट हो जाते हैं।

कृष्णाजिने तिलान् दत्त्वा हिरण्यं मधुसर्पिषी।
ददाति यस्तु विप्राय सर्वं तरति दुष्कृतम्॥ २२॥

जो व्यक्ति काले मृगचर्म में सोना, मधु और घी रखकर ब्राह्मण को दान देता है, वह सारे पापों से मुक्त हो जाता है।

कृतान्नमुदकुम्भञ्च वैशाख्याञ्च विशेषतः।
निर्दिश्य धर्मराजाय विप्रेभ्यो मुच्यते भयात्॥ २३॥

विशेषतः वैशाख मास में, धर्मराज को पका हुआ अन्न और जल से भरा हुआ घड़ा, ब्राह्मणों को दान देने से भय से मुक्ति मिलती है।

सुवर्णतिलयुक्तैस्तु ब्राह्मणान् सप्त पञ्च वा।
तर्पयेदुदपात्राणि ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥ २४॥

सात या पाँच सुपात्र ब्राह्मणों को सोना और तिल के साथ जल भरे पात्र का दान करने से ब्रह्महत्या के पाप से छुटकारा मिल जाता है।

(माघमासे तु विप्रस्तु द्वादश्यां समुपोषितः।)
शुक्लाम्बरधरः कृष्णैस्तिलैर्हुत्वा हुताशनम्।
प्रदद्याद्ब्राह्मणेभ्यस्तु विप्रेभ्यः सुसमाहितः।
जन्मप्रभृति यत्पापं सर्वं तरति वै द्विजः॥ २५॥
अमावास्यामनुप्राप्य ब्राह्मणाय तपस्विने।
यत्किञ्चिद्देवदेवेशं दद्याद्दोद्दिश्य शङ्करम्॥ २६॥
प्रीयतामीश्वरः सोमो महादेवः सनातनः।
सप्तजन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति॥ २७॥

माघ की कृष्ण द्वादशी में उपवास कर, सफेद वस्त्र धारण करके आग में काले तिल से हवन करते हुए एकाग्रचित्त से ब्राह्मणों को तिल दान करने से, जीवन भर के सारे पापों से मुक्ति मिल जाती है। अमावस्या के दिन, 'उमा सहित ईश्वर सनातन महादेव प्रसन्न हों' यह कहकर देवदेवेश भगवान् शंकर के नाम से तपस्वी ब्राह्मण को जो कुछ भी दान दिया जाता है, उसके द्वारा सात जन्मों में किए गए पाप उसी क्षण नष्ट हो जाते हैं।

यस्तु कृष्णचतुर्दश्यां स्नात्वा देवं पिनाकिनम्।
आराधयेद्द्विजमुखे न तस्यास्ति पुनर्भवः॥ २८॥
कृष्णाष्टम्यां विशेषेण धार्मिकाय द्विजातये।
स्नात्वाभ्यर्च्य यथान्यायं पादप्रक्षालनादिभिः॥ २९॥
प्रीयतां मे महादेवो दद्याद्द्रव्यं स्वकीयकम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तः प्राप्नोति परमां गतिम्॥ ३०॥

जो व्यक्ति कृष्णचतुर्दशी के दिन स्नान करके, भगवान् शंकर की आराधना कर, ब्राह्मण को भोजन कराता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। जो व्यक्ति कृष्णाष्टमी के दिन, स्नान करके, धार्मिक ब्राह्मणों को नियमानुसार पादप्रक्षलन आदि द्वारा विशेष रूप से उनकी पूजा करके, महादेव हमारे प्रति "प्रसन्न हों" यह कहकर अपनी वस्तु दान करता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर, परम गति को प्राप्त करता है।

द्विजैः कृष्णचतुर्दश्यां कृष्णाष्टम्यां विशेषतः।
अमावास्यान्तु वै भक्तैः पूजनीयस्त्रिलोचनः॥ ३१॥
एकादश्यां निराहारो द्वादश्यां पुरुषोत्तमम्।
अर्चयेद्ब्राह्मणमुखे स गच्छेत्परमं पदम्॥ ३२॥

कृष्णाष्टमी, कृष्णचतुर्दशी और अमावस्या के दिन, भक्त ब्राह्मणों को विशेष रूप से भगवान शिव की पूजा करनी चाहिए। इसी प्रकार एकादशी को उपवास करके, द्वादशी में पुरुषोत्तम विष्णु की पूजा करके ब्राह्मणों को भोजन करवाना चाहिए। ऐसा करने वाला परमगति को प्राप्त होता है।

एषा तिथिर्वैष्णवी स्याद्द्वादशी शुक्लपक्षके।
तस्यामाराधयेद्देवं प्रयत्नेन जनार्दनम्॥ ३३॥

शुक्लपक्ष की द्वादशी तिथि ऐसे उपासकों की वैष्णवी तिथि होती है, इसीलिए इस तिथि में जनार्दन विष्णु की यत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिए।

यत्किञ्चिद्देवमीशानमुद्दिश्य ब्राह्मणे शुचौ।
दीयते विष्णवे वापि तदनन्तफलप्रदम्॥ ३४॥

इस तरह जिस किसी रूप में देव ईशान शंकर को उद्दिष्ट करके अथवा भगवान् विष्णु के नाम पर पवित्र ब्राह्मण को जो कुछ भी दान दिया जाता है, वह अनन्त फल देने वाला होता है।

यो हि यां देवतामिच्छेत्समाराधयितुं नरः।
ब्राह्मणान् पूजयेद्विद्वान् स तस्यास्तोषहेतुतः॥ ३५॥

जो मनुष्य अपने जिस इष्टदेव की आराधना करना चाहता है, वह बुद्धिमान् उसे उस देवता को सन्तुष्टि हेतु ब्राह्मणों को पूजा करे।

द्विजानां वपुरास्थाय नित्यं तिष्ठन्ति देवताः।
पूज्यन्ते ब्राह्मणालाभे प्रतिमादिष्वपि क्वचित्॥३६॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तत्तत्फलमभीप्सुभिः।
द्विजेषु देवता नित्यं पूजनीया विशेषतः॥३७॥

ब्राह्मणों के शरीर का आश्रय लेकर सभी देवता नित्य वास करते है। कभी-कभी ब्राह्मण उपलब्ध न होने पर प्रतिमा आदि में भी देवताओं की पूजा की जाती है। इसीलिए सब प्रकार से तत्तत् फल के इच्छुक व्यक्तियों को, सदा ब्राह्मण में ही विशेष रूप से देवता की पूजा करनी चाहिए।

विभूतिकामः सततं पूजयेद्वै पुरन्दरम्।
ब्रह्मवर्चसकामस्तु ब्रह्माणं ब्रह्मकामुकः॥३८॥

ऐश्वर्य की कामना करने वाला सदा इन्द्र की पूजा करे और ब्रह्मवर्चस की कामना वाला या वेदज्ञान की कामना वाला ब्रह्मा की पूजा करे।

आरोग्यकामोऽथ रविं धेनुकामो हुताशनम्।
कर्मणां सिद्धिकामस्तु पूजयेद्वै विनायकम्॥३९॥

उसी प्रकार आरोग्य चाहने वाला सूर्य को, धेनु की कामना करने वाला अग्नि की और सभी कार्यों की सिद्धि चाहने वाला विनायक की पूजा करे।

भोगकामस्तु शशिनं बलकामः समीरणम्।
मुमुक्षुः सर्वसंसारात्प्रयत्नेनार्चयेद्धरिम्॥४०॥

भोगों की इच्छा करने वाला चन्द्रमा की, बलकामी वायु की और सम्पूर्ण संसार से मुक्ति की इच्छा करने वाला प्रयत्नपूर्वक विष्णु की पूजा करे।

यस्तु योगं तथा मोक्षमिच्छेत्तज्ज्ञानमैश्वरम्।
सोऽर्चयेद्वै विरूपाक्षं प्रयत्नेन महेश्वरम्॥४१॥

परन्तु जो योग, मोक्ष तथा ईश्वरीय ज्ञान की इच्छा करते हैं, उन्हें यत्नपूर्वक विरूपाक्ष महेश्वर की पूजा करना चाहिए।

ये वाञ्छन्ति महाभोगान् ज्ञानानि च महेश्वरम्।
ते पूजयन्ति भूतेशं केशवञ्चापि भोगिनः॥४२॥

जो महाभोग समूह को तथा विविध ज्ञान प्राप्ति की इच्छा रखते हैं, वे भोगी पुरुष भूतेश महादेव और केशव (विष्णु) की पूजा करते हैं।

वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षय्यमन्नदः।
तिलप्रदः प्रजामिष्टान्दीपदश्चक्षुरुत्तमम्॥४३॥

जलदान करने से (प्याउ लगाने से) तृप्ति, अन्नदान से अक्षय सुख, तिलदान से अभीष्ट प्रजा (सन्तान) और दीपदान से उत्तम चक्षु प्राप्त होते हैं।

भूमिदः सर्वमाप्नोति दीर्घमायुर्हिरण्यदः।
गृहदोऽग्र्याणि वेश्मानि रूप्यदो रूपमुत्तमम्॥४४॥

भूमिदान करने वाला सब पा लेता है। स्वर्णदान करने से दीर्घायु, गृहदान करने से उत्तम गृह और चाँदी का दान करने वाला उत्तम रूप की प्राप्ति होती है।

वासोदश्चन्द्रसालोक्यमश्विसालोक्यमश्वदः।
अनडुहः श्रियं पुष्टां गोदो ब्रध्नस्य विष्टपम्॥४५॥

वस्त्र दान करने से चन्द्रलोक में वास होता है। अश्वदान से श्रेष्ठ यान, बैलदान अतुल सम्पत्ति और गोदान करने वाला ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है।

यानशय्याप्रदो भार्यामैश्वर्यमभयप्रदः।
धान्यदः शाश्वतं सौख्यं ब्रह्मदो ब्रह्मसात्म्यताम्॥४६॥

वाहन या शय्यादान करने से सुन्दर स्त्री की प्राप्ति होती है। डरे हुए व्यक्ति को अभयदान देने से प्रभूत ऐश्वर्य मिलता है, धान का दान करने से शाश्वत सुख तथा वेद का दान करने से ब्रह्मतादात्म्य की प्राप्ति होती है।

धान्यान्यपि यथाशक्ति विप्रेषु प्रतिपादयेत्।
वेदवित्सु विशिष्टेषु प्रेत्य स्वर्गं समश्नुते॥४७॥

जो व्यक्ति अपनी शक्ति के अनुसार, वेदज्ञ विशिष्ट ब्राह्मणों को धान्य अर्पित करता है, वह मरणोपरान्त में स्वर्ग भोगता है।

गवां वा संप्रदानेन सर्वपापैः प्रमुच्यते।
इन्धनानां प्रदानेन दीप्ताग्निर्जायते नरः॥४८॥

गायों को दान करने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त होता है। इन्धन का दान करने से दीप्ताग्नि उत्पन्न होती है (पाचनशक्ति बढ़ती है)।

फलमूलानि शाकानि भोज्यानि विविधानि च।
प्रदद्याद्ब्राह्मणेभ्यस्तु मुदा युक्तः सदा भवेत्॥४९॥

जो ब्राह्मणों को फल, मूल, शाक तथा विविध प्रकार के भोज्य पदार्थ देता है, वह स्वयं प्रसन्नयुक्त रहता है।

औषधं स्नेहमाहारं रोगिणे रोगशान्तये।
ददानो रोगरहितः सुखी दीर्घायुरेव च॥५०॥

जो व्यक्ति रोगी को रोग की शांति के लिए औषध, घृतादि युक्त आहार प्रदान करता है, वह निरोगी, सुखी और दीर्घायु होता है।

असिपत्रवनं मार्गं क्षुरधारासमन्वितम्।
तीव्रतापञ्च तरति छत्रोपानत्प्रदो नरः॥५१॥

जो व्यक्ति छाता और जूता दान करता है, वह उस्तरे के समान तेज धारवाले असिपत्रवन नामक नरक से और तीव्र ताप को पार कर लेता है।

यद्यदिष्टतमं लोके यच्चापि दयितं गृहे।
तत्तद् गुणवते देयन्तदेवाक्षयमिच्छता॥५२॥

इस लोक में जो कुछ भी अति प्रिय हो और जो अपने घर में प्रिय वस्तु हो, (उसे परलोक में) अक्षयरूप से चाहने वाला ये सब वस्तुएँ गुणवान् ब्राह्मण को दान करे।

अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः।
संक्रान्त्यादिषु कालेषु दत्तम्भवति चाक्षयम्॥५३॥

अयनकाल और विषुवसंक्रान्ति काल (जिसमें दिन-रात समान होते हैं), सूर्य और चन्द्र के ग्रहण में तथा संक्रान्त्यादि समय में दान की गई वस्तुएँ अक्षय फल प्रदान करती हैं।

प्रयागादिषु तीर्थेषु पुण्येष्वायतनेषु च।
दत्त्वा चाक्षयमाप्नोति नदीषु च वनेषु च॥५४॥

प्रयागादि तीर्थ, पवित्र मन्दिर, नदी या तालाब के किनारे सुपात्र को दिया गया दान अक्षय फलोत्पादक होता है।

दानधर्मात्परो धर्मो भूतानान्नेह विद्यते।
तस्माद्विप्राय दातव्यं श्रोत्रियाय द्विजातिभिः॥५५॥

इस लोक में प्राणियों के लिए दान धर्म से उत्तम दूसरा कोई धर्म नहीं है, इसीलिए द्विजातियों को वेदज्ञ ब्राह्मणों को दान देना चाहिए।

स्वर्गायुर्भूतिकामेन तथा पापोपशान्तये।
मुमुक्षुणा च दातव्यं ब्राह्मणेभ्यस्तथान्वहम्॥५६॥

स्वर्ग, आयु और ऐश्वर्य की कामना वाला और मुमुक्षु को पापों के उपशमन हेतु प्रतिदिन ब्राह्मणों को दान देना चाहिए।

दीयमानन्तु यो मोहाद्गोविप्राग्निसुरेषु च।
निवारयति पापात्मा तिर्यग्योनिं व्रजेत्तु सः॥५७॥

गौ, ब्राह्मण, अग्नि आदि देवों को दान देते समय जो व्यक्ति मोहवश उसे (दान-कर्म को) रोकता है, वह पापात्मा मृत्यु के बाद पक्षियों की योनि में जन्म लेता है।

यस्तु द्रव्यार्जनं कृत्वा नार्चयेद्ब्राह्मणान् सुरान्।
सर्वस्वमपहृत्यैनं राष्ट्राद्विप्रतिवासयेत्॥५८॥

जो व्यक्ति द्रव्य-संचय कर लेने पर उस से देवताओं और ब्राह्मणों का अर्चन नहीं करता, तो (राजा) उससे सर्वस्व छीनकर, राज्य से निष्कासित कर दे।

यस्तु दुर्भिक्षवेलायामन्नाद्यं न प्रयच्छति।
म्रियमाणेषु सत्त्वेषु ब्राह्मणः स तु गर्हितः॥५९॥
तस्मान्न प्रतिगृह्णीयान्न वै देयञ्च तस्य हि।
अङ्कयित्वा स्वकाद्राष्ट्रात्तं राजा विप्रवासयेत्॥६०॥

जो व्यक्ति दुर्भिक्ष के समय (भूखमरी से) मृत्यु को प्राप्त हो रहे लोगों को अन्नादि दान नहीं करता, वह ब्राह्मण निन्दित होता है। ऐसे व्यक्ति से दान ग्रहण करना और उसे दान देना वर्जित है। ऐसे व्यक्तियों को (पापसूचक चिह्नों से) चिह्नित कर राजा अपने राज्य से निर्वासित कर दे।

यस्तु सद्भ्यो ददातीह न द्रव्यं धर्मसाधनम्।
स पूर्वाभ्यधिकः पापी नरके पच्यते नरः॥६१॥

जो मनुष्य सज्जनों को धर्म प्राप्ति के साधनरूप द्रव्य का दान नहीं करता, वह तो पूर्वोक्त पापियों से भी अधिक पापी मृत्यु के पश्चात् नरक में दुःख भोगता है।

स्वाध्यायवन्तो ये विप्रा विद्यावन्तो जितेन्द्रियाः।
सत्यसंयमसंयुक्तास्तेभ्यो दद्याद्द्विजोत्तमाः॥६२॥

हे द्विजोत्तमो! जो ब्राह्मण वेदाध्यायी हों, विद्यावान् और जितेन्द्रिय हों, सत्य और संयम से युक्त हों, उन्हीं को दान देना चाहिए।

सुभुक्तमपि विद्वांसं धार्मिकम्भोजयेद्द्विजम्।
न तु मूर्खमवृत्तस्थं दशरात्रमुपोषितम्॥६३॥

यदि कोई सुभुक्त (सुसम्पन्न) ब्राह्मण विद्वान् और धार्मिक हो, तो उसे भी भोजन कराना चाहिए। परन्तु अधार्मिक और मूर्ख ब्राह्मण यदि दस रात तक उपवासी हो, तो भी उसे भोजन नहीं कराना चाहिए।

सन्निकृष्टमतिक्रम्य श्रोत्रियं यः प्रयच्छति।
स तेन कर्मणा पापी दहत्यासप्तमं कुलम्॥६४॥

जो व्यक्ति निकटस्थ श्रोत्रिय ब्राह्मण को छोड़कर अन्य ब्राह्मण को दान करता है, वह पापी इस पापकर्म से अपनी सात पीढ़ियों को भस्म करता है।

यदि स्यादधिको विप्रः शीलविद्यादिभिः स्वयम्।
तस्मै यत्नेन दातव्यमतिक्रम्यापि सन्निधिम्॥६५॥

यदि दूर-स्थित ब्राह्मण निकटस्थ ब्राह्मण से विद्या-शील-गुणों से उससे अधिक हो तो समीपस्थ ब्राह्मण को छोड़कर भी उसको यत्नपूर्वक दान देना चाहिए।

योऽर्चितं प्रति गृह्णाति दद्यात्यर्चितमेव वा।
तावुभौ गच्छतः स्वर्गं नरकन्तु विपर्यये॥६६॥

इसलिए जो पूजित से दान लेता है अथवा पूजित को दान देता है, वे दोनों ही स्वर्ग में जाते हैं, उसके विपरीत होने पर नरक की प्राप्ति होती है।

न वार्यपि प्रयच्छेत नास्तिके हैतुकेऽपि च।
पाषण्डेषु च सर्वेषु नावेदविदि धर्मवित्॥६७॥

अतः धर्मवेत्ता को चाहिए कि वह नास्तिक, मिथ्या, तार्किक, पाखण्डी और वेदों के ज्ञान से रहित व्यक्ति को जल भी दान न करे।

अपूपञ्च हिरण्यञ्च गामश्वं पृथिवीं तिलान्।
अविद्वान्प्रतिगृह्णानो भस्मीभवति काष्ठवत्॥६८॥

यदि कोई अविद्वान् व्यक्ति मालपूआ, सुवर्ण, गाय, घोड़ा, भूमि और तिल का दान लेता है, तो वह लकड़ी की भाँति जलकर भस्म हो जाता है।

द्विजातिभ्यो धनं लिप्सेत्प्रशस्तेभ्यो द्विजोत्तमः।
अपि वा जातिमात्रेभ्यो न तु शूद्रात्कथञ्चन॥६९॥

ब्राह्मणश्रेष्ठ को योग्य द्विजातियों से ही धन की इच्छा करनी चाहिए। अथवा क्षत्रिय और वैश्य से भी दान माँगा जा सकता है परन्तु शूद्र से कभी भी दान नहीं लेना चाहिए।

वृत्तिसङ्कोचमन्विच्छेत् नेहेत धनविस्तरम्।
धनलोभे प्रसक्तस्तु ब्राह्मण्यादेव हीयते॥७०॥

प्रत्येक ब्राह्मण को अपनी आजीविका संकुचित करने की इच्छा करनी चाहिए। धन संचय की इच्छा न करे। धन के लोभ में प्रसक्त होकर वह ब्राह्मणत्व से नष्ट हो जाता है।

वेदानधीत्य सकलान् यज्ञांश्चावाप्य सर्वशः।
न तां गतिमवाप्नोति सङ्कोचाद्यामवाप्नुयात्॥७१॥

संपूर्ण वेदों का अध्ययन करके और समस्त यज्ञ सम्पन्न करके भी मनुष्य उस गति को प्राप्त नहीं करता जो संकोचवृत्ति रखने वाले को प्राप्त होती है।

प्रतिग्रहरुचिर्न स्याद्यात्रार्थन्तु धनं हरेत्।
स्थित्यर्थादधिकं गृह्णन् ब्राह्मणो यात्यधोगतिम्॥७२॥

दान ग्रहण करने में रुचि नहीं होनी चाहिए, जीवन यात्रा के लिए ही धन संग्रह करना चाहिए। आवश्यकता से अधिक धन संग्रह करने वाला ब्राह्मण अधोगति को प्राप्त होता है।

यस्तु स्याद्याचको नित्यं न स स्वर्गस्य भाजनम्।
उद्वेजयति भूतानि यथा चौरस्तथैव सः॥७३॥

सदा याचना करने वाला स्वर्ग का पात्र (अधिकारी) नहीं होता। वह तो चोर की तरह दूसरे प्राणियों को उद्विग्न करता रहता है।

गुरून् भृत्यांश्चोज्जिहीर्षन् अर्चिष्यन्देवतातिथीन्।
सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्न तु तृप्येत्स्वयन्ततः॥७४॥

गुरुजनों और सेवकों के जीवन यापन हेतु अथवा देवता और अतिथियों की पूजा अर्चना के हेतु सभी वर्णों से दान ग्रहण किया जाता है। किन्तु उससे स्वयं तृप्त नहीं होना चाहिए।

एवं गृहस्थो युक्तात्मा देवतातिथिपूजकः।
वर्तमानः संयतात्मा याति तत्परमम्पदम्॥७५॥

इस प्रकार देवता और अतिथि की पूजा करने वाले संयतात्मा गृहस्थ सावधानचित्त से जीवन निर्वाह करता है वह परम पद को प्राप्त करता है।

पुत्रे निधाय वा सर्वं गत्वारण्यन्तु तत्त्ववित्।
एकाकी विचरेन्नित्यमुदासीनः समाहितः॥७६॥

अथवा अपने पुत्र पर सब कुछ छोड़कर, तत्त्वज्ञ-व्यक्ति, वन में जाकर, उदासीन और एकाग्रचित्त होकर, एकाकी विचरण करे।

एष वः कथितो धर्मो गृहस्थानां द्विजोत्तमाः।
ज्ञात्वा तु तिष्ठेन्नियतं तथानुष्ठापयेद्द्विजान्॥७७॥

हे द्विजोत्तमो! मैंने आप लोगों को सम्पूर्ण गृहस्थधर्म कहा है। इसे जानकर नियमनिष्ठ होकर इसका पालन करें और सभी ब्राह्मणों से ऐसा आचरण करने के लिए उपदेश करें।

इति देवमनादिमेकमीशं
गृहधर्मेण समर्चयेदजस्रम्।
तमतीत्य स सर्वभूतयोनिं
प्रकृतिं वै स परं न याति जन्म॥७८॥

इस प्रकार गृहस्थधर्म के अनुसार जो अनादि देव, एक ईशान की अभ्यर्चना करता है, वह समस्त भूतों की

योनिरूप पराप्रकृति-माया को पार करके पुनः जन्म ग्रहण नहीं करता।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासु
षड्विंशोऽध्यायः॥ २६॥

सप्तविंशोऽध्यायः
(वानप्रस्थ धर्म)

व्यास उवाच

एवं गृहाश्रमे स्थित्वा द्वितीयं भागमायुषः।
वानप्रस्थाश्रमं गच्छेत्सदारः साग्निरेव वा॥ १॥

व्यास बोले— इस प्रकार, आयु के द्वितीय भाग (२५ से ५० वर्ष) को गृहस्थाश्रम में स्थित करके अग्नि और पत्नी को साथ रखकर (अग्रिम) वानप्रस्थाश्रम में जाना चाहिए।

निक्षिप्य भार्यां पुत्रेषु गच्छेद्वनमथापि वा।
दृष्ट्वापत्यस्य चापत्यं जर्जरीकृतविग्रहः॥ २॥

(वृद्धावस्था से) शरीर जर्जर होने पर पुत्रों के समीप भार्या को छोड़कर और अपने पुत्रों की सन्तान (नाती-पोते) को देखकर वनगमन करना चाहिए।

शुक्लपक्षस्य पूर्वाह्णे प्रशस्ते चोत्तरायणे।
गत्वारण्यं नियमवांस्तपः कुर्यात्समाहितः॥ ३॥

उत्तरायण में शुक्लपक्ष में किसी शुभ दिन के पूर्वाह्न में वन जाकर नियमनिष्ठ और समाहित चित्त होकर तप करना चाहिए।

फलमूलानि पूतानि नित्यमाहारमाहरेत्।
यथाहारो भवेत्तेन पूजयेत्पितृदेवताः॥ ४॥

प्रतिदिन आहाररूप में पवित्र फल-मूलों का संग्रह करें और पहले उन्हीं फल एवं कन्दमूलों से देवताओं और पितरों की भी पूजा करे।

पूजयित्वातिथीन्नित्यं स्नात्वा चाभ्यर्चयेत्सुरान्।
गृहादादाय चाश्नीयादष्टौ ग्रासान् समाहितः॥ ५॥

प्रतिदिन स्नान करके अतिथियों की सेवा करके देवताओं की पूजा करे। तत्पश्चात् एकाग्रचित्त होकर घर से लाकर केवल आठ कौर खाये।

जटां वै बिभृयान्नित्यं नखरोमाणि नोत्सृजेत्।
स्वाध्यायं सर्वदा कुर्यान्नियच्छेद्वाचमन्यतः॥ ६॥

(ऐसे वानप्रस्थ जीवन में) नित्य जटा धारण करे, दाढ़ी और नाखून न काटे, सदा वेदाध्ययन करे और अन्य विषय में मौन रहे।

अग्निहोत्रञ्च जुहुयात्पञ्च यज्ञान् समाचरेत्।
मुन्यन्नैर्विविधैर्वन्यैः शाकमूलफलेन वा॥ ७॥

उसे दोनों समय अग्निहोत्र और पंचयज्ञ का सम्पादन करना चाहिए। वे यज्ञादि मुनियों के अन्न और विविध वन्य— साग, मूल तथा फल से सम्पन्न करें।

चीरवासा भवेन्नित्यं स्नाति त्रिषवणं शुचिः।
सर्वभूतानुकम्पी स्यात् प्रतिग्रहविवर्जितः॥ ८॥

सदा वल्कल धारण करे। तीनों संध्याओं में स्नान करके पवित्र रहे और दान या प्रतिग्रह स्वीकार न करते हुए सभी प्राणियों के प्रति दयाभाव रखे।

स दर्शपौर्णमासेन यजेत नियतं द्विजः।
ऋक्षेष्वाग्रयणे चैव चातुर्मास्यानि चाहरेत्॥ ९॥

वह द्विज नियमितरूप से दर्शयाग तथा पौर्णमास यज्ञ करे तथा नवशस्येष्टि (नूतन धान्य से होने वाला यज्ञ) और चातुर्मास्य याग भी सम्पादित करे।

उत्तरायणञ्च क्रमशो दक्षस्यायनमेव च।
वासन्तैः शारदैर्मेध्यैर्मुन्यन्नैः स्वयमाहृतैः॥ १०॥

वसन्त और शरद् ऋतु में उत्पन्न होने वाले अन्नों को स्वयं एकत्रित करके नियमानुसार उत्तरायण और दक्षिणायन यज्ञ सम्पन्न करे।

पुरोडाशांश्चरूंश्चैव द्विविधं निर्वपेत्पृथक्।
देवताभ्यश्च तद्धुत्वा वन्यं मेध्यतरं हविः॥ ११॥

पुरोडाश और चरु दोनों को पकाकर विधि अनुसार पृथक्-पृथक् तैयार करके, उस अतिशय पवित्र वनधान्य को देवताओं को समर्पित करने के पश्चात् स्वयं ग्रहण करे।

शेषं समुपभुञ्जीत लवणञ्च स्वयं कृतम्।
वर्जयेन्मधुमांसानि भौमानि कवचानि च॥ १२॥
भूस्तृणं शिशुकञ्चैव श्लेष्मातकफलानि च।
न फालकृष्टमश्नीयादुत्सृष्टमपि केनचित्॥ १३॥

भोजन में स्वयं तैयार किया हुआ नमक प्रयोग करना चाहिए। वानप्रस्थी को शहद, मांस, भूमि से उगने वाले कुकुरमुत्ते, भूस्तृण (नामक घास) और चकोतरा नहीं खाना चाहिए। हल से जोती हुई भूमि में उत्पन्न अन्नादि और किसी की त्यागी हुई वस्तु नहीं खानी चाहिए।

न ग्रामजातान्यार्तोऽपि पुष्पाणि च फलानि च।
श्रावणेनैव विधिना वह्निं परिचरेत्सदा॥ १४॥

भूख से पीड़ित होने पर सह गाँव में उत्पन्न फूल या फल ग्रहण न करे और श्रावणी विधि के अनुसार सदैव अग्नि की परिचर्या करे।

न द्रुह्येत्सर्वभूतानि निर्द्वन्द्वो निर्भयो भवेत्।
न नक्तञ्चैवमश्नीयात् रात्रौ ध्यानपरो भवेत्॥ १५॥

सभी प्राणियों के साथ द्रोह नहीं रखना चाहिए। सदैव राग-द्वेषादि द्वन्द्वों से मुक्त और निर्भय रहना चाहिए। रात्रि को भोजन न करे और सदा ध्यान तत्पर रहना चाहिए।

जितेन्द्रियो जितक्रोधस्तत्त्वज्ञानविचिन्तकः।
ब्रह्मचारी भवेन्नित्यं न पत्नीमपि संश्रयेत्॥ १६॥

जितेन्द्रिय, जितक्रोध और तत्त्वज्ञान में चिन्तन करते हुए नित्य ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे तथा पत्नी के साथ भी सहवास न करे।

यस्तु पत्न्या वनं गत्वा मैथुनं कामतश्चरेत्।
तद्व्रतं तस्य लुप्येत प्रायश्चित्तीयते द्विजः॥ १७॥

जो व्यक्ति वन में जाकर कामासक्त होकर पत्नी के साथ समागम करता है, उसका व्रत भंग हो जाता है। ऐसे द्विज प्रायश्चित्त के योग्य होता है।

तत्र यो जायते गर्भो न संस्पृश्यो भवेद्द्विजः।
न च वेदेऽधिकारोऽस्य तद्वंशेऽप्येवमेव हि॥ १८॥

उस वानप्रस्थाश्रम में जो उत्पन्न सन्तान हो, तो द्विज को उसका स्पर्श नहीं करना चाहिए। उस बालक का तथा उसके वंशजों का वेदाध्ययन में अधिकार नहीं रहता।

अधःशयीत नियतं सावित्रीजपतत्परः।
शरण्यः सर्वभूतानां संविभागरतः सदा॥ १९॥

नित्य भूमि पर सोना चाहिए। गायत्री का जप करने में सदा तत्पर रहना चाहिए। सभी प्राणियों को शरण देने का प्रयास करना चाहिए और सदैव (अतिथि आदि का) भाग देने में रत होना चाहिए।

परिवादं मृषावादं निद्रालस्यं विवर्जयेत्।
एकाग्निरनिकेतः स्यात्प्रोक्षितां भूमिमाश्रयेत्॥ २०॥

किसी की निन्दा या वादविवाद, असत्य भाषण, निद्रा और आलस्य का त्याग करना चाहिए। एकाग्नि होना, घर के बिना रहना और जलसिंचित स्वच्छ भूमि पर आश्रय लेना चाहिए।

मृगैः सह चरेद्वा यस्तैः सहैव च संविशेत्।
शिलायां वा शर्करायां शयीत सुसमाहितः॥ २१॥

वहां अरण्य में मृगों के साथ घूमना, उनके साथ सोना और पत्थर या रेती पर एकाग्रचित्त होकर शयन करना चाहिए।

सद्यःप्रक्षालको वा स्यान्माससञ्चयकोऽपि वा।
षण्मासनिचयो वा स्यात् समानिचय एव च॥ २२॥

तत्काल वस्त्र धोकर पहनना चाहिए। एक मास तक खर्च करने योग्य फलादि संग्रह करे अथवा छः महीने या एक साल तक का नीवारादि अन्न संग्रह किया जा सकता है।

त्यजेदाश्वयुजे मासि संपन्नं पूर्वचिन्तितम्।
जीर्णानि चैव वासांसि शाकमूलफलानि च॥ २३॥

आश्विन मास में उत्पन्न तथा पूर्व संचित नीवारादि से बचे हुए अंशों, जीर्ण वस्त्र और शाक-फल-मूलादि का त्याग करना चाहिए।

दन्तोलूखलिको वा स्यात्कापोतीं वृत्तिमाश्रयेत्।
अश्मकुट्टो भवेद्वापि कालपक्वभुगेव च॥ २४॥

दाँतों को ही ओखली बनावे अर्थात् अन्नादि सब दाँतों से ही चबाकर खाना चाहिए। कपोत की तरह चुगकर खाना नहीं चाहिए अथवा पत्थर से चूर्ण बनाकर भोजन करना चाहिए। समय पर पकी हुई वस्तु खानी चाहिए।

नक्तं चान्नं समश्नीयाद्दिवा चाहृत्य शक्तितः।
चतुर्थकालिको वा स्यात्स्याद्वा चाष्टमकालिकः॥ २५॥

दिन में अपने सामर्थ्यनुसार अन्नादि जुटाकर रात्रि को भोजन करना चाहिए अथवा चौथे काल में अर्थात् एक दिन उपवास रहकर दूसरे दिन रात को अथवा तीन दिन उपवास रहकर चौथे दिन रात को भोजन करना चाहिए।

चान्द्रायणविधानैर्वा शुक्ले कृष्णे च वर्तयेत्।
पक्षे पक्षे समश्नीयाद्द्विजाग्रान् कथितान् सकृत्॥ २६॥

शुक्ल और कृष्ण पक्ष में पृथक्-पृथक् चान्द्रायण व्रत की विधि के अनुसार भोजन करना चाहिए अथवा पूर्णिमा और अमावस्या के दिन उबाले हुए जौ के पिण्ड को खाना चाहिए।

पुष्पमूलफलैर्वापि केवलैर्वर्तयेत्सदा।
स्वाभाविकैः स्वयं शीर्णैर्वैखानसमते स्थितः॥ २७॥

अथवा वैखानस मुनियों के व्रत को आश्रय करके स्वाभाविक रूप से पक कर भूमि पर गिर हुए फल, मूल पुष्पादि से ही केवल निर्वाह करना चाहिए।

भूमौ वा परिवर्त्तेत तिष्ठेद्वा प्रपदैर्दिनम्।
स्थानासनाभ्यां विहरेन्न क्वचिद्धैर्यमुत्सृजेत्॥ २८॥

भूमि पर लेटते रहे अथवा पंजों पर खड़े रहकर दिवस व्यतीत करे। थोड़ी देर खड़े रहे और थोड़ी देर बैठे। किसी भी समय धैर्य का त्याग न करें।

ग्रीष्मे पंचतपास्तद्वद्वर्षास्वभ्रावकाशकः।
आर्द्रवासास्तु हेमन्ते क्रमशो वर्द्धयंस्तपः॥ २९॥

ग्रीष्म ऋतु में पांच प्रकार की अग्नियों का सेवन करते हुए, वर्षाकाल में खुले आकाश में रहते हुए और हेमन्त (शीतकाल) में गीला वस्त्र पहनकर क्रमशः तपस्या में वृद्धि करनी चाहिए।

उपस्पृश्य त्रिषवणं पितृदेवांश्च तर्पयेत्।
एकपादेन तिष्ठेत मरीचीन्वा पिबेत्तदा॥ ३०॥

प्रतिदिन तीनों काल में स्नान करके पितरों और देवताओं को तर्पण करना चाहिए। एक पैर पर खड़ा रहे और सदा (सूर्य की) किरणों का मुख से सेवन करें।

पंचाग्निर्धूमपो वा स्यादुष्मपः सोमपोऽथवा।
पयः पिबेच्छुक्लपक्षे कृष्णपक्षे च गोमयम्॥ ३१॥

पंचाग्नि तप्त होकर गर्म धुआँ पीना चाहिए। ऊष्मपायी और सोमपायी होना चाहिए। शुक्लपक्ष में दूध और कृष्णपक्ष में गोबर का सेवन करना चाहिए।

शीर्णपर्णाशनो वा स्यात्कृच्छ्रैर्वा वर्त्तयेत्सदा।
योगाभ्यासरतश्चैव रुद्राध्यायी भवेत्सदा॥ ३२॥
अथर्वशिरसोऽध्येता वेदान्ताभ्यासतत्परः।
यमान् सेवेत सततं नियमांश्चाप्यतन्द्रितः॥ ३३॥

पेड़ से गिरे सूखे पत्तों को खाकर रहना चाहिए अथवा सदैव प्राजापत्यादि व्रत, योगाभ्यास, रुद्राध्याय का पाठ, अथर्ववेद के शिरोभाग का अध्ययन और वेदान्त के अभ्यास में लगा रहना चाहिए। सदा संयमी होकर यम-नियमों का सेवन करना चाहिए।

कृष्णाजिनः सोत्तरीयः शुक्लयज्ञोपवीतवान्।
अथ चाग्नीन् समारोप्य स्वात्मनि ध्यानतत्परः॥ ३४॥
अनग्निरनिकेतः स्यान्मुनिर्मोक्षपरो भवेत्।

उत्तरीय, काला मृगचर्म और श्वेत यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए। अन्त में आत्मा में अग्नि को आरोपित करके ध्यानतत्पर रहना चाहिए। इस प्रकार अग्नि रहित तथा नियतस्थान रहित होकर मोक्ष के प्रति तत्पर होना चाहिए।

तापसेष्वेव विप्रेषु यात्रिकं भैक्ष्यमाहरेत्॥ ३५॥
गृहमेधिषु चान्येषु द्विजेषु वनवासिषु।
ग्रामादाहृत्य चाश्नीयादष्टौ ग्रासान्वने वसन्॥ ३६॥
प्रतिगृह्य पुटेनैव पाणिना शकलेन वा।

अपनी जीवन यात्रा हेतु तपस्वी ब्राह्मणों के यहां से आवश्यक भिक्षा लानी चाहिए। अथवा यदि अन्य वनवासी गृहस्थ द्विजातियों से भी भिक्षा माँगी जा सकती है। यदि ऐसी भिक्षा भी न मिले तो किसी एक ग्राम से पत्ते के दोने, मिट्टी के बर्तन या अँजली में भिक्षा लाकर, वन में रहकर सिर्फ आठ कौर भोजन करना चाहिए।

विविधाश्चोपनिषद आत्मसंसिद्धये जपेत्॥ ३७॥
विद्याविशेषान् सावित्रीं रुद्राध्यायं तथैव च।
महाप्रास्थानिकं चासौ कुर्यादनशनन्तु वा।
अग्निप्रवेशमन्यद्वा ब्रह्मार्पणविधौ स्थितः॥ ३८॥

आत्मशुद्धि के लिए विभिन्न उपनिषदों का पाठ करना चाहिए और विशेष विद्याएँ, सावित्री तथा रुद्राध्याय का पाठ भी करना चाहिए। तत्पश्चात् अन्त में शरीर को ईश्वरार्पण करने की विधि में स्थित होकर अर्थात् ब्रह्मार्पण होकर अनशन या अग्नि प्रवेशरूप महाप्रास्थानिक कार्य (मृत्यु का उपाय) या अन्य उपाय करना चाहिए।

येन सम्यागिममाश्रमं शिवं संश्रयन्त्यशिवपुञ्जनाशनम्।
ते विशन्ति पदमैश्वरं परं यान्ति यत्र गतमस्य संस्थिते॥ ३९

जो लोग इस (वानप्रस्थ) आश्रम में पापों के समूह का नाश करने वाले भगवान् शिव का आश्रम सम्यक् रूप से ग्रहण करते हैं वे उस ईश्वरीय पद को प्राप्त कर स्वर्ग में जाकर स्थित हो जाते हैं।[1]

इति श्रीकूर्मपुराणे उपविभागे व्यासगीतासु वानप्रस्थाश्रमधर्मो नाम सप्तविंशोऽध्यायः॥ २७॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

(संन्यासधर्म कथन)

व्यास उवाच

एवं वनाश्रमे स्थित्वा तृतीयं भागमायुषः।
चतुर्थमायुषो भागं संन्यासेन नयेत् क्रमात्॥ १॥

1. कुछ पुस्तकों में यह श्लोक नहीं मिलता है।

व्यासजी ने कहा— वानप्रस्थाश्रम में इस प्रकार रहते हुए, आयु का तीसरा भाग समाप्तकर आयु के चौथे भाग में संन्यास धर्म का पालन करना चाहिए।

अग्नीनात्मनि संस्थाप्य द्विजः प्रव्रजितो भवेत्।
योगाभ्यासरतः शान्तो ब्रह्मविद्यापरायणः॥ २॥

योगाभ्यास में संलग्न रहने वाले शान्तचित्त, ब्रह्मविद्या-परायण ब्राह्मण को आत्मा में अग्नि की स्थापना कर प्रव्रज्या ग्रहण करनी चाहिए।

यदा मनसि सञ्जातं वैतृष्ण्यं सर्ववस्तुषु।
तदा संन्यासमिच्छन्ति पतितः स्याद्विपर्यये॥ ३॥

जब मन में सब वस्तुओं के प्रति तृष्णा समाप्त हो जाए, तभी संन्यास लेना चाहिए। अन्यथा इसके विपरीत होने पर पतित होना पड़ता है।

प्राजापत्यां निरूप्येष्टिमाग्नेयीमथवा पुनः।
दान्तःपक्वकषायोऽसौ ब्रह्माश्रममुपाश्रयेत्॥ ४॥

सर्वप्रथम इन्द्रियों को वश में करके, प्राजापत्य या आग्नेय यज्ञ करना चाहिए। फिर कषाय— राग-द्वेषादि मल रहित होकर संन्यासाश्रम में प्रवेश करना चाहिए।

ज्ञानसंन्यासिनः केचिद्वेदसंन्यासिनः परे।
कर्मसंन्यासिनस्त्वन्ये त्रिविधाः परिकीर्त्तिताः॥ ५॥

ज्ञान संन्यासी, वेद संन्यासी और कर्म संन्यासी के भेद से संन्यासी तीन प्रकार के कहे गये हैं।

यः सर्वसङ्गनिर्मुक्तो निर्द्वन्द्वश्चैव निर्भयः।
प्रोच्यते ज्ञानसंन्यासी स्वात्मन्येवं व्यवस्थितः॥ ६॥

जिनको किसी विषय में आसक्ति न हो, द्वन्द्वों से मुक्त भयरहित और आत्मा के प्रति चिन्तनशील हो, वे ज्ञानसंन्यासी कहलाते हैं।

वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः।
प्रोच्यते वेदसंन्यासी मुमुक्षुर्विजितेन्द्रियः॥ ७॥

जो द्वन्द्व और दान से मुक्त रहकर नित्य वेदाभ्यास करते हैं, मोक्षाभिलाषी और इन्द्रियों को जीतने वाले वे लोग वेदसंन्यासी कहलाते हैं।

यस्त्वग्नीनात्मसात्कृत्वा ब्रह्मार्पणपरो द्विजः।
स ज्ञेयः कर्मसंन्यासी महायज्ञपरायणः॥ ८॥

जो ब्राह्मण सभी अग्नियों को आत्मसात् करके ब्रह्म को सर्वस्व अर्पित कर देते हैं, महायज्ञ में परायण वे कर्मसंन्यासी के नाम से जाने जाते हैं।

त्रयाणामपि चैतेषां ज्ञानी त्वभ्यधिको मतः।
न तस्य विद्यते कार्यं न लिङ्गं वा विपश्चितः॥ ९॥

इन तीन प्रकार के संन्यासियों में जो ज्ञानसंन्यासी कहे जाते हैं वे ही श्रेष्ठतम होते हैं। ऐसे संन्यासियों का कोई कर्म, चिह्न और परिचय नहीं होता।

निर्ममो निर्भयः शान्तो निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः।
जीर्णकौपीनवासाः स्यान्नग्नो वा ध्यानतत्परः॥ १०॥

इन्हें ममता रहित, निर्भय, शान्त, द्वन्द्व और दान से मुक्त रहकर, जीर्ण कौपीन या वस्त्र धारण करके अथवा नग्न होकर ध्यान में लीन होना चाहिए।

ब्रह्मचारी मिताहारी ग्रामादन्नं समाहरेत्।
अध्यात्ममतिरासीत निरपेक्षो निरामिषः॥ ११॥

ब्रह्मचारी को सीमित भोजन ग्रहण करना चाहिए और गाँव से अन्न संग्रह करके लाना चाहिए। सदैव ब्रह्मचिन्ता में लीन रहना, निःस्पृह होकर मन में किसी विषय की इच्छा नहीं रखनी चाहिए।

आत्मनैव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह।
नाभिनन्देह मरणं नाभिनन्देत जीवितम्॥ १२॥

इस संसार में आत्मा की ही सहायता से (अर्थात् एकाकी) मोक्ष की इच्छा करते हुए विचरना चाहिए। न तो मृत्यु से प्रसन्न होना चाहिए और न जन्म प्राप्त करने से।

कालमेव प्रतीक्षेत निदेशम्भृतको यथा।
नाध्येतव्यं न वक्तव्यं श्रोतव्यं न कदाचन॥ १३॥
एवं ज्ञात्वा परो योगी ब्रह्मभूयाय कल्पते।

जैसे सेवक स्वामी के आदेश की प्रतीक्षा करता रहता है, उसी प्रकार केवल काल या मृत्यु की प्रतीक्षा करनी चाहिए। वेदों का अध्ययन, उपदेश और श्रवण नहीं करना चाहिए— ऐसा ज्ञान रखकर तत्पर रहने वाले संन्यासी, ब्रह्मत्व प्राप्त करते हैं अर्थात् उन्हें मुक्ति मिल जाती है।

एकवासाथवा विद्वान् कौपीनाच्छादनस्तथा॥ १४॥
मुण्डी शिखी वाथ भवेत्त्रिदण्डी निष्परिग्रहः।
काषायवासाः सततन्ध्यानयोगपरायणः॥ १५॥
ग्रामान्ते वृक्षमूले वा वसेद्देवालयेऽपि वा।
समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः॥ १६॥

विद्वान् संन्यासी एकाकी रहे या एकवस्त्री अथवा कौपीन धारण करे। मस्तक में मुंडन कराकर एक शिखा रखे। गृहत्यागी होकर त्रिदण्ड (वाक्, मन और कामरूपी दण्ड)

धारण करें। काषाय वस्त्र पहनकर, गाँव की सीमा पर किसी पेड़ के नीचे या मन्दिर में बैठकर, ध्यान या योग की साधना करें। शत्रु और मित्र, मान और अपमान में समभाव रखें।

भैक्ष्येण वर्त्तयेन्नित्यं नैकान्नादी भवेत्क्वचित्।
यस्तु मोहेन वान्यस्मादेकान्नादी भवेद्यतिः॥१७॥
न तस्य निष्कृतिः काचिद्धर्मशास्त्रेषु कथ्यते।

जो संन्यासी मोहवश या किसी अन्य कारण से प्रतिदिन एक ही व्यक्ति से अन्न माँगकर भोजन करता है, उसके इस पाप का प्रायश्चित्त धर्मशास्त्र में कहीं नहीं है।

रागद्वेषविमुक्तात्मा: समलोष्टाश्मकाञ्चनः॥१८॥
प्राणिहिंसानिवृत्तश्च मौनी स्यात्सर्वनिःस्पृहः।
दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत्।
शास्त्रपूतां वदेद्वाणीं मनःपूतं समाचरेत्॥१९॥

संन्यासी को रागद्वेष से विमुख होकर पत्थर के टुकड़े और स्वर्ण को एक समान समझना चाहिए। प्राणि-हिंसा से निवृत्त और निःस्पृह होकर, मौन धारण कर लेना चाहिए। मार्ग को देख देखकर पैर रखना और कपड़े से छानकर, जल पीना चाहिए। शास्त्रों से पवित्र की गई वाणी बोलना और मन को पवित्र करने वाले कार्यों को करना चाहिए।

नैकत्र निवसेद्देशे वर्षाभ्योऽन्यत्र भिक्षुकः।
स्नानशौचरतो नित्यं कमण्डलुकरः शुचिः॥२०॥

बरसात को छोड़ अन्य ऋतुओं में भिक्षुक को एक ही स्थान पर निवास नहीं करना चाहिए। मात्र कमण्डल धारण करके, पवित्र रहकर सदैव स्नान और शुद्धता में प्रवृत्त रहना चाहिए।

ब्रह्मचर्यरतो नित्यं वनवासरतो भवेत्।
मोक्षशास्त्रेषु निरतो ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः॥२१॥
दम्भाहङ्कारनिर्मुक्तो निन्दापैशुन्यवर्जितः।
आत्मज्ञानगुणोपेतो यतिर्मोक्षमवाप्नुयात्॥२२॥

सदा ब्रह्मचारी होकर वनवासी होना चाहिए। मोक्षशास्त्र में रत, ब्रह्मचारी इन्द्रियजित्, दम्भ तथा अहंकार से मुक्त, निन्दा और कुटिलता से परे, आत्मज्ञान के गुणों से युक्त संन्यासी मोक्ष प्राप्त करते हैं।

अभ्यसेत्सततं वेदं प्रणवाख्यं सनातनम्।
स्नात्वाचम्य विधानेन शुचिर्देवालयादिषु॥२३॥

विधिवत् स्नान और आचमन करके, पवित्र होकर, देवालयादि में निरन्तर ज्ञानरूपी सनातन प्रणव का जप करना चाहिए।

यज्ञोपवीती शान्तात्मा कुशपाणिः समाहितः।
धौतकाषायवसनो भस्मच्छन्नतनूरुहः॥२४॥
अधियज्ञं ब्रह्म जपेदाधिदैविकमेव वा।
आध्यात्मिकं च सततं वेदान्ताभिहितं च यत्॥२५॥

यज्ञोपवीत धारण करके, कुशा हाथ में लेकर, आत्मा को शान्त करके, धुला हुआ भगवा वस्त्र पहनकर और देह के सारे रोमों को भस्म से ढँककर एकाग्रचित्त से, यज्ञ सम्बन्धी और देवता विषयक तथा अध्यात्म-सम्बन्धित वेदान्तशास्त्र कथित श्रुति-समूहों का निरन्तर पाठ करना चाहिए।

पुत्रेषु चाथ निवसन् ब्रह्मचारी यतिर्मुनिः।
वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं स याति परमाङ्गतिम्॥२६॥

जो ब्रह्मचारी और मौनव्रतावलम्बी संन्यासी पर्णशाला में रहकर प्रतिदिन वेदमन्त्रों का अभ्यास करता है, वह उत्कृष्ट गति प्राप्त करता है।

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं तपः परम्।
क्षमा दया च सन्तोषो व्रतान्यस्य विशेषतः॥२७॥

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, क्षमा, दया और सन्तोषादि व्रतों का विशेषरूप से पालन करना संन्यासी का कर्त्तव्य है।

वेदान्तज्ञाननिष्ठो वा पञ्चयज्ञान् समाहितः।
ज्ञानध्यानसमायुक्तो भिक्षार्थे नैव तेन हि॥२८॥

संन्यासी को वेदान्तशास्त्र का ज्ञाता होना चाहिए अथवा भिक्षा में प्राप्त अन्न के द्वारा, ज्ञान और ध्यान युक्त होकर एकाग्र मन से पंचमहायज्ञ सम्पन्न करना चाहिए।

होममन्त्राञ्जपेन्नित्यं काले काले समाहितः।
स्वाध्यायञ्चान्वहं कुर्यात्सावित्रीं सन्ध्ययोर्जपेत्॥२९॥

तीनों काल में एकाग्रचित्त से हवन के मन्त्रों का पाठ करना चाहिए और प्रतिदिन वेदों का अध्ययन तथा दोनों संध्या में गायत्री का जप करना चाहिए।

ततो ध्यायीत तं देवमेकान्ते परमेश्वरम्।
एकान्ते वर्जयेन्नित्यं काम क्रोधं परिग्रहम्॥३०॥

तदनन्तर एकान्त में परमेश्वर का ध्यान करना चाहिए तथा काम, क्रोध और दान का पूर्णरूपेण त्याग करना चाहिए।

एकवासा द्विवासा वा शिखी यज्ञोपवीतवान्।
कमण्डलुकरो विद्वान् त्रिदण्डी याति तत्परम्॥३१॥

एक या दो वस्त्रधारी, शिखा और यज्ञोपवीतधारी, कमण्डलु और त्रिदण्ड धारण करने वाला विद्वान् संन्यासी ही परम पद प्राप्त करता है।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासु
यतिधर्मेऽष्टाविंशोऽध्याय:॥२८॥

एकोनत्रिंशोऽध्याय:

(यतिधर्म कथन)

व्यास उवाच

एवं स्वाश्रमनिष्ठानां यतीनां नियतात्मनाम्।
भैक्ष्येण वर्तनं प्रोक्तं फलमूलैरथापि वा॥१॥

व्यासजी बोले— इस प्रकार अपने आश्रम के प्रति निष्ठावान् और एकाग्रचित्त यतियों का जीवन निर्वाह भिक्षा में प्राप्त अन्न या फल-फूल से कहा गया है।

पुन: संन्यासी धर्म

एककालं चरेद्भैक्षं न प्रसज्येत विस्तरे।
भैक्ष्यप्रसक्तो हि यतिर्विषयेष्वपि सज्जति॥२॥

भिक्षा के लिए भी संन्यासी को एक समय गृहस्थ के यहाँ जाना चाहिए और अधिक लोगों के पास न जाय, क्योंकि भिक्षा के प्रति अधिक आसक्ति होने से विषय वस्तुओं के प्रति भी आसक्ति हो जाती है।

सप्तागारांश्चरेद्भैक्षमलाभे तु पुनश्चरेत्।
प्रक्षाल्य पात्रे भुञ्जीत अद्भि: प्रक्षालयेत्पुन:॥३॥
अथवाऽन्यदुपादाय पात्रे भुञ्जीत नित्यश:।
भुक्त्वा तत्संमृजेत्पात्रं यात्रामात्रमलोलुप:॥४॥

केवल सात घरों से ही भिक्षा माँगनी चाहिए। ऐसा करने पर भी यदि पूरी भिक्षा न मिले तो पुन: एक बार भिक्षा माँगी जा सकती है। पात्र को धोकर, उसमें भोजन करना चाहिए और भोजन के बाद पुन: धो लेना चाहिए अथवा नया पात्र लेकर उसमें भोजन करना चाहिए। परन्तु पात्र को धोकर काम चलाना हो तो लोभ किए बिना भोजन करना चाहिए।

विधूमे सन्नमुसले व्यङ्गारे भुक्तवज्जने।
वृत्ते शरावसम्पाते भिक्षां नित्यं यतिश्चरेत्॥५॥

गृहस्थ की रसोई से धुआँ बन्द हो जाए, ओखली और मूसल का काम समाप्त हो जाए, अग्नि शांत हो जाए, घर के सारे लोग भोजन कर चुके हों, तब संन्यासी गोल शराव में भिक्षा लेने घूमना चाहिए।

गोदोहमात्रं तिष्ठेत कालम्भिक्षुरधोमुख:।
भिक्षेत्युक्त्वा सकृत्तूष्णीमश्नीयाद्वाग्यत: शुचि:॥६॥

'भिक्षा दो' इतना कहकर भिक्षुक गाय दुहने में लगने वाले समय तक, सिर झुका कर खड़ा रहे और मौन रहकर पवित्र भाव से एक बार भोजन करके सन्तुष्ट हो।

प्रक्षाल्य पाणी पादौ च समाचम्य यथाविधि।
आदित्ये दर्शयित्वान्नं भुञ्जीत प्राङ्मुख: शुचि:॥७॥

हाथ पैर धोकर, नियमानुसार आचमन करके सूर्य को अन्न दिखाकर, पूर्वाभिमुख और पवित्र होकर भोजन करना चाहिए।

हुत्वा प्राणाहुती: पञ्च ग्रासानष्टौ समाहित:।
आचम्य देवं ब्रह्माणं ध्यायीत परमेश्वरम्॥८॥

पहले 'प्राणाय स्वाहा' मन्त्र का उच्चारण करके, पंच प्राणाहुतियाँ देकर, एकाग्रचित से आठ ग्रास भोजन करें और बाद में आचमन करके, सर्वव्यापक देव परमेश्वर का ध्यान करना चाहिए।

अलाबुं दारुपात्रं च मृण्मयं वैणवं तत:।
चत्वार्येतानि पात्राणि मनुराह प्रजापति:॥९॥

प्रजापति मनु ने, संन्यासियों के लिए लौकी, लकड़ी, मिट्टी और बाँस से बने चार प्रकार के पात्र बतलाए हैं।

प्राग्रात्रे पररात्रे च मध्यरात्रे तथैव च।
सन्ध्यास्वग्निविशेषेण चिन्तयेन्नित्यमीश्वरम्॥१०॥

रात्रि के प्रथम, मध्यम और अन्तिम प्रहर तथा संध्या समय अग्नि विशेष के द्वारा ईश्वर का चिन्तन करना चाहिए।

कृत्वा हृत्पद्मनिलये विश्वाख्यं विश्वसम्भवम्।
आत्मानं सर्वभूतानां परस्तात्तमस: स्थितम्॥११॥
सर्वस्याधारभूतानामानन्दं ज्योतिरव्ययम्।
प्रधानपुरुषातीतमाकाशकुहरं शिवम्॥१२॥

विश्वरूप फिर भी विश्व के कारण स्वरूप सर्वभूतात्मा, तमोगुण में विद्यमान फिर भी तमोगुणातीत, सभी प्राणियों के आधार, अव्यक्त, आनन्दमय, अनश्वर, प्रकृति पुरुष से परे, आकाशरूप, मंगलमय ज्योति का पहले हृदयकमल में ध्यान करना चाहिए।

तदन्तः सर्वभावानामीश्वरं ब्रह्मरूपिणम्।
ध्यायेदनादिमध्यान्तमानन्दादिगुणालयम्॥ १३॥
महान्तं पुरुषं ब्रह्म ब्रह्माणं सत्यमव्ययम्।
तरुणादित्यसंकाशं महेशं विश्वरूपिणम्॥ १४॥

तत्पश्चात् उस ज्योति के बीज सर्वलोकेश्वर ब्रह्मस्वरूप आदि, मध्य, अन्त रहित, आनन्दादि गुणों के आलयरूप, महापुरुष अनश्वर, सत्यस्वरूप, सर्वव्यापी, परम ब्रह्म, बालसूर्य के समान विश्वरूपी भगवान् महेश का ध्यान करना चाहिए।

ओङ्कारेणाथ चात्मानं संस्थाप्य परमात्मनि।
आकाशे देवमीशानं ध्यायीताकाशमध्यगम्॥ १५॥

आकाशरूप परमात्मा में ओंकार के द्वारा आत्मा को स्थापित करके आकाश के मध्य स्थित देव ईशान (अर्थात् शंकर भगवान्) का ध्यान करना चाहिए।

कारणं सर्वभावानामानन्दैकसमाश्रयम्।
पुराणं पुरुषं शुभ्रं ध्यायन्मुच्येत बन्धनात्॥ १६॥

सभी भावपदार्थों के कारण, आनन्दैकरूप, शुभ्र, पुराण पुरुष का ध्यान करने से, सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

यद्वा गुहायां प्रकृतं जगत्संमोहनालये।
विचिन्त्य परमं व्योम सर्वभूतैककारणम्॥ १७॥
जीवनं सर्वभूतानां यत्र लोकः प्रलीयते।
आनन्दं ब्रह्मणः सूक्ष्मं यत्पश्यन्ति मुमुक्षवः॥ १८॥
तन्मध्ये निहितं ब्रह्म केवलं ज्ञानलक्षणम्।
अनन्तं सत्यमीशानं विचिन्त्यासीत संयतः॥ १९॥

अथवा संसार सम्मोहन के आलयरूपी मूलप्रकृतिरूप गुहा के मध्य स्थित, सभी प्राणियों के एकमात्र कारण, उनका जीवन, उनका लयस्थान— ब्रह्मानन्दस्वरूप और जिसे मोक्ष की कामना करने वाले लोग सूक्ष्मरूप से देख सकते हैं, ऐसे परम व्योमाकार का चिन्तन करके, उसके (व्योमाकार के) बीच स्थित केवल ज्ञानरूप, अनन्त, सत्य और सर्वेश्वर परब्रह्म का चिन्तन करते हुए एकाग्रचित्त होकर स्थित रहना चाहिए।

गुह्याद्गुह्यतमं ज्ञानं यतीनामेतदीरितम्।
योऽनुतिष्ठेन्महेशेन सोऽश्नुते योगमैश्वरम्॥ २०॥

मैंने, संन्यासियों के लिए, अत्यन्त गुह्यतम ज्ञान की बातें बताई। जो व्यक्ति सदा इसका पालन करेगा वह ऐश्वर्य योग प्राप्त करेगा।

तस्माद्ध्यानरतो नित्यमात्मविद्यापरायणः।
ज्ञानं समाश्रयेद्ब्राह्मं येन मुच्येत बन्धनात्॥ २१॥

इसलिए ध्यानमग्न और सदा आत्मविद्या परायण होकर ब्रह्मसम्बन्धी ज्ञान का आश्रय करना चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य बन्धनमुक्त हो जाता है।

गत्वा पृथक् स्वमात्मानं सर्वस्मादेव केवलम्।
आनन्दमजरं ज्ञानं ध्यायीत च पुनः परम्॥ २२॥

अपनी आत्मा को सब पदार्थों से भिन्न जानकर उसे अद्वितीय, आनन्दस्वरूप, जरारहित और श्रेष्ठज्ञानरूप में ध्यान करना चाहिए।

यस्माद्भवन्ति भूतानि यद्गत्वा नेह जायते।
स तस्मादीश्वरो देवः परस्माद्योऽधितिष्ठति॥ २३॥

जिनसे ये भूत उत्पन्न होते हैं, जिसे पाकर लोक पुनः जन्म नहीं लेते, उनसे परे जो विद्यमान है, वही देवताओं के देवता ईश्वर हैं।

यदन्तरे तद्गगनं शाश्वतं शिवमुच्यते।
यदाहुस्तत्परो यः स्यात्स देवस्तु महेश्वरः॥ २४॥

जिसके अन्तःकरण में वह प्रसिद्ध आकाश स्थित है, वह शाश्वत शिव कल्याणकारी कहे गये हैं और जो उससे परे कहा गया है, वही देव महेश्वर हैं।

व्रतानि यानि भिक्षूणां तथैवोपव्रतानि च।
एकैकातिक्रमे तेषां प्रायश्चित्तं विधीयते॥ २५॥

भिक्षुओं के लिए जो भी व्रत या उपव्रत करणीय हैं, उनमें से किसका पालन न करने से कौन सा प्रायश्चित्त करना है, इस विषय में बताया जा रहा है।

उपेत्य तु स्त्रियं कामात्कृच्छ्रं संयतमानसः।
प्राणायामसमायुक्तः कुर्यात्सान्तपनं शुचिः॥ २६॥
ततश्चरेत नियमात् कृच्छ्रं संयतमानसः।
पुनराश्रममागम्य चरेद्भिक्षुरतन्द्रितः॥ २७॥

संन्यासी होने पर भी काम के वशीभूत होकर जो स्त्री समागम करता है, तो एकाग्रचित्तता से शुद्ध होकर (पुनः पाप न हो, इसलिए) 'सान्तपन' नामक व्रत प्रायश्चित्तरूप में करना चाहिए। तत्पश्चात् एकाग्र मन से नियमानुसार कृच्छ्र व्रत भी करना चाहिए और पुनः आश्रम में प्रवेश कर भिक्षुक को सावधानी से विचरण करना चाहिए।

न नर्मयुक्तमनृतं हिनस्तीति मनीषिणः।
तथापि च न कर्तव्यं प्रसंगो ह्येष दारुणः॥ २८॥

परिहास में कहा गया असत्य मनुष्य का पुण्य नष्ट नहीं करता, ऐसा मनीषियों ने कहा है। किन्तु संन्यासी के लिए ऐसा असत्य भी वर्जित है, क्योंकि ऐसा मिथ्या प्रसंग परिणाम में दारुण कष्ट देता है।

एकरात्रोपवासश्च प्राणायामशतं तथा।
कर्तव्यं यतिना धर्मलिप्सुना परमव्ययम्॥ २९॥

धर्मलोभी संन्यासियों को असत्य बोलने पर प्रायश्चित्तरूप में एक रात का उपवास और सौ बार प्राणायाम करना चाहिए।

गतेनापि न कार्यन्ते न कार्यं स्तेयमन्यतः।
स्तेयादभ्यधिकः कश्चिन्नास्त्यधर्म इति स्मृतिः॥ ३०॥

अत्यन्त आपत्काल आ जाने पर संन्यासी दूसरे की वस्तु नहीं चुरायें। शास्त्रों में चोरी से बढ़कर अधर्म दूसरा और कोई नहीं है।३०

हिंसा चैषा परा दिष्टा या चात्मज्ञाननाशिका।
यदेतद्द्रविणं नाम प्राणा ह्येते बहिश्चराः॥ ३१॥

चोरी उत्कट हिंसा है, जो आत्मज्ञान की नाशक भी है। जो वस्तु धन के नाम से प्रख्यात है, वह मनुष्यों का बाह्य प्राण है।

स तस्य हरति प्राणान्यो यस्य हरते धनम्।
एवं कृत्वा सुदुष्टात्मा भिन्नवृत्तो व्रताहतः।
भूयो निर्वेदमापन्नश्चरेच्चान्द्रायणव्रतम्॥ ३२॥
विधिना शास्त्रदृष्टेन संवत्सरमिति श्रुतिः।
भूयो निर्वेदमापन्नश्चरेद्भिक्षुरतन्द्रितः॥ ३३॥

जो जिसका धन चुराता है, वह मानो उसका प्राण हरण करता है। ऐसा करके वह दुष्टात्मा विहित आचार और व्रत से पतित हो जाता है। ऐसा कार्य करने के बाद पश्चात्ताप होने से संन्यासी शास्त्रों में बताए गए नियमों के अनुसार वर्षपर्यन्त चान्द्रायण व्रत करे। पश्चात्ताप होने के बाद भिक्षुक को सावधानी पूर्वक विचरण करना चाहिए।

अकस्मादेव हिंसान्तु यदि भिक्षुः समाचरेत्।
कुर्यात्कृच्छ्रातिकृच्छ्रन्तु चान्द्रायणमथापि वा॥ ३४॥

यदि संन्यासी अकस्मात् (अज्ञानतावश) हिंसा कर बैठे तो उसे कृच्छ्रातिकृच्छ्र या चान्द्रायण व्रत करना चाहिए।

स्कन्नमिन्द्रियदौर्बल्यात् स्त्रियं दृष्ट्वा यतिर्यदि।
तेन धारयितव्या वै प्राणायामास्तु षोडश॥ ३५॥
दिवा स्कन्ने त्रिरात्रं स्यात्प्राणायामशतं तथा।

इन्द्रिय की दुर्बलता के कारण स्त्री को देखकर यदि संन्यासी का वीर्यपात हो जाए तो उसे सोलह बार प्राणायाम करना होगा। यदि वीर्यपात दिन में हो, तो तीन रात तक उपवास और सौ बार प्राणायाम करना चाहिए।

एकान्ते मधुमांसे च नवश्राद्धे तथैव च।
प्रत्यक्षलवणे प्रोक्तं प्राजापत्यं विशोधनम्॥ ३६॥

एकान्त में छुपकर मधु (शराब) और माँस खाने से तथा नवश्राद्ध में प्रत्यक्ष रूप से नमक खाने से शुद्धि के लिए प्राजापत्य व्रत करना चाहिए।

ध्याननिष्ठस्य सततं नश्यते सर्वपातकम्।
तस्मान्महेश्वरं ज्ञात्वा तद्ध्यानपरमो भवेत्॥ ३७॥

निरन्तर ध्याननिष्ठ संन्यासी के सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, इसलिए महेश्वर को जानकर उनके ध्यान में मग्न रहना चाहिए।

यद्ब्रह्म परमं ज्योतिः प्रतिष्ठाक्षरमव्ययम्।
योऽन्तरा परमं ब्रह्म स विज्ञेयो महेश्वरः॥ ३८॥

जो ब्रह्म परम ज्योति के मध्य स्थित, अक्षर और अव्यय है, जो परम ब्रह्म के मध्य विद्यमान है उन्हें महेश्वर जानो।

एष देवो महादेवः केवलः परमः शिवः।
तदेवाक्षरमद्वैतं तदादित्यान्तरं परम्॥ ३९॥

ये देव महादेव केवल (अर्थात् अद्वितीय) श्रेष्ठ और कल्याणकारी हैं। प्रकाशमय परम ब्रह्म भी अक्षर, अद्वितीय और श्रेष्ठ है, इसलिए महादेव और परब्रह्म में कोई अन्तर नहीं है।

यस्मान्महीयसो देवः स्वधाम्नि ज्ञानसंस्थिते।
आत्मयोगाह्वये तत्त्वे महादेवस्ततः स्मृतः॥ ४०॥

ज्ञान में स्थित होकर अपने धाम में आत्मयोगार्थ तत्त्व से पूजे जाने के कारण वह भगवान् महादेव कहे जाते हैं।

नान्यं देवं महादेवाद्व्यतिरिक्तं प्रपश्यति।
तमेवात्मानमात्मेति य स याति परमं पदम्॥ ४१॥

जो महादेव से अतिरिक्त किसी अन्य देव को नहीं देखता है, वही स्वयं आत्मरूप है, ऐसा जानकर परम पद को प्राप्त कर लेता है।

मन्यन्ते ये स्वमात्मानं विभिन्नं परमेश्वरात्।
न ते पश्यन्ति तं देवं वृथा तेषां परिश्रमः॥४२॥

जो व्यक्ति अपनी आत्मा को परमेश्वर से पृथक् समझता है, वह उस परम देवता को नहीं देख पाता। ऐसे व्यक्तियों का सारा परिश्रम व्यर्थ हो जाता है।

एकं ब्रह्म परं ब्रह्म ज्ञेयं तत्तत्त्वमव्ययम्।
स देवस्तु महादेवो नैतद्विज्ञाय बाध्यते॥४३॥

अविनाशी, तत्त्वस्वरूप, परम ब्रह्म ही एकमात्र जानने योग्य है और वही देव (ब्रह्म) महादेव है। जो यह जान लेता है, उसे पुनः संसार के बन्धन में नहीं बँधता।

तस्माद्यजेत नियतं यतिः संयतमानसः।
ज्ञानयोगरतः शान्तो महादेवपरायणः॥४४॥

अतः संन्यासी को निरन्तर एकाग्रचित्त होकर ज्ञानयोग का अभ्यास करते हुए शान्त और महादेव परायण होकर यज्ञ करना चाहिए।

एष वः कथितो विप्रा यतीनामाश्रमः शुभः।
पितामहेन विभुना मुनीनां पूर्वमीरितम्॥४५॥

हे ब्राह्मणो! संन्यासियों का शुभ आश्रमधर्म, आप लोगों को बताया गया। भगवान् पितामह ब्रह्मा ने पहले यह मुनियों को बताया था।

नात्र शिष्यस्य योगिभ्यो दद्यादिदमनुत्तमम्।
ज्ञानं स्वयंभुना प्रोक्तं यतिधर्माश्रयं शिवम्॥४६॥

ब्रह्मा द्वारा बताए गए संन्यासी का शुभ आश्रमधर्म स्वरूप इस कल्याणकारी ज्ञान का उपदेश पुत्र शिष्य और योगियों को छोड़कर किसी और को नहीं देना चाहिए।

इति यतिनियमानामेतदुक्तं विधानं,
पशुपतिपरितोषे यद्भवेदकहेतुः।
न भवति पुनरेषामुद्भवो वा विनाशः,
प्रणिहितमनसाये नित्यमेवाचरन्ति॥४७॥

संन्यासियों का नियम विधान कहा गया। इन नियमों का पालन करने वाले पर पशुपति महादेव बहुत प्रसन्न होते हैं। जो लोग एकाग्रचित्त से प्रतिदिन इन नियमों का पालन करते हैं, उनका पुनर्जन्म और मृत्यु नहीं होता।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासु यतिधर्मो नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥२९॥

त्रिंशोऽध्यायः
(प्रायश्चित्तविधि)

व्यास उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविधिं शुभम्।
हिताय सर्वविप्राणां दोषाणामपनुत्तये॥१॥

व्यासजी बोले— अब मैं शुभ प्रायश्चित्त विधि को कहूँगा, जो ब्राह्मणों के हितकारी और पाप नाश का हेतु है।

अकृत्वा विहितं कर्म कृत्वा निन्दितमेव च।
दोषमाप्नोति पुरुषः प्रायश्चित्तं विशोधनम्॥२॥

शास्त्रों के बताए गए धर्मों का पालन न करने और शास्त्र निषिद्ध कर्मों का पालन करने से मनुष्यों को पाप लगता है। प्रायश्चित्त करने से उसकी शुद्धि हो जाती है।

प्रायश्चित्तमकृत्वा तु न तिष्ठेद्ब्राह्मणः क्वचित्।
यद्ब्रूयुर्ब्राह्मणाः शान्ता विद्वांसस्तत्समाचरेत्॥३॥

प्रायश्चित्त करने वाले ब्राह्मण को प्रायश्चित्त किए बिना क्षणमात्र भी नहीं बैठना चाहिए। शान्त और विद्वान् ब्राह्मण जैसा कहे वैसा ही करना चाहिए।

वेदार्थवित्तमः शान्तो धर्मकामोऽग्निमान्द्विजः।
स एव स्यात्परो धर्मो यमे कोऽपि व्यवस्यति॥४॥

श्रेष्ठ, वेदार्थविद्, शान्त, धर्म-कर्मानुरागी और अग्निहोत्री एक ब्राह्मण भी जिस कर्म का विधान कर दें, वही कर्म, श्रेष्ठ धर्म होता है।

अनाहिताग्नयो विप्रास्त्रयो वेदार्थपारगाः।
यद्ब्रूयुर्धर्मकामांस्ते तज्ज्ञेयं धर्मसाधनम्॥५॥

यदि ब्राह्मण वेदार्थ का ज्ञाता किन्तु निरग्नि (अर्थात् जिसने अग्नि चयन न किया हो) हो तो तीन ब्राह्मण धर्मार्थी होकर जिस कर्म को धर्म कहें, उसी कर्म को धर्म का साधन जानो।

अनेकधर्मशास्त्रज्ञा ऊहापोहविशारदाः।
वेदाध्ययनसम्पन्नाः सप्तैते परिकीर्त्तिताः॥६॥

अनेकों धर्मशास्त्रों का ज्ञाता, ऊहापोहविशारद (अर्थात् तर्क सिद्धान्त में पारंगत) वेदाध्ययन करने वाले सात ब्राह्मणों का वाक्य भी धर्म कार्यों में माना जाता है।

मीमांसज्ञानतत्त्वज्ञा वेदान्तकुशला द्विजाः।
एकविंशतिविख्याताः प्रायश्चित्तं वदन्ति वै॥७॥

मीमांसा और न्याय दर्शन के ज्ञाता और वेदान्त में पारंगत इक्कीस ब्राह्मण प्रायश्चित्त के विषय में उपदेश देंगे।

ब्रह्महा मद्यपः स्तेनो गुरुतल्पग एव च।
महापातकिनस्त्वेते यश्चैतैः सह संविशेत्॥८॥

ब्रह्महत्या करने वाले, मद्यपान करने वाले, ब्राह्मण का सोना चुराने वाले और गुरुपत्नी के साथ समागम करने वाले महापापी होते हैं और उनसे सम्बन्ध रखने वाले भी महापापी होते हैं।

संवत्सरन्तु पतितैः संसर्गं कुरुते तु यः।
यानशय्यासनैर्नित्यं जानन्वै पतितो भवेत्॥९॥

ऐसे पतितों के साथ जो लोग वर्ष भर रहते हैं, वे भी महापापी होते हैं तथा जो लोग जानबूझकर सदैव ऐसे पापियों के साथ एक वाहन पर चढ़ते हैं, एक शय्या पर सोते और एक ही आसन पर बैठते हैं, वे भी पतित होते हैं।

याजनं योनिसम्बन्धं तथैवाध्यापनं द्विजः।
सद्यः कृत्वा पतत्येव सह भोजनमेव च॥१०॥

जानबूझकर पतित कन्या से विवाह करना, पतित व्यक्ति का पौरोहित्य करना, पतित को पढ़ाना और उसके साथ एक ही पात्र में भोजन करने से ब्राह्मण तत्काल पतित हो जाता है।

अविज्ञायाथ यो मोहात्कुर्यादध्यापनं द्विजः।
संवत्सरेण पतति सहाध्ययनमेव च॥११॥

अनजाने में अथवा मोहवश जो पतित व्यक्ति को पढ़ाता है अथवा उसके साथ पढ़ता है, वह एक वर्ष में पतित हो जाता है।

ब्रह्महा द्वादशाब्दानि कुटिं कृत्वा वने वसेत्।
भैक्षमात्मविशुद्ध्यर्थं कृत्वा शवशिरोध्वजम्॥१२॥

ब्रह्महत्या करने वाला आत्मशुद्धि के लिए वन में कुटिया बनाकर बारह वर्ष तक निवास करे और हाथ में चिह्न स्वरूप मृत ब्राह्मण या किसी दूसरे मृतक की खोपड़ी लेकर भिक्षा माँगे।

ब्राह्मणावसथान् सर्वान् देवागाराणि वर्जयेत्।
विनिन्दन् स्वयमात्मानं ब्राह्मणं तञ्च संस्मरन्॥१३॥
असङ्कल्पितयोग्यानि सप्तागाराणि संविशेत्।

मन्दिर या ब्राह्मण का घर त्याग कर मृत ब्राह्मण को स्मरण करते हुए और मन ही मन आत्मग्लानि करते हुए पहले से असंकल्पित सात योग्य घरों में भिक्षा माँगने के लिए प्रवेश करना चाहिए।

विधूमे शनकैर्नित्यं व्यङ्गारे भुक्तवज्जने॥१४॥
एककालं चरेद्भैक्षं दोषं विख्यापयन्नृणाम्।
वन्यमूलफलैर्वापि वर्त्तयेद्वै समाश्रितः॥१५॥

जब गृहस्थ की रसोई से धुँआ निकलना बन्द हो जाए रसोई की अग्नि बुझ जाए और जूठन पोंछ देने के बाद लोगों को अपना दोष बतलाकर एक समय भिक्षा माँगनी चाहिए अथवा धैर्य धारण कर जंगली फल-मूल से जीविका निर्वाह करना चाहिए।

कपालपाणिः खट्वाङ्गी ब्रह्मचर्यपरायणः।
पूर्णे तु द्वादशे वर्षे ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥१६॥

(वह महापापी भिक्षा के समय) हाथ में 'कपाल' नामक भिक्षापात्र और खट्वाङ्ग (महाव्रतियों के कन्धों पर रखा ध्वज) धारण कर ब्रह्मचर्य का पालन करने में तत्पर रहे। इस प्रकार बारह वर्ष पूरा हो जाने के बाद ब्रह्महत्या के पाप से मुक्ति मिलती है।

अकामतः कृते पापे प्रायश्चित्तमिदं शुभम्।
कामतो मरणाच्छुद्धिर्ज्ञेया नान्येन केनचित्॥१७॥

अनजाने में ब्रह्महत्यारूप पाप हो जाने पर यह प्रायश्चित्त शुभ होता है। परन्तु जानबूझ कर ब्रह्महत्या करने से प्राण त्यागने के अतिरिक्त कोई दूसरा प्रायश्चित्त नहीं है।

कुर्यादनशनं वाथ भृगोः पतनमेव वा।
ज्वलन्तं वा विशेदग्निं जलं वा प्रविशेत्स्वयम्॥१८॥

जानबूझकर ब्रह्महत्या करने वाला व्यक्ति अनशन करे या पर्वतादि ऊँचे स्थान से गिरे अथवा जलते हुए अग्नि या जल में प्रवेश करे।

ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा सम्यक् प्राणान् परित्यजेत्।
ब्रह्महत्यापनोदार्थमन्तरा वा मृतस्य तु॥१९॥
दीर्घामयाविनं विप्रं कृत्वानामयमेव वा।
दत्त्वा चान्नं सुविदुषे ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥२०॥

यदि ब्रह्महत्यारा इस पाप से मुक्ति के लिए ब्राह्मण या गाय को बचाने के लिए प्राण त्याग करे, अत्यन्त रोगाक्रान्त ब्राह्मण को रोग से मुक्ति दिलाए अथवा विद्वान् ब्राह्मण को अन्नदान करे तो ब्रह्महत्या के पाप से मुक्ति मिलती है।

अश्वमेधावभृथके स्नात्वा वै शुध्यते द्विजः।
सर्वस्वं वा वेदविदे ब्राह्मणाय प्रदाय च॥२१॥

अश्वमेध यज्ञ में अवभृथ स्नान (यज्ञ की समाप्ति पर किया जाने वाला स्नान) करने या वेदज्ञ ब्राह्मण को सब कुछ दान कर देने से ब्रह्मघाती ब्राह्मण पाप से मुक्त होता है।

सरस्वत्यास्त्वरुणाया सङ्गमे लोकविश्रुते।
शुध्येत्त्रिषवणस्नानत्रिरात्रोपोषितो द्विजः॥ २२॥

हरकोई महापापी तीन रात तक उपवास करके सरस्वती और अरुणा नदी के लोकविख्यात संगम में तीनों काल स्नान करता है, तो वह ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हो सकता है।

गत्वा रामेश्वरं पुण्यं स्नात्वा चैव महोदधौ।
ब्रह्मचर्यादिभिर्युक्तो दृष्ट्वा रुद्रं विमोचयेत्॥ २३॥

अथवा पवित्र रामेश्वर तीर्थ में जाकर वहां महासमुद्र में स्नान करके ब्रह्मचर्य आदि व्रतों का पालन करते हुए महेश्वर का दर्शन करता है, तो पाप से मुक्त हो जाता है।

कपालमोचनं नाम तीर्थं देवस्य शूलिनः।
स्नात्वाभ्यर्च्य पितॄन् देवान् ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥ २४॥

भगवान् महादेव के कपाल मोचन नामक तीर्थ में जाकर, स्नान करके देवताओं और पितरों की पूजा करने पर ब्रह्महत्या का पाप दूर होता है।

यत्र देवाधिदेवेन भैरवेणामितौजसा।
कपालं स्थापितं पूर्वं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥ २५॥
समभ्यर्च्य महादेवं तत्र भैरवरूपिणम्।
तर्पयित्वा पितॄन् स्नात्वा मुच्यते ब्रह्महत्यया॥ २६॥

प्राचीन काल में अमित तेजस्वी देवाधिदेव भैरव के द्वारा जिस स्थान पर परमेश्वर ब्रह्मा का कपाल स्थापित किया गया है, उस स्थान में स्नानकर, भैरवरूपी महादेव की पूजा करके तथा पितरों का तर्पण करने से ब्रह्महत्या के पाप से मुक्ति मिलती है।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे ब्रह्महत्याप्रायश्चित्तवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

(कपालमोचन तीर्थ का माहात्म्य)

ऋषय ऊचुः

कथं देवेन रुद्रेण शङ्करेणातितेजसा।
कपालं ब्रह्मणः पूर्वं स्थापितं देहजं भुवि॥ १॥

ऋषियों ने कहा— हे भगवन्! अतितेजस्वी रुद्रदेव शंकर ने सर्वप्रथम इस भूमण्डल में ब्रह्मा जी के शरीर से उत्पन्न कपाल को कैसे स्थापित किया था?

व्यास उवाच

शृणुध्वमृषयः पुण्यां कथां पापप्रणाशिनीम्।
माहात्म्यं देवदेवस्य महादेवस्य धीमतः॥ २॥
पुरा पितामहं देवं मेरुशृङ्गे महर्षयः।
प्रोचुः प्रणम्य लोकादिं किमेकं तत्त्वमव्ययम्॥ ३॥

व्यासजी बोले— हे ऋषिगण! पापों को नष्ट करने वाली इस परम पुण्यमयी कथा को आप श्रवण करें। इस कथा में देवों के भी देव परम बुद्धिमान् महादेव का माहात्म्य वर्णित है। प्राचीन काल में महर्षियों ने सुमेरु पर्वत के शिखर पर प्राणियों के आदि पितामह ब्रह्मा को नमस्कार करके पूछा था कि यह अविनाशी तत्त्व क्या है।

स मायया महेशस्य मोहितो लोकसम्भवः।
अविज्ञाय परम्भावं स्वात्मानं प्राह धर्षणम्॥ ४॥
अहं धाता जगद्योनिः स्वयम्भूरेक ईश्वरः।
अनादि मत्परं ब्रह्म मामभ्यर्च्य विमुच्यते॥ ५॥

वे लोकों के उत्पादक ब्रह्मा, महेश्वर की माया से मोहित हो गये थे और परम भाव को न जानते हुए ऋषियों से अपने ही स्वरूप को अव्यय तत्त्व बताकर कहने लगे कि- मैं ही विधाता हूँ, जगद्योनि, स्वयंभू और ईश्वर हूँ, मैं ही अनादि, आदित्य, परमब्रह्म हूँ। मेरी अर्चना करके सभी मुक्त हो जाते हैं।

अहं हि सर्वदेवानां प्रवर्त्तकनिवर्त्तकः।
न विद्यते चाभ्यधिको मत्तो लोकेषु कश्चन॥ ६॥

मैं ही समस्त देवों का प्रवर्तक और निवर्तक हूँ। इस लोक में कोई भी मुझसे अधिक (श्रेष्ठ) नहीं है।

तस्यैवं मन्यमानस्य जज्ञे नारायणांशजः।
प्रोवाच प्रहसन्वाक्यं रोषितोऽयं त्रिलोचनः॥ ७॥
किं कारणमिदं ब्रह्मन्वर्त्तते तव साम्प्रतम्।
अज्ञानयोगयुक्तस्य न त्वेतत्त्वयि विद्यते॥ ८॥

ब्रह्मा जी के द्वारा अपने को ऐसा मानने पर नारायण के अंश से उत्पन्न त्रिनेत्रधारी शंकर क्रुद्ध होकर हँसते हुए बोले- हे ब्रह्मन्! इस समय क्या बात है कि आपके अन्दर ऐसी भावना उत्पन्न हो गयी है। सम्भवतः आप अज्ञान से आवृत हैं। आपका ऐसा कहना ठीक नहीं है।

अहं कर्तादिलोकानां जज्ञे नारायणात्प्रभो:।
न मामृतेऽस्य जगतो जीवनं सर्वथा क्वचित्॥ ९॥

मैं इन लोकों का कर्ता हूँ और नारायण प्रभु से मेरा जन्म हुआ है। मेरे बिना इस संसार का जीवन कहीं भी नहीं है।

अहमेव परं ज्योतिरहमेव परा गति:।
मत्प्रेरितेन भवता सृष्टं भुवनमण्डलम्॥ १०॥
एवं विवदतोर्मोहात्परस्परजयैषिणो:।
आजग्मुर्यत्र तौ देवौ वेदाश्चत्वार एव हि॥ ११॥

मैं ही परज्योति हूँ और परागति हूँ। मेरे द्वारा प्रेरित होकर ही आपने इस समस्त भूमंडल की रचना की है। इस प्रकार मोहवश दोनों परस्पर विवाद कर रहे थे, और एक-दूसरे पर विजय पाने की इच्छा कर रहे थे। वे दोनों उस स्थान पर पहुँच गये जहाँ चारों वेद उपस्थित थे।

अन्वीक्ष्य देवं ब्रह्माणं यज्ञात्मानञ्च संस्थितम्।
प्रोचु: संविग्नहृदया याथात्म्यं परमेष्ठिन:॥ १२॥

उस समय ब्रह्मदेव और यज्ञस्वरूप विष्णु को वहाँ उपस्थित देखकर वे चारों वेद उत्कण्ठित हृदय होकर परमेश्वर के यथार्थ स्वरूप के विषय में बोले।

ऋग्वेद उवाच

यस्यान्त:स्थानि भूतानि यस्मात्सर्वं प्रवर्तते।
यदाहुस्तत्परन्तत्त्वं स देव: स्यान्महेश्वर:॥ १३॥

ऋग्वेद ने कहा- जिसके अन्दर समस्त प्राणी समूह विद्यमान है तथा जिससे यह सब उत्पन्न हुआ है और जिसे मुनिगण श्रेष्ठ तत्त्व कहते हैं, वे यही देव महेश्वर हैं।

यजुर्वेद उवाच

यो यज्ञैरखिलैरीशो योगेन च समर्च्यते।
यमाहुरीश्वरं देवं स देव: स्यात्पिनाकधृक्॥ १४॥

यजुर्वेद ने कहा- जो सभी यज्ञों द्वारा और योग द्वारा पूजित हैं और जिन्हें मुनिगण ईश्वर कहते हैं वे ही पिनाकपाणि देव हैं।

सामवेद उवाच

येनेदम्भ्राम्यते विश्वं यदाकाशान्तरं शिवम्।
योगिभिर्विद्यते तत्त्वं महादेव: स शङ्कर:॥ १५॥

सामवेद ने कहा- जो इस संसार में भ्रमण करते हैं, आकाश के मध्य स्थित हैं, जो शिवस्वरूप है, जिसे योगी तत्त्वरूप में जानते हैं वे ही महादेव शंकर हैं।

अथर्ववेद उवाच

यम्प्रपश्यन्ति देवेशं यजन्ते यतय: परम्।
महेशं पुरुषं रुद्रं स देवो भगवान् भव:॥ १६॥

अथर्ववेद ने कहा— यतिगण जिस रुद्ररूपी परमपुरुष महेश का प्रयास करके दर्शन प्राप्त करते हैं, वे ही देव भगवान् शिव हैं।

एवं स भगवान् ब्रह्मा वेदानामीरितं शुभम्।
श्रुत्वा विहस्य विश्वात्मा तत्प्राह विमोहित:॥ १७॥

इस प्रकार वेदों के शुभ-वचन सुनकर भगवान् ब्रह्मा हँस पड़े और उससे मोहित होकर विश्वात्मा ने कहा-

कथं तत्परमं ब्रह्म सर्वसङ्गविवर्जितम्।
रमते भार्यया सार्द्धं प्रमथैश्चातिगर्वितै:॥ १८॥
इतीरितेऽथ भगवान् प्रणवात्मा सनातन:।
अमूर्तो मूर्तिमान् भूत्वा वच: प्राह पितामहम्॥ १९॥

वे परब्रह्म कैसे हो सकते हैं जो सर्वसंगविवर्जित हैं और अपनी भार्या के साथ ही रमण किया करते हैं और जिनके साथ गणयुक्त प्रमथगण भी रहते हैं। इस प्रकार ब्रह्मा के कहने पर ओंकारस्वरूप सनातन भगवान् मूर्तरूप होने पर भी अमूर्तरूप अप्रत्यक्ष रहकर पितामह ब्रह्मा से इस प्रकार बोले।

प्रणव उवाच

न ह्येष भगवानीश: स्वात्मनो व्यतिरिक्तया।
कदाचिद्रमते रुद्रस्तादृशो हि महेश्वर:।
अयं स भगवानीश: स्वयंज्योति: सनातन:॥ २०॥
स्वानन्दभूता कथिता देवी आगन्तुका शिवा॥ २१॥

प्रणव ओंकार ने कहा— वह भगवान् ईश किसी भी समय अपनी आत्मा से भिन्न किसी के साथ रमण नहीं किया करते। वे प्रभु महेश्वर स्वयं भगवान् ईश ज्योतिस्वरूप और सनातन हैं। शिवा पार्वती कोई लौकिक स्त्री नहीं है, वे तो उनकी स्वयं की आनन्दभूता देवी कही गयी है।

इत्येवमुक्तेऽपि तदा यज्ञमूर्तेरजस्य च।
नाज्ञानमगमन्नाशमीश्वरस्यैव मायया॥ २२॥
तदन्तरे महाज्योतिर्विरिञ्चो विश्वभावन:।
प्रादर्शदद्भुतं दिव्यं पूरयन् गगनान्तरम्॥ २३॥
तन्मध्यसंस्थितज्योतिर्मण्डलं तेजसोज्ज्वलम्।
व्योममध्यगतं दिव्यं प्रादुरासीद्द्विजोत्तमा:॥ २४॥

स दृष्ट्वा वदनं दिव्यमूर्ध्नि लोकपितामहः।
तैजसं मण्डलं घोरमलोकं यदनिन्दितम्॥ २५॥

इस प्रकार कहने पर भी यज्ञमूर्ति अजन्मा ईश्वर की माया के कारण ब्रह्मा का अज्ञान दूर नहीं हुआ था। इसी समय विश्वस्रष्टा ब्रह्मा ने एक महान् ज्योति को देखा जो अद्भुत, दिव्य और आकाश के मध्य में सुशोभित थी। हे ब्राह्मणो! उस ज्योति का तेज अत्यन्त उज्ज्वल और व्योम के मध्य में रहने वाला अति दिव्य था। जो पहले वाले ज्योति-पुंज के बीच रहकर भी आकाश के मध्य विद्यमान थी। लोक पितामह ने अपने मुख को उठाकर उस दिव्य तेजस्वी मंडल को देखा जो घोर भयानक होने पर भी अनिन्दित था।

प्रजज्वालातिकोपेन ब्रह्मणः पञ्चमं शिरः।
क्षणादपश्यत्स महान् पुरुषो नीललोहितः॥ २६॥
त्रिशूलपिङ्गलो देवो नागयज्ञोपवीतवान्।
तं प्राह भगवान् ब्रह्मा शङ्करं नीललोहितम्॥ २७॥
ज्ञानाय पूर्वं भवतो ललाटादद्य शंकरम्।
प्रादुर्भूतं महेशानं मामतः शरणं व्रज॥ २८॥

तब ब्रह्माजी का पाँचवा शिर अत्यन्त क्रोध से प्रज्ज्वलित हो उठा था। उस महान् पुरुष नीललोहित ने क्षणभर में उसे देखा। वे त्रिशूलधारी थे, पिङ्गल नागों का यज्ञोपवीत धारण किया हुआ था। भगवान् ब्रह्मा ने नीललोहित महेशान शंकर को कहा— तुम प्रथम ज्ञान के लिये मेरे ललाट से उत्पन्न हुए हो आप मेरी शरण में आ जाओ।

श्रुत्वा सगर्ववचनं पद्मयोनेरथेश्वरः।
प्राहिणोत्पुरुषं कालं भैरवं लोकदाहकम्॥ २९॥
स कृत्वा सुमहद्युद्धं ब्रह्मणा कालभैरवः।
चकर्तास्य वदनं विरिञ्चस्याथ पञ्चमम्॥ ३०॥
निकृत्तवदनो देवो ब्रह्मा देवेन शम्भुना।
ममार चेशो योगेन जीवितं प्राप विश्वधृक्॥ ३१॥

इसके अनन्तर गर्वयुक्त ब्रह्मा के इस वचन को सुनकर ईश्वर ने लोकदाहक कालभैरव पुरुष को भेजा था। उस काल भैरव पुरुष ने ब्रह्मा के साथ महान् युद्ध किया और उसने ब्रह्मा के पाँचवें शिर को काट डाला था। परन्तु ईश्वर देव शम्भु ने उनको योग द्वारा पुनः जीवित किया था, जिससे विश्व को धारण करने वाले ब्रह्मा जीवन प्राप्त किया था।

अथान्वपश्यद्गिरिशं मण्डलान्तरसंस्थितम्।
समासीनं महादेव्या महादेवं सनातनम्॥ ३२॥
भुजङ्गराजवलयं चन्द्रावयवभूषणम्।
कोटिसूर्यप्रतीकाशञ्जटाजूटविराजितम्॥ ३३॥
शार्दूलचर्मवसनं दिव्यमालासमन्वितम्।
त्रिशूलपाणिं दुष्प्रेक्ष्यं योगिनं भूतिभूषणम्॥ ३४॥
यमन्तरा योगनिष्ठाः प्रपश्यन्ति हृदीश्वरम्।
तमादिमेकं ब्रह्माणं महादेवं ददर्श ह॥ ३५॥

इसके अनन्तर ब्रह्मा ने मण्डल के भीतर संस्थित, समासीन महादेवी के साथ सनातन ईशान महादेव को देखा। वह देव भुजङ्गराज का वलय धारण करने वाले और चन्द्रकला के अवयव के आभूषणों से विभूषित थे। वे करोड़ों सूर्यों के सदृश तेज से युक्त तथा जटाओं से विराजमान परम सुन्दर स्वरूप वाले थे। वे महादेव व्याघ्रचर्म का वस्त्र धारण किये हुए तथा दिव्य मालाओं से समन्वित थे। वे भस्म से विभूषित, परम दुष्प्रेक्ष्य योगीराज और त्रिशूलपाणि थे, जिस हृदीश्वर को योगसंनिष्ठ पुरुष अपने भीतर देखते हैं, ऐसे उन सबके आदि एकब्रह्म महादेव का दर्शन उस समय ब्रह्माजी ने किया था।

यस्य सा परमा देवी शक्तिराकाशसंज्ञिता।
सोऽनन्तैश्वर्ययोगात्मा महेशो दृश्यते किल॥ ३६॥
यस्याशेषजगद्बीजं विलयं याति मोहनम्।
सकृत्प्रणाममात्रेण स रुद्रः खलु दृश्यते॥ ३७॥

आकाश नाम वाली परमा देवी उनकी शक्ति भी वहाँ थीं। ऐसे अनन्त, ऐश्वर्य-सम्पन्न, योगात्मा महेश उन्हें दिखाई देने लगे थे। जिन्हें एक बार प्रणाम करके सम्पूर्ण जगत् का बीज— मोहस्वरूप मायाकर्म लय को प्राप्त हो जाता है, वही रुद्र सचमुच दिखाई देने लगे थे।

येऽथ नाचारनिरतास्तद्भक्ताश्चैव केवलम्।
विमोचयति लोकात्मा नायको दृश्यते किल॥ ३८॥

आचारनिष्ठ केवल भक्तिपरायण लोग ही जिनका दर्शन प्राप्त करते हैं, वही जगदात्मा लोकनायक महादेव, ब्रह्मा को दिखाई देने लगे।

यस्य ब्रह्मादयो देवा ऋषयो ब्रह्मवादिनः।
अर्चयन्ति सदा लिङ्गं स शिवः खलु दृश्यते॥ ३९॥
यस्याशेषजगत्सूतिर्विज्ञानतनुरीश्वरः।
न मुञ्चति सदा पार्श्वं शंकरोऽसौ स दृश्यते॥ ४०॥

ब्रह्मादि देवता और ब्रह्मवादी मुनिगण सदैव जिसके लिंग की पूजा करते हैं, वही शिव वहाँ (तेजोमंडल में) दिखाई

देने लगे थे। सारे संसार की जन्मदात्री प्रकृति ने कदापि जिनका साथ नहीं छोड़ा ऐसे विज्ञानरूप शरीरधारी ईश्वर, वे शंकर ब्रह्मा को दिखाई देने लगे।

विद्या सहायो भगवान्यस्यासौ मण्डलान्तरम्।
हिरण्यगर्भपुत्रोऽसौ ईश्वरो दृश्यते परः॥४१॥
पुष्पं वा यदि वा पत्रं यत्पादयुगले जलम्।
दत्त्वा तरति संसारं रुद्रोऽसौ दृश्यते किल॥४२॥

जिसके मण्डल के बीच विद्यारूप सहाय वाले भगवान् हिरण्यगर्भ पुत्र रुद्र विद्यमान हैं, वे ही परमेश्वर दिखाई देने लगे। जिनके चरण कमलों में पुष्प, पत्र या जल दान करने से मनुष्य संसार से तर जाता है, वही रुद्र वस्तुतः दिखाई देने लगे थे।

तत्सन्निधाने सकलं नियच्छति सनातनः।
कालं किल नियोगात्मा कालः कालो हि दृश्यते॥४३॥

उसके सान्निध्य में ही वह सनातन सब कुछ प्रदान करता है। वही नियोगात्मा काल है। वही काल कालरूप में दिखाई देता है।

जीवनं सर्वलोकानां त्रिलोकस्यैव भूषणम्।
सोमः स दृश्यते देवः सोमो यस्य विभूषणम्॥४४॥

ये समस्त लोकों के जीवनरूप और त्रैलोक्य का आभूषण है। जिसका आभूषण स्वयं सोम है, वह सोमदेव दिखाई दे रहे हैं।

देव्या सह सदा साक्षाद्यस्य योगस्वभावतः।
गीयते परमा मुक्तिर्महादेवः स दृश्यते॥४५॥

सदा देवी के साथ साक्षात् योग के स्वभाव के कारण परमा मुक्ति का गान होता है। वे महादेव दिखाई दे रहे हैं।

योगिनो योगतत्त्वज्ञा वियोगाभिमुखोऽनिशम्।
योगं ध्यायन्ति देव्यासौ स योगी दृश्यते किल॥४६॥

योग के तत्व के ज्ञाता योगीजन निरन्तर वियोग से अभिमुख हैं और योग का ध्यान करते हैं। देवी के साथ वे योगी दिखाई दे रहे हैं।

सोऽनुवीक्ष्य महादेवं महादेव्या सनातनम्।
वरासने समासीनमवाप परमां स्मृतिम्॥४७॥
लब्ध्वा माहेश्वरीं दिव्यां संस्मृतिं भगवानजः।
तोषयामास वरदं सोमं सोमार्द्धभूषणम्॥४८॥

महादेवी के साथ सनातन महादेव को देखकर श्रेष्ठ आसन पर विराजमान परम स्मृति को प्राप्त कर भगवान् अज ने परम दिव्य माहेश्वरी स्मृति को प्राप्त करके सोम के अर्धभाग के आभूषण वाले वरदाता सोम को प्रसन्न किया था।

ब्रह्मोवाच

नमो देवाय महते महादेव्यै नमो नमः।
नमः शिवाय शान्ताय शिवायै सततं नमः॥४९॥
ओं नमो ब्रह्मणे तुभ्यं विद्यायै ते नमो नमः।
महेशाय नमस्तुभ्यं मूलप्रकृतये नमः॥५०॥

ब्रह्माजी ने कहा- महान् देव के लिये नमस्कार है। महादेवी के लिये बारम्बार नमस्कार है। परम शान्त शिव को नमस्कार तथा शिवा को भी सतत मेरा नमस्कार है। ओंकारस्वरूप ब्रह्म आपके लिये प्रणाम है। विद्यास्वरूपिणी आपको बारम्बार नमस्कार है। महान् ईश्वर को नमस्कार, तथा मूलप्रकृति के लिये नमस्कार है।

नमो विज्ञानदेहाय चिन्तायै ते नमो नमः।
नमोऽस्तु कालकालाय ईश्वरायै नमो नमः॥५१॥
नमो नमोऽस्तु रुद्राय रुद्राण्यै ते नमो नमः।
नमो नमस्ते कालाय मायायै ते नमो नमः॥५२॥

विज्ञानरूप शरीर वाले के लिये नमन है। चिन्तारूपिणी देवी को बारम्बार नमस्कार है। काल के भी काल के लिये प्रणाम है तथा ईश्वरी देवी के लिये नमस्कार है। रुद्र और रुद्राणी को बारम्बार नमस्कार। कालस्वरूप आपको नमस्कार तथा मायारूपिणी देवी को बार-बार नमस्कार है।

नियन्त्रे सर्वकार्याणां क्षोभिकायै नमो नमः।
नमोऽस्तु ते प्रकृतये नमो नारायणाय च॥५३॥
योगदाय नमस्तुभ्यं योगिनां गुरवे नमः।
नमः संसारवासाय संसारोत्पत्तये नमः॥५४॥

समस्त कार्यों के नियन्ता, प्रभु तथा क्षोभ देने वाली देवी को नमस्कार है। प्रकृतिरूप आपको नमस्कार तथा नारायण प्रभु को मेरा नमस्कार हो। योगप्रदाता आपको प्रणाम है। योगियों के गुरु के लिये प्रणाम है। संसार में वास करने वाले तथा इस संसार को समुत्पन्न करने वाले को नमस्कार है।

नित्यानन्दाय विभवे नमोऽस्त्वानन्दमूर्तये।
नमः कार्यविहीनाय विश्वप्रकृतये नमः॥५५॥
ओंकारमूर्तये तुभ्यं तदन्तःसंस्थिताय च।
नमस्ते व्योमसंस्थाय व्योमशक्त्यै नमो नमः॥५६॥

सिंहव्याघ्रं च मार्जारं श्वानं शूकरमेव च।
शृगालं मर्कटं चैव गर्दभं च न भक्षयेत्॥ ३३॥
न भक्षयेत् सर्वमृगान् पक्षिणोऽन्यान् वनेचरान्।
जलेचरान् स्थलचरान् प्राणिनश्चेति धारणा॥ ३४॥
गोधा कूर्मः शशः श्वाविच्छल्यकश्चेति सत्तमाः।
भक्ष्याः पञ्चनखा नित्यं मनुराह प्रजापतिः॥ ३५॥
मत्स्यान् सशल्कान् भुञ्जीयान्मांसं रौरवमेव च।
निवेद्य देवताभ्यस्तु ब्राह्मणेभ्यस्तु नान्यथा॥ ३६॥
मयूरं तित्तिरं चैव कपोतं च कपिञ्जलम्।
वाध्रीणसं बकं भक्ष्यं मीनहंसपराजिताः॥ ३७॥
शफरं सिंहतुण्डं च तथा पाठीनरोहितौ।
मत्स्याश्चैते समुद्दिष्टा भक्षणाय द्विजोत्तमाः॥ ३८॥
प्रोक्षितं भक्षयेदेषां मांसं च द्विजकाम्यया।
यथाविधि नियुक्तं च प्राणानामपि चात्यये॥ ३९॥
भक्षयेन्नैव मांसानि शेषभोजी न लिप्यते।
औषधार्थमशक्तौ वा नियोगाद् यज्ञकारणात्॥ ४०॥
आमन्त्रितस्तु यः श्राद्धे दैवे वा मांसमुत्सृजेत्।
यावन्ति पशुरोमाणि तावतो नरकान् व्रजेत्॥ ४१॥
अदेयं चाप्यपेयं च तथैवास्पृश्यमेव च।
द्विजातीनामनालोक्यं नित्यं मद्यमिति स्थितिः॥ ४२॥
तस्मात् सर्वप्रकारेण मद्यं नित्यं विवर्जयेत्।
पीत्वा पतति कर्मभ्यस्त्वसम्भाष्यो भवेद् द्विजः॥ ४३॥
भक्षयित्वा ह्यभक्ष्याणि पीत्वाऽपेयान्यपि द्विजः।
नाधिकारी भवेत् तावद् यावद् तन्न जहात्यधः॥ ४४॥
तस्मात् परिहरेन्नित्यमभक्ष्याणि प्रयत्नतः।
अपेयानि च विप्रो वै तथा चेद् याति रौरवम्॥ ४५॥

द्विजोंके लिये मद्य न दान देने योग्य है, न पीने योग्य है, न स्पर्श करने योग्य है और न ही देखने योग्य है—ऐसी हमेशाके लिये मर्यादा बनी है। इसलिये सब प्रकारसे मद्यका नित्य ही परित्याग करना चाहिये। मद्य पीनेसे द्विज कर्मोंसे पतित और बातचीत करनेके अयोग्य हो जाता है। अभक्ष्यका भक्षण करने और अपेय पदार्थोंका पान करनेसे द्विज तबतक अपने कर्मका अधिकारी नहीं होता, जबतक उसका पाप दूर नहीं हो जाता। इसलिये प्रयत्नपूर्वक नित्य ही विप्र (द्विज)-को अभक्ष्य एवं अपेय पदार्थोंका परित्याग करना चाहिये। यदि द्विज ऐसा करता है अर्थात् इन्हें ग्रहण करता है तो उसे रौरव नरकमें जाना पड़ता है॥ ४२—४५॥

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायामुपरिविभागे सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

इस प्रकार छः हजार श्लोकोंवाली श्रीकूर्मपुराणसंहिताके उपरिविभागमें सत्रहवाँ अध्याय समाप्त हुआ॥ १७॥

देवाधिपति भगवान् शंकर के वचन सुनकर विश्वात्मा कालभैरव कपाल हाथ में लेकर तीनों लोकों में भ्रमण करने लगे। विकृतवेष को धारण करने पर भी वे अपने तेज से प्रकाशित थे। वे अत्यन्त सुन्दर तीन नेत्रों से युक्त और पवित्र थे।

सहस्रसूर्यप्रतिमं सिद्धै: प्रमथपुङ्गवै:।
भाति कालाग्निनयनो महादेव: समावृत:॥७३॥
पीत्वा तदमृतं दिव्यमानन्दम्परमेष्ठिन:।
लीलाविलासबहुलो लोकानागच्छतीश्वर:॥७४॥

कालाग्नि के समान नेत्र वाले महादेव सिद्ध प्रमथगणों से समावृत होकर हजारों सूर्यों के समान प्रतीत हो रहे थे। परमेष्ठी के अमृतमय इस दिव्य आनन्द का पान करके क्रीडा में निरत रहने वाले भगवान् संसार के समक्ष उपस्थित हुए।

तान्दृष्ट्वा कालवदनं शङ्करं कालभैरवम्।
रूपलावण्यसम्पन्नं नारीकुलमगादनु॥७५॥
गायन्ति गीतैर्विविधैर्नृत्यन्ति पुरत: प्रभो:।
संस्मितं प्रेक्ष्य वदनञ्चक्रुर्भ्रूभङ्गमेव च॥७६॥

कालमुख, कालभैरव शंकर को रूपलावण्य से सम्पन्न देखकर नारियों के समूह उनके पीछे-पीछे अनुगमन करने लगा। वे सभी प्रभु के समक्ष अनेक प्रकार के गीत गाकर नाचने लगीं और भगवान् के मन्दहास्य युक्त मुख-मण्डल को देखकर भौंहे सिकुड़ने लगी।

स देवदानवादीनां देशानभ्येत्य शूलधृक्।
जगाम विष्णोर्भुवनं यत्रास्ते पुरुषोत्तम:॥७७॥

वे त्रिशूलधारी महादेव देवताओं और राक्षसों के देश में भ्रमण करते हुए अन्त में विष्णु के भुवन को गये जहाँ पुरुषोत्तम विराजमान थे।

सम्प्राप्य दिव्यभवनं शङ्करो लोकशंकर:।
सहैव भूतप्रवरै: प्रवेष्टुमुपचक्रमे॥७८॥
अविज्ञाय परं भावं दिव्यं तत्पारमेश्वरम्।
न्यवारयत्त्रिशूलांकं द्वारपालो महाबल:॥७९॥
शङ्खचक्रगदापाणि: पीतवासा महाभुज:।
विष्वक्सेन इति ख्यातो विष्णोरंशसमुद्भव:॥८०॥

उस दिव्य भवन में जाकर लोक का कल्याण करने वाले भगवान् शंकर अपने भूतगणों के साथ ही प्रवेश करने लगे। उस परमेश्वर के दिव्य परम भाव को जानकर महाबली द्वारपाल ने त्रिशूलधारी शिव को प्रवेश करने से रोक दिया था। वह द्वारपाल अपने हाथों में शंख-चक्र-गदा धारण की थी, वह पीताम्बरधारी और बड़ी-बड़ी भुजाओं से युक्त था, विष्णु के अंश से उत्पन्न वह विश्वक्सेन नाम से विख्यात था।

(अथ तं शंकरगणं युयुधे विष्णुसंभव:।
भीषणो भैरवादेशात्कालवेग इति स्मृत:।)

उसके अनन्तर विष्णुसंभव उस विष्वक्सेन ने भीषण कालवेग नामक शंकर के गण से युद्ध किया था। वह कालभैरव की आज्ञा से आया था।

विजित्य तं कालवेगं क्रोधसंरक्तलोचन:।
दुद्रावाभिमुखं रुद्रं चिक्षेप च सुदर्शनम्॥८१॥

क्रोध से एकदम लाल नेत्रों वाले द्वारपाल ने उस कालवेग को भी जीत लिया था। फिर रुद्रस्वरूप कालभैरव के सामने दौड़ पड़ा और उन पर सुदर्शन चक्र गिराया।

अथ देवो महादेवस्त्रिपुरारिस्त्रिशूलभृत्।
तमापतन्तं सावज्ञमालोकयदमित्रजित्॥८२॥

तब त्रिपुरासुर के शत्रु त्रिशूलधारी देव महादेव ने जो सभी शत्रुओं को जीत लेने वाले हैं अपनी ओर आने वाले उस द्वारपाल को अवज्ञापूर्वक देखा।

तदन्तरे महद्भूतं युगान्तदहनोपमम्।
शूलेनोरसि निर्भिद्य पातयामास तं भुवि॥८३॥
स शूलाभिहतोऽत्यर्थं त्यक्त्वा स्वम्परमं बलम्।
तत्याज जीवितं दृष्ट्वा मृत्युं व्याधिहता इव॥८४॥

इसी बीच युगान्तकालीन अग्नि के समान दिखाई देने वाले महान् अद्‌भुत चक्र को रोककर कालभैरव ने वक्ष:स्थल पर शूल से प्रहार करके उसको भूमि में गिरा दिया था। इस प्रकार शूल से अत्यन्त अभिहत होकर उसने भी अपने परम श्रेष्ठ शरीरबल का त्याग करके मानों रोगाक्रान्त होकर मृत्यु को प्राप्त हुआ हो, वैसे ही अपने प्राणों का उसने त्याग दिया।

निहत्य विष्णुपुरुषं सार्द्धं प्रमथपुङ्गवै:।
विवेश चान्तरगृहं समादाय कलेवरम्॥८५॥
वीक्ष्य तं जगतो हेतुमीश्वरं भगवान्हरि:।
शिरां ललाटात्सम्भिद्य रक्तधारामपातयत्॥८६॥

इस प्रकार विष्णुपुरुष द्वारपाल का वध करके महादेव ने उसके मृतक शरीर को उठाकर, अपने उत्तम प्रमथगणों के साथ विष्णु के अन्त:पुर में प्रवेश किया। भगवान् विष्णु ने

जगत् के कारणस्वरूप ईश्वर को देखकर अपने ललाट से एक शिरा को भेदकर रुधिर की धारा प्रवाहित की।

गृहाण भिक्षां भगवन् मदीयाममितद्युते।
न विद्यतेऽन्या ह्युचिता तव त्रिपुरमर्दन॥८७॥
न सम्पूर्णं कपालं तद्ब्रह्मणः परमेष्ठिनः।
दिव्यं वर्षसहस्रं तु सा च धारा प्रवाहिता॥८८॥

विष्णु बोले—हे अमितद्युति भगवन्! मेरी इस भिक्षा को स्वीकार करें। हे त्रिपुरमर्दन्! इसके अतिरिक्त अन्य कोई भिक्षा आपके लिए उचित नहीं है। तत्पश्चात्, सहस्रों दिव्य वर्षों में भी परमेष्ठी ब्रह्मा का कपाल, पूर्णरूप से मुक्त नहीं हुआ और वह रुधिर धारा सहस्रों दिव्य वर्षों तक बहती रही।

अथाब्रवीत्कालरुद्रं हरिर्नारायणः प्रभुः।
संस्तूय विविधैर्भावैर्बहुमानपुरःसरम्॥८९॥
किमर्थमेतद्वदनं ब्रह्मणो भवता धृतम्।
प्रोवाच वृत्तमखिलं देवदेवो महेश्वरः॥९०॥

तत्पश्चात् प्रभु नारायण विष्णु ने अत्यन्त सम्मानसहित, विभिन्न प्रकार से स्तुति करके कालरुद्र से कहा— आपने किसलिए ब्रह्मा का मस्तक धारण किया है? यह सुनकर देवाधिदेव महेश्वर ने पूरा वृत्तान्त सुनाया।

समाहूय हृषीकेशो ब्रह्महत्यामथाच्युतः।
प्रार्थयामास भगवान्विमुञ्चति त्रिशूलिनम्॥९१॥

हृषीकेश भगवान् अच्युत (विष्णु) ने ब्रह्महत्या को अपने समीप बुलाकर, उससे प्रार्थना की कि-वह त्रिशूलधारी भगवान् शंकर का त्याग कर दे।

न तत्याजाथ सा पार्श्वं व्याहृतापि मुरारिणा।
चिरं ध्यात्वा जगद्योनिं शङ्करं प्राह सर्ववित्॥९२॥
व्रजस्व दिव्यां भगवन्पुरीं वाराणसीं शुभाम्।
यत्राखिलजगद्दोषात्क्षिप्रं नाशयतीश्वरः॥९३॥

भगवान् मुरारि के द्वारा भली-भाँति प्रार्थना करने पर भी उस ब्रह्महत्या ने उनका पीछा नहीं छोड़ा था। तब चिरकाल तक ध्यान करके सर्ववेत्ता प्रभु ने जगत् की योनि भगवान् शंकर से कहा— हे भगवन्! अब आप परम शुभ एवं दिव्य वाराणसी पुरी में जायें जहाँ पर समस्त जगत् के दोषों को शीघ्र ही ईश्वर नष्ट कर देते हैं।

ततः सर्वाणि भूतानि तीर्थान्यायतनानि च।
जगाम लीलया देवो लोकानां हितकाम्यया॥९५॥
संस्तूयमानः प्रमथैर्महायोगैरितस्ततः।
नृत्यमानो महायोगी हस्तन्यस्तकलेवरः॥९५॥

इसके पश्चात् समस्त भूतमात्र के हित की इच्छा से सभी ग्रहण करने योग्य तीर्थों और आयतनों में लीला करने के लिए गये। तब महान् योगधारी प्रमथगणों द्वारा चारों ओर से संस्तूयमान होते हुए कालभैरव अपने हाथ में (द्वारपाल के) मृत-कलेवर को ग्रहण करते हुए नृत्य कर रहे थे।

तमभ्यधावद्भगवान्हरिर्नारायणः प्रभुः।
समास्थाय परं रूपं नृत्यदर्शनलालसः॥९६॥
निरीक्षमाणो गोविन्दं वृषेन्द्राङ्कितशासनः।
सस्मयोऽनन्तयोगात्मा नृत्यति स्म पुनः पुनः॥९७॥

उस समय हरि प्रभु नारायण भी नृत्य देखने की इच्छा से उनके पीछे-पीछे दौड़ पड़े। वृषेन्द्र से अङ्कित वाहन वाले अनन्त योगात्मा भगवान् शिव स्वयं साक्षात् गोविन्द को वहाँ पर देखकर बहुत विस्मित होते हुए बारम्बार अपना नृत्य करने लगे थे।

अनु चानुचरो रुद्रं स हरिर्धर्मवाहनः।
भेजे महादेवपुरीं वाराणसीति विश्रुताम्॥९८॥
प्रविष्टमात्रे विश्वेशे ब्रह्महत्या कपर्दिनि।
हाहेत्युक्त्वा सनादं वै पातालं प्राप दुःखिता॥९९॥

अन्त में धर्मवाहन वाले रुद्र ने अपने अनुचरों के साथ वाराणसी के नाम से प्रसिद्ध महादेव की नगरी में प्रवेश किया। विश्वेश्वर कपर्दी शंकर के वाराणसी में प्रवेश करते ही ब्रह्महत्या हाहाकार करती हुई दुखी होकर पाताल में चली गई।

प्रविश्य परमं स्थानं कपालं ब्रह्मणो हरः।
गणानामग्रतो देवः स्थापयामास शंकरः॥१००॥
स्थापयित्वा महादेवो ददौ तच्च कलेवरम्।
उक्त्वा सजीवमस्त्विति विष्णवेऽसौ घृणानिधिः॥१०१॥

महादेव शंकर ने अपना परम धाम में प्रवेश करके ब्रह्मा के कपाल को अपने गणों के सामने रख दिया। दयानिधि भगवान् महादेव ने उस कलेवर को स्थापित करके कहा- यह जीवित हो। फिर विष्णु को विष्वक्सेन का शरीर सौंप दिया।

ये स्मरन्ति ममाजस्रं कापालं वेषमुत्तमम्।
तेषां विनश्यति क्षिप्रमिहामुत्र च पातकम्॥१०२॥
आगम्य तीर्थप्रवरे स्नानं कृत्वा विधानतः।

तर्पयित्वा पितृन्देवान्मुच्यते ब्रह्महत्यया॥१०३॥

जो मेरे इस उत्तम कपालिक स्वरूप को सदा ध्यानपूर्वक स्मरण करते हैं उनके इस लोक के और परलोक के सारे पाप शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। जो कोई इस श्रेष्ठ तीर्थस्थान में आकर विधिपूर्वक स्नान करके पितरों और देवताओं का तर्पण करता है तो वह ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हो जाता है।

अशाश्वतं जगज्ज्ञात्वा व्रजश्च परमां पुरीम्।
देहान्ते तत्परं ज्ञानं ददाति परमम्पदम्॥१०४॥

जो व्यक्ति इस जगत् को अनित्य समझ कर इस श्रेष्ठ पुरी में निवास करता है तो मृत्यु के समय मैं उसे परमज्ञान और परमपद को प्रदान करता हूँ।

इतीदमुक्त्वा भगवान् समालिङ्ग्य जनार्दनम्।
सहैव प्रमथेशानैः क्षणादन्तरधीयत॥१०५॥
स लब्ध्वा भगवान्कृष्णो विष्वक्सेनं त्रिशूलिनः।
स्वन्देशमगमत्तूर्णी गृहीत्वा परमं बुधः॥१०६॥

ऐसा कहकर महादेव ने जनार्दन का आलिंगन किया और शीघ्र ही प्रमथगणों के साथ अदृश्य हो गये। परम बुद्धिमान् भगवान् विष्णु भी त्रिशूली से विष्वक्सेन को पाकर शीघ्र ही अपने स्थान को चले गये।

एतद्वः कथितं पुण्यं महापातकनाशनम्।
कपालमोचनन्तीर्थं स्थाणोः प्रियकरं शुभम्॥१०७॥
य इमं पठतेऽध्यायं ब्राह्मणानां समीपतः।
मानसैर्वाचिकैः पापैः कायिकैश्च प्रमुच्यते॥१०८॥

इस प्रकार महापातक का नाश करने वाला महादेव का अतिप्रिय, पवित्र इस कपालमोचन नामक तीर्थ के विषय में आपको कहा गया है। जो मनुष्य ब्राह्मण के पास रहकर इस अध्याय का पाठ करता है, वह मानसिक, वाचिक और कायिक सभी प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे कपालमोचनमाहात्म्यं नामैकत्रिंशोऽध्यायः॥३१॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः
(प्रायश्चित्त-नियम)

व्यास उवाच

सुरापस्तु सुरां तप्तामग्निवर्णां पिबेत्तदा।
निर्दग्धकायः स तथा मुच्यते च द्विजोत्तमः॥१॥
गोमूत्रमग्निवर्णं वा गोशकृद्रसमेव वा।
पयो घृतं जलं वाथ मुच्यते पातकात्ततः॥२॥

व्यासजी बोले— सुरापान करने वाला ब्राह्मण अग्नि के समान लाल वर्ण की उष्ण सुरा का पान करेगा। उससे शरीर दग्ध हो जाने पर वह पाप से मुक्त हो जायेगा। अग्निवर्ण का गोमूत्र अथवा गोबर का रस, गाय का दूध, गाय का घी या जल को पीने से उसका शरीर झुलसने से वह पाप मुक्त हो जाता है।

जलार्द्रवासाः प्रयतो ध्यात्वा नारायणं हरिम्।
ब्रह्महत्याव्रतं चाथ चरेत्पापप्रशान्तये॥३॥
सुवर्णस्तेयकृद्विप्रो राजानमभिगम्य तु।
स्वकर्म ख्यापयन्ब्रूयान्मां भवाननुशास्त्विति॥४॥

पाप की शान्ति के लिये पानी में गीले वस्त्र पहन कर पवित्र होकर और नारायण हरि का ध्यान करते हुए ब्रह्महत्या व्रत का पालन करें। सोना चुराने वाला ब्राह्मण राजा के पास जाकर अपनी चोरी को कबूल करते हुए कहे कि हे राजन्! मुझे दण्ड दीजिए।

गृहीत्वा मुसलं राजा सकृद्धन्यात्तु तं स्वयम्।
वधे तु शुद्ध्यते स्तेनो ब्राह्मणस्तपसाथवा॥५॥

राजा स्वयं मूसल लेकर उस ब्राह्मण को एकबार मारेगा जिससे उसकी मृत्यु हो जाने पर अथवा अपनी तपस्या के द्वारा भी वह चोर ब्राह्मण पाप से मुक्त हो सकता है।

स्कन्धेनादाय मुसलं लगुडं वापि खादिरम्।
शक्तिञ्चादाय तीक्ष्णाग्रामायसं दण्डमेव वा॥६॥
राजा तेन च गन्तव्यो मुक्तकेशेन धावता।
आचक्षाणेन तत्पापमेतत्कर्मास्मि शाधि माम्॥७॥

अथवा वह स्वयं अपने कँधे पर मुसल, या खादिर से निर्मित दण्ड अथवा नुकीले भाग वाली शक्ति और लोहे की छड धारणकर, खुले बाल रखकर तीव्र गति से राजा के

पास जाना चाहिए और राजा से कहना चाहिये कि मैंने यह पाप किया है मुझे दण्ड दो।

शासनाद्वा विमोक्षाद्वा स्तेनः स्तेयाद्विमुच्यते।
अशासित्वा तु तं राजा स्तेनस्याप्नोति किल्बिषम्॥८॥
तपसापनोतुमिच्छंस्तु सुवर्णस्तेयजं मलम्।
चीरवासा द्विजोऽरण्ये चरेद्ब्रह्महणो व्रतम्॥९॥
स्नात्वाश्वमेधावभृथे पूतः स्यादथवा द्विजः।
प्रदद्याद्वाथ विप्रेभ्यः स्वात्मतुल्यं हिरण्यकम्॥१०॥
चरेद्वा वत्सरं कृच्छ्रं ब्रह्मचर्यपरायणः।
ब्राह्मणः स्वर्णहारी तु तत्पापस्यापनुत्तये॥११॥

राजा के द्वारा दण्ड देने पर अथवा उसे छोड़ देने पर वह चोर चोरी के पाप से मुक्त हो जाता है। परन्तु राजा उसे दण्ड न दे तो राजा स्वयं उस पाप का भागी हो जाता है। सुवर्ण की चोरी करने वाले पाप को दूर करने की इच्छा से ब्राह्मण को कोपीन पहनकर जंगल में रहते हुए ब्रह्महत्या का व्रत करना चाहिये या ब्राह्मण को अश्वमेध में अवभृथ स्नान करके पवित्र होना चाहिये अथवा अपने वजन के बराबर सोने का दान ब्राह्मणों को करना चाहिये। सुवर्ण की चोरी करने वाले ब्राह्मण को पाप से मुक्त होने के लिये ब्रह्मचर्य परायण होकर एक वर्ष तक कठोर व्रत का पालन करना चाहिये।

गुरोर्भार्यां समारुह्य ब्राह्मणः काममोहितः।
अवगूहेत्स्त्रियं तप्तां दीप्तां कार्ष्णायसीं कृताम्॥१२॥

यदि ब्राह्मण कामासक्त होकर गुरुपत्नी के साथ सहवास करे तो राजा उसे चमकती हुई लोहे की संतप्त मूर्ति से आलिङ्गन करने को कहे।

स्वयं वा शिश्नवृषणावुत्कृत्याधाय चाञ्जलौ।
अभिगच्छेद्दक्षिणाशामानिपातादजिह्मगः॥१३॥

अथवा तो उसे स्वयं पाप के प्रायश्चित्त के लिए अपना लिङ्ग और दोनों वृषण काटकर अञ्जलि में रखकर दक्षिण दिशा की ओर जाना चाहिए, जब तक वह नीचे की ओर गिर न पड़े।

गुर्वङ्गनागमः शुद्ध्यै चरेद्ब्रह्महणो व्रतम्।
शाखां वा कण्टकोपेतां परिष्वज्याथ वत्सरम्॥१४॥
अधःशयीत नियतो मुच्यते गुरुतल्पगः।
कृच्छ्रं वाब्दं चरेद्विप्रश्चीरवासाः समाहितः॥१५॥

अथवा गुरुभार्या के साथ समागम की शुद्धि के लिए वह पापी काँटेदार वृक्ष की शाखा को आलिङ्गन कर एक वर्ष तक नीचे जमीन पर कुछ भी बिछाये बिना शयन करना चाहिए। ऐसा करने से वह व्यभिचारी पाप से मुक्त हो जाता है। अथवा विप्र चीर (फटे-पुराने) वस्त्र पहनकर एकाग्र चित्त से एक वर्ष तक कृच्छ्र व्रत का आचरण करे।

अश्वमेधावभृथके स्नात्वा वा शुद्ध्यते द्विजः।
कालेऽष्टमे वा भुञ्जानो ब्रह्मचारी सदा व्रती॥१६॥
स्थानाशनाभ्यां विहरंस्त्रिरह्नोऽभ्युपयन्नतः।
अधःशायी त्रिभिर्वर्षैस्तद्व्यपोहति पातकम्॥१७॥
चान्द्रायणानि वा कुर्यात्पञ्च चत्वारि वा पुनः।

अथवा वह द्विज अश्वमेध यज्ञ का अवभृथ स्नान करके शुद्ध हो जाया करता है। अथवा आठवें काल में (दो दिन के उपवास के बाद तीसरे दिन) भोजन करता हुआ ब्रह्मचारी एवं सदा व्रतपरायण रहे। और एक ही स्थान पर स्थिति रखकर तथा भोजन लेकर विहार करता हुआ तीन वर्ष तक नीचे जमीन पर शयन करने वाला पुरुष उस पाप को दूर करने में समर्थ होता है। उस व्रत के अन्त में भी उस पापी को पाँच या चार चान्द्रायण व्रत करने चाहिए।

पतितैः संप्रयुक्तात्मा अथ वक्ष्यामि निष्कृतिम्॥१८॥
पतितेन तु संसर्गं यो येन कुरुते द्विजः।
स तत्पापापनोदार्थं तस्यैव व्रतमाचरेत्॥१९॥

जो पतित-धर्मभ्रष्ट लोगों के साथ अच्छी प्रकार संपृक्त है, अब उसकी निष्कृति के विषय में कहता हूँ। जो द्विज जिस पतित के साथ संसर्ग रखता है, उस पाप को दूर करने के लिए वह उसी के व्रत का आचरण करेगा।

तप्तकृच्छ्रं चरेद्वाथ संवत्सरमतन्द्रितः।
षाण्मासिके तु संसर्गे प्रायश्चित्तार्धमाचरेत्॥२०॥
एभिर्व्रतैरपोहन्ति महापातकिनो मलम्।
पुण्यतीर्थाभिगमनात्पृथिव्यां वाथ निष्कृतिः॥२१॥

तन्द्रा से रहित होकर उस द्विज को तप्तकृच्छ्र व्रत का समाचरण करना चाहिए। वह व्रत भी पूरे एक वर्ष तक करे। यदि पतित के साथ संसर्ग केवल छः मास तक ही रहा हो तो उसका प्रायश्चित भी आधा ही करना चाहिए। इन्हीं व्रतों के द्वारा महापातकी भी पापरूपी मल को दूर कर लेते हैं। अथवा पृथिवी में जो परम पुण्य तीर्थ हैं उनमें वह परिभ्रमण करे तो भी ऐसे पातकों की निष्कृति हुआ करती है।

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमम्।
कृत्वा तैश्चापि संसर्गं ब्राह्मण: कामचारत:॥ २२॥
कुर्यादनशनं विप्र: पुनस्तीर्थे समाहित:।
ज्वलन्तं वा विशेदग्निं ध्यात्वा देवं कपर्दिनम्॥ २३॥
न ह्यन्या निष्कृतिर्दृष्टा मुनिभिर्धर्मवादिभि:।
तस्मात्पुण्येषु तीर्थेषु दहन्वापि स्वदेहकम्॥ २४॥

ब्रह्महत्या, मदिरापान, स्तेय (चोरी) या गुरुपत्नी के साथ गमनरूप पाप करता है, तो उन्हें भी पूर्वोक्त संसर्ग का प्रायश्चित्त करके शुद्ध होना चाहिए। यदि वह ब्राह्मण हो तो उसे अपनी इच्छा से प्रायश्चित्त कर लेना चाहिए। यदि उपर्युक्त कोई महापाप किया हो तो ब्राह्मण को किसी पवित्र तीर्थ में जाकर समाहितचित्त होकर अनशन करना चाहिए। अथवा देव कपर्दी का ध्यान करते हुए प्रज्वलित अग्नि में प्रवेश कर लेना चाहिए। क्योंकि धर्मवादी मुनियों ने इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी उपाय महा पातकियों की शुद्धि के लिये नहीं देखा है। इसलिये पुण्य तीर्थों में अपने देह को दग्ध करते हुए भी अपनी शुद्धि अवश्य ही करनी चाहिए।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे द्वात्रिंशोऽध्याय:॥ ३२॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्याय:

(प्रायश्चित्त-नियम)

व्यास उवाच

गत्वा दुहितरं विप्र: स्वसारं वा स्नुषामपि।
प्रविशेज्ज्वलनन्दीप्तं मतिपूर्वमिति स्थिति:॥ १॥

यदि कोई ब्राह्मण अपनी पुत्री, बहन या पुत्रवधू के साथ व्यभिचार करता है, तो उसे बुद्धिपूर्वक जलती हुई अग्नि में प्रवेश कर जाना चाहिए।

मातृष्वसां मातुलानीं तथैव च पितृष्वसाम्।
भागिनेयीं समारुह्य कुर्यात्कृच्छ्रातिकृच्छ्रकौ॥ २॥
चान्द्रायणञ्च कुर्वीत तस्य पापस्य शान्तये।
ध्यायन्देवं जगद्योनिमनादिनिधनं हरिम्॥ ३॥

इसी प्रकार अपनी मौसी, मामी या बुआ अथवा भाँजी के साथ व्यभिचार करता है, तो उसे प्रायश्चित्तरूप में कृच्छ्रातिकृच्छ्र व्रत करना चाहिए। अथवा उस पाप की शान्ति हेतु जगत् के योनिरूप, आदि और अन्त से रहित देव विष्णु का ध्यान करते हुए चान्द्रायण व्रत करना चाहिए।

भ्रातृभार्यां समारुह्य कुर्यात्तत्पापशान्तये।
चान्द्रायणानि चत्वारि पञ्च वा सुसमाहित:॥ ४॥

यदि कोई पुरुष भाई की पत्नी के साथ गमन करे तो उस पाप की शान्ति के लिए अच्छी प्रकार सावधान होकर चार या पाँच चान्द्रायण व्रत करने चाहिए।

पितृष्वस्रेयीं गत्वा तु स्वस्त्रीयां मातुरेव च।
मातुलस्य सुतां वापि गत्वा चान्द्रायणं चरेत्॥ ५॥

इसी प्रकार बुआ की लड़की, बहन की लड़की, मौसी की लड़की या मामा की लड़की के साथ समागम करके प्रायश्चित्तरूप में (पुन: पाप न करने की प्रतिज्ञा करके) चान्द्रायण व्रत करे।

सखिभार्यां समारुह्य गत्वा श्यालीं तथैव च।
अहोरात्रोषितो भूत्वा तत: कृच्छ्रं समाचरेत्॥ ६॥

अपने मित्र की पत्नी अथवा साली के साथ समागम करने पर एक दिन-रात का उपवास करके तप्तकृच्छ्र नामक व्रत का आचरण करे।

उदक्या गमने विप्रस्त्रिरात्रेण विशुध्यति।
चाण्डालीगमने चैव तप्तकृच्छ्रत्रयं विदु:॥ ७॥
शुद्धि: सान्तपनेन स्यान्नान्यथा निष्कृति: स्मृता।

यदि कोई ब्राह्मण रजस्वला के साथ गमन करता है, तो तीन रात्रि के बाद शुद्धि होती है। चाण्डाली के साथ मैथुन करने पर तीन बार तप्तकृच्छ्र और सान्तपन व्रत करने पर ही शुद्धि कही गई है, अन्यथा निष्कृति नहीं है।

मातृगोत्रां समारुह्य समानप्रवरां तथा॥ ८॥
चान्द्रायणेन शुध्येत प्रयतात्मा समाहित:।
ब्राह्मणो ब्राह्मणीङ्गत्वा कृच्छ्रमेकं समाचरेत्॥ ९॥
कन्यकान्दूषयित्वा तु चरेच्चान्द्रायणव्रतम्।

माता के गोत्र में उत्पन्न तथा समान गोत्र वाली स्त्री के साथ समागम करने पर एकाग्रचित्त से चान्द्रायण महाव्रत से ही शुद्धि होती है। ब्राह्मण यदि किसी भी ब्राह्मणी के साथ मैथुन करे, तो उसे फिर पाप के अपनोदन के लिये एक ही कृच्छ्र व्रत का आचरण पर्याप्त होता है। यदि किसी कन्या का शील भङ्ग करके दूषित करे तो उसको भी चान्द्रायण महाव्रत का ही आचरण करना चाहिए।

अमानुषीषु पुरुष उदक्यायामयोनिषु॥ १०॥
रेत: सिक्त्वा जले चैव कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत्।
वार्द्धकीगमने विप्रस्त्रिरात्रेण विशुद्ध्यति॥ ११॥

गवि मैथुनमासेव्य चरेच्चान्द्रायणव्रतम्।
वेश्यायां मैथुनं कृत्वा प्राजापत्यं चरेद्द्विजः॥ १२॥

कोई पुरुष अमानुषी, रजस्वला और अयोनि में तथा जल में अपना वीर्यपात करता है, तो उसे शुद्धि के लिये कृच्छ्र सान्तपन व्रत का पालन करना चाहिए। यदि वार्द्धकी (व्यभिचारिणी) स्त्री के साथ गमन करने पर विप्र तीन रात्रि में शुद्ध होता है। गौ में मैथुन का आसेवन करके चान्द्रायण व्रत को ही करना चाहिए। वेश्या में मैथुन करके द्विज शुद्धि के लिये प्राजापत्य व्रत करे।

पतितां च स्त्रियङ्गत्वा त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुद्ध्यति।
पुल्कसीगमने चैव कृच्छ्रं चान्द्रायणं चरेत्॥ १३॥
नटीं शैलूषकीं चैव रजकीं वेणुजीविनीम्।
गत्वा चान्द्रायणङ्कुर्यात्तथा चर्मोपजीविनीम्॥ १४॥
ब्रह्मचारी स्त्रियङ्गच्छेत्कथञ्चित्काममोहितः।
सप्तागारं चरेद्भैक्षं वसित्वा गर्दभाजिनम्॥ १५॥
उपस्पृशेत्त्रिषवणं स्वपापं परिकीर्तयन्।
संवत्सरेण चैकेन तस्मात्पापात्प्रमुच्यते॥ १६॥

पतित स्त्री से समागम कर तीन कृच्छ्रों से विशुद्ध हुआ करता है। पुल्कसी के गमन में कृच्छ्र और चान्द्रायण व्रत करना चाहिए। नटी, नर्तकी, धोबिन, बाँस बेचने वाली और चमड़े का काम करने वाली स्त्री के साथ सहवास करने से चान्द्रायण व्रत करना चाहिए। यदि कोई भी ब्रह्मचर्य व्रत के धारण करने वाला द्विज कामदेव से मोहित होकर किसी भी तरह किसी स्त्री का गमन करे तो उसकी विशुद्धि का विधान यही है कि उसे गधे का चर्म धारणकर सात घरों में भिक्षा मांगनी चाहिए। वह त्रिषवण में अर्थात् तीनों कालों में स्नान कर उपस्पर्शन करता रहे और अपने पाप को सब के समक्ष कहते हुए निरन्तर एक वर्ष पर्यन्त व्रताचरण करे तो उस पाप से उसकी मुक्ति होती है।

ब्रह्महत्याव्रतञ्चापि षण्मासान्विचरन्यमी।
मुच्यते ह्यवकीर्णी तु ब्राह्मणानुमते स्थितः॥ १७॥
सप्तरात्रमकृत्वा तु भैक्षचर्याग्निपूजनम्।
रेतसश्च समुत्सर्गे प्रायश्चित्तं समाचरेत्॥ १८॥
ओंकारपूर्विकाभिस्तु महाव्याहृतिभिः सदा।
संवत्सरन्तु भुञ्जानो नक्तं भिक्षाशनः शुचिः॥ १९॥
सावित्रीञ्च जपेन्नित्यं सत्वरः क्रोधवर्जितः।
नदीतीरेषु तीर्थेषु तस्मात्पापाद्विमुच्यते॥ २०॥

यदि यमी (संन्यासी) है, तो ब्रह्महत्या के व्रत को छः मास तक करने से पापमुक्त हो जाया करता है, ऐसा ब्राह्मणों का कहना है। यदि कोई ब्रह्मचारी सात दिन तक भैक्षचर्या और अग्निदेव का पूजन नहीं करता, और वीर्यस्खलन करने पर प्रायश्चित करना चाहिए। अथवा एक वर्ष तक ओंकारपूर्वक महाव्याहृतियों से सदा रात्रि में पवित्र होकर भिक्षा द्वारा भोजन करके गायत्री का नित्य जप करें तथा शीघ्र ही क्रोध को त्याग दे और नदी के तटों पर या तीर्थों में नित्य वास करे तो इस पाप से छुटकारा प्राप्त कर लेता है।

हत्वा तु क्षत्रियं विप्रः कुर्याद्ब्रह्महणो व्रतम्।
अकामतो वै षण्मासान्दद्यात्पञ्चशतङ्गवाम्॥ २१॥
अब्दं चरेद्ध्यानयुतो वनवासी समाहितः।
प्राजापत्यं सान्तपनं तप्तकृच्छ्रन्तु वा स्वयम्॥ २२॥

विप्र यदि किसी क्षत्रिय का वध कर दे तो उसे भी ब्रह्महत्या का ही व्रत करना चाहिए और यदि बिना इच्छा के ब्राह्मण द्वारा ऐसा हो जाय, तो छः मास तक पाँच सौ गौओं का दान करना चाहिए। अथवा ध्यानयुक्त होकर एक वर्ष पर्यन्त वन में निवास करते हुए एकाग्रचित्त से प्राजापत्य व्रत, सान्तपन व्रत अथवा तप्तकृच्छ्र व्रत ही करे।

प्रमादात्कामतो वैश्यं कुर्यात्संवत्सरत्रयम्।
गोसहस्रन्तु पादन्तु प्रदद्याद् ब्रह्मणो व्रतम्॥ २३॥
कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ वा कुर्याच्चान्द्रायणमथापि वा।

प्रमादवश या अपनी इच्छा से किसी वैश्य का हनन करने पर तीन वर्ष पर्यन्त एक हजार गायों का दान करना चाहिए और एक चतुर्थांश ब्रह्महत्या का व्रत भी करना चाहिए। अथवा उसे कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र दोनों व्रत तथा चान्द्रायण व्रत करना चाहिए।

संवत्सरं व्रतं कुर्याच्छूद्रं हत्वा प्रमादतः॥ २४॥
गोसहस्रार्द्धपादञ्च दद्यात्तत्पापशान्तये।

यदि प्रमादवश या अनिच्छा से किसी शूद्र का वध कर देता है, तो उसे पाप की शांति के लिए पाँच सौ गायों का दान करना चाहिए।

अष्टौ वर्षाणि वा त्रीणि कुर्याद् ब्रह्महणो व्रतम्।
हत्वा तु क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं चैव यथाक्रमम्॥ २५॥
निहत्य ब्राह्मणीं विप्रस्त्वष्टवर्षं व्रतञ्चरेत्।
राजन्यां वर्षषट्कं तु वैश्यां संवत्सरत्रयम्॥ २६॥

वत्सरेण विशुद्ध्येत शूद्रीं हत्वा द्विजोत्तमः।

जिस किसी ब्राह्मण ने क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र का वध किया हो, उसे क्रमशः आठ वर्ष, छः वर्ष तथा तीन वर्ष तक ब्रह्महत्या व्रत का पालन करना चाहिए। विप्र यदि किसी ब्राह्मणी की हत्या कर डाले तो आठ वर्ष तक उसे व्रत करना चाहिए। क्षत्रिय स्त्री के वध पर छः वर्ष और वैश्य स्त्री के वध में तीन वर्ष तक व्रत करना चाहिए। यदि विप्र किसी शूद्र स्त्री का वध कर डाले तो उसे विशुद्धि के लिये एक वर्ष पर्यन्त व्रत करना चाहिए।

वैश्यां हत्वा द्विजातिस्तु किञ्चिद्दद्याद्‌द्विजातये॥ २७॥
अन्त्यजानां वधे चैव कुर्याच्चान्द्रायणं व्रतम्।
पराकेणाथवा शुद्धिरित्याह भगवानजः॥ २८॥

विशेष यह भी है कि यदि द्विजाति किसी वैश्य का वध करे तो उसे ब्रह्मणादि के लिये कुछ दान भी अवश्य करना चाहिए। अन्त्यजों के वध में भी चान्द्रायण व्रत करके ही विशुद्धि का विधान है। भगवान् अज ने यह भी कहा है कि पराक नामक व्रत से भी शुद्धि हो जाती है।

मण्डूकं नकुलङ्काकं विडालं खरमूषकौ।
श्वानं हत्वा द्विजः कुर्यात्षोडशांशं महाव्रतम्॥ २९॥
पयः पिबेत्त्रिरात्रन्तु श्वानं हत्वा ह्यतन्द्रितः।
मार्जारं वाथ नकुलं योजनञ्चाध्वनो व्रजेत्॥ ३०॥

यदि कोई द्विजवर्ण मेंढक, नेवला, कौआ, बिडाल, खर और मूषक तथा कुत्ते की हत्या करता है, तो पाप से विशुद्ध होने के लिये महाव्रत का सोलहवां भाग अवश्य ही करना उचित है। किसी श्वान की हत्या करके तीन रात्रि तक अतन्द्रित होकर दूध का पान करें। मार्जार अथवा नकुल का वध करके मार्ग से एक योजन तक गमन करे।

कृच्छ्रं द्वादशरात्रन्तु कुर्यादश्ववधे द्विजः।
अर्चां कार्ष्णायसीं दद्यात्सर्पं हत्वा द्विजोत्तमः॥ ३१॥
पलालभारकं षण्डे सीसकञ्चैकमाषकम्।
घृतकुम्भं वराहे तु तिलद्रोणन्तु तित्तिरे॥ ३२॥

अश्व का वध करने पर द्विज को बारह रात्रि तक कृच्छ्र व्रत करना चाहिए। द्विजोत्तम को सर्प का वध करने पर काले लोहे की सर्पमूर्ति बनवाकर दान करना चाहिए। षण्ड अथवा नपुंसक के वध में एक पलालभारक (आठ हजार तोला) और एक माषक शीशा का दान करना चाहिए। वराह के वध में घृतपूर्ण कुम्भ और तीतर के वध में एक द्रोण तिलों का दान करना चाहिए।

शुकं द्विहायनं वत्सं क्रौञ्चं हत्वा त्रिहायनम्।
हत्वा हंसं बलाकाञ्च बकं बर्हिणमेव च॥ ३३॥
वानरं श्येनभासञ्च स्पर्शयेद्ब्राह्मणाय गाम्।
क्रव्यादांस्तु मृगान्हत्वा धेनुन्दद्यात्पयस्विनीम्॥ ३४॥

शुक को मारने पर दो वर्ष के बछड़े का और क्रौञ्च पक्षी का वध करने पर तीन साल के बछड़े का दान करना चाहिए। हंस-बलाका-बक-मोर-वानर-बाज या भास पक्षी का वध करने पर ब्राह्मण को गौ का स्पर्श करावे अर्थात् उसका दान करे। इसी प्रकार मांसाहारी पशुपक्षियों का या मृगों का वध करके छोटे बछड़े का दान देना चाहिए।

अक्रव्यादान्वत्सतरीमुष्ट्रं हत्वा तु कृष्णलम्।
किञ्चिद्देयन्तु विप्राय दद्यादस्थिमतां वधे॥ ३५॥

अमांसाहारी पशु-पक्षियों का वध करने पर छोटी बछड़ी का दान दें और उष्ट्र की हत्या करने पर ब्राह्मण को एक रत्ती सुवर्ण आदि किसी धातु का दान देना चाहिए। अस्थियुक्त पशु आदि का वध करने से ब्रह्मण को कुछ दान अवश्य ही देना चाहिए।

अनस्थ्नाञ्चैव हिंसायां प्राणायामेन शुध्यति।
फलादानान्तु वृक्षाणां छेदने जप्यमृक्शतम्॥ ३६॥

जिनके अस्थियाँ नहीं होती हैं, ऐसे प्राणियों के वध में तो केवल प्राणायाम करने से ही द्विज की पाप से शुद्धि हो जाया करती है। परन्तु फल प्रदान करने वाले वृक्षों को काटने पर ऋग्वेद की सौ ऋचाओं का जप करना चाहिए।

गुल्मवल्लीलतानान्तु पुष्पितानाञ्च वीरुधाम्।
अण्डजानां च सर्वेषां स्वेदजानां च सर्वशः॥ ३७॥
फलपुष्पोद्भवानाञ्च घृतप्राशो विशोधनम्।

गुल्म, वल्ली, लता और पुष्पों वाले वृक्षादि का छेदन करने में तथा सभी अण्डज प्राणियों के एवं स्वेदज जीवों के वध में तथा फल एवं पुष्पों के उद्भव करने वालों के छेदन में घृत का प्राश कर लेने से ही विशुद्धि होती है।

हस्तिनाञ्च वधे दृष्टं तप्तकृच्छ्रं विशोधनम्॥ ३८॥
चान्द्रायणं पराकं वा गां हत्वा तु प्रमादतः।
मतिपूर्ववधे चास्याः प्रायश्चित्तं न विद्यते॥ ३९॥

हाथियों के वध में तो तप्तकृच्छ्र ही विशेष शोधन करने वाला देखा गया है। प्रमादवश गौ का वध हो जाने पर

चान्द्रायण महाव्रत या पराक व्रत करे। परन्तु जानबूझ बुद्धिपूर्वक गोवधरूपी पाप होने पर उसकी शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त ही नहीं है।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे प्रायश्चित्तनिरूपणे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३३॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

(प्रायश्चित्त नियम कथन)

व्यास उवाच

मनुष्याणान्तु हरणं कृत्वा स्त्रीणां गृहस्य च।
वापीकूपजलानाञ्च शुद्ध्येच्चान्द्रायणेन तु॥ १॥

व्यासजी बोले— पुरुष, स्त्री और गृह का अपहरण तथा वापी (बावली), कूप (कुएँ) के जल का हरण करने वाले मनुष्यों की शुद्धि चान्द्रायण व्रत से होती है।

द्रव्याणामल्पसाराणां स्तेयं कृत्वाऽन्यवेश्मनः।
चरेत्सांतपनं कृच्छ्रं तन्निर्यात्यात्मशुद्धये॥ २॥

दूसरे के घर से कम मूल्य की वस्तुएँ चुराने वालों की शुद्धि सान्तपन व्रत करना चाहिए। इस प्रकार वह (पाप) सम्पूर्णरूप से दूर होता है।

धान्यान्नधनचौर्यन्तु कृत्वा कामाद्द्विजोत्तमः।
स्वजातीयगृहादेव कृच्छ्रार्द्धेन विशुद्ध्यति॥ ३॥

यदि ब्राह्मण लोभ के कारण सजातीय के घर से धान्य, अन्न एवं धन को चुराता है, तो एक साल तक प्राजापत्य व्रत करने से उसकी शुद्धि होती है।

भक्ष्यभोज्योपहरणे यानशय्यासनस्य च।
पुष्पमूलफलानाञ्च पंचगव्यं विशोधनम्॥ ४॥

खाने-पीने योग्य भोज्य पदार्थ, वाहन, शय्या, आसन, पुष्प, मूल और फल चुराने से पंचगव्य (गोमूत्र, गोबर, गाय का दूध, दही और घी) के द्वारा शुद्धि करनी चाहिए।

तृणकाष्ठद्रुमाणां च शुष्कान्नस्य गुडस्य च।
चैलचर्मामिषाणां च त्रिरात्रं स्यादभोजनम्॥ ५॥

तृण, काष्ठ, वृक्ष, सूखा अन्न, गुड़, वस्त्र, चमड़ा या मांस— इनमें से कुछ भी चुराया हो तो, तीन रात तक उपवास करना चाहिए।

मणिमुक्ताप्रवालानां ताम्रस्य रजतस्य च।
अयस्कांतोपलानाञ्च द्वादशाहं कणाशनम्॥ ६॥
कार्पासस्यैव हरणे द्विशफैकशफस्य च।
पुष्पगन्धौषधीनाञ्च पिबेच्चैव त्र्यहं पयः॥ ७॥

मणि, मुक्ता, प्रवाल, ताँबा, चाँदी, लोहा, काँसा और पत्थर में से कोई भी चीज चुराने से (प्रायश्चित्तरूप में) बारह दिन अनाज के कुछ कण खाकर रहना चाहिए। कपास या उससे निर्मित वस्त्र, दो खुर वाले या एक खुर वाले पशु, फूल, इत्र और औषधि को चुराने से तीन दिनों तक दूध पीकर रहना चाहिए।

नरमांसाशनं कृत्वा चान्द्रायणमथाचरेत्।
काकञ्चैव तथा श्वानञ्जग्ध्वा हस्तिनमेव वा॥ ८॥
वराहं कुक्कुटं वाथ तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यति।

मनुष्य का माँस खाने से चान्द्रायण व्रत करना चाहिए। कौआ, कुत्ता, हाथी, ग्राम्यशूकर और ग्राम्यमुर्गा— इनमें से किसी का मांस खाने से तप्तकृच्छ्र व्रत के द्वारा शुद्धि होती है।

क्रव्यादानाञ्च मांसानि पुरीषं मूत्रमेव वा॥ ९॥
गोगोमायुकपीनां च तदेव व्रतमाचरेत्।
शिशुमारन्तथा चाषं मत्स्यमांसं तथैव च॥ १०॥
उपोष्य द्वादशाहञ्च कूष्माण्डैर्जुहुयाद् घृतम्।
नकुलोलूकमार्जाराञ्जग्ध्वा सान्तपनं चरेत्॥ ११॥

मांसाहारी पशु-पक्षियों का माँस, मल-मूत्र, साँड, सियार और बन्दर का माँस, शिशुमार (जलजन्तु विशेष) नीलकण्ठ तथा अन्य मछलियों को खाने से भी तप्तकृच्छ्र व्रत करना चाहिए अथवा बारह दिन उपवास रहकर, कूष्माण्ड के साथ अग्नि में घी की आहुति देनी चाहिए। नेवला, उल्लू और बिल्ली का माँस खाने से सान्तपन व्रत करना चाहिए।

श्वापदोष्ट्रखराञ्जग्ध्वा तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यति।
प्रकुर्याच्चैव संस्कारं पूर्वेण विधिनैव तु॥ १२॥

कुत्ते के पैरों जैसे पैरवाले पशु, ऊँट और गधा का मांस खाने लेने पर तप्तकृच्छ्र व्रत से शुद्धि होती है तथा पूर्वोक्त विधि से (शुद्धि के लिए) संस्कार भी करना चाहिए।

बकं चैव बलाकाञ्च हंसकारण्डवांस्तथा।
चक्रवाकपलं जग्ध्वा द्वादशाहमभोजनम्॥ १३॥

यदि कोई बगुला, बलाका, हंस, कारण्डव (हंस विशेष) और चक्रवाक का माँस खा ले, तो उसे बारह दिनों तक उपवास रखना चाहिए।

कपोतटिट्टिभांश्चैव शुकं सारसमेव च।
उलूकं जालपादञ्च जग्ध्वाप्येतद्व्रतञ्चरेत्॥ १४॥
शिशुमारं तथा चाषं मत्स्यमांसं तथैव च।
जग्ध्वा चैव कटाहारमेतदेव व्रतं चरेत्॥ १५॥

कबूतर, टिट्टिभ, तोता, सारस, उल्लू और बत्तख पक्षी का माँस खाने से बारह दिन उपवास करना चाहिए। शिशुमार नामक जलचर प्राणी, चाष पक्षी और मछली का मांस खाने से, या बिना सींग वाले छोटे भैंसे का मांस जिसने खाया हो, उसे भी वही व्रत करना चाहिए।

कोकिलं चैव मत्स्यादान्मण्डूकं भुजगन्तथा।
गोमूत्रयावकाहारो मासेनैकेन शुद्ध्यति॥ १६॥
जलेचरांश्च जलजान्प्रणुदान्नख विष्किरान्।
रक्तपादांस्तथा जग्ध्वा सप्ताहं चैतदाचरेत्॥ १७॥

कोयल, ऊदबिलाव, मेढक और साँप खाने पर एक महीने तक गोमूत्र में जौ उबाल कर खाने से शुद्धि होती है। जल में रहने वाले, जल में उत्पन्न होने वाले (शंखादि) कठफोड़वा जैसे चोंच मारने वाले पक्षी, बिखरे हुए दानों को चुगने वाले तीतर जैसे पक्षी और रक्तपाद (तोता) का माँस खाने से एक सप्ताह तक गोमूत्र में जौ उबालकर खाना चाहिए।

शुनो मांसं शुष्कमांसमात्मार्थं च तथा कृतम्।
भुक्त्वा मांसं चरेदेतत्तत्पापस्यापनुत्तये॥ १८॥
वृन्ताकं भूस्तृणे शिग्रुं कुटकं चटकं तथा।
प्राजापत्यं चरेज्जग्ध्वा खड्गं कुम्भीकमेव च॥ १९॥

कुत्ते का माँस तथा सूखा माँस अपने खाने के लिए तैयार किया हो, तो उसे पाप का नाश करने के लिए एक महीने तक गोमूत्र में पकाया गया जौ खाना चाहिए। बैंगन, जमीन के नीचे उगने वाले कन्द-मूल, सहिजन,[1] खुम्भी (मशरूम) गौरैया, शंख और कुम्भीक (जलचर या वनस्पति) खाने से प्राजापत्य व्रत करना चाहिए।

पलाण्डुं लशुनं चैव भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत्।
नालिकां तण्डुलीयं च प्राजापत्येन शुद्ध्यति॥ २०॥
अश्मन्तकं तथा पोतं तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यति।
प्राजापत्येन शुद्धिः स्यात्कुसुम्भस्य च भक्षणे॥ २१॥

प्याज या लहसुन खाने से भी चान्द्रायण करे तथा कमल नाल और चौलाई खाने से प्राजापत्य व्रत करने से शुद्धि होती है। अश्मन्तक[2] (कचनार) और पात नामक अभक्ष्य खाने से तप्तकृच्छ्र और कुसुंभ[3] खाने से प्राजापत्य व्रत से शुद्धि होती है।

अलाबुं किंशुकञ्चैव भुक्त्वाप्येतद्व्रतञ्चरेत्।
एतेषाञ्च विकाराणि पीत्वा मोहेन वा पुनः॥ २२॥
गोमूत्रयावकाहारः सप्तरात्रेण शुद्ध्यति।
उदुम्बरञ्च कामेन तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यति।
भुक्त्वा चैव नवश्राद्धे मृतके सूतके तथा॥ २३॥
चान्द्रायणेन शुद्ध्येत ब्राह्मणः सुसमाहितः।

लौकी और किंशुक (पलाश) खाने से प्राजापत्य व्रत करना चाहिए। अज्ञानतावश खराब हो गए दूध को पी लेने से, सात रात्रियों तक गोमूत्र में पकाया हुआ जौ खाने से शुद्धि होती है। स्वेच्छा से गूलर वृक्ष खा लेने पर तप्तकृच्छ्र व्रत करने से शुद्धि होती है। जो मृत्यु में नव दिन बाद होने वाले श्राद्ध में, और सूतक के अवसर पर भोजन करता है, वह ब्राह्मण एकाग्रचित होकर चान्द्रायण व्रत करने पर शुद्ध होता है।

यस्याग्नौ हूयते नित्यमन्नस्याग्रं न दीयते॥ २४॥
चांद्रायणञ्चरेत्सम्यक् तस्यान्नप्राशने द्विजः।
अभोज्यान्नन्तु सर्वेषां भुक्त्वा चान्नमुपस्कृतम्॥ २५॥
अन्तावसायिनाञ्चैव तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यति।

जिस गृहस्थ की अग्नि में नित्य अग्निहोत्र होता है, परन्तु अन्न का प्रथम भाग दान नहीं करता, ऐसे पुरुष का अन्न यदि ब्राह्मण खाता है, तो उसकी शुद्धि चान्द्रायण व्रत के द्वारा होती है। सभी जातियों से प्राप्त अभोज्य अन्न और निम्न जाति वालों का अन्न खाने से तप्तकृच्छ्र व्रत के द्वारा शुद्ध होना चाहिए।

चण्डालान्नं द्विजो भुक्त्वा सम्यक् चान्द्रायणञ्चरेत्॥ २६॥
बुद्धिपूर्वन्तु कृच्छ्राब्दं पुनः संस्कारमेव च।
असुरामद्यपानेन कुर्याच्चान्द्रायणव्रतम्॥ २७॥

जो ब्राह्मण चाण्डाल का अन्न खा ले, तो उसे विधिपूर्वक चान्द्रायण व्रत करना चाहिए। परन्तु जो उस अन्न को जानबूझकर खाता है, तो एक साल तक प्राजापत्य करने के

1. शोभाञ्जनः शिग्रुस्तीक्ष्णगन्धकाक्षीवमोचकाः। Hyperanthera Moringa.

2. Bauhinia Veriegata Roxb.

3. कुसुम्भं वह्निशिखं वस्त्ररञ्जकमित्यपि (भावप्रकाश)

बाद पुनः उसका संस्कार करना चाहिए। जिसने सुरा के अतिरिक्त दूसरा मद्यपान किया हो, उसे चान्द्रायण व्रत करना चाहिए।

अभोज्यान्नन्तु भुक्त्वा च प्राजापत्येन शुद्ध्यति।
विण्मूत्रप्राशनं कृत्वा रेतसश्चैतदाचरेत्॥ २८॥

अभोज्य अन्न खाकर प्राजापत्य व्रत से शुद्धि होती है। मल, मूत्र तथा वीर्य भक्षण कर लेने पर भी यही प्राजापत्य व्रत करना चाहिए।

अनादिष्टे तु चैकाहं सर्वत्र तु यथार्थतः।
विड्वराहखरोष्ट्राणां गोमायोः कपिकाकयोः॥ २९॥
प्राश्य मूत्रपुरीषाणि द्विजश्चान्द्रायणं चरेत्।

अविहित कार्य करने से उत्पन्न होने वाले पाप में नियमानुसार एक दिन का उपवास करना चाहिए। ग्राम्यशूकर, गधा, ऊँट, सियार, बन्दर या कौए का मूत्र या मल खाने से, ब्राह्मण को चान्द्रायण व्रत करना चाहिए।

अज्ञानात्प्राश्य विण्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेव च॥ ३०॥
पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः।

अनजाने में, मनुष्य के मल, मूत्र और सुरा से छुई हुई किसी वस्तु को खा लेने से तीनों वर्णों का पुनः उपनयन संस्कार होता है।

क्रव्यादां पक्षिणां चैव प्राश्यमूत्रपुरीषकम्॥ ३१॥
महासांतपनं मोहात्तथा कुर्याद्विजोत्तमः।
भासमण्डूककुररे विष्किरे कृच्छ्रमाचरेत्॥ ३२॥

मांसाहारी पशुओं या पक्षियों का मल-मूत्र अज्ञानतावश खा लेने से, ब्राह्मण श्रेष्ठों को सान्तपत व्रत करना चाहिए। गिद्ध, मेढ़क, कुरर और फैले हुए दानों को चुगने वाले तीतर जैसे पक्षियों का माँस खाने से, कृच्छ्र व्रत करना चाहिए।

प्राजापत्येन शुद्ध्येत ब्राह्मणोच्छिष्टभोजने।
क्षत्रिये तप्तकृच्छ्रं स्याद्वैश्ये चैवातिकृच्छ्रकम्॥ ३३॥
शूद्रोच्छिष्टन्द्विजो भुक्त्वा कुर्याच्चान्द्रायणव्रतम्।
सुरायाः भाण्डके वारि पीत्वा चान्द्रायणञ्चरेत्॥ ३४॥

ब्राह्मण का जूठा भोजन खाने से प्राजापत्य, क्षत्रिय का खाने से तप्तकृच्छ्र और वैश्य का खाने से अतिकृच्छ्र व्रत करना चाहिए। शूद्र का जूठा खाने से और सुरा-पात्र में पानी पीने से, ब्राह्मण चान्द्रायण व्रत करेगा।

समुच्छिष्टं द्विजो भुक्त्वा त्रिरात्रेण विशुध्यति।
गोमूत्रयावकाहारः पीतशेषञ्च वा गवाम्॥ ३५॥

यदि कोई ब्राह्मण किसी का जूठा खाता है, तो तीन रात उपवास करके शुद्ध होता है। गाय के पी लेने के बाद बचा हुआ पानी पीने से गोमूत्र मिश्रित कण का आहार करने से शुद्धि होती है।

अपो मूत्रपुरीषाद्यैर्दूषिताः प्राशयेद्यदि।
तदा सान्तपनं कृच्छ्रं व्रतं पापविशोधनम्॥ ३६॥

यदि मल-मूत्रादि से दूषित जल को पी लेता है, तो सान्तपन और कृच्छ्र व्रत से पाप की शुद्ध की जा सकती है।

चाण्डालकूपे भाण्डेषु यदि ज्ञानात्पिबेज्जलम्।
चरेत्सांतपनं कृच्छ्रं ब्राह्मणः पापशोधनम्॥ ३७॥

कोई द्विज चाण्डाल के कुएँ या पात्र से, जानबूझकर पानी पीता है, तो पाप को शोधन करने वाला सान्तपन या कृच्छ्र व्रत करना चाहिए।

चाण्डालेन तु संस्पृष्टं पीत्वा वारि द्विजोत्तमः।
त्रिरात्रव्रतमुख्येन पञ्चगव्येन शुध्यति॥ ३८॥

चाण्डाल के द्वारा स्पर्श किया हुआ जल पी लेने से, ब्राह्मण श्रेष्ठ शुद्धि के लिये पंचगव्य पीकर तीन रात तक उपवास करे।

महापातकिसंस्पर्शे भुक्त्वा स्नात्वा द्विजो यदि।
बुद्धिपूर्वं यदा मोहात्तप्तकृच्छ्रं समाचरेत्॥ ३९॥

यदि ब्राह्मण जानबूझ कर या अनजाने में, किसी महापापी का स्पर्श करे या भोजन करे अथवा स्नान करे तो, उसे तप्तकृच्छ्र व्रत करना चाहिए।

स्पृष्ट्वा महापातकिनं चाण्डालञ्च रजस्वलाम्।
प्रमादाद्भोजनं कृत्वा त्रिरात्रेण विशुध्यति॥ ४०॥

यदि महापापी, चाण्डाल और रजस्वला स्त्री को छूकर प्रमादवश (अपवित्र ही) भोजन कर लेता है, तो उसे तीन रात उपवास रहकर शुद्ध होना पड़ेगा।

स्नानार्हो यदि भुञ्जीत ह्यहोरात्रेण शुध्यति।
बुद्धिपूर्वं तु कृच्छ्रेण भगवानाह पद्मजः॥ ४१॥

जो स्नान करने योग्य हो, फिर भी यदि स्नान किये बिना ही अज्ञानतावश भोजन कर लेता है, तो एक दिन-रात उपवास करके और जानबूझकर भोजन करने से कृच्छ्रव्रत करके शुद्ध हो सकता है, ऐसा भगवान् ब्रह्मा ने कहा है।

भुक्त्वा पर्युषितादीनि गवादिप्रतिदूषिताः।
भुक्त्वोपवासङ्कुर्वीत कृच्छ्रपादमथापि वा॥ ४२॥

जो कोई बासी हुआ भोजन या गाय आदि पशुओं द्वारा दूषित किया हुआ अन्न खा लेता है, तो एक उपवास करे या एक चौथाई कृच्छ्र व्रत करना चाहिए।

संवत्सरान्ते कृच्छ्रं तु चरेद्विप्रः पुनः पुनः।
अज्ञानभुक्तशुद्ध्यर्थं ज्ञातस्य तु विशेषतः॥४३॥

पूरे वर्षभर यदि अज्ञानवश, अभक्ष्य वस्तु खाई हो और विषेषतः जानबूझकर खाई हो तो बार-बार कृच्छ्र व्रत करना चाहिये अथवा वर्ष के अन्त में कृच्छ्र व्रत कर लेना चाहिए।

व्रात्यानां याजनं कृत्वा परेषामन्त्यकर्म च।
अभिचारमहीनञ्च त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुध्यति॥४४॥

जो व्रात्यों (समाज में व्यवहार के अयोग्य) तथा संस्कार रहित अधम लोगों के यहां यज्ञ कराये और दूसरों का अन्त्य कर्म, अभिचार (वशीकरण आदि) कर्म तथा अधमवर्ण से उत्तम कर्म कराता है, तो तीन कृच्छ्र व्रत करके शुद्ध हुआ जा सकता है।

ब्राह्मणादिहतानां तु कृत्वा दाहादिकं द्विजः।
गोमूत्रयावकाहारः प्राजापत्येन शुध्यति॥४५॥
तैलाभ्यक्तोऽथ वान्तो वा कुर्यान्मूत्रपुरीषके।
अहोरात्रेण शुद्ध्येत श्मश्रुकर्मणि मैथुने॥४६॥

जो कोई ब्राह्मणादि तीनों वर्णों के द्वारा मारे गये व्यक्ति का दाह-कर्म करता है, तो उसकी शुद्धि गोमूत्र मिश्रित अन्न का आहार करते हुए प्राजापत्य व्रत करने से होती है। तेल की मालिश की हो, या उल्टी की हो, तो मल-मूत्र का त्याग करे। क्षौर कर्म कराने या मैथुन कर्म करने पर एक दिन-रात उपवास रहकर शुद्ध होना पड़ता है।

एकाहेन विवाहाग्निं परिहाप्य द्विजोत्तमः।
त्रिरात्रेण विशुद्ध्येत त्रिरात्रात्षडहः परम्॥४७॥
दशाहं द्वादशाहं वा परिहाप्य प्रमादतः।
कृच्छ्रं चान्द्रायणं कुर्यात्तत्पापस्योपशान्तये॥४८॥

यदि कोई अज्ञानवश एक दिन में ही विवाहाग्नि को त्याग दे, तो तीन रात तक उपवास रहकर शुद्ध होगा और तीन दिन के बाद छोड़ दे, तो छः दिन उपवास करने से शुद्धि होती है। परन्तु जो प्रमादवश दस या बारह दिन तक अग्नि को त्याग दे तो उस पाप नाश के लिए चान्द्रायण व्रत करना पड़ता है।

पतिताद्द्रव्यमादाय तदुत्सर्गेण शुध्यति।
चरेच्च विधिना कृच्छ्रमित्याह भगवान्मनुः॥४९॥

पतित (धर्मभ्रष्ट) व्यक्ति से द्रव्य ग्रहण करने से, उसे त्यागने (दान करने) के बाद शुद्धि होती है, और विधिपूर्वक कृच्छ्र व्रत करना चाहिए, ऐसा भगवान् मनु कहते हैं।

अनाशकान्निवृत्तास्तु प्रव्रज्यावसितास्तथा।
चरेयुस्त्रीणि कृच्छ्राणि त्रीणि चान्द्रायणानि च॥५०॥
पुनश्च जातकर्मादिसंस्कारैः संस्कृता द्विजाः।
शुद्ध्येयुस्तद्व्रतं सम्यक्चरेयुर्धर्मदर्शिनः॥५१॥

जिस किसी ने अनशन व्रत स्वीकार कर छोड दिया हो, या संन्यास (लेकर बाद में) त्याग कर दिया हो, तो उस व्यक्ति को तीन कृच्छ्र और तीन चान्द्रायण व्रत करने चाहिए। तत्पश्चात् फिर से जातकर्मादि संस्कारों से संस्कृत होकर ही ब्राह्मण शुद्ध होंगे और उन्हें पुनः धर्मदर्शी होकर भली-भाँति व्रतों का पालन करना होगा।

अनुपासितसन्ध्यस्तु तदहर्यावके भवेत्।
अनश्नन् संयतमना रात्रौ चेद्रात्रिमेव हि॥५२॥

सन्ध्योपासना न करने पर, (ब्रह्मचारी को) उस दिन, बिना भोजन किये एकाग्रचित्त होकर जप करना चाहिए। यदि सायंकाल सन्ध्या न करे तो उस दिन रात को भोजन किये बिना जप करना चाहिये।

अकृत्वा समिदाधानं शुचिः स्नात्वा समाहितः।
गायत्र्यष्टसहस्रस्य जप्यं कुर्याद्विशुद्धये॥५३॥

यदि कोई स्नान करके पवित्र होकर एकाग्रचित्त से अग्नि में समिधादान नहीं करता तो, उसे आठ हजार बार गायत्री-मंत्र जपना चाहिये।

उपवासी चरेत्सन्ध्यां गृहस्थो हि प्रमादतः।
स्नात्वा विशुद्ध्यते सद्यः परिश्रान्तश्च संयतः॥५४॥

प्रमादवश यदि (ब्रह्मचारी) संध्यापूजन करना भूल जाय, तो स्नान के बाद, उपवास रहकर संध्यापूजन कर लेना चाहिए। यदि अत्यधिक परिश्रान्त होने से संध्या करने में असमर्थ हो, तो मात्र उपवास करके शुद्ध हो सकता है।

वेदोदितानि नित्यानि कर्माणि च विलोप्य तु।
स्नातको व्रतलोपं तु कृत्वा चोपवसेद्दिनम्॥५५॥

यदि स्नातक (जिसने ब्रह्मचर्य समाप्ति का स्नान कर लिया हो) ब्राह्मण, वेदोक्त नित्य कर्मों का लोप करता है और व्रत करना भी भूल जाय, तो वह एक दिन का उपवास करके शुद्ध होता है।

संवत्सरं चरेत्कृच्छ्रमन्योत्सादी द्विजोत्तमः।

चान्द्रायणं चरेद्व्रात्यो गोप्रदानेन शुद्ध्यति॥५६॥

अग्नि का नाश करने वाले ब्राह्मण को एक साल तक कृच्छ्रव्रत करना चाहिये। यदि कोई व्रात्य हुआ है, तो चान्द्रायण व्रत करने तथा गोदान करने से शुद्धि होती है।

नास्तिक्यं यदि कुर्वीत प्राजापत्यं चरेद्द्विजः।
देवद्रोहं गुरुद्रोहं तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यति॥५७॥

यदि कोई द्विज ब्राह्मण नास्तिकता करे तो प्राजापत्य व्रत करना चाहिये। देवद्रोह और गुरुद्रोह करने से तप्तकृच्छ्र व्रत करके शुद्ध होता है।

उष्ट्रयानं समारुह्य खरयानं च कामतः।
त्रिरात्रेण विशुद्ध्येत्तु नग्नो वा प्रविशेज्जलम्॥५८॥

ऊँट गाड़ी या गधा-गाड़ी पर स्वेच्छापूर्वक आरोहण करता है अथवा नग्न होकर जल में प्रवेश करने से तीन रात तक उपवास करने पर शुद्धि होती है।

षष्ठान्नकालता मासं संहिताजप एव च।
होमाश्च शाकला नित्यं अपाङ्क्तानां विशोधनम्॥५९॥
नीलं रक्तं वसित्वा च ब्राह्मणो वस्त्रमेव हि।
अहोरात्रोषितः स्नातः पंचगव्येन शुद्ध्यति॥६०॥

अयाज्य व्यक्ति द्वारा यागादि कराने पर तीसरे दिन सायंकाल उपवास करे और एक महीने तक वेदसंहिता का जप करते हुए और नित्य शाकल होम करते रहना चाहिए। यही प्रायश्चित है। वह ब्राह्मण नीले या लाल रंग का वस्त्र पहनें, एक दिन-रात उपवास रह कर, पंचगव्य द्वारा स्नान करने से शुद्धि हो जाती है।

वेदधर्मपुराणानां चण्डालस्य तु भाषणे।
चान्द्रायणेन शुद्धिः स्यान्न ह्यन्या तस्य निष्कृतिः॥६१॥

चाण्डाल को वेद, धर्मशास्त्र और पुराणों की व्याख्या सुनाने से चान्द्रायण व्रत के द्वारा शुद्धि होती है, इसके अतिरिक्त अन्य कोई प्रायश्चित्त नहीं है।

उद्बन्धनादि निहतं संस्पृश्य ब्राह्मणं क्वचित्।
चान्द्रायणेन शुद्धिः स्यात्प्राजापत्येन वा पुनः॥६२॥

फाँसी लगाकर आत्महत्या किये हुए ब्राह्मण के शव को स्पर्श करने से, चान्द्रायण या प्राजापत्य व्रत करने पर शुद्धि होती है।

उच्छिष्टो यद्यनाचान्तश्चाण्डालादीन् स्पृशेद् द्विजः।
प्रमादाद्वै जपेत्स्नात्वा गायत्र्यष्टसहस्रकम्॥६३॥

यदि ब्राह्मण प्रमादवश आचमन करने से पूर्व जूठे मुँह किसी चाण्डाल को स्पर्श करता है, तो उसे स्नान करके आठ हजार बार गायत्री का जप करना चाहिये।

द्रुपदानां शतं वापि ब्रह्मचारी समाहितः।
त्रिरात्रोपोषितः सम्यक् पञ्चगव्येन शुद्ध्यति॥६४॥

उस ब्रह्मचारी को एकाग्रचित्त होकर, सौ बार द्रुपदा मन्त्र का जप करना चाहिये और तीन रात उपवास रहकर पंचगव्य से स्नान करके उसकी शुद्धि होगी।

चाण्डालपतितादींस्तु कामाद्यः संस्पृशेद्द्विजः।
उच्छिष्टस्तत्र कुर्वीत प्राजापत्यं विशुद्धये॥६५॥
चाण्डालसूतकि शवांस्तथा नारीं रजस्वलाम्।
स्पृष्ट्वा स्नायाद्विशुद्ध्यर्थं तत्स्पृष्टपतितांस्तथा॥६६॥

जो ब्राह्मण जानबूझकर जूठे मुँह चाण्डाल और पतितों का स्पर्श करता है, उसे शुद्धि के लिये प्राजापत्य व्रत करना चाहिए। वैसे ही चाण्डाल, सूतकी, शव और रजस्वला स्त्री का स्पर्श करने से, शुद्धि के लिये स्नान करना चाहिये। पतितों का स्पर्श करने पर भी वैसा ही करना चाहिए।

चाण्डालसूतकिशवैः संस्पृष्टं संस्पृशेद्यदि।
ततः स्नात्वाथ आचम्य जपं कुर्यात्समाहितः॥६७॥
तत्स्पृष्टस्पर्शिनं स्पृष्ट्वा बुद्धिपूर्वं द्विजोत्तमः।
स्नात्वाचामेद्विशुद्ध्यर्थं प्राह देवः पितामहः॥६८॥

चाण्डाल, सूतकी और शव को छूने वाले व्यक्ति का यदि कोई स्पर्श कर लेता है, तो उसे (शुद्धि हेतु) स्नान करके, आचमन करने के बाद एकाग्रचित्त से जप करना चाहिए। चाण्डालादि व्यक्तियों को छूने वाले को यदि कोई ब्राह्मण जानबूझकर छूता है, तो उसे स्नान करके आचमन करना चाहिये, यह पितामह ब्रह्मा ने कहा है।

भुञ्जानस्य तु विप्रस्य कदाचित्संस्पृशेद्यदि।
कृत्वा शौचं ततः स्नायादुपोष्य जुहुयाद्व्रतम्॥६९॥

भोजन करते हुए ब्राह्मण का यदि किसी दूषित (विष्ठा) का स्पर्श या स्राव हो जाय, तो शौच करके स्नान कर लेना चाहिए और उपवास रखकर अग्नि में आहुति देनी चाहिये।

चाण्डालं तु शवं स्पृष्ट्वा कृच्छ्रं कुर्याद्विशुद्ध्यति।
स्पृष्ट्वाऽभ्यक्तस्त्वसंस्पृश्य अहोरात्रेण शुद्ध्यति॥७०॥

ब्राह्मण यदि चाण्डाल के शव को स्पर्श कर ले, तो कृच्छ्र व्रत के द्वारा उसको शुद्धि होती है और (वस्त्र से) लिपटी

हुई अवस्था में, स्पर्श किये बिना, केवल देख लेने से, एक दिन और रात उपवास रहकर शुद्ध होना चाहिये।

सुरां स्पृष्ट्वा द्विज: कुर्यात्प्राणायामत्रयं शुचि:।
पलाण्डुं लशुनञ्चैव घृतं प्राश्य तत: शुचि:॥७१॥

यदि कोई ब्राह्मण सुरा का स्पर्श कर ले, तो वह तीन बार प्राणायाम करके और प्याज तथा लहसुन का स्पर्श करने से, घी पीकर शुद्ध होता है।

ब्राह्मणस्तु शुना दष्टस्त्र्यहं सायं पय: पिबेत्।
नाभेरूर्ध्वन्तु दष्टस्य तदेव द्विगुणं भवेत्॥७२॥
स्यादेतत्त्रिगुणं बाह्वोर्मूर्ध्नि च स्याच्चतुर्गुणम्।
स्नात्वा जपेद्वा सावित्रीं श्वभिर्दष्टो द्विजोत्तम:॥७३॥

ब्राह्मण को कुत्ता काट ले, तो तीन दिन तक सायंकाल दूध पीना चाहिये। नाभि के ऊपर काटने पर उससे दुगना-छ: दिन, बाहु पर काटने से नौ दिन और सिर पर काटने से बारह दिन तक सायंकाल दूध पीकर रहना चाहिये अथवा कुत्ते का काटा हुआ ब्राह्मण, स्नान करके गायत्री का जप करना चाहिए।

अनिर्वर्त्त्य महायज्ञान्यो भुंक्ते तु द्विजोत्तम:।
अनातुर: सति धने कृच्छ्रार्द्धेन स शुद्ध्यति॥७४॥
आहिताग्निरुपस्थानं न कुर्याद्यस्तु पर्वणि।
ऋतौ न गच्छेद्भार्यां वा सोऽपि कृच्छ्रार्द्धमाचरेत्॥७५॥

जो रोगरहित और धन रहने पर भी ब्राह्मण पंचयज्ञ किये बिना भोजन करता है, तो वह अर्ध-कृच्छ्र व्रत करके शुद्ध हो सकता है। और यदि कोई अग्निहोत्री ब्राह्मण पर्व के दिन सूर्योपस्थापन नहीं करता और ऋतुकाल में भी गर्भधारण निमित्त पत्नी के साथ मैथुन कर्म नहीं करते, उनकी शुद्धि अर्धप्राजापत्य व्रत करने से होती है।

विनाद्भिरप्सु नाप्यार्त्त: शरीरं सन्निवेश्य च।
सचैलो जलमाप्लुत्य गामालभ्य विशुध्यति॥७६॥
बुद्धिपूर्वन्त्वभ्युदिते जपेदन्तर्जले द्विज:।
गायत्र्यष्टसहस्रं तु त्र्यहं चोपवसेद्व्रती॥७७॥

अस्वस्थ न होने पर भी कोई मल-मूत्र त्यागने के बाद पानी से शौच क्रिया न करे या पानी के अन्दर मल-मूत्र त्यागे, तो उस व्यक्ति को, उन्हीं वस्त्रों को पहनकर स्नान करके, गाय का स्पर्श करके शुद्ध होना पड़ेगा। ऐसा कर्म जानबूझकर किया जाये तो, ब्राह्मण को सूर्योदय काल में पानी के अन्दर डूबकी लगाकर आठ हजार बार गायत्री जप करना चाहिए और व्रती होकर तीन दिन उपवास करना होगा।

अनुगम्येच्छया शूद्रं प्रेतीभूतं द्विजोत्तम:।
गायत्र्यष्टसहस्रञ्च जपं कुर्यान्नदीषु च॥७८॥

यदि कोई उत्तम ब्राह्मण मृत्यु को प्राप्त शूद्र के पीछे-पीछे अपनी इच्छा से जाता है, तो उसे नदी-किनारे जाकर आठ हजार गायत्री जप करना चाहिए।

कृत्वा तु शपथं विप्रो विप्रस्यावधिसंयुक्तम्।
स चैव पावकान्नेन कुर्याच्चान्द्रायणं व्रतम्॥७९॥

यदि कोई ब्राह्मण दूसरे ब्राह्मण के समक्ष सावधि समयबद्ध प्रतिज्ञा करता है, और उसे पूरा नहीं करता तो उसे 'पावक' अन्न के द्वारा चान्द्रायण व्रत करना चाहिये।

पङ्क्तौ विषमदानन्तु कृत्वा कृच्छ्रेण शुध्यति।
छायां श्वपाकस्यारुह्य स्नात्वा सम्प्राशयेद्घृतम्॥८०॥

जो मनुष्य दान लेने वालों की पंक्ति में (किसी को कम या ज्यादा देकर) विषमता (भेद) करता है, उसकी शुद्धि कृच्छ्र व्रत द्वारा होती है। यदि चाण्डाल की परछाई को उस पर चढ़कर जाता है, तो स्नान करके घी पीना चाहिये।

ईक्षेदादित्यमशुचिर्दृष्ट्वाग्निं चन्द्रमेव वा।
मानुषं चास्थि संस्पृश्य स्नानं कृत्वा विशुद्ध्यति॥८१॥
कृत्वा तु मिथ्याध्ययनं चरेद्भैक्षन्तु वत्सरम्।
कृतघ्नो ब्राह्मणगृहे पंचसंवत्सरव्रती॥८२॥

अपवित्र होने पर सूर्य दर्शन करना चाहिये। अथवा अग्नि प्रज्वलित करे या चन्द्रदर्शन करना चाहिए। मनुष्य की अस्थि स्पर्श करने पर स्नान करके शुद्ध होता है। मिथ्या अध्ययन करने पर (प्रायश्चित्तरूप में) एक साल तक भिक्षा माँगनी चाहिये और कृतघ्न (उपकार का नाशक) व्यक्ति को ब्राह्मण के घर रहकर, पाँच साल तक व्रत करना चाहिए।

हुंकारं ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वंकारं च गरीयस:।
स्नात्वा नाश्नन्नह:शेषं प्रणिपत्य प्रसादयेत्॥८३॥

यदि कोई ब्राह्मण को हुंकार करके अपमानित करे या सम्मानित व्यक्ति को 'तू ता' करे तो उसे स्नान करके शेष दिन में भोजन नहीं करना चाहिये और जिसका अपमान किया हो, उनके पैर पकड़कर उन्हें प्रसन्न करना चाहिये।

ताडयित्वा तृणेनापि कण्ठं बद्ध्वाथ वाससा।
विवादे चापि निर्जित्य प्रणिपत्य प्रसादयेत्॥८४॥

ब्राह्मण को तृण से मारने पर अथवा उसके गले को वस्त्र से बाँधने पर या वाक्युद्ध में परास्त करने से, उन्हें प्रणाम करके प्रसन्न करना चाहिये।

अवगूर्य चरत्कृच्छ्रमतिकृच्छ्रं निपातने।
कृच्छ्रातिकृच्छ्रौ कुर्वीत विप्रस्योत्पाद्य शोणितम्॥ ८५॥

यदि ब्राह्मण को मारने के लिये डंडा उठाया जाय तो कृच्छ्रव्रत करें। यदि ब्राह्मण को नीचे गिरा दिया जाय तो अतिकृच्छ्र व्रत करें और जो ब्राह्मण को कुछ मारकर उसका खून बहाता है, तो उसे कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र दोनों व्रत करने चाहिये।

गुरोराक्रोशमनृतं कुर्यात्कृत्वा विशोधनम्।
एकरात्रं निराहारः तत्पापस्यापनुत्तये॥ ८६॥

गुरु के आक्रोश करने पर जो उन्हें खराब शब्द कहता है, तो ऐसे पुरुष को पाप की निवृत्ति हेतु एक दिन का उपवास रखना चाहिये।

देवर्षीणामभिमुखं ष्ठीवनाक्रोशने कृते।
उल्मुकेन दहेज्जिह्वां दातव्यं च हिरण्यकम्॥ ८७॥

जो व्यक्ति देवों के ऋषिरूप ब्राह्मणों के सामने थूकता है, और उनके प्रति गुस्सा दिखाता है, उसे जलती लकड़ी से जीभ जला देनी चाहिये और सुवर्ण का दान करना चाहिये।

देवोद्यानेषु यः कुर्यान्मूत्रोच्चारं सकृद्द्विजः।
छिन्द्याच्छिश्नं विशुध्यर्थं चरेच्चान्द्रायणं व्रतम्॥ ८८॥

देवोद्यान में जो कोई द्विज एक बार भी मूत्र त्याग करता है, वह पाप की शुद्धि के लिये अपना लिङ्ग काटकर चान्द्रायण व्रत करना चाहिए।

देवतायतने मूत्रं कृत्वा मोहाद्द्विजोत्तमः।
शिश्नस्योत्कर्तनं कृत्वा चान्द्रायणमथाचरेत्॥ ८९॥
देवतानामृषीणां च देवानां चैव कुत्सनम्।
कृत्वा सम्यक् प्रकुर्वीत प्राजापत्यं द्विजोत्तमः॥ ९०॥

जो उत्तम द्विजवर्ण का मनुष्य देवमन्दिर के अन्दर मूत्र त्याग करता है, वह शिश्न काटकर चान्द्रायणव्रत करके पाप का प्रायश्चित्त करे। देवताओं, ऋषियों और देवता-समान व्यक्तियों की निन्दा करने से, ब्राह्मण की शुद्धि, अच्छे प्रकार से प्राजापत्य व्रत करने से होती है।

तैस्तु सम्भाषणं कृत्वा स्नात्वा देवं समर्चयेत्।
दृष्ट्वा वीक्षेत भास्वन्तं स्मृत्वा विश्वेश्वरं स्मरेत्॥ ९१॥
यः सर्वभूताधिपतिं विश्वेशानं विनिन्दति।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि॥ ९२॥
चान्द्रायणं चरेत्पूर्वं कृच्छ्रं चैवातिकृच्छ्रकम्।
प्रपन्नः शरणं देवं तस्मात्पापाद्विमुच्यते॥ ९३॥

और ऐसे आदमी के साथ वार्तालाप करने से स्नान करके अपने इष्ट देव का पूजन करना चाहिये। यदि उस निन्दक को देखता है, तो सूर्य दर्शन करना चाहिये तथा याद करने से विश्वेश्वर शंकर का ध्यान करना चाहिये। परन्तु जो जानबूझकर समस्त प्राणियों के अधिपति विश्वेश्वर की निन्दा करता है, उसको तो सैकड़ों वर्षों में प्रायश्चित्त करके मुक्ति नहीं होती। वैसे उसे पहले चान्द्रायण व्रत, पश्चात् कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र व्रत करना चाहिए तथा उन महादेव की शरण में जाने से उस पाप से मुक्ति संभव है।

सर्वस्वदानं विधिवत्सर्वपापविशोधनम्।
चान्द्रायणं च विधिना कृच्छ्रं चैवातिकृच्छ्रकम्॥ ९४॥

इसके अतिरिक्त नियमानुसार अपना सर्वस्व दान करना, नियमानुसार चान्द्रायण, कृच्छ्र और अतिकृच्छ्र व्रतों को करना भी समस्त पापों की शुद्धि का कारण बताया गया है।

पुण्यक्षेत्राभिगमनं सर्वपापविशोधनम्।
अमावस्यां तिथिं प्राप्य यः समाराधयेद्भवम्॥ ९५॥
ब्राह्मणान् पूजयित्वा तु सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ९६॥
कृष्णाष्टम्यां महादेवं तथा कृष्णचतुर्दशीम्।
सम्पूज्य ब्राह्मणमुखे सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ९७॥

इसी प्रकार सब तीर्थों में जाने भी सारे पापों का शुद्धि होती है। अमावास्या के दिन, ब्राह्मणों की पूजा करके जो भगवान् महादेव की आराधना करता है, वह भी समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। कृष्णाष्टमी या कृष्णचतुर्दशी के दिन, ब्राह्मण भोजन करवाकर महादेव की पूजा करने से, सभी पापों से मुक्ति मिलती है।

त्रयोदश्यां तथा रात्रौ सोपहारं त्रिलोचनम्।
दृष्ट्वेशं प्रथमे यामे मुच्यते सर्वपातकैः॥ ९८॥

उसी प्रकार त्रयोदशी की रात्रि के प्रथम प्रहर में, उपहार के साथ त्रिलोचन (भगवान् शंकर) की पूजा करने से, सब पापों से मुक्ति मिलती है।

उपोषितश्चतुर्दश्यां कृष्णपक्षे समाहितः।
यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च॥ ९९॥
वैवस्वताय कालाय सर्वप्राणहराय च।
प्रत्येकं तिलसंयुक्तान्दद्यात्सप्तोदकाञ्जलीन्॥ १००॥

कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को, उपवास रखकर एकाग्रचित्त से यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल और सर्वप्राणहर— इन सातों में प्रत्यक को उद्देश्य करके तिल मिश्रति जल चढ़ाना चाहिये।

स्नात्वा दद्याच्च पूर्वाह्णे मुच्यते सर्वपातकै:।
ब्रह्मचर्यमध:शय्या उपवासो द्विजार्चनम्॥ १०१॥
व्रतेष्वेतेषु कुर्वीत शान्त: संयतमानस:।
अमावास्यायां ब्रह्माणं समुद्दिश्य पितामहम्॥ १०२॥
ब्राह्मणांस्त्रीन्समभ्यर्च्य मुच्यते सर्वपातकै:।

पूर्वाह्न में स्नान करके, इस प्रकार जल समर्पण करने से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है। ब्रह्मचर्य का पालन, भूमि पर शयन, उपवास और ब्राह्मण की पूजा इन सब व्रतों में शान्त और एकाग्रचित होकर करनी चाहिये। अमावास्या के दिन पितामह ब्रह्मा को उद्देश्य करके जो तीन ब्राह्मणों की विधिपूर्वक पूजा करता है, वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।

षष्ठ्यामुपोषितो देवं शुक्लपक्षे समाहित:॥ १०३॥
सप्तम्यामर्चयेद्भानुं मुच्यते सर्वपातकै:।
भरण्यां च चतुर्थ्यां च शनैश्चरदिने यमम्॥ १०४॥
पूजयेत्सप्तजन्मोत्थैर्मुच्यते पातकैर्नर:।

शुक्लपक्ष में षष्ठी के दिन उपवास करके, सप्तमी में एकाग्रचित्त से सूर्यदेव की जो पूजा करता है, वह सभी पापों से मुक्त होता है। भरणी नक्षत्र में शनिवार के दिन चतुर्थी होने पर यम की पूजा करने वाला, सात जन्मों के पापों से मुक्त हो जाता है।

एकादश्यां निराहार: समभ्यर्च्य जनार्दनम्॥ १०५॥
द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य महापापै: प्रमुच्यते।
तपो जपस्तीर्थसेवा देवब्राह्मणपूजनम्॥ १०६॥
ग्रहणादिषु कालेषु महापातकशोधनम्।

जो शुक्लपक्ष की एकादशी में उपवास रखकर द्वादशी के दिन भगवान् विष्णु की पूजा करता है, वह महापापों से मुक्त हो जाता है। ग्रहण काल में तप, जप, तीर्थ सेवा, देवताओं और ब्राह्मणों का पूजन, आदि कर्म महापाप को धोने वाले होते हैं।

य: सर्वपापयुक्तोऽपि पुण्यतीर्थेषु मानव:॥ १०७॥
नियमेन त्यजेत्प्राणान्मुच्यते सर्वपातकै:।

जो पुरुष सभी प्रकार के पापों से युक्त होते हुए भी पुण्य तीर्थों में नियमत: प्राण त्याग करता है, तो वह सभी पापों से मुक्ति पा जाता है।

ब्रह्मघ्नं वा कृतघ्नं वा महापातकदूषितम्॥ १०८॥
भर्तारमुद्धरेन्नारी प्रविष्टा सह पावकम्।
एतदेव परं स्त्रीणां प्रायश्चित्तं विदुर्बुधा:॥ १०९॥

यदि पति ब्रह्मघाती, कृतघ्न और महापापी हो तो भी उसके साथ (मरणोपरान्त) अग्नि में प्रविष्ट होती है, तो वह अपने पति को तार देती है। यही स्त्रियों का परम प्रायश्चित्त है, ऐसा विद्वानों का कहना है।

पतिव्रता तु या नारी भर्तृशुश्रूषणे रता।
न तस्या विद्यते पापमिहलोके परत्र च॥ ११०॥

जो नारी पतिव्रता है और पति की ही सेवा में संलग्न रहने वाली होती है, उसे इस लोक में और परलोक में भी पाप नहीं लगता।

(सर्वपापविनिर्मुक्ता नास्ति कार्या विचारणा।
पातिव्रत्यसमायुक्ता भर्तृशुश्रूषणोत्सुका।
न जातु पातकं तस्यामिहलोके परत्र च।)
पतिव्रता धर्मरता भद्राण्येव लभेत्सदा।
नास्या: पराभवं कर्तुं शक्नोतीह जन: क्वचित्॥ १११॥

(जो नारी पतिव्रताधर्म से युक्त और पति सेवा में उत्सुक रहती है, वह सब पापों से मुक्त हो जाती है, इसमें विचार नहीं करना चाहिए। इस लोक और परलोक में कभी उसे पातक नहीं छूता।) पतिव्रता और धर्म में परायण रहने वाली स्त्री सभी प्रकार के कल्याणों को प्राप्त करती है तथा ऐसी स्त्री को इस संसार में कभी कोई परास्त नहीं कर सकता।

यथा रामस्य सुभगा सीता त्रैलोक्यविश्रुता।
पत्नी दाशरथेर्देवी विजिग्ये राक्षसेश्वरम्॥ ११२॥

जैसे तीनों लोकों में विख्यात, दशरथ-पुत्र राम की सौभाग्यशालिनी पत्नी देवी सीता ने (अपने सतीत्व के कारण) राक्षसेश्वर (रावण) को जीत लिया था।

रामस्य भार्यां सुभगां रावणो राक्षसेश्वर:।
सीतां विशालनयनां चकमे कालनोदित:॥ ११३॥
गृहीत्वा मायया वेषं चरन्तीं विजने वने।
समाहर्तुं मतिं चक्रे तापस: किल कामिनीम्॥ ११४॥

एक बार राक्षसराज रावण ने, काल के द्वारा प्रेरित होकर, राम की सौभाग्यशालिनी, विशालाक्षी पत्नी सीता की कामना

की थी। उसने अपनी माया से तपस्वी वेष धारण करके, एकान्त वन में विचरण करने वाली नारी (सीता) को हरण करने का मन बनाया।

विज्ञाय सा च तद्भावं स्मृत्वा दाशरथिं पतिम्।
जगाम शरणं वह्निमावसथ्यं शुचिस्मिता॥ ११५॥

पवित्र हास्ययुक्ता सीता, रावण के मनोभाव को जानकर, अपने पति दशरथ पुत्र राम का स्मरण कर आवसथ्य नामक गृहाग्नि की शरण में चली गई।

उपतस्थे महायोगं सर्वलोकविदाहकम्।
कृतांजली रामपत्नी साक्षात्पतिमिवाच्युतम्॥ ११६॥

महायोगस्वरूप, सारे संसार के दाहक अग्नि को, साक्षात् अपने पति विष्णु का स्वरूप मानकर रामपत्नी सीता दोनों हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी।

नमस्यामि महायोगं कृशानुं गह्वरं परम्।
दाहकं सर्वभूतानामीशानं कालरूपिणम्॥ ११७॥

महायोगी, अतिशय श्रेष्ठ गुहारूप सभी प्राणियों के दाहक, सर्वभूतेश्वर और सभी के संहारक कालरूपी अग्नि को नमस्कार है।

प्रपद्ये पावकं देवं शाश्वतं विश्वरूपिणम्।
योगिनं कृत्तिवसनं भूतेशं परमम्पदम्॥ ११८॥

शाश्वत, विश्वरूपी, योगी, मृगचर्मधारी सभी प्राणियों के ईश्वर, परमपद स्वरूप, अग्निदेव की शरण में जाती हूँ।

आत्मानं दीप्तवपुषं सर्वभूतहृदि स्थितम्।
तं प्रपद्ये जगन्मूर्तिं प्रभवं सर्वतेजसाम्।
महायोगीश्वरं वह्निमादित्यं परमेष्ठिनम्॥ ११९॥

आत्मस्वरूप, प्रकाशमान शरीर वाले, सभी प्राणियों के हृदय में स्थित, जगत्मूर्ति सभी तेजों के उत्पत्ति स्थान, महान् योगियों के ईश्वर, आदित्यरूप, प्रजापति स्वरूप, अग्निदेव की शरण में जाती हूँ।

प्रपद्ये शरणं रुद्रं महाग्रासं त्रिशूलिनम्।
कालाग्निं योगिनामीशं भोगमोक्षफलप्रदम्॥ १२०॥

भयंकर महाग्रास (अर्थात् सर्वसंहारक) त्रिशूलधारी सर्वयोगीश्वर, भोग और मोक्षरूपी फल देने वाले कालाग्नि की शरण में जाती हूँ।

प्रपद्ये त्वां विरूपाक्षं भूर्भुवःस्वःस्वरूपिणम्।
हिरण्मये गृहे गुप्तं महान्तममितौजसम्॥ १२१॥

हे अग्नि! मैं आपकी शरण में जाती हूँ। आप विरूपाक्ष, भूर्भुवःस्वः— इन तीन महाव्याहृतियों का स्वरूप धारण करने वाले, सुवर्णमय प्रकाशमान गृह में गुप्तरूप से विद्यमान, महान् और अमित तेजस्वी हैं।

वैश्वानरं प्रपद्येऽहं सर्वभूतेष्ववस्थितम्।
हव्यकव्यवहं देवं प्रपद्ये वह्निमीश्वरम्॥ १२२॥

सभी प्राणियों में (जठराग्निरूप से) विद्यमान, वैश्वानर के शरण में जाती हूँ। मैं हव्य (देवों की आहुतियाँ) कव्य (पितरों की आहुतियाँ) को वहन करने वाले और ईश्वरस्वरूप वह्निदेव की शरण में जाती हूँ।

प्रपद्ये तत्परं तत्त्वं वरेण्यं सवितुः शिवम्।
स्वर्ग्यमग्निं परं ज्योतिः रक्ष मां हव्यवाहन॥ १२३॥

मैं उस परम श्रेष्ठ तत्त्व अग्नि की शरण में जाती हूँ, जो सूर्य के लिए भी कल्याणकारी, आकाश मण्डल में स्थित परम ज्योतिःस्वरूप है। हे हव्यवाहन अग्निदेव! आप मेरी रक्षा करें।

इति वह्न्यष्टकं जप्त्वा रामपत्नी यशस्विनी।
ध्यायन्ती मनसा तस्थौ राममुन्मीलितेक्षणा॥ १२४॥

इस प्रकार अग्निसम्बन्धी आठ श्लोकों वाले इस स्तोत्र का जप करके, रामपत्नी यशस्विनी सीता, आँखें बन्दकर मन ही मन राम का ध्यान करती हुई स्थित हो गयीं।

अथावसथ्याद्भगवान्हव्यवाहो महेश्वरः।
आविरासीत्सुदीप्तात्मा तेजसा निर्दहन्निव॥ १२५॥
सृष्ट्वा मायामयीं सीतां स रावणवधेच्छया।
सीतामादाय रामेष्टां पावकोऽन्तरधीयत॥ १२६॥

तत्पश्चात् उस आवसथ्य घर की अग्नि से भगवान् हव्यवाह महेश्वर प्रकाशित होकर प्रकट हुए। ऐसा लगता था मानो वे तेज से सब को जला रहे हों। भगवान् ने उस रावण को मारने की इच्छा से, एक मायामयी सीता की रचना करके, राम की (वास्तविक) प्रिया सीता को लेकर, अग्नि में ही अन्तर्धान हो गये।

तां दृष्ट्वा तादृशीं सीतां रावणो राक्षसेश्वरः।
समादाय ययौ लङ्कां सागरान्तरसंस्थिताम्॥ १२७॥

उस मायावी सीता को देखकर राक्षसेश्वर रावण, उसका हरण करके सागर के मध्य स्थित लंकापुरी में गया।

कृत्वा तु रावणवधं रामो लक्ष्मणसंयुतः।
समादायाभवत्सीतां शङ्काकुलितमानसः॥ १२८॥

तत्पश्चात् राम रावण का वध करके लक्ष्मण के साथ उस (मायावी) सीता को ले आये, परन्तु उनका मन शंका से व्याकुल था।

सा प्रत्ययाय भूतानां सीता मायामयी पुन:।
विवेश पावकं क्षिप्रं ददाह ज्वलनोऽपि ताम्॥ १२९॥

(राम को ऐसा देखकर) मायावी सीता ने लोगों को विश्वास दिलाने के लिए पुन: अग्नि में प्रवेश किया था और अग्नि ने भी उस सीता को शीघ्र जला डाला था।

दग्ध्वा मायामयीं सीतां भगवानुग्रदीधिति:।
रामायादर्शयत्सीतां पावकोऽभूत्सुरप्रिय:॥ १३०॥

इस प्रकार मायावी सीता को जलाकर भगवान् तेज अग्निदेव ने राम को वास्तविक सीता के दर्शन करवाए थे, इसलिए अग्निदेव देवों को अत्यन्त प्रिय हुए।

प्रगृह्य भर्तुश्चरणौ कराभ्यां सा सुमध्यमा।
चकार प्रणतिं भूमौ रामाय जनकात्मजा॥ १३१॥

तब सुमध्यमा जनकपुत्री सीता ने, दोनों हाथों से राम का चरण-स्पर्श किये और भूमि पर झुककर राम को प्रणाम किया।

दृष्ट्वा हृष्टमना रामो विस्मयाकुललोचन:।
प्रणम्य वह्निं शिरसा तोषयामास राघव:॥ १३२॥

इस प्रकार (सीता को) देखकर आश्चर्य चकित नेत्रों वाले वे राम हर्षित मनवाले हुए। राघव ने सिर झुकाकर प्रणाम करके अग्निदेव को तृप्त किया था।

उवाच वह्निं भगवान् किमेषा वरवर्णिनी।
दग्धा भगवता पूर्वं दृष्टा मत्पार्श्वमागता॥ १३३॥

उस समय वे अग्निदेव से बोले, हे भगवन्! आपने श्रेष्ठ वर्ण वाली सीता को पहले क्यों जला दिया था? और अब मैं अपने पार्श्वभाग में स्थित देख रहा हूँ (यह कैसे?)।

तमाह देवो लोकानां दाहको हव्यवाहन:।
यथावृत्तं दाशरथिं भूतानामेव सन्निधौ॥ १३४॥

तब संपूर्ण लोकों के दाहकर्ता, हव्यवाहन अग्निदेव ने सभी लोगों के समक्ष दाशरथी राम को जैसा वृत्तान्त था, कह सुनाया।

इयं सा परमा साध्वी पार्वतीव प्रिया तव।
आराध्य लब्धा तपसा देव्याश्चात्यन्तवल्लभा॥ १३५॥

यह देवी सीता पार्वती के समान प्रिय और परम साध्वी है। शंकरप्रिया पार्वती की तपस्या के द्वारा आराधना करके, (राजा जनक ने) इसे प्राप्त किया था।

भर्तु: शुश्रूषणोपेता सुशीलेयं पतिव्रता।
भवानीपार्श्वे गुप्ता माया रावणकामिता॥ १३६॥
या नीता राक्षसेशेन सीता भगवती हृता।
मया मायामयी सृष्टा रावणस्य वधेच्छया॥ १३७॥

यह सीताजी पति की सेवा में परायण, पतिव्रता और सुशील हैं। परन्तु रावण ने सीता की कामना की, तब मैंने इन्हें पार्वती के पास रख दिया था। राक्षसराज रावण जिस भगवती सीता को ले गया था, वह तो मैंने रावण का वध करने की इच्छा से मायावी सीता की रचना की थी।

तदर्थं भवता दृष्टो रावणो राक्षसेश्वर:।
मायोपसंहृता चैव हतो लोकविनाशन:॥ १३८॥

जिसके लिए आपने राक्षसेश्वर रावण को देखा (और उसका वध किया), वह मायावी सीता को मैंने समेट लिया हैं और संसार का विनाशकारी रावण भी मारा गया है।

गृहाण चैतां विमलां जानकीं वचनान्मम।
पश्य नारायणं देवं स्वात्मानं प्रभवाव्ययम्॥ १३९॥

इसलिए आप मेरे कहने पर पवित्र जानकी को स्वीकार करें और अपने स्वरूप को सब के उत्पत्ति कारण अविनाशी देव नारायण स्वरूप ही जानें।

इत्युक्त्वा भगवांश्चण्डो विश्वार्चिर्विश्वतोमुख:।
मानितो राघवेणाग्निर्भूतैश्चान्तरधीयत॥ १४०॥

यह कहकर संसार के ज्वालारूप, विश्वतोमुख भगवान् चण्ड (अग्नि) अन्तर्धान हुए और भगवान् राम भी मनुष्यों के द्वारा सम्मानित होकर अन्तर्धान हो गए।

एतत्पतिव्रतानां वै माहात्म्यं कथितं मया।
स्त्रीणां सर्वाघशमनं प्रायश्चित्तमिदं स्मृतम्॥ १४१॥
अशेषपापसंयुक्त: पुरुषोऽपि सुसंयत:।
स्वदेहं पुण्यतीर्थेषु त्यक्त्वा मुच्येत किल्बिषात्॥ १४२॥

इस प्रकार पतिव्रताओं का माहात्म्य मैंने कहा है। यह स्त्रियों के समस्त पापों को दूर करने वाला प्रायश्चित बताया गया है। यदि कोई पुरुष अनेक पापों से युक्त भी हो, तो भी सुसंयत होकर इन पुण्यतीर्थों में अपना देह त्याग करता है, तो सारे पापों से मुक्त हो जाता है।

पृथिव्यां सर्वतीर्थेषु स्नात्वा पुण्येषु वा द्विजः।
मुच्यते पातकैः सर्वैः सञ्चितैरपि पुरुषः॥ १४३॥

पृथिवी पर स्थित सभी पुण्य तीर्थों में स्नान करके ब्राह्मण या कोई मनुष्य अपने द्वारा संचित सभी प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है।

व्यास उवाच

इत्येष मानवो धर्मो युष्माकं कथितो मया।
महेशाराधनार्थाय ज्ञानयोगश्च शाश्वतः॥ १४४॥

व्यास बोले— यही मानव (मनु द्वारा कथित) धर्म है, जो मैंने आपको बताया है और महेश्वर की आराधना के लिए नित्य ज्ञानयोग भी बताया है।

योगेन विधिना युक्तो ज्ञानयोगं समाचरेत्।
स पश्यति महादेवं नान्यः कल्पशतैरपि॥ १४५॥

जो मनुष्य योग को इस विधि के अनुसार ज्ञानयोग का आचरण करता है, वही महादेव का दर्शन पाता है। अन्य व्यक्ति सौ कल्पों में भी नहीं देख पाता।

स्थापयेद्यः परं धर्मं ज्ञानं तत्पारमेश्वरम्।
न तस्मादधिको लोके स योगी परमो मतः॥ १४६॥

जो मनुष्य उस परमेश्वर सम्बन्धी ज्ञानरूप परम धर्म की स्थापना करता है, उससे अधिक श्रेष्ठ इस संसार में कोई नहीं है और वही व्यक्ति श्रेष्ठ योगी भी माना गया है।

यः संस्थापयितुं शक्तो न कुर्यान्मोहितो जनः।
स योगयुक्तोऽपि मुनिर्नात्यर्थं भगवत्प्रियः॥ १४७॥
तस्मात्सदैव दातव्यं ब्राह्मणेषु विशेषतः।
धर्मयुक्तेषु शान्तेषु श्रद्धया चान्वितेषु वै॥ १४८॥

जो मनुष्य मोहवश समर्थ होते हुए भी धर्म की स्थापना नहीं करता, वह योगयुक्त मुनि होने पर भी भगवान् को प्रिय नहीं होता है। इसलिए सदैव इस ज्ञान का दान करना चाहिए और विशेषरूप उन ब्राह्मणों को जो धार्मिक, शान्त और श्रद्धायुक्त हों।

यः पठेद्भवतां नित्यं संवादं मम चैव हि।
सर्वपापविनिर्मुक्तो गच्छेत परमाङ्गतिम्॥ १४९॥
श्राद्धे वा दैविके कार्ये ब्राह्मणानां च सन्निधौ।
पठेत् नित्यं सुमनाः श्रोतव्यं च द्विजातिभिः॥ १५०॥

जो व्यक्ति आपका और मेरा यह संवाद नित्यप्रति पाठ करता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर श्रेष्ठ गति को प्राप्त करता है। श्राद्ध, दैविक कार्य या ब्राह्मणों के पास बैठकर, प्रसन्न मन से, प्रतिदिन इसका पाठ करना चाहिए और द्विजातियों को यह नित्य सुनना चाहिए।

योऽर्थं विचार्य युक्तात्मा श्रावयेद्वा द्विजान् शुचीन्।
स दोषकंचुकं त्यक्त्वा याति देवं महेश्वरम्॥ १५१॥

जो युक्तात्मा इसके अर्थ को विचार करके, पवित्र ब्राह्मणों को सुनाता है, वह दोषरूपी आवरण को त्यागकर महेश्वर के पास जाता है।

एतावदुक्त्वा भगवान्व्यासः सत्यवतीसुतः।
समाश्वास्य मुनीन्सूतं जगाम च यथागतम्॥ १५२॥

इस प्रकार कहकर सत्यवती पुत्र भगवान् व्यास उन सभी मुनियों तथा पौराणिक सूत को भली-भाँति आश्वस्त करके जैसे आये थे, वैसे चले गये।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३४॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः
(तीर्थ-प्रकरण)

ऋषय ऊचुः

तीर्थानि यानि लोकेऽस्मिन्विश्रुतानि महान्त्यपि।
तानि त्वं कथयास्माकं रोमहर्षण साम्प्रतम्॥ १॥

ऋषियों ने कहा—हे रोमहर्षण! इस लोक में जो तीर्थ महान और अति प्रसिद्ध हैं, इस समय उन सबका वर्णन आप हमारे सामने करें।

शृणुध्वं कथयिष्येऽहं तीर्थानि विविधानि च।
कथितानि पुराणेषु मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः॥ २॥
यत्र स्नानजपो होमः श्राद्धदानादिकं कृतम्।
एकैकशो मुनिश्रेष्ठाः पुनात्यासप्तमं कुलम्॥ ३॥

रोमहर्षण ने कहा—हे ऋषिवृन्द! आप सुनें। मैं आपके समक्ष में अब अनेक तीर्थों के विषय में कहूँगा जिनको ब्रह्मवादी मुनियों ने पुराणों में बताया है। हे मुनिश्रेष्ठो! वे ऐसे महान् महिमामय तीर्थ हैं, जहाँ पर स्नान-जप-होम-श्राद्ध और दानादिक शास्त्रोक्त सत्कर्म एकबार करने पर मनुष्य अपने सात कुलों को पवित्र कर देता है।

पंचयोजनविस्तीर्णं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः।
प्रयागं प्रथितं तीर्थं यस्य माहात्म्यमीरितम्॥ ४॥

अन्यच्च तीर्थप्रवरं कुरूणां देववन्दितम्।
ऋषीणामाश्रमैर्जुष्टं सर्वपापविशोधनम्॥५॥
तत्र स्नात्वा विशुद्धात्मा दम्भमात्सर्यवर्जितः।
ददाति यत्किञ्चिदपि पुनात्युभयतः कुलम्॥६॥

परमेष्ठी ब्रह्माजी का प्रसिद्ध प्रयाग तीर्थ पाँच योजन के विस्तार वाला है जिसका कि माहात्म्य कहा गया है। अन्य भी तीर्थ प्रवर हैं, जो कुरुओं के हैं और देवों द्वारा वन्दित हैं। ये ऋषियों के आश्रमों से सेवित तथा सभी प्रकार के पापों के विशोधक हैं। उस तीर्थ में स्नान करके विशुद्ध आत्मा वाला तथा दम्भ और मत्सरता जैसे दुर्गुणों से वर्जित पुरुष वहाँ पर जो कुछ भी यथाशक्ति दान किया करता है वह अपने माता-पिता सम्बन्धी दोनों कुलों को पवित्र कर देता है।

परं गुह्यं गयातीर्थं पितॄणाञ्चातिदुर्लभम्।
कृत्वा पिण्डप्रदानन्तु न भूयो जायते नरः॥७॥

गया तीर्थ तो परम गोपनीय तीर्थ है जो पितृगणों को अत्यन्त ही दुर्लभ होता है। वहाँ पर पितृगण के लिये पिण्डों को प्रदान करने वाला पुरुष पुनः संसार में जन्म ग्रहण नहीं करता है।

सकृद्गयाभिगमनं कृत्वा पिण्डं ददाति यः।
तारिताः पितरस्तेन यास्यन्ति परमाङ्गतिम्॥८॥
तत्र लोकहितार्थाय रुद्रेण परमात्मना।
शिलातले पदं न्यस्तं तत्र पितॄन्प्रसादयेत्॥९॥

जो एक बार गया में जाकर पिण्डदान करता है, वह अपने समस्त पितरों को तार देता है। वे सब परमगति को प्राप्त हो जायेंगे। वहाँ पर लोकों के हित को सम्पादन करने के लिये परमात्मा रुद्रदेव ने शिला तल पर पाँव रखा था। वहीं पर पितरों को प्रसन्न करना चाहिए (तर्पण देना चाहिए)।

गयाभिगमनं कर्तुं यः शक्तो नाभिगच्छति।
शोचन्ति पितरस्तं वै वृथा तस्य परिश्रमः॥१०॥
गायन्ति पितरो गाथाः कीर्त्तयन्ति महर्षयः।
गयां यास्यति यः कश्चित्सोऽस्मान्सन्तारयिष्यति॥११॥

जो गया जाने में समर्थ होता है, फिर भी नहीं जाता उसके पितृगण उसके विषय में चिन्ता किया करते हैं। उसका परिश्रम व्यर्थ हो जाता है। पितर लोग यही गाथा गाते हैं और महर्षिगण कीर्त्तन किया करते हैं कि जो कोई भी हमारे वंश में गया तीर्थ जायेगा वही हमको तार देगा।

यदि स्यात्पातकोपेतः स्वधर्मपरिवर्जितः।
गयां यास्यति यः कश्चित् सोऽस्मान्सन्तारयिष्यति॥१२॥
एष्टव्या बहवः पुत्राः शीलवन्तो गुणान्विताः।
तेषां तु समवेतानां यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्॥१३॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ब्राह्मणस्तु विशेषतः।
प्रदद्याद्विधिवत्पिण्डान् गयां गत्वा समाहितः॥१४॥

यदि कोई पातकी हुआ और अपने धर्म से परिवर्जित हुआ तो गया जायेगा और हम सबका उद्धार कर देगा। अतएव बहुत से शीलवान् और गुणवान् पुत्रों की ही इच्छा करनी चाहिए। हो सकता है उनमें से कोई एक गया तीर्थ में गमन करे। इसीलिये सभी प्रकार के प्रयत्न से विशेषरूप से ब्राह्मण को तो गया में जाकर विधिपूर्वक समाहित होकर पिण्डों का दान अवश्य ही करना चाहिए।

धन्यास्तु खलु ते मर्त्या गङ्गायां पिण्डदायिनः।
कुलान्युभयतः सप्त समुद्धृत्याप्नुयुः परम्॥१५॥
अन्यच्च तीर्थप्रवरं सिद्धावासमुदाहृतम्।
प्रभासमिति विख्यातं यत्रास्ते भगवान्भवः॥१६॥

वे लोग धन्य हैं, जो अर्थात् महान् भाग्यशाली हैं जो गया में पिण्डदान करने वाले होते हैं। वे वर्तमान और आगे होने वाले सात-सात कुलों को दोनों ही ओर से तार कर स्वयं भी परम पद की प्राप्ति किया करते हैं। अन्य भी श्रेष्ठ तीर्थ हैं जहाँ सिद्ध पुरुषों को ही वास बताया गया है। वह प्रभास—इस शुभ नाम से संसार में विख्यात है जहाँ पर भगवान् भव विराजमान रहा करते हैं।

तत्र स्नानं ततः श्राद्धं ब्राह्मणानाञ्च पूजनम्।
कृत्वा लोकमवाप्नोति ब्राह्मणोऽक्षय्यमुत्तमम्॥१७॥

वहाँ पर स्नानकर और इसके अनन्तर श्राद्ध तथा ब्राह्मणों का अभ्यर्च्चन करके मनुष्य ब्रह्मा के अक्षय और उत्तम लोक प्राप्त करता है

तीर्थं त्रैयम्बकं नाम सर्वदेवनमस्कृतम्।
पूजयित्वा तत्र रुद्रं ज्योतिष्टोमफलं लभेत्॥१८॥

एक परम श्रेष्ठ त्रैयम्बक नामक तीर्थ है जिसे सभी देव गण नमस्कार करते हैं। वहां विराजमान रुद्रदेव का पूजन करके ज्योतिष्टोम यज्ञ का फल मनुष्य को मिल जाता है।

सुवर्णाक्षं महादेवं समभ्यर्च्य कपर्दिनम्।
ब्राह्मणान् पूजयित्वा च गाणपत्यं लभेत सः॥१९॥

वहाँ पर सुवर्णाक्ष कपर्दी महादेव की सम्यक् अर्चना करके और वहाँ पर स्थित ब्राह्मणों का पूजन करके मनुष्य

गाणपत्य लोक को प्राप्त कर लेता है।

सोमेश्वरं तीर्थवरं रुद्रस्य परमेष्ठिन:।
सर्वव्याधिहरं पुण्यं रुद्रमालोक्य कारणम्॥ २०॥

एक परमेष्ठी रुद्रदेव का महान् सोमेश्वर तीर्थ है। यह तीर्थ समस्त व्याधियों को हरने वाला, परम पुण्यमय और रुद्रदेव के साक्षात् दर्शन कराने वाला है।

तीर्थानां परमं तीर्थं विजयं नाम शोभनम्।
तत्र लिङ्गं महेशस्य विजयं नाम विश्रुतम्॥ २१॥

समस्त तीर्थों में परम श्रेष्ठतम तीर्थ विजय नाम वाला अतीव शोभन तीर्थ है। वहाँ पर भगवान् महेश्वर का 'विजय' नामक विख्यात लिङ्ग स्थापित है।

षण्मासनियताहारो ब्रह्मचारी समाहित:।
उषित्वा तत्र विप्रेन्द्रा यास्यन्ति परमम्पदम्॥ २२॥

छ: मास तक नियत आहार लेने वाला ब्रह्मचारी अत्यन्त समाहित होकर वहां निवास करे तो हे विप्रेन्द्रों! वह निश्चितरूप से परमपद को पा लेता है।

अन्यच्च तीर्थप्रवरं पूर्वदेशेषु शोभनम्।
एकान्तं देवदेवस्य गाणपत्यफलप्रदम्॥ २३॥

दूसरा परम श्रेष्ठ तीर्थ पूर्व देश में सुशोभित है, जो देवों के भी देव शिव के गाणपत्य लोक का एकान्त पद प्रदान कराने वाला होता है।

दत्त्वात्र शिवभक्तानां किञ्चिच्छश्वन्महीं शुभाम्।
सार्वभौमो भवेद्राजा मुमुक्षुर्मोक्षमाप्नुयात्॥ २४॥

यहाँ पर जो शिवभक्त ब्राह्मणों को थोड़ी-सी भूमि का दान देता है, वह निश्चित ही अगले जन्म में सार्वभौम चक्रवर्ती राजा हुआ करता है और मुमुक्षु को मोक्ष लाभ होता है।

महानदीजलं पुण्यं सर्वपापविनाशनम्।
ग्रहणे तदुपस्पृश्य मुच्यते सर्वपातकै:॥ २५॥

महानदी का जल परम पुण्यमय एवं सभी तरह के पापों का विनाश करने वाला है। ग्रहण के समय उस जल में उपस्पर्शन करके सभी पातकों से मनुष्य सदा के लिये मुक्त हो जाता है।

अन्या च विरजा नाम नदी त्रैलोक्यविश्रुता।
तस्यां स्नात्वा नरो विप्रो ब्रह्मलोके महीयते॥ २६॥

इसके अतिरिक्त एक अन्य विरजा नाम की नदी है, जो त्रैलोक्य में परम प्रसिद्ध है। ब्राह्मण मनुष्य उसमें स्नान करके ब्रह्मलोक में पूजित होता है।

तीर्थं नारायणस्यान्यन्नाम्ना तु पुरुषोत्तमम्।
तत्र नारायण: श्रीमानास्ते परमपुरुष:॥ २७॥
पूजयित्वा परं विष्णुं स्नात्वा तत्र द्विजोत्तम:।
ब्राह्मणान्पूजयित्वा तु विष्णुलोकमवाप्नुयात्॥ २८॥

भगवान् नारायण का एक अन्य तीर्थ है जिसका नाम पुरुषोत्तम है। वहाँ पर साक्षात् लक्ष्मीवान्, प्रभु, परम पुरुष नारायण विराजमान रहा करते हैं। वहाँ पहले परम विष्णु का पूजन करके तथा स्नान करके द्विजोत्तम ब्राह्मणों का पूजन करे तो वह विष्णुलोक में जाता है।

तीर्थानां परमं तीर्थं गोकर्णं नाम विश्रुतम्।
सर्वपापहरं शम्भोर्निवास: परमेष्ठिन:॥ २९॥

सभी तीर्थों में एक परम श्रेष्ठ गोकर्ण नाम से विख्यात तीर्थ है, वह परमेष्ठी भगवान् शम्भु का निवास स्थल है और यह सभी पापों का हरण करने वाला है।

दृष्ट्वा लिङ्गं तु देवस्य गोकर्णे परमुत्तमम्।
ईप्सितॉंल्लभते कामानुद्रस्य दयितो भवेत्॥ ३०॥
उत्तरं चापि गोकर्णं लिङ्गं देवस्य शूलिन:।
महादेवं चार्चयित्वा शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥ ३१॥

वहाँ पर महादेव के परमोत्तम गोकर्ण लिङ्ग का दर्शन करके मनुष्य अपने सभी अभीष्ट मनोरथों को प्राप्त कर लेता है तथा वह रुद्रदेव का अतीव प्रिय भक्त हो जाता है। उसी तरह उत्तर की ओर भी गोकर्ण नाम का तीर्थ है, वहां त्रिशूलधारी शंकर का लिङ्ग है। वहां भी मनुष्य महादेव की पूजा करके शिव के सायुज्य को प्राप्त करता है।

तत्र देवो महादेव: स्थाणुरित्यभिविश्रुत:।
तं दृष्ट्वा सर्वपापेभ्यस्तत्क्षणान्मुच्यते नर:॥ ३२॥

उस तीर्थ में जो देव महादेव है वे स्थाणु नाम से विश्रुत हैं। उन प्रभु का दर्शन करके मनुष्य उसी क्षण सभी पापों से मुक्त हो जाता है।

अन्यत्कुब्जाश्रमम्पुण्यं स्थानं विष्णोर्महात्मन:।
संपूज्य पुरुषं विष्णुं श्वेतद्वीपे महीयते॥ ३३॥

इसके अतिरिक्त एक अन्य परम पुण्यमय कुब्जाश्रम है जो महात्मा भगवान् विष्णु का स्थान है। वहाँ पर महापुरुष श्रीविष्णु का पूजन करके मनुष्य श्वेतद्वीप में महिमान्वित हो जाता है।

यत्र नारायणो देवो रुद्रेण त्रिपुरारिणा।
कृत्वा यज्ञस्य मथनं दक्षस्य तु विसर्जितः॥ ३४॥
समन्ताद्योजनं क्षेत्रं सिद्धर्षिगणसेवितम्।
पुण्यमायतनं विष्णोस्तत्रास्ते पुरुषोत्तमः॥ ३५॥

जहाँ पर देव श्रीनारायण ने त्रिपुरारि रुद्र के साथ प्रजापति दक्ष के यज्ञ को मथकर नष्ट कर दिया था। उसके चारों ओर एक योजन का क्षेत्र जो बड़े-बड़े सिद्ध और ऋषिगणों के द्वारा सेवित है। यह भगवान् विष्णु का परम पुण्यमय आश्रय स्थल है और वहाँ पर साक्षात् पुरुषोत्तम प्रभु विराजमान रहते हैं।

अन्यत्कोकामुखे विष्णोस्तीर्थमद्भुतकर्मणः।
मुक्तोऽत्र पातकैर्मर्त्यो विष्णुसारूप्यमाप्नुयात्॥ ३६॥

एक अन्य कोकामुख में अद्भुत कर्मों वाले भगवान् विष्णु का तीर्थ स्थल है। इस तीर्थ में (स्नानादि से) पापों से मुक्त हुआ मानव विष्णु की स्वरूपता को प्राप्त कर लेता है।

शालिग्रामं महातीर्थं विष्णोः प्रीतिविवर्द्धनम्।
प्राणांस्तत्र नरस्त्यक्त्वा हृषीकेशं प्रपश्यति॥ ३७॥

एक शालिग्राम नामक महातीर्थ है, जो भगवान् विष्णु की प्रीति को बढ़ाने वाला है। इस परम पवित्र स्थल पर मनुष्य अपने प्राणों को त्याग कर साक्षात् भगवान् हृषीकेश के दर्शन प्राप्त करता है।

अश्वतीर्थमिति ख्यातं सिद्धावासं सुशोभनम्।
आस्ते हयशिरा नित्यं तत्र नारायणः स्वयम्॥ ३८॥

एक अश्वतीर्थ नाम से प्रसिद्ध महान् तीर्थ है। यह सिद्धों का आवास स्थल और अतीव शोभासम्पन्न है। वहाँ पर हय के समान शिर वाले भगवान् नारायण स्वयं नित्य विराजमान रहते हैं।

तीर्थं त्रैलोक्यविख्यातं सिद्धावासं सुशोभनम्।
तत्रास्ति पुण्यदं तीर्थं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥ ३९॥

एक तीर्थ त्रैलोक्य नाम से विख्यात है। यह भी परमशोभन सिद्ध पुरुषों का निवास स्थल है। वहाँ पर एक पुण्य प्रदान करने वाला परमेष्ठी ब्रह्माजी का तीर्थ है।

पुष्करं सर्वपापघ्नं मृतानां ब्रह्मलोकदम्।
मनसा संस्मरेद्यस्तु पुष्करं वै द्विजोत्तमः॥ ४०॥
मुच्यते पातकैः सर्वैः शक्रेण सह मोदते।

पुष्कर तीर्थ समस्त पापों का हनन करने वाला तथा मृत होने वालों को ब्रह्मलोक प्रदान कराने वाला है। जो कोई भी द्विजश्रेष्ठ मन से भी पुष्कर तीर्थ का स्मरण कर लेता है वह सभी प्रकार के पातकों से मुक्त होकर इन्द्रदेव के साथ आनन्दानुभव प्राप्त किया करता है।

तत्र देवाः सगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः॥ ४१॥
उपासते सिद्धसङ्घा ब्रह्माणं पद्मसम्भवम्।
तत्र स्नात्वा व्रजेच्छुद्धो ब्रह्माणं परमेष्ठिनम्॥ ४२॥
पूजयित्वा द्विजवरं ब्राह्मणं सम्प्रपश्यति।

वहाँ पर गन्धर्वों के साथ सभी देवगण तथा यक्ष-उरग और राक्षस, सभी सिद्धों के संघ, पद्मयोनि पितामह ब्रह्मा की उपासना किया करते हैं। वहाँ पर विधिपूर्वक स्नान करके मनुष्य शुद्ध होकर परमेष्ठी ब्रह्मा का सन्निधान प्राप्त करता है। जो कोई वहां उत्तम ब्राह्मण का पूजन करता है, वह ब्रह्मा का दर्शन कर लेता है।

तत्राभिगम्य देवेशं पुरुहूतमनिन्दितम्॥ ४३॥
तद्रूपो जायते मर्त्यः सर्वान् कामानवाप्नुयात्।

वहाँ देवों के स्वामी अनिन्दित पुरुहूत (इन्द्र) भी रहते हैं। उनके समीप जाकर (दर्शन कर) मनुष्य उसी के समानरूप वाला हो जाया करता है और अपनी सभी कामनाओं की प्राप्ति कर लेता है।

सप्तसारस्वतं तीर्थं ब्रह्माद्यैः सेवितं परम्॥ ४४॥
पूजयित्वा तत्र रुद्रमश्वमेध फलं भवेत्।

वहाँ सप्त सारस्वत नाम का भी तीर्थ है जो ब्रह्मा आदि देवगणों के द्वारा परम सेवित है। जहाँ पर रुद्रदेव का पूजन करके अश्वमेध यज्ञ के फल की प्राप्ति होती है।

यत्र मङ्कणको रुद्रं प्रपन्नं परमेश्वरम्॥ ४५॥
आराधयामास शिवं तपसा गोवृषध्वजम्।

जहाँ मङ्कणक ने परमेश्वर भगवान् रुद्र की शरणागति प्राप्त की थी। उस मङ्कणक ने अपनी तपश्चर्या से गोवृषध्वज प्रभु शिव की आराधना की थी।

प्रजज्वालाथ तपसा मुनिर्मङ्कणकस्तदा॥ ४६॥
ननर्त हर्षवेगेन ज्ञात्वा रुद्रं समागतम्।
तं प्राह भगवान्रुद्रः किमर्थं नर्त्तितं त्वया॥ ४७॥
दृष्ट्वापि देवमीशानं नृत्यति स्म पुनः पुनः।

तब मङ्कणक मुनि तप से प्रज्वलित हो उठे थे। भगवान् रुद्र के आगमन को जानकर वह मुनि हर्षातिरेक के साथ बड़े वेग से नृत्य करने लग गये थे। भगवान् रुद्रदेव ने उससे कहा— आपने यह नृत्य किस प्रयोजन से किया था?

परन्तु वे ईशान देव को अपने समक्ष देखकर भी बारम्बार नृत्य ही करते रहे।

सोऽन्वीक्ष्य भगवानीशः सगर्वं गर्वशान्तये॥४८॥
स्वकं देहं विदार्यास्मै भस्मराशिमदर्शयत्।

यह देखकर भगवान् ईश ने मुनि के गर्व की शान्ति के लिये ही अपने शरीर को चीरकर गर्व के सहित इस मङ्कणक मुनि को भस्मराशि दिखाई थी।

पश्येमं मच्छरीरोत्थं भस्मराशिं द्विजोत्तम॥४९॥
माहात्म्यमेतत्तपसस्त्वादृशोऽन्योऽपि विद्यते।
यत्सगर्वं हि भवता नर्त्तितं मुनिपुङ्गव॥५०॥

(वे बोले) हे द्विजोत्तम! मेरे शरीर में उठी हुई इस भस्म की राशि को तुम देखो। यह इस तपश्चर्या का माहात्म्य ही है और तुम्हारे समान ही अन्य भी विद्यमान हैं। हे मुनिपुङ्गव! आपको अपनी की हुई इस तपस्या का गर्व हो रहा है कि आप बारम्बार नृत्य ही करते चले जा रहे हैं।

न युक्तं तापसस्यैतत्त्वत्तोऽप्यत्राधिको ह्यहम्।
इत्याभाष्य मुनिश्रेष्ठं स रुद्रोऽखिलविश्वदृक्॥५१॥
आख्यया परमं भावं ननर्त्त जगतो हरः।
सहस्रशीर्षा भूत्वा स सहस्राक्षः सहस्रपात्॥५२॥
दंष्ट्राकरालवदनो ज्वालामाली भयंकरः।

एक तापस को ऐसा नृत्य में ही विह्वल हो जाना वस्तुतः उचित नहीं है, तुम से भी अधिक तो मैं ही नृत्य करने वाला हूँ। अखिल विश्व के द्रष्टा उन रुद्रदेव ने उस मुनिश्रेष्ठ से ऐसा कहकर अपने श्रेष्ठ भाव को प्रकट करते हुए जगत् संहारक ताण्डव नृत्य आरम्भ कर दिया था। उस समय भगवान् शिव का स्वरूप सहस्र शिरों वाला, सहस्र नेत्र और सहस्र चरणों वाला, दंष्ट्राओं से विकराल मुख वाला तथा ज्वालाओं की माला से युक्त हुआ भयङ्कर लग रहा था। ऐसा त्रिशूली ईश के समीप में स्थित होकर उस मुनि ने स्वरूप देखा था। वहीं पर उन्हीं के समीप में परम विशाल लोचनों वाली चारुविलासिनी देवी का भी दर्शन किया था जो दश सहस्र सूर्यों के समान तेजाकार वाली थी तथा प्रसन्न मुख से युक्ता जगदम्बा साक्षात् शिवा थी। विशेश प्रभु को स्मित के साथ अमित द्युति वाले और सामने स्थित देखकर वह मुनीश्वर संत्रस्त हृदय वाले होकर कम्पायमान हो रहे थे। वशी मुनीश्वर ने रुद्राध्याय का जाप करते हुए शिर से भगवान् रुद्र को प्रणाम किया था।

सोऽन्वपश्यदथेशस्य पार्श्वे तस्य त्रिशूलिनः॥५३॥
विशाललोचनामेकां देवीञ्चारुविलासिनीम्।
सूर्यायुतसमाकारां प्रसन्नवदनां शिवाम्॥५४॥
सस्मितं प्रेक्ष्य विश्वेशन्तिष्ठन्तममितद्युतिम्।

उस समय मुनि ने त्रिशूलधारी भगवान् ईश के पार्श्वभाग में विशाल नेत्रों से युक्त तथा सुन्दर विलासों से युक्त देवी को भी देखा था। वे शिवा देवी हजारों सूर्य के समान तेज युक्त और प्रसन्नवदना थीं। अमित कान्तिसम्पन्न वे देवी शंकर की ओर मन्द हास्य के साथ देखती हुई खड़ी थीं।

दृष्ट्वा संत्रस्तहृदयो वेपमानो मुनीश्वरः॥५५॥
ननाम शिरसा रुद्रं रुद्राध्यायञ्जपन्वशी।

इस प्रकार शंकर के रूप को देखकर मुनीश्वर का हृदय त्रस्त होकर काँपने लगा। वह किसी प्रकार इन्द्रियों को वश में करके रुद्राध्याय का जप करने लगे और उन्हें शिर झुकाकर प्रणाम किया।

प्रसन्नो भगवानीशस्त्र्यम्बको भक्तवत्सलः॥५६॥
पूर्ववेषं स जग्राह देवी चान्तर्हिताभवत्।
आलिङ्ग्य भक्तं प्रणतं देवदेवः स्वयं शिवः॥५७॥

तब प्रसन्न होकर तीन नेत्रधारी भगवान् शिव ने भक्तवत्सल होने से पुनः अपना पूर्व वेष ग्रहण कर लिया और वह देवी वहां से अन्तर्हित हो गयीं। शिव ने स्वयं ही अपने चरणों में प्रणत भक्त का आलिङ्गन किया।

न भेतव्यं त्वया वत्स प्राह किन्ते ददाम्यहम्।
प्रणम्य मूर्ध्ना गिरिशं हरं त्रिपुरसूदनम्॥५८॥
विज्ञापयामास तदा हृष्टः प्रष्टुमना मुनिः।
नमोऽस्तु ते महादेव महेश्वर नमोऽस्तु ते॥५९॥
किमेतद्भगवद्रूपं सुघोरं विश्वतोमुखम्।
का च सा भगवत्पार्श्वे राजमाना व्यवस्थिता॥६०॥
अन्तर्हिता च सहसा सर्वमिच्छामि वेदितुम्।

और कहा— हे वत्स! अब तुमको किसी प्रकार का भय नहीं करना चाहिए। बताओ, मैं तुमको क्या प्रदान करूँ। तब मुनि ने मस्तक से त्रिपुरासुर का नाश करने वाले गिरीश हर को प्रणाम किया और परमहर्षित होकर पूछने की इच्छा से प्रभु से कहा— हे महादेव! हे महेश्वर! आपको नमस्कार हो। हे भगवन् ! आपका यह परम घोर विश्वतोमुखरूप क्या था और आपके पार्श्वभाग में विराजमान होकर व्यवस्थित देवी

कौन थी? वह अचानक अदृश्य हो गई, मैं यह सभी जानने की इच्छा कर रहा हूँ।

इत्युक्ते व्याजहारेशस्तदा मंकणकं हर:॥६१॥
महेश: स्वात्मो योगं देवीं च त्रिपुरानल:।
अहं सहस्रनयन: सर्वात्मा सर्वतोमुख:॥६२॥
दाहक: सर्वपाशानां काल: कालकरो हर:।
मयैव प्रेर्यते कृत्स्नं चेतनाचेतनात्मकम्॥६३॥

ऐसा पूछने पर त्रिपुरा को जलाने वाले अग्निरूप महेश्वर हर ने उस समय मङ्कण मुनि से अपने योग के प्रभाव तथा देवी के विषय में कहा। मैं सहस्रनयन, सर्वात्मा, सर्वतोमुख, समस्त पाशों का दाहक, कालरूप और कालनिर्माता हर हूँ। मेरे द्वारा ही सम्पूर्ण चेतन और अचेतन जगत् प्रेरित किया जाता है।

सोऽन्तर्यामी स पुरुषो ह्यहं वै पुरुषोत्तम:।
तस्य सा परमा माया प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका॥६४॥

मैं ही सबका अन्तर्यामी पुरुष होने से पुरुषोत्तम हूँ। वह देवी (जिसे तुमने देखा था) त्रिगुणात्मिका स्वरूप वाली मूलप्रकृति मेरी माया है

प्रोच्यते मुनिभि: शक्तिर्जगद्योनि: सनातनी।
स एव मायया विश्वं व्यामोहयति विश्वकृत्॥६५॥
नारायण: परोऽव्यक्तो मायारूप इति श्रुति:।
एवमेतज्जगत्सर्वं सर्वदा स्थापयाम्यहम्॥६६॥

यही मुनियों के द्वारा इस जगत् की योनिस्वरूपा सनातनी शक्ति कहा गया है। वह विश्व की रचना करने वाला प्रभु अपनी इस माया के द्वारा इस सम्पूर्ण विश्व को मोहित किया करते हैं। वह नारायण पर, अव्यक्त और मायारूप हैं-ऐसा श्रुति कहती है। इसी प्रकार मैं इस सम्पूर्ण जगत् को सर्वदा स्थापित किया करता हूँ।

योजयामि प्रकृत्याहं पुरुषं पंचविंशकम्।
तथा वै संगतो देव: कूटस्थ: सर्वगोऽमल:॥६७॥
सृजत्यशेषमेवेदं स्वमूर्ते: प्रकृतेरज:।
स देवो भगवान्ब्रह्मा विश्वरूप: पितामह:॥६८॥

इस त्रिगुणात्मिका प्रकृति के साथ मैं पच्चीसवें तत्त्व पुरुष को योजित करता हूँ। इस प्रकार प्रकृति के साथ संगत तथा स्वयं कूटस्थ-निर्विकार, सर्वत्र गमन करने वाला विशुद्ध वही अज अपनी ही मूर्तिरूपा प्रकृति में इस सम्पूर्ण विश्व का सृजन किया करता है। वही देव भगवान् ब्रह्मा विश्वरूप और पितामह हैं।

तवैतत्कथितं सम्यक् स्रष्टृत्वं परमात्मन:।
एकोऽहं भगवान्कालो ह्यनादिश्चान्तकृद्विभु:॥६९॥
समास्थाय परं भावं प्रोक्तो रुद्रो मनीषिभि:।
ममैव सा परा शक्तिर्देवी विद्येति विश्रुता:॥७०॥

मैंने परमात्मा का सृजन करने का यह समस्त विधान तुम्हें बता दिया है। एक मैं ही भगवान् कालरूप हूँ जो अनादि और विभु होने से सबका अन्त करने वाला हूँ। जब मैं परम भाव में समास्थित होकर मनीषियों द्वारा रुद्र कहा गया हूँ। वह देवी विद्या नाम से प्रसिद्ध हैं मेरी ही एक परा शक्ति है।

दृष्टो हि भवता नूनं विद्यादेहं स्वयं तत:।
एवमेतानि तत्त्वानि प्रधानपुरुषेश्वर:॥७१॥
विष्णुर्ब्रह्मा च भगवान्रुद्र: काल इति श्रुति:।
त्रयं मे तदनाद्यन्तं ब्रह्मण्येव व्यवस्थितम्॥७२॥

तुमने तो स्वयं ही उस विद्यारूप देह को देख लिया है। इस प्रकार प्रधान, पुरुष, ईश्वर, विष्णु, ब्रह्मा और भगवान् रुद्र, तथा काल - ये ही मुख्य तत्त्व हैं—यही श्रुति का वचन है। यह तीनों ही आदि और अन्त से रहित हैं तथा ब्रह्मस्वरूप हैं।

तदात्मकं तदव्यक्तं तदक्षरमिति श्रुति:।
आत्मानन्दपरं तत्त्वं चिन्मात्रं परमपदम्॥७३॥
आकाशं निष्कलं ब्रह्म तस्मादन्यत्र विद्यते।
एवं विज्ञाय भवता भक्तियोगाश्रयेण तु॥७४॥
सम्पूज्यो वन्दनीयोऽहं ततस्तं पश्यसीश्वरम्।

श्रुति कहती है—वह उसी के स्वरूप वाला, अव्यक्त और अक्षर (अविनाशी) है। आत्मानन्दरूप परम तत्व ज्ञानमात्र है और वही परम पद है। वही आकाशरूप निष्कल ब्रह्म है उससे अन्य कुछ नहीं है। इसी प्रकार विशेषरूप से जानकर भक्तियोग का आश्रय लेकर आपके लिए मैं भली-भाँति पूजन तथा वन्दन के योग्य हूँ। इससे तुम ईश्वर को देख सकोगे।

एतावदुक्त्वा भगवाञ्जगामादर्शनं हर:॥७५॥
तत्रैव भक्तियोगेन रुद्रमाराधयन्मुनि:।
एतत्पवित्रमतुलं तीर्थं ब्रह्मर्षिसेवितम्।
संसेव्य ब्राह्मणो विद्वान्मुच्यते सर्वपातकै:॥७६॥

इतना कहकर भगवान् शंकर वहीं अदृश्य हो गये। वहीं भक्तियोग से मुनि ने रुद्रदेव की आराधना करते रहते थे। यह परम पवित्र अतुलनीय तीर्थ ब्रह्मर्षियों के द्वारा सेवित है। इसे विद्वान् ब्राह्मण सेवन करके समस्त पातकों से मुक्त हो जाता है।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे पञ्चत्रिंशोऽध्याय:॥३५॥

षट्त्रिंशोऽध्याय:

(तीर्थ-प्रकरण)

सूत उवाच

अन्यत्पवित्रं विपुलं तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्।
रुद्रकोटिरिति ख्यातं रुद्रस्य परमेष्ठिन:॥१॥

सूतजी बोले— त्रैलोक्य में प्रसिद्ध एक अन्य पवित्र विशाल तीर्थ है। परमेष्ठी रुद्र का होने से यह रुद्रकोटि नाम से विख्यात है।

पुरा पुण्यतमे काले देवदर्शनतत्परा:।
कोटिब्रह्मर्षयो दान्तास्तं देशमगमन्परम्॥२॥
अहं द्रक्ष्यामि गिरिशं पूर्वमेव पिनाकिनम्।
अन्योऽन्यं भक्तियुक्तानां विवादोऽभून्महान् किल॥३॥

किसी विशेष पुण्यतम पुरातन काल में कभी करोड़ों जितेन्द्रिय महर्षिगण, महादेव के दर्शन की इच्छा से उस तीर्थ में गये थे। वहां जाने पर भक्तियुक्त हुए उन महर्षियों में, 'मैं पहले पिनाकी गिरीश का दर्शन करूँगा' इस प्रकार परस्पर महान् विवाद हो उठा।

तेषां भक्तिं तदा दृष्ट्वा गिरिशो योगिनां गुरु:।
कोटिरूपोऽभवद्रुद्रो रुद्रकोटिस्ततोऽभवत्॥४॥

तब उनकी भक्ति देखकर योगियों के गुरु भगवान् महादेव ने करोड़ों रूप धारण कर लिए। तब से यह तीर्थ रुद्रकोटि के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

ते स्म सर्वे महादेवं हरं गिरिगुहाशयम्।
अपश्यन् पार्वतीनाथं हृष्टपुष्टधियोऽभवन्॥५॥

पर्वत की गुफा में रहने वाले, पार्वतीपति शंकर के (एक साथ) दर्शन किये अत: वे सभी ऋषिगण अत्यन्त परिपक्व बुद्धि वाले हो गये।

अनाद्यन्तं महादेवं पूर्वमेवाहमीश्वरम्।
दृष्टवानिति भक्त्या ते रुद्रन्यस्तधियोऽभवन्॥६॥

आदि और अन्त रहित ईश्वर, महादेव को मैंने ही पहले देखा, यह सोचकर, ब्रह्मर्षि लोग भक्ति के कारण रुद्रमय बुद्धिवाले हो गये।

अथान्तरिक्षे विमलम्पश्यन्ति स्म महत्तरम्।
ज्योतिस्तत्रैव ते सर्वेऽभिलषन्त: परम्पदम्॥७॥
यत: स देवोऽध्युषितस्तीर्थं पुण्यतमं शुभम्।
दृष्ट्वा रुद्रान्समभ्यर्च्य रुद्रसामीप्यमाप्नुयु:॥८॥

तत्पश्चात् उन्होंने आकाश में एक विमल महान् ज्योति को देखा और उसी में लीन होकर ही, वे सब परम पद को प्राप्त हो गये। यही कारण है कि वे रुद्रदेव वहां रहते थे, इसलिए यह तीर्थ पुण्यमय और शुभ है। वहां रुद्र का दर्शन तथा पूजन करके मनुष्य रुद्र का सामीप्य प्राप्त कर लेता है।

अन्यच्च तीर्थप्रवरं नाम्ना मधुवनं शुभम्।
तत्र गत्वा नियमवानिन्द्रस्यार्द्धासनं लभेत्॥९॥
अथान्या पद्मनगरी देश: पुण्यतम: शुभ:।
तत्र गत्वा पितृन्पूज्य कुलानां तारयेच्छतम्॥१०॥

एक दूसरा मधुवन नामक श्रेष्ठ पवित्र तीर्थ है। वहां जाकर नियमनिष्ठ होकर रहने वाला इन्द्र के अर्धासन को प्राप्त कर लेता है। इसके अतिरिक्त पद्मनगरी नामक शुभ और पुण्यतम प्रदेश है। वहाँ जाकर पितरों की पूजा करने से अपने वंश के सौ पितरों का उद्धार होता है।

कालञ्जरं महातीर्थं रुद्रलोके महेश्वर:।
कालञ्जरं भजन्देवं तत्र भक्तप्रियो हर:॥११॥
श्वेतो नाम शिवे भक्तो राजर्षिप्रवर: पुरा।
तदाशीस्तन्नमस्कारै: पूजयामास शूलिनम्॥१२॥
संस्थाप्य विधिना रुद्रं भक्तियोगपुर:सर:।
जजाप रुद्रमनिशं तत्र संन्यस्तमानस:॥१३॥

रुद्रलोक में कालंजर नामक एक महातीर्थ है। जहाँ भक्तप्रिय महादेव महेश्वर कालंजर नामक रुद्रदेव का भजन करते हैं। प्राचीन काल में श्वेत नामक एक शिवभक्त राजर्षि यहीं शिवजी के आशीर्वाद प्राप्तकर नमस्कारादि से त्रिशूलधारी शिव का पूजन किया करता था। उसने वहां भक्तियोगपूर्वक विधिवत् शिवलिङ्ग स्थापित किया और फिर उसी शिव में चित्त लगाकर निरन्तर रुद्र मन्त्र का जप किया।

सितं कार्ष्णाजिनं दीप्तं शूलमादाय भीषणम्।
नेतुमभ्यागतो देशं स राजा यत्र तिष्ठति॥१४॥

तत्पश्चात्, वे राजा जहाँ पर थे, (उनकी मृत्यु का समय आने पर) उनको वहाँ से कालदेव अपने यमलोक में ले जाने के लिए दीप्तिमान् काले मृगचर्म को धारणकर और हाथ में भीषण त्रिशूल धारण करके वहाँ आ पहुँचे।

वीक्ष्य राजा भयाविष्टः शूलहस्तं समागतम्।
कालं कालकरं घोरं भीषणं चण्डदीपितम्॥ १५॥
उभाभ्यामथ हस्ताभ्यां स्पृष्ट्वासौ लिङ्गमुत्तमम्।
ननाम शिरसा रुद्रं जजाप शतरुद्रियम्॥ १६॥

तब राजा श्वेत सारे संसार के प्रलयकर्ता, भयंकर, घोररूप प्रचण्ड दीप्तिवाले, काल को त्रिशूल हाथ में लेकर उपस्थित देखकर भयभीत हो गये। तब वह राजा ने दोनों हाथों से अत्युत्तम शिवलिङ्ग का स्पर्श करके सिर झुकाकर रुद्र को नमस्कार किया तथा शतरुद्रिय स्तोत्र का जप करने लगे।

जपन्तमाह राजानं नमन्तं मनसा भवम्।
एह्येहीति पुरः स्थित्वा कृतान्तः प्रहसन्निव॥ १७॥
तमुवाच भयाविष्टो राजा रुद्रपरायणः।
एकमीशार्चनरतं विहायान्यान्निषूदय॥ १८॥

इस प्रकार जप करते हुए तथा मन से भव को नमन करने वाले राजा के आगे कृतान्त यम ने हँसते हुए से कहा– यहां आओ, यहां आओ। रुद्रपरायण राजा भयभीत होकर यमराज से बोले कि महादेव की पूजा में निरत मुझ एक को छोड़कर, अन्य लोगों का विनाश करो।

इत्युक्तवन्तं भगवानब्रवीद्भीतमानसम्।
रुद्रार्चनरतो वान्यो मद्वशे को न तिष्ठति॥ १९॥

तब ऐसा कहने वाले भयभीत मन वाले राजा को यमराज ने कहा कि चाहे रुद्र की पूजा में निरत हो या दूसरा कोई, कौन मेरे वशीभूत नहीं होता।

एवमुक्त्वा स राजानं कालो लोकप्रकालनः।
बबन्ध पाशै राजापि जजाप शतरुद्रियम्॥ २०॥

ऐसा कहकर सारे लोकों के प्रलयकर्ता, काल मृत्युदेव ने राजा को पाश से बाँध दिया, परन्तु राजा तब भी शतरुद्रिय का जप करते रहे।

अथान्तरिक्षे विपुलं दीप्यमानं
तेजोराशिं भूतभर्तुः पुराणम्।
ज्वालामालासंवृतं व्याप्य विश्वं
प्रादुर्भूतं संस्थितं सन्ददर्श॥ २१॥

तभी राजा श्वेत ने भूतपति, महादेव के दीप्यमान, ज्वालाओं की मालाओं से युक्त, अनादि, विपुल तेज समूह को देखा जो विश्व को व्याप्त करके प्रादुर्भूत हुआ था।

तन्मध्येऽसौ पुरुषं रुक्मवर्णं
देव्या देवं चन्द्रलेखोज्ज्वलाङ्गम्।
तेजोरूपं पश्यति स्मातिहृष्टो
मेने चात्मानमप्यागच्छतीति॥ २२॥

राजा ने उस तेजसमूह के बीच महादेवी के साथ विद्यमान, सुनहरे वर्ण और चन्द्रलेखा से सुशोभित अंग वाले, तेजोमय पुरुष को देखा। राजा अत्यन्त प्रसन्न होकर उसे देखने लगे और समझ गये कि मेरे नाथ आ गये हैं।

आगच्छन्तं नातिदूरेति दृष्ट्वा कालो रुद्रं देवदेव्या महेशम्।
व्यपेतभीरखिलेशैकनाथं राजर्षिस्तं नेतुमभ्याजगाम॥ २३॥

थोड़ी दूर पर महादेवी के साथ रुद्रदेव को आते देखकर भी काल निर्भय ही रहा और समस्त विश्व के नाथ महादेव के समक्ष ही राजर्षि को ले जाने के लिये उद्यत हुआ।

आलोक्यासौ भगवानुग्रकर्मा
देवो रुद्रो भूतभर्ता पुराणः।
एवं भक्तं सत्वरं मां स्मरन्तं
देहीतीमं कालरूपं ममेति॥ २४॥

यह देखकर, प्राणियों के नाथ, पुराणपुरुष भगवान् उग्रकर्मा देव रुद्र ने, कालरूप मृत्यु से कहा– ऐसे मुझे बार बार स्मरण करने वाले मेरे भक्त को शीघ्र ही मुझे दे दो।

श्रुत्वा वाक्यं गोपते रुद्रभावः
कालात्मासौ मन्यमानः स्वभावम्।
बद्ध्वा भक्तं पुनरेवाथ पाशै
रुद्रो रौद्रं ह्यभिदुद्राव वेगात्॥ २५॥

वृषभपति महादेव का ऐसा वचन सुनकर भी काल ने अपने स्वभाव को मुख्य मानते हुए उग्रभाव से शिवभक्त को पाशों से बाँध दिया और क्रोधित होकर वेग से रुद्र की ओर दौड़ पड़े।

प्रेक्ष्यायान्तं शैलपुत्रीमथेशः
सोऽन्वीक्ष्यान्ते विश्वमायाविधिज्ञः।
सावज्ञं वै वामपादेन कालं
त्वेतस्यैनं पश्यतो व्याजघान॥ २६॥

काल को आते देखकर संसार के प्रपंचों के ज्ञाता, महादेव ने पार्वती की ओर कटाक्ष से देखकर, उसको

अवहेलना करते हुए राजर्षि के सामने काल को बायें पैर से मारा।

ममार सोऽतिभीषणो महेशपादघातित:।
विराजते सहोमया महेश्वर: पिनाकधृक्॥ २७॥

महेश्वर के पाद प्रहार से ही अत्यन्त भयंकर कालदेव मारा गया और पिनाक धनुषधारी महेश्वर, उमा के साथ सुशोभित होने लगे।

निरीक्ष्य देवमीश्वरं प्रहृष्टमानसो हरम्।
ननाम वै तमव्ययं स राजपुङ्गवस्तदा॥ २८॥

देवेश्वर शंकर को देखकर राजश्रेष्ठ श्वेत प्रसन्नमन होकर अविनाशी पुरुष को नमस्कार एवं स्तुति करने लगे।

नमो भवाय हेतवे हराय विश्वशम्भवे।
नम: शिवाय धीमते नमोऽपवर्गदायिने॥ २९॥
नमो नमो नमो नमो महाविभूतये नम:।
विभागहीनरूपिणे नमो नराधिपाय ते॥ ३०॥
नमोऽस्तु ते गणेश्वर प्रपन्नदु:खशासन।
अनादिनित्यभूतये वराहशृङ्गधारिणे॥ ३१॥
नमो वृषध्वजाय ते कपालमालिने नम:।
नमो महानगाय ते शिवाय शङ्कराय ते॥ ३२॥

जगत् के हेतुरूप भव को नमस्कार है, हररूप, विश्व के लिए कल्याणरूप को नमस्कार है। ज्ञानी शिव को नमस्कार, मोक्षप्रदाता को नमस्कार। महान् विभूति या ऐश्वर्ययुक्त (महा विभूति-भस्मधारी) आपको बार बार नमस्कार। विभाग रहित स्वरूप वाले तथा मनुष्यों के स्वामी आपको नमस्कार है। हे प्राणियों के स्वामी! हे शरणागत दु:खहारी! आपको नमस्कार। आप आदि रहित, नित्य, सौभाग्य सम्पन्न और वराह का शृङ्ग धारण करने वाले हैं, आपको नमस्कार। वृषध्वज! आपको नमस्कार है। हे कपालमाली! आपको नमस्कार। हे महानग! आपको नमस्कार। कल्याणकारी शंकर को नमस्कार।

अथानुगृह्य शङ्कर: प्रणामतत्परं नृपम्।
स्वगाणपत्यमव्ययं स्वरूपतामथो ददौ॥ ३३॥

तत्पश्चात्, प्रणाम करने में तत्पर राजा पर महादेव ने कृपा की और अपना गाणपत्य पद और अविनाशी स्वरूप प्रदान किया।

सहोमया सपार्षद: सराजपुंगवो हर:।
मुनीशसिद्धवन्दित: क्षणाददृश्यतामगात्॥ ३४॥

तत्पश्चात् उमा देवी तथा पार्षदों के साथ श्वेत नामक राजा को भी साथ लेकर महर्षियों और सिद्धों के द्वारा स्तुत्य होते हुए, वे महेश्वर क्षणभर में अदृश्य हो गये।

काले महेशनिहते लोकनाथ: पितामह:।
अयाचत वरं रुद्रं सजीवोऽयं भवत्विति॥ ३५॥

महेश के द्वारा काल को मार दिये जाने पर, लोकनाथ पितामह ने रुद्र से वर माँगा था कि 'यह काल जीवित हो जाय'।

नास्ति कश्चिदपीशान दोषलेशो वृषध्वज।
कृतान्तस्यैव भविता तत्कार्ये विनियोजित:॥ ३६॥

(उन्होंने कहा) हे ईशान! वृषभध्वज! यमराज का जरा भी दोष नहीं, क्योंकि उसे आपने ही इस कार्य में नियुक्त है।

स देवदेववचनोद्देवदेवेश्वरो हर:।
तथास्त्वित्याह विश्वात्मा सोऽपि तादृग्विधोऽभवत्॥ ३७॥

देवाधिदेव ब्रह्मा के वचन सुनकर, देवाधिदेवेश्वर विश्व की आत्मा महेश्वर ने 'तथास्तु' कहा और वह भी वैसा ही हो गया अर्थात् पुन: जीवित हो गया।

इत्येतत्परमं तीर्थं कालञ्जरमिति श्रुतम्।
गत्वाभ्यर्च्य महादेवं गाणपत्यं स विन्दति॥ ३८॥

इसीलिए यह श्रेष्ठ कालंजर (जहाँ काल का नाश किया था) तीर्थ माना गया है। वहाँ जाकर महादेव की पूजा करने से गणों के अधिपति पद की प्राप्ति होती है।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे कालवधे षट्त्रिंशोऽध्याय:॥ ३६॥

सप्तत्रिंशोऽध्याय:

(तीर्थ-प्रकरण)

सूत उवाच

इदमन्यत्परं स्थानं गुह्याद्गुह्यतरं महत्।
महादेवस्य देवस्य महालय इति श्रुतम्॥ १॥
तत्र देवादिदेवेन रुद्रेण त्रिपुरारिणा।
शिलातले पदं न्यस्तं नास्तिकानां निदर्शनम्॥ २॥
तत्र पाशुपता: शान्ता भस्मोद्धूलितविग्रहा:।
उपासते महादेवं वेदाध्ययनतत्परा:॥ ३॥
स्नात्वा तत्र पदं शार्वं दृष्ट्वा भक्तिपुरस्सरम्।
नमस्कृत्वाथ शिरसा रुद्रसामीप्यमाप्नुयात्॥ ४॥

सूतजी ने कहा—यह एक अन्य गुह्य से भी गुह्यतर श्रेष्ठ स्थान है। यह महादेव देव का महालय है—ऐसा सुना है। वहां शिलातल पर देवाधिदेव त्रिपुरारि रुद्र ने पदन्यस्त किया था जो नास्तिकों के लिए अदृष्ट है। वहाँ पर पाशुपत लोग परम शान्तावस्था में भस्म से धूसरित शरीर वाले तथा वेदों के अध्ययन में तत्पर महादेव की उपासना किया करते हैं। वहाँ स्नान करने पर भक्तिपूर्वक भगवान् शर्व के इस स्थान का दर्शन करके तथा शिर नमन कर प्रणाम करने से रुद्र का सामीप्य प्राप्त होता है।

अन्यच्च देवदेवस्य स्थानं शम्भोर्महात्मनः।
केदारमिति विख्यातं सिद्धानामालयं शुभम्॥५॥
तत्र स्नात्वा महादेवमभ्यर्च्य वृषकेतनम्।
पीत्वा चैवोदकं शुद्धं गाणपत्यमवाप्नुयात्॥६॥
श्राद्धं दानादिकं कृत्वा ह्यक्षयं लभते फलम्।
द्विजातिप्रवरैर्जुष्टं योगिभिर्जितमानसैः॥७॥

देवों के भी देव महात्मा शम्भु का एक अन्य स्थान है। यह केदार नाम से विख्यात है जो सिद्धों का शुभ आश्रय स्थल है। वहाँ पर स्नान करके और वृषकेतन महादेव की पूजा करके तथा परम शुद्ध जल का पान करके गाणपत्य पद प्राप्त होता है। वहां श्राद्ध तथा दान आदि करके अक्षय फल की प्राप्ति होती है। यह जितेन्द्रिय योगियों तथा श्रेष्ठ द्विजातियों द्वारा सेवित है।

तीर्थं प्लक्षावतरणं सर्वपापविनाशनम्।
तत्राभ्यर्च्य श्रीनिवासं विष्णुलोके महीयते॥८॥
अन्यच्च मगधारण्यं सर्वलोकगतिप्रदम्।
अक्षयं विन्दते स्वर्गं तत्र गत्वा द्विजोत्तमः॥९॥

वहां एक प्लक्षावतरण नामक तीर्थ है जो सभी प्रकार के पापों का नाश करने वाला है। वहाँ पर भगवान श्रीनिवास की अर्चना करने पर मनुष्य विष्णुलोक में पूजित होता है। एक अन्य मगधारण्य नामक तीर्थ है जो सभी लोकों में गति प्रदान करने वाला है वहाँ पर पहुँचकर द्विजोत्तम अक्षय स्वर्ग की प्राप्ति किया करते हैं।

तीर्थं कनखलं पुण्यं महापातकनाशनम्।
यत्र देवेन रुद्रेण यज्ञो दक्षस्य नाशितः॥१०॥
तत्र गंगामुपस्पृश्य शुचिर्भावसमन्वितः।
मुच्यते सर्वपापैस्तु ब्रह्मलोके वसेन्नरः॥११॥

कनखल नाम का तीर्थ परम पुण्यमय है जो महान् पातकों का विनाशक है, जहाँ पर भगवान् रुद्रदेव ने प्रजापति दक्ष के यज्ञ का नाश किया था। वहाँ पर गङ्गा में उपस्पर्शन करके परम पवित्र होकर भक्तिभावना से युक्त होकर तीर्थ का सेवन करने पर मनुष्य सब प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है और फिर ब्रह्मलोक में निवास किया करता है।

महातीर्थमिति ख्यातं पुण्यं नारायणप्रियम्।
तत्राभ्यर्च्य हृषीकेशं श्वेतद्वीपं स गच्छति॥१२॥

एक महातीर्थ नाम से विख्यात तीर्थ है जो परम पुण्यमय है और भगवान् नारायण को अत्यन्त प्रिय है। वहाँ पर भगवान् हृषीकेश की अर्चना करके मनुष्य श्वेतद्वीप में जाता है।

अन्यच्च तीर्थप्रवरं नाम्ना श्रीपर्वतं शुभम्।
अत्र प्राणान्परित्यज्य रुद्रस्य दयितो भवेत्॥१३॥
तत्र संनिहितो रुद्रो देव्या सह महेश्वरः।
स्नानपिण्डादिकं तत्र दत्तमक्षय्यमुत्तमम्॥१४॥

एक दूसरा और तीर्थों में परम श्रेष्ठ शुभ तीर्थ है जो नाम से श्रीपर्वत कहा जाता है। इस तीर्थ में मनुष्य अपने प्रिय प्राणों का परित्याग करके भगवान् रुद्र का परम प्रिय हो जाता है। वहाँ पर रुद्रदेव देवी पार्वती के साथ विराजमान रहते हैं। इस तीर्थ में स्नान और पिण्ड आदि का कर्म तथा दिया हुआ धन अक्षय एवं उत्तम हो जाता है।

गोदावरी नदी पुण्या सर्वपापप्रणाशिनी।
तत्र स्नात्वा पितॄन्देवांस्तर्पयित्वा यथाविधि॥१५॥
सर्वपापविशुद्धात्मा गोसहस्रफलं लभेत्।

गोदावरी नामकी परम पुण्यमयी नदी सभी पापों का नाश करने वाली है। उस नदी में स्नान करके पितरों और देवों का तर्पण यथाविधि करना चाहिए। वह सर्वपापों से विशुद्ध आत्मा वाला होकर एक सहस्र गौओं के दान का फल प्राप्त करता है।

पवित्रसलिला पुण्या कावेरी विपुला नदी॥१६॥
तस्यां स्नात्वोदकं कृत्वा मुच्यते सर्वपातकैः।
त्रिरात्रोपोषितेनाथ एकरात्रोषितेन वा॥१७॥
द्विजातीनान्तु कथितं तीर्थानामिह सेवनम्।

पवित्र जलवाली कावेरी नदी अतिशय पुण्यमयी है। उसमें स्नान करके तथा (पितरों को) जल दान करके मनुष्य तीन रात्रि उपवास करता है, अथवा एक रात्रि तक उपवास करता है, वह समस्त पापों से मुक्त हो जाता है।

द्विजातियों का यह कथन है कि यहाँ पर तीर्थों का सेवन करना चाहिए।

यस्य वाङ्मनसी शुद्धे हस्तपादौ च संस्थितौ॥ १८॥
अलोलुपो ब्रह्मचारी तीर्थानां फलमाप्नुयात्।

जिसका मन और वाणी शुद्ध हों और हाथ-पैर भी संस्थित हों, उसे तीर्थ सेवन अवश्य करना चाहिए। जो मनुष्य लोलुप न हो, ब्रह्मचारी हो वही मनुष्य तीर्थों के शुभ फल प्राप्त किया करता है।

स्वामितीर्थं महातीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्॥ १९॥
तत्र सन्निहितो नित्यं स्कन्दोऽमरनमस्कृतः।
स्नात्वा कुमारधारायां कृत्वा देवादितर्पणम्॥ २०॥
आराध्य षण्मुखं देवं स्कन्देन सह मोदते।

स्वामितीर्थ एक महान् तीर्थ है और तीनों लोकों में यह परम प्रसिद्ध है। वहाँ पर देवगण के द्वारा नमस्कृत भगवान् स्कन्द नित्य ही वास करते हैं। वहां कुमार धारा में स्नान करके पितृगण और देवों का तर्पण करना चाहिए। जो छः मुख वाले देव की आराधना करता है, वह भगवान् स्कन्द के ही साथ आनन्द का उपभोग करता है।

नदी त्रैलोक्यविख्याता ताम्रपर्णीति नामतः॥ २१॥
तत्र स्नात्वा पितॄन्भक्त्या तर्पयित्वा यथाविधि।
पापकर्तॄनपि पितॄंस्तारयेन्नात्र संशयः॥ २२॥

ताम्रपर्णी नाम की नदी त्रैलोक्य में विख्यात है। उसमें स्नान करके यथाविधि पितरों का भक्तिभाव से तर्पण करना चाहिए। वह पापकर्म वाले पितरों का भी उद्धार कर देता है—इसमें जरा भी संशय नहीं है।

चन्द्रतीर्थमिति ख्यातं कावेर्याः प्रभवेऽक्षयम्।
तीर्थे तत्र भवेद्दत्तं मृतानां सद्गतिप्रदम्॥ २३॥
विन्ध्यपादे प्रपश्यन्ति देवदेवं सदाशिवम्।
भक्त्या ये ते न पश्यन्ति यमस्य वदनं द्विजाः॥ २४॥

कावेरी नदी के उत्पत्ति स्थान पर चन्द्रतीर्थ नाम से एक अक्षय तीर्थ विख्यात है। उस तीर्थ में दिया हुआ दान भी मृत पुरुषों को संगति प्रदान कराने वाला है। विन्ध्यपाद में देवों के देव सदाशिव का जो दर्शन किया करते हैं और जो शिव के भक्त होते हैं, वे द्विज यमराज का मुख नहीं देखा करते हैं अर्थात् मृत्यु पश्चात् शिव के समीप ही रहते हैं।

देविकायां वृषं नाम तीर्थं सिद्धनिषेवितम्।
तत्र स्नात्वोदकं कृत्वा योगसिद्धिञ्च विन्दति॥ २५॥

देविका क्षेत्र में वृष नाम वाला एक तीर्थ है जो सिद्धों के द्वारा निषेवित है। उस तीर्थ में स्नानकर देव-पितृगण का तर्पण करके मनुष्य योग की सिद्धि को प्राप्त करता है।

दशाश्वमेधिकं तीर्थं सर्वपापविनाशकम्।
दशानामश्वमेधानां तत्राप्नोति फलं नरः॥ २६॥
पुण्डरीकं तथा तीर्थं ब्राह्मणैरुपशोभितम्।
तत्राभिगम्य युक्तात्मा पुण्डरीकफलं लभेत्॥ २७॥

दशाश्वमेधिक नाम वाला तीर्थ सभी पापों का विनाश करने वाला है। वहाँ पर उस तीर्थ का स्नानादि करके मनुष्य दश अश्वमेधों का फल प्राप्त कर लेता है। एक पुण्डरीक नामक तीर्थ है जो ब्राह्मणों के द्वारा उपशोभित है। वहाँ पर जाकर योगयुक्त मन वाला मनुष्य पुण्डरीक यज्ञ का फल प्राप्त करता है।

तीर्थेभ्यः परमं तीर्थं ब्रह्मतीर्थमिति स्मृतम्।
ब्रह्माणमर्चयित्वात्र ब्रह्मलोके महीयते॥ २८॥

समस्त तीर्थों में श्रेष्ठ तीर्थ ब्रह्मतीर्थ नाम से कहा गया है। यहाँ पितामह ब्रह्माजी का अभ्यर्चन करके मानव अन्त में ब्रह्मलोक में जा कर प्रतिष्ठित होता है।

सरस्वत्या विनशनं प्लक्षप्रस्रवणं शुभम्।
व्यासतीर्थमिति ख्यातं मैनाकञ्च नगोत्तमः॥ २९॥
यमुनाप्रभवञ्चैव सर्वपापविनाशनः।
पितॄणां दुहिता देवी गन्धकालीति विश्रुता॥ ३०॥
तस्यां स्नात्वा दिवं याति मृतो जातिस्मरो भवेत्।

इस प्रकार सरस्वती के किनारे विनशन, प्लक्ष प्रस्रवण तथा शुभ व्यास तीर्थ प्रसिद्ध है और वहां मैनाक नाम से उत्तम पर्वत तीर्थ भी है। यमुना का उद्भव स्थानरूप तीर्थ भी सम्पूर्ण पापों का विनाश करने वाला है। वहां पितृगण की पुत्री देवी गन्धकाली - नाम से प्रसिद्ध थी। उसमें स्नान करके मनुष्य स्वर्ग में जाता है और मृत होकर जातिस्मर (पूर्वजन्म की स्मृतिवाला) होता जाता है।

कुबेरतुङ्गं पापघ्नं सिद्धचारणसेवितम्॥ ३१॥
प्राणांस्तत्र परित्यज्य कुबेरानुचरो भवेत्।
उमातुङ्गमिति ख्यातं यत्र सा रुद्रवल्लभा॥ ३२॥
तत्राभ्यर्च्य महादेवीं गोसहस्रफलं लभेत्।

कुबेरतुङ्ग नाम वाला तीर्थ सब पापों को दूर करने वाला तथा सिद्धों और चारणों द्वारा सेवित है। वहाँ पर प्राणत्याग करके प्राणी फिर कुबेर के अनुचर होने का अधिकारी हो

जाया करता है। एक उमातुङ्ग नाम से विख्यात तीर्थ है, जहाँ पर रुद्रदेव की प्रिया निवास किया करती है। वहाँ उस तीर्थ में महादेवी श्रीजगदम्बा का अभ्यर्चन करके एक सहस्र गौओं के दान का फल प्राप्त करता है।

भृगुतुङ्गे तपस्तप्तं श्राद्धं दानं तथा कृतम्॥ ३३॥
कुलान्युभयत: सप्त पुनातीति मतिर्मम।

भृगुतुङ्ग नामक तीर्थ में किया हुआ तप और श्राद्ध तथा दान आदि सत्कर्मों का सम्पादन दोनों माता-पिता के सातवंशो का उद्धार कर पवित्र कर देता है—ऐसी मेरी मति है।

काश्यपस्य महातीर्थं कालसर्पिरिति श्रुतम्॥ ३४॥
तत्र श्राद्धानि देयानि नित्यं पापक्षयेच्छया।

एक महामुनीन्द्र काश्यप का महान् तीर्थ है, जिसका शुभ नाम कालसर्पि - ऐसा सुना गया है। पापों के क्षय करने की इच्छा से उस तीर्थ में श्राद्ध-दान नित्य करने चाहिए।

दशार्णायां तथा दानं श्राद्धं होमं तपो जप:॥ ३५॥
अक्षयञ्चाव्ययञ्चैव कृतं भवति सर्वदा।

दशार्णा नामक तीर्थ में किये गये श्राद्ध-दान-होम-जप-तप सभी सदा अक्षय और अविनाशी हुआ करते हैं।

तीर्थं द्विजातिभिर्जुष्टं नाम्ना वै कुरुजांगलम्॥ ३६॥
दत्त्वा तु दानं विधिवद्ब्रह्मलोके महीयते।

एक द्विजातियों के द्वारा सेवित कुरुजाङ्गल नाम से प्रसिद्ध तीर्थ है। इसमें पहुँचकर दिया हुआ दान का महान् प्रभाव हुआ करता है। दान दाता जिसने विधिपूर्वक दान किया है अन्त में वह ब्रह्मलोक में पहुँच कर महिमान्वित हुआ करता है।

वैतरण्यां महातीर्थे स्वर्णवेद्यां तथैव च॥ ३७॥
धर्मपृष्ठे च शिरसि ब्रह्मण: परमे शुभे।
भरतस्याश्रमे पुण्ये पुण्ये गृध्रवने शुभे॥ ३८॥
महाह्रदे च कौशिक्यां दत्तं भवति चाक्षयम्।

इसी प्रकार वैतरणी नामक महातीर्थ में, स्वर्णवेदी नामक विशाल तीर्थ में, ब्रह्माजी के परम शुभ धर्मपृष्ठ और ब्रह्मशीर्ष तीर्थ में, भरत के पवित्र आश्रम में तथा परम पुण्यमय शुभ गृध्रवन नामक तीर्थ में और कौशिकी नदी के महाह्रद तीर्थ में किया हुआ दान अक्षय हुआ करता है।

मुण्डपृष्ठे पदं न्यस्तं महादेवेन धीमता॥ ३९॥
हिताय सर्वभूतानां नास्तिकानां निदर्शनम्।
अल्पेनापि तु कालेन नरो धर्मपरायण:॥ ४०॥
पाप्मानमुत्सृजत्याशु जीर्णां त्वचमिवोरग:।

धीमान् देवेश्वर महादेव ने मुण्डपृष्ठ नामक तीर्थ में अपना पादन्यास किया है। वह सभी लोकों के हित की इच्छा से नास्तिकों के लिए दृष्टान्तरूप है। यहाँ पर बहुत थोड़े से समय में ही मनुष्य धर्म में परायण हो जाया करता है। जिस प्रकार से कोई सर्प अपनी कञ्चुली को त्याग कर दिया करता है ठीक उसी प्रकार यहाँ पर अपने विहित पापों को भी मनुष्य शीघ्र छोड़ देता देता है।

नाम्ना कनकनन्देति तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्॥ ४१॥
उदीच्यां ब्रह्मपृष्ठस्य ब्रह्मर्षिगणसेवितम्।
तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति सशरीरा द्विजातय:॥ ४२॥
दत्तं चापि सदा श्राद्धमक्षय्यं समुदाहृतम्।
ऋणैस्त्रिभिर्नर: स्नात्वा मुच्यते क्षीणकल्मष:॥ ४३॥

कनकनन्दा नाम वाला एक महान् तीर्थ है जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। उत्तर दिशा में ब्रह्मपृष्ठ नामक तीर्थ ब्रह्मर्षियों द्वारा सेवित है। इस तीर्थ में जो भी द्विजाति स्नान कर लेते हैं वे सशरीर स्वर्ग को चले जाते हैं। इस तीर्थ में किया हुआ दान तथा श्राद्ध सर्वदा अक्षय होता है। उस तीर्थ में स्नान करके मनुष्य तीनों देव-पितर और ऋषियों के ऋण से मुक्त हो जाया करता है और उसके सब पाप क्षीण हो जाया करते हैं।

मानसे सरसि स्नात्वा शक्रस्यार्द्धासनं लभेत्।
उत्तरं मानसं गत्वा सिद्धिं प्राप्नोत्यनुत्तमाम्॥ ४४॥
तस्मान्निर्वर्तयेच्छ्राद्धं यथाशक्ति यथाबलम्।
स कामान् लभते दिव्यान्मोक्षोपायञ्च विन्दति॥ ४५॥

इसी प्रकार मानसरोवर में स्नान करके मनुष्य इन्द्रदेव का आधा आसन ग्रहण कर लेता है। उत्तर मानस में जाकर मानव उत्तम सिद्धि को प्राप्त कर लेता है। इसीलिये जितनी भी शक्ति और बल हो उसी के अनुसार श्राद्ध अवश्य ही करना चाहिए। ऐसा श्राद्ध करने वाला व्यक्ति दिव्य कामनाओं को प्राप्त कर लेता है तथा मोक्ष के उपाय भी उसे ज्ञात हो जाया करते हैं।

पर्वतो हिमवान्नाम नानाधातुविभूषित:।
योजनानां सहस्राणि साशीतिस्त्वायतो गिरि:॥ ४६॥
सिद्धचारणसंकीर्णो देवर्षिगणसेवित:।

एक हिमवान् नाम वाला परम विशाल पर्वत है जो अनेक प्रकार की महा मूल्यवान् धातुओं से विभूषित है। यह पर्वत

अस्सी हजार योजन के विस्तार में फैला हुआ है। यह पर्वत सिद्धों और चारणों से संकीर्ण है और देवर्षिगण भी इसका सेवन किया करते हैं।

तत्र पुष्करिणी रम्या सुषुम्ना नाम नामतः॥४७॥
तत्र गत्वा द्विजो विद्वान्ब्रह्महत्यां विमुञ्चति।
श्राद्धं भवति चाक्षय्यं तत्र दत्तं महोदयम्॥४८॥
तारयेच्च पितॄन्सम्यग्दश पूर्वान्दशापरान्।
सर्वत्र हिमवान् पुण्यो गंगा पुण्या समंततः॥४९॥

वहाँ पर एक अतीव रमणीय पुष्करिणी है जिसका नाम तो सुषुम्ना है। वहाँ पर विद्वान् द्विज जाकर ब्रह्महत्या के पाप से भी छूट जाता है। वहाँ पर किया हुआ श्राद्ध अक्षय होता है तथा दान देना महान् उन्नतिकारक होता है। वहाँ श्राद्ध करने वाला पुरुष अपने से पहले के दस और बाद के भी दस वंशजों को तार देता है। जैसे हिमवान् गिरि सर्वत्र महान् पुण्यशाली है उस तरह उसमें भागीरथी गंगा भी सभी ओर से पुण्यमयी है।

नद्यः समुद्रगाः पुण्याः समुद्रश्च विशेषतः।
बदर्याश्रममासाद्य मुच्यते सर्वकिल्बिषात्॥५०॥
तत्र नारायणो देवो नरेणास्ते सनातनः।
अक्षयं तत्र दानं स्याच्छ्राद्धदानादिकञ्च यत्॥५१॥
महादेवप्रियं तीर्थं पावनं तद्विशेषतः।
तारयेच्च पितॄन्सर्वान्दत्त्वा श्राद्धं समाहितः॥५२॥

समुद्र की ओर जाने वाली सभी नदियाँ परम पुण्यमयी है और समुद्र तो विशेषरूप से पुण्यशाली है। बदरिकाश्रम में पहुँचकर मनुष्य सभी प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है। उस धाम में साक्षात् सनातन देव श्रीनारायण नर के साथ विराजमान हैं। उस धाम में जो भी दान किया जाता है और श्राद्ध आदि किये जाते हैं वे सभी अक्षय फल देने वाला होता है। यह महादेव का अतिप्रिय तीर्थ विशेषरूप से पावन है। वहाँ पर परम समाहित होकर यदि कोई श्राद्ध देता है तो वह अपने सभी पितृगणों का उद्धार कर देता है।

देवदारुवनं पुण्यं सिद्धगन्धर्वसेवितम्।
महता देवदेवेन तत्र दत्तं महेश्वरम्॥५३॥
मोहयित्वा मुनीन्सर्वान्समस्तैः सम्प्रपूजितः।
प्रसन्नो भगवानीशो मुनीन्द्रान् प्राह भावितान्॥५४॥
इहाश्रमवरे रम्ये निवसिष्यथ सर्वदा।
मद्भावनासमायुक्तास्ततः सिद्धिमवाप्स्यथ॥५५॥
यत्र मामर्चयन्तीह लोके धर्मपरायणाः।
तेषां ददामि परमं गाणपत्यं हि शाश्वतम्॥५६॥

देवदारु नामक एक वन है जिसमें सिद्ध और गन्धर्वों के समुदाय रहा करते हैं। वहाँ पर महान् देवों के भी देव ने महेश्वर दिया है। समस्त महामुनीन्द्रों के द्वारा भली-भाँति पूजन किये गये देव ने उन समस्त मुनिगणों को मोहित करके भगवान् परम प्रसन्न हुए थे तथा ईश ने उन भाव भावित मुनिगणों से कहा था कि आप सब लोग इस परम श्रेष्ठ सुरम्य आश्रम में सर्वदा निवास करोगे। मेरी भावना से समायुक्त होकर ही आप लोग सिद्धि को प्राप्त करेंगे। जहाँ पर धर्मपरायण होकर जो मेरी पूजा किया करते हैं उनको मैं परम शाश्वत गाणपत्य पद प्रदान किया करता हूँ।

अत्र नित्यं वसिष्यामि सह नारायणेन तु।
प्राणानिह नरस्त्यक्त्वा न भूयो जन्म चाप्नुयात्॥५७॥
संस्मरन्ति च ये तीर्थं देशान्तरगता जनाः।
तेषाञ्च सर्वपापानि नाशयामि द्विजोत्तमाः॥५८॥
श्राद्धं दानं तपो होमः पिण्डनिर्वपणं तथा।
ध्यानं जपश्च नियमः सर्वमत्राक्षयं कृतम्॥५९॥

मैं यहाँ सदा भगवान् नारायण के साथ वास करूँगा। जो मनुष्य यहाँ निवास करते हुए अपने प्राणों को त्याग करते हैं वे फिर दूसरी बार इस संसार में जन्म ग्रहण नहीं करेगा। जो अन्य देशों में निवास करने वाले भी मनुष्य इस तीर्थ का संस्मरण किया करेंगे हैं, हे द्विजोत्तमो! उनके भी सारे पापों को मैं नष्ट कर देता हूँ। यहाँ पर किये हुए श्राद्ध-दान-तप-होम तथा पिण्डदान, ध्यान-जाप-नियम सभी कुछ अक्षय जाया करता है।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन द्रष्टव्यं हि द्विजातिभिः।
देवदारुवनं पुण्यं महादेवनिषेवितम्॥६०॥
यत्रेश्वरो महादेवो विष्णुर्वा पुरुषोत्तमः।
तत्र सन्निहिता गंगा तीर्थान्यायतनानि च॥६१॥

इसीलिये सब प्रकार से प्रयत्नपूर्वक द्विजातियों को इस तीर्थ का दर्शन अवश्य ही करना चाहिए। यह देव दारुवन परम पुण्यमय है और महादेव के द्वारा निषेवित है। यहाँ पर ईश्वर, महादेव अथवा भगवान् पुरुषोत्तम विष्णु स्वयं विराजमान हैं। वहाँ पर गंगाजी अन्य तीर्थ तथा आयतन समीप में स्थित हैं।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे तीर्थवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥३७॥

अष्टत्रिंशोऽध्याय:

(देवदारुवन में प्रवेश)

ऋषय ऊचु:

कथं दारुवनप्राप्तो भगवान्गोवृषध्वज:।
मोहयामास विप्रेन्द्रान्सूत तद्वक्तुमर्हसि॥ १॥

ऋषियों ने कहा—सूतजी! दारुवन में प्रवेश करते हुए भगवान् वृषभध्वज ने ब्राह्मणों को कैसे मोहित किया था यह बताने की कृपा करें।

सूत उवाच

पुरा दारुवने रम्ये देवसिद्धनिषेविते।
स पुत्रदारतनयास्तपश्चेरु: सहस्रश:॥ २॥
प्रवृत्तं विविधं कर्म प्रकुर्वाणा यथाविधि।
यजन्ति विविधैर्यज्ञैस्तपन्ति च महर्षय:॥ ३॥

सूतजी बोले— देवों तथा सिद्धों द्वारा सेवित रमणीय दारुवन में हजारों मुनियों ने प्राचीन काल में अपने पुत्र और पत्नी के साथ रहते हुए तपस्या की थी। वे महर्षि प्रवृत्ति मार्ग से युक्त विविध प्रकार के कर्मों और अनेक प्रकार के यज्ञों द्वारा परमात्मा का पूजन करते थे।

तेषां प्रवृत्तिविन्यस्तचेतसामथ शूलभृत्।
व्याख्यापयन्सदा दोषं ययौ दारुवनं हर:॥ ४॥

इस प्रकार उनका चित्त प्रवृत्तिमार्गीय कर्मों में विन्यस्त था, अत: उन मुनियों के दोषों को बताने के लिये शूलधारी भगवान् शंकर देवदारु वन में गये।

कृत्वा विश्वगुरुं विष्णुं पार्श्वे देवो महेश्वर:।
ययौ निवृत्तिविज्ञानस्थापनार्थञ्च शङ्कर:॥ ५॥

विश्वगुरु भगवान् विष्णु को अपने साथ लेकर देव महेश्वर शंकर निवृत्तिमार्ग का ज्ञान कराने के लिए वहाँ गये थे।

आस्थाय विपुलञ्चैव जनं विंशतिवत्सरम्।
लीलालसो महाबाहु: पीनांगश्चारुलोचन:॥ ६॥
चामीकरवपु: श्रीमान्पूर्णचन्द्रनिभानन:।
मत्तमातंगगमनो दिग्वासा जगदीश्वर:॥ ७॥
जातरूपमयीं मालां सर्वरत्नैरलंकृताम्।
दधानो भगवानीश: समागच्छति सस्मित:॥ ८॥

तब उन्होंने बीस वर्ष की आयु के पुरुष का भव्य वेष धारण किया था। अपनी लीला से सुन्दर, महाबाहु, पुष्टशरीर, सुन्दर नयनयुक्त, सुवर्ण के वर्ण जैसे शरीरधारी, श्रीमान्, पूर्णिमा के चन्द्र की भाँति मुखमण्डल वाले, मत्त हाथी की गति वाले, दिगम्बर थे। वे विविध रत्नों से जटित स्वर्णमाला को धारण करके मंद हास्य करते हुए भगवान् महादेव वहाँ जा रहे थे।

योऽनन्त: पुरुषो योनिर्लोकानामव्ययो हरि:।
स्त्रीवेषं विष्णुरास्थाय सोऽनुगच्छति शूलिनम्॥ ९॥
सम्पूर्णचन्द्रवदनं पीनोन्नतपयोधरम्।
शुचिस्मितं सुप्रसन्नं रणन्नुपुरकद्वयम्॥ १०॥
सुपीतवसनं दिव्यं श्यामलं चारुलोचनम्।
उदारहंसगमनं विलासि सुमनोहरम्॥ ११॥

और जो अनन्त, लोकस्रष्टा अविनाशी पुरुष हरि विष्णु थे, वे स्त्री का रूप धारण करके महादेव के पीछे-पीछे चल रहे थे। स्त्रीवेशधारी विष्णु का मुखमण्डल पूर्णचन्द्र के समान सुन्दर था। स्तनयुगल स्थूल और उन्नत थे। पवित्र मंद हास्ययुक्त होने से उनका मुख अति प्रसन्न था और पैरों में बंधे नूपुर से ध्वनि निकल रही थी। वह पीत वस्त्र धारण किये हुए अलौकिक, श्यामल और सुन्दर नेत्रों वाली थी। उनकी चाल उत्तम हंस के समान थी। वह विलासयुक्त होने से अति मनोहर लग रहीं थीं।

एवं स भगवानीशो देवदारुवनं हर:।
चचार हरिणा सार्द्धं मायया मोहयञ्जगत्॥ १२॥
दृष्ट्वा चरन्तं विश्वेशं तत्र तत्र पिनाकिनम्।
मायया मोहिता नार्यो देवदेवं समन्वयु:॥ १३॥

इस प्रकार महादेव अपनी माया से संसार को मोहित करके (स्त्रीरूपधारी) विष्णु के साथ देवदारु वन में घूमने लगे। उन विश्वेश्वर पिनाकी को वहाँ इधर-उधर घूमते देख कर वहाँ की स्त्रियाँ भी माया से मोहित होकर देवाधिदेव के पीछे-पीछे जाने लगी।

विस्रस्ताभरणा: सर्वास्त्यक्त्वा लज्जां पतिव्रता:।
सहैव तेन कामार्ता विलासिन्यश्चरन्ति हि॥ १४॥

उनमें कुछ पतिव्रता नारियाँ भी सर्व लज्जा त्यागकर अपने वस्त्र तथा आभूषणों के अस्त-व्यस्त बिखेरती कामार्त और विलासिनी होती हुई शिव के साथ घूमने लगी।

ऋषीणां पुत्रका ये स्युर्युवानो जितमानसा:।
अन्वागमन्हृषीकेशं सर्वे कामप्रपीडिता:॥ १५॥

ऋषियों के जो जितेन्द्रिय युवा पुत्र थे, वे भी तत्काल कामातुर होकर, स्त्रीरूपधारी भगवान् विष्णु के पीछे-पीछे चलने लगे।

गायन्ति नृत्यन्ति विलासयुक्ता
नारीगणा नायकमेकमीशम्।
दृष्ट्वा सपत्नीकमतीवकान्त-
मिष्टं तथालिङ्गितमाचरन्ति॥ १६॥

इस प्रकार वे स्त्रियाँ विलासिनी होकर अद्वितीय नायक परमेश्वर का ही गान करने लगीं और नाचने लगीं। चाहने योग्य पत्नीसहित अति सुन्दर महादेव को देखकर कभी-कभी आलिंगन भी करतीं थीं।

ते सन्निपत्य स्मितमाचरन्ति
गायन्ति गीतानि मुनीशपुत्राः।
आलोक्य पद्मापतिमादिदेवं
भ्रूभंगमन्ये विचरन्ति तेन॥ १७॥

वे मुनिपुत्र भी (स्त्रीरूपधारी) लक्ष्मीपति आदिदेव को देखकर (उन्हें सचमुच स्त्री जानकर) पाँव डगमगाने लगे और मन्दहास्य करते हुए गीत गाने लगे। कुछ अन्य मुनि पुत्र तो उनके साथ भ्रूविलास करने लगे और उनके साथ विचरण लगे।

आशामथैकामपि वासुदेवो
मायी मुरारिर्मनसि प्रविष्टः।
करोति भोगान्मनसि प्रवृत्तिं
मायानुभूयन्त इतीव सम्यक्॥ १८॥

उन स्त्रियों तथा उन पुरुषों के मन में प्रविष्ट होकर मायावी मुरारि भगवान् उनके मन में भोगों के प्रति प्रवृत्ति उत्पन्न करने लगे, जैसे वे भोग माया द्वारा अच्छी प्रकार अनुभव किये गये हों।

विभाति विश्वामरविश्वनाथः
समाधवस्त्रीगणसन्निविष्टः।
अशेषशक्त्या समयं निविष्टो
यथैकशक्त्या सह देवदेवः॥ १९॥

इस प्रकार संपूर्ण देवों के और विश्व के नाथ शंकर भगवान् विष्णु के साथ स्त्रियों के समूह में सन्निविष्ट हो गये थे। समग्र शक्ति के साथ वहाँ रहते हुए शंकर मानों अपनी अद्वितीय शक्तिस्वरूपा पार्वती के साथ देवेश्वर महादेव सुशोभित होते हैं।

करोति नित्यं परमं प्रधानं
तथा विरूढं पुनरेव भूयः।
ययौ समारूह्य हरिः स्वभावं
तमीदृशं नाम तमादिदेवम्॥ २०॥

उस समय महादेव (भ्रमणरूप) अतिशय प्रधान कार्य कर रहे थे। इस कारण वे अधिक प्रख्यात हो गये थे। अपनी स्वभाव पर आरूढ़ होकर श्रीविष्णु हरि आदिदेव शंकर का अनुसरण कर रहे थे।

दृष्ट्वा नारीकुलं रुद्रं पुत्रानपि च केशवम्।
मोहयन्तं मुनिश्रेष्ठा कोपं सन्दधिरे भृशम्॥ २१॥

स्त्री-समूह, रुद्र और अपने पुत्रों को तथा केशव विष्णु को परस्पर मोहित करता हुआ देखकर उन श्रेष्ठ मुनियों को अत्यन्त क्रोध हो आया।

अतीवपरुषं वाक्यं प्रोचुर्देवं कपर्दिनम्।
शेपुश्च विविधैर्वाक्यैर्मायया तस्य मोहिताः॥ २२॥

वहां मुनियों ने कपर्दीदेव शंकर को बहुत कठोर वचन कहे और वे उन्हीं की माया से मोहित होकर अनेक प्रकार से शाप भी देने लगे।

तपांसि तेषां सर्वेषां प्रत्याहन्यन्त शंकरे।
यथादित्यप्रतीकाशे तारका नभसि स्थिताः॥ २३॥

परन्तु वे सभी वचन एवं शाप शंकर के आगे निस्तेज हो गये; जैसे आकाश में सूर्य के प्रकाशित होने पर तारागण निस्तेज हो जाते हैं।

तं भत्स्यं तपसा विप्राः समेत्य वृषभध्वजम्।
को भवानिति देवेशं पृच्छन्ति स्म विमोहिताः॥ २४॥
सोऽब्रवीद्भगवानीशस्तपश्चर्तुमिहागतः।
इदानीं भार्यया देशं भवद्भिरिह सुव्रताः॥ २५॥

इस प्रकार अपना तप तिरस्कृत देखकर मोहित हुए वे मुनिजन वृषभध्वज देवेश के पास आकर उनसे पूछने लगे— 'आप कौन हैं?' तब भगवान् ईश ने कहा— सुव्रतो! इस समय आप लोगों के इस स्थान में मैं पत्नीसहित तपस्या करने के लिये आया हूँ।

तस्य ते वाक्यमाकर्ण्य भृग्वाद्या मुनिपुङ्गवाः।
ऊचुर्गृहीत्वा वसनं त्यक्त्वा भार्यां तपश्चर॥ २६॥

उनके उस वाक्य को सुनकर उन भृगु आदि श्रेष्ठ मुनियों ने कहा— (यदि यहां रहना चाहते हो, तो) वस्त्र धारणकर, भार्या का परित्याग कर तपस्या करो।

अथोवाच विहस्येश: पिनाकी नीललोहित:।
सम्प्रेक्ष्य जगतां योनिं पार्श्वस्थञ्च जनार्दनम्॥ २७॥
कथं भवद्भिरुदितं स्वभार्यापोषणोत्सुकै:।
त्यक्तव्या मम भार्येति धर्मज्ञै: शान्तमानसै:॥ २८॥

तब नीललोहित पिनाकी ईश्वर ने हँसकर समीप में स्थित संसार के मूल कारण जनार्दन की ओर देखकर इस प्रकार कहा— धर्म को जानने वाले तथा शान्त मनवाले और अपनी भार्या के पालन-पोषण में तत्पर रहने वाले आप लोगों ने मुझसे ऐसा क्यों कहा कि अपनी स्त्री को छोड़ दो।

ऋषय ऊचु:

व्यभिचाररता भार्या: सन्त्याज्या: पतिनेरिता:।
अस्माभिर्मत्ता: सुभगा नेदृशास्त्यागमर्हति॥ २९॥

ऋषियो ने उत्तर दिया— जो स्त्रियां व्यभिचारपरायण हों, दूसरों द्वारा प्रेरित हों, उनका त्याग तो पति द्वारा किया जाना चाहिए। और यह स्त्री ठीक आचरण वाली नहीं लगती अतएव आपको इस सुन्दरी का त्याग करना चाहिये।

महादेव उवाच

न कदाचिदियं विप्रा मनसाप्यन्यमिच्छति।
नाहमेनामपि तथा विमुञ्चामि कदाचन॥ ३०॥

महादेव बोले—हे विप्रो! यह स्त्री कभी मन से भी किसी परपुरुष को नहीं चाहती है, इसलिए मैं कभी इसका परित्याग नहीं करता हूँ।

ऋषय ऊचु:

दृष्ट्वा व्यभिचरन्तीह ह्यस्माभि: पुरुषाधम।
उक्तं ह्यसत्यं भवता गम्यतां क्षिप्रमेव हि॥ ३१॥

ऋषियों ने कहा— हे पुरुषाधम! हमने इसे यहाँ व्यभिचार करते हुए देखा है। तुमने असत्य ही कहा है। अत: शीघ्र ही यहाँ से चले जाओ।

एवमुक्तो महादेव: सत्यमेव मयेरितम्।
भवतां प्रतिभा ह्येषा त्यक्त्वासौ विचचार ह॥ ३२॥
सोऽगच्छद्धरिणा सार्द्धं मुनीन्द्रस्य महात्मन:।
वसिष्ठस्याश्रमं पुण्यं भिक्षार्थी परमेश्वर:॥ ३३॥
दृष्ट्वा समागतं देवं भिक्षमाणमरुन्धती।
वसिष्ठस्य प्रिया भक्त्या प्रत्युद्गम्य ननाम तम्॥ ३४॥

ऋषियों के ऐसा कहने पर महादेव ने कहा— मैंने सत्य ही कहा है। परन्तु आपको यह ऐसी प्रतीत होती है। ऐसा कहकर महादेव वहीं विचरण करने लगे। भिक्षा की इच्छा से वे परमेश्वर विष्णु के साथ मुनिश्रेष्ठ महात्मा वसिष्ठ के पवित्र आश्रम में गये। भिक्षा माँगते हुए देव को आये देखकर वसिष्ठ की प्रिय पत्नी अरुन्धती ने समीप में जाकर उन्हें प्रणाम किया।

प्रक्षाल्य पादौ विमलं दत्त्वा चासनमुत्तमम्।
सम्प्रेक्ष्य शिथिलं गात्रमभिघातहतं द्विजै:।
सन्धयामास भैषज्यैर्विषण्णवदना सती॥ ३५॥
चकार महतीं पूजां प्रार्थयामास भार्यया।

वहां (ऋषिपत्नी) अरुन्धती ने (परमेश्वर के) चरणों को धोकर और शुद्ध उत्तम आसन प्रदान किया। ब्राह्मणों के आघात से आहत उनके शिथिल शरीर को देखकर वे अत्यन्त खिन्न हुई सती (अरुन्धती) ने औषधि के उपचार से उनके घावों को भर दिया और भार्या सहित उनकी (परमेश्वर की) महती पूजा की तथा पूछा।

को भवान्कुत आयात: किमाचारो भवानिति।
उच्यतामाह भगवान्सिद्धानां प्रवरो ह्यहम्॥ ३६॥
यदेतन्मण्डलं शुभ्रं भाति ब्रह्ममयं सदा।
एषैव देवता मह्यं धारयामि सदैव तु॥ ३७॥

'आप कौन हैं, कहाँ से आये हैं, आपका आचार क्या है?' यह कहो। तब महादेव ने कहा— 'मैं सिद्धों में श्रेष्ठ हूँ।' और यह जो शुभ्र मण्डल सदा ब्रह्ममय प्रकाशित हो रहा है वही (स्त्री) मेरे लिए देवतारूप है। इसलिए मैं सदा इसे धारण करता हूँ।

इत्युक्त्वा प्रययौ श्रीमाननुगृह्य पतिव्रताम्।
ताडयांचक्रिरे दण्डैर्लोष्टिभिर्मुष्टिभिर्द्विजा:॥ ३८॥
दृष्ट्वा चरन्तं गिरिशं नग्नं विकृतलक्षणम्।
प्रोचुरेतद्भवल्लिङ्गमुत्पाटय सुदुर्मते:॥ ३९॥
तानब्रवीन्महायोगी करिष्यामीति शंकर:।
युष्माकं मामके लिङ्गे यदि द्वेषोऽभिजायते॥ ४०॥

ऐसा कहकर श्रीमान् शंकर पतिव्रता (अरुन्धती) पर कृपा करके चल पड़े। उस समय ब्रह्मणों ने उन्हें डंडों, ढेलों तथा मुक्कों से मारना शुरू कर दिया। नग्न तथा विकृत लक्षणवाले महादेव को इस प्रकार घूमते हुए देखकर मुनियों ने कहा— हे दुर्मते! तुम अपने इस लिङ्ग को उखाड़ फैंको।

तब महायोगी शंकर ने उनसे कहा—यदि आप लोगों को मेरे लिङ्ग के प्रति द्वेष उत्पन्न हो गया हो तो मैं वैसा ही करूँगा।

उक्त्वा तूत्पाटयामास भगवान्भगनेत्रहा।
नापश्यंस्तत्क्षणादीशं केशवं लिङ्गमेव च॥४१॥
तदोत्पाता बभूवुर्हि लोकानां भयशंसिनः।
न राजते सहस्रांशुश्चचाल पृथिवी पुनः।
निष्प्रभाश्च ग्रहाः सर्वे चुक्षुभे च महोदधिः॥४२॥

इतना कहकर भगदेव के नेत्र हरण करने वाले भगवान् ने (अपने) लिङ्ग को उखाड़ दिया। परन्तु वे ब्राह्मण उस समय ईश्वर, केशव और लिङ्ग किसी को भी न देख सके। (वे अदृश्य हो गये)। तभी सब लोगों में भय उत्पन्न करने वाले उपद्रव होने लगे। सहस्रकिरण (सूर्य) का तेज समाप्त हो गया, पृथ्वी काँपने लगी, सभी ग्रह प्रभावहीन हो गये और महासागर में क्षोभ उत्पन्न हो गया।

अपश्यच्चानुसूयात्रेः स्वप्नं भार्या पतिव्रता।
कथयामास विप्राणां भयादाकुलितेन्द्रिया॥४३॥
तेजसा भासयन्कृत्स्नं नारायणसहायवान्।
भिक्षमाणः शिवो नूनं दृष्टोऽस्माकं गृहेष्विति॥४४॥
तस्या वचनमाकर्ण्य शङ्कमाना महर्षयः।
सर्वे जग्मुर्महायोगं ब्रह्माणं विश्वसम्भवम्॥४५॥

इधर अत्रि की पत्नी पतिव्रता अनसूया ने स्वप्न देखा। भय से व्याकुल नेत्र वाली उन्होंने ब्राह्मणों से (स्वप्न की बात बताते हुए) कहा— निश्चय ही हम लोगों के घर में अपने तेज से सम्पूर्ण संसार को प्रकाशित कर रहे शिव नारायण के साथ भिक्षा माँगते हुए दिखलायी पड़े थे। उनके वचन सुनकर सशंकित सभी महर्षि जगत् को उत्पन्न करने वाले महायोगी ब्रह्माजी के पास गये।

उपास्यमानममलैर्योगिभिर्ब्रह्मवित्तमैः।
चतुर्वेदैर्मूर्त्तिमद्भिः सावित्र्या सहितं प्रभुम्॥४६॥
आसीनमासने रम्ये नानाश्चर्यसमन्विते।
प्रभासहस्रकलिले ज्ञानैश्वर्यादिसंयुते॥४७॥
विभ्राजमानं वपुषा सस्मितं शुभ्रलोचनम्।
चतुर्मुखं महाबाहुं छन्दोमयमजं परम्॥४८॥
विलोक्य देववपुषं प्रसन्नवदनं शुचिम्।
शिरोभिर्धरणीं गत्वा तोषयामासुरीश्वरम्॥४९॥

वहाँ उन्होंने ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ विशुद्ध योगिजनों द्वारा तथा मूर्तिमान् चारों वेदों द्वारा उपासित होते हुए सावित्री के साथ प्रभु (ब्रह्मा) को देखा। नाना प्रकार के आश्चर्यों से युक्त, हजारों प्रकार की प्रभा से सुशोभित और ज्ञान तथा ऐश्वर्य से युक्त रमणीय आसन पर विराजमान परम रमणीय अप्राकृत दिव्य शरीर के कारण शोभासम्पन्न, मंद हास्ययुक्त, उज्ज्वल नेत्रों वाले, महाबाहु, छन्दोमय, अजन्मा, प्रसन्न-वदन, शुभ एवं श्रेष्ठ चतुर्मुख वेदपुरुष (ब्रह्मा) को देखकर वे (मुनिजन) भूमि पर मस्तक नमाकर ईश्वर की स्तुति करने लगे।

तान्प्रसन्नमना देवश्चतुर्मूर्तिश्चतुर्मुखः।
व्याजहार मुनिश्रेष्ठाः किमागमनकारणम्॥५०॥
तत्तस्य वृत्तमखिलं ब्रह्मणः परमात्मनः।
ज्ञापयांचक्रिरे सर्वे कृत्वा शिरसि चांजलिम्॥५१॥

उससे प्रसन्नमन होकर चतुर्मूर्ति चतुर्मुख देव ने कहा— 'मुनिश्रेष्ठो! आपके आने का क्या प्रयोजन है?' तब सभी मुनियों ने मस्तक पर दो हाथ जोड़कर परमात्मा ब्रह्मा को सम्पूर्ण वृत्तान्त को बतलाया।

ऋषय ऊचुः

कश्चिद्दारुवनं पुण्यं पुरुषोऽतीवशोभनः।
भार्यया चारुसर्वाङ्ग्या प्रविष्टो नग्न हि॥५२॥
मोहयामास वपुषा नारीणां कुलमीश्वरः।
कन्यकानां प्रिया यस्तु दूषयामास पुत्रकान्॥५३॥

ऋषियों ने कहा—पवित्र दारुवन में अत्यन्त सुन्दर कोई पुरुष सम्पूर्ण सुन्दर अङ्गों वाली अपनी भार्या के साथ नग्न अवस्था में ही प्रविष्ट हुआ। उस ईश्वर ने अपने शरीर से (हमारी) स्त्रियों के समूह को तथा सभी कन्याओं को मोहित कर दिया और उसकी प्रिया ने (हमारे) सब पुत्रों को (अपने आकर्षण से) दूषित किया।

अस्माभिर्विविधाः शापाः प्रदत्तास्ते पराहताः।
ताडितोऽस्माभिरत्यर्थं लिङ्गं तु विनिपातितम्॥५४॥
अन्तर्हितश्च भगवान्सभार्यो लिङ्गमेव च।
उत्पाताश्चाभवन् घोराः सर्वभूतभयंकराः॥५५॥

हम लोगों ने उस पुरुष को अनेक प्रकार से शाप दिये, किंतु वे निष्फल हो गये, तब हम लोगों ने उसे बहुत मारा और उसके लिङ्ग को गिरा दिया, पर तत्काल ही भार्या के साथ भगवान् और लिङ्ग अदृश्य हो गये। तभी से प्राणियों को भय प्रदान करने वाले भीषण उत्पात होने लगे हैं।

क एष पुरुषो देव भीता: स्म: पुरुषोत्तम।
भवन्तमेव शरणं प्रपन्ना वयमच्युत॥ ५६॥
त्वं हि वेत्सि जगत्यस्मिन्यत्किञ्चिदिह चेष्टितम्।
अनुग्रहेण युक्तेन तदस्माननुपालय॥ ५७॥

हे देव पुरुषोत्तम! वह पुरुष कौन है? हम लोग भयभीत हो गये हैं। हे अच्युत! हम सब आपकी शरण में आये हैं। इस संसार में जो कुछ भी चेष्टा होती है, उसे आप अवश्य जानते हैं, इसलिये विश्वेश! अनुग्रह कर आप हमारी रक्षा करें।

विज्ञापितो मुनिगणैर्विश्वात्मा कमलोद्भव:।
ध्यात्वा देवं त्रिशूलांकं कृताञ्जलिरभाषत॥ ५८॥

मुनिगणों के द्वारा इस प्रकार निवेदन किये जाने पर कमल से उत्पन्न विश्वात्मा (ब्रह्मा) ने त्रिशूलधारी देव (शंकर) का ध्यान करते हुए हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा—

ब्रह्मोवाच

हा कष्टं भवतामद्य जातं सर्वार्थनाशनम्।
धिग्बलं धिक् तपश्चर्यां मिथ्यैव भवतामिह॥ ५९॥
संप्राप्य पुण्यसंस्कारान्निधीनां परमं निधिम्।
उपेक्षितं वृथाचारैर्भवद्भिरिह मोहितै:॥ ६०॥
कांक्षन्ते योगिनो नित्यं यतन्तो यतयो निधिम्।
यमेव तं समासाद्य हा भवद्भिरुपेक्षितम्॥ ६१॥

ब्रह्मा बोले— ओह! आज आप लोगों को कष्ट है वह समस्त पुरुषार्थों का नाश करने वाला है। आपके बल को धिक्कार है, तपश्चर्या को धिक्कार है, आपका जन्म भी मिथ्या ही है। पवित्र संस्कारों और निधियों में परम निधि को प्राप्त कर वृथाचारी आप लोगों ने मोहवश उस निधि की उपेक्षा कर दी, जिसे योगी लोग तथा यत्न करने वाले यति लोग नित्य चाहते हैं। उसी को प्राप्त कर आप लोगों ने उपेक्षा कर दी, यह बहुत ही कष्ट की बात है।

यजन्ति यज्ञैर्विविधैर्यत्प्राप्तैर्वेदवादिन:।
महानिधिं समासाद्य हा भवद्भिरुपेक्षितम्॥ ६२॥
यमर्चयित्वा सततं विश्वेशत्वमिदं मम।
स देवोपेक्षितो दृष्ट्वा निधानं भाग्यवर्जिता:॥ ६३॥
यस्मिन्समाहितं दिव्यमैश्वर्यं यत्तदव्ययम्।
तमासाद्य निधिं ब्रह्म हा भवद्भिर्वृथाकृतम्॥ ६४॥

जिसकी प्राप्ति के लिये वेदज्ञानी अनेक प्रकार के यज्ञों द्वारा यजन करते हैं, बड़ा कष्ट है कि उन महानिधि को प्राप्तकर भी आप सभी ने उनकी उपेक्षा कर दी। हाय! जिसमें देवताओं का अक्षय ऐश्वर्य समाहित है, उस अक्षयनिधि को प्राप्तकर आपने उसे व्यर्थ कर दिया।

एष देवो महादेवो विज्ञेयस्तु महेश्वर:।
न तस्य परमं किञ्चित्पदं समभिगम्यते॥ ६५॥

वे ही देव महादेव महेश्वर हैं, यह आपको जानना चाहिये। इनका परम पद अन्यत्र कुछ भी प्राप्त नहीं किया जा सकता अर्थात् जाना नहीं जा सकता।

देवतानामृषीणां वा पितॄणाञ्चापि शाश्वत:।
सहस्रयुगपर्यन्ते प्रलये सर्वदेहिनाम्॥ ६६॥
संहरत्येष भगवान्कालो भूत्वा महेश्वर:।
एष चैव प्रजा: सर्वा: सृजत्येक स्वतेजसा॥ ६७॥

ये ही सनातन भगवान् महेश्वर कालरूप होकर देवताओं, ऋषियों तथा पितरों और समस्त देहधारियों का हजारों युग-पर्यन्त रहने वाले प्रलयकाल में संहार करते हैं। ये ही अद्वितीय अपने तेज से समस्त प्रजाओं की सृष्टि करते हैं।

एष चक्री चक्रवर्ती श्रीवत्सकृतलक्षण:।
योगी कृतयुगे देवस्त्रेतायां यज्ञ एव च।
द्वापरे भगवान्कालो धर्मकेतु: कलौ युगे॥ ६८॥

वे ही चक्रधारी, चक्रवर्ती तथा श्रीवत्स के चिन्ह को धारण करने वाले हैं। ये ही देव सतयुग में योगी, त्रेता में यज्ञरूप, द्वापर में भगवान् काल तथा कलियुग में धर्म के संकेत रूप हैं।

रुद्रस्य मूर्तयस्तिस्रोयाभिर्विश्वमिदं ततम्।
तमो ह्यग्नी रजो ब्रह्मा सत्त्वं विष्णुरिति स्मृति:॥ ६९॥

रुद्र की तीन मूर्तियाँ हैं, इन्होंने ही इस विश्व को व्याप्त किया हुआ है। तमोगुण के अधिष्ठाता को अग्नि, रजोगुण के अधिष्ठाता को ब्रह्मा तथा सत्त्वगुण के अधिष्ठाता को विष्णु कहा गया है।

मूर्तिरन्या स्मृता चास्य दिग्वासा च शिवाध्रुवा।
यत्र तिष्ठति तद्ब्रह्म योगेन तु समन्वितम्॥ ७०॥
या चास्य पार्श्वगा भार्या भवद्भिरभिभाषिता।
स हि नारायणो देव: परमात्मा सनातन:॥ ७१॥
तस्मात्सर्वमिदं जातं तत्रैव च लयं व्रजेत्।
स एव मोचयेत्कृत्स्नं स एव च परा गति:॥ ७२॥
सहस्रशीर्षा पुरुष: सहस्राक्ष: सहस्रपात्।
एकशृंगो महानात्मा नारायण इति श्रुति:॥ ७३॥

इनकी एक दूसरी मूर्ति- दिगम्बरा, शाश्वत तथा शिवात्मिका कहलाती है। उसी में योग से युक्त परब्रह्म प्रतिष्ठित रहते हैं। जिनको इनके पार्श्वभाग में स्थित भार्या के रूप में जो आपने देखा है, वे ही सनातन परमात्मा नारायण देव हैं। उनसे ही यह सब उत्पन्न है और उनमें ही यह सब लीन भी हो जाता है। वे ही सबको मोहित करते हैं और वे ही परम गति हैं। वे ही नारायण सहस्र शिर वाले, सहस्र नेत्रधारी और सहस्र पाद वाले पुरुष कहे जाते हैं। वे ही एक शृंग-रूप महान् आत्मा नारायण हैं। श्रुति भी यही कहती है।

रेतोऽस्य गर्भो भगवानापो माया तनुः प्रभुः।
स्तूयते विविधैर्मन्त्रैर्ब्राह्मणैर्मोक्षकांक्षिभिः॥ ७४॥
संहृत्य सकलं विश्वं कल्पांते पुरुषोत्तमः।
शेते योगामृतं पीत्वा यत्र विष्णोः परं पदम्॥ ७५॥
न जायते न म्रियते वर्द्धते न च विश्वदृक्।
मूलप्रकृतिरव्यक्तो गीयते वैदिकैरजः॥ ७६॥

वे भगवान् जलमय शरीर वाले हैं, वही प्रभु नारायण का गर्भ है अर्थात् उनके शरीर में यह वास करता है। धर्म तथा मोक्ष की इच्छा करने वाले ब्राह्मण लोग विविध मन्त्रों के द्वारा (उनकी) स्तुति करते हैं। कल्पान्त में समस्त विश्व का संहार करने के अनन्तर योगरूप अमृत का पानकर वे पुरुषोत्तम जिस सर्वाधिष्ठान, स्वप्रकाश में शयन करते हैं, वही विष्णु का परम पद है। विश्व के द्रष्टा ये न जन्म लेते हैं, न मरते हैं और न वृद्धि को प्राप्त होते हैं। वैदिक लोग इन्हीं अजन्मा को अव्यक्त मूलप्रकृति कहते हैं।

ततो निशायां वृत्तायां सिसृक्षुरखिलं जगत्।
अजनाभौ तु तद्बीजं क्षिपत्येव महेश्वरः॥ ७७॥
तं मां वित्त महात्मानं ब्रह्माणं विश्वतोमुखम्।
महांतं पुरुषं विश्वमपां गर्भमनुत्तमम्॥ ७८॥
न तं जानीत जनकं मोहितास्तस्य मायया।
देवदेवं महादेवं भूतानामीश्वरं हरम्॥ ७९॥

जब यह प्रलयरूपी रात्रि के समाप्त हो जाती है, तब सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि की इच्छा से महेश्वर उस बीज को अजन्मा नारायण की नाभि में स्थापित करते हैं। वही बीज रूप में महात्मा, ब्रह्मा, सर्वतोमुख, महान् पुरुष हूँ। मैं ही विश्वात्मा होने से अप् का गर्भरूप सर्वोत्तम देव हूँ। अनन्त ब्रह्माण्ड के बीज को मेरे में स्थापित करने वाले उन परमपिता देवाधिपति महादेव हर को आप लोग उनकी माया से मोहित होने के कारण नहीं जान सके।

एष देवो महादेवो ह्यनादिर्भगवान्हरः।
विष्णुना सह संयुक्तः करोति विकरोति च॥ ८०॥
न तस्य विद्यते कार्यं न तस्माद्विद्यते परम्।
स वेदान् प्रददौ पूर्वं योगमायातनुर्मम॥ ८१॥
स मायी मायया सर्वं करोति विकरोति च।
तमेव मुक्तये ज्ञात्वा व्रजध्वं शरणं शिवम्॥ ८२॥

वे ही अनादि भगवान् महादेव शंकर विष्णु के साथ संयुक्त होकर सृष्टि को रचते हैं और उसका विकार (संहार) भी करते हैं। फिर भी उनका कोई कार्य नहीं है और परन्तु उनसे भिन्न भी कुछ नहीं है। योगमाया का स्वरूप धारण करके उन्होंने पूर्वकाल में मुझे वेद प्रदान किया। वे मायी (अपनी) माया द्वारा सभी की सृष्टि और संहार करते हैं। उन्हीं को ही मुक्ति का मूल जानकर उन शिव की शरण में आपको जाना चाहिये।

इतीरिता भगवता मरीचिप्रमुखा विभुम्।
प्रणम्य देवं ब्रह्माणं पृच्छन्ति स्म समाहिताः॥ ८३॥

भगवान् (ब्रह्मा) के ऐसा कहने पर मरीचि आदि प्रमुख ऋषियों ने विभु ब्रह्मदेव को प्रणाम कर अत्यन्त दुःखित होकर उनसे पूछा—

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे अष्टत्रिंशोऽध्यायः॥ ३८॥

ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः
(देवदारुवन में प्रवेश)

मुनय ऊचुः

कथं पश्येम तं देवं पुनरेव पिनाकिनम्।
ब्रूहि विश्वामरेशान त्राता त्वं शरणैषिणाम्॥ १॥

मुनिजन बोले— समस्त देवों के ईश्वर! उस पिनाकधारी देव का दर्शन हम पुनः कैसे कर पायेंगे, आप हमें बतायें। उनकी शरण चाहने वाले हमारे आप रक्षक हैं।

ब्रह्मोवाच

यद्दृष्टं भवता तस्य लिङ्गं भुवि निपातितम्।
तल्लिङ्गानुकृतीशस्य कृत्वा लिङ्गमनुत्तमम्॥ २॥
पूजयध्वं सपत्नीकाः सादरं पुत्रसंयुताः।
वैदिकैरेव नियमैर्विविधैर्ब्रह्मचारिणः॥ ३॥

पितामह ने कहा—पृथ्वी पर गिराये गये महेश्वर के जिस लिङ्ग को आप लोगों ने देखा था, उसीके जैसा ही एक श्रेष्ठ लिङ्ग बनाकर सपत्नीक तथा पुत्रों सहित आदरपूर्वक विविध आप लोग उसकी पूजा करें और वैदिकनियमों के अनुसार ब्रह्मचर्य का पालन करते रहें।

संस्थाप्य शांकरैर्मन्त्रैर्ऋग्यजुः सामसंभवैः।
तपः परं समास्थाय गृणन्तः शतरुद्रियम्॥४॥
समाहिताः पूजयध्वं सपुत्राः सह बन्धुभिः।
सर्वे प्राञ्जलयो भूत्वा शूलपाणिं प्रपद्यथ॥५॥
ततो द्रक्ष्यथ देवेशं दुर्दर्शमकृतात्मभिः।
यं दृष्ट्वा सर्वमज्ञानमधर्मश्च प्रणश्यति॥६॥

ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद में कहे गये शंकर के मन्त्रों द्वारा (लिङ्ग की) स्थापना कर परम तप का आश्रय लेकर, शतरुद्रिय स्तोत्र का जप करते हुए समाहित होकर बन्धुओं तथा पुत्रोंसहित आप सभी लोग हाथ जोड़कर शूलपाणि की शरण में जायें। तब आप लोग अकृतात्माओं (अवशी) के लिये दुर्दर्श उन देवेश्वर का दर्शन करेंगे, जिनको देख लेने पर सम्पूर्ण अज्ञान और अधर्म दूर हो जाता है।

ततः प्रणम्य वरदं ब्रह्माणममितौजसम्।
जग्मुः संहृष्टमनसो देवदारुवनं पुनः॥७॥
आराधयितुमारब्धा ब्रह्मणा कथितं यथा।
अजानन्तः परं भावं वीतरागा विमत्सराः॥८॥
स्थण्डिलेषु विचित्रेषु पर्वतानां गुहासु च।
नदीनाञ्च विविक्तेषु पुलिनेषु शुभेषु च॥९॥

तब अमित तेजस्वी वरदाता ब्रह्मा को प्रणामकर प्रसन्न मन वाले होकर वे सभी मुनिगण पुनः देवदारु वन की ओर चले गये और वहां जाकर जैसा ब्रह्माजी ने कहा था, वैसे ही शिव की आराधना प्रारम्भ कर दी। यद्यपि वे परम देव को नहीं जानते थे फिर भी वे महर्षि राग एवं मात्सर्य से रहित थे। उनमें कुछ अद्‌भुत सपाट प्रदेशों में, पर्वतों की गुफाओं तथा एकान्त नदियों के सुन्दर किनारों स्थित थे।

शैवालभोजनाः केचित्केचिदन्तर्जलेशयाः।
केचिदभ्रावकाशास्तु पादांगुष्ठे ह्यधिष्ठिताः॥१०॥

कुछ शैवाल का भोजी, कुछ जल के भीतर शयन की मुद्रा में स्थित, तथा कुछ लोग खुले आकाश के नीचे पैर के अँगूठे के अग्रभाग पर स्थित होकर श्रीशंकर की आराधना में दत्तचित हो गये।

दन्तोलूखलिनस्त्वन्ये ह्यश्मकुट्टास्तथा परे।
शाकपर्णाशनाः केचित्संप्रक्षाला मरीचिपाः॥११॥
वृक्षमूलनिकेताश्च शिलाशय्यास्तथापरे।
कालं नयन्ति तपसा पूजयन्तो महेश्वरम्॥१२॥

कुछ दन्तोलूखली अर्थात् दाँतों के ही द्वारा अनाज को बिना पकाये खाने वाले थे, कुछ दूसरे पत्थर पर ही अन्न को कूटकर खा लेते थे। कुछ शाक तथा पत्तों को ही अच्छी प्रकार धोकर भोजन करते थे, कुछ मुनि सूर्य-किरणों का ही पान कर जीवित रहते थे। कुछ वृक्ष के नीचे रहते थे, दूसरे शिला को शय्या पर ही शयन करते थे। इस प्रकार तपस्या (विविधा के) द्वारा महेश्वर की पूजा करते हुए वे (मुनिजन) समय व्यतीत कर रहे थे।

ततस्तेषां प्रसादार्थं प्रपन्नार्तिहरो हरः।
चकार भगवान्बुद्धिं बोधयन् वृषभध्वजः॥१३॥
देवः कृतयुगे ह्यस्मिञ्छृंगे हिमवतः शुभे।
देवदारुवनं प्राप्तः प्रसन्नः परमेश्वरः॥१४॥
भस्मपाण्डुरदिग्धांगो नग्नो विकृतलक्षणः।
उल्मुकव्यग्रहस्तश्च रक्तपिंगललोचनः॥१५॥

तब (मुनियों को इस प्रकार शरणागत देखकर) शरणागतों के दुःखहर्ता भगवान् वृषभध्वज शंकर ने उन पर कृपा करने के लिए उन्हें उत्तम ज्ञान देने का निश्चय किया। ऐसा सोचकर प्रसन्न हुए परमेश्वर देव शंकर सत्ययुग में हिमालय के इस शुभ शिखर पर स्थित देवदारु वन में पुनः आये। उनके सारे अङ्ग भस्म से लिप्त होने के कारण श्वेतवर्ण के थे, वे नग्नरूप थे तथा विकृत लक्षणवाले लगते थे। उनके हाथ में उल्मुक (जलती लकड़ी) थी, और उनके नेत्र लाल तथा पिंगल वर्ण के थे।

क्वचिच्च हसते रौद्रं क्वचिद्गायति विस्मितः।
क्वचिन्नृत्यति शृङ्गारी क्वचिद्रौति मुहुर्मुहुः॥१६॥

कभी वे रौद्ररूप में हँसते, कभी विस्मित होकर गाते, कभी शृंगारपूर्वक नृत्य करने लगते और कभी बार-बार रोने की आवाज करते थे।

आश्रमे ह्यटते भिक्षुर्याचते च पुनः पुनः।
मायां कृत्वात्मनो रूपं देवस्तद्वनमागतः॥१७॥
कृत्वा गिरिसुतां गौरीं पार्श्वे देवः पिनाकधृक्।
सा च पूर्ववद्देवेशी देवदारुवनं गता॥१८॥

(ऐसी माया रचकर) महादेव आश्रम में भिक्षुरूप में घूमते थे और बार-बार भिक्षा माँगने लगे। इस प्रकार अपना मायामय रूप बनाकर वे देव (शंकर) उस (देवदारु) वन में विचरने लगे। उन पिनाकधारी देव ने पर्वतपुत्री गौरी को अपने पार्श्वभाग में कर लिया था। वह देवेश्वरी पूर्व के समान ही देवदारु वन में महादेव के गयीं थीं।

दृष्ट्वा समागतं देवं देव्या सह कपर्दिनम्।
प्रणेमुः शिरसा भूमौ तोषयामासुरीश्वरम्॥ १९॥
वैदिकैर्विविधैर्मन्त्रैस्तोत्रैर्माहेश्वरैः शुभैः।
अथर्वशिरसा चान्ये रुद्राद्यैरर्चयन्भवम्॥ २०॥

इस प्रकार जटाजूटधारी शंकर को देवी के साथ आया देखकर उन मुनियों ने भूमि में सिर रखकर ईश्वर को प्रणाम किया और स्तुति की। वे विविध वैदिक मन्त्रों, शुभ माहेश्वर सूक्तों, अथर्वशिरस् तथा अन्य रुद्रसम्बन्धी वेदमन्त्रों से शंकर की स्तुति करने लगे।

नमो देवादिदेवाय महादेवाय ते नमः।
त्र्यम्बकाय नमस्तुभ्यं त्रिशूलवरधारिणे॥ २१॥
नमो दिग्वाससे तुभ्यं विकृताय पिनाकिने।
सर्वप्रणतदेवाय स्वयमप्रणतात्मने॥ २२॥
अन्तकान्तकृते तुभ्यं सर्वसंहरणाय च।
नमोऽस्तु नृत्यशीलाय नमो भैरवरूपिणे॥ २३॥
नरनारीशरीराय योगिनां गुरवे नमः।
नमो दान्ताय शांताय तापसाय हराय च॥ २४॥
विभीषणाय रुद्राय नमस्ते कृत्तिवाससे।
नमस्ते लेलिहानाय श्रीकण्ठाय च ते नमः॥ २५॥
अघोरघोररूपाय वामदेवाय वै नमः।
नमः कनकमालाय देव्याः प्रियकराय च॥ २६॥
गङ्गासलिलधाराय शंभवे परमेष्ठिने।
नमो योगाधिपतये भूताधिपतये नमः॥ २७॥

देवों के आदिदेव को नमस्कार है। महादेव को नमस्कार है। श्रेष्ठ त्रिशूल धारण करने वाले, त्रिनेत्रधारी को नमस्कार है। दिगम्बर, (स्वेच्छा से) विकृत (रूप धारण करने वाले) तथा पिनाकधारी को नमस्कार है। समस्त प्रणतजनों के आश्रय तथा स्वयं निराश्रय (अप्रणत) को नमस्कार है। अन्त करने वाले (यम) का भी अन्त करने वाले और सबका संहार करने वाले आपको नमस्कार है। नृत्यपरायण और भैरवरूप आपको नमस्कार है। नर और नारी का शरीर धारण करने वाले एवं योगियों के गुरु आपको नमस्कार है। दान्त, शान्त, तापस (विरक्त) तथा हर को नमस्कार है। अत्यन्त भीषण, मृगचर्मधारी रुद्र को नमस्कार है। लेलिहान (बार-बार जिह्वा से चाटने वाले) को को नमस्कार है, शितिकण्ठ (नीले कंठ वाले) को नमस्कार है। अघोर तथा घोर रूपवाले वामदेव को नमस्कार है। धतूरे की माला धारण करने वाले और देवी पार्वती का प्रिय करने वाले को नमस्कार है। गङ्गाजल की धारा वाले परमेष्ठी शम्भु को नमस्कार है। योगाधिपति को नमस्कार है तथा भूताधिपति को नमस्कार है।

प्राणाय च नमस्तुभ्यं नमो भस्मांगधारिणे।
नमस्ते हव्यवाहाय दंष्ट्रिणे हव्यरेतसे॥ २८॥
ब्रह्मणश्च शिरोहर्त्रे नमस्ते कालरूपिणे।
आगतिं ते न जानीमो गतिं नैव च नैव च॥ २९॥

प्राणस्वरूप आपको नमस्कार है। भस्म का अङ्गराग लगाने वाले को नमस्कार। हव्यवाह, दंष्ट्री तथा वह्निरेता आपको नमस्कार है। ब्रह्मा के सिर का हरण करने वाले कालरूप को नमस्कार है। न तो हम आपके आगमन को जानते हैं और नहीं गमन को ही जानते हैं।

विश्वेश्वर महादेव योऽसि सोऽसि नमोस्तु ते।
नमः प्रमथनाथाय दात्रे च शुभसंपदाम्॥ ३०॥
कपालपाणये तुभ्यं नमो जुष्टतमाय ते।
नमः कनकपिङ्गाय वारिलिङ्गाय ते नमः॥ ३१॥

हे विश्वेश्वर! हे महादेव! आप जिस रूप में हैं, उसी रूप में आपको नमस्कार है। प्रमथ गणों के स्वामी तथा शुभ सम्पदा देने वाले को नमस्कार है। हाथ में कपाल धारण करने वाले तथा अत्यन्त सेवित आपको को नमस्कार है। सुवर्ण जैसे पिङ्गल और जलरूप लिङ्ग वाले आपको नमस्कार है।

नमो वह्न्यर्कलिङ्गाय ज्ञानलिङ्गाय ते नमः।
नमो भुजंगहाराय कर्णिकारप्रियाय च।
किरीटिने कुण्डलिने कालकालाय ते नमः॥ ३२॥
वामदेव महादेव देवदेव त्रिलोचन।
क्षम्यतां यत्कृतं मोहात्त्वमेव शरणं हि नः॥ ३३॥

अग्नि, सूर्य तथा ज्ञानरूप लिङ्ग वाले आपको नमस्कार है। सर्पों की मालावाले और कनेर का पुष्प जिसको प्रिय है, ऐसे आपको नमस्कार है। किरीटी, कुण्डलधारी करने वाले तथा काल के भी काल आपको नमस्कार है। वामदेव! हे

महादेव! हे देवाधिदेव! हे त्रिलोचन! मोहवश हमने जो किया, उसे आप क्षमा करें। हम सभी आपकी शरण में हैं।

चरितानि विचित्राणि गुह्यानि गहनानि च।
ब्रह्मादीनाञ्च सर्वेषां दुर्विज्ञेयो हि शंकर:॥ ३४॥
अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानात्किञ्चिद्यत्कुरुते न:।
तत्सर्वं भगवानेव कुरुते योगमायया॥ ३५॥
एवं स्तुत्वा महादेवं प्रविष्टैरन्तरात्मभि:।
ऊचु: प्रणम्य गिरिशं पश्यामस्त्वां यथा पुरा॥ ३६॥

आपके चरित अद्भुत, गहन तथा गुह्य हैं। इसलिए शंकर! आप ब्रह्मा आदि सभी के लिये दुर्विज्ञेय हैं। जो कोई मनुष्य जानते हुए अथवा अज्ञानवश जो कुछ भी करता है, वह सब आप भगवान् ही अपनी योगमाया से करते हैं। इस प्रकार अन्तरात्मा से ईश्वर युक्त हुए मुनियों ने महादेव की स्तुतिकर उनको प्रणाम किया और कहा—हम लोग आपको मूलरूप में देखना चाहते हैं।

तेषां संस्तवमाकर्ण्य सोम: सोमविभूषण:।
स्वयमेव परं रूपं दर्शयामास शंकर:॥ ३७॥
तं ते दृष्ट्वाथ गिरिशं देव्या सह पिनाकिनम्।
यथापूर्वं स्थिता विप्रा: प्रणेमुर्हृष्टमानसा:॥ ३८॥
ततस्ते मुनय: सर्वे संस्तूय च महेश्वरम्।
भृग्वंगिरा वसिष्ठस्तु विश्वामित्रस्तथैव च॥ ३९॥
गौतमोऽत्रि: सुकेशश्च पुलस्त्य: पुलह: क्रतु:।
मरीचि: कश्यपश्चापि संवर्त्तकमहातपा:।
प्रणम्य देवदेवेशमिदं वचनमब्रुवन्॥ ४०॥

उन महर्षियों की स्तुति को सुनकर चन्द्र का आभूषण धारण करने वाले शंकर ने अपने परम रूप का दर्शन कराया। उन पिनाकधारी गिरीश को देवी (पार्वती) के साथ पूर्वरूप में स्थित देखकर प्रसन्न-मन वाले ब्राह्मणों ने उन्हें प्रणाम किया। तदनन्तर भृगु, अंगिरा, वसिष्ठ तथा विश्वामित्र, गौतम, अत्रि, सुकेश, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, मरीचि, कश्यप तथा संवर्तक आदि महातपस्वी ऋषियों ने महेश्वर की स्तुति कर उन देवदेवेश को प्रणाम करके इस प्रकार कहा—

कथं त्वां देवदेवेश कर्मयोगेन वा प्रभो।
ज्ञानेन वाथ योगेन पूजयाम: सदैव हि॥ ४१॥
केन वा देव मार्गेण संपूज्यो भगवानिह।
किं तत्सेव्यमसेव्यं वा सर्वमेतद्ब्रवीहि न:॥ ४२॥

देवदेवेश! प्रभो! हम सब किस प्रकार से आपकी सदा पूजा करें, कर्मयोग से या ज्ञानयोग से? हे देव, आप भगवान् किस मार्ग से पूजने योग्य हैं? हम लोगों के लिये क्या सेवनीय है, क्या असेवनीय है, यह सब आप हमें कहें।

श्रीशिव उवाच

एतद्व: संप्रवक्ष्यामि गूढं गहनमुत्तमम्।
ब्रह्मणा कथितं पूर्वं महादेवे महर्षय:॥ ४३॥

श्रीशिव बोले— हे महर्षियों! मैं आप लोगों को यह उत्तम और गम्भीर रहस्य बताता हूँ। पूर्वकाल में ब्रह्माजी ने मुझ महादेव को बताया था।

सांख्ययोगाद्द्विधा ज्ञेयं पुरुषाणां हि साधनम्।
योगेन सहितं सांख्यं पुरुषाणां विमुक्तिदम्॥ ४४॥
न केवलं हि योगेन दृश्यते पुरुष: पर:।
ज्ञानन्तु केवलं सम्यगपवर्गफलप्रदम्॥ ४५॥
भवंत: केवलं योगं समाश्रित्य विमुक्तये।
विहाय सांख्यं विमलमकुर्वत परिश्रमम्॥ ४६॥
एतस्मात्कारणाद्विप्रा नृणां केवलकर्मणाम्।
आगतोऽहमिमं देशं ज्ञापयन्मोहसंभवम्॥ ४७॥
तस्माद्भवद्भिर्विमलं ज्ञानं कैवल्यसाधनम्।
ज्ञातव्यं हि प्रयत्नेन श्रोतव्यं दृश्यमेव च॥ ४८॥

मनुष्यों को यह मुक्ति का यह साधन सांख्य तथा योग इस प्रकार दो तरह से जानने योग्य है। वस्तुत: योग सहित सांख्य ही पुरुषों को अवश्य मुक्ति देने वाला है केवल योगमात्र से परमात्मा का दर्शन सम्भव नहीं है परन्तु यदि उस योग के साथ ज्ञान हो तथा वे दोनों मिलकर प्रत्येक मनुष्य को मोक्षरूप फल देने वाले होते हैं। योग का आश्रय लेकर विशेष मुक्ति हेतु परिश्रम में लगे हुए थे इसीलिए आप निष्फल हुए हैं इतना ही नहीं संसाररूपी बन्धन को प्राप्त कर चुके हैं इसलिए हे ब्राह्मणो! केवल कर्म करते हुए आपके मोह से उत्पन्न हुए अज्ञान को बताने के लिए ही मैं आपके इस प्रदेश में आया था और इसी कारण (उपदेश करता हूँ कि) आपको मोक्ष के साधन रूप निर्मल ज्ञान का ही आश्रय करके प्रयत्नपूर्वक उस परमेश्वर का ज्ञान अवश्य सुनना चाहिए और उसी के द्वारा अवश्य दर्शन किए जा सकते हैं।

एक: सर्वत्रगो ह्यात्मा केवलश्चितिमात्रक:।
आनन्दो निर्मलो नित्य एतद्वै सांख्यदर्शनम्॥ ४९॥
एतदेव परं ज्ञानमथ मोक्षोऽनुगीयते।
एतत्कैवल्यममलं ब्रह्मभावश्च वर्णित:॥ ५०॥
आश्रित्य चैतत्परमं तन्निष्ठास्तत्परायणा:।

पश्यन्ति मां महात्मानो यतयो विश्वमीश्वरम्॥५१॥

आत्मा सर्वत्र व्यापक, विशुद्ध, चिन्मात्र, आनन्द, निर्मल, नित्य तथा एक है- यही सांख्य दर्शन है। यही परम ज्ञान है, इसी को यहाँ मोक्ष कहा गया है। यही निर्मल मोक्ष है और यही शुद्ध ब्रह्मभाव बताया गया है। इस परम (ज्ञान) को आश्रय करके उसमें ही निष्ठा और उसी के परायण रहते हुए महात्मा तथा यतिजन मुझ विश्वरूप ईश्वर का दर्शन करते हैं।

एतत्तत्परमं ज्ञानं केवलं सन्निरञ्जनम्।
अहं हि वेद्यो भगवान्मम मूर्तिरियं शिवा॥५२॥
बहूनि साधनानीह सिद्धये कथितानि तु।
तेषामभ्यधिकं ज्ञानं मामकं द्विजपुङ्गवाः॥५३॥

यही वह सत्, निरञ्जन तथा अद्वितीय परम ज्ञान है। मैं ही भगवान् वेद्य अर्थात् जानने योग्य हूँ और यह शिवा मेरी ही मूर्ति है। श्रेष्ठ ब्राह्मणो! लोक में सिद्धि (मोक्ष) प्राप्ति के लिये अनेक साधन बताये गये हैं, किन्तु उनमें मेरे विषय का ज्ञान सर्वश्रेष्ठ (साधन) है।

ज्ञानयोगरताः शान्ता मामेव शरणं गताः।
ये हि मां भस्मनि रता ध्यायन्ति सततं हृदि॥५४॥
मद्भक्तितत्परा नित्यं यतयः क्षीणकल्मषाः।
नाशयाम्यचिरात्तेषां घोरं संसारसागरम्॥५५॥

ज्ञानयोग में परायण, शान्त और मेरे ही शरण में आये हुए जो लोग शरीर पर भस्म लगाकर हृदय में निरन्तर मेरा ही ध्यान करते हैं। वे यतिगण नित्य मेरी परम भक्ति में तत्पर हैं, अतः पापों से रहित होते हैं, (इसलिए) उन लोगों के घोर संसार रूपी सागर को मैं शीघ्र ही नष्ट कर देता हूँ।

निर्मितं हि मया पूर्वं व्रतं पाशुपतं शुभम्।
गुह्याद्गुह्यतमं सूक्ष्मं वेदसारं विमुक्तये॥५६॥
प्रशान्तः संयतमना भस्मोद्धूलितविग्रहः।
ब्रह्मचर्यरतो नग्नो व्रतं पाशुपतं चरेत्॥५७॥

मैंने मुक्ति के लिए पूर्व ही पाशुपत-व्रत का निर्माण किया है। यह अतिशय गोपनीय, सूक्ष्म और वेदों का साररूप है। मनुष्य को प्रशान्त चित्त, मन को संयमित करके तथा भस्म से शरीर को धूसरित करके, ब्रह्मचर्यपरायण होते हुए नग्नावस्था में इस पाशुपत-व्रत का पालन करना चाहिये।

यद्वा कौपीनवसनः स्यादेकवसनो मुनिः।
वेदाभ्यासरतो विद्वान्ध्यायेत्पशुपतिं शिवम्॥५८॥
एष पाशुपतो योगः सेवनीयो मुमुक्षुभिः।
तस्मिन्स्थितैस्तु पठितं निष्कामैरिति हि श्रुतम्॥५९॥
वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः।
बहवोऽनेन योगेन पूता मद्भावमागताः॥६०॥

अथवा कौपीन या एक वस्त्र धारणकर विद्वान् मुनि को वेदाभ्यास में रत रहते हुए पशुपति शिव का सदा ध्यान करना चाहिये। यह पाशुपत योग मोक्ष चाहने वालों द्वारा सेवनीय है— ऐसा श्रुति का कथन है। राग, भय तथा क्रोध से रहित, मेरा ही आश्रय ग्रहण करने वाले और मुझ में ही मन वाले बहुत से (भक्तजन) इस योग के द्वारा पवित्र होकर मेरे स्वरूप को प्राप्त हुए हैं।

अन्यानि चैव शास्त्राणि लोकेऽस्मिन्मोहनानि तु।
वेदवादविरुद्धानि मयैव कथितानि तु॥६१॥
वामं पाशुपतं सोमं नाकुलं चैव भैरवम्।
असेव्यमेतत्कथितं वेदबाह्यं तथेतरम्॥६२॥

इस संसार में मोह उत्पन्न करने वाले तथा वेदवाद के विरोधी अन्य भी शास्त्र हैं, जो मेरे द्वारा ही कहे गये हैं। इनमें जो वाम, पाशुपत, सोम, नाकुल तथा भैरव (मार्ग) तथा अन्य भी जो वेदबाह्य हैं, वे सभी असेवनीय हैं।

वेदमूर्त्तिरहं विप्रा नान्यशास्त्रार्थवेदिभिः।
ज्ञायते मत्स्वरूपं तु मुक्त्वा देवं सनातनम्॥६३॥
स्थापयध्वमिदं मार्गं पूजयध्वं महेश्वरम्।
ततोऽचिराद्वरं ज्ञानमुत्पत्स्यति न संशयः॥६४॥
मयि भक्तिश्च विपुला भवतामस्तु सत्तमाः।
ध्यानमात्रं हि सान्निध्यं दास्यामि मुनिसत्तमाः॥६५॥

हे ब्राह्मणो! मैं वेदमूर्ति हूँ। अन्य शास्त्रों के अर्थ को जानने वाले लोग सनातन देव विष्णु का त्याग कर मेरे स्वरूप को नहीं जान सकते। अतः इस पाशुपत मार्ग की स्थापना करें, महेश्वर की पूजा करें। ऐसा करने से शीघ्र ही आप लोगों को उत्तम ज्ञान प्राप्त होगा, इसमें संशय नहीं है। श्रेष्ठजनो! आप सब की मुझमें विपुल भक्ति हो। हे श्रेष्ठ मुनियों! ध्यान करने मात्र से मैं आपको अपना सान्निध्य प्रदान करूँगा।

इत्युक्त्वा भगवान्सोमस्तत्रैवान्तर्हितोऽभवत्।
तेऽपि दारुवने स्थित्वा ह्यर्चयन्ति स्म शङ्करम्॥६६॥
ब्रह्मचर्यरताः शान्ता ज्ञानयोगपरायणाः।
समेत्य ते महात्मानो मुनयो ब्रह्मवादिनः॥६७॥
विचक्रिरे बहून्वादान्स्वात्मज्ञानसमाश्रयान्।

इतना कहकर भगवान् सोम (शंकर) वहीं पर अन्तर्धान हो गये। वे महर्षि भी शान्तचित्त, ब्रह्मचर्य-परायण तथा ज्ञानयोग-परायण होकर उसी दारुवन में शंकर की पूजा करने लगे। उन ब्रह्मवादी महात्मा मुनियों ने एकत्रित होकर अध्यात्मज्ञान-सम्बन्धी अनेक सिद्धान्तों को बनाया।

किमस्य जगतो मूलमात्मा चास्माकमेव हि॥६८॥
कोऽपि स्यात्सर्वभावानां हेतुरीश्वर एव च।
इत्येवं मन्यमानानां ध्यानमार्गावलम्बिनाम्।
आविरासीन्महादेवी ततो गिरिवरात्मजा॥६९॥
कोटिसूर्यप्रतीकाशा ज्वालामालासमावृता।
स्वभाभिर्निर्मलाभि: सा पूरयन्ती नभस्तलम्॥७०॥

इस जगत् का मूल क्या है और हमारा अपना मूल क्या है? सभी भाव पदार्थों कोई हेतु होना चाहिए? वह ईश्वर ही हो सकता है। इस प्रकार मानने वाले तथा ध्यानमार्ग का अवलम्बन करने वाले उन महर्षियों के समक्ष श्रेष्ठ पर्वत (हिमालय) की पुत्री महादेवी पार्वती प्रकट हुईं। वे करोड़ों सूर्य के समान ज्वालामालाओं से समावृत अपनी निर्मल कान्ति से आकाशमण्डल को आपूरित कर रही थी।

तामन्वपश्यद्गिरिजाममेयां
ज्वालासहस्रान्तरसन्निविष्टाम्।
प्रणेमुरेतामखिलेशपत्नीं
जानन्ति चैतत्परमस्य बीजम्॥७१॥

हजारों ज्वालाओं के मध्य प्रतिष्ठित, अतुलनीय पार्वती जी के दर्शन किये। तब मुनियों ने उन सर्वेश्वर की पत्नी पार्वती को प्रणाम किया क्योंकि वे जानते हैं कि वे ही परमेश्वर की मूलशक्ति (बीज) हैं।

अस्माकमेषा परमस्य पत्नी
गतिस्तथात्मा गगनाभिधाना।
पश्यन्त्यथात्मानमिदं च कृत्स्नं
तस्यामथैते मुनय: प्रहृष्टा:॥७२॥

यही हमारे परमेश्वर शिव की पत्नी हैं, हमारी गति और आत्मा है। यही आकाश नाम से प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार मानते हुए प्रसन्न मन वाले मुनिगण उन्हीं पार्वती में अपनी आत्मा तथा संपूर्ण जगत् को देखने लगे।

निरीक्षितास्ते परमेशपत्न्या
तदन्तरे देवमशेषहेतुम्।
पश्यन्ति शम्भुं कविमीशितारं
रुद्रं बृहन्तं पुरुषं पुराणम्॥७३॥

परमेश्वरपत्नी भी उन मुनियों को अच्छी प्रकार देखने लगीं अर्थात् उन पर दृष्टि डाली, तब उस बीच मुनियों ने जगत् के अशेष कारण शम्भु, ज्ञानी, सब के नियन्ता, रुद्र, महान् और पुराण पुरुष अपने परमेश्वर को वहां देखा।

आलोक्य देवीमथ देवमीशं
प्रणेमुरानन्दमवापुरग्र्यम्।
ज्ञानं तदीशं भगवत्प्रसादा-
दाविर्बभौ जन्मविनाशहेतु:॥७४॥

इस प्रकार देवी (पार्वती) तथा देव (शंकर) को देखकर उन्होंने (मुनियों ने) प्रणाम किया और अतिशय आनन्द प्राप्त किया। (तभी) उनमें भगवान् की कृपा से जन्म के विनाश के कारणरूप अर्थात् पुनर्जन्म न कराने वाले ईश्वर-सम्बन्धी ज्ञान प्रकट हुआ।

इयं या सा जगतो योनिरेका
सर्वात्मिका सर्वनियामिका च।
माहेश्वरी शक्तिरनादिसिद्धा
व्योमाभिधानां दिवि राजतीव॥७५॥

(उन्होंने अनुभव किया कि) यही एक देवी जगत् की उत्पत्ति का मूल कारण, सर्वात्मिका, सब का नियन्त्रण करने वाली तथा अनादि काल से सिद्ध माहेश्वरी शक्ति हैं। यह व्योम नामवाली होने से मानो आकाश-सबके हृदयाकाश में प्रकाशित हो रही हैं।

अस्या महान् परमेष्ठी परस्ता-
न्महेश्वर: शिव एक: स रुद्र:।
चकार विश्वं परशक्तिनिष्ठं
मायामथारुह्य च देवदेव:॥७६॥

देवाधिदेव महान् परमेष्ठी, पर से भी पर, अद्वितीय रुद्र महेश्वर शिव ने इस परम माहेश्वरी शक्ति में स्थित अपनी माया का आश्रय ग्रहण कर विश्व की सृष्टि की।

एको देव: सर्वभूतेषु गूढो
मायी रुद्र: सकलो निष्कलश्च।
स एव देवी न च तद्विभिन्न-
मेतज्ज्ञात्वा ह्यमृतत्वं व्रजन्ति॥७७॥

वही एक देव सभी प्राणियों में गूढरूप से अवस्थित हैं। वे मायी (माया के नियन्ता) रुद्र सकल (साकार) तथा

निष्कल (निराकार) हैं। वे ही देवी (रूप) हैं, उनसे भिन्न अन्य कुछ भी नहीं है, ऐसा जानकर अमृतत्व को प्राप्त करता है।

अन्तर्हितोऽभूद्भगवान्महेशो
देव्या तया सह देवाधिदेवः।
आराधयन्ति स्म तमादिदेवं
वनौकसस्ते पुनरेव रुद्रम्॥७८॥

तदनन्तर देवाधिदेव भगवान् महेश्वर महादेवी के साथ ही अन्तर्हित हो गये और पुनः वनवासी उन मुनिजन उस परम देव रुद्र की आराधना करने लग गये।

एतद्वः कथितं सर्वं देवदेवस्य चेष्टितम्।
देवदारुवने पूर्वं पुराणे यन्मया श्रुतम्॥७९॥
यः पठेच्छृणुयान्नित्यं मुच्यते सर्वपातकैः।
श्रावयेद्वा द्विजाञ्छान्तान्स याति परमां गतिम्॥८०॥

इस प्रकार पूर्व काल में देवदारु वन में घटित देवाधिदेव का जो वृत्तान्त मैंने पुराणों में सुना था, वह आप लोगों को बता दिया। जो इसका नित्य इसका पाठ करता है या श्रवण करता है, वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है और जो शान्तचित्त द्विजों को इसे सुनायेगा, वह परम गति को प्राप्त होगा।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे देवदारुवनप्रवेशो नाम ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः॥३९॥

चत्वारिंशोऽध्यायः
(नर्मदा नदी का माहात्म्य)

सूत उवाच

एषा पुण्यतमा देवी देवगन्धर्वसेविता।
नर्मदालोकविख्याता तीर्थानामुत्तमा नदी॥१॥
तस्याः शृणुध्वं माहात्म्यं मार्कण्डेयेन भाषितम्।
युधिष्ठिराय तु शुभं सर्वपापप्रणाशनम्॥२॥

सूतजी ने कहा—देवों तथा गन्धर्वों द्वारा सेवित यह पुण्यमयी देवी संसार में नर्मदा नाम से विख्यात है तथा नदीरूप में सभी तीर्थों में उत्तम तीर्थ हैं। महर्षि मार्कण्डेय ने इसके विषय में जो युधिष्ठिर को कहा है, वह शुभ (माहात्म्य) आप लोग सुनें। यह सभी पापों का नाशक है।

युधिष्ठिर उवाच

श्रुतास्ते विविधा धर्मास्त्वत्प्रसादान्महामुने।
माहात्म्यं च प्रयागस्य तीर्थानि विविधानि च॥३॥
नर्मदा सर्वतीर्थानां मुख्या हि भवतेरिता।
तस्यास्त्विदानीं माहात्म्यं वक्तुमर्हसि सत्तम॥४॥

युधिष्ठिर बोले— हे महामुने! आपकी कृपा से मैंने विविध धर्मों को सुना, साथ ही प्रयाग का माहात्म्य और अनेक तीर्थों को भी सुना है। आपने बताया कि सभी तीर्थों में नर्मदा मुख्य है, अतः हे श्रेष्ठ! इस समय आप उन्हीं का माहात्म्य मुझे बतलायें।

मार्कण्डेय उवाच

नर्मदा सरितां श्रेष्ठा रुद्रदेहाद्विनिःसृता।
तारयेत्सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च॥५॥
नर्मदायास्तु माहात्म्यं पुराणे यन्मया श्रुतम्।
इदानीं तत्प्रवक्ष्यामि शृणुध्वैकमनाः शुभम्॥६॥

मार्कण्डेय बोले— रुद्र के देह से निकली हुई नर्मदा सभी नदियों में श्रेष्ठ हैं। वह चर-अचर सभी प्राणियों का उद्धार करने वाली है। पुराणों में नर्मदा का जो माहात्म्य मैंने सुना है, उसे अब बतलाता हूँ, आप लोग एकाग्रमन होकर सुनें—

पुण्या कनखले गङ्गा कुरुक्षेत्रे सरस्वती।
ग्रामे वा यदि वारण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा॥७॥
त्रिभिः सारस्वतं तोयं सप्ताहात्त्यामुनं जलम्।
सद्यः पुनाति गांगेयं दर्शनादेव नार्मदम्॥८॥

गङ्गा कनखल में तथा सरस्वती कुरुक्षेत्र में पवित्र हैं, किन्तु ग्राम अथवा अरण्य में सर्वत्र ही नर्मदा को पवित्र कहा गया है। सरस्वती का जल तीन दिनों तक, यमुना का जल सात दिनों तक तथा गङ्गाजल तत्काल स्नानपान से पवित्र करता है, किंतु नर्मदा का जल तो दर्शन मात्र से ही पवित्र कर देता है।

कलिङ्गदेशपश्चार्द्धे पर्वतेऽमरकण्टके।
पुण्या त्रिषु त्रिलोकेषु रमणीया मनोरमा॥९॥
सदेवासुरगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः।
तपस्तप्त्वा तु राजेन्द्र सिद्धिं तु परमां गताः॥१०॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन्नियमस्थो जितेन्द्रियः।
उपोष्य रजनीमेकां कुलानां तारयेच्छतम्॥११॥

कलिंग देश के पीछे आधे भाग में अमरकण्टक पर्वत पर तीनों लोकों में पवित्र, रमणीय, मनोरम नर्मदा का उद्गम

स्थल है। हे राजेन्द्र! वहाँ देवताओं सहित असुरों, गन्धर्वों, ऋषियों तथा तपस्वियों ने तप करके परम सिद्धि प्राप्त की है। राजन्! मनुष्य वहाँ (नर्मदा में) स्नान करके जितेन्द्रिय तथा नियम-परायण रहते हुए एक रात्रि उपवास करता है, तो वह अपने कुल की सौ पीढ़ियों को तार देता है।

योजनानां शतं साग्रं श्रूयते सरिदुत्तमा।
विस्तारेण तु राजेन्द्र योजनद्वयमायता॥ १२॥
षष्टितीर्थसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथैव च।
पर्वतस्य समन्तात्तु तिष्ठन्त्यमरकण्टके॥ १३॥
ब्रह्मचारी शुचिर्भूत्वा जितक्रोधो जितेन्द्रियः।
सर्वहिंसानिवृत्तस्तु सर्वभूतहिते रतः॥ १४॥
एवं शुद्धसमाचारो यस्तु प्राणान्परित्यजेत्।
तस्य पुण्यफलं राजञ्छृणुष्वावहितोऽनघ॥ १५॥

राजेन्द्र! सुना जाता है कि वह उत्तम नदी सौ योजन से कुछ अधिक लम्बी तथा दो योजन चौड़े विस्तार में फैली है। अमरकण्टक तीर्थ में पर्वत के चारों ओर साठ करोड़ साठ हजार तीर्थ स्थित हैं। हे राजन्! जो ब्रह्मचारी पवित्र होकर क्रोध तथा इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर सभी प्रकार की हिंसाओं से सर्वथा निवृत्त हुआ, सभी प्राणियों के हित में लगा रहता है तथा ऐसे ही सभी पवित्र आचारों से सम्पन्न यहाँ प्राण त्याग करता है, उसे जो पुण्य फल प्राप्त होता है, उसे आप सावधान होकर सुनें।

शतं वर्षसहस्राणि स्वर्गे मोदति पाण्डव।
अप्सरोगणसंकीर्णो दिव्यस्त्रीपरिवारितः॥ १६॥
दिव्यगन्धानुलिप्तश्च दिव्यपुष्पोपशोभितः।
क्रीडते दिव्यलोके तु विबुधैः सह मोदते॥ १७॥

हे पाण्डव! वह पुरुष अप्सराओं के समूहों से संकीर्ण तथा चारों ओर दिव्य स्त्रियों से घिरा हुआ स्वर्ग में सौ हजार वर्षों तक आनन्द प्राप्त करता है। वह दिव्य गन्ध (चन्दन) से अनुलिप्त तथा दिव्य पुष्पों से सुशोभित होकर देवलोक में क्रीडा करता है और देवताओं के साथ आनन्द प्राप्त करता है।

ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो राजा भवति धार्मिकः।
गृहं तु लभतेऽसौ वै नानारत्नसमन्वितम्॥ १८॥
स्तम्भैर्मणिमयैर्दिव्यैर्वज्रवैदूर्यभूषितम्।
आलेख्यवाहनैः शुभ्रैर्दासीशतसमन्वितम्॥ १९॥
राजराजेश्वरः श्रीमान्सर्वस्त्रीजनवल्लभः।
जीवेद्वर्षशतं साग्रं तत्र भोगसमन्वितः॥ २०॥

इसके बाद स्वर्ग से च्युत होने पर वह (जन्मान्तर में) धार्मिक राजा होता है और नाना प्रकार के रत्नों से युक्त, दिव्य मणिमय स्तम्भों, हीरे एवं वैदूर्यमणि से विभूषित, उत्तम चित्रों तथा वाहनों से अलंकृत और दासी-दास से समन्वित भवन प्राप्त करता है। वह राजराजेश्वर श्रीसम्पन्न, सभी स्त्रियों में प्रियकर तथा भोगों से युक्त होकर वहाँ (पृथ्वी पर) सौ वर्ष से भी अधिक समय तक जीवित रहता है।

अग्निप्रवेशेऽथ जले वाथवानशने कृते।
अनिवर्तिका गतिस्तस्य पवनस्याम्बरे यथा॥ २१॥

(इस तीर्थ में जाकर) अग्निप्रवेश अथवा जल में प्रवेश करने अथवा उपवास करने पर उसे (मृत्यु पश्चात्) अपुनरागमन गति प्राप्त होती है, जैसे कि आकाश में पवन की गति (अपुनरावृत्त) होती है (इसका आशय यह है कि शास्त्रविहित तप के रूप में अग्निप्रवेश आदि तप इस तीर्थ में अक्षय पुण्य देने वाले होते हैं)।

पश्चिमे पर्वततटे सर्वपापविनाशनः।
ह्रदो जलेश्वरो नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतः॥ २२॥
तत्र पिण्डप्रदानेन सन्ध्योपासनकर्मणा।
दशवर्षसहस्राणि तर्पिताः स्युर्न संशयः॥ २३॥

उस पर्वत के पश्चिमी किनारे पर सभी पापों का नाश करने वाला और तीनों लोकों में प्रसिद्ध जलेश्वर नामका एक ह्रद (तालाब) है। वहाँ पिण्डदान करने तथा संध्योपासन कर्म करने से दस (हजार) वर्ष तक पितर तृप्त रहते हैं, इसमें संदेह नहीं।

दक्षिणे नर्मदाकूले कपिलाख्या महानदी।
सरलार्जुनसञ्छन्ना नातिदूरे व्यवस्थिता॥ २४॥
सा तु पुण्या महाभागा त्रिषु लोकेषु विश्रुता।
तत्र कोटिशतं साग्रं तीर्थानान्तु युधिष्ठिर॥ २५॥
तस्मिंस्तीर्थे तु ये वृक्षाः पतिताः कालपर्ययात्।
नर्मदातोयसंस्पृष्टास्ते यान्ति परमां गतिम्॥ २६॥

नर्मदा के दक्षिणी तट के समीप में ही कपिला नामक महानदी है, जो सरल तथा अर्जुन के वृक्षों से घिरी हुई है। वह महाभागा पुण्यमयी नदी तीनों लोकों में विख्यात है। युधिष्ठिर! वहाँ सौ करोड़ से भी अधिक तीर्थ हैं। कालक्रम से जो वृक्ष उस तीर्थ में गिरते हैं, वे नर्मदा के जल का स्पर्श करके परम गति को प्राप्त होते हैं।

द्वितीया तु महाभागा विशल्यकरणी शुभा।
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा विशल्यो भवति क्षणात्॥ २७॥
कपिला च विशल्या च श्रूयेते सरिदुत्तमे।
ईश्वरेण पुरा प्रोक्ते लोकानां हितकाम्यया॥ २८॥
अनाशकन्तु यः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप।
सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोके स गच्छति॥ २९॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन्नश्वमेधफलं लभेत्।
ये वसन्त्युत्तरे कूले रुद्रलोके वसन्ति ते॥ ३०॥

अन्य महापुण्यदायी शुभ नदी विशल्यकरणी है, उस तीर्थ में स्नानकर मनुष्य तत्क्षण ही सभी व्रणों या दुःखों से रहित हो जाता है। हे राजश्रेष्ठ! यह आप्त श्रुति है कि कपिला तथा विशल्या नाम की दोनों नदियाँ प्राणियों का हित करने की इच्छा से ईश्वर द्वारा आदिष्ट हैं। हे नराधिपति! उस तीर्थ में जो (मरणप्रयन्त) अनशनव्रत करता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर रुद्रलोक में जाता है। हे राजन्! वहाँ स्नानकर मनुष्य अश्वमेध का फल प्राप्त करता है और जो लोग नर्मदा के उत्तरी तट पर रहते हैं, वे रुद्रलोक में निवास करते हैं।

सरस्वत्याञ्च गंगायां नर्मदायां युधिष्ठिर।
समं स्नानञ्च दानं च यथा मे शंकरोऽब्रवीत्॥ ३१॥
परित्यजति यः प्राणान्पर्वतेऽमरकण्टके।
वर्षकोटिशतं साग्रं रुद्रलोके महीयते॥ ३२॥

हे युधिष्ठिर! गङ्गा, सरस्वती एवं नर्मदा में स्नान करने से और वहाँ दान देने से समान फल मिलता है। जो अमरकण्टक पर्वत पर जाकर प्राण त्याग करता है, वह सौ करोड़ वर्षों से भी अधिक समय तक रुद्रलोक में पूजित होता है।

नर्मदायां जलं पुण्यं फेनोर्मि सफलीकृतम्।
पवित्रं शिरसा धृत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ३३॥
नर्मदा सर्वतः पुण्या ब्रह्महत्यापहारिणी।
अहोरात्रोपवासेन मुच्यते ब्रह्महत्यया॥ ३४॥

नर्मदा का जल अति पवित्र तथा फेन और तरङ्गों से सुशोभितहै। उस पवित्र जल को मस्तक पर धारण करने पर मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है। नर्मदा सभी प्रकार से पवित्र और ब्रह्महत्या को दूर करने वाली है। वहाँ एक अहोरात्र उपवास करने से ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हो जाता है।

जालेश्वरं तीर्थवरं सर्वपापप्रणाशनम्।
तत्र गत्वा नियमवान्सर्वकामांल्लभेन्नरः॥ ३५॥
चन्द्रसूर्योपरागे च गत्वा ह्यमरकण्टकम्।
अश्वमेधाद्दशगुणं पुण्यमाप्नोति मानवः॥ ३६॥

वहां जलेश्वर नाम का श्रेष्ठ तीर्थ सभी पापों को नष्ट करने वाला है। इससे वहाँ जाकर नियमपूर्वक रहने वाला मनुष्य सभी कामनाओं को प्राप्त कर लेता है। चन्द्र तथा सूर्य ग्रहण के समय जो अमरकण्टक की यात्रा करता है, वह मनुष्य अश्वमेध यज्ञ से दस गुना अधिक पुण्य प्राप्त करता है।

एष पुण्यो गिरिवरो देवगन्धर्वसेवितः।
नानाद्रुमलताकीर्णो नानापुष्पोपशोभितः॥ ३७॥
तत्र सन्निहितो राजन्देव्या सह महेश्वरः।
ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रो विद्याधरगणैः सह॥ ३८॥

यह पुण्यप्रद श्रेष्ठ पर्वत (अमरकण्टक) देवताओं तथा गन्धर्वों द्वारा सेवित, नाना प्रकार के वृक्षों और लताओं से व्याप्त एवं नाना प्रकार के पुष्पों से सुशोभित है। राजन्! यहाँ देवी पार्वती के साथ महेश्वर और विद्याधरगणों के साथ ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र भी स्थित रहते हैं।

प्रदक्षिणं तु यः कुर्यात्पर्वतेऽमरकण्टके।
पौण्डरीकस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः॥ ३९॥
कावेरी नाम विख्याता नदी कल्मषनाशिनी।
तत्र स्नात्वा महादेवमर्चयेद् वृषभध्वजम्॥
संगमे नर्मदायास्तु रुद्रलोके महीयते॥ ४०॥

जो मनुष्य अमरकण्टक पर्वत की परिक्रमा करता है, वह पौण्डरीक यज्ञ का फल प्राप्त करता है। उसी तरह वहां कावेरी नाम की एक प्रसिद्ध नदी है, जो कल्मषों का नाश करने वाली है। उसमें स्नान करके तथा नर्मदा-कावेरी के संगम में स्नान करके जो वृषभध्वज महादेव की आराधना करता है, वह रुद्रलोक में प्रतिष्ठित होता है।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे मार्कण्डेययुधिष्ठिरसंवादे
नर्मदामाहात्म्यं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४०॥

एकचत्वारिंशोऽध्यायः
(नर्मदा नदी का माहात्म्य)

मार्कण्डेय उवाच

नर्मदा सरितां श्रेष्ठा सर्वपापविनाशिनी।
मुनिभिः कथिता पूर्वमीश्वरेण स्वयम्भुना॥ १॥

मार्कण्डेय ने कहा— नर्मदा नदी सभी नदियों में श्रेष्ठ तथा

समस्त पापों का नाश करने वाली है। यह बात पूर्वकाल में मुनियों तथा स्वयम्भु ईश्वर-ब्रह्मा ने कही है।

मुनिभिः संस्तुता ह्येषा नर्मदा प्रवरा नदी।
रुद्रगात्राद्विनिष्क्रान्ता लोकानां हितकाम्यया॥ २॥
सर्वपापहरा नित्यं सर्वदेवनमस्कृता।
संस्तुता देवगन्धर्वैरप्सरोभिस्तथैव च॥ ३॥

यह श्रेष्ठ नर्मदा नदी मुनियों द्वारा प्रशंसित है। (क्योंकि) यह लोकों के हित की कामना से रुद्र के शरीर से उत्पन्न हुई है। यह नित्य सभी पापों को हरने वाली है, सभी देवों द्वारा नमस्कृत है और देवताओं, गन्धर्वों तथा अप्सराओं द्वारा अच्छी प्रकार स्तुत है।

उत्तरे चैव कूले च तीर्थे त्रैलोक्यविश्रुते।
नाम्ना भद्रेश्वरं पुण्यं सर्वपापहरं शुभम्॥ ४॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन्दैवतैः सह मोदते।

इस नर्मदा नदी के उत्तरी किनारा तीनों लोकों में विख्यात तीर्थरूप है, वहां भद्रेश्वर नामक तीर्थ अति पवित्र, शुभ तथा सभी पापों का हरण करने वाला है। हे राजन्! वहाँ स्नान करके मनुष्य देवताओं के साथ आनन्दित होता है।

ततो गच्छेत राजेन्द्र विमलेश्वरमुत्तमम्॥ ५॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन्गोसहस्रफलं लभेत्।

राजेन्द्र! वहाँ से विमलेश्वर तीर्थ में जाना चाहिये। राजन्! वहाँ स्नान करके मनुष्य हजार गौओं के दान का फल प्राप्त करता है।

ततोऽङ्गारकेश्वरं गच्छेन्नियतो नियताशनः॥ ६॥
सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोके महीयते।

तदनन्तर संयमपूर्वक नियत आहार करते हुए अङ्गारकेश्वर तीर्थ में जाना चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य सभी पापों से छूटकर पवित्रात्मा होकर रुद्रलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है।

ततो गच्छेत राजेन्द्र केदारं नाम पुण्यदम्॥ ७॥
तत्र स्नात्वोदकं पीत्वा सर्वान्कामानवाप्नुयात्।

राजेन्द्र! इसके बाद पुण्यदायी केदार नामक तीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ स्नान करके जल पान करने से सभी कामनाओं की प्राप्ति होती है।

निष्फलेशन्ततो गच्छेत्सर्वपापविनाशनम्॥ ८॥
तत्र स्नात्वा महाराज रुद्रलोके महीयते।

तदनन्तर निष्फलेश नामक तीर्थ में जाना चाहिये। वह सभी पापों का विनाश करने वाला है। हे महाराज! वहाँ स्नान करने से मनुष्य रुद्रलोक में पूजित होता है।

ततो गच्छेत राजेन्द्र बाणतीर्थमनुत्तमम्॥ ९॥
तत्र प्राणान्परित्यज्य रुद्रलोकमवाप्नुयात्।
ततः पुष्करिणीं गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत्॥ १०॥
तत्र स्नात्वा राजन् सिंहासनपतिर्भवेत्।

हे राजेन्द्र! तदनन्तर उत्तम बाणतीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ प्राणों का त्याग करने पर रुद्रलोक की प्राप्ति होती है। इसके बाद पुष्करिणी में जाकर वहाँ स्नान करना चाहिये। वहाँ स्नान करने मात्र से ही मनुष्य सिंहासन का अधिपति हो जाता है।

शक्रतीर्थं ततो गच्छेत्कूले चैव तु दक्षिणे॥ ११॥
स्नातमात्रो नरस्तत्र इन्द्रस्यार्द्धासनं लभेत्।

इसके पश्चात् (नर्मदा के) दक्षिणी तट पर स्थित शक्रतीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ भी स्नान करने वाला इन्द्र के अर्धासन को प्राप्त कर लेता है।

ततो गच्छेत राजेन्द्र शूलभेद इति श्रुतिः॥ १२॥
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च गोसहस्रफलं लभेत्।

राजेन्द्र! वहाँ से शूलभेद नामक तीर्थ में जाना चाहिये, ऐसी मान्यता है। वहाँ स्नान करके जलपान कर लेने पर सहस्र गौ-दान का फल मिलता है।

उपोष्य रजनीमेकां स्नानं कृत्वा यथाविधि॥ १३॥
आराधयेन्महायोगं देवदेवं नरोऽमलः।
गोसहस्रफलं प्राप्य विष्णुलोकं स गच्छति॥ १४॥

वहाँ एक रात्रि उपवास करके तथा नियमपूर्वक स्नान करके पवित्र होकर मनुष्य को देवाधिदेव महायोगस्वरूप नारायण हरि की आराधना करनी चाहिये। इससे हजार गौओं के दान का फल प्राप्त कर मनुष्य विष्णुलोक में जाता है।

ऋषितीर्थं ततो गत्वा सर्वपापहरं नृणाम्।
स्नातमात्रो नरस्तत्र शिवलोके महीयते॥ १५॥

तदनन्तर मनुष्यों के समस्त पापों को हरने वाले ऋषितीर्थ में जाकर वहाँ केवल स्नान करने से ही मनुष्य शिवलोक में पूजित होता है।

नारदस्य तु तत्रैव तीर्थं परमशोभनम्।
स्नातमात्रो नरस्तत्र गोसहस्रफलं भवेत्॥ १६॥
यत्र तप्तं तपः पूर्वं नारदेन सुरर्षिणा।
प्रीतस्तस्य ददौ योगं देवदेवो महेश्वरः॥ १७॥

वहीं पर नारद जी का परम सुन्दर तीर्थ है। वहाँ भी स्नानमात्र से मनुष्य एक हजार गौ-दान का फल प्राप्त करता

है। पूर्वकाल में इसी तीर्थ में देवर्षि नारद ने तप किया था और इससे प्रसन्न होकर देवाधिदेव महेश्वर ने उन्हें योग प्रदान किया था।

ब्रह्मणा निर्मितं लिङ्गं ब्रह्मेश्वरमिति श्रुतम्।
यत्र स्नात्वा नरो राजन्ब्रह्मलोके महीयते॥ १८॥

हे राजन्! ब्रह्मा के द्वारा स्थापित लिङ्ग ब्रह्मेश्वर नाम से प्रसिद्ध है। इस तीर्थ में स्नान करके मनुष्य ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है।

ऋणतीर्थं ततो गच्छेदृणान्मुच्येन्नरो ध्रुवम्।
वटेश्वरं ततो गच्छेत्पर्याप्तं जन्मनः फलम्॥ १९॥

तदनन्तर ऋणतीर्थ की ओर जाना चाहिये। वहाँ जाने से मनुष्य अवश्य ही ऋणों से मुक्त हो जाता है। इसके बाद वटेश्वर तीर्थ में जाना चाहिये, जहाँ जीवन का पूर्ण फल मिलता है।

भीमेश्वरं ततो गच्छेत्सर्वव्याधिविनाशनम्।
स्नातमात्रो नरस्तत्र सर्वदुःखैः प्रमुच्यते॥ २०॥

तदुपरान्त समस्त व्याधियों का नाश करने वाले भीमेश्वर-तीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ स्नान करने मात्र से ही मनुष्य सभी दुःखों से मुक्त हो जाता है।

ततो गच्छेत राजेन्द्र पिंगलेश्वरमुत्तमम्।
अहोरात्रोपवासेन त्रिरात्रफलमाप्नुयात्॥ २१॥
तस्मिंस्तीर्थे तु राजेन्द्र कपिलां यः प्रयच्छति।
यावन्ति तस्या रोमाणि तत्प्रसूतिकुलेषु च॥ २२॥
तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते।
यस्तु प्राणपरित्यागं कुर्यात्तत्र नराधिप॥ २३॥
अक्षयं मोदते कालं यावच्चन्द्रदिवाकरौ।
नर्मदातटमाश्रित्य ये च तिष्ठन्ति मानवाः॥ २४॥
ते मृताः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा।

राजेन्द्र! इस तीर्थ के बाद उत्तम पिङ्गलेश्वर में जाना चाहिये। वहाँ एक दिन-रात का उपवास करने से त्रिरात्र (यज्ञ या उपवास) का फल प्राप्त होता है। उस तीर्थ में जो कपिला गौ का दान करता है, वह उस गौ तथा उसके कुल में उत्पन्न सन्तानों के शरीरों पर जितने रोम होते हैं, उतने ही हजार वर्ष पर्यन्त रुद्रलोक में प्रतिष्ठित होता है। हे नराधिप! वहाँ जो प्राणों का त्याग करता है, वह जब तक सूर्य-चन्द्रमा हैं, तब तक अक्षय आनन्द प्राप्त करता है। जो मनुष्य नर्मदा के तट का आश्रय ग्रहण कर वास करते हैं, वे मृत्यु पश्चात् स्वर्ग प्राप्त करते हैं, जैसे कि पुण्यवान् संत।

ततो दीप्तेश्वरं गच्छेद्व्यासतीर्थं तपोवनम्॥ २५॥
निवर्तिता पुरा तत्र व्यासभीता महानदी।
हुंकारिता तु व्यासेन दक्षिणेन ततो गता॥ २६॥
प्रदक्षिणन्तु यः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे युधिष्ठिर।
प्रीतस्तत्र भवेद्व्यासो वाञ्छितं लभते फलम्॥ २७॥

तदनन्तर दीप्तेश्वर नामक व्यासतीर्थ में जाना चाहिए, जो उनके तपोवन में स्थित है। प्राचीन काल में वहाँ व्यासजी से भयभीत होकर महानदी (नर्मदा) लौट गई गयी थी और व्यास के द्वारा हुंकार किये जाने पर वहाँ से दक्षिण की ओर मुड़ गयी। हे युधिष्ठिर! उस तीर्थ में जो प्रदक्षिणा करता है, व्यासजी प्रसन्न होकर उसे वाञ्छित फल प्रदान करते हैं।

ततो गच्छेत राजेन्द्र इक्षुनद्यास्तु संगमम्।
त्रैलोक्यविश्रुतं पुण्यं तत्र सन्निहितः शिवः॥ २८॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन् गाणपत्यमवाप्नुयात्।

राजेन्द्र! तदनन्तर तीनों लोक में प्रख्यात एवं पवित्र इक्षु नदी के संगम पर जाना चाहिये, जहाँ सदा शिव का वास है। हे राजन्! वहाँ मनुष्य स्नानकर (शिव का) गाणपत्य-पद प्राप्त करता है।

स्कन्दतीर्थं ततो गच्छेत् सर्वपापप्रणाशनम्॥ २९॥
आजन्मनः कृतं पापं स्नातस्तत्र व्यपोहति।
तत्र देवाः सगन्धर्वा भर्गात्मजमनुत्तमम्॥ ३०॥
उपासते महात्मानं स्कन्दं शक्तिधरं प्रभुम्।

इसके पश्चात् स्कन्दतीर्थ में जाना चाहिए। यह तीर्थ समस्त पापों का नाश करने वाला है। वहां स्नान कर लेने पर संपूर्ण जन्म के पाप दूर हो जाते हैं। वहाँ गन्धर्वों सहित देवगण शंकरजी के पुत्र, श्रेष्ठ महात्मा, शक्ति नामक अस्त्रधारी प्रभु स्कन्द की उपासना करते हैं।

ततो गच्छेदांगिरसं स्नानं तत्र समाचरेत्॥ ३१॥
गो-सहस्रफलं प्राप्य रुद्रलोकं स गच्छति।

तदनन्तर आङ्गिरस तीर्थ में जाकर स्नान करना चाहिए। वहाँ स्नान करने वाला एक हजार गौ-दान का फल प्राप्त कर रुद्रलोक में जाता है।

आङ्गिरा यत्र देवेशं ब्रह्मपुत्रो वृषध्वजम्॥ ३२॥
तपसाराध्य विश्वेशं लब्धवान्योगमुत्तमम्।
कुशतीर्थं ततो गच्छेत्सर्वपापप्रणाशनम्॥ ३३॥

तत्र स्नानं प्रकुर्वीत अश्वमेधफलं लभेत्।

वहाँ ब्रह्माजी के पुत्र (महर्षि) अङ्गिरा ने तपस्या के द्वारा देवेश वृषभध्वज विश्वेश्वर की आराधना करके उत्तम योग प्राप्त किया था। तदनन्तर समस्त पापों का नाश करने वाले कुशतीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ स्नान करने से व्यक्ति अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है।

कोटितीर्थं ततो गच्छेत्सर्वपापप्रणाशनम्॥ ३४॥
आजन्मनः कृतं पापं स्नातस्तत्र व्यपोहति।

इसके पश्चात् सर्वपापनाशक कोटितीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ स्नान कर मनुष्य संपूर्ण जन्म के पापों को दूर कर लेता है।

चन्द्रभागां ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत्॥ ३५॥
स्नातमात्रो नरस्तत्र सोमलोके महीयते।

तदुपरान्त चन्द्रभागा नदी में स्नान करना चाहिये। वहाँ स्नानमात्र से ही मनुष्य सोमलोक में महान् आदर प्राप्त करता है।

नर्मदादक्षिणे कूले सङ्गमेश्वरमुत्तमम्॥ ३६॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन्सर्वयज्ञफलं लभेत्।
नर्मदाया उत्तरे कूले तीर्थं परमशोभनम्॥ ३७॥
आदित्यायतनं सम्यमीश्वरेण तु भाषितम्।
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र दत्त्वा दानन्तु शक्तितः॥ ३८॥
तस्य तीर्थप्रभावेण लभते चाक्षयं फलम्।
दरिद्रा व्याधिता ये तु ये तु दुष्कृतकर्मिणः॥ ३९॥
मुच्यन्ते सर्वपापेभ्यः सूर्यलोकं प्रयान्ति च।

राजन्! नर्मदा के दक्षिणी तट पर उत्तम संगमेश्वर (तीर्थ) है। वहाँ स्नान करके मनुष्य सभी यज्ञों का फल प्राप्त कर लेता है। इसी तरह नर्मदा के उत्तरी तट पर आदित्यायन नामक तीर्थ है जिसे स्वयं ईश्वर ने भी रमणीय कहा है। राजेन्द्र! वहाँ स्नानकर यथाशक्ति दान करने पर उस तीर्थ के प्रभाव से अक्षय फल मिलता है तथा जो लोग दरिद्र और व्याधियुक्त तथा जो दुष्ट कर्म करने वाले हैं, वे सभी पापों से मुक्त होकर सूर्यलोक को जाते हैं।

मातृतीर्थं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत्॥ ४०॥
स्नातमात्रो नरस्तत्र स्वर्गलोकमवाप्नुयात्।
ततः पश्चिमतो गच्छेन्मरुतालयमुत्तमम्॥ ४१॥
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र शुचिर्भूत्वा समाहितः।
काञ्चनञ्च यतेर्द्द्याद्यथाविभवविस्तरम्॥ ४२॥
पुष्पकेण विमानेन वायुलोकं स गच्छति।

तदनन्तर मातृतीर्थ में जाना चाहिए और वहाँ स्नान करना चाहिये। वहाँ स्नानमात्र से ही मनुष्य स्वर्गलोक प्राप्त कर लेता है। इसके पश्चात् पश्चिम की ओर स्थित श्रेष्ठ वायु के स्थान में जाना चाहिये। राजेन्द्र! वहाँ स्नान करके प्रयत्नपूर्वक पवित्र होकर अपनी वैभव के अनुकूल द्विज को स्वर्ण प्रदान करना चाहिये। ऐसा करने वाला मनुष्य पुष्पक-विमान के द्वारा वायुलोक में जाता है।

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र अहल्यातीर्थमुत्तमम्।
स्नानमात्रादप्सरोभिर्मोदते कालमुत्तमम्॥ ४३॥

राजेन्द्र! तदनन्तर श्रेष्ठ अहल्यातीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ स्नान मात्र से मनुष्य उत्तमकाल पर्यन्त अप्सराओं के साथ आनन्द करता है।

चैत्रमासे तु सम्प्राप्ते शुक्लपक्षे त्रयोदशी।
कामदेवदिने तस्मिन्नहल्यां पूजयेत्ततः॥ ४४॥
यत्र तत्र समुत्पन्नो नरोऽत्यर्थप्रियो भवेत्।
स्त्रीवल्लभो भवेच्छ्रीमान्कामदेव इवापरः॥ ४५॥

चैत्रमास में शुक्लपक्ष की त्रयोदशी जो कामदेव का दिन है, इस अहल्यातीर्थ में जो मनुष्य अहल्या की पूजा करता है, वह जहाँ कहीं भी उत्पन्न हुआ हो, वह श्रेष्ठ तथा सबका प्रिय होता है और विशेषकर स्त्रियों को प्रिय लगने वाला, शोभायुक्त लक्ष्मीवान् तथा रूप से दूसरे कामदेव के समान हो जाता है।

सरिद्वरां समासाद्य तीर्थं शक्रस्य विश्रुतम्।
स्नातमात्रो नरस्तत्र गोसहस्रफलं लभेत्॥ ४६॥

इसी उत्तम नदी के किनारे इन्द्र के प्रसिद्ध शक्रतीर्थ है। वहां आकर स्नान करके मनुष्य हजार गोदान का फल प्राप्त करता है।

सोमतीर्थं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत्।
स्नातमात्रो नरस्तत्र सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ४७॥
सोमग्रहे तु राजेन्द्र पापक्षयकरं भवेत्।
त्रैलोक्यविश्रुतं राजन्सोमतीर्थं महाफलम्॥ ४८॥

तदनन्तर सोमतीर्थ में जाकर वहाँ स्नान करना चाहिये। केवल स्नानमात्र से ही मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है। हे राजेन्द्र! जिस समय चन्द्रग्रहण हो उस समय (वहां स्नान करने से) विशेषकर पापों का क्षय करने वाला होता

है। हे राजन्! तीनों लोकों में विख्यात सोमतीर्थ महान् फल देने वाला है।

यस्तु चान्द्रायणञ्कुर्यात्तत्र तीर्थे समाहित:।
सर्वपापविशुद्धात्मा सोमलोकं स गच्छति॥ ४९॥
अग्निप्रवेशं य: कुर्यात्सोमतीर्थे नराधिप।
जले चानशनं वापि नासौ मर्त्यो हि जायते॥ ५०॥

उस तीर्थ में जो एकाग्र-मन से चान्द्रायणव्रत करता है, वह समस्त पापों से मुक्त विशुद्धात्मा होकर सोमलोक को जाता है। हे नराधिप! जो सोमतीर्थ में अग्निप्रवेश, जलप्रवेश अथवा अनशन करता है, वह मृत्यु पश्चात् पुन: उत्पन्न नहीं होता।

स्तम्भतीर्थं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत्।
स्नातमात्रो नरस्तत्र सोमलोके महीयते॥ ५१॥

तदनन्तर स्तम्भतीर्थ में जाकर वहाँ स्नान करना चाहिये। वहाँ स्नानमात्र से मनुष्य सोमलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है अर्थात् पूजित होता है।

ततो गच्छेत राजेन्द्र विष्णुतीर्थमनुत्तमम्।
योधीपुरमिति ख्यातं विष्णुस्थानमनुत्तमम्॥ ५२॥
असुरा योधितास्तत्र वासुदेवेन कोटिश:।
तत्र तीर्थं समुत्पन्नं विष्णुश्रीको भवेदिह॥ ५३॥
अहोरात्रोपवासेन ब्रह्महत्यां व्यपोहति।

राजेन्द्र! तदनन्तर परम उत्तम विष्णुतीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ योधनीपुर नामक विष्णु का श्रेष्ठ स्थान है। वहाँ वासुदेव के साथ करोड़ों असुरों ने युद्ध किया था (और असुरों का संहार किया था)। अत: वहाँ विष्णुतीर्थ उत्पन्न हुआ। जो मनुष्य उस तीर्थ का सेवन करता है, वह विष्णु के समान शोभासम्पन्न होता है। वहाँ एक अहोरात्र उपवास करने से ब्रह्महत्या दूर हो जाती है।

नर्मदादक्षिणे कूले तीर्थं परमशोभनम्॥ ५४॥
कामतीर्थमिति ख्यातं यत्र कामोऽर्चयेद्धरिम्।
तस्मिंस्तीर्थे नर: स्नात्वा उपवासपरायण:॥ ५५॥
कुसुमायुधरूपेण रुद्रलोके महीयते।

नर्मदा के दक्षिणी तट पर एक परम सुन्दर तीर्थ है, जो कामतीर्थ नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ पर कामदेव ने शंकर की आराधना की थी। उस तीर्थ में स्नानकर जो उपवासपरायण रहता है, वह कामदेव के समान रूपवान् होकर रुद्रलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है।

ततो गच्छेत राजेन्द्र ब्रह्मतीर्थमनुत्तमम्॥ ५६॥
उमाहकमिति ख्यातं तत्र सन्तर्पयेत्पितॄन्।
पौर्णमास्याममावास्यां श्राद्धङ्कुर्याद्यथाविधि॥ ५७॥
गजरूपा शिला तत्र तोयमध्ये व्यवस्थिता।
तस्मिंस्तु दापयेत्पिण्डान्वैशाखे तु समाहित:॥ ५८॥
स्नात्वा समाहितमना दम्भमात्सर्यवर्जित:।
तृप्यन्ति पितरस्तस्य यावत्तिष्ठति मेदिनी॥ ५९॥

राजेन्द्र! तदनन्तर उत्तम ब्रह्मतीर्थ में जाना चाहिये। वह तीर्थ 'उमाहक' इस नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ पितरों का तर्पण करना चाहिये। पूर्णिमा तथा अमावास्या को विधिपूर्वक श्राद्ध करना चाहिये। वहाँ जल के मध्य हाथी के आकार की गजशिला स्थित है। उस शिला पर भी वैशाख मास की पूर्णिमा को स्नान के अनन्तर दम्भ तथा मात्सर्य से रहित होकर एकाग्रचित्त से पिण्डदान करना चाहिये। इससे पिण्डदाता के पितर जब तक पृथ्वी रहती है, तब तक तृप्त रहते हैं।

विश्वेश्वरं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत्।
स्नातमात्रो नरस्तत्र गाणपत्यपदं लभेत्॥ ६०॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र लिङ्गो यत्र जनार्दन:।
तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या विष्णुलोके महीयते॥ ६१॥

इसके बाद विश्वेश्वर तीर्थ में जाकर वहाँ स्नान करना चाहिये। वहाँ स्नानमात्र करने से मनुष्य, शिव का गाणपत्य पद प्राप्त करता है। राजेन्द्र! तदनन्तर जहाँ जनार्दन स्वयं लिङ्ग रूप में प्रतिष्ठित हैं, उस तीर्थ में जाना चाहिये। राजेन्द्र! वहाँ स्नान करने से विष्णुलोक में आदर प्राप्त करता है।

यत्र नारायणो देवो मुनीनां भावितात्मनाम्।
स्वात्मानं दर्शयामास लिङ्गं तत्परमं पदम्॥ ६२॥

यहां पर नारायण देव ने भक्तिपूर्ण मन वाले मुनियों को अपना स्वरूप का लिङ्गरूप में दर्शन कराया था। इस कारण यह लिङ्ग तीर्थ परम पद विष्णुधाम ही है।

अकोल्लन्तु ततो गच्छेत्सर्वपापविनाशनम्।
स्नानं दानञ्च तत्रैव ब्राह्मणानाञ्च भोजनम्॥ ६३॥
पिण्डप्रदानञ्च कृतं प्रेत्यानन्तफलप्रदम्।
त्रियम्बकेन तोयेन चरुकं श्रपयेद्द्विज:॥ ६४॥
अकोल्लमूले दद्याच्च पिण्डांश्चैव यथाविधि।
तारिता: पितरस्तेन तृप्यन्त्याचन्द्रतारकम्॥ ६५॥

तदनन्तर समग्र पापों का नष्ट करने वाले अकोल्ल तीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ पर किया गया स्नान, दान, ब्राह्मण-भोजन तथा पिण्डदान परलोक में अनन्त फल देने वाला होता है। जो त्रैयम्बक (त्र्यम्बक)[1] मन्त्र के द्वारा जल से चरु पकाकर उससे अंकोल (वृक्ष) के मूल में यथाविधि पिण्डदान करता है, उसके द्वारा तारे गये पितर जब तक चन्द्रमा तथा तारे वर्तमान हैं, तब तक तृप्त रहते हैं।

ततो गच्छेत राजेन्द्र तापसेश्वरमुत्तमम्।
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र प्राप्नुयात्तपस: फलम्॥ ६६॥

राजेन्द्र! तदनन्तर उत्तम तापसेश्वर (तीर्थ में) जाना चाहिये। राजेन्द्र! वहाँ स्नानमात्र करने से मनुष्य तपस्या का फल प्राप्त करता है।

शुक्लतीर्थं ततो गच्छेत्सर्वपापविनाशनम्।
नास्ति तेन समन्तीर्थं नर्मदायां युधिष्ठिर॥ ६७॥
दर्शनात्स्पर्शनात्तस्य स्नानाद्दानात्तपो जपात्।
होमाच्चैवोपवासाच्च शुक्लतीर्थे महत्फलम्॥ ६८॥
योजनन्तत्स्मृतं क्षेत्रं देवगन्धर्वसेवितम्।
शुक्लतीर्थमिति ख्यातं सर्वपापविनाशनम्॥ ६९॥

इसके पश्चात् सभी पापों का नाश करने वाले शुक्लतीर्थ में जाना चाहिये। हे युधिष्ठिर! नर्मदा में उसके समान कोई भी तीर्थ नहीं है। उस शुक्लतीर्थ में दर्शन करने, स्पर्श करने तथा वहाँ स्नान, दान, तप, जप, होम और उपवास करने से महान् फल की प्राप्ति होती है। इसका क्षेत्रफल एक योजन (चार कोश) का है। शुक्लतीर्थ इस नाम से विख्यात यह तीर्थ देवताओं तथा गन्धर्वों से सेवित है और समस्त पापों का नाश करने वाला है।

पादपाग्रेण दृष्टेन ब्रह्महत्यां व्यपोहति।
देव्या सह सदा भर्गस्तत्र तिष्ठति शङ्कर:॥ ७०॥
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां वैशाखे मासि सुव्रत।
लोकात्स्वकाद्विनिष्क्रम्य तत्र सन्निहितो हर:॥ ७१॥
देवदानवगन्धर्वा: सिद्धविद्याधरास्तथा।
गणाश्चाप्सरसो नागास्तत्र तिष्ठन्ति पुङ्गवा:॥ ७२॥

यहां पर (वट) वृक्ष के अग्रभाग को भी देखने से ब्रह्महत्या दूर हो जाती है, (क्योंकि) वहाँ देवी (पार्वती) के साथ शंकर सदा निवास करते हैं। सुव्रत! वैशाख मास में कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को वे हर अपने निजधाम से आकर वहां विराजमान होते हैं। (इतना ही नहीं) वहाँ श्रेष्ठ देवगण, दानव, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, अप्सराओं के समूह तथा नाग भी आते हैं।

रञ्जितं हि यथा वस्त्रं शुक्लं भवति वारिणा।
आजन्मजनितं पापं शुक्लतीर्थे व्यपोहति॥ ७३॥
स्नानं दानं तप: श्राद्धमनन्तं तत्र दृश्यते॥ ७४॥
शुक्लतीर्थात्परं तीर्थं न भविष्यति पावनम्।
पूर्वे वयसि कर्माणि कृत्वा पापानि मानव:।
अहोरात्रोपवासेन शुक्लतीर्थे व्यपोहति॥ ७५॥
कार्तिकस्य तु मासस्य कृष्णपक्षे चतुर्दशी।
घृतेन स्नापयेद्देवमुपोष्य परमेश्वरम्॥ ७६॥
एकविंशत्कुलोपेतो न च्यवेदीश्वरालयात्।
तपसा ब्रह्मचर्येण यज्ञैर्दानैर्वा पुन:॥ ७७॥
न तां गतिमवाप्नोति शुक्लतीर्थे तु यां लभेत्।

जिस प्रकार कोई वस्त्र (दाग-धब्बे से) रंजित हो, वह जल से (धोये जाने पर) स्वच्छ (मलरहित) हो जाता है, उसी प्रकार शुक्लतीर्थ में स्नान करने से जन्म से लेकर अब तक किये सब पाप दूर हो जाते हैं। वहाँ किया गया स्नान, दान, तप तथा श्राद्ध अक्षय फल देने वाला है। शुक्लतीर्थ-सा परम तीर्थ न कोई हुआ है, न होगा। मनुष्य पूर्व अवस्था में किये सब पापों को शुक्लतीर्थ में एक दिन-रात के उपवास से दूर कर देता है। कार्तिक मास में कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को उपवास रखकर परमेश्वर को घृत से स्नान कराना चाहिए। ऐसा करने से वह इक्कीस पीढ़ियों के साथ ईश्वर के लोक में वास करता हुआ कभी भी च्युत नहीं होता। शुक्लतीर्थ में जो गति प्राप्त होती है, वह तपस्या, ब्रह्मचर्य, यज्ञ अथवा दान से प्राप्त नहीं होती।

शुक्लतीर्थं महातीर्थमृषिसिद्धनिषेवितम्॥ ७८॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन्पुनर्जन्म न विन्दति।
अयने वा चतुर्दश्यां संक्रान्तौ विषुवे तथा॥ ७९॥
स्नात्वा तु सोपवास: सन्विजितात्मा समाहित:।
दानं दद्याद्यथाशक्ति प्रीयेतां हरिशङ्करौ॥ ८०॥
एतत्तीर्थप्रभावेण सर्वं भवति चाक्षयम्।

ऋषियों तथा सिद्धों से सेवित शुक्लतीर्थ महान् तीर्थ है। राजन्! वहाँ स्नान करके मनुष्य पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं करता। वहाँ अयन, चतुर्दशी, संक्रान्ति तथा विषुव (योग)

1. 'त्रियम्बकेन तोयेन' अर्थात् नर्मदा के जल से-ऐसा भी अर्थ कुछ लोग करते हैं।

में यथाशक्ति दान देना चाहिये। इससे विष्णु तथा शिव दोनों प्रसन्न होते हैं। इस तीर्थ के प्रभाव से सब कुछ अक्षय होता है।

अनाथं दुर्गतं विप्रं नाथवन्तमथापि वा॥ ८१॥
उद्वाहयति यस्तीर्थे तस्य पुण्यफलं शृणु।
यावत्तद्रोमसंख्या तु तत्प्रसूतिकुलेषु च॥ ८२॥
तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते।

इस तीर्थ में जो किसी अनाथ, दुर्गति को प्राप्त अथवा धनिक ब्राह्मण का भी विवाह कराता है, उससे जो पुण्य-फल प्राप्त होता है, उसे सुनो— उसके शरीर में तथा उसके कुल की संतानों के शरीर में जितने रोम होते हैं, उतने हजार वर्षों तक वह रुद्रलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है।

ततो गच्छेत राजेन्द्र यमतीर्थमनुत्तमम्॥ ८३॥
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां माघमासे युधिष्ठिर।
स्नानं कृत्वा नक्तभोजी न पश्येद्योनिसङ्कटम्॥ ८४॥

राजेन्द्र! तदनन्तर परम उत्तम यमतीर्थ में जाना चाहिये। हे युधिष्ठिर! माघमास में कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को इस यमतीर्थ में स्नान करके जो केवल रात्रि में भोजन करता है, वह गर्भ के संकट को कभी नहीं देखता है।

ततो गच्छेत राजेन्द्र एरण्डीतीर्थमुत्तमम्।
संगमे तु नरः स्नात्वा उपवासपरायणः॥ ८५॥
ब्राह्मणं भोजयेदेकं कोटिर्भवति भोजिता:।
एरण्डीसङ्गमे स्नात्वा भक्तिभावात्तु रञ्जितः॥ ८६॥
मृत्तिकां शिरसि स्थाप्य अवगाह्य च तज्जलम्।
नर्मदोदकसंमिश्रं मुच्यते सर्वकिल्बिषैः॥ ८७॥

राजेन्द्र! तदुपरान्त श्रेष्ठ एरण्डीतीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ नर संगम में स्नान कर उपवासपरायण रहते हुए जो एक ब्राह्मण को भोजन कराता है, तो उसे करोड़ों (ब्राह्मणों) को भोजन कराने का फल मिलता है। एरण्डी-संगम में स्नान करके भक्तिभाव से परिपूर्ण होकर वहाँ की मिट्टी मस्तक में लगाकर जो नर्मदा के जल से मिश्रित उस (एरण्डी-संगम) के जल में स्नान करता है, वह मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है।

ततो गच्छेत राजेन्द्र तीर्थङ्कल्लोलकेश्वरम्।
गंगावतरते तत्र दिने पुण्ये न संशयः॥ ८८॥
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च दत्त्वा चैव यथाविधि।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते॥ ८९॥

हे राजेन्द्र! इसके पश्चात् कल्लोलकेश्वर तीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ पुण्य (पर्व) दिन में निश्चित रूप से गङ्गा अवतरित होती है। वहाँ स्नान, आचमन और विधिपूर्वक दान देने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त होकर ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है।

नन्दितीर्थं ततो गच्छेत्तत्र स्नानं समाचरेत्।
प्रीयते तत्र नन्दीशः सोमलोके महीयते॥ ९०॥

तदनन्तर नन्दितीर्थ में जाकर स्नान करना चाहिये। ऐसा करने वाला नन्दीश्वर को प्रसन्न करता है और वह सोमलोक में महान् आदर प्राप्त करता है।

ततो गच्छेत राजेन्द्र तीर्थं त्वनरकं शुभम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्नरकं नैव पश्यति॥ ९१॥
तस्मिंस्तीर्थे तु राजेन्द्र स्वान्यस्थीनि विनिक्षिपेत्।
रूपवाञ्जायते लोके धनभोगसमन्वितः॥ ९२॥

हे राजेन्द्र! इसके आगे शुभ अनरक नामक तीर्थ में जाना चाहिये। राजन्! वहाँ स्नान करके मनुष्य कभी नरक को नहीं देखता। राजेन्द्र! उस शुभतीर्थ में अपने सम्बन्धियों का अस्थियों का विसर्जन करना चाहिए। ऐसा करने से वह जन्मान्तर में दिव्य रूपवान् एवं विविध धन-भोगों से सम्पन्न होता है।

ततो गच्छेत राजेन्द्र कपिलातीर्थमुत्तमम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्गोसहस्रफलं लभेत्॥ ९३॥
ज्येष्ठमासे तु सम्प्राप्ते चतुर्दश्यां विशेषतः।
तत्रोपोष्य नरो भक्त्या दत्त्वा दीपं घृतेन तु॥ ९४॥
घृतेन स्नापयेद्रुद्रं ततो वै श्रीफलं लभेत्।
घण्टाभरणसंयुक्तां कपिलां वै प्रदापयेत्॥ ९५॥
सर्वाभरणसंयुक्तः सर्वदेवनमस्कृतः।
शिवतुल्यबलो भूत्वा शिववत्क्रीडते सदा॥ ९६॥

हे राजेन्द्र! तदनन्तर उत्तम कपिलतीर्थ में जाना चाहिये। राजन्! वहाँ स्नानकर व्यक्ति हजार गोदान का फल प्राप्त करता है। ज्येष्ठ मास आने पर विशेषतः चतुर्दशी तिथि को वहाँ उपवास कर मनुष्य को भक्तिपूर्वक घृत का दीप-दान करना चाहिये। घृत से ही रुद्र का अभिषेक करना चाहिये, घृतयुक्त श्रीफल का हवन करना चाहिये और घंटा तथा आभरणों से सम्पन्न कपिला गौ का दान करना चाहिये। इससे मनुष्य सभी अलंकारों से युक्त, सभी देवताओं के लिये वन्दनीय और शिव के समान तुल्य शक्तिशाली होकर

चिरकाल तक शिव के समान क्रीडा करता है अर्थात् लोक में आनन्द अनुभव करता है।

अङ्गारकदिने प्राप्ते चतुर्थ्यां तु विशेषतः।
स्नापयित्वा शिवं दद्याद्ब्राह्मणेभ्यस्तु भोजनम्॥ ९८॥
सर्वदेवसमायुक्तो विमाने सर्वकामिके।
गत्वा शक्रस्य भवनं शक्रेण सह मोदते॥ ९८॥
ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो धृतिमान्भोगवान्भवेत्।

मंगलवार को विशेष रूप से चतुर्थी पड़ने पर यहां शिव का अभिषेक कर ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। ऐसा करने वाले मनुष्य सभी भोगों से युक्त होकर अपनी इच्छा से सर्वत्र अप्रतिहतगति एवं सभी प्रकार की सुविधाओं से परिपूर्ण विमानों के द्वारा इन्द्र के भवन में जाकर इन्द्र के साथ आनन्द भोग करते हैं। (वहां अवधि पूर्ण होने पर) स्वर्ग से च्युत होकर इस लोक में भी धनवान् और भोगवान् बनता है।

अङ्गारकनवम्यां तु अमावस्यां तथैव च॥ ९९॥
स्नापयेत्तत्र यत्नेन रूपवान्सुभगो भवेत्।

और भी, यदि मंगलवार को नवमी तिथि हो, अथवा अमावस्या हो, तो उस दिन भी वहाँ प्रयत्नपूर्वक शिवाभिषेक करने से व्यक्ति रूपवान् तथा सौभाग्यशाली होता है।

ततो गच्छेत राजेन्द्र गणेश्वरमनुत्तमम्॥ १००॥
श्रावणे मासि सम्प्राप्ते कृष्णपक्षे चतुर्दशी।
स्नातमात्रो नरस्तत्र रुद्रलोके महीयते॥ १०१॥
पितॄणां तर्पणं कृत्वा मुच्यते स ऋणत्रयात्।

हे राजेन्द्र! तदनन्तर सर्वोत्तम गणेश्वर (तीर्थ) में जाना चाहिये। श्रावण मास आने पर कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को वहाँ स्नानमात्र करने से मनुष्य रुद्रलोक में प्रतिष्ठित होता है और पितरों का तर्पण करने से तीनों (देव, ऋषि, मनुष्य) ऋणों से मुक्त हो जाता है।

गङ्गेश्वरसमीपे तु गंगावदनमुत्तमम्॥ १०२॥
अकामो वा सकामो वा तत्र स्नात्वा तु मानवः।
आजन्मजनितैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः॥ १०३॥

गणेश्वरतीर्थ के समीप श्रेष्ठ गङ्गावदन नामक तीर्थ है। वहाँ मनुष्य सकाम या निष्कामभाव से स्नान करता है, वह जन्म भर के किये हुए पापों से मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है।

तस्य वै पश्चिमे भागे समीपे नातिदूरतः।
दशाश्वमेधिकं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्॥ १०४॥
उपोष्य रजनीमेकां मासि भाद्रपदे शुभे।
अमावस्यां हरं स्नाप्य पूजयेद्वृषभध्वजम्॥ १०५॥
काञ्चनेन विमानेन किङ्किणीजालमालिना।
गत्वा रुद्रपुरं रम्यं रुद्रेण सह मोदते॥ १०६॥

पूर्वोक्त तीर्थ के पश्चिमी भाग में अति समीप में ही तीनों लोकों में विख्यात दशाश्वमेधिक नामक तीर्थ है। वहाँ शुभ भाद्रपद मास की अमावास्या को एक रात्रि का उपवास कर स्नानपूर्वक जो वृषभध्वज का पूजन करता है, वह किंकिणी के समूह से अलंकृत सोने के विमान से रमणीय रुद्रपुर में जाता है और वहाँ रुद्र के साथ आनन्दानुभव करता है।

सर्वत्र सर्वदिवसे स्नानं तत्र समाचरेत्।
पितॄणां तर्पणं कृत्वा चाश्वमेधफलं लभेत्॥ १०७॥

उसी तीर्थ में मनुष्य सर्वकाल सभी दिनों में स्नान करता है और पितरों का तर्पण करता है, तो उसे अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे नर्मदामाहात्म्ये
एकचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४१॥

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

(नर्मदा नदी के तीर्थों का माहात्म्य)

मार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत राजेन्द्र भृगुतीर्थमनुत्तमम्।
तत्र देवो भृगुः पूर्वं रुद्रमाराधयत्पुरा॥ १॥
दर्शनात्तस्य देवस्य सद्यः पापात्प्रमुच्यते।
एतत्क्षेत्रं सुविपुलं सर्वपापप्रणाशनम्॥ २॥

ऋषि मार्कण्डेय बोले— हे राजेन्द्र! पूर्वोक्त तीर्थों के अनन्तर सर्वोत्तम भृगुतीर्थ में जाना चाहिये। प्राचीन काल में यहाँ महर्षि भृगु ने भगवान् रुद्र की आराधना की थी। इसलिए वहां स्थित रुद्रदेव के दर्शन करने से तत्काल पाप से मुक्ति हो जाती है। यह क्षेत्र अतिशय विशाल तथा सभी पापों को नष्ट करने वाला है।

तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः।
उपानहौ तथा युग्मं देयमन्नञ्च काञ्चनम्॥ ३॥
भोजनं च यथाशक्ति तस्याप्यक्षयमुच्यते।
क्षरन्ति सर्वदानानि यज्ञदानं तपः क्रिया॥ ४॥

अक्षयं तत्तपस्तत्र भृगुतीर्थे युधिष्ठिर।

यहाँ (नर्मदा में) स्नान कर मनुष्य मरणोपरान्त स्वर्ग को जाते हैं और उनका पुनर्जन्म नहीं होता। इस भृगुतीर्थ में जाकर मनुष्य को दो पादुकाएँ तथा सोने का दान, या अन्न का दान करना चाहिये। यथाशक्ति भोजन भी कराना चाहिये। यह सब अनन्त फल देने वाला कहा गया है। हे युधिष्ठिर! सभी प्रकार के दान, यज्ञ, तप तथा कर्म क्षीण हो जाते हैं परन्तु भृगुतीर्थ में किया हुआ तप अक्षय होता है।

तस्यैव तपसोग्रेण रुद्रेण त्रिपुरारिणा॥ ५॥
सान्निध्यं तत्र कथितं भृगुतीर्थे युधिष्ठिर।

हे युधिष्ठिर! उन्हीं (महर्षि भृगु) की उग्र तपस्या से प्रसन्न होकर त्रिपुरारि रुद्र ने भृगुतीर्थ में स्वयं अपना सान्निध्य कहा था अर्थात् सदैव शिव का वहां वास रहेगा।

ततो गच्छेत राजेन्द्र गौतमेश्वरमुत्तमम्॥ ६॥
यत्राराध्य त्रिशूलाङ्कं गौतमः सिद्धिमाप्तवान्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्नुपवासपरायणः॥ ७॥
कांचनेन विमानेन ब्रह्मलोके महीयते।

राजेन्द्र! तदनन्तर उत्तम गौतमेश्वर (तीर्थ) में जाना चाहिये। जहाँ त्रिशूलधारी भगवान् शंकर की आराधना करके महर्षि गौतम ने सिद्धि प्राप्त की थी। हे राजन्! वहाँ (गौतमेश्वर तीर्थ में) स्नानकर उपवासपरायण होकर मनुष्य सोने के विमान द्वारा ब्रह्मलोक जाता है तथा वहाँ पूजित होता है।

वृषोत्सर्गं ततो गच्छेच्छाश्वतं पदमाप्नुयात्॥ ८॥
न जानन्ति नरा मूढा विष्णोर्मायाविमोहिताः।

तदुपरान्त मनुष्य को (नर्मदा के तट पर स्थित) वृषोत्सर्ग-तीर्थ जाना चाहिए। यह शाश्वत पद (मोक्ष) प्राप्त कराता है। विष्णु की माया से मोहित मूढ व्यक्ति इस तीर्थ के प्रभाव को नहीं जानते।

धौतपापं ततो गच्छेद्धौतं यत्र वृषेण तु॥ ९॥
नर्मदायां स्थितं राजन्सर्वपातकनाशनम्।
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥ १०॥
तत्र तीर्थे तु राजेन्द्र प्राणत्यागं करोति यः।
चतुर्भुजस्त्रिनेत्रश्च हरतुल्यबलो भवेत्॥ ११॥
वसेत्कल्पायुतं साग्रं शिवतुल्यपराक्रमः।
कालेन महता जातः पृथिव्यामेकराड् भवेत्॥ १२॥

इसके पश्चात् 'धौतपाप' नामक तीर्थ में जाना चाहिये, जहाँ स्वयं वृषनामधारी भगवान् धर्म ने अपना पाप धोया था। हे राजन्! यह तीर्थ भी नर्मदा तट पर स्थित है और सभी पापों का नाश करने वाला है। उस तीर्थ में स्नानकर मनुष्य ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता है। और भी, हे राजेन्द्र! उस तीर्थ में जो मृत्यु समय अपने प्राणों का त्याग करता है, वह चार भुजावाला, तीन नेत्रों वाला और शंकर के समान बलशाली हो जाता है। शिव के समान पराक्रमी होकर वह दस हजार कल्पों से भी अधिक समय तक शिवलोक में निवास करता है और बहुत समय के बाद वह पृथ्वी पर एक चक्रवर्ती राजा बनता है।

ततो गच्छेत राजेन्द्र हस्ततीर्थमनुत्तमम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्ब्रह्मलोके महीयते॥ १३॥
ततो गच्छेत राजेन्द्र यत्र सिद्धो जनार्दनः।
वराहतीर्थमाख्यातं विष्णुलोकगतिप्रदम्॥ १४॥

हे राजेन्द्र! उसके बाद श्रेष्ठ हस्ततीर्थ में जाना चाहिये। राजन्! वहाँ स्नान करके मनुष्य ब्रह्मलोक में महान् प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। राजेन्द्र! उसके बाद विष्णुलोक को गति देने वाले वराहतीर्थ नाम से प्रसिद्ध तीर्थ में जाना चाहिये, जहाँ जनार्दन ने सिद्धि प्राप्त की थी।

ततो गच्छेत राजेन्द्र चन्द्रतीर्थमनुत्तमम्।
पौर्णमास्यां विशेषेण स्नानं तत्र समाचरेत्॥ १५॥
स्नातमात्रो नरस्तत्र पृथिव्यामेकराड् भवेत्।

राजेन्द्र! तदनन्तर श्रेष्ठ चन्द्रतीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ विशेषरूप से पूर्णिमा के दिन स्नान करना चाहिये। वहाँ केवल स्नान करने से ही व्यक्ति चन्द्रलोक में पूजित होता है। राजेन्द्र! इसके पश्चात् अत्युत्तम कन्यातीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ (किसी मास की) शुक्लपक्ष की तृतीया को स्नान करना चाहिये। वहाँ स्नानमात्र करने से व्यक्ति पृथ्वी में एकमात्र सम्राट् होता है।

देवतीर्थं ततो गच्छेत्सर्वतीर्थनमस्कृतम्॥ १६॥
तत्र स्नात्वा च राजेन्द्र दैवतैः सह मोदते।

तदनन्तर सभी देवताओं से वन्दित देवतीर्थ में जाना चाहिये। राजेन्द्र! वहाँ स्नान करके मनुष्य देवताओं के साथ आनन्द प्राप्त करता है।

ततो गच्छेत राजेन्द्र शङ्खितीर्थमनुत्तमम्॥ १७॥
यत्तत्र दीयते दानं सर्वं कोटिगुणं भवेत्।
ततो गच्छेत राजेन्द्र तीर्थं पैतामहं शुभम्॥ १८॥

यत्तत्र दीयते श्राद्धं सर्वं तस्याक्षयं भवेत्।
सावित्रीतीर्थमासाद्य यस्तु प्राणान्परित्यजेत्॥ १९॥
विधूय सर्वपापानि ब्रह्मलोके महीयते।

राजेन्द्र! तदनन्तर श्रेष्ठ शंखितीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ जो कुछ दान दिया जाता है, वह सब करोड़ गुना फलवाला हो जाता है। राजेन्द्र! शुभ पैतामह तीर्थ में भी जाना चाहिये। वहाँ जो श्राद्ध किया जाता है, वह अक्षय (फलवाला) हो जाता है। सावित्रीतीर्थ में पहुँचकर जो प्राणों का परित्याग करता है, वह सभी पापों को धोकर ब्रह्मलोक में महिमा प्राप्त करता है।

मनोहरन्तु तत्रैव तीर्थं परमशोभनम्॥ २०॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन्रुद्रलोके महीयते।
ततो गच्छेत राजेन्द्र कन्यातीर्थमनुत्तमम्॥ २१॥
स्नात्वा तत्र नरो राजन्सर्वपापै: प्रमुच्यते।
शुक्लपक्षे तृतीयायां स्नानमात्रं समाचरेत्॥ २२॥
स्नातमात्रो नरस्तत्र पृथिव्यामेकराड् भवेत्।

वहाँ पर मनोहर नामक परम सुन्दर तीर्थ है। राजन्! वहाँ स्नानकर राजेन्द्र! मनुष्य रुद्रलोक में प्रतिष्ठित होता है। तदनन्तर उत्तम कन्यातीर्थ में जाना चाहिये। राजन्! वहाँ स्नान करके मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है। शुक्लपक्ष की तृतीया में केवल स्नान करना चाहिए। स्नान करने मात्र से ही मनुष्य पृथ्वी पर एकछत्र राजा हो जाता है।

स्वर्गबिन्दुं ततो गच्छेत्तीर्थं देवनमस्कृतम्॥ २३॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन्दुर्गतिं वै न पश्यति।
अप्सरेशं ततो गच्छेत्स्नानं तत्र समाचरेत्॥ २४॥
क्रीडते नाकलोकस्थो ह्यप्सरोभि: स मोदते।

तदुपरान्त देवताओं से नमस्कृत स्वर्गबिन्दु नामक तीर्थ में जाना चाहिये। हे राजन्! वहाँ स्नान करने से मनुष्य कभी भी दुर्गति को नहीं देखता। इसके बाद अप्सरेश-तीर्थ में जाये और वहाँ स्नान करें। इससे वह स्वर्गलोक में रहते हुए क्रीडा करता है और अप्सराओं के साथ आनन्द भोगता है।

ततो गच्छेत राजेन्द्र भारभूतिमनुत्तमम्॥ २५॥
उपोषितो यजेतेशं रुद्रलोके महीयते।
अस्मिंस्तीर्थे मृतो राजन्गाणपत्यमवाप्नुयात्॥ २६॥
कार्त्तिके मासि देवेशमर्चयेत्पार्वतीपतिम्।
अश्वमेधाद्दशगुणं प्रवदन्ति मनीषिण:॥ २७॥

हे राजेन्द्र! तदनन्तर उत्तम भारभूति नामक तीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ उपवास करते हुए ईश्वर की आराधना करने से मनुष्य रुद्रलोक में प्रतिष्ठित होता है। राजन्! इस तीर्थ में मृत्यु पाने वाला शिव के गाणपत्य-पद को प्राप्त करता है। (यहाँ) कार्तिक मास में पार्वतीपति देवताओं के ईश शंकर की पूजा करनी चाहिये। इसका फल मनीषी लोग अश्वमेध के फल से भी दस गुना अधिक बताते हैं।

वृषभं य: प्रयच्छेत तत्र कुन्देन्दुसमप्रभम्।
वृषयुक्तेन यानेन रुद्रलोकं स गच्छति॥ २८॥

जो व्यक्ति यहाँ कुन्दपुष्प तथा इन्दु (चन्द्रमा) के समान श्वेतवर्णवाले वृषभ का दान करता है, वह बैलों से जोते हुए वाहन पर चढ़कर रुद्रलोक में जाता है।

एतत्तीर्थं समासाद्य यस्तु प्राणान् परित्यजेत्।
सर्वपापविनिर्मुक्तो रुद्रलोकं स गच्छति॥ २९॥
जलप्रवेशं य: कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप।
हंसयुक्तेन यानेन स्वर्गलोकं स गच्छति॥ ३०॥

इस तीर्थ में पहुँचकर जो अपने प्राणों का त्याग करता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर रुद्रलोक में जाता है। हे नराधिप! इस तीर्थ में जो जल में प्रवेश करता है (और प्राण त्यागता है), वह हंसों से युक्त वाहन पर विराजमान होकर स्वर्गलोक जाता है।

एरण्ड्या नर्मदायास्तु सङ्गमं लोकविश्रुतम्।
तच्च तीर्थं महापुण्यं सर्वपापप्रणाशनम्॥ ३१॥
उपवासकृतो भूत्वा नित्यं व्रतपरायण:।
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र मुच्यते ब्रह्महत्यया॥ ३२॥

एरण्डी तथा नर्मदा का संगम स्थल लोक में विख्यात है। यह संगमरूपी तीर्थ महापुण्यमय और सभी पापों को नष्ट करने वाला है। इसलिए वहां उपवास करके नित्य व्रतपरायण होना चाहिए। वहां स्नान करने वाला व्यक्ति ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हो जाता है।

ततो गच्छेत राजेन्द्र नर्मदोदधिसङ्गमम्।
जमदग्निमिति ख्यातं सिद्धो यत्र जनार्दन:॥ ३३॥
तत्र स्नात्वा नरो राजन्नर्मदोदधिसंगमे।
त्रिगुणञ्चाश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानव:॥ ३४॥

राजेन्द्र! तदनन्तर नर्मदा और सागर के संगम-स्थल में जाना चाहिये जो जमदग्नि तीर्थ रूप में विख्यात है। जहां जनार्दन विष्णु सिद्ध हुए थे। राजन्! वहाँ नर्मदा तथा सागर के संगम में स्नान करने से मनुष्य अश्वमेध से भी अधिक तीन गुना फल प्राप्त करता है।

तततो गच्छेत राजेन्द्र पिंगलेश्वरमुत्तमम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्ब्रह्मलोके महीयते॥ ३५॥
तत्रोपवासं यः कृत्वा पश्येत पिंगलेश्वरम्।
सप्तजन्मकृतं पापं हित्वा याति शिवालयम्॥ ३६॥

राजेन्द्र! इन सबके बाद उत्तम पिङ्गलेश्वर तीर्थ में जाना चाहिये। राजन्! वहाँ स्नान करके मनुष्य ब्रह्मलोक में पूजित होता है। जो वहाँ उपवास करके पिंगलेश्वर का दर्शन करता है, वह सात जन्मों में किये पापों से मुक्त होकर शिवलोक में जाता है।

ततो गच्छेत राजेन्द्र अलितीर्थमनुत्तमम्।
उपोष्य रजनीमेकां नियतो नियताशनः॥ ३७॥
अस्य तीर्थस्य माहात्म्यान्मुच्यते ब्रह्महत्यया।

राजेन्द्र! वहाँ से उत्तम अलिका-तीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ एक रात्रि उपवास करके संयत रहते हुए नियमपूर्वक सात्त्विक आहार करने से इस तीर्थ के माहात्म्य के कारण ब्रह्महत्या (के पाप) से मुक्त हो जाता है।

एतानि तव संक्षेपात्प्राधान्यात्कथितानि च॥ ३८॥
न शक्या विस्तराद्वक्तुं संख्या तीर्थेषु पाण्डव।

हे पाण्डुपुत्र! मैंने जो ये तीर्थ कहे हैं वे संक्षेप में खास-खास ही बताये हैं। विस्तारपूर्वक इन नर्मदा-तीर्थों की संख्या का वर्णन नहीं किया जा सकता।

एषा पवित्रा विपुला नदी त्रैलोक्यविश्रुता॥ ३९॥
नर्मदा सरितां श्रेष्ठा महादेवस्य वल्लभा।
मनसा संस्मरेद्यस्तु नर्मदां वै युधिष्ठिर॥ ४०॥
चान्द्रायणशतं साग्रं लभते नात्र संशयः।

यह पवित्र तथा स्वच्छ जलवाली नर्मदा नदी तीनों लोकों में विख्यात है। नर्मदा सभी नदियों में श्रेष्ठ है और महादेव को अतिप्रिय है। युधिष्ठिर! जो मन से भी नर्मदा का स्मरण करता है, वह सौ चान्द्रायण व्रत करने से भी अधिक फल प्राप्त करता है, इसमें संशय नहीं है।

अश्रद्दधानाः पुरुषा नास्तिक्यं घोरमाश्रिताः॥ ४१॥
पतन्ति नरके घोर इत्याह परमेश्वरः।
नर्मदां सेवते नित्यं स्वयं देवो महेश्वरः।
तेन पुण्या नदी ज्ञेया ब्रह्महत्यापहारिणी॥ ४२॥

परन्तु जो श्रद्धाविहीन तथा घोर नास्तिकता का आश्रय लेते हैं वे भीषण नरक में गिरते हैं, ऐसा परमेश्वर शंकर ने कहा है। यह भी कि स्वयं देव महेश्वर सदा नर्मदा का सेवन करते हैं, अतः इस पवित्र नदी को पुण्यकारक जानना चाहिए जो ब्रह्महत्या जैसे पापों को दूर करने वाली है।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे नर्मदामाहात्म्ये
द्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४२॥

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

(नर्मदा नदी के तीर्थों का माहात्म्य)

सूत उवाच

इदं त्रैलोक्यविख्यातं तीर्थं नैमिषमुत्तमम्।
महादेवप्रियतरं महापातकनाशनम्॥ १॥
महादेवं दिदृक्षूणामृषीणां परमेष्ठिना।
ब्रह्मणा निर्मितं स्थानं तपस्तप्तुं द्विजोत्तमाः॥ २॥

सूतजी ने कहा— तीनों लोकों मे विख्यात यह उत्तम नैमिष नामक तीर्थ महादेव को परम प्रिय तथा महापातकों को नष्ट करने वाला है। द्विजोत्तमो! ब्रह्माजी ने इस स्थान का निर्माण महादेव का दर्शन करने की इच्छा वाले उन ऋषियों के लिये की है, जो वहाँ तपस्या करना चाहते हैं।

मरीचयोऽत्रयो विप्रा वसिष्ठाः क्रतवस्तथा।
भृगवोऽङ्गिरसः पूर्वं ब्रह्माणं कमलोद्भवम्॥ ३॥
समेत्य सर्ववरदं चतुर्मूर्तिं चतुर्मुखम्।
पृच्छन्ति प्रणिपत्यैनं विश्वकर्माणमव्ययम्॥ ४॥

ब्राह्मणो! यहां पर पूर्व काल में मरीचि, अत्रि, वसिष्ठ, क्रतु, भृगु तथा अंगिरा के वंश में उत्पन्न जो ऋषिगण थे, उन्होंने सभी प्रकार का वर देने वाले, कमलोद्भव, चतुर्मूर्ति, चतुर्मुख, अव्यय, विश्वकर्मा ब्रह्मा को प्रणाम कर उनसे पूछा—

षट्कुलीया ऊचुः

भगवन्देवमीशानं तमेवैकं कपर्दिनम्।
केनोपायेन पश्यामो ब्रूहि देव नमस्तव॥ ५॥

षट्कुलोत्पन्न ऋषियों ने पूछा— हे भगवन्! हे देव! हम किस उपाय से अद्वितीय तेजस्वी, कपर्दी, ईशान देव का दर्शन करें (यह बताने की कृपा करें)।

ब्रह्मोवाच

सत्रं सहस्रमासध्वं वाङ्मनोदोषवर्जिताः।
देशञ्च वः प्रवक्ष्यामि यस्मिन्देशे चरिष्यथ॥ ६॥

मुक्त्वा मनोमयं चक्रं संसृष्ट्वा तानुवाच ह।
क्षिप्तमेतन्मया चक्रमनुव्रजत मा चिरम्॥७॥

ब्रह्मा ने कहा— आप सब वाणी तथा मन के दोषों से रहित होकर हजार यज्ञविशेष-सत्र सम्पन्न करें। मैं वह स्थान आप लोगों को बताता हूँ, जहाँ आप यज्ञ करेंगे। ऐसा कहकर ब्रह्माजी ने एक मनोमय चक्र का निर्माण करके उन (ऋषियों) से कहा— मेरे द्वारा छोड़े गये इस चक्र का आप लोग शीघ्र ही पीछा करें।

यत्रास्य नेमिः शीर्येत स देशस्तपसः शुभः।
ततो मुमोच तच्चक्रं ते च तत्समनुव्रजन्॥८॥
तस्य वै व्रजतः क्षिप्रं यत्र नेमिरशीर्यत।
नैमिषं तत् स्मृतं नाम्ना पुण्यं सर्वत्र पूजितम्॥९॥
सिद्धचारणसंपूर्णं यक्षगन्धर्वसेवितम्।
स्थानं भगवतः शंभोरेतन्नैमिषमुत्तमम्॥१०॥

जिस स्थान पर इस (चक्र) की नेमि शीर्ण होगी (गिरकर टूटेगी) वहीं स्थान तपस्या एवं यज्ञ करने का शुभ स्थान होगा। तब ब्रह्मा ने उस (मनोमय) चक्र को छोड़ा और ऋषि भी उस चक्र के पीछे-पीछे जाने लगे। शीघ्र गति से जा रहे उस चक्र की नेमि जहाँ (शीर्ण हुई) गिरी, वह स्थल नैमिश नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह पवित्र तथा सर्वत्र पूजित हुआ। सिद्धों तथा चारणों से परिपूर्ण, यक्षों-गन्धर्वों से सेवित यह उत्तम नैमिष भगवान् शम्भु का स्थान है।

अत्र देवाः सगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः।
तपस्तप्त्वा पुरा देवा लेभिरे प्रवरान्वरान्॥११॥
इमं देशं समाश्रित्य षट्कुलीयाः समाहिताः।
सत्रेणाराध्य देवेशं दृष्टवन्तो महेश्वरम्॥१२॥

प्राचीन काल में यहाँ पर तपस्या करके देवताओं, गन्धर्वों, यक्षों, नागों और राक्षसों ने श्रेष्ठ वरों को प्राप्त किया था। पूर्वोक्त (मरीचि आदि छः कुलों के ऋषियों ने इस देश में रहते हुए एकाग्रतापूर्वक यज्ञानुष्ठान द्वारा देवेश की आराधना कर महेश्वर का दर्शन किया था।

अत्रदानं तपस्तप्तं श्राद्धयागादिकञ्च यत्।
एकैकं नाशयेत्पापं सप्तजन्मकृतं तथा॥१३॥

द्विजो! यहाँ पर किया गया अन्नदान, तप, श्राद्ध-याग आदि कोई भी शुभ कर्म अकेले ही सात जन्मों के पापों को नष्ट कर देता है।

अत्र पूर्वं स भगवानृषीणां सत्रमासताम्।
स वै प्रोवाच ब्रह्माण्डं पुराणं ब्रह्मभावितम्॥१४॥
अत्र देवो महादेवो रुद्राण्या किल विश्वदृक्।
रमतेऽद्यापि भगवान्प्रमथैः परिवारितः॥१५॥

यहीं पर प्राचीन काल में यज्ञ करके बैठे हुए उन ऋषियों को भगवान् शंकर ने ब्रह्म-परमेश्वर की भावना से भावित ब्रह्माण्ड पुराण को सुनाया था। आज भी वहीं विश्व की सृष्टि करने वाले भगवान् महादेव प्रमथगणों के परिवार से युक्त होकर रुद्राणी के साथ रमण करते हैं।

अत्र प्राणान् परित्यज्य नियमेन द्विजातयः।
ब्रह्मलोकं गमिष्यन्ति यत्र गत्वा न जायते॥१६॥

इस क्षेत्र में नियमपूर्वक यहाँ वास करते हुए द्विजाति के लोग प्राणों का त्याग करते हैं, वे उस ब्रह्मलोक में जाते हैं, जहाँ जाकर पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता।

अन्यच्च तीर्थप्रवरं जाप्येश्वरमितिश्रुतम्।
जजाप रुद्रमनिशं यत्र नन्दी महागणः॥१७॥
प्रीतस्तस्य महादेवो देव्या सह पिनाकधृक्।
ददावात्मसमानत्वं मृत्युवञ्चनमेव च॥१८॥

एक दूसरा तीर्थों में श्रेष्ठ तीर्थ है, जो जाप्येश्वर नाम से प्रसिद्ध है, जहाँ महान् गण नन्दी निरन्तर रुद्रस्तोत्र का जप करते रहते थे। इससे प्रसन्न होकर पिनाकपाणि रुद्र-महादेव देवी के साथ प्रत्यक्ष हुए थे और उन्होंने नन्दी को अपनी समानता तथा मृत्यु से रहितत्व का वर प्रदान किया था।

अभूदृषिः स धर्मात्मा शिलादो नाम धर्मवित्।
आराधयन्महादेवं प्रसादार्थं वृषध्वजम्॥१९॥
तस्य वर्षसहस्रान्ते तप्यमानस्य विश्वधृक्।
शर्वः सोमो गणवृतो वरदोऽस्मीत्यभाषत॥२०॥

(इस नन्दी के प्रादुर्भाव की कथा इस प्रकार है) शिलाद नाम के एक धर्मज्ञ धर्मात्मा ऋषि हुए, उन्होंने पुत्र प्राप्ति के लिये (इसी क्षेत्र में) वृषभध्वज महादेव की आराधना की। ऐसा तप करते हुए उनके हजार वर्ष व्यतीत हो गये। तब अन्त में वे विश्वभर्ता शर्व शिव ने अपने गणों के साथ वहां प्रकट होकर 'मैं वर दूँगा' ऐसा कहा।

स वव्रे वरमीशानं वरेण्यं गिरिजापतिम्।
अयोनिजं मृत्युहीनं याचे पुत्रं त्वया समम्॥२१॥
तथास्त्वित्याह भगवान्देव्या सह महेश्वरः।
पश्यतस्तस्य विप्रर्षेरन्तर्द्धानं गतो हरः॥२२॥

उस (शिलाद ऋषि) ने भी वरेण्य गिरिजापति ईशान से वर माँगा कि मुझे आप मृत्यु से रहित अपने ही समान

अयोनिज पुत्र प्रदान करें। देवी पार्वती के साथ भगवान् महेश्वर ने 'ऐसा ही हो' कहा और उन विप्रर्षि के देखते-देखते वे अन्तर्धान हो गये।

ततो युयोज तां भूमिं शिलादो धर्मवित्तमः।
चकर्ष लांगलेनोर्वीं भित्त्वादृश्यत शोभनः॥ २३॥
संवर्त्तकोऽनलप्रख्यः कुमारः प्रहसन्निव।
रूपलावण्यसम्पन्नस्तेजसा भासयन्दिशः॥ २४॥
कुमारतुल्योऽप्रतिमो मेघगम्भीरया गिरा।
शिलादं तात तातेति प्राह नन्दी पुनः पुनः॥ २५॥
तं दृष्ट्वा नन्दनं जातं शिलादः परिषस्वजे।
मुनीनां दर्शयामास तत्राश्रमनिवासिनाम्॥ २६॥

तदनन्तर धर्मवेत्ता शिलाद ने उस भूमि को यज्ञ करने की इच्छा से हल द्वारा जोता। पृथ्वी का भेदन करने पर उन्होंने संवर्तक नामक अग्नि के समान, रूप तथा लावण्य से सम्पन्न और अपने तेज से दिशाओं को प्रकाशित करने वाले, हँसते हुए एक सुन्दर कुमार को देखा। वह कुमार कार्तिकेय के समान अनुपम था, उसने मेघ-सदृश गम्भीर वाणी में शिलाद को बार-बार 'तात' 'तात' ऐसा कहा, अतः वह 'नन्दी' (आनन्द देने वाला) इस नाम से विख्यात हुआ। उस आनन्ददायी पुत्र को आविर्भूत देखकर शिलाद ने उसका आलिंगन किया और उस आश्रम में रहने वाले मुनियों को उसे दिखाया।

जातकर्मादिकाः सर्वाः क्रियास्तस्य चकार ह।
उपनीय यथाशास्त्रं वेदमध्यापयत् स्वयम्॥ २७॥
अधीतवेदो भगवान्नन्दी मतिमनुत्तमाम्।
चक्रे महेश्वरं दृष्ट्वा जेष्ये मृत्युमिव प्रभुम्॥ २८॥

अनन्तर ऋषि ने नन्दी के जातकर्म आदि सभी संस्कार किये और शास्त्रविधि से उपनयन-संस्कार कर वेद पढ़ाया। वेदाध्ययन के अनन्तर भगवान् नन्दी ने एक उत्तम विचार किया कि प्रभु महेश्वर का दर्शनकर मैं मृत्यु को जीतूँगा।

स गत्वा सागरं पुण्यमेकाग्रः श्रद्धयान्वितः।
जजाप रुद्रमनिशं महेशासक्तमानसः॥ २९॥
तस्य कोट्यां तु पूर्णायां शङ्करो भक्तवत्सलः।
आगतः सर्वसगणो वरदोऽस्मीत्यभाषत॥ ३०॥

ऐसा निश्चय करके वे सागर के पवित्र तट पर जाकर एकाग्र तथा श्रद्धायुक्त होकर निरन्तर महेश्वर में मन को आसक्त करके रुद्रस्तोत्र का जप करना प्रारम्भ कर दिया। उनके द्वारा एक करोड़ जप की संख्या पूर्ण होने पर भक्तवत्सल शंकर ने अपने गणों तथा पार्वती के साथ वहाँ आये और बोले- 'मैं वर देने के लिए तत्पर हूँ'।

स वव्रे पुनरेवेशं जपेयं कोटिमीश्वरम्।
भवदाह महादेव देहीति परमेश्वरम्॥ ३१॥
एवमस्त्विति संप्रोच्य देवोऽप्यन्तरधीयत।

तब नन्दी ने (वर माँगते हुए) कहा— महादेव! मैं पुनः ईश्वर का एक करोड़ जप करना चाहता हूँ, आप मुझे उतनी ही आयु मुझे प्राप्त हो, ऐसा वरदान दें। तब विश्वात्मा शंकर 'ऐसा ही हो' कहकर देवी पार्वती सहित अन्तर्धान हो गये।

जजाप कोटिं भगवान् भूयस्तद्गतमानसः॥ ३२॥
द्वितीयायाञ्च कोट्यां वै पूर्णायाञ्च वृषध्वजः।
आगत्य वरदोऽस्मीति प्राह भूतगणैर्वृतः॥ ३३॥
तृतीयाञ्जप्तुमिच्छामि कोटिं भूयोऽपि शङ्कर।
तथास्त्वित्याह विश्वात्मा देव्या चान्तरधीयत॥ ३४॥
कोटित्रयेऽथ सम्पूर्णे देवः प्रीतमनाभृशम्।
आगत्य वरदोऽस्मीति प्राह भूतगणैर्वृतः॥ ३५॥

तब पुनः भगवान् नन्दी ने शिवजी में मन एकाग्र करते हुए एक करोड़ की संख्या में जप किया। दो करोड़ जप पूरे हो जाने पर पुनः भूतगणों से आवृत वृषध्वज (शंकर) ने वहां आकर 'मैं वह प्रदान कता हूँ' ऐसा कहा। (तब नन्दी ने कहा-) प्रभु शंकर! मैं पुनः तीसरी बार एक करोड़ जप करना चाहता हूँ। 'ऐसा ही हो' कहकर विश्वात्मा देव पुनः अन्तर्धान हो गये। तीन करोड़ जप पूरा होने पर भूतगणों के साथ, अत्यन्त प्रसन्न मन होकर, देव (शंकर) ने वहाँ आकर कहा— 'मैं वर दूँगा'।

जपेयं कोटिमन्यां वै भूयोऽपि तव तेजसा।
इत्युक्ते भगवानाह न जप्तव्यं त्वया पुनः॥ ३६॥
अमरो जरया त्यक्तो मम पार्श्वे गतः सदा।
महागणपतिर्देव्याः पुत्रो भव महेश्वरः॥ ३७॥
योगेश्वरो महायोगी गणानामीश्वरेश्वरः।
सर्वलोकाधिपः श्रीमान् सर्वयज्ञमयो हितः॥ ३८॥

(नन्दी ने कहा—) मैं आपके तेज से पुनः करोड़ की संख्या में जप करना चाहता हूँ। ऐसा कहे जाने पर भगवान् ने कहा— अब तुम्हें आगे जप नहीं करने की आवश्यकता नहीं है। तुम अब वृद्धावस्था से रहित और मृत्यु रहित होकर सदा मेरे समीप में स्थित रहोगे। तुम देवी (पार्वती) के पुत्र,

मेरे गणों के अधिपति एवं महान् ईश्वर होओगे! तुम योगीश्वर, महायोगी, गणों के ईश्वरों के भी ईश्वर, सभी लोकों के अधिपति, श्रीमान् सर्वज्ञ और मेरी शक्ति से युक्त रहोगे।

ज्ञानं तन्नामकं दिव्यं हस्तामलकसंज्ञितम्।
आभूतसंप्लवस्थायी ततो यास्यसि तत्पदम्॥ ३९॥

मेरा जो दिव्य ज्ञान है, वह तुम्हें हाथ में रखे आँवले की तरह स्पष्ट दिखाई देगा। तुम महाप्रलय के समय तक इसी रूप में स्थित रहोगे और उसके बाद उस मोक्षपद को प्राप्त करोगे।

एतदुक्त्वा महादेवो गणानाहूय शङ्करः।
अभिषेकेण युक्तेन नन्दीश्वरमयोजयत्॥ ४०॥
उद्वाहयामास च तं स्वयमेव पिनाकधृक्।
मरुताञ्च शुभां कन्यां स्वयशेति च विश्रुताम्॥ ४१॥

इतना कह कर महादेव शंकर ने अपने गणों को बुलाकर उस नन्दीश्वर को गणों के अधिपति के पद पर अभिषेक-विधि से नियुक्त किया। पिनाकधारी शंकर ने स्वयं ही वायुदेव की शुभ कन्या 'सुयशा' का उसके साथ इनका विवाह कर दिया।

एतज्जाप्येश्वरं स्थानं देवदेवस्य शूलिनः।
यत्र तत्र मृतो मर्त्यो रुद्रलोके महीयते॥ ४२॥

देवाधिदेव शूली शंकर का यह स्थान जाप्येश्वर (नन्दी द्वारा जप करके सिद्धि प्राप्त किया हुआ स्थान) नाम से विख्यात है। यहाँ जहाँ कहीं भी मनुष्य शरीर त्याग करता है, वह रुद्रलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे जाप्येश्वरमाहात्म्ये त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४३॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः
(तीर्थों का माहात्म्य)

सूत उवाच

अन्यच्च तीर्थप्रवरं जाप्येश्वरसमीपतः।
नाम्ना पञ्चनदं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम्॥ १॥
त्रिरात्रमुषितस्तत्र पूजयित्वा महेश्वरम्।
सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोके महीयते॥ २॥

सूतजी ने कहा—जाप्येश्वर के समीप में ही पञ्चनद नामका एक दूसरा श्रेष्ठ तीर्थ है, जो पवित्र तथा सभी पापों का नाश करने वाला है। वहाँ तीन रात्रिपर्यन्त उपवास कर महेश्वर की पूजा करने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है तथा विशुद्ध आत्मावाला होकर रुद्रलोक में प्रतिष्ठित होता है।

अन्यच्च तीर्थप्रवरं शक्रस्यामिततेजसः।
महाभैरवमित्युक्तं महापातकनाशनम्॥ ३॥
तीर्थानाञ्च परं तीर्थं वितस्ता परमा नदी।
सर्वपापहरा पुण्या स्वयमेव गिरीन्द्रजा॥ ४॥

अमित तेजस्वी इन्द्र का एक दूसरा श्रेष्ठ तीर्थ है जो महाभैरव नाम से कहा गया है, वह महापातकों का विनाश करने वाला है। वितस्ता नामक श्रेष्ठ नदी तीर्थों में श्रेष्ठ तीर्थ है, वह सभी पापों को हरने वाली, पवित्र और साक्षात् पार्वतीरूप ही है।

तीर्थं पञ्चतपो नाम शंभोरमिततेजसः।
यत्र देवाधिदेवेन चक्रार्थे पूजितो भवः॥ ५॥
पिण्डदानादिकं तत्र प्रेत्यानन्दसुखप्रदम्।
मृतस्तत्राथ नियमाद्ब्रह्मलोके महीयते॥ ६॥

अमित तेजस्वी शम्भु का पञ्चतप नामका एक तीर्थ है, जहाँ देवों के आदिदेव (विष्णु) ने चक्र-प्राप्ति के लिये शंकर की पूजा की थी। उस तीर्थ में किया गया पिण्डदानादि कर्म परलोक में आनन्द सुख देने वाला होता है। वहाँ रहकर नियम-व्रत करने से यथासमय मृत्यु के बाद मनुष्य ब्रह्मलोक में पूजित होता है।

कायावरोहणं नाम महादेवालयं शुभम्।
यत्र माहेश्वरा धर्मा मुनिभिः संप्रवर्त्तिताः॥ ७॥
श्राद्धं दानं तपो होम उपवासस्तथाक्षयः।
परित्यजति यः प्राणान्रुद्रलोकं स गच्छति॥ ८॥

इसके अतिरिक्त कायावरोहण नाम का महादेव का एक शुभ स्थान (तीर्थ) है, जहाँ मुनियों ने महेश्वर-संबन्धी धर्मों का प्रवर्तन किया था। वहाँ किया गया श्राद्ध, दान, तप, होम तथा उपवास अक्षय (फल प्रदान करने वाला) होता है। वहाँ जो प्राण त्याग करता है, वह रुद्रलोक में जाता है।

अन्यच्च तीर्थप्रवरं कन्यातीर्थमनुत्तमम्।
तत्र गत्वा त्यजेत्प्राणाँल्लोकान् प्राप्नोति शाश्वतान्॥ ९॥

एक दूसरा श्रेष्ठ तीर्थ कन्यातीर्थ नाम से विख्यात है। वहाँ जाकर जो प्राणों का त्याग करता है, वह शाश्वत लोकों को प्राप्त करता है।

जामदग्न्यस्य च शुभं रामस्याक्लिष्टकर्मणः।

तत्र स्नात्वा तीर्थवरे गोसहस्रफलं लभेत्॥ १०॥
महाकालमिति ख्यातं तीर्थं लोकेषु विश्रुतम्।
गत्वा प्राणान् परित्यज्य गाणपत्यमवाप्नुयात्॥ ११॥
गुह्याद्गुह्यतमं तीर्थं नकुलीश्वरमुत्तमम्।
तत्र सन्निहितः श्रीमान् भगवान्नकुलीश्वरः॥ १२॥

जमदग्नि के पुत्र अक्लिष्टकर्मा परशुराम का भी एक शुभ तीर्थ है। उस तीर्थ-श्रेष्ठ में स्नान करने से हजार गोदान का फल प्राप्त होता है। एक अन्य महाकाल नाम से विख्यात तीर्थ तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। वहाँ जाकर प्राणों का परित्याग करने से शिवगणों का अधिपतित्व पद प्राप्त होता है। (वहां) श्रेष्ठ नकुलीश्वर तीर्थ गुह्यस्थानों में भी अत्यन्त गुह्य है। वहाँ श्रीमान् भगवान् नकुलीश्वर विराजमान रहते हैं।

हिमवच्छिखरे रम्ये गंगाद्वारे सुशोभते।
देव्या सह महादेवो नित्यं शिष्यैश्च सम्वृतः॥ १३॥
तत्र स्नात्वा महादेवं पूजयित्वा वृषध्वजम्।
सर्वपापैर्विशुद्ध्येत मृतस्तज्ज्ञानमाप्नुयात्॥ १४॥

हिमालय के रमणीय शिखर पर स्थित अत्यन्त सुन्दर गङ्गाद्वार नामक तीर्थ है, वहां शिष्यों से घिरे हुए महादेव देवी के साथ नित्य निवास करते हैं। वहाँ स्नानकर वृषभध्वज महादेव की पूजा करने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है और मृत्यु के बाद परम ज्ञान प्राप्त करता है।

अन्यच्च देवदेवस्य स्थानं पुण्यतमं शुभम्।
भीमेश्वरमिति ख्यातं गत्वा मुञ्चति पातकम्॥ १५॥
तथान्यच्चण्डवेगायाः सम्भेदः पापनाशनः।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च मुच्यते ब्रह्महत्यया॥ १६॥

देवाधिदेव (शंकर) का एक दूसरा शुभ तथा पवित्रतम स्थान है जो भीमेश्वर इस नाम से विख्यात है। वहाँ जाने से व्यक्ति पाप से मुक्त हो जाता है। इसी प्रकार चण्डवेगा नदी का संगम भी है, जो पापों का नाश करने वाला है। वहाँ स्नान करने तथा जल का पान करने से मनुष्य ब्रह्महत्या से मुक्त हो जाता है।

सर्वेषामपि चैतेषां तीर्थानां परमा पुरी।
नाम्ना वाराणसी दिव्या कोटिकोट्ययुताधिका॥ १७॥
तस्याः पुरस्तान्माहात्म्यं भाषितं वो मया त्विह।
नान्यत्र लभते मुक्तिं योगेनाप्येकजन्मना॥ १८॥

इन उपर्युक्त सभी तीर्थों में श्रेष्ठ वाराणसी नाम की नगरी अति दिव्य होने से कोटिगुना अधिक तीर्थों से युक्त है। इस कारण पूर्व में मैंने आप लोगों से उसके माहात्म्य का वर्णन भी किया था। क्योंकि अन्य तीर्थ में योग के द्वारा एक जन्म में मुक्ति नहीं मिलती है।

एते प्राधान्यतः प्रोक्ता देशाः पापहरा नृणाम्।
गत्वा संक्षालयेत्पापं जन्मान्तरशतैरपि॥ १९॥
यः स्वधर्मान् परित्यज्य तीर्थसेवां करोति हि।
न तस्य फलते तीर्थमिह लोके परत्र च॥ २०॥

उपर्युक्त जो मुख्य-मुख्य तीर्थ बताये गये हैं वे सभी मनुष्यों के पापों को हरने वाले हैं। वहाँ जाकर सैकड़ों जन्मों मे किये पापों को धो देना चाहिये। परन्तु (यह अच्छी प्रकार जान लें कि) जो अपने धर्मों का परित्याग कर तीर्थों का सेवन करता है, उसके लिये कोई भी तीर्थ न तो इस लोक में फलदायी होता है, न परलोक में।

प्रायश्चित्ती च विधुरस्तथा यायावरो गृही।
प्रकुर्यात्तीर्थसंसेवां यश्चान्यस्तादृशो जनः॥ २१॥
सहाग्निर्वा सपत्नीको गच्छेत्तीर्थानि यत्नतः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो यथोक्तां गतिमाप्नुयात्॥ २२॥
ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य कुर्वन्वा तीर्थसेवनम्।
विधाय वृत्तिं पुत्राणां भार्यां तेषु विधाय च॥ २३॥

जो प्रायश्चित्ती हो, पत्नी से रहित विधुर हो तथा जिनके द्वारा पाप हो गया है ऐसे गृहस्थ एवं इसी प्रकार के जो अन्य लोग हैं, उन्हें (पश्चात्तापपूर्वक यथाशास्त्र) तीर्थों का सेवन करना चाहिये। और भी जो अग्निहोत्री हो, उसे अग्नि को साथ लेकर तथा पत्नी के साथ सावधानीपूर्वक तीर्थों में भ्रमण करना चाहिये। ऐसा करने से मनुष्य समस्त पापों से मुक्त होकर उत्तम गति को प्राप्त करता है। अथवा मनुष्य को अपने तीनों ऋणों (देव, पितृ, मनुष्य) से मुक्त होने के बाद पुत्रों के लिये जीविका-सम्बन्धी वृत्ति की व्यवस्था कर और उन्हीं अपनी पत्नी को सौंपकर तीर्थ का सेवन करना चाहिये।

प्रायश्चित्तप्रसङ्गेन तीर्थमाहात्म्यमीरितम्।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ २४॥

इस प्रकार यहाँ प्रायश्चित्त के प्रसंगवश तीर्थों का माहात्म्य कहा गया है। इसका जो पाठ करता है अथवा सुनता है, वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे तीर्थमाहात्म्यं नाम
चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४४॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

(सृष्टि के प्रलय का वर्णन)

सूत उवाच

एतदाकर्ण्य विज्ञानं नारायणमुखेरितम्।
कूर्मरूपधरं देवं पप्रच्छुर्मुनयः प्रभुम्॥ १॥

सूतजी ने कहा—नारायण के मुख से कहे गये इस विशिष्ट ज्ञान को सुनकर पुनः मुनियों ने दिव्य कूर्मरूपधारी भगवान् से पूछा—

मुनय ऊचुः

कथितो भवता धर्मो मोक्षज्ञानं सविस्तरम्।
लोकानां सर्गविस्तारो वंशो मन्वन्तराणि च॥ २॥
इदानीं देवदेवेश प्रलयं वक्तुमर्हसि।
भूतानां भूतभव्येश यथा पूर्वं त्वयोदितम्॥ ३॥

मुनियों ने कहा—आपने वर्णाश्रम धर्म, मोक्षसंबन्धी ज्ञान, लोकों की सृष्टि और मन्वन्तर के विषय में विस्तार पूर्वक बताया है। अब हे भूत और भविष्य के ईश्वर! आप प्राणी पदार्थों का जो प्रलय पहले जिस क्रम से कह चुके हैं, वह पुनः कहो।

सूत उवाच

श्रुत्वा तेषां तदा वाक्यं भगवान् कूर्मरूपधृक्।
व्याजहार महायोगी भूतानां प्रतिसञ्चरम्॥ ४॥

सूतजी बोले —उन ऋषियों का वचन सुनने के पश्चात कूर्मरूपधारी महायोगी भगवान् ने भूतों के प्रलय के विषय में कहना प्रारम्भ किया।

कूर्म उवाच

नित्यो नैमित्तिकश्चैव प्राकृतोऽत्यन्तिकस्तथा।
चतुर्धायं पुराणेऽस्मिन् प्रोच्यते प्रतिसञ्चरः॥ ५॥
योऽयं सन्दृश्यते नित्यं लोके भूतक्षयस्त्विह।
नित्यः संकीर्त्यते नाम्ना मुनिभिः प्रतिसञ्चरः॥ ६॥
ब्राह्मनैमित्तिको नाम कल्पान्ते यो भविष्यति।
त्रैलोक्यस्यास्य कथितः प्रतिसर्गो मनीषिभिः॥ ७॥
महदाद्यं विशेषान्तं यदा संयाति संक्षयम्।
प्राकृतः प्रतिसर्गोऽयं प्रोच्यते कालचिन्तकैः॥ ८॥
ज्ञानादात्यन्तिकः प्रोक्तो योगिनः परमात्मनि।
प्रलयः प्रतिसर्गोऽयं कालचिन्तापरैर्द्विजैः॥ ९॥

कूर्मरूपी ईश्वर ने कहा—इस पुराण में नित्य, नैमित्तिक, प्राकृत तथा आत्यन्तिक—इस प्रकार चार प्रकार का प्रतिसंचर (प्रलय) कहा गया है। लोक में यहाँ जो प्राणियों का नित्य क्षय दिखलायी देता है, उसे मुनियों ने नित्य-प्रलय कहा है। कल्पान्त में ब्रह्मा (की निद्रा) के निमित्त से होने वाली तीनों लोकों के प्रतिसर्ग-प्रलय को विद्वानों ने (नैमित्तिक प्रलय) कहा है। महत्तत्व से लेकर विशेषपर्यन्त समस्त तत्त्वों का जो क्षय हो जाता है, उसे कालचिन्तकों ने प्राकृत प्रतिसर्ग कहा है और ज्ञान द्वारा योगियों का परमात्मा में लय हो जाता है, उसे कालचिन्तकों ने आत्यन्तिक प्रलय कहा है।

आत्यन्तिकस्तु कथितः प्रलयो ज्ञानसाधनः।
नैमित्तिकमिदानीं वः कथयिष्ये समासतः॥ १०॥

यहाँ साधनसहित आत्यन्तिक प्रलय अर्थात् मोक्ष का वर्णन किया गया है। अब मैं संक्षेप में आप लोकों को नैमित्तिक प्रलय के विषय में बतलाऊँगा।

चतुर्युगसहस्रान्ते सम्प्राप्ते प्रतिसञ्चरे।
स्वात्मसंस्थाः प्रजाः कर्तुं प्रतिपेदे प्रजापतिः॥ ११॥
ततोऽभवत्वनावृष्टिस्तीव्रा सा शतवार्षिकी।
भूतक्षयकरी घोरा सर्वभूतक्षयंकरी॥ १२॥
ततो यान्यल्पसाराणि सत्त्वानि पृथिवीपते।
तानि चात्रे प्रलीयन्ते भूमित्वमुपयान्ति च॥ १३॥

चार हजार वर्षों का अन्त हो जाने पर प्रलय काल आने पर प्रजापति ब्रह्मा ने समस्त प्रजाओं को अपने अन्दर स्थिर करने का मन बनाया। उस के बाद सौ वर्षों तक तीव्र अनावृष्टि चलती रही अर्थात् सूखा पड़ा। इसने प्राणी मात्र नष्ट कर दिया क्योंकि यह अनावृष्टि समस्त भूतों के लिए नाशकारक होती है। इसलिए इस पृथ्वी पर जो प्राणी कम शक्ति वाले होते हैं, वे तो सबसे पहले नष्ट हो जाते हैं, और पृथ्वी रूप बन जाते हैं।

सप्तरश्मिरथो भूत्वा समुत्तिष्ठन्दिवाकरः।
असह्यरश्मिर्भवति पिबन्नम्भो गभस्तिभिः॥ १४॥
तस्य ते रश्मयः सप्त पिबन्त्यम्बु महार्णवे।
तेनाहारेण ता दीप्त्वा सप्तसूर्या भवन्त्युत॥ १५॥

इसके बाद सूर्य भी सात किरणों से युक्त होकर उदित होता हुआ असह्य किरणों वाला हो जाता है। वह अपनी किरणों से पृथ्वी के अन्दर विद्यमान जल को पीने लगता है।

इस प्रकार सूर्य की सात किरणें महासागर के मध्य स्थित जल को सोख लेती हैं और उस आहार के माध्यम से वे सूर्य वास्तव में सात संख्या वाले बन जाते हैं।

ततस्ते रश्मयः सप्त शोषयित्वा चतुर्दिशम्।
चतुर्लोकमिमं सर्वं दहन्ति शिखिनो यथा॥ १६॥
व्याप्नुवन्तश्च ते दीप्ता ऊर्ध्वञ्चाधः स्वरश्मिभिः।
दीप्यन्ते भास्कराः सप्त युगान्ताग्निप्रदीपिताः॥ १७॥
ते सूर्या वारिणा दीप्ता बहुसाहस्ररश्मयः।
खं समावृत्य तिष्ठन्ति प्रदहन्तो वसुन्धराम्॥ १८॥

इस प्रकार सप्तसंख्यक सूर्य की किरणें चारों दिशाओं को सूखा कर चारों लोकों को अग्नि के समान जलाने लगती हैं। यह सातों सूर्य अपनी किरणों द्वारा पृथ्वी के ऊर्ध्व और निम्न भाग को व्याप्त करके प्रलय काल की अग्नि के समान एक साथ भयानक रूप से प्रदीप्त होने लगते हैं। इस प्रकार जल द्वारा प्रदीप्त हुए वे सूर्य अपनी किरणों द्वारा अनेक हजारों की संख्या में होकर आकाश को अच्छी प्रकार आच्छादित करके सम्पूर्ण पृथ्वी को ज्वलित करते हुए स्थित रहते हैं।

ततस्तेषां प्रतापेन दह्यमाना वसुन्धरा।
साद्रिनद्यर्णवद्वीपा निःस्नेहा समपद्यत॥ १९॥
दीप्ताभिः सन्तताभिश्च रश्मिभिर्वै समन्ततः।
अधश्चोर्ध्वञ्च लग्नाभिस्तिर्यक् चैव समावृतम्॥ २०॥

इसके पश्चात् उन सूर्यों के अतिशय ताप के कारण जलती हुई यह वसुन्धरा पर्वतों, नदियों, समुद्र तथा द्वीपों सहित सर्वथा जल से रहित हो जाती है। क्योंकि सूर्य की प्रदीप्त किरणें चारों ओर से समावृत होने से ऊपर-नीचे संलग्न होती हैं और इसी कारण टेढ़े-मेढ़े (तिर्यक्) प्रदेश भी आच्छादित हो जाते हैं।

सूर्याग्निना प्रमृष्टानां संसृष्टानां परस्परम्।
एकत्वमुपयातानामेकज्वालं भवत्युत॥ २१॥
सर्वलोकप्रणाशश्च सोऽग्निर्भूत्वा तु मण्डली।
चतुर्लोकमिमं सर्वं निर्दहत्याशु तेजसा॥ २२॥
ततः प्रलीने सर्वस्मिञ्जङ्गमे स्थावरे तथा।
निर्वृक्षा निस्तृणा भूमिः कूर्मपृष्ठा प्रकाशते॥ २३॥
अम्बरीषमिवाभाति सर्वमापूरितं जगत्।
सर्वमेव तदर्चिर्भिः पूर्णं जाज्वल्यते पुनः॥ २४॥

इस तरह सूर्यरूप अग्नि के द्वारा प्रकृष्टरूप से शुद्ध और परस्पर संसृष्ट संसार के समस्त पदार्थ एक ज्वाला के रूप में मैनों एक ही हो जाते हैं। सभी लोकों को नष्ट करने वाली यह प्रलयाग्नि एक मण्डल के आकार में होकर अपने ही तेज से इस सम्पूर्ण चतुर्लोक को दग्ध करने लगती है। तब सम्पूर्ण स्थावर एवं जंगम पदार्थों के लीन हो जाने पर वृक्षों तथा तृणों से रहित यह भूमि कछुए की पीठरूप में प्रकाशित होती है। (किरणों से) व्याप्त समस्त जगत् अम्बरीष (जलती हुई कड़ाही) के सदृश वर्णवाला दिखलायी देता है। उन ज्वालाओं के द्वारा सभी कुछ पूर्णरूप से प्रज्वलित होने लगता है।

पाताले यानि सत्त्वानि महोदधिगतानि च।
ततस्तानि प्रलीयन्ते भूमित्वमुपयान्ति च॥ २५॥
द्वीपांश्च पर्वतांश्चैव वर्षाण्यथ महोदधीन्।
तान् सर्वान् भस्मसात्कृत्वा सप्तात्मा पावकः प्रभुः॥ २६॥
समुद्रेभ्यो नदीभ्यश्च आपः शुष्काश्च सर्वशः।
पिबन्नपः समिद्धोऽग्निः पृथिवीमाश्रितो ज्वलन्॥ २७॥

उसी प्रकार पाताल में और महासागर में जो प्राणीसमुदाय रहते हैं, वे भी प्रलय को प्राप्तकर पृथ्वीत्व को प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रकार सात रूप वाले प्रभु अग्निदेव सभी द्वीप, पर्वत, खंड, बड़े-बड़े समुद्र आदि सभी को भस्मीभूत कर देते हैं। इस प्रकार समुद्र, नदियां तथा पाताल आदि के संपूर्ण जल को पान करते हुए यह अतिशय प्रज्वलित अग्नि केवल एक पृथ्वी का आश्रय लेकर जलता रहता है।

ततः संवर्त्तकः शैलानतिक्रम्य महांस्तथा।
लोकान्दहति दीप्तात्मा मारुतेयो विजृम्भितः॥ २८॥

तदनन्तर वह प्रलय काल के महान् संवर्तक नाम के बादल हवा के तेज से प्रदीप्त होकर, पर्वतों को लाँघ कर, सारे संसार को जलाने लगता है।

स दग्ध्वा पृथिवीं देवो रसातलमशोषयत्।
अधस्तात्पृथिवीं दग्ध्वा दिवमूर्ध्वं दहिष्यति॥ २९॥

वह दीप्यमान प्रलयाग्नि पृथ्वी को जलाकर पाताल को भी सोख लेता है। उसके बाद पृथ्वी के निचले भाग को जलाकर, आकाश के ऊपरी भाग को जलाने लगेगा।

योजनानां शतानीह सहस्राण्ययुतानि च।
उत्तिष्ठन्ति शिखास्तस्य वह्नेः संवर्त्तकस्य तु॥ ३०॥

इस संवर्तकरूपी महाप्रलयाग्नि की लपटें एक लाख और दस हजार योजन तक ऊपर उठती हैं।

गन्धर्वांश्च पिशाचांश्च सयक्षोरगराक्षसान्।
तदा दहत्यसौ दीप्तः कालरुद्रप्रणोदितः॥ ३१॥

भगवान् काल रुद्र के द्वारा प्रेरित ये धधकती हुई ज्वालाएँ, ऊपर की ओर उठती हुई गन्धर्व, पिशाच, यक्ष, नाग और राक्षसों को जलाने लगती हैं।

भूर्लोकञ्च भुवर्लोकं महर्ल्लोकं तथैव च।
दहेदशेषं कालाग्निः कालाविष्टतनुः स्वयम्॥ ३२॥

इस प्रकार स्वयं काल ने ही शरीर धारण किया हो, ऐसा प्रलयाग्नि भूः, भुवः, स्वः और महत् लोक को पूर्णरूप से जला डालता है।

व्याप्तेष्वेतेषु लोकेषु तिर्यगूर्ध्वमथाग्निना।
तत्तेजः समनुप्राप्य कृत्स्नं जगदिदं शनैः॥ ३३॥
अतो गुडमिदं सर्वं तदेवैकं प्रकाशते।

जब वह प्रलयाग्नि चारों लोकों में व्याप्त होकर तिर्यक् और ऊपर सभी ओर फैलकर धीरे-धीरे उसका तेज इस पूरे संसार को प्राप्त कर लेता है। तब यह सब एक साथ मिलकर, एक ज्वालारूप में प्रकाशित होने लगता है।

ततो गजकुलाकारास्तडिद्भिः समलंकृताः॥ ३४॥
उत्तिष्ठन्ति तदा व्योम्नि घोराः संवर्त्तका घनाः॥

इसके बाद बड़े-बड़े हाथियों के समूह की भाँति घने, और घोर संवर्तक नामके प्रलयकालीन मेघ, विद्युत् पुञ्जों से अलंकृत होकर, गरजते हुए आकाश में चढ़ आते हैं।

केचन्नीलोत्पलश्यामाः केचित्कुमुदसन्निभाः॥ ३५॥
धूम्रवर्णास्तथा केचित्केचित्पीताः पयोधराः।
केचिद्रासभवर्णास्तु लाक्षारसनिभाः परे॥ ३६॥

उन मेघों में, कुछ नीलकमल के समान श्यामवर्ण के दिखाई पड़ते हैं, कुछ कुमुदिनी पुष्प के समान सफेद, कुछ धूम्रवर्ण के, कुछ पीले रंग के, कुछ गधे के समान धूसर और कुछ लाख के समान लाल रंग के दिखाई देते हैं।

शङ्खकुन्दनिभाश्चान्ये जात्यञ्जननिभास्तथा।
मनः शिलाभाश्च परे कपोतसदृशाः परे॥ ३७॥

कुछ शंख और कुन्द पुष्प के समान अत्यन्त शुभ्र, कुछ अञ्जन के समान गाढ़े नीले रंग के, कुछ मनःशिला (मैनसिल) के समान और कुछ कबूतर के समान, रंग वाले बादल दिखाई देते हैं।

इन्द्रगोपनिभाः केचिद्धरितालनिभास्तथा।
इन्द्रचापनिभाः केचिदुत्तिष्ठन्ति घना दिवि॥ ३८॥

उसमें कुछ इन्द्रगोप (बरसाती कीड़े) के समान लाल रंग के, तो कुछ हरिताल (पीले रंग का धातु विशेष) और कुछ इन्द्रधनुष के समान सतरंगी बादल होते हैं।

केचित्पर्वतसंकाशाः केचिद्गजकुलोपमाः।
कूटांगारनिभश्चान्ये च केचिन्मीनकुलोद्वहाः॥ ३९॥

कुछ पर्वताकार के, कुछ हाथियों के झुण्ड के आकार वाले, कुछ कूटागार (प्रासाद का सबसे ऊपर बना हुआ कमरा) के समान और कुछ बादल मछली के झुण्ड के आकार के लगते हैं।

बहुरूपा घोररूपा घोरस्वरनिनादिनः।
तदा जलधराः सर्वे पूरयन्ति नभस्तलम्॥ ४०॥

अनेक रूप और भयानक रूप वाले बादल, भयंकर गर्जना करते हैं, तब वे पूरे आकाश मण्डल को आपूरित कर देते हैं।

ततस्ते जलदा घोरा राविणो भास्करात्मजाः।
सप्तधा संवृतात्मानं तमग्निं शमयन्ति ते॥ ४१॥

तत्पश्चात् वे सूर्य की सन्तान होने से घोर गर्जना करने वाले बादल जल बरसाते हैं और सात रूपों अपने को संवृत किये हुए प्रलयाग्नि को शान्त करते हैं।

ततस्ते जलदा वर्षं मुञ्चंतीह महौघवत्।
सुघोरमशिवं वर्षं नाशयन्ति च पावकम्॥ ४२॥

वे बादल अतिशय घोर गर्जना के साथ बरसते हुए उस भयंकर, अमंगलकारी अग्नि को नष्ट करते हैं।

अतिवृद्धं तदात्यर्थमम्भसा पूर्यते जगत्।
अद्भिस्तेऽम्भोऽभिभूतत्वादग्निः प्रविशत्यपः॥ ४३॥
नष्टे चाग्नौ वर्षशतैः पयोदाः क्षयसम्भवाः।
प्लावयन्तो जगत्सर्वं महाजलपरिस्रवैः॥ ४४॥
धाराभिः पूरयन्तीदं नोद्यमानाः स्वयम्भुवा।
अत्यन्तसलिलौघास्तु वेला इव महोदधेः॥ ४५॥

इस प्रकार अतिशय बरसते हुए बादलों ने जल से सारे संसार को आप्लावित कर दिया। इस प्रकार सम्पूर्ण जगत् में सौ वर्षों तक सैकडों धाराओं के साथ बरसते हुए जल से अपना तेज शान्त हो जाने से पराभूत हुआ वह अग्नि उसी जल में प्रवेश कर जाता है। इस प्रकार ब्रह्माजी द्वारा प्रेरित

मेघों ने जलधाराओं से संसार को परिपूर्ण कर दिया जैसे बढ़ी हुई जलराशि से समुद्र का किनारा डूब जाता है।

साद्रिद्वीपा ततः पृथ्वी जलैः सञ्छाद्यते शनैः।
आदित्यरश्मिभिः पीतं जलमभ्रेषु तिष्ठति॥४६॥

धीरे-धीरे पर्वतों तथा द्वीपों वाली पृथ्वी जल से ढक जाती है और सूर्य की रश्मियों द्वारा गृहीत वह जल बादलों में स्थित रहता है।

पुनः पतति तद्भूमौ पूर्यन्ते तेन चार्णवाः।
ततः समुद्राः स्वां वेलामतिक्रान्तास्तु कृत्स्नशः॥४७॥
पर्वताश्च विलीयन्ते मही चाप्सु निमज्जति।

पुनः वह जल पृथ्वी पर गिरता है और उससे समुद्र इतने आपूरित हो जाते हैं, कि सर्वत्र अपने तटों का अतिक्रमण कर वे जलमय हो जाते हैं, पर्वत जल में विलीन हो जाते हैं और पृथ्वी भी जल में डूब जाती है।

तस्मिन्नेकार्णवे घोरे नष्टे स्थावरजंगमे॥४८॥
योगनिद्रां समास्थाय शेते देवः प्रजापतिः।

समस्त स्थावर और जंगम नष्ट हो जाने के बाद उस घोर एकरूप समुद्र में भगवान् ब्रह्मा, योगनिद्रा का आश्रय लेकर सो जाते हैं।

चतुर्युगसहस्रान्तं कल्पमाहुर्मनीषिणः॥४९॥
वाराहो वर्त्तते कल्पो यस्य विस्तार ईरितः।

चार हजार युगों तक के समय को विद्वान् कल्प कहते हैं। इस समय वाराह कल्प चल रहा है. जिसके विस्तार को मैंने कहा है।

असंख्यातास्तथा कल्पा ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाः॥५०॥
कथिता हि पुराणेषु मुनिभिः कालचिन्तकैः।

कालचिन्तक ऋषियों ने पुराणों में असंख्य कल्प कहे हैं, वे सभी कल्प ब्रह्मा, विष्णु और शिवमय होते हैं।

सात्त्विकेष्वथ कल्पेषु माहात्म्यमधिकं हरेः॥५१॥
तामसेषु हरस्योक्तं राजसेषु प्रजापतेः।

उनमें जो सात्त्विक कल्प हैं, वहां विष्णु का माहात्म्य अधिक कहा गया है, तामस कल्प में शिव का और राजस कल्पों में ब्रह्मा का माहात्म्य अधिक है।

योऽयं प्रवर्त्तते कल्पो वाराहः सात्त्विको मतः॥५२॥
अन्ये च सात्त्विकाः कल्पा मम तेषु परिग्रहः।

यह जो कल्प अभी चल रहा है, यह वाराह कल्प है, जो सात्त्विक माना गया है। अन्य जो सात्त्विक कल्प हैं, जिसमें मेरा परिग्रह (अधिकार) स्वीकार किया है।

ध्यानं तपस्तथा ज्ञानं लब्ध्वा ते योगिनः परम्॥५३॥
आराध्य तञ्च गिरिशं यान्ति तत्परमम्पदम्।

इन्हीं सारे कल्पों में योगिगण ध्यान, तप और ज्ञान प्राप्त करके, शिव तथा मेरी आराधना करके, अतिशय श्रेष्ठ पद (मोक्ष) को प्राप्त करते हैं।

सोऽहं तत्त्वं समास्थाय मायी मायामयीं स्वयम्॥५४॥
एकार्णवे जगत्यस्मिन्योगनिद्रां व्रजामि तु।

वही मैं स्वयं मायावी होने से मायामय तत्त्व को अच्छी प्रकार आश्रय करके, प्रलयकाल में एक समुद्ररूप हुए इस जगत् में योगनिद्रा को प्राप्त करता हूँ।

मां पश्यन्ति महात्मानः सुप्तिकाले महर्षयः॥५५॥
जनलोके वर्त्तमानास्तापसा योगचक्षुषा।
अहं पुराणः पुरुषो भूर्भुवःप्रभवो विभुः॥५६॥
सहस्रचरणः श्रीमान् सहस्राक्षः सहस्रपात्।
मन्त्रोऽहं ब्राह्मणा गावः कुशोऽथ समिधो ह्यहम्॥५७॥
प्रोक्षणीयं स्वयञ्चैव सोमो व्रतमथास्म्यहम्।
संवर्त्तको महानात्मा पवित्रं परमं यशः॥५८॥

मेरे इसी सुषुप्ति-काल में, जनलोक में वास करने वाले महात्मा सप्तऋषिगण, अपने तपोबल से, योगरूपी चक्षुओं द्वारा मुझे देखते हैं। मैं ही पुराण पुरुष हूँ, भूः, भुवः का उत्पत्ति स्थान, सर्वत्र व्याप्त, हजारों चरणों, नेत्रों और हजारों गतिवाला, सौन्दर्यवान् हूँ। (यज्ञ में) मैं ही मन्त्र, अग्नि, गौ, कुश और समिधारूप हूँ। मैं ही प्रोक्षण का पात्र, सोम और व्रत स्वरूप हूँ। मैं ही संवर्तक—प्रलयकाल, महान् आत्मा, पवित्र और परम श्रेष्ठ यश हूँ।

मेधाप्यहं प्रभुर्गोप्ता गोपतिर्ब्रह्मणो मुखम्।
अनन्तस्तारको योगी गतिर्गतिमतां वरः॥५९॥

मैं ही बुद्धि, प्रभु, रक्षक, गोपति, ब्रह्मा का मुखरूप हूँ। मैं अनन्त, सब को मुक्ति देने वाला और योगी हूँ। मैं ही गति और गतिमानों में श्रेष्ठ हूँ।

हंसः प्राणोऽथ कपिलो विश्वमूर्त्तिः सनातनः।
क्षेत्रज्ञः प्रकृतिः कालो जगद्बीजमथामृतम्॥६०॥
माता पिता महादेवो मत्तो ह्यन्यो न विद्यते।

हंस, प्राण, कपिल, विश्वमूर्ति परमात्मा, सनातन, जीवात्मा, प्रकृति, काल, संसार का मूल कारण, अमृत,

माता, पिता और महादेव— सब कुछ मैं ही हूँ। मुझसे पृथक् कुछ भी नहीं है।

आदित्यवर्णो भुवनस्य गोप्ता
नारायण: पुरुषो योगमूर्त्ति:।
तं पश्यन्तो यतयो योगनिष्ठा:
ज्ञात्वात्मानं मम तत्त्वं व्रजन्ति॥६१॥

वही मैं नारायण सूर्य के समान वर्ण वाला, संसार का रक्षक, योगमूर्ति हूँ। योगनिष्ठ संन्यासी मेरे इसी स्वरूप को देखते हैं और आत्मतत्त्व को साक्षात् करने के बाद वे मेरा यह तत्त्व जान लेते हैं अर्थात् मोक्ष पा जाते हैं।

इति श्रीकूर्मपुराणे उत्तरार्द्धे व्यासगीतासु
पंचचत्वारिंशोऽध्याय:॥४५॥

षट्चत्वारिंशोऽध्याय:

(प्रलयादि का वर्णन)

कूर्म उवाच

अत: परं प्रवक्ष्यामि प्रतिसर्गमनुत्तमम्।
प्राकृतं तत्समासेन शृणुध्वं गदतो मम॥१॥

कूर्मरूपधारी भगवान् ने कहा— अब मैं उत्तम प्रतिसर्ग, जो प्राकृत प्रलय है, उसका संक्षेप में वर्णन करूँगा। उसे आप सब मुझसे श्रवण करें।

गते परार्द्धद्वितये काले लोकप्रकालन:।
कालाग्निर्भस्मसात्कर्तुं चरते चाखिलं जगत्॥२॥
स्वात्मन्यात्मानमावेश्य भूत्वा देवो महेश्वर:।
दहेदशेषं ब्रह्माण्डं सदेवासुरमानुषम्॥३॥
तमाविश्य महादेवो भगवान्नीललोहित:।
करोति लोकसंहारं भीषणं रूपमाश्रित:॥४॥
प्रविश्य मण्डलं सौरं कृत्वाऽसौ बहुधा पुन:।
निर्दहत्यखिलं लोकं सप्तसप्तिस्वरूपधृक्॥५॥

द्वितीय परार्ध (अर्थात् ब्रह्माजी की आयु का द्वितीय अर्धभाग का समय) के बीत जाने पर समस्त लोकों को ग्रसित करने वाला कालरूप कालाग्नि सम्पूर्ण जगत् को भस्मसात् करने के लिए घूमता रहता है। महेश्वर देव अपने स्वरूप में स्वयं को प्रवेश कराकर देवताओं, असुरों तथा मनुष्यों से युक्त सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को दग्ध करने लगते हैं। भगवान् नीललोहित महादेव भयानक रूप धारणकर उस अग्नि में प्रविष्ट होकर अर्थात् महाकालरूप होकर लोक का संहार करते हैं। सौर-मण्डल में प्रविष्ट होकर उसे पुन: अनेक रूपवाला बनाकर सात-सात किरणों वाले सूर्यरूपधारी वे महेश्वर सम्पूर्ण विश्व को दग्ध करते हैं।

स दग्ध्वा सकलं विश्वमस्त्रं ब्रह्मशिरो महत्।
देवतानां शरीरेषु क्षिपत्यखिलदाहकम्॥६॥
दग्धेष्वशेषदेवेषु देवी गिरिवरात्मजा।
एषा सा साक्षिणी शम्भोस्तिष्ठते वैदिकी श्रुति:॥७॥

संपूर्ण विश्व को दग्ध करके वे महेश्वर देवताओं के शरीर पर सभी को जलाने में समर्थ ब्रह्मशिर नामक महान् अस्त्र को छोड़ते हैं। सम्पूर्ण देवताओं के दग्ध हो जाने पर श्रेष्ठ पर्वत हिमालय की पुत्री देवी पार्वती अकेली ही साक्षी के रूप में उन (शिव) के पास स्थित रहती हैं—ऐसी वैदिकी श्रुति है।

शिरं कपालैर्देवानां कृतस्रग्वरभूषण:।
आदित्यचन्द्रादिगणै: पूरयन्व्योममण्डलम्॥८॥
सहस्रनयनो देव: सहस्राक्ष इतीश्वर:।
सहस्रहस्तचरण: सहस्रार्चिर्महाभुज:॥९॥
दंष्ट्राकरालवदन: प्रदीप्तानललोचन:।
त्रिशूलकृत्तिवसनो योगमैश्वरमास्थित:॥१०॥
पीत्वा तत्परमानन्दं प्रभूतममृतं स्वयम्।
करोति ताण्डवं देवीमालोक्य परमेश्वर:॥११॥

वे शिव देवताओं के मस्तक के कपाल से निर्मित माला को आभूषणरूप में धारण करते हैं, सूर्य चन्द्र आदि के समुदाय से आकाश को भर देते हैं। सहस्रनेत्रवाले, हजारों आकृतिवाले, हजारों हाथ-पैरवाले, हजारों किरणों से युक्त, विकराल दंष्ट्र (दाढ़ों) के कारण भयंकर मुखों वाले, प्रदीप्त अग्नि के समान नेत्रों वाले, त्रिशूली, मृगचर्मरूपी वस्त्र धारण करने वाले वे देव महेश्वर ऐश्वरयोग में स्थित हो जाते हैं और भगवती पार्वती को देखते हुए परमानन्दमय अमृत का पानकर स्वयं ताण्डव नृत्य करते हैं।

पीत्वा नृत्यामृतं देवी भर्तु: परममंगलम्।
योगमास्थाय देवस्य देहमायाति शूलिन:॥१२॥
स भुक्त्वा ताण्डवरसं स्वेच्छयैव पिनाकधृक्।
ज्योति:स्वभावं भगवान्दग्ध्वा ब्रह्माण्डमण्डलम्॥१३॥
संस्थितेष्वथ देवेषु ब्रह्मा विष्णु: पिनाकधृक्।
गुणैरशेषै: पृथिवी विलयं याति वारिषु॥१४॥
स वारि तत्त्वं सगुणं ग्रसते हव्यवाहन:।

तेज: स्वगुणसंयुक्तं वायौ संयाति संक्षयम्॥ १५॥

अपने पति के नृत्यरूपी अमृत का पानकर परम मंगलमयी देवी (पार्वती) योग का आश्रय लेकर शूलधारी शिव के शरीर में प्रवेश कर जाती हैं। फिर ब्रह्माण्डमंल को दग्ध करके पिनाकपाणि भगवान् (शिव) अपनी इच्छा से ही ताण्डव नृत्य का रस छोड़कर ज्योति:स्वरूप अपने शान्तभाव में स्थित हो जाते हैं। ब्रह्मा, विष्णु तथा पिनाकी शिव के इस प्रकार स्थित हो जाने पर अपने सम्पूर्ण गुणों के साथ पृथ्वी जल में विलीन हो जाती है। अपने गुणों सहित उस जल-तत्त्व को हव्यवाहन अग्नि ग्रहण कर लेता है और अपने गुणोंसहित वह तेज (अग्नि) वायु में विलीन हो जाता है।

आकाशे सगुणो वायु: प्रलय: याति विश्वभृत्।
भूतादौ च तथाकाशे लीयते गुणसंयुत:॥ १६॥
इन्द्रियाणि च सर्वाणि तैजसे याति संक्षयम्।
वैकारिको देवगणै: प्रलयं याति सत्तमा:॥ १७॥
त्रिविधोऽयमहंकारो महति प्रलये व्रजेत्।

तदनन्तर विश्व का भरण-पोषण करने वाला गुणों सहित वह वायु आकाश (तत्त्व) में लीन हो जाता है और अपने गुणसहित वह आकाश भूतादि अर्थात् तामस अहंकार में लय को प्राप्त करता है। हे उत्तम ऋषिगण! सभी इन्द्रियाँ तैजस अर्थात् राजस अहंकार में क्षय को प्राप्त करता है। और (इन्द्रियों के अधिष्ठाता) देवगण वैकारिक अर्थात् सात्त्विक अहंकार में विलीन हो जाते हैं। वैकारिक, तैजस् तथा भूतादि (तामस) नामक तीन प्रकार का अहंकार महत्तत्त्व में लीन हो जाता है।

महान्तमेभि: सहितं ब्रह्माणमितौजसम्॥ १८॥
अव्यक्तञ्जगतो योनि: संहरेदेकमव्ययम्।
एवं संहृत्य भूतानि तत्त्वानि च महेश्वर:॥ १९॥
वियोजयति चान्योऽन्यं प्रधानं पुरुषम्परम्।
प्रधानपुंसोरजयोरेष संहार ईरित:॥ २०॥
महेश्वरेच्छाजनितो न स्वयं विद्यते लय:।

तदनन्तर सभी तत्त्वों के साथ अमित तेजस्वी उस ब्रह्मारूप महत्तत्त्व को जगत् के उत्पत्ति स्थान, अव्यक्त, अप्रकाशित, तथा अनिवाशी मूल तत्त्व प्रकृति अपने में लय कर लेती है। इस प्रकार सभी प्राणी पदार्थो तथा सभी तत्त्वों के संहार के बाद वे महेश्वर प्रधान तत्त्व मूल प्रकृति तथा पुरुष इन दोनों तत्त्वों को एक-दूसरे से अलग करते हैं। यही पृथक्त्व दोनों का लय या संहार कहा जाता है। वे दोनों तत्त्व तो वस्तुत: अजन्मा ही हैं तथा अविनाशी ही है अतएव उन दोनों का वियोग या मेल महेश्वर की इच्छा से होता है। स्वयं उनका लय नहीं होता है।

गुणसाम्यं तदव्यक्तं प्रकृति: परिगीयते॥ २१॥
प्रधानं जगतो योनिर्मायातत्त्वमचेतनम्।
कूटस्थश्चिन्मयो ह्यात्मा केवलं पञ्चविंशक:॥ २२॥
गीयते मुनिभि: साक्षी महानेष पितामह:।

गुणों की समानता या साम्यावस्था ही प्रकृति कही जाती है। इसी का 'प्रधान' नाम भी है। यह जगत् का उत्पत्ति स्थान और माया तत्त्व होने से अजड है परन्तु जो आत्मा है वह कूटस्थ अथवा सर्वकाल एक ही स्वरूप वाला है अथवा परिणाम आदि से रहित होने के कारण चैतन्यमय, एकरूप तथा पच्चीसवें तत्त्वरूप है। यही आत्मा महान् पितामह साक्षीरूप से सब कुछ प्रत्यक्ष देखता है, ऐसा मुनिगण कहते हैं।

एवं संहारशक्तिश्च शक्तिर्माहेश्वरी ध्रुवा॥ २३॥
प्रधानाद्यं विशेषान्तं देहे रुद्र इति श्रुति:।
योगिनामथ सर्वेषां ज्ञानविन्यस्तचेतसाम्॥ २४॥
आत्यन्तिकश्चैव लयं विदधातीह शंकर:।

इस प्रकार पूर्वोक्त जो संहार शक्ति कही गई है, वही ध्रुवा और सर्वकाल स्थिर रहने वाली है। यह 'माहेश्वरी' शक्ति है। यह प्रधान या प्रकृति से लेकर विशेष तक के सभी पदार्थों को जलाती है, वही रुद्र नाम से विख्यात है—ऐसा श्रुतिवचन है। वे रुद्र ही सभी योगियों तथा ज्ञानियों का भी इस कल्प में संहार करते हैं, यही आत्यन्तिक लय है।

इत्येष भगवान्रुद्र: संहारं कुरुते वशी॥ २५॥
स्थापिका मोहिनी शक्तिर्नारायण इति श्रुति:।
हिरण्यगर्भो भगवाञ्जगत्सदसदात्मकम्॥ २६॥
सृजेदशेषं प्रकृतस्तन्मय: पञ्चविंशक:।

इस प्रकार वे भगवान् रुद्र सर्व को वश में करते हुए सबका संहार करते हैं, उनकी जो शक्ति है, वह सब को स्थिर करने वाली, मोहित करने वाली, नारायणी और नारायणरूप है, ऐसा वेद स्वयं कहते हैं। उसी तरह भगवान् हिरण्यगर्भ ब्रह्मा सत्—असत् स्वरूप समस्त जगत् को प्रकृति द्वारा उत्पन्न करते हैं, और वे प्रकृतिरूप होकर पच्चीसवां तत्त्व कहे जाते हैं।

सर्वज्ञाः[1] सर्वगाः शान्ताः स्वात्मन्येव व्यवस्थिताः।
शक्तयो ब्रह्मविष्ण्वीशा भुक्तिमुक्तिफलप्रदाः॥२७॥
सर्वेश्वराः सर्ववन्द्याः शाश्वतानन्तभोगिनः।
एकमेवाक्षरं तत्त्वं पुंप्रधानेश्वरात्मकम्॥२८॥
अन्याश्च शक्तयो दिव्यास्तत्र सन्ति सहस्रशः।
इत्येते विविधैर्यज्ञैः शक्रादित्यादयोऽमराः।
एकैकस्याः सहस्राणि देहानां वै शतानि च॥२९॥
कथ्यन्ते चैव माहात्म्याच्छक्तिरेकैव निर्गुणा।

इस प्रकार वे ब्रह्मा, विष्णु और महेश नामकी तीनों शक्तियाँ सर्वज्ञ, सर्वगामी, सर्वव्यापक और शान्तरूप हो अपने ही आत्मा में स्थित रहती है और भोग तथा मोक्षरूप फल देने वाली हैं, इतना ही नहीं वे तीनों देव सबके ईश्वर सबको बाँधने वाले शाश्वत और अनन्त भोगों से पूर्ण हैं। वही अक्षर अविनाशी तत्त्व होने से पुरुष प्रधान-प्रकृति तथा ईश्वररूप है। इसके अतिरिक्त हजारों दिव्य शक्तियाँ उसी आत्मस्वरूप में अवस्थित है। वे इन्द्रादि देवों के रूप में विविध यज्ञों द्वारा पूजित होती हैं। उन एक-एक शक्ति के सैंकड़ों तथा हजारों शरीर भले ही रहे जाते हों, परन्तु देव-माहात्म्य से निर्गुण शक्ति एक ही मानी जाती है।

तां शक्तिं स्वयमास्थाय स्वयं देवो महेश्वरः॥३०॥
करोति विविधान्देहान्दृश्यते चैव लीलया।
इज्यते सर्वयज्ञेषु ब्राह्मणैर्वेदवादिभिः॥३१॥
सर्वकामप्रदो रुद्रं इत्येषा वैदिकी श्रुतिः।

देव महेश्वर इसी शक्ति की सहायता से लीला पूर्वक विभिन्न शरीरों की रचना करते हैं और उस का विलय भी करते हैं। वेदवादी ब्राह्मणों द्वारा सम्पादित होने वाले सभी यज्ञों में समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले भगवान् रुद्र की पूजा की जाती है, ऐसी वेदश्रुति है।

सर्वासामेव शक्तीनां ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥३२॥
प्राधान्येन स्मृता देवाः शक्तयः परमात्मनः।
आभ्यः परस्ताद्भगवान् परमात्मा सनातनः॥३३॥
गीयते सर्वमायात्मा शूलपाणिर्महेश्वरः।
एनमेके वदन्त्यग्निं नारायणमथापरे॥३४॥
इन्द्रमेके परे प्राणं ब्रह्माणमपरे जगुः।

ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर रूपी परमात्माओं की शक्तियाँ सभी शक्तियों में प्रधान मानी गई हैं। इस से भी आगे सनातन परमात्मा त्रिशूल धारण करने वाले सबके आत्मस्वरूप भगवान् महेश्वर स्वतंन्त्र हैं ऐसा कहा जाता है। इन में कुछ लोग अग्नि को परमात्मा कहते हैं तो कोई नारायण को, इन्द्र को, कोई प्राण को या कोई ब्रह्मा को परमात्मा कहता है।

ब्रह्मविष्ण्वग्निवरुणाः सर्वे देवास्तथर्षयः॥३५॥
एकस्यैवाथ रुद्रस्य भेदास्ते परिकीर्तिताः।
यं यं भेदं समाश्रित्य यजन्ति परमेश्वरम्॥३६॥
तत्तद्रूपं समास्थाय प्रददाति फलं शिवः।

ब्रह्मा, विष्णु अग्नि, आदि सभी देव समस्त ऋषिगण एक ही रुद्र के भेद रूप हैं ऐसा कहा गया है। साधक जिस-जिस रूप का आश्रय करके परमेश्वर का यजन करता है, भगवान् शिव उस रूप को धारण करके उसे फल प्रदान करते हैं।

तस्मादेकतरं भेदं समाश्रित्यापि शाश्वतम्॥३७॥
आराधयन्महादेवं याति तत्परमं पदम्।
किन्तु देवं महादेवं सर्वशक्तिं सनातनम्॥३८॥
आराधयेद् गिरिशं सगुणं वाथ निर्गुणम्।

इसलिए इन सब रूपों में किसी एक रूप को आश्रित करके शाश्वत-सनातन महादेव की पूजा करने से मनुष्य श्रेष्ठ पद को प्राप्त करता है, किन्तु सर्वशक्ति सम्पन्न सनातन हिमालय पर्वत पर रहने वाले महादेव के ही सगुण एवम् निर्गुण रूप की आराधना करनी चाहिए।

मया प्रोक्तो हि भवतां योगः प्रागेव निर्गुणः॥३९॥
आरुरुक्षुस्तु सगुणं पूजयेत्परमेश्वरम्।
पिनाकिनं त्रिनयनं जटिलं कृत्तिवाससम्॥४०॥
रुक्माभं वा सहस्रार्कं चिन्तयेद्वैदिकी श्रुतिः।

मैंने पहले आप लोगों को निर्गुण योग के विषय में बताया है। परन्तु जो लोग, स्वर्गलोक में जाना चाहते हैं, उन्हें सगुण महेश्वर की ही उपासना करनी चाहिए। वेदों में कहा गया है कि, त्रिशूलधारी, त्रिनेत्र, जटाधारी तथा व्याघ्र चर्मधारी सुवर्ण की आभा वाले और हजारों किरणों से युक्त महादेव का ध्यान करना चाहिए।

एष योगः समुद्दिष्टः सबीजो मुनिपुंगवाः॥४१॥
अत्राप्यशक्तोऽथ हरं विष्णुं ब्रह्माणमर्चयेत्।

हे मुनिश्रेष्ठों! इस प्रकार, सबीज योग आप लोगों को बताया। ऐसे ध्यान लगाने में असमर्थ व्यक्ति को महेश्वर, विष्णु और ब्रह्मा की अर्चना करनी चाहिए।

1. यहाँ दुर्बलाः पाठ है, जो अनुचित जान पड़ता है।

अथ चेदसमर्थः स्यात्तत्रापि मुनिपुङ्गवाः॥४२॥
ततो वाय्वग्निशक्रादीन् पूजयेद्भक्तिसंयुतः।

हे मुनिश्रेष्ठों इसमें भी असमर्थ होने पर, वायु अग्नि और इन्द्रादि देवताओं की, भक्तिभाव से पूजा करना चाहिए।

तस्मात्सर्वान् परित्यज्य देवान् ब्रह्मपुरोगमान्॥४३॥
आराधयेद्विरूपाक्षमादिमध्यान्तसंस्थितम्।
भक्तियोगसमायुक्तः स्वधर्मनिरतः शुचिः॥४४॥
तादृशं रूपमास्थाय आसाद्यात्यन्तिकं शिवम्।

अथवा ब्रह्मादि अन्य देवताओं का परित्याग करके, आदि मध्य और अन्त में स्थित, सनातन महादेव की आराधना करनी चाहिए। अपने धर्मों का पालन करते हुए, शुद्ध होकर भक्तियोग के माध्यम से व्यक्ति जिस देवता की पूजा करता है, शिव उसी देवता का रूप धरकर, उसके पास आते हैं।

एष योगः समुद्दिष्टः सबीजोऽत्यन्तभावनः॥४५॥
यथाविधि प्रकुर्वाणः प्राप्नुयादैश्वरम्पदम्।

इस प्रकार सबीजयोग का व्याख्यान किया गया, इसका विधिपूर्वक एकाग्रचित्त से पालन करने से अमरत्व की प्राप्ति है।

द्वे चान्ये भावने शुद्धे प्रागुक्ते भवतामिह॥४६॥
अत्रापि कथितो योगो निर्बीजश्च सबीजकः।

पहले जो अन्य दो प्रकार की शुद्ध भावनाएँ आप लोगों को कही है, ये उन भावनाओं में भी निर्बीज और सबीज योग के विषय में बताया गया है।

ज्ञानं तदुक्तं निर्बीजं पूर्वं हि भवतां मया॥४७॥
विष्णुं रुद्रं विरञ्चिञ्च सबीजे साधयेद्बुधः।
अथ वाय्वादिकान्देवान् तत्परो नियतात्मवान्॥४८॥
पूजयेत्पुरुषं विष्णुं चतुर्मूर्तिधरं हरिम्।
अनादिनिधनं देवं वासुदेवं सनातनम्॥४९॥
नारायणं जगद्योनिमाकाशं परमं पदम्।

(तत्त्व)ज्ञान ही निर्बीज योग कहा गया है जिसे मैंनें आप लोगों को पूर्व में कहा है। सबीज समाधि के लिए विष्णु रुद्र और ब्रह्मा की आराधना विद्वान् को करनी चाहिये, अथवा वायु आदि देवताओं की पूजा एकाग्रचित्त होकर करनी चाहिये, अथवा चर्तुभुज मूर्तिधारी पुरुषरूप भगवान् विष्णु को पूजा करनी चाहिए जो आदि और अन्त से रहित दिव्य स्वरूप वासुदेव नाम वाले सनातन नारायण संसार की उत्पत्ति के कारण, आकाश रूप और परम पद को धारण करने वाले हैं।

तल्लिङ्गधारी नियतं तद्भक्तस्तदुपाश्रयः॥५०॥
एष एव विधिर्ब्राह्मो भावने चान्तिमे मतः।
इत्येतत्कथितं ज्ञानं भावनासंश्रयम्परम्॥५१॥
इन्द्रद्युम्नाय मुनये कथितं मन्मया पुरा।
अव्यक्तात्मकमेवेदं चेतनाचेतनं जगत्॥५२॥
तदीश्वरं परं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्ममयं जगत्।

उसे वैष्णव लिंग अर्थात् चिह्न (तिलक) धारण करना चाहिये और नियम परायण होकर वासुदेव का भक्त होकर उनका आश्रय करना चाहिये। यही विधि ब्रह्म की अन्तिम भावना में मान्य है इस प्रकार उस भावना का जिसमें अच्छी प्रकार आश्रय हो ऐसा श्रेष्ठ ज्ञान मैंने तुम्हें बताया है। इसी ज्ञान को पूर्व काल में इन्द्रद्युम्न नाम के मुनि ने भी कहा था तदपि यह चेतन, अचेतन सम्पूर्ण रूप से केवल अव्यक्त माया रूप ही है, और उस का ईश्वर परब्रह्म परमात्मा ही है, इसलिए यह जगत् ब्रह्ममय परमात्मा का स्वरूप ही है।

सूत उवाच

एतावदुक्त्वा भगवान्विरराम जनार्दनः।
तुष्टुवुर्मुनयो विष्णुं शक्रेण सह माधवम्॥५३॥

सूत बोले— इतना कहकर कूर्मरूपधारी भगवान् विष्णु चुप हो गये, उस समय इन्द्र के साथ सभी देव तथा मुनिगण उस माधव विष्णु की स्तुति करने लगे।

मुनय ऊचुः

नमस्ते कूर्मरूपाय विष्णवे परमात्मने।
नारायणाय विश्वाय वासुदेवाय ते नमः॥५४॥
नमो नमस्ते कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः।
माधवाय च ते नित्यं नमो यज्ञेश्वराय च॥५५॥

मुनियों ने कहा—कूर्मरूपधारी परमात्मा विष्णु को नमस्कार है। विश्वरूप नारायण वासुदेव! आपको नमस्कार है। कृष्ण को बार-बार नमस्कार है। गोविन्द को बारम्बार नमस्कार है। माधव को नमस्कार है। यज्ञेश्वर को नमस्कार है।

सहस्रशिरसे तुभ्यं सहस्राक्षाय ते नमः।
नमः सहस्रहस्ताय सहस्रचरणाय च॥५६॥
ॐ नमो ज्ञानरूपाय विष्णवे परमात्मने।
आनन्दाय नमस्तुभ्यं मायातीताय ते नमः॥५७॥
नमो गूढशरीराय निर्गुणाय नमोऽस्तु ते।

पुरुषाय पुराणाय सत्तामात्रस्वरूपिणे॥५८॥
नम: सांख्याय योगाय केवलाय नमोऽस्तु ते।
धर्मज्ञानाभिगम्याय निष्कलाय नमोऽस्तु ते॥५९॥
नमस्ते योगतत्त्वाय महायोगेश्वराय च।
परावराणां प्रभवे वेदवेद्याय ते नम:॥६०॥

हजारों सिरवाले तथा हजारों नेत्रवाले आपको नमस्कार है। हजारों हथा तथा हजारों परमात्मा को नमस्कार है। आनन्दरूप आपको नमस्कार है। आप मायातीत को नमस्कार है। गूढ (रहस्यमय) शरीरवाले आपको नमस्कार है। आप निर्गुण को नमस्कार है। पुराणपुरुष तथा सत्तामात्र स्वरूप वाले आपको नमस्कार है। सांख्य तथा योगरूप आपको नमस्कार है। अद्वितीय (तत्त्वरूप) आपको नमस्कार है। धर्म तथा ज्ञान द्वारा प्राप्त होने वाले आपको तथा निष्कल आपको बार-बार नमस्कार है। व्योमतत्त्व रूप महायोगेश्वर को नमस्कार है। पर तथा अवर पदार्थों को उत्पन्न करने वाले वेद द्वारा वेद्य आपको नमस्कार है।

नमो बुद्धाय शुद्धाय नमो युक्ताय हेतवे।
नमो नमो नमस्तुभ्यं मायिने वेधसे नम:॥६१॥

ज्ञानस्वरूप, शुद्ध(निराकार) स्वरूप आपको नमस्कार है। योगयुक्त तथा (जगत् के) हेतुरूप को नमस्कार है। आपको बार-बार नमस्कार है। मायावी (माया के नियन्त्रक) वेधा (विश्व-प्रपञ्च के स्रष्टा) को नमस्कार है।

नमोऽस्तु ते वराहाय नारसिंहाय ते नम:।
वामनाय नमस्तुभ्यं हृषीकेशाय ते नम:॥६२॥
स्वर्गापवर्गदानाय नमोऽप्रतिहतात्मने।
नमो योगाधिगम्याय योगिने योगदायिने॥६३॥
देवानां पतये तुभ्यं देवार्त्तिशमनाय ते।

आपके वराहरूप को नमस्कार है। नरसिंह रूपधारी को नमस्कार है। वामनरूप आपको नमस्कार है। आप हृषीकेश (इन्द्रिय के ईश) को नमस्कार है। कालरुद्र को नमस्कार है। कालरूप आपको नमस्कार है। स्वर्ग तथा अपवर्ग प्रदान करने वाले और अप्रतिहत आत्मा (शाश्वत अद्वितीय) को नमस्कार है। योगाधिगम्य, योगी और योगदाता को नमस्कार है। देवताओं के स्वामी तथा देवताओं के कष्ट का शमन करने वाले आपको नमस्कार है।

भगवंस्त्वत्प्रसादेन सर्वसंसारनाशनम्॥६४॥
अस्माभिर्विदितं ज्ञानं यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।

भगवन्! आपके अनुग्रह से सम्पूर्ण संसार का नाश करना वाले ज्ञान को हम ने जान लिया है। जिसे जानकर मनुष्य अमृतत्व को प्राप्त कर लेता है।

श्रुताश्च विविधा धर्मा वंशा मन्वन्तराणि च॥६५॥
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च ब्रह्माण्डस्यास्य विस्तर:।
त्वं हि सर्वजगत्साक्षी विश्वो नारायण: पर:॥६६॥
त्रातुमर्हस्यनन्तात्मा त्वामेव शरणङ्गता:।

हमने विविध प्रकार के धर्म, वंश, मन्वन्तर आदि को सुना है तथा इस ब्रह्माण्ड के सर्ग और प्रतिसर्ग को भी विस्तारपूर्वक सुना है। आप ही सम्पूर्ण जग.त के साक्षी, विश्वरूप, परमात्मा नारायण हैं। आप ही अनन्तात्मा हैं, हम आपकी शरण में आते हैं। आप ही इस जगत से मुक्ति दिलाने के योग्य हैं।

सूत उवाच

एतद्व: कथितं विप्रा भोगमोक्षप्रदायकम्॥६७॥
कौर्मं पुराणमखिलं यज्जगाद गदाधर:।

सूत ने कहा—हे ब्राह्मणो! भोग और मुक्तिदायक इस कूर्म पुराण को पूर्ण रूप से आप को कहा है, जिसे गदाधर विष्णु ने स्वयं कहा था।

अस्मिन् पुराणे लक्ष्म्यास्तु सम्भव: कथित: पुरा॥६८॥
मोहायाशेषभूतानां वासुदेवेन योजित:।
प्रजापतीनां सर्गास्तु वर्णधर्माश्च वृत्तय:॥६९॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां यथावल्लक्षणं शुभम्।

इस पुराण में सर्वप्रथम प्राणियों के अज्ञान हेतु भगवान् विष्णु द्वारा रचित लक्ष्मी की उत्पत्ति का वर्णन है। सभी प्राणियों को मोहित करने के लिए यह लक्ष्मी जन्म का विषय बुद्धिमान् वासुदेव ने योजित किया था। इसी प्रकार इस कूर्म पुराण में प्रजापतियों का सर्ग, वर्णों के धर्म, प्रत्येक वर्णों की वृत्तियों अर्थात् आजीविका कही गई है, इसी प्रकार धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष का शुभ लक्षण भी यथावत् कहा गया है

पितामहस्य विष्णोश्च महेशस्य च धीमत:॥७०॥
एकत्वञ्च पृथक्त्वञ्च विशेषश्चोपवर्णित:।
भक्तानां लक्षणम्प्रोक्तं समाचारश्च भोजनम्॥७१॥
वर्णाश्रमाणां कथितं यथावदिह लक्षणम्।
आदिसर्गस्तत: पश्चादण्डावरणसप्तकम्॥७२॥
हिरण्यगर्भ: सर्गश्च कीर्त्तितो मुनिपुङ्गवा:।

उसी प्रकार पितामह ब्रह्मा का, विष्णु का तथा बुद्धिमान् महेश्वर का एकत्व, भिन्नत्व तथा विशेष भेद भी दर्शाया गया है। उसे प्रकार भक्तों का लक्षण तथा अत्यन्त उत्तम योग आचार भी इस पुराण में वर्णित है इस के बाद आदि सर्ग और ब्रह्माण्ड के सात आवरण इस पुराण में कहे गये हैं। अनन्तर हे मुनिश्रेष्ठो! हिरण्यगर्भ, ब्रह्मा का सर्ग भी इस पुराण में विर्णत है।

कालसंख्याप्रकथनं माहात्म्यञ्चेश्वरस्य च॥७३॥
ब्रह्मणः शयनञ्चाप्सु नामनिर्वचनं तथा।
वराहवपुषो भूयो भूमेरुद्धरणं पुनः॥७४॥
मुख्यादिसर्गकथनं मुनिसर्गस्तथापरः।
व्याख्यातो रुद्रसर्गश्च ऋषिसर्गश्च तापसः॥७५॥
धर्मस्य च प्रजासर्गस्तामसात्पूर्वमेव तु।
ब्रह्मविष्णोर्विवादः स्यादन्तर्देहप्रवेशनम्॥७६॥
पद्मोद्भवत्वं देवस्य मोहस्तस्य च धीमतः।
दर्शनञ्च महेशस्य माहात्म्यं विष्णुनेरितम्॥७७॥
दिव्यदृष्टिप्रदानं च ब्रह्मणः परमेष्ठिना।
संस्तवो देवदेवस्य ब्रह्मणा परमेष्ठिना॥७८॥
प्रसादो गिरिशस्याथ वरदानं तथैव च।
संवादो विष्णुना सार्द्धं शङ्करस्य महात्मनः॥७९॥
वरदानं तथा पूर्वमन्तर्द्धानं पिनाकिनः।

इसके पश्चात् इस पुराण में काल की संख्या का कथन, ईश्वर का माहात्म्य, परमात्मा का जलशायी होना, उनके नाम का निर्वचन, वराहमूर्ति धारण करके पृथ्वी का समुद्र के जल से उद्धार करना वर्णित है। ब्रह्मा और विष्णु का विवाद तथा परस्पर एक दूसरे के देह में प्रवेश, ब्रह्मा का कमल से उत्पन्न होना, ज्ञानी ब्रह्मा का अज्ञान और महेश्वर का दर्शन प्राप्त करना विष्णु के द्वारा वर्णित महेश्वर माहात्म्य, परमश्रेष्ठी ब्रह्मा को दिव्यदृष्टि दान, परमेष्ठी ब्रह्मा के द्वारा की गई देवाधिदेव की स्तुति, महादेव का प्रसन्न होना और वरदान देना, विष्णु के साथ शंकर का कथोपकथन महेश्वर का वरदान और अन्तर्धान होना भी वर्णित है।

वधश्च कथितो विप्रा मधुकैटभयोः पुरा॥८०॥
अवतारोऽथ देवस्य ब्रह्मणो नाभिपङ्कजात्।
एकीभावश्च देवेन ब्रह्मणा कथितः पुरा॥८१॥
विमोहो ब्रह्मणश्चाथ संज्ञानात्तु हरेस्ततः।

हे विप्रो! इसमें प्राचीन काल में हुए मधुकैटभ के वध का तथा देव (विष्णु) के नाभिकमल से ब्रह्मा के अवतार का वर्णन हुआ है। तदनन्तर विष्णु से देव ब्रह्मा के एकीभाव को कहा गया है और ब्रह्मा का मोहित होना तदनन्तर हरि से चेतना-प्राप्ति को बताया गया है।

तपश्चरणमाख्यातं देवदेवस्य धीमतः॥८२॥
प्रादुर्भावो महेशस्य ललाटात्कथितस्ततः।
रुद्राणां कथिता सृष्टिर्ब्रह्मणः प्रतिषेधनम्॥८३॥
भूतिश्च देवदेवस्य वरदानोपदेशकौ।
अन्तर्द्धानञ्च देवस्य तपश्चर्याण्डजस्य च॥८४॥
दर्शनं देवदेवस्य नरनारीशरीरता।
देव्या विभागकथनं देवदेवात्पिनाकिनः॥८५॥
देव्याश्च पश्चात्कथितं दक्षपुत्रीत्वमेव च।
हिमवद्दुहितृत्वं च देव्या माहात्म्यमेव च॥८६॥

तदुपरान्त धीमान् देवाधिदेव की तपश्चर्या का वर्णन है। और फिर उनके (ब्रह्मा के) मस्तक से महेश्वर के प्रादुर्भाव का वर्णन किया गया है। रुद्रगणों की उत्पत्ति और इस कार्य में ब्रह्मा का विरोध करना, तत्पश्चात् देवाधिदेव द्वारा ब्रह्मा को वरदान और उपदेश देने की बात कही गई है। देव महेश्वर, का अन्तर्धान होना, अण्डज ब्रह्मा की तपस्या और देवाधिदेव का दर्शन प्राप्त करना, महादेव का नर-नारी (अर्धनारी) का शरीर धारण करना, देवाधिदेव महादेव का देवी के साथ पृथक्करण, देवी की दक्षपुत्री के रूप में उत्पत्ति और हिमालय की कन्या के रूप में देवी का माहात्म्य वर्णित है।

दर्शनं दिव्यरूपस्य विश्वरूपाक्षदर्शनम्।
नाम्ना सहस्रं कथितं पित्रा हिमवता स्वयम्॥८७॥
उपदेशो महादेव्या वरदानं तथैव च।

उनके दिव्यरूप के दर्शन और विश्वरूप के दर्शन का वर्णन हुआ है। तदुपरान्त स्वयं पिता हिमालय द्वारा कहे गये (देवी के) सहस्रनाम, महादेवी के द्वारा प्रदत्त उपदेश और वरदान का भी वर्णन हुआ है।

भृग्वादीनां प्रजासर्गो राज्ञां वंशस्य विस्तरः॥८८॥
प्राचेतसत्वं दक्षस्य दक्षयज्ञविमर्द्दनम्।
दधीचस्य च यज्ञस्य विवादः कथितस्तदा॥९१॥

भृगु आदि ऋषियों का प्रजासर्ग, राजाओं के वंश का विस्तार, दक्ष के प्रचेता का पुत्र होना और दक्षयज्ञ के विध्वंस का वर्णन है। हे मुनिश्रेष्ठो! तदनन्तर दधीच और दक्ष के विवाद को बतलाया गया है, फिर मुनियों के शाप का वर्णन हुआ है।

तत्रश्च शापः कथितो मुनीनां मुनिपुङ्गवाः।
रुद्रागतिः प्रसादश्च अन्तर्द्धानं पिनाकिनः॥९०॥
पितामहोपदेशः स्यात् कीर्त्यते वै रणाय तु।
दक्षस्य च प्रजासर्गः कश्यपस्य महात्मनः॥९१॥
हिरण्यकशिपोर्नाशो हिरण्याक्षवधस्तथा।
ततश्च शापः कथितो देवदारुवनौकसाम्॥९२॥
निग्रहश्चान्धकस्याथ गाणपत्यमनुत्तमम्।

तदुपरान्त रुद्र के आगमन एवं अनुग्रह और उन पिनाकी रुद्र के अन्तर्धान होने तथा (दक्ष की) रक्षा के लिये पितामह द्वारा उपदेश करने का वर्णन हुआ है। इसके बाद दक्ष के तथा महात्मा कश्यप से होने वाली प्रजासृष्टि का वर्णन और फिर हिरण्यकशिपु के नष्ट होने तथा हिरण्याक्ष के वध का वर्णन हुआ है। इसके बाद देवदारु वन में निवास करने वाले मुनियों को शाप-प्राप्ति का कथन है, अन्धक के निग्रह और उसको श्रेष्ठ गाणपत्यपद प्रदान करने का वर्णन हुआ है।

प्रह्लादनिग्रहश्चाथ बलेः संयमनन्तथा॥९३॥
बाणस्य निग्रहश्चाथ प्रसादस्तस्य शूलिनः।
ऋषीणां वंशविस्तारो राज्ञां वंशाः प्रकीर्त्तिताः॥९४॥
वसुदेवात्ततो विष्णोरुत्पत्तिः स्वेच्छया हरेः।

तदनन्तर प्रह्लाद का निग्रह, बलि को बाँधना, त्रिशूली (शंकर) द्वारा बाणासुर के निग्रह और फिर उस पर कृपा करने का वर्णन हुआ है। इसके पश्चात् ऋषियों के वंश का विस्तार तथा राजाओं के वंश का वर्णन हुआ है और फिर स्वेच्छा से वसुदेव के पुत्र के रूप में हरिविष्णु की उत्पत्ति का वर्णन है।

दर्शनञ्चोपमन्योर्वै तपश्चरणमेव च॥९५॥
वरलाभो महादेवं दृष्ट्वा साम्बं त्रिलोचनम्।
कैलासगमनञ्चाथ निवासस्तस्य शार्ङ्गिणः॥९६॥
ततश्च कथ्यते भीतिर्द्वारवत्यां निवासिनाम्।
रक्षणं गरुडेनाथ जित्वा शत्रून्महाबलान्॥९७॥
नारदागमनं चैव यात्रा चैव गरुत्मतः।

उपमन्यु का दर्शन करने और तपश्चर्या का वर्णन है। तत्पश्चात् अम्बासहित त्रिलोचन महादेव का दर्शन कर वरप्राप्ति का वर्णन आता है। तदनन्तर शार्ङ्गी (कृष्ण) का कैलास पर जाने और वहाँ निवास करने का वर्णन है, फिर द्वारका-निवासियों के भयभीत होने का वर्णन है। इसके बाद महाबलशाली शत्रुओं को जीत कर गरुड के द्वारा (द्वारकावासियों की) रक्षा करने, नारद-आगमन और गरुड की यात्रा का वर्णन हुआ है।

ततश्च कृष्णागमनं मुनीनामाश्रमस्ततः॥९८॥
नैत्यकं वासुदेवस्य शिवलिङ्गार्चनं तथा।
मार्कण्डेयस्य च मुनेः प्रश्नः प्रोक्तस्ततः परम्॥९९॥
लिङ्गार्चननिमित्तञ्च लिङ्गस्यापि सलिङ्गिनः।
याथात्म्यकथनं चाथ लिङ्गाद्दै भीतिरेव च॥१००॥

इसके बाद कृष्ण का आगमन, मुनियों के आने और वासुदेव (विष्णु) द्वारा नित्य किये जाने वाले शिवलिङ्गार्चन का वर्णन है। तदुपरान्त मुनि मार्कण्डेयजी द्वारा (लिङ्ग के विषय में) प्रश्न करने तथा (वासुदेव द्वारा) लिङ्गार्चन के प्रयोजन और लिङ्गी (शंकर) के लिङ्गस्वरूप का निरूपण हुआ है।

ब्रह्मविष्णोस्तथा मध्ये कीर्त्तिता मुनिपुङ्गवाः।
मोहस्तयोर्वै कथितो गमनञ्चोर्ध्वतो ह्यधः॥१०१॥
संस्तवो देवदेवस्य प्रसादः परमेष्ठिनः।
अन्तर्द्धानञ्च लिङ्गस्य साम्बोत्पत्तिस्ततः परम्॥१०२॥

मुनिश्रेष्ठो! फिर ब्रह्मा तथा विष्णु के मध्य ज्योतिर्लिङ्ग के आविर्भाव तथा उसके वास्तविक स्वरूप का वर्णन हुआ है। तदुपरान्त उन दोनों के मोहित होने तथा (लिङ्ग का परिमाण जानने के लिये) ऊर्ध्वलोक एवं अधोलोक में जाने, पुनः परमेष्ठी देवाधिदेव (महादेव) की स्तुति करने और उनके द्वारा अनुग्रह प्रदान किये जाने का वर्णन है।

कीर्त्तिता चानिरुद्धस्य समुत्पत्तिर्द्विजोत्तमाः।
कृष्णस्य गमने बुद्धिर्ऋषीणामागतिस्तथा॥१०३॥
अनुशासनञ्च कृष्णेन वरदानं महात्मनः।
गमनञ्चैव कृष्णस्य पार्थस्याप्यथ दर्शनम्॥१०४॥
कृष्णद्वैपायनस्योक्तं युगधर्माः सनातनाः।
अनुग्रहोऽथ पार्थस्य वाराणस्यां गतिस्ततः॥१०५॥
पाराशर्यस्य च मुनेर्व्यासस्याद्भुतकर्मणः।

द्विजोत्तमो! तदनन्तर लिङ्ग के अन्तर्धान होने और फिर साम्ब तथा अनिरुद्ध की उत्पत्ति का वर्णन हुआ है। तदुपरान्त महात्मा कृष्ण का (अपने लोक) जाने का निश्चय, ऋषियों का (द्वारका में) आगमन, कृष्ण द्वारा उन्हें उपदेश तथा वरदान देने का वर्णन किया गया है। इसके अनन्तर कृष्ण का (स्वधाम) गमन, अर्जुन द्वारा कृष्णद्वैपायन का

दर्शन एवं उनके द्वारा कहे गये सनातन युगधर्मों का वर्णन हुआ है। आगे अर्जुन के ऊपर (व्यास द्वारा) अनुग्रह और पराशर-पुत्र अद्भुतकर्मा व्यास मुनि का वाराणसी में जाने का वर्णन है।

वाराणस्याश्च माहात्म्यं तीर्थानाञ्चैव वर्णनम्॥ १०६॥
व्यासस्य तीर्थयात्रा च देव्याश्चैवाथ दर्शनम्।
उद्वासनञ्च कथितं वरदानं तथैव च॥ १०७॥
प्रयागस्य च माहात्म्यं क्षेत्राणामथ कीर्त्तनम्।
फलञ्च विपुलं विप्रा मार्कण्डेयस्य निर्गमः॥ १०८॥

तदुपरान्त वाराणसी का माहात्म्य, तीर्थों का वर्णन, व्यास की तीर्थयात्रा और देवी के दर्शन करने का वर्णन है। साथ ही (देवी द्वारा वाराणसी से व्यास के) निष्कासन और वरदान देने का वर्णन हुआ है। हे ब्राह्मणो! तदनन्तर प्रयाग का माहात्म्य, (पुण्य) क्षेत्रों का वर्णन, (तीर्थों का) महान् फल और मार्कण्डेय मुनि के निर्गमन का वर्णन है।

भुवनानां स्वरूपञ्च ज्योतिषाञ्च निवेशनम्।
कीर्त्तितश्चापि वर्षाणां नदीनाञ्चैव निर्णयः॥ १०९॥
पर्वतानाञ्च कथनं स्थानानि च दिवौकसाम्।
द्वीपानां प्रविभागश्च श्वेतद्वीपोपवर्णनम्॥ ११०॥

(इसके पश्चात्) भुवनों के स्वरूप, ग्रहों तथा नक्षत्रों की स्थिति और वर्षों तथा नदियों के निर्णय का वर्णन किया गया है। पर्वतों तथा देवताओं के स्थानों, द्वीपों के विभाग तथा श्वेतद्वीप का वर्णन किया गया है।

शयनं केशवस्याथ माहात्म्यञ्च महात्मनः।
मन्वन्तराणां कथनं विष्णोर्माहात्म्यमेव च॥ १११॥
वेदशाखाप्रणयनं व्यासानां कथनं ततः।
अवेदस्य च वेदस्य कथितं मुनिपुङ्गवाः॥ ११२॥
योगेश्वराणां च कथा शिष्याणां चाथ कीर्त्तनम्।
गीताश्च विविधा गुह्या ईश्वरस्याथ कीर्त्तिताः॥ ११३॥

महात्मा केशव के शयन, उनके माहात्म्य, मन्वन्तरों और विष्णु के माहात्म्य का निरूपण हुआ है। मुनिश्रेष्ठो! तदनन्तर वेद की शाखाओं का प्रणयन, व्यासों का नाम-परिगणन और अवेद (वेद बाह्य सिद्धान्तों) तथा वेदों का कथन किया गया है। (इसके अनन्तर) योगेश्वरों की कथा, (उनके) शिष्यों का वर्णन और ईश्वर-सम्बन्धी अनेक गुह्य गीताओं का उल्लेख हुआ है।

वर्णाश्रमाणामाचाराः प्रायश्चित्तविधिस्ततः।
कपालित्वं च रुद्रस्य भिक्षाचरणमेव च॥ ११४॥
पतिव्रतानामाख्यानं तीर्थानां च विनिर्णयः।
तथा मंकणकस्याथ निग्रहः कीर्त्तितो द्विजाः॥ ११५॥

तदनन्तर वर्णों और आश्रमों के सदाचार, प्रायश्चित्तविधि, रुद्र के कपाली होने और (उनके) भिक्षा माँगने का वर्णन हुआ है। हे द्विजो! इसके पश्चात् पतिव्रता का आख्यान, तीर्थों के निर्णय और मङ्कणक मुनि का निग्रह आदि का उल्लेख है।

वधश्च कथितो विप्राः कालस्य च समासतः।
देवदारुवने शंभोः प्रवेशो माधवस्य च॥ ११६॥
दर्शनं षट्कुलीयानां देवदेवस्य धीमतः।
वरदानं च देवस्य नन्दने तु प्रकीर्तितम्॥ ११७॥
नैमित्तिकश्च कथितः प्रतिसर्गस्ततः परम्।
प्राकृतः प्रलयश्चोर्ध्वं सबीजो योग एव च॥ ११८॥

ब्राह्मणो! (तदनन्तर) संक्षेप में काल के वध और शंकर तथा विष्णु के देवदारु वन में प्रवेश करने का कथन है। छः कुलों में उत्पन्न ऋषियों द्वारा श्रीमान् देवाधिदेव के दर्शन करने और महादेव द्वारा नन्दी को वरदान देने का वर्णन हुआ है। इसके बाद नैमित्तिक प्रलय कहा गया है और फिर आगे प्राकृत प्रलय एवं सबीज योग बताया गया है।

एवं ज्ञात्वा पुराणस्य संक्षेपं कीर्त्तयेत्तु यः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते॥ ११९॥

इस प्रकार संक्षेप में (इस कूर्म) पुराण को जानकर जो उसका उपदेश करता है, वह सभी पापों से मुक्त होकर ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है।

एवमुक्त्वा श्रियं देवीमादाय पुरुषोत्तमः।
सन्त्यज्य कूर्मसंस्थानं प्रजगाम हरस्तदा॥ १२०॥
देवाश्च सर्वे मनुजः स्वानि स्थानानि भेजिरे।
प्रणम्य पुरुषं विष्णुं गृहीत्वा ह्यमृतं द्विजाः॥ १२१॥

इतना कहकर कूर्मरूप का परित्याग कर देवी लक्ष्मी के साथ पुरुषोत्तम (विष्णु) अपने धाम को चले गये। उस श्रेष्ठ पुरुष विष्णु को प्रणाम करके तथा (कथारूप)अमृत ग्रहण करके सभी देव और मनुष्य भी अपने स्थान को चले गये।

एतत्पुराणं सकलं भाषितं कूर्मरूपिणा।
साक्षाद्देवाधिदेवेन विष्णुना विश्वयोनिना॥ १२२॥
यः पठेत्सततं विप्रा नियमेन समासतः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोके महीयते॥ १२३॥

इस प्रकार यह कूर्म पुराण कूर्मावतारी विष्णु ने स्वयं ही कहा है इसलिए यह परम श्रेष्ठ है क्योंकि देवाधिदेव तथा विश्व के उत्पत्ति स्थान विष्णु ने ही अपने मुख से यह कहा है। इसलिए जो मनुष्य निरन्तर भक्तिपूर्वक तथा नियमपूर्वक संक्षेप में इस पुराण का पाठ करता है वह समस्त पापों से छूट कर ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित होता है।

लिखित्वा चैव यो दद्याद्वैशाखे कार्त्तिकेऽपि वा।
विप्राय वेदविदुषे तस्य पुण्यं निबोधत॥ १२४॥

उसी प्रकार जो मनुष्य इस पुराण को लिखकर वैशाख अथवा कार्तिकमास में वेद के विद्वान् ब्राह्मण को दान करता है तो इससे जो पुण्य प्राप्त होता है उस के विषय में सुनो।

सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वैश्वर्यसमन्वितः।
भुक्त्वा तु विपुलान्मर्त्यो भोगान्दिव्यान् सुशोभनान्॥
ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो विप्राणां जायते कुले।
पूर्वसंस्कारमाहात्म्याद्ब्रह्मविद्यामवाप्नुयात्॥ १२६॥

इस प्रकार कूर्म पुराण का दान करने वाला वह मनुष्य समस्त पापों से मुक्त होकर सम्पूर्ण ऐश्वर्यों से युक्त होकर इस लोक में महान् भोगों को भोग कर अन्त में श्रेष्ठ भोगों को भी स्वर्ग में भोगता है, इसके बाद उस स्वर्ग लोक से भी परिभ्रष्ट होकर पुनः ब्राह्मणों के कुल में जन्म लेता है और पूर्व जन्म के संस्कारों के अनुसार ब्रह्मविद्या को प्राप्त करता है।

पठित्वाध्यायमेवैकं सर्वपापैः प्रमुच्यते।
योऽर्थं विचारयेत्सम्यक् प्राप्नोति परमं पदम्॥ १२७॥
अध्येतव्यमिदं पुण्यं विप्रैः पर्वणि पर्वणि।
श्रोतव्यञ्च द्विजश्रेष्ठा महापातकनाशनम्॥ १२८॥

इस पुराण के एक ही अध्याय का पाठ करने से सभी पापों से मुक्ति प्राप्त हो जाती है और जो इसके अर्थ पर ठीक-ठीक विचार करता है, वह परमपद प्राप्त करता है। हे श्रेष्ठ द्विजो! ब्राह्मणों को प्रत्येक पर्व पर महापातकों का नाश करने वाले इस पुराण का नित्य अध्ययन एवं श्रवण करना चाहिये।

एकतस्तु पुराणानि सेतिहासानि कृत्स्नशः।
एकत्र परमं वेदमेतदेवातिरिच्यते॥ १२९॥
धर्मनैपुणकामानां ज्ञाननैपुणकामिनाम्।
इदं पुराणं मुक्त्यैकं नान्यत् साधनकपरं।
यथा यद्वत् भगवान्देवो नारायणो हरिः॥ १३०॥
कीर्त्यते हि यथा विष्णुर्न तथाऽन्येषु सुव्रताः।
ब्राह्मी पौराणिकी चेयं संहिता पापनाशिनी॥ १३१॥
अत्र तत्परमं ब्रह्म कीर्त्यते हि यथार्थतः।
तीर्थानां परमं तीर्थं तपसाञ्च परं तपः॥ १३२॥
ज्ञानानां परमं ज्ञानं व्रतानां परमं व्रतम्।

एक तरफ इतिहास सहित सम्पूर्ण पुराणों का स्वाध्याय और दूसरी तरफ परम श्रेष्ठ इस पुराण का स्वाध्याय तथा पाठ किया जाए तो उन सबके पुण्य की प्राप्ति से अधिक इस कूर्म पुराण के स्वाध्याय से होने वाला पुण्य ही अधिक होकर अवश्य ही अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त होता है। जो लोग धर्म के सम्बन्ध में कुशलता प्राप्ति की इच्छा करते हों, जो ज्ञान प्राप्ति में निपुण होना चाहते हों, उन के लिए इस एक कूर्म पुराण के अतिरिक्त कोई भी श्रेष्ठ साधन नहीं है। क्योंकि हे उत्तम व्रत वाले ब्राह्मणों! भगवान् श्री नारायणदेव श्रीहरि विष्णु का कीर्तन जिस प्रकार करना चाहिए वह इस कूर्म पुराण में मिलता है। ऐसा अन्यत्र किसी भी पुराण में वस्तुतः नहीं मिलता। इसी का ब्रह्म परमात्मा से संबन्ध रखने वाली यह कूर्मपुराण संहिता पापों का नाश करने वाली है क्योंकि इस कूर्म पुराण में वस्तुतः यथार्थ रूप में परम श्रेष्ठ परमात्मा का कीर्तन अथवा वर्णन किया गया है। इसी कारण यह कूर्म पुराण तीर्थों में परम श्रेष्ठ तीर्थ रूप है, सभी तपों में श्रेष्ठ तप रूप है, तथा सभी ज्ञानों में परमश्रेष्ठ ज्ञानरूप है और सभी व्रतों में अत्यन्त श्रेष्ठ व्रतरूप है।

नाध्येतव्यमिदं शास्त्रं वृषलस्य च सन्निधौ॥ १३३॥
योऽधीते चैव मोहात्मा स याति नरकान् बहून्।
श्राद्धे वा दैविके कार्ये श्राव्यं चेदं द्विजातिभिः॥ १३४॥
यज्ञान्ते तु विशेषेण सर्वदोषविशोधनम्।

परन्तु यह ध्यान अवश्य रहे कि यह कूर्मपुराणरूपी शास्त्र किसी वृषल अथवा शूद्र के पास अध्ययन करने योग्य नहीं है फिर भी मनुष्य मोह के कारण शूद्र के समीप अध्ययन करता है तो वह अवश्य ही वह अनेक नरकों में गिरता है। प्रत्येक द्विजवर्ण के मनुष्य को किसी भी श्राद्ध कर्म अथवा देवकर्म में यह कूर्म पुराण अवश्य सुनना या सुनाना चाहिए। उसी प्रकार किसी भी यज्ञ की समाप्ति के समय यह पुराण सम्पूर्ण दोषों का विनाश करने के कारण सुनने योग्य है।

मुमुक्षूणामिदं शास्त्रमध्येतव्यं विशेषतः॥ १३५॥
श्रोतव्यञ्चाथ मन्तव्यं वेदार्थपरिबृंहणम्।

ज्ञात्वा यथावद्विप्रेन्द्रान् श्रावयेद्भक्तिसंयुतान्॥ १३६॥

सर्वपापविनिर्मुक्त्वा ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात्।

वेदार्थों को वर्धित करने वाले, इस शास्त्र को मोक्षाभिलाषी लोगों को, विशेष रूप से पढ़ना, सुनना और चिन्तन करना चाहिए। इस शास्त्र को जानकर, जो व्यक्ति इसे नियमानुसार, भक्त ब्राह्मणों को सुनाता है, वह सारे पापों से मुक्त होकर, ईश्वर का सायुज्य प्राप्त करता है।

योऽश्रद्दधाने पुरुषे दद्याच्चाधार्मिके तथा॥ १३७॥

सम्प्रेत्य गत्वा निरयान् शुनां योनिं व्रजत्यधः।

जो व्यक्ति, अश्रद्धालु और नास्तिक को यह शास्त्र सुनाता है, वह परलोक में नकरगामी होकर पुनः पृथ्वी पर कुकुर योनि में जन्म लेता है।

नमस्कृत्य हरिं विष्णुं जगद्योनिं सनातनम्॥ १३८॥

अध्येतव्यमिदं शास्त्रं कृष्णद्वैपायनं तथा।

इत्याज्ञा देवदेवस्य विष्णोरमिततेजसः॥ १३९॥

पाराशर्यस्य विप्रर्षेर्व्यासस्य च महात्मनः।

जगत् के कारणभूत, सनातन हरि विष्णु तथा कृष्णद्वैपायन व्यासजी को नमस्कार करके इस शास्त्र (पुराण) का अध्ययन करना चाहिये'—अमित तेजस्वी देवाधिदेव विष्णु और पराशर के पुत्र महात्मा विप्रर्षि व्यास को ऐसी आज्ञा है।

श्रुत्वा नारायणाद्दिव्यान्नारदो भगवानृषिः॥ १४०॥

गौतमाय ददौ पूर्वं तस्माच्चैव पराशरः।

नारायण के मुख से सुनकर, देवर्षि नारद ने यह पुराण गौतम को दिया था और गौतम से यह पराशर ने प्राप्त किया।

पराशरोऽपि भगवान् गंगाद्वारे मुनीश्वराः॥ १४१॥

मुनिभ्यः कथयामास धर्मकामार्थमोक्षदम्।

हे मुनीश्वरो! भगवान् पराशर ने भी धर्म-अर्थ काम और मोक्ष को देने वाला यह पुराण, गंगाद्वार (हरिद्वार) में मुनियों को सुनाया था।

ब्रह्मणा कथितं पूर्वं सनकाय च धीमते॥ १४२॥

सनत्कुमाराय तथा सर्वपापप्रणाशनम्।

सर्वपापनाशक यह पुराण, प्राचीन काल में, ब्रह्मा ने अपने पुत्रों बुद्धिमान् सनक और सनत्कुमार को कहा था।

सनकाद् भगवान् साक्षाद्देवलो योगवित्तमः॥ १४३॥

मुनिः पञ्चशिखो वै हि देवलादिदमुत्तमम्।

सनत्कुमाराद्भगवान्मुनिः सत्यवतीसुतः॥ १४४॥

एतत्पुराणं परमं व्यासः सर्वार्थसंचयम्।

योगवेत्ता भगवद्स्वरूप मुनि देवल ने सनक से और देवल मुनि से यह उत्तम पुराण पञ्चशिखमुनि ने प्राप्त किया था। सनत्कुमार से सत्यवती पुत्र भगवान् वेदव्यासमुनि ने सभी अर्थों के संग्रहकारी इस श्रेष्ठ पुराण को प्राप्त किया था।

तस्माद् व्यासादहं श्रुत्वा भवता पापनाशनम्॥ १४५॥

ऊचिवान्वै भवद्भिश्च दातव्यं धार्मिके जने।

उन वेदव्यास से सुनकर यह पापनाशक पुराण, मैंने आप लोगों को बताया है। आप लोग भी, धार्मिक व्यक्तियों के पास ही इसे प्रकट करें।

तस्मै व्यासाय गुरवे सर्वज्ञाय महर्षये॥ १४६॥

पाराशर्याय शान्ताय नमो नारायणात्मने।

यस्मात्सञ्जायते कृत्स्नं यत्र चैव प्रलीयते।

नमस्तस्मै परेशाय विष्णवे कूर्मरूपिणे॥ १४७॥

पराशर के पुत्र सर्वगुरु, सर्वज्ञ, शान्तस्वरूप तथा नारायणरूप महर्षि व्यास को नमस्कार है। जिनसे यह सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न होता है और जिसमें यह सब लीन हो जाता है, उस कूर्मरूपधारी परमेश्वर भगवान् श्रीविष्णु को नमस्कार है।

इति श्रीकूर्मपुराणे षट्साहस्त्र्यां संहितायामुत्तरार्द्धे व्यासगीतासु षट्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४६॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः